अग्निपुराणम्

पूर्वभागः
(हिन्दी अनुवाद सहित)

⊙

अनुवादक
तारिणीश झा
व्याकरणवेदान्ताचार्य

डॉ० घनश्याम त्रिपाठी
एम० ए०, पी-एच० डी०
व्याकरणाचार्य

शक १९०७ : सन् १९८६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग • इलाहाबाद

अग्निपुराणम्

⊙

अग्निपुराणम्

पूर्वभागः

[हिन्दी अनुवाद सहित]

•

अनुवादक

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

डॉ० घनश्याम त्रिपाठी

एम० ए०, पी-एच० डी०

व्याकरणाचार्य

शक १९०७ : सन् १९८६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ◉ प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग ◉ इलाहाबाद

प्रकाशक

डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री

प्रधानमंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन ० प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग ० इलाहाबाद

●

प्रकाशन वर्ष : शक १९०७ : सन् १९८५ ई०

प्रथम संस्करण

मूल्य : ७५ रुपए

●

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

प्रयाग

प्रकाशकीय

⊙

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता असन्दिग्ध है और वे भारत की अतीतकालीन धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान् गौरव के प्रतीक हैं। आज की बौद्धिकता भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्त्व को रंचमात्र भी कम नहीं कर पायी है। इस समय भी उनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान का भाव दृष्टिगोचर होता है, जैसा सुदूर अतीत में था। अपौरुषेय वेद में भी पुराणों की चर्चा है और उन्हें वेदों की ही भाँति नित्य और प्रमाणभूत बताया गया है। जैसे अध्वर्यु यज्ञ में कुछ पुराण-पाठ के लिए यह कह कर प्रेरणा देता है कि 'पुराण' वेद है। यह वही वेद है--'तानुपदिशति पुराणम्'। वेदः सोऽयमिति। किञ्चित् पुराणमाचक्षीत एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषितः....... (शतपथब्राह्मण १३।४।३१३)। इसी प्रकार अथर्ववेद बृहदारण्यकोपनिषद् आदि वैदिक वाङ्मय में पुराणों के प्रति प्रकृष्ट श्रद्धा प्रकट की गयी है।

सन् १९४३ में सम्मेलन के उन्नायक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी, बंगला, आदि भाषाओं में प्रायः सभी पुराणों के अनुवाद उपलब्ध हैं, पर हिन्दी में नहीं हैं। इससे प्रेरित होकर उन्होंने विद्वानों से परामर्श करके सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी अनुवाद योजना का प्रवर्तन किया जिससे कि हिन्दी भाषी पुराण के अध्येता भी उनके अध्ययन से लाभान्वित हो सकें। यह कार्य अत्यधिक श्रम, व्यय और समय साध्य था, फिर भी सम्मेलन ने पुराण प्रकाशन योजना के अन्तर्गत मत्स्य तथा वायुपुराणों के मात्र हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये थे। अनेक कारणों से यह योजना भी कई वर्षों तक स्थगित रही। किन्तु सम्मेलन के लोकतंत्रीय स्वरूप के पुनः स्थापित होने के बाद मंत्रिमंडलीय प्रशासन ने इस महत्त्वपूर्ण पुराण प्रकाशनयोजना को गतिशील करने का संकल्प किया। परिणाम स्वरूप इस योजना को और भी सार्थक रूप देने की दृष्टि से संस्कृत के मूल

श्लोक, हिन्दी अनुवाद और पाठान्तरों के साथ पुराणों के प्रकाशन कार्य को पुनः गतिमान् बनाया। इस पद्धति से सन् १९७६ में 'ब्रह्मपुराण' प्रकाशित किया। सम्मेलन के इस पुराण को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया। विद्वानों ने भी सम्मेलन की इस योजना के प्रति अपना सन्तोष व्यक्त किया। इसी क्रम में सन् १९८१ में ब्रह्मवैवर्तपुराण का पूर्वभाग, सन् १९८४ में उत्तर भाग का पूर्वार्ध तथा सन् १९८५ में उत्तरभाग का उत्तरार्ध प्रकाशित हुआ।

सम्मेलन ने इसी योजना के अन्तर्गत 'अग्निपुराण' का भी प्रकाशन दो भागों में किया है। 'अग्निपुराण' पुराण क्रम में आठवाँ पुराण है, जिसमें अग्नि को मूल तत्त्व निरूपित किया गया है। मत्स्य एवम् स्कन्द-पुराण में अग्निपुराण के सम्बन्ध में वर्णित है कि ईशान कल्प सम्बन्धी जो ज्ञान अग्निदेव ने वशिष्ठ को दिया था, उसी को अग्निपुराण में प्रकाशित किया गया है—

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।
वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं सम्प्रकाशतें।

भारतीय एवम् पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अग्निपुराण भारतीय ज्ञानकोष है। इसके पौराणिक स्वरूप में कारणसृष्टि, कार्यसृष्टि और लय, देवपितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र प्रभृति) वंशों में उत्पन्न राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसमें तन्त्र, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, राजनीति, कोश आदि विविध विषयों का सुन्दर परिचय मिलता है।

अग्निपुराण के महत्त्व को ध्यान में रखकर इसका हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बहुत पहले किया था। तदनुसार राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के समय में ही सम्मेलन ने इस पुराण की हिन्दी अनुवाद श्री तारिणीश झा तथा श्री घनश्याम त्रिपाठी से कराया था। पश्चात् अग्निपुराण के विषय-बाहुल्य एवं अर्थगाम्भीर्य को दृष्टि में रखकर हमने तत्तत् विषय के विद्वानों से इसका संशोधन कराया। व्याकरण अंश के अनुवाद में पण्डित श्री रामपाल त्रिपाठी, तन्त्र अंश के अनुवाद में पण्डित श्री व्रज-वल्लभ द्विवेदी, ज्योतिष अंश में श्री हरिशरण द्विवेदी और आयुर्वेद में श्री रामराज शुक्ल तथा श्री योगीन्द्र चन्द्र शुक्ल से सहयोग प्राप्त किया।

अब पूरी पाण्डुलिपि का यथोचित संशोधन एवं मुद्रण-कार्य पुराण-साहित्य के विख्यात विद्वान् एवं हमारे सहयोगी पण्डित श्री तारिणीश झा के निदेशन में सम्पन्न हुआ है।

इसकी प्रेस कापी तैयार करने में पण्डित श्री रुद्रप्रसाद मिश्र की दक्षता तथा इसकी साजसज्जा, आवरण पृष्ठ आदि के निर्माण में साहित्य विभागाध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय की तत्परता उल्लेखनीय है।

हमने संस्कृत जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ श्री रामशंकर भट्टाचार्य जी से इसकी भूमिका लिखने के लिए अनुरोध किया था। श्री भट्टाचार्य महोदय ने भूमिका लिखकर जो सहयोग दिया है, उसके प्रति सम्मेलन परिवार आभारी है। पर उनकी कुछ स्थापनाएँ विचारणीय हैं।

विश्वास है, अग्निपुराण का यह संस्करण लोकप्रिय होगा। आशा है, जिज्ञासु अध्येताओं के स्नेह संबल के सहारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस प्रकाशन योजना को सफलतापूर्वक निष्पन्न करने में सक्षम रहेगा।

डॉ० प्रभात शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

वसन्तपञ्चमी

संवत् २०४२

भूमिका

अग्निपुराण का स्वरूप एवं उसका श्लोकपरिमाण

पुराणों में अष्टादश पुराणों (जो कभी कभी महापुराण भी कहलाते हैं) की जो सूचियां मिलती हैं, उनमें अग्नि या आग्नेय नाम अवश्य मिलता है, जिससे अग्निपुराण की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ज्ञात होती है। अग्नि नामक देव इस पुराण के वक्ता हैं, अतः यह अग्नि नाम से अभिहित होता है। आग्नेय का अर्थ है—अग्नि से सम्बन्धित अथवा अग्नि द्वारा प्रोक्त।

अग्निपुराण के स्वरूप एवं परिमाण के विषय में पुराणों में कुछ निर्देश मिलते हैं। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि जिस पुराण में अग्नि ने वसिष्ठ को ईशानकल्प का वृत्तान्त कहा, वह आग्नेय पुराण है (५३।२८)। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड (२।४७) तथा नारदीयपुराण (१।९९।१) का भी यही मत है।

प्रचलित अग्निपुराण का वक्ता यद्यपि अग्नि है, तथापि इसमें ईशानकल्प का नाम नहीं मिलता। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई प्राचीनतर ईशानकल्पीय-वृत्तान्तख्यापक अग्निपुराण था जो लुप्त हो गया है और प्रचलित अग्निपुराण उस पुराण का आश्रय करके लिखा गया है (अल्प प्राचीन सामग्री के साथ अत्यधिक नवीन सामग्री जोड़कर)।

विभिन्न समयों में विभिन्न अग्निपुराण (प्राचीन तथा नवीन सामग्री का संयोजनात्मक) प्रचलित थे—इस तथ्य में सर्वबलिष्ठ हेतु है—अग्निपुराण के परिमाण के विषय में मतभेद। अग्निपुराण में एक स्थल पर अग्निपुराण का परिमाण १२००० (२७२।११), तथा अन्यत्र (३८३।६४) १५००० कहा गया है। इस पुराण का श्लोक परिमाण भागवतानुसार १५४०० (१२।१३।५), देवीभागवतानुसार १६००० (१।३।९) तथा नारदीय-पुराणानुसार १५००० है (१।९९।२)। एक निश्चित ग्रन्थ के श्लोक परिमाण के विषय में ऐसे मतभेद

---

१. श्लोकपरिमाण का तात्पर्य है—३२ अक्षरों को एक श्लोक मानकर गणना करना। मुद्रित अग्निपुराण के प्रत्येक अध्याय में जो श्लोकगणना मिलती है, वह श्लोकपरिमाण-गणना नहीं है। अग्निपुराण में कितने ही श्लोक हैं जिनमें

नहीं हो सकता, अतः यह स्वीकार्य है कि इन पुराणों के रचनाकारों ने अपने समय में जिस अग्निपुराण को देखा था, उसके परिमाण का ही उल्लेख उन्होंने किया है।

निबन्धग्रन्थों को देखने से भी ज्ञात होता है कि कभी प्रचलित अग्निपुराण से पृथक् (चाहे सर्वथा भिन्न न हो) कोई अग्निपुराण विद्यमान था, क्योंकि निबन्धग्रन्थों में उद्धृत अग्निपुराण के श्लोक प्रचलित अग्निपुराण में नहीं मिलते (अपेक्षाकृत अर्वाचीन निबन्धग्रन्थों में प्रचलित अग्निपुराण के श्लोक उद्धृत मिलते हैं)। प्रसिद्ध निबन्धग्रन्थकार वल्लाल सेन ने तो प्रचलित अग्निपुराण को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में एक अप्रामाणिक ग्रन्थ कहा है।[१]

अग्निपुराण को 'तामस' माना गया है (पद्मपु० ६।२६३।८१-८२)। पुराणों में ही कहा गया है कि तामस वह पुराण होता है जिसमें अग्नि अथवा शिव की महिमा का प्रधानतः प्रतिपादन किया गया हो (मत्स्यपु० ५३।६८-६९)। प्रचलित अग्निपुराण में अग्निदेवता के माहात्म्य के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया। इससे भी यह सिद्ध होता है कि प्रचलित अग्निपुराण से भिन्न कोई प्राचीनतर अग्निपुराण था जिसमें अग्निमहिमा का विशेषरूप से प्रतिपादन किया गया था।

उपलब्ध प्राचीनतर अग्निपुराण

हमारा सौभाग्य है कि अग्निपुराण के पुराणोक्त लक्षण जिसमें घटते हों ऐसे एक अग्निपुराण का हस्तलेख प्राप्त हो गया है। इसका हस्तलेख एसियाटिक

---

३२ से अधिक अक्षर हैं। कितने ही बड़े बड़े मन्त्र हैं, जिनमें ५० से भी अधिक अक्षर हैं। ऐसे स्थलों में ३२ अक्षरों को एक श्लोक मानकर ही गणना की जाती है। अग्निपुराण के आनन्दाश्रम संस्करण में श्लोकपरिमाण ११४५७ कहा गया है। प्रत्येक अध्याय के श्लोकों को गिनकर यह संख्या दी गई है—ऐसा प्रतीत होता है। यह गणना श्लोकों की संख्या को दिखाती है, श्लोकों के परिमाण को नहीं।

१. तार्क्ष्यं पुराणमपरं ब्राह्ममाग्नेयमेव च।
दीक्षाप्रतिष्ठापाषण्डमुक्तिरत्नपरीक्षणैः ॥
मृषावंशानुचरितैः कोशव्याकरणादिभिः
असंगतकथाबन्ध - परस्परविरोधितः।
इत्यादि। वल्लालसेन-कृत दानसागर-ग्रन्थ के ये श्लोक डा० हाजरा कृत आग्नेयपुराण-सम्बन्धी लेख में उद्धृत हुये हैं।
(इस लेख के विषय में अगली टिप्पणी देखें)।

सोसायटी (कलकत्ता) में है और वह्निपुराण नाम से अभिहित हुआ है। निबन्ध-ग्रन्थों में 'आग्नेयपुराण' नाम से जो उद्धरण मिलते हैं, वे इस पुराण में मिल जाते हैं। इस पुराण में तान्त्रिक प्रभाव अणुमात्रा में नहीं है। इसमें अग्निमाहात्म्य का प्रतिपादन है। पर इसमें भी ईशानकल्प का उल्लेख नहीं है जिससे सिद्ध होता है कि यह आग्नेय-पुराण (प्रचलित अग्निपुराण से प्राचीन होने पर भी) वह पुराण नहीं है जो मत्स्य-आदि-पुराणकारों के द्वारा लक्षित हुआ है। यह भी हो सकता है कि इस आग्नेयपुराण से ईशानकल्प का वृत्तान्त च्युत हो गया है। प्रचलित अग्निपुराण के साथ इस आग्नेयपुराण का तुलना-मूलक अध्ययन करके तथा आग्नेय पुराण पर सर्वांगीण विचार करके डा० आर० सी० हाजरा ने एक विद्वत्-प्रशंसित निबन्ध प्रकाशित किया है।[१] अग्निपुराण के विषय में विशेष जिज्ञासुओं को यह निबन्ध अवश्य देखना चाहिये।

प्रचलित अग्निपुराण का वैशिष्ट्य

उपर्युक्त आग्नेय पुराण के अतिरिक्त अन्य भी अग्निपुराण (कथंचित् सदृश) थे—यह निश्चित है। चूंकि ये अनुपलब्ध हैं, अतः इन पर कुछ विचार नहीं किया जा सकता। आग्नेयपुराण पर भी विवाद करना व्यर्थ है, क्योंकि यह अभी तक अमुद्रित है।

अग्निपुराण के नाम से जो पुराण आजकल प्रचलित है (जिसके संस्करण आनन्दाश्रम एवं वेंकटेश्वर प्रेस से देवनागरी लिपि में तथा कलकत्ता के वङ्गवासी प्रेस से बंगलालिपि में प्रकाशित हुये हैं), उस पुराण के विषय में हम मुख्य रूप से कुछ चर्चा करना चाहते हैं।

प्रचलित अग्निपुराण (जो मूलतः अग्नि-वसिष्ठ संवाद में है) अपने को 'विद्या-सार' कहता है (१।६, १।७, १।१३)। इस पुराण में सभी विद्याएँ प्रदर्शित हुई हैं—यह ३८३।५२ में कहा गया है। अग्निदेवता से उपदेश पाने के बाद वसिष्ठ स्वयं भी व्यास को कहते हैं कि 'मैं दोनों प्रकार के ब्रह्म को कहूँगा' (१।८)। इन कथनों से ज्ञात होता है कि इस पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—'नानाविध विद्यायें'। पुराणपरम्परा में प्रसिद्ध 'पञ्चलक्षण' (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंश्या-

---

१. Our Heritage (Vol I तथा II) में प्रकाशित Studies in the genuine Āgneyapurāṇa alias Vahni-purāṇa शीर्षक लेख द्र०। All-India Kāshirāj Trust द्वारा प्रकाशित Dr. R. C. Hazra Commemoration Volume, part I में यह लेख अन्तर्भूत है।

नुचरित; वंशानुचरित शब्द असंगत है) इस पुराण में गौण हैं, यद्यपि इन पांच विषयों का प्रतिपादन भी विभिन्न अध्यायों में मिलता है। अग्निपुराण का गौरव विविध विद्याओं का प्रतिपादन करने में ही है। गरुड़ एवं नारदीय पुराणों में भी विद्याओं का विवरण मिलता है, पर अग्निपुराण में यह विवरण अधिक मात्रा में है—यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

अग्निपुराण के विषयों का क्रमबद्ध निर्देश

अग्निपुराण में जिस क्रम के अनुसार विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उसका एक स्पष्ट विवरण नारदीयपुराण (पूर्वार्ध ९९।१-२२) में मिलता है। नारदीय-पुराणोक्त क्रम के साथ प्रचलित अग्निपुराण का विषयक्रम सर्वथा समान नहीं है।[१] इससे यह अनुमित होता है कि सूचीकार ने जिस अग्निपुराण को देखा था वह प्रचलित अग्निपुराण से थोड़ा-बहुत भिन्न था। सूचीकार के द्वारा दृष्ट अग्निपुराण ने पुनः संपादित (परिवर्तन-परिवर्धन-परिवर्जन से युक्त) होकर वर्तमान अग्निपुराण का रूप लिया है—यह कहना असंगत नहीं है।

प्रचलित अग्निपुराण में जिन विषयों की चर्चा की गई है, उन विषयों का क्रमबद्ध निर्देश अग्निपुराण के ३८३ अध्याय (अन्तिम अध्याय) में किया गया है (श्लोक ५२-६४)। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूची प्रचलित अग्निपुराण को देखकर लिखी गई है और पुराण के अन्तिम अध्यायके रूप में इस सूची को रखा गया है। सूची-रचना के बाद भी पुराण में ईषत् परिवर्तन हुआ है, क्योंकि सूची में पूर्वमीमांसा और न्यायविस्तर का उल्लेख है (श्लोक ६०), पर ये विषय प्रचलित अग्निपुराण में नहीं मिलते।

---

१. सूची में रामोक्त नीति (अग्नि० २३८-२४२) के बाद रत्नलक्षण कहा गया है, जो अ० २४६ में है। पर अ० २४३-२४४ में पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण आदि कहे गये हैं, जिनका निर्देश सूची में नहीं है। रत्नलक्षण (अ० २४६) के बाद धनुर्विद्या का उल्लेख किया गया है जो २४९-२५२ अध्यायों में है। पर अ० २४७ -२४८ में वास्तुपूजा का विधान है जो सूची में नहीं है। व्यवहार (अ० २५३-२५८) के बाद देवासुरविमर्द का उल्लेख है जो अ० २७६ में है। अ० २५९-२७५ में चतुर्वेदविधान, पूजा, वेदशाखा, पुराण, वंश आदि कथित हुये हैं; इन विषयों का निर्देश सूची में नहीं है।

अग्निपुराण का रचनाकाल

प्रत्येक पुराण का रचनाकाल सामान्यतः इतना विवादास्पद है कि 'भूमिका' में इस पर विचार नहीं किया जा सकता। सामान्य रूपसे यह कहा जा सकता है कि चूंकि वल्लालसेन (ईसवीय १२वां शती का मध्य) को प्रचलित अग्नि-पुराण ज्ञात था, अतः यह पुराण उनसे कई शताब्दियों से पहले प्रणीत हुआ था। 'कितनी शताब्दियों से पहले' इसका अवधारण करना दुष्कर है। आधुनिक गवेषक विद्वानों का अनुमान है कि अग्निपुराण का रचनाकाल ईसवीय सप्तम शताब्दी के बाद का है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह पुराण ईसवीय नवम शताब्दी में या उससे कुछ काल बाद रचित हुआ था।[1]

इस विषय में यह स्पष्टतया ज्ञातव्य है कि नवमशताब्दी अथवा उससे किंचित् पूर्व या पश्चात् काल की रचना होने पर भी अग्निपुराण के सभी श्लोक अग्निपुराण-रचना-काल में ही रचित हुये हैं---ऐसा नहीं समझना चाहिये। 'पुराण-रचना-काल' का अर्थ है---पुराण के अन्तिम सम्पादन का काल---यद्यपि सम्पादित सामग्री सम्पादनकाल की ही है, ऐसी बात नहीं। इसमें अणुमात्र संशय नहीं है कि अग्निपुराण के अनेक प्रकरण प्राचीन-प्राचीनतर ग्रन्थों के आधार पर (बहुधा उन ग्रन्थों के वाक्यों का ही प्रयोग कर) देश-काल-संप्रदायानुसार अल्प या अधिक परिवर्तन (जिसमें परिवर्धन एवं परिवर्जन दोनों हैं) के साथ लिखे गये हैं। विद्वानों का कहना है कि इस पुराण का तान्त्रिक कर्म-प्रतिपादक अंश अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। रचनाकाल के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है।

अग्निपुराणोक्त विषय

चूंकि अग्निपुराण अपना परिचय विविध विद्याओं के संग्राहक के रूप में देता है इसलिए इस पुराण में प्रतिपादित विषयों पर विचार करना हम सर्वाधिक आवश्यक समझते हैं। प्रस्तुत भूमिका में इन विषयों पर विस्तृत विचार करना संभव नहीं है। हम यहां पुराणोक्त कुछ विशिष्ट बातों का ही उल्लेख करेंगे, जिससे पाठकों का ध्यान इन विषयों पर आकृष्ट हो।

---

१. द्रष्टव्य P. V. Kane कृत History of Sanskrit Poetics (पृ० ९); J. R. A. S. १९२३ पृ० ५२७-५४९ में प्रकाशित डॉ० सुशील-कुमार दे का निबन्ध; Dr. R. C. Hazra कृत Puranic Records ग्रन्थ (पृ० १३८), J A. H. R. S. भाग १०, पृ० १२७-१३४ में S. B. Chowdhury का निबन्ध आदि।

(अध्याय १) ऋषियों के प्रश्न के उत्तर में सूत ने शब्दब्रह्म (ऋग्वेदादि-शास्त्र) एवं परब्रह्म (ब्रह्मविद्या) रूप द्विविध विद्या का परिचय दिया है (५-९)। यह भी कहा गया है कि यह मत 'आथर्वणी श्रुति' का है। यह कथन सत्य है, क्योंकि अथर्ववेदीय मुण्डक उपनिषद् (१।४-५) पुराणवाक्य का आधार है। १५-१८ श्लोकों में १८ अपरा विद्याओं के नाम हैं—चार वेद, छह अङ्ग, ज्योतिष, छन्दःशास्त्र (छन्दः है अभिधान=नाम जिसका वह छन्दोऽभिधान-छन्दः शास्त्र), मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गान्धर्व, धनुर्वेद तथा अर्थशास्त्र। यहां यह ध्यान देने की बात है कि उपर्युक्त मुण्डकवाक्य में चार वेद और छह अङ्गों का ही निर्देश है, मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि आठ शास्त्रों का नहीं। यह निश्चित है कि पुराणवाक्य का आधार मुण्डक उपनिषद् है (अग्नि १।१७ख, १८ के साथ मुण्डक १।१।५-६ तुलनीय हैं) और यह भी निश्चित है कि पुराणोक्त विद्यागणना (अष्टादश विद्या-गणना) परम्परा-प्रसिद्ध है। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि पुराणकार ने मुण्डक उपनिषद् को अपने आधार के रूप में क्यों कहा।

प्रतीत होता है कि मुण्डक उपनिषद् का ऐसा भी कोई पाठ प्रचलित था जिसमें चार वेद और छह अंगों के अतिरिक्त मीमांसा आदि की गणना भी की गई थी और अग्निपुराणकार ने उस पाठ के अनुसार उपर्युक्त मत को कहा है। यह मत काल्पनिक नहीं है क्योंकि न्यायवार्त्तिक की भूमिका में पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि उन्होंने मुण्डक का ऐसा हस्तलेख देखा है जिसमें अपरा-विद्या की गणना में वेदवेदाङ्गों के साथ मीमांसादि शास्त्रों के नाम भी गिनाये गये हैं (पृ० २०)।[1]

(अ० २-१६) विभिन्न अवतारों का विवरण इन अध्यायों में दिया गया है।[2] मत्स्यावतार के प्रसंग में कृतमाला नदी का उल्लेख है, जो भागवत (८।२४।१२)

---

१. मुण्डक उपनिषद् के किसी पाठ में मीमांसादि का उल्लेख था, यह मुण्डक उपनिषद् के शांकरभाष्य की नारायणकृत दीपिका टीका से भी जाना जाता है। यह बात दूसरी है कि टीकाकार नारायण ने उस पाठ को प्रक्षिप्त माना है। प्रबोध-चन्द्रोदय (कृष्णमिश्रकृत) की चन्द्रिका टीका से भी ज्ञात होता है कि मुण्डक उपनिषद् के किसी पाठ में मीमांसा, इतिहास-पुराण आदि का उल्लेख था (पृ० ३१)। अग्निपुराण का मत कितना सुदृढ़ है—यह उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है।

२. इन अवतारों के स्वरूपादि के विषय मे (मुख्यतया पुराणवाक्यों का आश्रय करके) रूपगोस्वामी ने संक्षेपभागवतामृतग्रन्थ (विद्याभूषणकृत टीका

में भी मिलता है, यद्यपि इस कथा के वैदिक मूल (शतपथ ब्राह्मण १।८।१।१) में इस नदी का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भवत: अग्निपुराण का आधार भागवत-पुराण ही है (महाभा० वनपर्व में इस प्रसंग में चीरिणी नदी का उल्लेख है, १८७।६)। मत्स्य ने वेदापहरणकारी हयग्रीव दानव का भी वध किया था, यह २।१६-१७ में कहा गया है। कूर्मावतार की घटना वाराहकल्प की है, यह २।१७ में कहा गया है। अ० ४ में वराह, नरसिंह, वामन तथा परशुराम (४।१६ में 'राम' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो इनका प्रकृत नाम है; परशुयुक्त राम=परशुराम) की कथाएं हैं। ये कथाएं अन्यान्य पुराणों में भी हैं; अग्निपुराण के विवरण में कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

५-११ अध्याय में रामावतार की कथा है। यहां का विवरण सप्त-काण्डयुत वाल्मीकि-रामायण पर पूर्णतया आधारित है। पुराण के कितने ही वाक्यांश हैं जो रामायण में अविकल रूप से या ईषत् पाठभेद के साथ मिलते हैं। यह लक्षणीय है कि गुह का उल्लेख (६।३३) रहने पर भी शबरी का कोई उल्लेख अग्निपुराण में नहीं मिलता। अ० १२ में कृष्णावतार का वर्णन है। यहां 'हरिवंशं प्रवक्ष्यामि' (१२।१) कहा गया है; हरिवंश का अर्थ है—हरि का वंश, न कि हरिवंश नामक पुराण। कृष्ण का जो चरित विष्णुपुराण (अ० ४), ब्रह्मपुराण (अ० १८०-२१२), हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व) और भागवत में है, उसका संक्षिप्त-सार यहां कहा गया है। कृष्णानुरक्त गोपियों का उल्लेख १२।२३ में है, यद्यपि राधा का नाम नहीं है।

अ० १३-१५ में भारत-कथा (महाभारत की मूल घटना) दी गई है—'भारतं संप्रवक्ष्यामि' कहा गया है (१३।१), 'महाभारतम्' नहीं। इससे यह अनुमित हो सकता है कि २४ सहस्रश्लोकमय जो भारतसंहिता थी, उसका सार यहां दिया गया है। पर यह अनुमान सुदृढ़ नहीं है, क्योंकि अग्निपुराण के रचनाकाल में भारतग्रन्थ प्रचलित था—ऐसा मानना कठिन है। यह हो सकता है कि परम्परा में भरतवंशियों की जो कथा ज्ञात थी, उसके आधार पर यह श्लोकबद्ध प्रकरण लिखा गया है। गीता का उपदेश अ० १४ में लक्षित हुआ है।

अ० १६ में बुद्ध और कल्कि का वर्णन है। बुद्ध को दैत्यमोहकर एवं शुद्धोदनसुत कहा गया है। कलियुगान्त में आविर्भूत होने वाले कल्की के प्रसंग में दो

सहित) में तथा सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृतग्रन्थ में विशद विचार किया है।

बातें कही गई हैं जो अस्पष्ट हैं—(१) कलियुगान्त में वाजसनेयक वेद की १५ शाखाओं की स्थिति[1] तथा (२) याज्ञवल्क्य को कल्की का पुरोहित मानना।

(अ० १७-२०) अ० १७ में जगत्-सृष्टि, अ० १८ में स्वायंभुवमनु (प्रथम मनु) के वंशजों के नाम तथा अ० १९ में कश्यप के वंशजों के नाम कहे गये हैं। १९।२३-२९ में राज्यप्रदान का विवरण (किसको किस विषय का अधिपति बनाया गया—इसका विवरण) है। यह विषय गीता (अ० १०) में भी है (अमुकों में मैं अमुक हूं—इस प्रकार का उल्लेख करके)। गीता में जहां 'मरीचिर्मरुतामस्मि' (१०।२१) कहा गया है, वहां पुराण में 'मरुतां वासवः प्रभुः' कहा गया है (१९।२४), प्रह्राद[2] को दानवाधिप कहा गया है (१९।२४), यद्यपि जातितः प्रह्लाद दैत्य है (दिति-गर्भज हिरण्यकशिपु के पुत्र होने के कारण)। गीता में उचित ही कहा गया है—प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम्' (१०।३०)। अ० २० में प्राकृत आदि सर्गों का उल्लेख तथा भृगु, मरीचि आदि के वंशो का विवरण है। उपर्युक्त सभी विषय अन्यान्य पुराणों में भी हैं। अग्निपुराणगत विवरण अत्यल्प है तथा इस विवरण का कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

(अ० २१-१०६) अनेक स्मार्त एवं तान्त्रिक कर्मों का विवरण इन अध्यायों में मिलता है। यह विवरण तन्त्र एवं स्मृतिग्रन्थों पर आधारित है। आधारग्रन्थों की तुलना में पुराण का विवरण अनेकत्र संक्षिप्त एवं सामान्य है। इन अध्यायों में विभिन्न देवताओं की सामान्य पूजा (स्नान आदि कर्मों के वर्णनों के साथ) तथा प्रतिष्ठाविधि (वास्तुपूजा, प्रसाद में देवतास्थापन, प्रतिमाओं के लक्षण, शालिग्रामों के लक्षण, शान्तिकर्म, अधिवास, ध्वजारोपण, होम, दीक्षा आदि के साथ) कही गई हैं।

यहां कुछ विशिष्ट बातें मिलती हैं, यथा—हयशीर्ष आदि २५ तन्त्रों के नाम (अ० ३९), स्मार्तकर्मों के प्रसंग में अनेक वैदिक मन्त्र, सूक्त आदि का

---

१. अग्निपुराण के आनन्दाश्रम संस्करण के संपादक ने वेदशाखापरक वाक्य के पाठ को सन्दिग्ध माना है (प्रश्नज्ञापक चिह्न का प्रयोग कर के)। इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि हरिवंश के कलियुग-विवरण में कहा गया है—सर्वे वाजसनेयिनः (३।३।१२)। इस पर टीकाकार नीलकण्ठ कहते हैं—'शाखान्तरलोपात्। तेन वेदत्रयसाध्यो यज्ञ उत्सन्नो भविष्यति इति भावः। इदानीमेव पश्चिमदेशे तथा दर्शनात्'।

२. अग्निपुराण में 'प्रह्राद' ऐसा रकारघटित मुद्रित पाठ है। यह पाठ अन्यत्र भी मिलता है।

उल्लेख[1] (अ० ५६, ५८, ६०, ६१, ६२, ६४, ६६, ६७) है; ये सभी मन्त्र आदि वैदिक ग्रन्थ एवं सूत्रग्रन्थों में मिल जाते हैं। पुस्तक लेखन की चर्चा ६३।१३-१६ में है। यहां रौप्य आधार में स्वर्णनिर्मित लेखनी से नागराक्षर लिखने का उल्लेख है। 'गर्गविद्या' शब्द का प्रयोग ६५।७ में है; इसका अर्थ है—गृह-प्रासादादि निर्माण का शास्त्र। वास्तुशास्त्र से तथा बृहत्संहिताग्रन्थ से ज्ञात होता है कि गर्ग इस विद्या के आचार्य थे।

दीक्षा के प्रसंग में अनेक तान्त्रिक मन्त्र भी उद्धृत हुये हैं। (मन्त्रों का पाठ तन्त्रग्रन्थ के आधार पर कहीं-कहीं संशोधनीय है)। तन्त्र की कई गूढ़ बातें (जैसे शक्तिपात, ८८।५६-६१) यहां कही गई हैं।

(अ० १०७-१२०) स्वायंभुव मनु (प्रथम मनु) का वंश, तीर्थ एवं भुवन-कोश यहां प्रतिपादित हुये हैं। स्वायंभुव मनु के वंशजों ने पृथिवी को सात द्वीपों में बांटकर राज्य किया था—यह पुराणप्रसिद्ध मत है। इन द्वीपों (जम्बू आदि) के वर्ष, नदी, पर्वत आदि का विवरण पुराणीय भुवनकोश का मुख्य विषय है। अग्निपुराण का विवरण संक्षिप्त है। यहां यह महत्त्वपूर्ण सूचना दी गई है कि स्वायंभुववंशीय भरत के नाम से इस देश का नाम भारत (वर्ष) पड़ा था (१०७। १२)। प्रायः सभी पुराणों में यह मत मिलता है। शकुन्तलापुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ था—यह मत पुराणों द्वारा कथमपि समर्थित नहीं होता है—यह ज्ञातव्य है। भरत का उल्लेख १०७ अ० में हे, उनका चरित ३८० अ० में द्रष्टव्य है। इस पुराण में भुवनकोश का प्रारम्भिक विवरण १०७-१०८ में दिया गया है; अ० ११८-१२० में भारतवर्ष, प्लक्ष आदि द्वीप तथा पाताल आदि का विवरण दिया गया है। अग्निपुराण के विवरण में कोई विशिष्ट बात नहीं मिलती।

अग्निपुराण में तीर्थपरक विवरण विस्तृत नहीं है। अ० १०९ में तीर्थों की गणना, अ० ११० में गंगा का माहात्म्य, अ० १११ में प्रयागमाहात्म्य, अ० ११२

---

१. अग्निपुराण के सभी संस्करणों में ये मन्त्र आदि कहीं-कहीं भ्रष्टरूप से मुद्रित हुये हैं। २५।२९ में यज्ञ को 'सप्तरूप' कहा गया है, पर छह ही रूपों के नाम कहे गये हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्यीम (२८-२९)। यहां अग्निष्टोम के बाद अत्यग्निष्टोम नाम होना चाहिये। इन अध्यायों में जिन वैदिक सूक्तों के नाम कहे गये हैं (श्रीसूक्त, मैत्रक, वृषाकपि आदि) उनके परिचय के लिए मेरा 'पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ (अ० २, परि० ५) द्रष्टव्य है।

में वाराणसी-माहात्म्य, अ० ११३ में नर्मदामाहात्म्य, अ० ११४-११६ में गया-माहात्म्य कहे गये हैं। इन अध्यायों के कुछ श्लोकों का तात्पर्य स्पष्टीकरणीय है (यथा १११।४)[1] कहीं-कहीं यात्राविधि भी कही गई है। वाराणसी-माहात्म्य में अष्ट गुह्येश्वर की गणना है (११२।३-५)। पर गिनने पर सात नाम होते हैं। हिन्दी-अनुवादक ने भूमि और चण्डेश्वर को दो नाम मानकर आठ संख्या की पूर्ति की है, जो विचारणीय है। गयातीर्थ के प्रसंग में महाबोधितरु का उल्लेख है (११५।३२)। अन्य पुराणों में भी इसी प्रकरण में इसका उल्लेख मिलता है। गया के प्रसंग में ही चार प्रकार की मुक्ति कही गई है।"[2]

कात्यायन द्वारा प्रोक्त श्राद्धकल्प का उल्लेख ११७।१ में है। चूंकि गयातीर्थ के साथ श्राद्ध का निकटतम सम्बन्ध है, अतः गयातीर्थ के बाद श्राद्ध का प्रसंग किया गया है—ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। कात्यायन नामक ऋषि का कोई श्राद्धसूत्र था—यह वैदिकपरम्परा में प्रसिद्ध है, निबन्धग्रन्थों में इस ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत हुये हैं।

(अ० १२१-१४३) फलितज्योतिष, युद्धजयार्णव, नानाविध, मन्त्र औषधि एवं तान्त्रिक कर्म इन अध्यायों में कहे गये हैं। अ० १२३-१३९ में युद्धजयार्णव है; युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए जिन तान्त्रिक कर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, वे यहां कहे गये हैं। युद्धजय र्णव नामक कोई ग्रन्थ अवश्य था, क्योंकि निबन्ध-ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। यहां जो कुब्जापूजा और त्वरिता-पूजा का उल्लेख है, उनका विशेष विवरण तन्त्रग्रन्थों में द्रष्टव्य है (द्र० कृष्णानन्द आगमवागीश-कृत तन्त्रसार)। इन अध्यायों में कुछ विशिष्ट बातें कहीं गई हैं— (१) जरामृत्युनाशक ३६ औषधियों की एक सूची १४१।१-५ में दी गई है,

---

१. गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः॥ (१११।४)। जघन एवं उपस्थ से कौन-सा सादृश्य विवक्षित है—यह निर्धारणीय है।

२. ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥ (११५।५ ख-६ क)। यहां प्रकृत पाठ 'गोग्रहे मरणं' (किसी के द्वारा बलपूर्वक गो का ग्रहण होने पर उसका विरोध करने वाले का जो मरण होता है वह 'ग्रोग्रहे मरणम्' है)। 'गोगृह में मरण' कोई उदात्त कर्म नहीं है। यह श्लोक अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है जहां 'ग्रोग्रहे मरणम्' पाठ है।

(२) अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि नक्षत्रों के संक्षिप्त नाम (अ, भ, कृ, रो आदि) १३६।७-८ में कहे गये हैं।[१]

(अ० १५०) स्वायंभुव, स्वारोचिष आदि चौदह मन्वन्तरों का जैसा विवरण अन्य पुराणों में मिलता है, वही यहां भी है। अध्यायान्त में एक वेद के चतुर्धाकरण का तथा ऋक् आदि चार वेदों की शाखाओं का अतिसंक्षिप्त उल्लेख मिलता है। यहां यजुर्वेद की २७ शाखायें हैं—ऐसा कहा गया है (१५०।२७)। इस मत का मूल अन्वेषणीय है। वेदशाखाविवरणपरक चरणव्यूहग्रन्थ में 'यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतिभेदा भवन्ति' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'सप्तविंशतिभेद', मानने वाली भी कोई वैदिक परम्परा थी। अथर्ववेदीय शाखा के प्रसंगमें पिप्पलाद आदि शाखाकार आचार्यों का उल्लेख है (पैप्पलादीन् सहस्रशः, १५०।३०; 'पैप्पलादीन्' के स्थान पर 'पिप्पलादीन्' होना चाहिए—'पिप्पलाद' ही ऋषि का नाम है, पैप्पलाद नहीं)।[२]

(अ० १५१-२१७) वर्णाश्रम धर्म तथा व्रत आदि का विशद विवरण इन अध्यायों में मिलता है। इस विवरण में कोई वैशिष्ट्य नहीं है; मनु, याज्ञवल्क्य आदि के वाक्य अविकलरूप से या अल्पाधिक परिवर्तन के साथ यहां मिलते हैं। कहीं-कहीं भ्रष्ट पाठ भी है।

अग्निपु० में 'पञ्चधा' धर्म' कहा गया है (१६६।१)। वर्ण, आश्रम, वर्णाश्रम, गुण और नैमित्तिक रूप पांच भेद स्वीकृत हुये हैं। यह दृष्टि परम्परास्वीकृत है (द्र० मनुस्मृति २।५ का मेधातिथिकृत भाष्य)। यह ज्ञातव्य है कि पुराणों में वर्णित धर्मकृत्य पृथक्-पृथक् शाखा पर प्रायेण प्रतिष्ठित होता है। यही कारण है कि कर्मानुष्ठानसम्बन्धी पौराणिक मतों में कभी-कभी भिन्नता पायी जाती है; उदाहरणार्थ अग्निपुराण में बृहस्पतिग्रह का मन्त्र 'बृहस्पते अतियदर्यो...' (ऋग्वेद २।२३।१५) है (१६४।७), जबकि मत्स्यपुराण (१३।३५) में 'बृहस्पते परिदीया...' (ऋग्वेद १०।१०३।४) है।

---

१. संक्षेपीकरण की ऐसी प्रवृत्ति अन्यत्र भी देखी जाती है। आषाढ़ी-कार्तिकी-माघी-वैशाखी (पूर्णिमा) के लिए 'आ-का-मा-वै' शब्द का प्रयोग स्मार्त ग्रन्थकारों ने किया है।

२. अथर्ववेद की दो शाखायें आजकल प्रचलित हैं—शौनक तथा पिप्पलाद। पुराणों में अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के निर्देश में पिप्पलादशाखा के प्रथम मन्त्र का ही उल्लेख सर्वत्र किया गया है। यह ज्ञातव्य है (द्र० पुराणगत-वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० १३९-१४०)।

व्रत के प्रसंग में यह कहा गया है कि व्रत को क्यों 'तपः' या 'नियम' कहा जाता है (१७५।२-३)। इस पुराण में तिथि के अनुसार व्रतों का विवरण दिया गया है और बाद में 'नक्षत्रव्रत', 'दिवसव्रत' आदि का विवरण है। प्रत्येक व्रत के साथ सम्बन्धित पूजा, उपवास आदि भी उल्लिखित हुये हैं। दानों का विवरण अ० २१० में है; प्रकरण के अन्त में सन्ध्या एवं गायत्री का विवरण दिया गया है।

गायत्री का अर्थ अ० २१५ में सविस्तार दिया गया है। इस प्रसंग में एक विशेष बात ज्ञातव्य है। गायत्री मन्त्र (ऋग्वेद ३।६२।१०) में जो 'प्रचोदयात्' शब्द है, वह लेट्लकार का रूप है, विधिलिङ का नहीं, पर अग्निपुराण में 'प्रचोदयात्' की व्याख्या 'प्रेरयेत्' शब्द से की गई है, जो विधिलिङ का रूप है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकार को यहां भ्रम हुआ है।[1]

(अ० २१८-२४२) राजनीति-राजधर्म का प्रतिपादन इन अध्यायों में किया गया है। अ० २१८-२३७ में वक्ता पुष्कर हैं और श्रोता राम अर्थात् परशुराम (भार्गवराम) हैं, दाशरथि राम नहीं। इन अध्यायों में राजा का अभिषेक, सहाय-संपत्ति, भृत्य आदि के कर्त्तव्य, दुर्ग, राज्यपालन, अन्तःपुर-व्यवस्था, साम-दान-दण्ड-भेद, युद्ध, शकुन (शुभाशुभसूचक चिन्ह), षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह आदि), तथा प्रात्यहिक राजकर्म आदि का विशद विवरण दिया गया है। अ० २३८-२४२ पर्यन्त राम-प्रोक्त राजनीति है (लक्ष्मण के प्रति प्रोक्त)। इसमें सात अंग (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र आदि) एवं सन्धि आदि छह गुणों के साथ तीन शक्तियों (प्रभाव-मन्त्र-उत्साह-शक्ति) राजव्यसन, सामादि उपाय एवं षड्विध बलों की विस्तृत चर्चा की गई है।

दोनों नीतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रामनीति कामन्दकीय-नीतिसार का अतिसंक्षिप्त रूप है; तथा पुष्करोक्त नीति की अपेक्षा इसमें कौटिल्य की चिन्ताधारा अधिक मात्रा में प्रतिफलित हुई है।[2]

---

१. देवीभागवत की टीका में नीलकण्ठ ने भी गायत्रीमन्त्रस्थ 'प्रचोदयात्' को विधिलिङ का रूप ही समझा है, क्योंकि वे कहते हैं—

'प्रचोदयात् प्रेरयेत् प्रार्थनायां लिङ', (टीकारम्भ में भागवतस्वरूपविचारप्रकरण द्रष्टव्य)।

२. दशरथ शर्मा के Political thought and practice in the Agnipurāṇā शीर्षक लेख (Purāṇa Vol. III, pp. 23-37 २५-३७) में इन दोनों नीतियों पर विशद चर्चा की गई है।

(अ० २४३-२४५) अ० २४३-२४४ में समुद्र नामक आचार्य के द्वारा प्रोक्त स्त्री-पुरुष -लक्षणशास्त्र का सार कहा गया है। यह सामुद्रिक विद्या कहलाता है। शरीर का कौन अंग किस प्रकार का होने पर किस भाव (शुभ-अशुभ) का सूचक होता है—यह इस शास्त्र में दिखाया जाता है। यह 'अङ्गविद्या' बहुत प्राचीन है। पाणिनि के गणपाठ (४।३।७३) में इस विद्या का निर्देश है। लक्षणप्रकाश आदि ग्रन्थों में इस शास्त्र के अनेक वाक्य उद्धृत मिलते हैं। अ० २४५ में चामर, खड्ग आदि के विषय में कई ज्ञातव्य बातें कही गयी हैं; यथा किस देश के खड्ग का वैशिष्ट्य क्या है, यह २४५।२२ में उल्लिखित हुआ है।

(अ० २४६-२४८) विभिन्न दलों के लक्षण, वास्तु (गृह-निर्माणार्थ भूमि) का लक्षण, तथा पूजा में उपयोगी पुष्पों का विवरण यहां कहे गये हैं।

(अ० २४९-२५२) इन अध्यायों में धनुर्वेद का स्पष्ट विवरण दिया गया है। वैशम्पायन आदि के प्राचीन धनुर्वेदविषयक ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। व सिष्ठी धनुर्वेदसंहिता प्रचलित है, पर वह अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता (इस ग्रन्थ का बंगला-अनुवाद प्रकाशित हो चुका है)। कोदण्डमण्डन-ग्रन्थ बंगलालिपि में सानुवाद प्रकाशित है, पर यह बहुत ही अर्वाचीन ग्रन्थ है। युक्तिकल्पतरु आदि कुछ ग्रन्थों में इस शास्त्र का अल्प विवरण मिल जाता है। ऐसी स्थिति में अग्निपुराणोक्त धनुर्वेद महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहां का विवरण अपेक्षाकृत विशद है। कामन्दकीय नीतिसार का कुछ प्रभाव भी पुराणोक्त विवरण में देखा जाता है। चतुरङ्गबल प्रसिद्ध है, अग्निपुराण में अस्त्रहीन योद्धा को पञ्चम बल माना गया है। योद्धाओं के आसनों के नामों में कुछ भिन्नता मिलती है।

(अ० २५३-२५८) स्मृतिशास्त्रीय व्यवहार-प्रकरण का एक सारवान् विवरण इन अध्यायों में दिया गया है। जिन विषयों को लेकर विवाद, हिंसा आदि कर्म किये जाते हैं, वे 'व्यवहार' के विषय हैं। ऋण, साक्ष्य, संपत्तिविभाग, सीमा, परुषवाक्य आदि से सम्बन्धित व्यवहार व्यवहारप्रकरण में विचारित होते हैं। अग्निपुराण का यह प्रकरण याज्ञवल्क्यस्मृतिगत व्यवहारप्रकरण पर अधिकांशतः आधारित है; कहीं-कहीं नारदस्मृति का भी अनुसरण किया गया है—ऐसा विद्वानों का कहना है।[1]

---

1. The vyavahāra portion of the Purāṇa leaves no doubt that it is borrowed partly from the Nārada-smrti and largely from the Yājñavalkya-smrti (द्र० Purāṇa पत्रिका के वर्ष २० में S. C. Banerjee का लेख 'Vyavahāra portion of the Agni

(अ० २५९-२६२) ऋग्-यजुः-साम-अथर्ववेदों के मन्त्र-सूक्त-अनुवाक आदि का विनियोग (कर्मों में प्रयोग) इन अध्यायों में दिखाया गया है। यह प्रकरण ऋग्विधान आदि ग्रन्थों पर प्रतिष्ठित है। खेद है कि इन अध्यायों के पाठ अनेकत्र भ्रष्ट हो गये हैं।[१] कुछ शब्द अस्पष्ट हैं, यथा—एकचक्रा (२६०।८१), तनूनपाग्ने सदिति (२६०।१५)। विनियोग के लिए ऋषि, देवता, छन्द का ज्ञान चाहिए—इस वैदिक दृष्टि का उल्लेख २६२।२५ में किया गया है।

(अ० २६३-२७०) उत्पातशान्ति, पूजा, वैश्वदेव-बलि, स्नान, होम, नीराजन (एक प्रकार का कर्म जो युद्ध से पहले राजा के द्वारा अनुष्ठित होता है) आदि यहां कहे गये हैं। स्मृति आदि शास्त्रों में इन कर्मों का जो विवरण है, इस पर ही पुराण का विवरण आधारित है। कहीं-कहीं मन्त्रादि के पाठ में भ्रंश है। 'स्रावन्तीयं...'(२६३।२) का प्रकृत पाठ 'श्रायन्तीयं...' होगा। यह 'श्रायन्त इव सूर्यम्...इस सामवेदीय मन्त्र (२६७ स्वाध्यायमण्डल संस्क०) पर गायी जाने वाली गीति का नाम है। २६९।१४ में कुमुद, ऐरावत (ऐरावण पाठ भ्रष्ट है) आदि दिग्गजों के नाम कहे गये हैं (अमरकोश, दिग्वर्ग ५); इनको यहां 'देवयोनि' कहा गया है। अवश्य ही 'देवयोनि' पाठ भ्रष्ट है, क्योंकि अन्यान्य ग्रन्थों में भी कुमुद आदि को 'दिग्गज' ही कहा गया है।

(अ० २७१-२७२) वेद की शाखाओं तथा अट्ठारह पुराणों का विवरण यहां दिया गया है। चारों वेदों के मन्त्रों की संख्या एक लाख कही गयी है (२७१।१)। यह मत परम्परागत है, क्योंकि चरणव्यूह में 'लक्षं तु चतुरो वेदाः' कहा गया है। 'शत-साहस्र-संमित' (अर्थात् एक लाख परिमाण वाले) वेद का उल्लेख विष्णुपुराण ३।४।१ में मिलता है। यह गणना किस रीति से की गई है—यह अज्ञात है। ऐसी एक प्रसिद्धि है कि वेद के ८०००० मन्त्र कर्मकाण्डपरक, १५००० मन्त्र उपासनापरक तथा ५००० मन्त्र ज्ञानपरक हैं। इस प्रसिद्धि की

---

purāṇa, पृ० ३९); काणे कृत History of Dharmaśāstra भाग १ पृ० १६२ भी द्रष्टव्य।

१. उभे पुमान...मन्त्र २५९।३३ में उक्त हुआ है, जिसका प्रकृत पाठ 'उभे पुनामि' है (द्र० ऋग्वेद १।१३३।१)। 'स्वस्ति पन्था' मन्त्र (२५९।५१) मन्त्र का प्रकृत पाठ 'स्वस्ति पन्थाम्' होगा (ऋग्० ५।५१।१५); या ओषधयः (२५९।८५) 'या ओषधीः' होगा; या सेना (२६०।३५) याः सेना' होगा (यजुर्वेद ११।७७), चत्वारि शृङ्गः (२६०।३८) 'चत्वारि शृङ्गाः' होगा (यजुः १७।९१); परिमे गामनेनेति (२६०।७७) 'परी मे' (यजुः ३५।१८) होगा।

संगति चिन्तनीय है। यहां ऋग्वेदीय मन्त्र के परिमाण के विषय में 'शतानि दश' (१००००) कहा गया है (२७१।२), जो प्रायः सत्य है।[१] ऋग्वेदीय ब्राह्मण के परिमाण के विषय में जो कहा गया है (ब्राह्मणं द्विसहस्रकम्), वह परीक्षणीय है। इस पुराण में ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा एवं शाङ्खायन शाखा का उल्लेख है (२७१।२)। वायु आदि पुराणों के शाखाप्रकरण में ये नाम नहीं मिलते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि ये दो शाखाएं कृष्णद्वैपायन व्यास से पहले काल की हैं, अतः वायु आदि पुराणों में इन दोनों के नाम नहीं लिये गए क्योंकि इन पुराणों में कृष्णद्वैपायन की परम्परा में कृत शाखाविभाग का ही विवरण दिया गया है। चारों वेदों की शाखा आदि के मुद्रित नामों में कई भ्रष्ट पाठ हैं।

मूल पुराणसंहिता (जिसको व्यास ने बनाकर लोमहर्षण को पढ़ाया) का उल्लेख २७१।११-१२ में मिलता है। छह आदिम पुराणाचार्यों के नामों के पाठ कुछ भ्रष्ट हो गये हैं[२]—शिशपायन शांशपायन होगा, कृतव्रण अकृतव्रण होगा।

यहां १८ पुराणों में प्रत्येक का जो श्लोकपरिमाण कहा गया है (२७२।१-२३) उसका पूर्णयोग ३४०००० (तीन लाख चालीस हजार) होता है—चार लाख नहीं। कुछ पुराणों के श्लोकपरिमाण सांशयिक हैं—पद्मपुराण का श्लोकपरिमाण १२००० कहा गया है, जो अन्यत्र नहीं मिलता। पद्मपुराण का जो प्रचलित रूप है, उसमें न्यून्याधिक ५०००० श्लोक निश्चयेन है। सम्भवतः पद्मपुराण के श्लोकपरिमाण का मुद्रित पाठ भ्रष्ट है।

(अ० २७३-२७८) सूर्य एवं सोम वंशों (ये दो राजवंश हैं) का धारावाहिक विवरण यहां दिया गया है। इस विवरण में अग्निपुराण का कोई वैशिष्ट्य नहीं है। यह विवरण प्राचीन प्रतीत नहीं होता। अनेक नये श्लोक बनाकर पुराणकार

---

१. तु० दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्य (शान्तिपर्व २४६।१४)। इसकी व्याख्या में नीलकण्ठ ने कहा है कि प्रकृतमन्त्रसंख्या दश सहस्र से कुछ अधिक है। इस विषय में अतिविस्तृत विचार के लिए पं० युधिष्ठिर मीमांसक-कृत 'ऋग्वेद की ऋक्संख्या' ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

२. इन छह पुराण प्रणेताओं एवं मूलपुराणसंहिता के विषय में विशद विवरण के लिए Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ (पृ० २१-२४) तथा पं० बलदेव उपाध्यायकृत पुराणविमर्श (पृ० ५८-६२) द्रष्टव्य हैं।

ने इस प्रकरण की रचना की है। कान्यकुब्ज एवं काशी वंश के विवरण में कई भ्रान्तियां लक्षित होती हैं।[१]

इन अध्यायों में कई नाम भ्रष्ट रूप से मुद्रित हुये हैं। एक उदाहरण लें—गङ्गायां शन्तनोर्भीष्मः काल्यायां चित्रवीर्यकः। कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वै चित्र-वीर्यके॥ (२७८।३६)। इन श्लोकों में 'काल्यायां' के स्थान पर 'काल्यां' पाठ होगा तथा 'वैचित्रवीर्यके' एक शब्द होगा।

यहां शकुन्तलापुत्र भरत के विषय में कहा गया है—दुष्यन्ताद् भरतोऽभवत्। शकुन्तलायां तु बली यस्य नाम्ना तु भारताः (२७८।६-७)। 'भारताः' का अर्थ है—'भारता जनाः'—भारत नामक जनसमुदाय (क्षत्रियगण)। इससे स्पष्ट है कि पुराणकार के अनुसार इस देश का 'भारत' नाम शकुन्तलापुत्र के नाम के अनुसार नहीं पड़ा। सभी पुराणों के अनुसार इस नाम का हेतु है—स्वायंभुव-मनुवंशीय भरत, जो इस भारतवर्ष के अधिपति थे।[२]

(अ० २७९-२८६) धन्वन्तरि ने सुश्रुत के प्रति जो आयुर्वेदविषयक सिद्धान्त कहा, वह यहां प्रतिपादित हुआ है। मनुष्य, अश्व तथा हस्ती के रोग, रोगों की चिकित्सा तथा अन्यान्य आवश्यक विषय संक्षेप-विस्तार के साथ कहे गये हैं। यह विवरण वाग्भट-कृत अष्टाङ्गहृदय पर मुख्यतया आधारित है।[३]

(अ० २८७-२९२) अङ्गराज लोमपाद (१८६।२४) के प्रति 'हस्तिशास्त्र-विद् पालकाप्य ने जो कहा, उसका सार यहां दिया गया है। पालकाप्य का ग्रन्थ प्रसिद्ध रहा है। उनका हस्त्यायुर्वेदपरक ग्रन्थ मुद्रित हुआ है। कुमारिल भट्ट के तन्त्रवार्त्तिक में इस ग्रन्थ का वाक्य उद्धृत हुआ है (पृ० २५९, आनन्दाश्रम संस्क०)।

अश्वायुर्वेद के दो वक्ता हैं—धन्वन्तरि (अ० २८८) तथा शालिहोत्र (२८९-२९१)। गजशान्ति (अ० २९१) के वक्ता भी शालिहोत्र हैं। अद्भुत-

---

१. द्र० Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ (पृ० ८०)।

२. यहां यह ध्यान देने योग्य है कि कालिदास ने भी शकुन्तला नाटक में शकुन्तलापुत्र भरत के विषय में यह नहीं कहा कि इस देश का नाम रत के नाम के अनुसार हुआ था।

३. अग्निपुराण के इन अध्यायों पर पूर्ववङ्ग-निवासी कविराज (वैद्य) गङ्गाधर (१७९८-१८८५ ई०) का एक भाष्य है। यह भाष्य अब अप्रचलित हो गया है। भाष्यकार ने चरक पर जल्पकल्पतरु-नामक सुप्रसिद्ध टीका लिखी है।

सागर ग्रन्थ में शालिहोत्र के मत उद्धृत हुये हैं। धन्वन्तरि द्वारा प्रोक्त गवायुर्वेद का विवरण अ० २९२ में मिलता है। यहां गोचिकित्सा के साथ गोपरक शान्ति-कर्म भी उक्त हुआ है।[1]

(अ० २३९-३२७) नानाविध (वैदिक एवं तान्त्रिक) मन्त्रों का प्रयोग, तथा मन्त्रसिद्धि के उपाय यहां कहे गये हैं। अ० २९५ में मन्त्रप्रयोग द्वारा सर्पदंश की चिकित्सा कही गई है, इस अध्याय में विषसम्बन्धी आवश्यक बातें मिलती हैं। स्तम्भनादि-षट्कर्म-परक मन्त्र अ० ३१५ में हैं।

(अ० ३२८-३४५) छन्दःशास्त्र-परक जो विवरण यहां दिया गया है, वह पिङ्गलछन्दःसूत्र पर आधारित है। छन्दःसूत्र के विषयक्रम का भी अनुसरण अनेक स्थलों पर किया गया है—यह देखा जाता है। छन्दसम्बन्धी गण, छन्दों के देवता, पाद, उत्कृति आदि छन्दोभेद, सम-अर्धसम-विषम रूप तीन छन्द-प्रकार, यति तथा प्रस्तार का विशद विवरण यहां मिलता है।

कुछ श्लोकों के पाठ भ्रष्ट हैं। ३३०।९ (स्कन्धो ग्रीवा...) का पाठ भ्रष्ट है; शुद्ध पाठ होगा—'स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुकेः स्याद् यास्कस्योरोवृहत्यपि; द्र० छन्दसूत्र ३।२९-३०। ३३४।२६ में मत्तक्रीडा नाम छपा है जो मत्ता क्रीडा होगा (द्र० छन्दःसूत्र ७।२८), उसी प्रकार ३३४।२९ में जो 'दण्डदः' शब्द है, वह दण्डकः होगा।

(अ० ३३६) शिक्षा ('वर्णोच्चारण-शास्त्र') परक यह अध्याय श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा पर आधारित है—यह स्पष्टतया प्रतीत होता है।

डा० मनीमोहन घोष द्वारा संपादित 'पाणिनीय शिक्षा' (कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित) में इस शिक्षा-अध्याय का अन्तर्भाव किया गया है। सम्पादक ने टिप्पणियोंमें अग्निपुराण के मतों पर कहीं कहीं संक्षिप्त आलोचना की है।

(अ० ३३७-३४७) इन ११ अध्यायों के विषय यथाक्रम में हैं—काव्यादि-लक्षण, नाटकादि-लक्षण, रसनिरूपण, रीतिनिरूपण, नृत्यादिगत अङ्ग-कर्म, अभिनयादि, शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, शब्दार्थालङ्कार, काव्यगुण तथा काव्य-दोष।

अग्निपुराण के इन अध्यायों के विषय में कई विद्वानों ने विचार किया है। पुराणोक्त मतों का मूल क्या है तथा पुराणमतों का आश्रयणकारी कौन कौन

---

१. गोपरकशास्त्र प्राचीनकाल में रचित हुआ था—यह निश्चित है। बृहत्संहिता (अ० ६१) में पराशरकृत गोलक्षण का उल्लेख है।

आचार्य हैं—इत्यादि विषयों का निरूपण करने की चेष्टा की गई है।[1] डा० सुशीलकुमार दे ने अत्यन्त विशदता के साथ यह दिखाया है कि अग्निपुराणगत यह विवरण भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण ग्रन्थ का उपजीव्य है।

(अ० ३४८) एकाक्षराभिधान अर्थात् एकाक्षर कोश। इसमें अ, आ आदि वर्णों के अर्थ दिये गये हैं, कु आदि अक्षरों (व्यञ्जन सहित स्वर=अक्षर) के अर्थ भी कहीं कहीं कहे गये हैं। एक दो स्थलों पर मुद्रित पाठ भ्रष्ट हैं—ऋशब्दे चादितौ ऋ स्यात् (३४८।३) का शुद्ध पाठ होगा—'ॠ (दीर्घ ॠ) स्यात्।' ॠ का अर्थ अदिति है—यह प्रसिद्ध है (अदितिपुत्र देवों को 'ॠभु' कहा जाता है)।

पूर्वाचार्यों ने कई एकाक्षर-कोश लिखे हैं।[2] इन ग्रन्थों के आधार पर यह अंश लिखा गया है। (अ० ३४९-३५९) व्याकरण-परक यह प्रकरण कातन्त्र (नामान्तर कलाप) पर आधारित है। स्कन्द ने कात्यायन से यह शास्त्र कहा यह ३४८।२८ तथा ३४९।१ में कहा गया है। यह प्रसिद्ध है कि कातन्त्र व्याकरण मूलतः कुमार (स्कन्द) द्वारा प्रोक्त है (अर्थात् कुमार की कृपा से शर्ववर्मा ने यह व्याकरण रचा है) तथा कात्यायन नामक विद्वान् ने इस व्याकरण का आंशिक पूरण किया है।

यह आश्चर्य है कि इस प्रकरणमें पाणिनीय पद्धति भी अंशतः मिश्रित है,। यहाँ जिस क्रम में व्याकरणीय विषय रखे गये हैं, वह क्रम पाणिनि-व्याकरण का नहीं है, वह अधिकांशतः कातन्त्र में मिलता है। यह ज्ञातव्य है कि इस प्रकरण में जितने उदाहरण दिये गये हैं वे सब कातन्त्र में मिल जाते हैं।

(अ० ३६०-३६७) कोशपरक ये अध्याय सर्वथा अमरकोश पर आधारित है। इसके प्रायः सभी वाक्य अमरकोश के वाक्य (क्वचित् अल्पाधिक परिवर्तित रूप में) ही है। शब्दों का क्रम भी प्रायेण सर्वत्र अमरकोशानुसारी है, क्वचित्

---

१. द्रष्टव्य P. V. Kane कृत History of Sanskrit Poetics (पृ० ४-९); P. C. Lahiri का Theory of रीति and गुण in Agni Purāṇa शीर्षक लेख (Indian Historical Quarterly, IX); Descriptive style of Alankāra's in the Agnipurāṇa (Munshi Felicitation Volume, पृ० ९६-११०); अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग आदि।

२. द० नानार्थरत्नमालाकोश (शाश्वत कोश के साथ प्रकाशित, Oriental Book Agency), सौमरिकृत एकार्थनाममाला, एकाक्षरीकोश (ज्ञानपीठ-मूर्तिदेवी जैनग्रन्थमाला के अन्त में मुद्रित।

भिन्नता देखी जाती है। अमर में 'संश्लेष उपगूहनम्' के बाद 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' कहा गया है (संकीर्णवर्ग ३०-३१)। पर अग्निपुराण में प्रत्यादेशो निराकृतिः (२४ श्लोक) के बाद 'संश्लेष उपगूहनम्' (२५) कहा गया है। अ० ३६७ के अन्त में अनुमा, शाब्द, उपमानक' अर्थापत्ति और अभाव का उल्लेख है, पर ये शब्द अमरकोश में नहीं मिलते।[1]

(अ० ३६८-३७१) नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक रूप चार प्रकार के प्रलय का विवरण यहां दिया गया है। प्रसंगतः यहां परार्ध का परिमाण कहा गया है, जो १ के बाद १७ शून्य है (१०००००००००००००००००)।[2] नागेश भट्ट द्वारा उद्धृत ब्रह्माण्डपुराण-वचन में यह मत माना गया है (सप्तशती २।४१ की टीका)। इसी प्रकार आतिवाहिक शरीर का विवरण अ० ३६९ में मिलता है, गर्भोत्पत्ति तथा शरीरावयवों का विवरण इसी अध्याय में तथा अ०-३७० में दिया गया है। अ० ३७१ में प्राणनिर्गमन-मार्गों के नाम तथा नरकों के नाम आवश्यक विवरण के साथ कहे गये हैं। क्षिति के अधोदेश में अष्टाविंशति नरक-कोटि (२८ प्रकार के नरक) की सत्ता ३७१।१३ में कही गई है तथा नरक के २८ नाम १४-१८ श्लोकों में कहे गये हैं।

(अ० ३७२-३८०) इन अध्यायों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि तथा ब्रह्मज्ञान (अन्तिम तीन अध्यायों में) का उत्कृष्ट विवरण दिया गया है। प्राचीन तथा अर्वाचीन योगग्रन्थों में तथा स्मृतियों में अष्टाङ्ग योग का जो विवरण मिलता है, पुराणोक्त विवरण उससे सारतः भिन्न नहीं है। उपनिषद्, गीता एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के कई वचन यहां अविकल रूप से या ईषत् पाठभेद के साथ पठित हुये हैं। ३७९। ७ख—३२ क० में प्रतिपादित विषय विष्णुपुराण (६।५—७) में मिलता है, अ० ३८० का विषय भी विष्णुपु० (२।१५-१६) में मिलता है। संभवतः विष्णुपुराण से ही

---

१. यह ज्ञातव्य है कि अमरकोश की पूर्ति के लिए त्रिकाण्डशेष नामक जो कोश पुरुषोत्तमदेव द्वारा प्रणीत हुआ था, उसमें अनुमा का उल्लेख है (अनुमा त्वनुमानं स्यात् ३।२।११, अग्निपु० का वाक्य है—अनुमा पक्षहेत्वाद्यैः, ३६७। २५)। पर इस कोश में शाब्द, उपमान और अर्थापत्ति का कोई उल्लेख नहीं है।

२. परार्ध-परिमाण के विषय में मतभेद हैं। शुक्लयजुर्वेद संहिता के अनुसार परार्ध = १०००००००००००००(१ के बाद १२ शून्य) है; पर वेदव्याख्याकार महीधर परार्ध = १०००००००००००००००००(१ के बाद १७ शून्य) कहते हैं। ज्योतिषी धनंजय भट्ट के अनुसार परार्ध = १ के बाद ३१ शून्य है।

इन विषयों को अग्निपुराणकार ने लिया है। खाण्डिक्य-केशिध्वजसंवाद नारदीय पुराण १।४६-४७ में भी है। यह पुराण विष्णुपुराण से अर्वाचीन है)।

इन अध्यायों में कई मुद्रित पाठ भ्रष्ट हैं। 'पातितः श्रावणोधातुर्दशनस्वाङ्ग वेदनाः' (३७६।६) का प्रकृतपाठ होगा—'प्रातिभः श्रावणो वार्ता आदर्श-स्वाद-वेदनाः'; तुलनीय योगसूत्र ३।३६।[1] ३७६।१३ का 'तथा विपक्षकरणः' का शुद्ध पाठ 'तथाऽविपक्तकरणः' होगा। ३८०।४६ का 'निदाघ-ऋतु-संवादम्' 'निदाघऋभुसंवादम्' होगा (इस अध्याय में जहां भी 'ऋतु' है वह 'ऋभु' होगा)।

(अ० ३८१-३८२) कृष्ण ने अर्जुन के प्रति जो कहा (भगवद्गीता) उसका संक्षिप्तसार अ० ३८१ में दिया गया है। इसके प्रायः सभी वाक्य गीता के शब्दों पर आश्रित हैं, कुछ वाक्य शब्दों पर आश्रित न होकर अर्थों पर आश्रित हैं, जैसे 'दुःसंगहानिः सत्संगात् मोक्षकामी च कामनुत्' (३८१।४)। गीता (१८।१४) में 'विविधाश्च पृथक् चेष्टाः' कहा गया है, पर पुराण में 'त्रिविधाश्च' पाठ है (३८१।५१)। शायद यह भ्रष्ट पाठ है। क्या यह हो सकता है कि यहां 'शारीरिक, वाचिक और मानसिक' रूप त्रिविध चेष्टा की बात कही गई है?

यमगीता (अ० ३८२) कठोपनिषद् पर आधारित है। इस उपनिषद् के कई वाक्य यहां अविकलरूप से या किंचित् पाठभेद के साथ उद्धृत हुये हैं। इस अध्याय में कपिल, पञ्चशिख, जैगीषव्य, देवल आदि कुछ आचार्यों (सांख्याचार्यों) के श्रेयः-परक मत उद्धृत हुये हैं (३८२।३-१०) इन नामों में 'गङ्गाविष्णु' नाम भी है. जो सर्वथा सांशयिक है। इस नाम का कोई आचार्य इतिहासपुराणादि में स्मृत नहीं हुये हैं। यह अवश्य ही भ्रष्ट पाठ है, प्रकृत पाठ क्या होगा—इसका निर्धारण करना दुष्कर है।[2]

---

१. ३।३६ योगसूत्र का मुद्रित पाठ है—'ततः प्रातिभ-श्रावण-वेदना-दर्शास्वादवार्ता जायन्ते'। सभी व्याख्याकार षष्ठ सिद्धि का नाम 'वार्ता' (आकारान्त) समझते हैं, यह वस्तुतः अकारान्त वार्त शब्द है। इस विषय में विस्तृत विचार के लिए मेरा An Introduction to the Yoga-sūtra (Chapter V, Section 2) द्रष्टव्य है।

२. अग्निपुराण के श्रेयःपरक श्लोक (३८२।३-११) विष्णुधर्मनामक पुराण में भी हैं। यह अमुद्रित है। इस पुराण में गङ्गाविष्णु के स्थान पर गार्गि-रिष्ट पाठ हैं; द्रष्टव्य आर० सी० हाजरा कृत Studies in the Upapurāṇas ग्रन्थ Volume I (पृ० १३०)। यह नाम भी अशुद्ध प्रतीत होता है।

(अ० ३८३) अग्निपुराणके स्वरूप तथा माहात्म्य के साथ इस पुराण में प्रतिपादित विषयों का परिचय यहां दिया गया है। इस अध्याय की सामग्री के विषय में भूमिका में यथास्थान विचार किया गया है।

विविध विद्याओं के विवरण से विभूषित साथ ही अनेकत्र भ्रष्ट पाठों से दूषित अग्निपुराण का अनुवाद करना वस्तुतः एक कठिन कार्य है। अग्निपुराण में ऐसे अनेक वाक्य या वाक्यांश है जो दुरूहार्थक हैं, कहीं कहीं अस्पष्टार्थक भी। प्रस्तुत अनुवाद में अनुवादक महोदय का परिश्रम दर्शनीय है। हम उनको धन्य-वाद देकर इस भूमिका को समाप्त करते हैं।

रामशंकर भट्टाचार्य
(सम्पादक पुराण
सर्वभारतीय काशिराज न्यास
वाराणसी)

अग्निपुराण की विषयानुक्रमणिका

अध्याय १ (पृ० १-४)

मंगलाचरण—ऋषियों द्वारा सूत से प्रश्न। बदरिकाश्रम में सूत, शुक और पैल आदि ऋषियों द्वारा व्यास से प्रश्न। ऋषियों और व्यास के संवाद में अग्नि और वशिष्ठ का संवाद। विद्यातत्त्व और विज्ञान के सम्बन्ध में वशिष्ठ द्वारा अग्नि से प्रश्न। अग्नि द्वारा वशिष्ठ के प्रति सब के कारणभूत विष्णु का प्रभाव वर्णन।

अध्याय २ (पृ० ५-६)

मत्स्यावतार वर्णन—विष्णु के मत्स्य आदि अवतार के सम्बन्ध में वशिष्ठ द्वारा अग्नि से प्रश्न। अग्नि द्वारा वशिष्ठ से कृतमाला नदी में वैवश्वत मनु को मत्स्यरूप भगवान् के दर्शन होने का कथन। मत्स्यावतार भगवान् विष्णु द्वारा हयग्रीव दैत्य का वध।

अध्याय ३ (पृ० ८-१२)

कूर्मावतार वर्णन—दुर्वासा के शाप से नष्ट वैभव वाले देवताओं का विष्णु के पास जाना। विष्णु के द्वारा देवताओं को समुद्र मंथन करने की आज्ञा। विष्णु की आज्ञा से मन्दराचल को समुद्र में डालकर देव दानवों द्वारा किये गये क्षीर सागर के मंथन का वर्णन। क्षीर सागर से हलाहल विष की उत्पत्ति। शंकर द्वारा हलाहल विष का भक्षण। कूर्मावतार विष्णु द्वारा मन्दराचल का धारण। क्षीर सागर से वारुणी मदिरा, कौस्तुभ मणि, लक्ष्मी आदि की उत्पत्ति। लक्ष्मी द्वारा विष्णु को पति रूप में स्वीकार। अमृत कलश के साथ धन्वन्तरि का उद्भव। उनके हाथ से दैत्यों द्वारा अमृत का अपहरण। विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण कर देवताओं को अमृत देना और दैत्यों को मोहित करना। चन्द्रमा का रूप धारण कर राहु द्वारा अमृत भक्षण। सूर्य और चन्द्रमा द्वारा सूचित करने पर राहु का शिरःकर्तन। अत्यन्त प्रसन्न विष्णु द्वारा राहु के प्रति देवत्व-प्राप्ति का वर्णन। विष्णु की कृपा से सन्तुष्ट राहु द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के प्रति ग्रहण प्राप्त करने का शाप और प्रसंगतः ग्रहण काल में दान की प्रशंसा। शंकर की प्रार्थना करने पर विष्णु द्वारा शंकर के

प्रति पुनः मोहिनी रूप का प्रदर्शन। मोहिनी के रूप से मोहित होकर पार्वती का परित्याग करके उसके पीछे दौड़ना। पृथ्वी पर शंकर का वीर्यस्खलन। अमृत न पाने वाले दैत्यों का देवताओं के साथ युद्ध। देवताओं द्वारा दैत्यों का पराजय।

अध्याय ४ (पृ० १२-१६)

वराह नारसिंह आदि अवतारों का वर्णन—हिरण्याक्ष का देवेन्द्र पद पर अधिरोहण। हिरण्याक्ष के बल से उद्विग्न देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। वराह द्वारा हिरण्याक्ष का वध। उसके भाई हिरण्यकशिपु का नारसिंह अवतार विष्णु द्वारा वध। बलि आदि के द्वारा पराजित देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। अदिति से वामन रूप विष्णु का प्रादुर्भाव। पादत्रयपरिमित भूमि याचन द्वारा वामनकृत राजा बलि की वञ्चना। जमदग्नि से रेणुका में परशुराम का अवतार। परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन का वध। इस आख्यान के श्रवण का फल।

अध्याय ५ (पृ० १६-१९)

श्रीरामावतारवर्णन—प्रसंगतः वैवस्वतमनु का वंशवर्णन। कौशल्या से राम की उत्पत्ति। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उत्पत्ति। यज्ञ-रक्षा के लिए राम लक्ष्मण का विश्वामित्र के आश्रम में जाना। विश्वामित्र के यज्ञ में राम द्वारा मारीच-सुबाहु का वध। जनक के गृह में राम के द्वारा शिव-चाप का खण्डन। सीता के साथ राम का विवाह। उर्मिला, मांडवी तथा श्रुतकीर्ति का क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ विवाह। परशुराम को जीतकर राम आदि का अयोध्या लौटना।

अध्याय ६ (पृ० १९-२८)

अयोध्याकाण्ड—दशरथ का रामचन्द्र के साथ युवराज पद सम्हालने के संबन्ध में वार्तालाप। मन्थरा के वचन से कैकेयी का मति-परिवर्तन। दशरथ से कैकेयी को दो वर की प्राप्ति। कैकेयी के वचनानुसार दशरथ की आज्ञा से राम का सीता और लक्ष्मण के साथ वन-गमन। चित्रकूट पर्वत पर सीता के प्रति अपराधी होते हुए भी शरण में आए हुए इन्द्र-पुत्र जयन्त की राम द्वारा रक्षा। कौशल्या के प्रति "पुत्र-शोक से मेरा मरण अवश्यम्भावी है" यह दशरथ का कथन। दिवंगत दशरथ के शरीर को तेल पात्र में रखा जाना।

वशिष्ठ की आज्ञा से सुमंत आदि द्वारा भरत को अयोध्या ले आना। सरयू के तट पर भरत के द्वारा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया। वशिष्ठ के द्वारा भरत को राजपालन का उपदेश। राजपद स्वीकार कर भरत का राम को लौटाने के लिए भरद्वाज आश्रम को जाना। भरत के साथ राम-लक्ष्मण का मिलन। पिता का निधन समाचार देकर भरत की राम से राजपद स्वीकार करने की प्रार्थना। राम की आज्ञा से भरत का पादुका ग्रहण पूर्वक राज्य पालन के लिए नन्दि ग्राम में जाना।

अध्याय ७ (पृ० २८-३२)

अरण्यकाण्ड—अत्रि, शरभंग और सुतीक्ष्ण आदि का राम के साथ समागम। आगस्त्य से राम को धनुष और खड्ग की प्राप्ति। दण्डकारण्य में राम का जाना। पंचवटी में राम का रूप देखकर शूर्पणखा का मोहित होना। पंचवटी में राम के कहने पर लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का नासिका छेदन। राम द्वारा खर, दूषण, त्रिसरा आदि राक्षसों का वध। पुत्र के निधन से पीड़ित शूर्पणखा का रावण के प्रति सीता हरण विषयक सम्भाषण। रावण की मारीच से स्वर्णमृग का रूप धारण कर राम को ठगने के लिए अभ्यर्थना। राम द्वारा मारीच का वध। रावण द्वारा सीता का हरण। रावण और जटायु का युद्ध। रावण द्वारा जटायु का वध। सीतापहारक रावण का लंका पहुँचना। सीता वियुक्त राम का विलाप। राम द्वारा सीता का अन्वेषण। राम द्वारा जटायु का और्ध्वदेहिक संस्कार। राम द्वारा कबन्ध राक्षस का वध। शापमुक्त कबन्ध का राम के प्रति सुग्रीव से मैत्री का कथन।

अध्याय ८ (पृ० ३३-३५)

किष्किन्धा काण्ड—राम का पम्पासर में गमन। राम का सुग्रीव के साथ समागम। सुग्रीव के विश्वास के लिए राम द्वारा सात तालवृक्षों का भेदन। राम द्वारा दुंदुभि का शरीरपात। राम द्वारा बालि का वध। किष्किन्धा में लक्ष्मण का गमन। सीता के अन्वेषण के सम्बन्ध में सुग्रीव द्वारा वानरों के साथ हनुमान को भेजना। वानरों को सम्पाति का दर्शन।

अध्याय ९ (पृ० ३६-४१)

सुन्दर काण्ड—सम्पाति के कहने से लंका में हनुमान द्वारा अशोक वन में सीता दर्शन पूर्वक सीता को अंगूठी देना। सीता द्वारा हनुमान को चूड़ामणि प्रदान करना। हनुमान द्वारा रावण के उपवन का विध्वंश। मेघनाद द्वारा

नागपाश से हनूमान का बन्धन। हनूमान के साथ रावण का सम्भाषण। हनूमान द्वारा लंकादहन। हनूमान द्वारा राम को सीता द्वारा दी हुयी चूड़ामणि समर्पित करना। राम का विभीषण के साथ समागम। राम द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक। राम द्वारा सेतु बाँधकर सुवेल पर्वत पर पहुँचना।

अध्याय १० (पृ० ४२-४७)

युद्धकाण्ड—अंगद का रावण के साथ लंका में सम्भाषण। राम रावण का युद्ध। राम से पराजित रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगाना। राम द्वारा कुम्भकर्ण और रावण का वध। युद्ध में मरे हुए वानरों को राम द्वारा अमृत वर्षा करके जिलाना। विभीषण को लंका का राज्य प्रदान करना अग्नि परीक्षा के द्वारा शुद्ध सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या जाते हुए श्रीराम का नन्दिग्राम में भरत से मिलाप। राम का अयोध्या गमन।

अध्याय ११ (पृ० ४८-५०)

उत्तर काण्ड—अगस्त्य आदि के द्वारा राम की स्तुति। वाल्मीकीय आश्रम में सीता से कुश और लव की उत्पत्ति। राम का स्वर्ग लोक गमन। इस अध्याय के श्रवण करने का फल। रामचरित की समाप्ति।

अध्याय १२ (पृ० ५१-६०)

कृष्णावतार कथा—प्रसंगतः हरिवंश का वर्णन। बलराम और कृष्ण की उत्पत्ति। वसुदेव द्वारा कृष्ण को गोकुल पहुँचाना। कृष्ण द्वारा यमलार्जुन का मोक्ष। कृष्ण द्वारा शकटासुर का बध। कृष्ण द्वारा पूतना का वध। कृष्ण द्वारा कालिय का मर्दन। कृष्ण द्वारा गोवर्धन का धारण। कंस के भेजे हुए अक्रूर का राम और कृष्ण के साथ मथुरा जाना। मथुरा में कृष्ण द्वारा रजक का वध। कृष्ण द्वारा माली को वरदान देना। कृष्ण द्वारा कुब्जा के शरीर को सीधा करना। कृष्ण द्वारा कुवलयापीड नामक हाथी का वध। कृष्ण और बलराम का चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानों के साथ मल्लयुद्ध। कृष्ण और बलराम द्वारा चाणूर और मुष्टिक का वध। कृष्ण द्वारा कंस का वध। कृष्ण द्वारा उग्रसेन को कंस का राज्य देना। कृष्ण द्वारा जरासंध और पौण्ड्रक वासुदेव का वध। कृष्ण का द्वारका जाना। कृष्ण द्वारा नरकासुर को मारकर उसके द्वारा लायी गई सोलह हजार राजकन्याओं का पाणिग्रहण।

रुक्मिणी आदि का कृष्ण द्वारा पाणिग्रहण। सान्दीपनि गुरु के मृतक पुत्रों को पुनः प्रत्यावर्तित करके कृष्ण द्वारा गुरु को सौंपना। कृष्ण द्वारा कालयवन का वध। कृष्ण से रुक्मिणी में प्रद्युम्न की उत्पत्ति। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध नामक पुत्र की उत्पत्ति। बाणासुर की कन्या ऊषा को स्वप्न में अनिरुद्ध का दर्शन। चित्रलेखा द्वारा द्वारका से अनिरुद्ध का आनयन। शोणितपुर में ऊषा के साथ अनिरुद्ध का विवाह। अनिरुद्ध और बाणासुर में युद्ध। शंकर और विष्णु का युद्ध। कृष्ण द्वारा बाणासुर की सहस्र भुजाओं का छेदन। बाणासुर के ऊपर शिव द्वारा प्रार्थित श्रीकृष्ण का अनुग्रह। ऊषा से युक्त अनिरुद्धका कृष्ण आदि के साथ द्वारका गमन। बलराम द्वारा हस्तिनापुर का आकर्षण। रुक्मिणी आदि में कृष्ण से अनन्त पुत्रों की उत्पत्ति। हरिवंश पाठ का फल।

अध्याय १३ (पृ० ६१-६६)

भारताख्यान (महाभारत)—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि से चन्द्रमा की उत्पत्ति। चन्द्रमा से बुध आदि की उत्पत्ति। विचित्रवीर्य की भार्या अम्बिका अम्बालिका में व्यास से धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति। धृतराष्ट्र से गान्धारी में दुर्योधन आदि की उत्पत्ति।

पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन—दुर्योधन आदि का पाण्डवों के साथ विरोध। द्रुपद द्वारा किये गये द्रौपदी स्वयंवर में पाण्डवों को द्रौपदी की प्राप्ति। अर्जुन द्वारा खाण्डव वन का दहन। युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ। दुर्योधन आदि के साथ पाण्डवों की द्यूत-क्रीड़ा। द्यूत में पाण्डवों का पराजय पूर्वक बनवास। पाण्डवों के साथ दुर्योधन आदि का युद्धारम्भ।

अध्याय १४ (पृ० ६६-७०)

भारताख्यान में कौरव और पाण्डवों का संग्राम—कृष्ण का अर्जुन के प्रति उपदेश। शिखण्डी के द्वारा भीष्म का पतन। धृष्टद्युम्न से द्रोण का वध। कर्ण और अर्जुन का युद्ध। अर्जुन द्वारा कर्ण का वध। भीम और दुर्योधन का युद्ध। भीम द्वारा दुर्योधन का वध। अश्वत्थामा द्वारा पाण्डवों के पुत्रों का विनाश। कृष्ण द्वारा उत्तरा के गर्भ में परीक्षित की रक्षा। युधिष्ठिर द्वारा मृतकों को जलाञ्जलि। युधिष्ठिर के प्रति भीष्म द्वारा राजधर्म आदि का उपदेश। युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित का राज्याभिषेक।

अध्याय १५ (पृ० ७१-७३)

पाण्डवों का स्वर्गारोहण—गान्धारी के साथ धृतराष्ट्र का वन गमन। मूसल से यदुवंशियों का नाश। चोरों के द्वारा श्रीकृष्ण की पत्नियों का हरण। पाण्डवों का महापथ पर गमन। स्वर्ग में पाण्डवों का वासुदेव का दर्शन। भारताख्यान के श्रवण का फल।

अध्याय १६ (पृ० ७४-७६)

बुद्धावतार वर्णन—दैत्यों की वञ्चना के लिए विष्णु का बौद्धावतार। प्रसंगतः कल्कि अवतार का वर्णन। अवतारों के चरित्र श्रवण का फल।

अध्याय १७ (पृ० ७७-७९)

जगत्सृष्टि वर्णन—सृष्टि काल में महत्तत्व की उत्पत्ति। महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति। उससे वैकारिक आदि की उत्पत्ति। पृथ्वी आदि पंच-महाभूतों की उत्पत्ति। ब्रह्मा की उत्पत्ति। ब्रह्मा से मरीचि आदि मानस-पुत्रों की उत्पत्ति।

अध्याय १८ (पृ० ८०-८६)

स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन—स्वायम्भुव से प्रियव्रत और उत्तानपाद की उत्पत्ति। उत्तानपाद से सुरुचि, सुनीति में उत्तम और ध्रुव की उत्पत्ति। प्रसंगतः ध्रुव की महिमा का वर्णन। ध्रुव से वृद्धि आदि पुत्रों की उत्पत्ति। पृथ्वी का आख्यान। पृथु द्वारा पृथ्वी का दोहन। दक्ष की उत्पत्ति का प्रकार। प्रसंगतः कश्यप से एकादश रुद्रों की उत्पत्ति।

अध्याय १९ (पृ० ८७-९१)

कश्यप वंश का वर्णन—कश्यप से बारह आदित्यों की उत्पत्ति। कश्यप से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की उत्पत्ति। प्रह्लाद की उत्पत्ति। विरोचन से बलि की उत्पत्ति। इन्द्र द्वारा दिति के गर्भ को सात टुकड़े करना। उससे मरुतों की उत्पत्ति। हरि द्वारा पृथु आदि को राज्य पद प्रदान।

अध्याय २० (पृ० ९२-९५)

जगत्सृष्टि का वर्णन—ब्रह्मा से नौ प्रकार की सृष्टियों की उत्पत्ति। दक्ष कन्याओं द्वारा भृगु आदि को पति रूप में वरण। अत्रि से अनसूया में

सोम आदि पुत्रों की उत्पत्ति । सात हजार बालखिल्यों की उत्पत्ति । अधर्म से हिंसा रूपी पत्नी में अनृत आदि पुत्रों की उत्पत्ति ।

अध्याय २१ (पृ० ९६-१००)

विष्णु आदि देवताओं की सामान्य पूजा-विधि—विष्णु आदि के मन्त्रों से उन-उन देवताओं का पूजन । नवग्रह पूजन । सरस्वती आदि देवताओं की पूजा विधि । देवताओं की तुष्टि के लिए तिलादि द्रव्यों से हवन । देवताओं का मन्त्र-निरूपण ।

अध्याय २२ (पृ० १०१-१०२)

पूजाधिकार के लिए सामान्य स्नान विधि—मृत्तिका स्नान आदि की विधि । अघमर्षण आदि की विधि । पितर आदि का तर्पण ।

अध्याय २३ (पृ० १०३-१०७)

पूजा विधि—योग के द्वारा शरीर शोधन पूर्वक न्यास आदि । विष्णु और द्वारस्थ देवताओं की पूजा विधि । आवाहन आदि के द्वारा विष्णु की सपर्या । नवव्यूह का अर्चन ।

अध्याय २४ (पृ० १०८-११८)

कुण्ड निर्माणादि अग्नि कार्य—अर्ध चन्द्राकार, चौकोर, गोलाकार कुण्डों का निर्माण । होम विधि का प्रकार । अग्नि संस्कार कथन । गुरु द्वारा शिष्यों को उपदेश ।

अध्याय २५ (पृ० ११९-१२७)

वास्तु देवादि मंत्रों का लक्षण—जीवों का स्वरूप वर्णन ।

अध्याय २६ (पृ० १२८-१२९)

मुद्रा लक्षण—अञ्जलि मुद्रा लक्षण । वन्दनी मुद्रा लक्षण । वराह मुद्रा लक्षण ।

अध्याय २७ (पृ० १३०-१४३)

शिष्यों को दीक्षा दान—गुरु द्वारा शिष्य को दीक्षा विधि प्रकार वर्णन ।

अध्याय ३७ (पृ० १९३-१९५)

संक्षेपत: सब देवों के लिए साधारण पवित्रारोपण विधि।

अध्याय ३८ (पृ० १९६-२०४)

देवालय निर्माणफल। देवालय आदि में अनुपयुक्त धन की व्यर्थता। मृत्तिका से, लकड़ी से, ईंटों से, पत्थरों और सुवर्ण से देवालय निर्माण करने में उत्तरोत्तर फल विशेष कथन। इनका माहात्म्य प्रकाशित करने के लिए यमदूतों के प्रति यमराज का भाषण।

अध्याय ३९ (पृ० २०५-२०८)

विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा में भूमि परिग्रह संस्कार। ब्रह्मा के साथ यमदूत के संवाद में हयग्रीव का सम्वाद। कच्छदेश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण से तथा कावेरी प्रदेश एवं कोंकण देश में उत्पन्न ब्राह्मण से प्रतिष्ठा नहीं करानी चाहिए, यह कथन। तन्त्र के पारगामी विद्वान् के हाथ से देवता की प्रतिष्ठा कराना। पूर्वादि दिशाओं में ब्रह्मादि देवताओं की प्रतिष्ठा। हल से भूमि शोधन प्रकार।

अध्याय ४० (पृ० २०९-२१४)

वास्तुमण्डल देवता स्थापन पूजन अर्घ्यदान बलिदानादि का विधान।

अध्याय ४१ (पृ० २१५-२२१)

शिला विन्यास का विधान। मण्डल विधान एवं चार कुण्डों का निर्माण-कथन। इष्टका न्यास (ईंट का न्यास)। इष्टका का परिमाण (नाप)। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्रों से शिलान्यास करना। देवालय निर्माण प्रशंसा।

अध्याय ४२ (पृ० २२२-२२६)

प्रासाद (मन्दिर) लक्षण का विधान।

अध्याय ४३ (पृ० २२७-२३१)

प्रासाद में देवता स्थापन और भूतशान्ति।

अध्याय ४४ (पृ० २३२-२३८)

वासुदेव आदि की प्रतिमाओं के लक्षण। देवताओं के अंगों का सप्रमाण कथन।

अध्याय ५६ (पृ० २८३-२८८)

दशदिक्पाल याग कथन ।

अध्याय ५७ (पृ० २८८-२९१)

कलशादि वास विधि ।

अध्याय ५८ (पृ० २९२-२९७)

देवता स्नपन विधि । मंत्र पूर्वक देवता पूजन विधि ।

अध्याय ५९ (पृ०२९७-३०६)

अधिवासन विधि । हरिप्राप्ति योग विधि । न्यास विधि कथन । लोक-पालों की सपर्या । देवताओं के उद्देश्य से हवन विधि । बलिदान का प्रकार ।

अध्याय ६० (पृ० ३०६-३११)

वासुदेव आदि देवताओं की सामान्य प्रतिष्ठा विधि । आठ दिशाओं में कलशस्थापन पूर्वक हवन । शिविका (दोला) में हरि को स्थापित करके नगर में घुमाना ।

अध्याय ६१ (पृ० ३१२-३१९)

अवभृथस्नान द्वारप्रतिष्ठा ध्वजारोपण आदि की विधि । ध्वजा के दण्ड का परिमाण । ध्वजमोचन । ध्वजदान फल कथन ।

अध्याय ६२ (पृ० ३१९-३२१)

लक्ष्मी आदि देवताओं की प्रतिष्ठा । श्रीसूक्तोक्त ऋचाओं से लक्ष्मी पूजन और आचार्य पूजन ।

अध्याय ६३ (पृ० ३२१-३२५)

विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा । पुस्तक लेखन विधि । पुस्तक प्रतिष्ठापन विधि । पुस्तकदान माहात्म्य ।

अध्याय ६४ (पृ० ३२६-३३२)

कूपवापी तड़ाग की प्रतिष्ठा विधि । तडागादि में यूप (खम्भा) निवेशन । जलदान की प्रशंसा ।

अध्याय ६५ (पृ० ३३२-३३६)

सभादि स्थापन ।

अध्याय ६६ (पृ० ३३६-३४०)

देवता सामान्य प्रतिष्ठा । उपवन (उद्यान) की प्रशंसा । मठ, पौशला के दान की महिमा ।

अध्याय ६७ (पृ० ३४१-३४२)

जीर्णोद्धार विधि । जीर्ण प्रतिमा का गाजे बाजे के साथ जलादि में प्रक्षेपण । बावली, पोखरा आदि के जीर्णोद्धार का माहात्म्य ।

अध्याय ६८ (पृ० ३४२-३४५)

उत्सव विधि का कथन—अंकुर का आरोपण । देवता की तीर्थ यात्रा करना ।

अध्याय ६९ (पृ० ३४५-३४९)

स्नपनोत्सव का विस्तार से कथन ।

अध्याय ७० (पृ० ३४९-३५०)

वृक्षारोपण की विधि । वृक्षोद्यान लगाने से पाप नाश के फल का कथन ।

अध्याय ७१ (पृ० ३५१-३५२)

गणपति पूजा की विधि ।

अध्याय ७२ (पृ० ३५२-३६१)

स्नानविधि । संध्या विधि का निरूपण । संध्या देवता के ध्यान का कथन । रात्रि आदि में ज्ञानियों की चौथी संध्याओं का वर्णन । अघमर्षण, तर्पण विधि का वर्णन ।

अध्याय ७३ (पृ० ३६१-३६३)

सूर्य पूजा की विधि । ग्रहों को नमस्कार तथा सूर्य की प्रार्थना ।

अध्याय ७४ (पृ० ३६४-३७७)

शिव की पूजा विधि का कथन। द्वारस्थ देवता का पूजन तथा नव देवता का पूजन। शिव के ध्यान का कथन। शिव पूजा के अंगभूत जप की विधि।

अध्याय ७५ (पृ० ३७७-३८७)

शिव पूजा के अंगभूत होम-विधि। देवताओं के लिए बलिदान विधि का निरूपण।

अध्याय ७६ (पृ० ३८७-३८९)

चण्ड पूजा की विधि का वर्णन। पूजा के अंगभूत जप होम का विधान।

अध्याय ७७ (पृ० ३९०-३९३)

कपिला पूजन।

अध्याय ७८ (पृ० ३९३-४०३)

पवित्र अधिवासन विधि का वर्णन। सत्ययुगादि में क्रमशः सोने, चाँदी, ताँबे और कपास से निर्मित पवित्रकों का विधान। पवित्रक के मान का कथन।

अध्याय ७९ (पृ० ४०४-४१०)

पवित्रारोहण की विधि। शिव की अर्चना का विधान। वस्त्र और आभूषण के द्वारा गुरु की अभ्यर्चना।

अध्याय ८० (पृ० ४१०-४१२)

दमनक वृक्ष के आरोपण का विधान। शंकर के क्रोध से उत्पन्न भैरव को शंकर का शाप। दमन के रूप को प्राप्त करने वाले भैरव का दमन-पूजन द्वारा उद्धार। दमनक के द्वारा शिव की पूजा विधि का वर्णन।

अध्याय ८१ (पृ० ४१३-४२७)

समयाचार दीक्षा विधि का वर्णन। निराधार और साधार भेद से दीक्षा के दो प्रकारों का वर्णन। कोरदार एवं श्वेत वस्त्र से शिष्य के नेत्र बंधन आदि का वर्णन।

अध्याय ८२ (पृ० ४२८-४३१)

संस्कार दीक्षा का विधान। गुरु के द्वारा शिष्य के प्रति किये गये उपदेश का वर्णन।

अध्याय ८३ (पृ० ४३२-४४०)

निर्वाण दीक्षा की विधि का वर्णन। दीक्षा में सूत्र के द्वारा शिष्य के देह बंधन की प्रक्रिया का वर्णन। कलाओं के ग्रहण बंधन आदि प्रयोग का कथन। चण्डेश, लोकपालों का पूजन। स्नान पूर्वक गुरु का यज्ञशाला में प्रवेशन।

अध्याय ८४ (पृ० ४४०-४५०)

निर्वाण दीक्षा में निवृत्ति कला का शोधन। दीक्षा के अन्तर्गत स्वप्न में हाथी, घोड़ा आदि के आरोहण का शुभ सूचक वर्णन। दुःस्वप्न देखने के निवारणार्थ होमादि विधि का कथन। ब्रह्मा का आवाहन-पूर्वक पूजन। वागीश्वरी देवी के पूजन की विधि का वर्णन। ब्रह्मप्रार्थना आदि का कथन।

अध्याय ८५ (पृ० ४५०-४५७)

प्रतिष्ठा कला के शोधन विधि का वर्णन—दीक्षा में २५ तत्त्वों का विभावनादि कथन। आवाहन पूर्वक विष्णु का पूजन। पूर्ववत् वागीश्वर और वागीश्वरी देवी का पूजन। शिष्य में चैतन्य प्रवेशन आदि की विधि का वर्णन। शिष्योद्देश्यक विष्णु की प्रार्थना का वर्णन।

अध्याय ८६ (पृ० ४५७-४६०)

विद्याकला के शोधन विधि का निरूपण—रुद्रों के स्वरूप का वर्णन और भुवनों के स्वरूप का कथन। हृदय प्रदेश से कला को अपने में निरूपित करके कुण्ड में निवेशन आदि का वर्णन।

अध्याय ८७ (पृ० ४६०-४६४)

शान्ति कला का शोधन—शिष्य के सिर पर अमृत बिन्दु की स्थापना आदि का वर्णन।

अध्याय ८८ (पृ० ४६५-४७३)

निर्वाण दीक्षा की अवशेष विधि का वर्णन—आवाहन पूर्वक शिव का पूजन। सम्पुट आत्मबीज से शिष्य के हृदय में ताड़न आदि विधान का कथन। शिव के अस्त्र (मंत्र) से शिष्य की शिखा छेदन आदि का कथन। अस्त्र मंत्र के द्वारा होम विधि का निरूपण और शिष्य का स्नान कथन।

अध्याय ८९ (पृ० ४७३-४७४)

एकतत्त्व दीक्षा की विधि का वर्णन—शिष्य के सूत्र बंधन आदि प्रकारों का वर्णन।

अध्याय ९० (पृ० ४७४-४७७)

अभिषेक आदि विधि का वर्णन—दिशाओं में घटादि स्थापन की विधि। स्नान मण्डप में शिष्य को घड़े के जल से स्नान कराने की विधि का निरूपण।

अध्याय ९१ (पृ० ४७७-४८०)

अभिषिक्त के द्वारा करणीय उन उन देवताओं के पूजन की विधि—पञ्चगव्य आदि के द्वारा देवपूजा करने वाले को देवलोक की प्राप्तिका कथन। सूर्य शंकर आदि देवताओं का मण्डल परिमाण-कथन।

अध्याय ९२ (पृ० ४८१-४९०)

संक्षेप में प्रतिष्ठा विधि—पाँच प्रतिष्ठाओं का वर्णन। प्रासाद बनाने की इच्छा से पृथ्वी का परीक्षण। मण्डप में द्वारपूजा आदि का कथन। भूमिपरिग्रहण। शिला संस्कार वर्णन। शिलाओं पर ब्रह्मा आदि देवताओं का पूजन। न्यूनाधिक्य दोष की निवृत्ति के लिए होमादि कथन।

अध्याय ९३ (पृ० ४९०-४९६)

वास्तु पूजा आदि की विधि—कोणों में वंश (बाँस) विन्यास। द्रव्य भेद से इन्द्रादि देवताओं का पूजन। वास्तु प्रमाण का लक्षण।

अध्याय ९४ (पृ० ४९६-४९९)

शिला विन्यास विधि—ईशानादि कोणों में चरकी आदि देवताओं का पूजन। शिला की प्रार्थना पूर्वक शिला का स्थापन। प्रायश्चित्त होम।

अध्याय ३१८ (पृ० १५६७-१५७१]

गणपूजा। शिव गायत्री कथन। द्वार और उपद्वार में बनाये गये विघ्न-मर्द नामक मण्डल में गणपति का पूजन। जप होमादि का विधान।

अध्याय ३१९ (पृ० १५७१-१५७३)

वागीश्वरी पूजा। मण्डल सहित वागीश्वरी का पूजन। कपिला गाय के घी से होम करने का विधान। पूजन से कवित्व शक्ति की प्राप्ति।

अध्याय ३२० (पृ० १५७३-१५८१)

मण्डल। सर्वतोभद्रक आदि मण्डल का विधान।

अध्याय ३२१ (पृ० १५८१-१५८४)

अघोरास्त्रादि शान्ति कल्प। शिवादि अस्त्र पूजन। ग्रह पूजन से ग्यारह स्थानों में फल प्राप्ति का कथन। सर्वोत्पात विनाशक अस्त्र-शान्ति-विधान।

अध्याय ३२२ (पृ० १५८४-१५८७)

पाशुपत शान्ति।

अध्याय ३२३ (पृ० १५८७-१५९२)

छह अंगों वाले अघोरास्त्र का कथन। वशीकरण आदि मंत्रों का विधान। शतावरी आदि चूर्ण के सेवन से पुत्र-लाभ का कथन। महामृत्युंजय आदि मंत्रों का कथन।

अध्याय ३२४ (पृ० १५९२-१५९७)

रुद्रशान्ति। रुद्र शान्ति का फल कथन।

अध्याय ३२५ (पृ० १५९८-१६०२)

अंशकादि। रुद्राक्ष धारण विधान। मन्त्र-सिद्धों द्वारा सिद्धादि अंश का कथन।

अध्याय ३२६ (पृ० १६०२-१६०६)

गौरी आदि की पूजा। मन्त्र, ध्यान, मण्डल, मुद्रा, होम आदि का कथन। गौरी पूजा फल निरूपण। मृत्युञ्जयार्चन कथन। उनके पूजन का फल निरूपण।

अध्याय ३२७ (पृ० १६०७-१६१०)

देवालय माहात्म्य। माला जप विधि का निरूपण। शिवलिंग पूजा की महिमा का वर्णन। वित्त के अनुसार देवालय बनाने का विधान।

अध्याय ३२८ (पृ० १६१०-१६११)

छन्दःसार।

अध्याय ३२९ (पृ० १६११-१६१२)

छन्दःसार। यजुओं की छह अक्षरों वाली गायत्री। ऋचाओं की अठारह अक्षरों वाली गायत्री का भेद निरूपण। गायत्री का छन्द निरूपण।

अध्याय ३३० (पृ० १६१२-१६१८)

छन्दःसार। पाद भेद से छन्दों का भेद कथन। छन्दों के देवता का कथन।

अध्याय ३३१ (पृ० १६१८-१६२३)

छन्दजाति का निरूपण। उत्कृति आदि छन्दों की जाति का कथन।

अध्याय ३३२ (पृ० १६२४-१६२६)

विषमवृत्त कथन।

अध्याय ३३३ (पृ० १६२७-१६२८)

अर्धसमवृत्त निरूपण।

अध्याय ३३४ (पृ० १६२९-१६३६)

समवृत्त निरूपण।

अध्याय ३३५ (पृ० १६३६-१६३७)

प्रस्तार निरूपण।

अध्याय ३३६ (पृ० १६३७-१६४१)

शिक्षा निरूपण। कण्ठस्थान आदि का निरूपण।

अध्याय ३४३ (पृ० १६७३-१६८४)

शब्दालंकार । अनुप्रास आदि अलंकारों का कथन । चक्रबन्ध आदि का निरूपण । गोमूत्र आदि अनेक बन्धों का कथन ।

अध्याय ३४४ (पृ० १६८४-१६८६)

अर्थालंकार । सादृश्य आदि अलंकारों का निरूपण । उनके लक्षणों का निरूपण ।

अध्याय ३४५ (पृ० १६६०-१६६३)

शब्दार्थालंकार । प्रशस्ति इत्यादि से छह भेदों का कथन । उनके लक्षण का कथन ।

अध्याय ३४६ (पृ० १६६३-१६६७)

काव्य गुण विवेक । शब्द गुण कथन । गुण लक्षण । प्रसाद आदि गुणों का लक्षण । द्राक्षा एवं नारिकेल पाकों का कथन ।

अध्याय ३४६ (पृ० १६६८-१७०४)

राग लक्षण आदि का कथन ।

अध्याय ३४७ (पृ० १७०५-१७०६)

काव्यदोष विवेक । श्रव्य काव्यों के उद्वेग जनक दोष का सात प्रकार से वर्णन । असाधुत्व और अप्रयुक्तत्व दोषों का पदनिग्रहत्वेन प्रतिपादन और उन दोनों के शब्द शास्त्र विरुद्ध होने से असाधुत्वेन कथन । छान्द सत्त्व, अविस्पृष्टत्व आदि दोषों का कथन । उनका लक्षण-कथन । विसन्धि आदि दोषों का कथन ।

अध्याय ३४८ (पृ० १७०५-१७०६)

एकाक्षराभिधान (कोश) । एकाक्षर मंत्र निरूपण । मातृका मन्त्र कथन । नवदुर्गा का पूजन विधान । गणपति मन्त्र कथन । स्वाहान्त मन्त्र से हवन पूजन विधान ।

अध्याय ३४६ (पृ० १७०६-१७११)

व्याकरण-सार । प्रत्याहार साधक सूत्रों का कथन । अण् आदि प्रत्याहारों का कथन ।

अध्याय ३५० (पृ० १७११-१७१३)

संधिसिद्ध रूप। 'दण्डाग्र' आदि उदाहरणों का निरूपण।

अध्याय ३५१ (पृ० १७१४-१७२८)

सुब्विभक्ति का सिद्धरूप। विभक्ति पदवाच्य सुप् तिङ् का कथन। स्त्रादि विभक्ति का निरूपण। अजन्त, हलन्त के भेद से प्रातिपदिक का दो प्रकार से कथन। पुनः उनका पुल्लिङ्गत्व आदि भेद से तीन प्रकार का वर्णन। वृक्षादि सिद्ध रूपों का कथन।

अध्याय ३५२ (पृ० १७२९-१७३२)

स्त्रीलिंग शब्दों का सिद्ध रूप। रमा आदि रूपों का कथन।

अध्याय ३५३ (पृ० १७३३-१७३५)

नपुंसक शब्दों का सिद्ध रूप।

अध्याय ३५४ (पृ० १७३५-१७४१)

कारक। 'अभिहित' और अनभिहित' के भेद से कर्ता के उत्तमत्त और अधमत्व का कथन। कर्म संज्ञा आदि का निरूपण।

अध्याय ३५५ (पृ० १७४१-१७४५)

समास। तत्पुरुष आदि समास का कथन।

अध्याय ३५६ (पृ० १७४५-१७५२)

तद्धित। तद्धित का सिद्ध रूप कथन।

अध्याय ३५७ (पृ० १७५२-१७५४)

उणादि के सिद्ध रूपों का कथन।

अध्याय ३५८ (पृ० १७५४-१७५८)

तिङ् विभक्ति के सिद्ध रूप।

अध्याय ३५९ (पृ० १७५९-१७६०)

कृदन्त के सिद्ध रूप।

अध्याय ३७० (पृ० १८३४-१८४०)

शरीर के अवयव। कर्मेन्द्रियों का निरूपण। देह में सात आशयों का कथन। पैर से लेकर सिर तक शरीर में सोलह जालों का निरूपण। ग्रीवा आदि अवयवों में नाडी का प्रमाण।

अध्याय ३७१ (पृ० १८४०-१८४६)

नरक निरूपण। 'शुभ कर्म करने वाले पुरुषों के प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं' यह कथन। याम्य मार्ग कथन। तामिस्र आदि नरकों का निरूपण। पापियों के नाना प्रकार की जातनाओं का वर्णन। आध्यात्मिक आदि तापों का लक्षण।

अध्याय ३७२ (पृ० १८४६-१८५१)

यमनियम। अष्टांग योग निरूपण। बलपूर्वक दूसरे का धन हरण करने पशु पक्षी योनि की प्राप्ति होती है, यह कथन। मन पर विजय आदि का कथन। विष्णु पूजन से उत्तम गति होती है, यह कथन।

अध्याय ३७३ (पृ० १८५२-१८५५)

आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार।

अध्याय ३७४ (पृ० १८५५-१८६०)

ध्यान। ध्यान-यज्ञ मुक्ति का साधन है, यह कथन। हृदय में विष्णु के ध्यानादि का कथन।

अध्याय ३७५ (पृ० १८६०-१८६४)

धारणा। धारणा लक्षण कथन। वारुणी धारणा। ऐशानी धारणा। धारणा आदि से साधक क्लेश रहित हो जाता है, यह कथन।

अध्याय ३७६ (पृ० १८६४-१८७०)

समाधि। समाधि का लक्षण। योगी की प्रशंसा। योगी सूर्यमण्डल का भेदन तथा ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं, यह निरूपण। सदाचारी गृहस्थ की भी मुक्ति होती है, यह कथन।

अध्याय ३७७ (पृ० १८७०-१८७४)

ब्रह्मज्ञान। देह आत्मा नहीं है, यह कथन। आत्मा का सर्वद्रष्टा होना, सर्व भोक्ता होना, यह कथन। लिंग शरीरादि की उत्पत्ति। ब्रह्मज्ञाता संसार से मुक्त हो जाता है, यह कथन।

अध्याय ३७८ (पृ० १८७४-१८७७)

ब्रह्मज्ञान।

अध्याय ३७९ (पृ० १८७७-१८८२)

ब्रह्मज्ञान। यज्ञों से देवताओं की प्राप्ति। तप से वैराग्य पद की प्राप्ति, कर्म संन्यास से ब्रह्मपद की प्राप्ति, वैराग्य से कृति में लय, ज्ञान से कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति' ये पाँच गतियाँ जीव की होती हैं, यह कथन। ब्रह्मज्ञान लक्षण आदि का कथन।

अध्याय ३८० (पृ० १८८२-१८९३)

अद्वैतब्रह्म विज्ञान। अन्त काल में मृग का स्मरण करने से मृग की ही देह मिली, यह कथन। अद्वैत ज्ञान के विषय में राजा और ब्राह्मण का संवाद। राजा और ब्राह्मण के संवाद में निदाघ ऋतु का संवाद कथन। ब्राह्मण के उपदेश से राजा की मुक्ति।

अध्याय ३८१ (पृ० १८९३-१९०२)

गीतासार।

अध्याय ३८२ (पृ० १९०३-१९०९)

यमगीता। गीता पठन का फल।

अध्याय ३८३ (पृ० १९०९-१९१९)

आग्नेय महापुराण का माहात्म्य। हेमन्त आदि में आग्नेय पुराण सुनने से अग्निष्टोमादि यज्ञों की फल प्राप्ति। आग्नेय पुराण के अन्तर्गत विषयक्रम का निरूपण। पुराण संख्या कथन। पुराण पाठक के पूजन आदि का निरूपण। पुस्तक दान प्रशंसा ॥+॥

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतम्

अग्निपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणश्लोकः

[1]श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम् ।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ॥१

मैं (व्यास) लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश कार्तिकेय, ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, अग्नि और इन्द्र आदि देवताओं को तथा वासुदेव (भगवान् कृष्ण) को नमस्कार करता हूँ ।१

नैमिषे हरिमीजाना ऋषयः शौनकादयः ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्वागतं सूतमब्रुवन् ॥२

नैमिषारण्य में विष्णु का यज्ञ करते हुए शौनक आदि ऋषियों ने तीर्थयात्रा के सिलसिले में (आये हुए) सूत से स्वागत (वचन) कहा ।२

ऋषय ऊचुः—

सूत त्वं पूजितोऽस्माभिः सारात्सारं वदस्व नः ।
येन[2] विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥३

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! हम सबने आपका पूजन किया । आप हमें सार से भी सार जो वस्तु है उसका उपदेश करें जिसके जानते ही मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।३

सूत उवाच—

सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः ।
ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥४

सूत बोले—भगवान् विष्णु सार से भी सार, सृष्टि आदि करने वाले तथा सर्वव्यापक हैं—उनको 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकार जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।४

---

१ लक्ष्मीमिति क्वचित्पुस्तके पाठः । २ विज्ञानमात्रेण इति ङ पुस्तके पाठः ।

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये[1]शब्दब्रह्म परं च यत्।
द्वे विद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ।।५

दो ब्रह्मों को जानना चाहिये—शब्द ब्रह्म और परब्रह्म को । दो विद्याओं को जानना चाहिये—ऐसा अथर्ववेद में (भी) आया है ।५

अहं शुकश्च पैलाद्या गत्वा वदरिकाश्रमम् ।
व्यासं नत्वा पृष्टवन्तः सोऽस्मान्सारमथाब्रवीत्[2] ।।६

मैंने और शुकजी तथा पैल आदि ऋषियों ने बदरिकाश्रम जाकर, (वहाँ) व्यासजी को प्रणाम करके (उनसे) पूछा । इसके बाद उन्होंने हमें सार वस्तु का उपदेश किया ।६

व्यास उवाच—

शुकाद्यैः श्रृणु सूत त्वं वसिष्ठो मां यथाब्रवीत्[3] ।
ब्रह्मसारं हि पृच्छन्तं मुनिभिश्च परात्परम्[4] ।।७

व्यासजी बोले—हे सूत ! शुक आदि मुनियों के साथ तुम सुनो जैसा कि मुनियों के साथ मेरे द्वारा पूछे जाने पर—श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ ब्रह्मतत्त्व को वसिष्ठ जी ने कहा था ।७

[5]वसिष्ठ उवाच—

द्विविधं[6] ब्रह्म वक्ष्यामि श्रृणु व्यासाखिलात्मगम्[7] ।
यथाग्निर्मां पुरा प्राह मुनिभिर्दैवतैः सह ।।८

वसिष्ठ बोले— हे व्यास ! सुनो ! निखिल चराचर में व्याप्त रहने वाले द्विविध ब्रह्म के विषय में प्राचीनकाल में अग्निदेव ने मुनियों और देवताओं के साथ मुझसे जैसा कहा था उसे मैं कहूँगा ।८

पुराणं परमाग्नेयं ब्रह्मविद्याक्षरं परम् ।
[8]ऋग्वेदाद्यपरं ब्रह्म[9] सर्वदेवसुखं[10] परम् ।।९

अग्निपुराण ब्रह्मविद्या, अक्षर, परमतत्त्व ऋग्वेदादि से अतिरिक्त परन्तु उनसे सम्मत और सब देवताओं को सुख देने वाला परम (उत्कृष्ट) ब्रह्म (अथवा ब्रह्मज्ञान) है ।९

---

१ 'अपरं च परं च यत्' इति कुत्रचित् पुस्तके पाठः । २ क. ङ. °त् । शु° ३ क. घ. यदब्र० । ४ ख. ङ. च. परापरम् । ५ इदमधिकम् । ६ ख. ग. द्वैविद्यं घ. द्वैविध्यम् । ७ क. ङ. °लाग्वग° । घ. °लानुगम् । ८ क. 'दाद्यं प' ङ. °दादिप° । ९ ख. ग. सर्ववेदमुखं । १० घ. सुखावहम् ।

अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं[१] वेदसम्मितम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं [२]पुण्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ।।१०

इस वेद-सम्मत पुराण को अग्निदेव ने कहा है इसीलिए इसका नाम अग्निपुराण पड़ गया है, इसके पढ़ने और सुनने वालों को यह पुराण (इस संसार में) भोग और (तदनन्तर) मोक्ष प्राप्त कराता है ।१०

कालाग्निरूपिणं विष्णुं ज्योतिर्ब्रह्म परात्परम्[३] ।
मुनिभिः पृष्टवान् देवं पूजितं ज्ञानकर्मभिः ।।११

मैंने भगवान् कालाग्निदेव से पूछा था, जो ज्ञान-कर्म में लगे हुए मुनियों से पूजित, परात्पर ब्रह्म, ज्योतिरूप और विष्णु-स्वरूप हैं ।११

वसिष्ठ उवाच—

संसारसागरोत्तारनावं[४] ब्रह्मेश्वरं वद ।
विद्यासारं यद्विदित्वा सर्वज्ञो जायते नरः ।।१२

वसिष्ठ बोले—हे देव ! संसार-सागर को पार करने के लिए नौकारूप, ज्ञानतत्त्व उस ब्रह्म-ईश्वर का उपदेश दें जिसे जान लेने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ।१२

अग्निरुवाच—

विष्णुः कालाग्निरुद्रोऽहं विद्यासारं वदामि ते ।
ब्रह्माग्नेयं[५] पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम् ।।१३

अग्निदेव बोले—मैं कालाग्नि, विष्णु और रुद्र हूँ और मैं इस अग्निपुराण को तुम्हें सुना रहा हूँ जो सम्पूर्ण विद्याओं का सार और सम्पूर्ण ज्ञान का कारण है ।१३

सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च ।
वंशानुचरितादेश्च मत्स्यकूर्मादिरूपधृक्[६] ।।१४

इस पुराण में सर्ग (ईश्वरकृत सृष्टि), प्रतिसर्ग (कार्य सृष्टि और लय) वंश (देवताओं और पितरों की वंशावली), मन्वन्तर (अर्थात् किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा वंशानुचरित (सूर्य चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन) और मत्स्य तथा कूर्म आदि रूपों को धारण करने वाले भगवान् विष्णु का वर्णन है ।१४

---

१ घ. ङ. °यं ब्रह्मसं° । २ घ. ङ. दिव्यं । ३ क. ङ. °रापरं° ।
४ क. °तारं नादं ब्र° । ५ क. ङ. विद्यासारं । ६ क. ङ. °पकम् ।

द्वे विद्ये भगवान् विष्णुः परा चैवापरा द्विज[1] ।
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदा[2] अङ्गानि षड् द्विज ॥१५
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः ।
छन्दोऽभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ॥१६
न्यायो वैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम् ।
अपरेयं परा विद्या यया ब्रह्मावगम्यते[3] ॥१७
यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रचरणं ध्रुवम्[4] ।
विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ॥१८
तथा ते कथयिष्यामि हेतुं मत्स्यादिरूपिणम् ॥१९

हे द्विज ! दो विद्यायें भगवान् विष्णु है --एक परा विद्या हैं और दूसरी अपरा विद्या । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छह वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष्, छन्दस्, मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गान्धर्व वेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र—ये सब अपरा विद्यायें हैं । परा विद्या वह है जिससे उस ब्रह्म का ज्ञान होता है जो अदृश्य, अग्राह्य, गोत्र और चरण शाखा से परे हैं । मैं मत्स्यादि रूप के हेतुभूत भगवान् विष्णु को आपसे उसी प्रकार कहूँगा जिस प्रकार प्राचीन काल में विष्णु ने मुझसे और ब्रह्मा ने देवताओं से कहा था ।१५–१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्यासप्रोक्ते
प्रथमः प्रश्नाध्यायः ।१

---

१ घ. च ह ! २ क. °दाङ्गानि च यद्द्विज । ३ घ. ङ. °ह्माभिग° । ४ घ. परम् । ङ. ध्रुवन ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

मत्स्यावतारकथावर्णनम्

वसिष्ठ उवाच—

मत्स्यादिरूपिणं विष्णुं ब्रूहि सर्गादिकारणम् ।
पुराणं ब्रह्म चाग्नेयं यथा विष्णोः पुरा श्रुतम् ॥१

वसिष्ठ बोले—सृष्टि के आदि कारण, मत्स्य आदि रूप धारण करने वाले विष्णु और प्राचीन काल में उनके मुख से सुने हुए ब्रह्म (वेद) रूप अग्निपुराण के विषय में बतलाइये ।१

अग्निरुवाच—

मत्स्यावतारं वक्ष्येऽहं वशिष्ठ शृणु वै हरेः ।
अवतारक्रिया दुष्टनष्ट्यै सत्पालनाय हि ॥२

अग्नि ने कहा—वसिष्ठ ! मैं विष्णु के मत्स्यावतार की कथा कह रहा हूँ, सुनो ! विष्णु के अवतार लेने का काम दुष्टों का नाश और सज्जनों का पालन करने के लिए होता है ।२

आसीदतीतकल्पान्ते[1] [2]ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादिका मुने ॥३

हे मुने ! बीते हुए कल्प के अन्त में ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था जिसमें भूः आदि सब लोक समुद्र में डूब गए थे ।३

मनुर्वैवस्वतस्तेपे तपो वै भुक्तिमुक्तये ।
एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥४
तस्याञ्जल्युदके मत्स्यः स्वल्प एकोऽभ्यपद्यत ।
क्षेप्तुकामं जले प्राह न मां क्षिप नृपोत्तम[3] ॥५

कल्पान्त में वैवस्वत मनु ने भोग और मोक्ष के लिए तपस्या की। एक बार जब वे कृतमाला नदी में तर्पण कर रहे थे तब उनके अञ्जलि के जल में एक छोटी सी मछली आ गई। जब उन्होंने उसे जल में फेंकना चाहा (तब) वह मछली बोल पड़ी—हे राजोत्तम ! मुझे मत फेंको ।४-५।

---

१ ख. ग. 'न्ते ब्रह्मन्नैमि० । २ क. ङ. ब्राह्मे । ३ घ. ङ. नरोत्तम ।

ग्राहादिभ्यो भयं मेऽत्र[1] तच्छ्रुत्वा कलशेऽक्षिपत्[2] ।
मनुं वृद्धः[3] पुनर्मत्स्यः प्राह तं देहि मे बृहत् ॥६
स्थानमेतद्वचः श्रुत्वा राजाथोदञ्चनेऽक्षिपत् ।
तत्र वृद्धोऽब्रवीद्भूपं पृथु देहि पदं मनो ॥७

क्योंकि वहाँ मुझे घड़ियाल आदि का डर है । यह सुनकर मनु ने उसे कलश-जल में डाल दिया । (उस कलश में वह मछली बढ़ने लगी और अपने लिये पर्याप्त स्थान न पाकर) बढ़ी हुई मछली ने मनु से फिर कहा—'मुझे बड़ा स्थान दो' । इस वचन को सुनकर राजा मनु ने उसे एक हौज में डाल दिया । वहाँ भी वह इसी प्रकार बढ़ कर राजा से कहने लगी—'हे मनु ! 'मुझे (और) बड़ा स्थान दो ।६-७।

सरोवरे पुनः क्षिप्तो ववृधे तत्प्रमाणवान् ।
ऊचे देहि बृहत्स्थानं प्राक्षिपच्चाम्बुधौ मनुः ॥८
लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षणमात्रेण सोऽभवत् ।
मत्स्यं तमद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः प्राब्रवीन्मनुः[4] ॥९

मनु ने (वहाँ से निकालकर) उसको एक सरोवर में डाल दिया । वहाँ भी बढ़ती-बढ़ती वह सरोवर के बराबर हो गई । उसने फिर कहा—(इससे भी) बड़ा स्थान दो ! (तब मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया) । क्षण भर में वह मछली एक लाख योजन (में) फैल गई । उस आश्चर्य-जनक मछली को देखकर आश्चर्य-युक्त मनु बोले ।८-९।

को भवान्ननु[5] विष्णुस्त्वं नारायण नमोऽस्तु ते ।
मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ॥१०

'प्रभो ! आप कौन हैं ? आप विष्णु हैं ? हे नारायण ! आपको नमस्कार है । हे जनार्दन ! आप किसलिए मुझे माया से मोहित कर रहे हैं ।१०

मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनुं वै पालने रतः[6] ।
अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये ॥११

मनु के (इस प्रकार) कहने पर (उस) मत्स्य ने मनु से कहा—'मैं सृष्टिपालक विष्णु हूँ जो इस जगत् के दुष्टों का नाश करने के लिए अवतरित हुआ हूँ ।११

---

१ घ. मेऽद्य । २ घ. °त् । स तु वृ° । ३ ग. क्रुद्धः । ४ घ. ङ. ततः । ५ घ. ङ. °नु वै विष्णुर्नारा° । ६ क. घ. ङ. रतम् ।

[1]सप्तमेऽथ दिने [2]ह्यब्धिः प्लावयिष्यति वै जगत् ।
उपस्थितायां नावि त्वं बीजादीनि निधाय[3] च ॥१२
सप्तर्षिभिः परिवृतो निशां ब्राह्मीं चरिष्यसि[4] ।
उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥१३

आज से सातवें दिन समुद्र संसार को डुबो देगा। जब एक बड़ी नाव आए तो संसार के सब प्रकार के बीजों को उसमें रख देना और स्वयं सप्तर्षियों के साथ, उस नाव पर चढ़कर उस ब्रह्मा के त्रिकाल तक विचरण करना और जब मैं वहाँ आ जाऊँ तो उस नाव को बड़े सर्प से मेरी सींग में बाँध देना। १२–१३।

इत्युक्त्वान्तर्दधे[5] मत्स्यो मनुः कालप्रतीक्षकः ।
स्थितः समुद्र उद्वेले नावमारुरुहे तदा ॥१४

यह कहकर वह मत्स्य अन्तर्धान हो गया। मनु उस समय की प्रतीक्षा करते रहे और समुद्र के बढ़ जाने पर वह नाव में बैठ गए।१४

एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ।
नावं बद्ध्वा[6] तस्य शृङ्गे मत्स्याख्यं च पुराणकम् ॥१५
शुश्राव मत्स्यात्पापघ्नं संस्तुवन् स्तुतिभिश्च तम् ।
ब्रह्मवेदप्रहर्तारं हयग्रीवं च दानवम् ॥१६
अवधीद्वेदमन्त्राद्यान्पालयामास केशवः ।
प्राप्ते[7] कल्पेऽथ वाराहे कूर्मरूपोऽभवद्धरिः ॥१७

(उसी समय) एक लाख योजन लम्बा एक सुनहला मत्स्य आया जिसके एक ही सींग थी। मनु ने उसकी सींग में नाव को बाँधकर उस मत्स्य (रूपधारी भगवान् विष्णु) को अनेक स्तुतियों से सन्तुष्ट करके उनके मुख से सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले मत्स्यपुराण को सुना। (उस कल्प में) भगवान् ने ब्रह्मा और वेदों को नष्ट करने वाले दानव हयग्रीव को मारकर वेदमन्त्रों और शास्त्र आदि की रक्षा की थी। तत्पश्चात् वाराह कल्प में भगवान् ने कूर्म अवतार धारण किया था।१५-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽग्निप्रोक्ते मत्स्यावतारणंनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

---

१ ङ. °मे दिवसे ह्य° । २ ग. घ. त्वब्धिः । ३ घ. ङ. विधाय । ४ ख. ङ. चरिष्यति । ५ ग. °न्तर्हिते मत्स्ये म° । °न्तर्हितो म° । ६ घ. ङ. बबन्ध तच्छृङ्गे । ७ क. ङ. पातुं रुद्रेऽथ ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

कूर्मावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये कूर्मावतारं च संश्रुतं[1] पापनाशनम्[2] ।
पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥१

अग्नि बोले—अब मैं कूर्मावतार का वर्णन करूँगा, जो श्रवणमात्र से पापों को नष्ट करने वाला है। प्राचीन काल में देवासुर-संग्राम में देवता लोग असुरों से हार गए थे।१

दुर्वाससश्च शापेन निश्श्रीकाश्चाभवंस्तदा ।
सुराः[3] क्षीराब्धिगं विष्णुमूचुः पालय वै सुरान् ॥२

(उस समय पराजित होने के साथ-साथ) वे दुर्वासा ऋषि के शाप से श्रीहीन भी हो गये थे। तब वे देवता क्षीरशायी विष्णु भगवान् से बोले—'(हे प्रभो !) हम देवताओं की (राक्षसों से) रक्षा कीजिये, ।२

ब्रह्मादिकान् हरिः प्राह सन्धिं कुर्वन्तु चासुरैः ।
क्षीराब्धिमथनार्थं च[4] अमृतार्थं श्रिये सुराः ॥३

(यह सुनकर) भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा आदि देवताओं से कहा—(अये देवताओं ! इस समय) क्षीरसागर के मन्थन के लिए, अमृत के लिए तथा श्री-प्राप्ति के लिए असुरों के साथ सन्धि कर लो।३

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे[5] ।
युष्मानमृतभाजोऽथ[6] करिष्यामि न दानवान् ॥४

(क्योंकि) किसी महान् कार्य की सिद्धि के लिये शत्रुओं के साथ भी सन्धि कर लेनी चाहिये। मैं तुम लोगों को ही अमृत प्रदान करूँगा दानवों को नहीं।४

---

१ घ. ङ. श्रुत्वा । २ घ. ङ. °पप्रणाश° । ३ ग. घ. ङ. स्तुत्वा । ४ ख. घ. हि । ५ ख. ग. कार्यस्य गौ° । ६ घ. ङ.° जो हि कारयामि ।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च[1] वासुकिम् ।
क्षीराब्धिं मत्सहायेन निर्मथत ह्यतन्द्रिताः ॥५

मन्दराचल को मथानी और वासुकि (नाग) को रस्सी बनाकर मेरी सहायता से आलस्य रहित होकर क्षीरसागर को मथ डालो ।५

विष्णूक्ताः संविदं कृत्वा दैत्यैः क्षीराब्धिमागताः ।
ततो मथितुमारब्धा यतः पुच्छं ततः सुराः ॥६

भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर देवताओं ने असुरों के साथ सन्धि कर ली और दैत्यों के साथ क्षीरसागर के समीप पहुँच गए । वहाँ दोनों ने मिल-कर समुद्र का मन्थन प्रारम्भ कर दिया । जिधर (वासुकि की) पूँछ थी उधर देवता लगे हुए थे ।६

फणिनिश्वाससङ्ग्लाना[2] हरिणाऽऽप्यायिताः सुराः ।
मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥७

सर्प (वासुकि) के (विषाक्त) श्वास से जब देवता घबड़ाने लगते थे तब भगवान् (इन्द्र) उन पर जलवृष्टि कर देते थे । समुद्रमन्थन प्रारम्भ होने पर वह मन्थन-दण्ड (मन्दराचल) जल में डूबने लगा, क्योंकि उसका कुछ आधार तो था ही नहीं ।७

कूर्मरूपं समास्थाय दध्रे विष्णुश्च मन्दरम् ।
क्षीराब्धेर्मथ्यमानाच्च विषं हालाहलं ह्यभूत् ॥८

(यह देखकर) भगवान् विष्णु ने कूर्मरूप धारण करके उस मन्दर को रोक लिया । मथे जाने वाले समुद्र से (पहले) हलाहल विष निकला ।८

हरेण धारितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभवत्[3] ।
ततोऽभूद्वारुणी देवी पारिजातश्च कौस्तुभः ॥९
गावश्चाप्सरसो दिव्या लक्ष्मीर्देवी हरिं गता ।
पश्यन्तः सर्वदेवास्तां स्तुवन्तः सश्रियोऽभवन् ॥१०

(उस हालाहल विष को कण्ठ में धारण करने से भगवान् शंकर नीलकण्ठ हो गये । तदनन्तर वारुणी (मदिरा), पारिजात (कल्पवृक्ष), कौस्तुभ (मणि) कामधेनु, दिव्य अप्सरायें और लक्ष्मी उत्पन्न हुई और उत्पन्न होते ही वह (लक्ष्मी) देवताओं के देखते-देखते विष्णु के पास चली गई । लक्ष्मी की स्तुति करके सभी देवता श्रीसम्पन्न हो गए ।९–१०।

---

१ ग. घ. ङ. तु । २ घ. ङ. 'सन्तप्ता ह॰ । ३ ख. ग. ॰तो हरः । त॰ ।

ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रदर्शकः[1]।
बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः[2] ॥११

तदनन्तर आयुर्वेद के आविष्कारक, विष्णु भगवान् के अवतार धन्वन्तरि अमृत से भरे हुए कमण्डलु को धारण करते हुए निकल आए।११

अमृतं तत्कराद्दैत्याः सुरेभ्योऽर्धं प्रदाय च।
गृहीत्वा जग्मुर्जम्भाद्या विष्णुः स्त्रीरूपधृक्ततः[3] ॥१२

जम्भ आदि दैत्य उनके हाथ से अमृत लेकर और आधा देवताओं को देकर चलते बने। यह देखकर विष्णु ने स्त्रीवेश धारण कर लिया।१२

तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां दैत्याःप्रोचुर्विमोहिताः।
भव भार्याऽमृतं गृह्य[4] पाययास्मान् वरानने ॥१३

उस रूपवती स्त्री को देखकर दैत्य मुग्ध होकर उससे कहने लगे—अयि सुन्दरि ! तुम हम दैत्यों की स्त्री बन जाओ और यह अमृत हमें पिलाओ।१३

तथेत्युक्त्वा हरिस्तेभ्यो गृहीत्वाऽपाययत्सुरान्।
चन्द्ररूपधरो राहुः पिबंश्चार्केन्दुनार्पितः[5] ॥१४

'ऐसा ही हो' कहकर (मोहिनीरूपधारी) भगवान् विष्णु उनसे अमृत लेकर देवताओं को पिलाने लगे। चन्द्रमा का रूप बनाकर (देवताओं के साथ) अमृत पीता हुआ राहु सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा पहचान लिया गया।१४

हरिणाप्यरिणा छिन्नं सबाहु[6] तच्छिरः[7] पृथक्।
कृपयाऽमरतां नीतं वरदं हरिमब्रवीत् ॥१५

दैत्यों के शत्रु विष्णु ने अपनी भुजाओं से राहु का सिर काटकर पृथक् कर दिया। परन्तु अपनी कृपा से उन्होंने (भगवान् विष्णु ने) राहु के उस कटे हुए शरीर को भी अमर कर दिया। तत्पश्चात् राहु ने वरदायक भगवान् विष्णु से कहा।१५

राहुर्मत्तस्तु चन्द्रार्कौ प्राप्स्येते ग्रहणंग्रहः[8]।
तस्मिन् काले च यद्दानं दास्यन्ते स्यात्तदक्षयम् ॥१६

मैं राहु ग्रह हूँ, मुझसे चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण को प्राप्त करेंगे और उस वेला में जो भी दान दिया जायेगा वह अक्षय हो जायेगा।१६

---

१ ख. ग. °प्रवर्तकः। २ ङ. समन्वितम्। ३ ग. °पमागतः। ४ ग. गुह्यम्। ५ क्वचित्पुस्तके—°न्दुसूचितः इतिपाठो वर्तते। ६ घ. स राहुस्तच्छि°। ७ ग. कण्ठतःशिरः। ८ क. ख. घ. च. °हः। भवेयं ये तदा दानम्।

तथेत्याहाथ तं विष्णुस्ततः सर्वैः[1] सहामरैः ।
[2]स्त्रीरूपं सम्परित्यज्य [3]हरेणोक्तं प्रदर्शय ॥ १७
दर्शयामास रुद्राय स्त्रीरूपं भगवान् हरिः ।
मायया मोहितः शम्भुर्गौरीं त्यक्त्वा स्त्रियं गतः ॥ १८

भगवान् विष्णु ने कहा—'ऐसा ही होगा'। तदनन्तर सभी देवताओं के साथ (रहकर) भगवान् विष्णु ने स्त्रीरूप छोड़ दिया। स्त्रीरूप का त्याग करने के बाद भगवान् शंकर ने भगवान् विष्णु से कहा—(मुझे वह स्त्री-रूप पुनः) दिखाइये। (फिर) भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव को स्त्रीरूप दिखा दिया। माया से मोहित होकर भगवान् शङ्कर (प्रियतमा) गौरी को छोड़कर उस (मोहिनी) स्त्री के पास पहुँच गये।१७-१८।

नग्न [4]उन्मत्तरूपोऽभूत्स्त्रियः (याः) केशानधारयत् ।
अगाद्विमुच्य केशान्स्त्री अन्वधावच्च तां गताम् ॥ १९

नंगे (काम से) पागल रूप वाले शिव ने (मोहिनी) स्त्री के बालों को पकड़ लिया। वह स्त्री अपने केश छुड़ाकर भागने लगी, किन्तु (वह कामातुर शंकर भी) उसका पीछा किये जा रहे थे।१९

स्खलितं तस्य वीर्यं कौ यत्र यत्र हरस्य हि ।
तत्र [5]तत्राभवत्क्षेत्रं लिङ्गानां कनकस्य च ॥ २०

जहाँ-जहाँ पृथ्वी पर (कामातुर शंकर जी का) वीर्य गिरा वहाँ-वहाँ शिवलिंग और सोने के क्षेत्र बन गये।२०

मायेयमिति तां ज्ञात्वा स्वरूपस्थोऽभवद्धर[6]ः ।
शिवमाह हरी रुद्र जिता माया त्वया हि मे ॥ २१

(अन्त में) यह माया है—ऐसा जानकर भगवान् शिव अपने (वास्तविक) रूप में आ गये। यह देखकर भगवान् विष्णु ने रुद्र से कहा—हे शिव! तुमने मेरी माया को जीत लिया है।२१

न जेतुमेनां शक्तो मे[7] त्वदृतेऽन्यः पुमान्भुवि ।
[8]अप्राप्ताश्चामृतं दैत्या देवैर्युद्धे निपातिताः ॥२२

---

१ ङ. च. सर्वैस्तदामरैः। २ स्त्रीरूपं ....हरिः ग. पुस्तके नास्ति।
३ क. ख. घ. हरेणोक्तः। ४ ख. ग. °पोऽपि स्त्रियः। ५ क. तत्र च तत्क्षे°। ६ ख. °द्धरेः। शि°। ७ क. मे त्वामृते°। ८ ग. घ. अप्राप्याथामृ°।

तुमको छोड़कर इस पृथ्वी पर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है जो मेरी इस (माया को) जीत सके। (इस प्रकार विष्णु की माया से मुग्ध होकर) दैत्यगण अमृत से वञ्चित होकर युद्ध में (भी) देवताओं के द्वारा हरा दिये गये।२२

त्रिदिवस्था: सुराश्चासन्दैत्या:[१] पातालवासिन:।
यो नर: पठते देवविजयं त्रिदिवं व्रजेत् ॥ २३

(विजयी) देवता स्वर्ग में रहने लगे (और) दैत्य लोग पाताल के निवासी हो गए। जो मनुष्य (इस) देवविजय (आख्यान) को पढ़ता है वह स्वर्ग चला जाता है।२३

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विद्यासारे कूर्मावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्याय:।३

अथ चतुर्थोऽध्याय:

वराहनरसिंहादीनामवताराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच—

अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽहं पापनाशनम्।
हिरण्याक्षोऽसुरेशोऽभूद्देवाञ्जित्वा दिवि[२] स्थित: ॥ १

अग्नि बोले—(अब मैं) पापनाश कवराहावतारका वर्णन करूँगा। हिरण्याक्ष नामक एक दैत्यराज था जो देवताओं को जीतकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित हो गया।१

देवैर्गत्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहक:।
अभूत्तं दानवं हत्वा दैत्यै:[३]सार्धं तु कण्टकम् ॥ २
धर्मदेवादिरक्षाकृत्तत: सोऽन्तर्दधे हरि:।

---

१ क. ङ. च. ⁰सन्य: पठेत्स दिवं। घ. सन्य: पठेत् त्रिदिवं। २ क. ङ. च. दिवं। ३ घ. ङ. साकं च।

देवताओं ने जाकर यज्ञ-रूप वराह रूपधारी भगवान् विष्णु की स्तुति की और उन्होंने दैत्यों के साथ उस कण्टकभूत दैत्यराज हिरण्याक्ष का वध करके धर्म और देवता आदि की रक्षा की। तदनन्तर (वराहरूपधारी) भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गए ॥२½

हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ ३

जितदेवयज्ञभागः सर्वदेवाधिकारकृत् ।

नारसिंहं वपुः कृत्वा तं जघान सुरैः[1] सह ॥ ४

हिरण्याक्ष का भाई हिरण्यकशिपु हुआ जिसने यज्ञ में देवताओं के भाग को तो जीत ही लिया, सभी देवताओं को भी अपने अधिकार में कर लिया। भगवान् विष्णु ने नरसिंह का रूप धारण करके उसको मार डाला।३-४।

स्वपदस्थान्सुरांश्चक्रे नारसिंहः सुरैः[2]स्तुतः ।

देवासुरे पुरा युद्धे वलिप्रभृतिभिः सुराः ॥ ५

जिताः स्वर्गात्परिभ्रष्टा हरिं ते[3] शरणं गताः । ५½

भगवान् विष्णु ने देवताओं को उनके अपने स्थान स्वर्ग में प्रतिष्ठित कर दिया। (इससे प्रसन्न होकर) देवताओं ने भगवान् नृसिंह की स्तुति की। प्राचीनकाल में देवासुर-संग्राम में वलि आदि से हारकर देवता स्वर्गलोक से परिभ्रष्ट होकर भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे।५½

सुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ॥ ६

स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्यां[4] स क्रतुं ययौ ।

वलेः श्रीयजमानस्य, गङ्गाद्वारे[5] गृणन् स्तुतिम् ॥ ७

भगवान् ने देवताओं को अभय-दान दे दिया। अदिति और कश्यप की स्तुति से (प्रसन्न होकर विष्णु ने) अदिति के गर्भ से (वामन के रूप में अवतार लिया। (वामन) यज्ञ में लगे हुए वलि के यज्ञ में गये। (वामन ने) गङ्गाद्वार में स्तुतिपाठ किया।६-७।

वेदान्पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत् ।

([6]निवारितोऽपि शुक्रेण वलिर्ब्रूहि यदिच्छसि ॥ ८

तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि, वामनो बलिमब्रवीत् ।)

पदत्रयं मे गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥ ९

---

१ ख. ग. ङ.॰ घानासु॰ । २ च. ॰रैः सह । दे॰ । ३ घ. ङ. वै । ४ क. ॰दित्याश्च क्र॰ । ५ ख. च. ॰रे गृणञ्श्रुतिम् । घ.॰ रेऽगृणाच्छ्रुतिम् । ६ निवारितोऽपि••••••वलिमब्रवीत् ग. पुस्तके नास्ति ।

इष्ट मनोरथ को पूर्ण करने वाले बलि ने वेदपाठी वामन के वेदपाठ को सुनकर (कुछ माँगने के लिए) कहा। (शुक्राचार्य के द्वारा मना किये जाने पर भी बलि ने कहा—आपकी जो इच्छा हो माँगिए, मैं आपको अवश्य दूँगा। तब वामन ने बलि से कहा—) मेरे गुरु के लिये तीन पग (भूमि) दे दो। बलि ने वामन से कहा—मैं दे दूँगा।८-९।

तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकं[1] च पदत्रयम्॥ १०
चक्रे बलिं च सुतले तच्छक्राय ददौ हरिः।
शक्रो देवैर्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूत्॥ ११

(संकल्प) जल हाथ पर पड़ते ही वामन ने अपना विराट् रूप धारण कर लिया। उन्होंने भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक को अपना तीन पग बना लिया और (राजा) बलि को सुतल में भेज दिया। इन्द्र को स्वर्गलोक दे डाला। देवताओं के सहित इन्द्र ने भगवान् विष्णु की स्तुति की और स्वयं भुवनेश बनकर सुखी हो गये।१०-११।

वक्ष्ये परशुरामस्य चावतारं शृणु द्विज।
उद्धतान्क्षत्रियान्मत्वा भूभारहरणाय[2] सः॥ १२
अवतीर्णो हरिः[3] शान्त्यै देवविप्रादिपालकः।
जमदग्ने रेणुकायां भार्गवः शस्त्रपारगः॥ १३

हे ब्राह्मण! अब मैं परशुराम का अवतार कहूँगा। सुनो! क्षत्रियों को उद्धत जानकर पृथ्वी का बोझ दूर करने के लिए देवता और ब्राह्मण आदि का पालन करने वाले भगवान् विष्णु ने (विश्व) शान्ति के लिए जमदग्नि की पत्नी रेणुका के गर्भ से परशुराम के रूप में अवतार लिया। भृगुवंशी परशुराम शस्त्रविद्या में पारंगत थे।१२-१३।

दत्तात्रेयप्रसादेन कार्तवीर्यो नृपस्त्वभूत्।
सहस्रबाहुः सर्वोर्वीपतिः स मृगयां गतः॥ १४

(उस समय) भगवान् दत्तात्रेय की कृपा से सहस्रबाहु कार्तवीर्य राजा हुए। हजार भुजाओं वाले और सारी पृथ्वी के स्वामी वे राजा कार्तवीर्य (एक बार) शिकार खेलने गये।१४

---

१ च. स्वर्गलोकं प°। २ ङ. च.° रतर°। ३ ग,° रिः साक्षाद्देव°।

श्रान्तो[1] निमन्त्रितोऽरण्ये मुनिना जमदग्निना ।
कामधेनुप्रभावेण भोजितः सबलो नृपः ॥ १५

उस जंगल में मृगया से थके हुए महाराज कार्तवीर्य को जगदग्नि ने (अपने आश्रम में) निमन्त्रण दिया और कामधेनु के प्रभाव से सेना सहित राजा को भोजन कराया ।१५

अप्रार्थयत्कामधेनुं[2] यदा स न ददौ तदा ।
हृतवानथ रामेण शिरश्छित्वा निपातितः ॥ १६

(यह देखकर लोभवश) राजा ने उस कामधेनु को (जमदग्नि से) माँगा, किन्तु जब उन्होंने नहीं दिया तब बलात् उसे छीन लिया। इसके बाद परशुराम ने (राजा का) सिर काटकर (उसे) मार गिराया ।१६

([3]युद्धे परशुना राजा सधेनुः स्वाश्रमं ययौ ।
कार्तवीर्यस्य पुत्रैस्तु जमदग्निर्निपातितः ॥ १७)

युद्ध में परशुराम ने राजा का वध कर दिया और गाय को छीनकर उसे वह अपने आश्रम में ले आए। (उधर) कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि का वध कर डाला ।१७

रामे वनं गते[4] वैरादथ रामः समागतः ।
पितरं निहतं दृष्ट्वा पितृनाशाभिमर्षितः ॥ १८
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रामकरोद्विभुः[5] ।
कुरुक्षेत्रे पञ्च कुण्डान् कृत्वा सन्तर्प्य वै पितृन् ॥ १९
कश्यपाय[6] महीं दत्त्वा महेन्द्रे पर्वते स्थितः ।

जब परशुराम वन में लौटकर फिर अपने आश्रम में आए तब वैर से पिता को मरा हुआ देखकर पितृवध से क्रुद्ध होकर व्यापक परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दिया (और) कुरुक्षेत्र में पाँच कुण्ड बनवाकर (उनसे) पितरों का तर्पण करके, समस्त पृथ्वी कश्यप को देकर स्वयं महेन्द्र पर्वत पर चले गये ।१८-१९।

कूर्मस्य च वराहस्य नृसिंहस्य च वामनम् । २०
अवतारं[7] च रामस्य श्रुत्वा याति दिवं नरः ॥ २१

---

१ क. शान्तो । २ ख. ग.° यद्धोम° ३ युद्धे·······निपातितः ग. पुस्तके नास्ति । ४ क. ङ. च. °ते वीस° । ५ ख. ग. °रोत्प्रभुः । ६ य. काश्यपाय । ७ क. ङ. च. °रं स ना° ।

कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम की अवतारकथा सुनकर मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है ।२०-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वराहनृसिंहवामनपरशुरामावतारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथावर्णनम

अग्निरुवाच—

रामायणमहं वक्ष्ये नारदेनोदितं पुरा ।
वाल्मीकये यथा[1] तद्वत्पठितं भुक्तिमुक्तिदम् ।। १

अग्नि बोले—'अब मैं रामायण की कथा को जैसे प्राचीन काल में नारद ने वालमीकि से कहा था उस प्रकार से कहूँगा । (वह रामायण कथा) पढ़ी जाने पर (संसार में) भोग और (वाद में) मोक्ष दोनों प्रदान करती' है ।१

नारद उवाच[2]—

विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
मरीचेः कश्यपस्तस्मात्सूर्यो वैवस्वतो मनुः ।। २

नारद बोले—विष्णु से पद्मयोनि ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से कश्यप उत्पन्न हुए । कश्यप से सूर्य और सूर्य से वैवस्वत मनु हुए ।२

---

१ ख. ग. वाल्मीकाय । २ ग. ०च—सृष्ट्यर्थं च हरेर्ब्रह्मा ।

ततस्तस्मान्नथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः ।
ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः ॥३

फिर उसी प्रकार वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकु के वंश में ककुत्स्थ हुए । ककुत्स्थ के रघु, रघु के अज और अज से दशरथ (उत्पन्न हुए) ।३

रावणादेर्वधार्थाय चतुर्धाभूत्स्वयं हरिः ।
राज्ञो दशरथाद्रामः कौसल्यायां वभूव ह ॥४
कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायां च लक्ष्मणः ।
शत्रुघ्नश्चर्ष्यशृङ्गेण[1] तासु सन्दत्तपायसात् ॥५
प्राशिताद्यज्ञसंसिद्धाद्रामाद्याश्च समाः पितुः ॥५३

रावण आदि (दुष्टों) का वध करने के लिए स्वयं भगवान् विष्णु चार रूपों में अवतरित हुए । राजा दशरथ के पुत्र राम कौसल्या के गर्भ से हुए । कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए । ऋष्यशृङ्ग ऋषि द्वारा कराये गए पुत्रेष्टि यज्ञ में सम्यक् सिद्ध हविष् को खिलाने से राम आदि (चारों पुत्र) पिता दशरथ के समान हुए ।४-५३।

यज्ञविघ्नविनाशाय विश्वामित्रार्थितो नृपः ॥६
रामं सम्प्रेषयामास लक्ष्मणं मुनिना सह ।
रामो गतोऽस्त्रशस्त्राणि शिक्षितस्ताडकान्तकृत्[2] ॥७

विश्वामित्र ने यज्ञ के विघ्नों को नष्ट करने के लिए महाराज दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँगा । महाराज दशरथ ने मुनि के साथ अपने दोनों पुत्रों—राम और लक्ष्मण को भेज दिया । भगवान् राम गये, (विश्वामित्र से) अस्त्र और शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की तथा ताड़का राक्षसी का वध करने वाले हुए ।६-७।

मारीचं मानवास्त्रेण[3] मोहितं दूरतोऽनयत् ।
सुबाहुं यज्ञहन्तारं सबलं चावधीद्वली[4] ॥८

भगवान् राम ने मानवास्त्र से मूर्च्छित (करके) मारीच को दूर पहुँचा दिया । फिर बलवान् भगवान् राम ने यज्ञ-विध्वंसक सुबाहु को उसकी सेना के सहित मारडाला ।८

---

१ ख. ग. घ. ०घ्न ऋष्य० । २ ख. ग. ०स्ताटका० । ३ क. पावकास्त्रेण । ङ. च. पावनास्त्रेण । ४ ०धीद्व्रती ।

सिद्धाश्रमनिवासी च विश्वामित्रादिभिः सह ।
गतः क्रतुं मैथिलस्य द्रष्टुं चापं[1] सहानुजः ।।९

सिद्धाश्रम में निवास करते हुए राम अपने अनुज लक्ष्मण और विश्वामित्र आदि ऋषियों के साथ मैथिल राजा जनक के यज्ञ में (शिवजी का) धनुष देखने गये ।९

[2]शतानन्दनिमित्तेन विश्वामित्रप्रभावतः[3] ।
रामश्च[4] प्रथितो[5] राज्ञा समुनिः पूजितः क्रतौ ।।१०

(वह यज्ञ) शतानन्द को (पुरोहित रूप) निमित्त बनाकर विश्वामित्र के प्रभाव से (हुआ) । भगवान् राम मुनि विश्वामित्र के साथ यज्ञ में राजा जनक के द्वारा पूजित और प्रशंसित हुए ।१०

धनुरापूरयामास लीलया स बभञ्ज तत् ।
वीर्यशुल्कां स जनकः सीतां कन्यां त्वयोनिजाम् ।।११
ददौ रामाय, रामोऽपि पित्रादौ हि समागते ।
उपयेमे जानकीं तामूर्मिलां लक्ष्मणस्तदा[6] ।।१२

भगवान् राम ने खेल-खेल ही में धनुष पर डोरी चढ़ा दी और वह धनुष टूट गया । तब राजा जनक ने 'वीरता ही जिसकी कीमत थी' उस अयोनिज (भू-पुत्री) अपनी कन्या सीता को राम को दे दिया । पिता दशरथ आदि के आने पर भगवान् राम ने सीताजी से विवाह किया । उसी समय लक्ष्मण ने ऊर्मिला से (विवाह किया) ।११-१२।

श्रुतकीर्तिर्माण्डवी च कुशध्वजसुते तथा ।
जनकस्यानुजस्यैते शत्रुघ्नभरतावुभौ ।।१३

जनक के छोटे भाई कुशध्वज की दो कन्याओं—श्रुतकीर्ति और माण्डवी का विवाह (क्रमशः) शत्रुघ्न और भरत से हो गया ।१३

कन्ये द्वे तूपयेमाते, जनकेन सुपूजितः[7] ।
रामोऽगात्स वसिष्ठाद्यैर्जामदग्न्यं विजित्य च ।।१४
अयोध्यां भरतोऽप्यागात्सशत्रुघ्नो[8] युधाजितः[9] ।।१५

---

१ क. चायं । २ क. सदान॰ । ३ ख. ग. ङ. च. वकः । रा॰ । ४ ख. ग. घ. ङ. च. रामाय । ५ ख. ग. ङ. कथितो । ६ घ. ङ. ॰स्तथा । श्रु॰ । ७ ङ. च. सूपूजिताः । ८ क. ॰घ्नोऽथ राजिताम् । ख. ग. ङ.॰ घ्नो युधाजितम् । ९ पुरीमिति शेषः ।

जनक के द्वारा सम्मानित होकर और परशुराम को जीतकर वसिष्ठ आदि ऋषियों के साथ राम तो अयोध्या लौट गये और भरत शत्रुघ्न के साथ अपने मामा युधाजित के पास—ननिहाल कैकयदेश चले गये।१४-१५।

इत्यादिमहापुराणे श्रीरामायणे बालकाण्डे
पञ्चमोऽध्यायः।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

रामायणेऽयोध्याकाण्डम्।

नारद उवाच—

भरतेऽथ गते रामः पित्रादीनभ्यपूजयत्।
राजा दशरथो राममुवाच शृणु राघव॥ १

नारद बोले—भरत के चले जाने पर राम माता-पिता का आदर सत्कार करने लगे। (कुछ समय बीतने पर) महाराज दशरथ ने राम से कहा—'राघव' सुनो।१

[1]गुणानुरागाद्राज्ये त्वं प्रजाभिरभिषेचितः।
मनसाहं प्रभाते ते[2] यौवराज्यं ददामि ह॥ २

तुम्हारे गुणों में अनुरक्त प्रजा ने मन से तुम्हारा अभिषेक कर (ही) दिया है। प्रातःकाल मैं (भी) तुम्हें युवराज का पद प्रदान कर दूँगा।२

रात्रौ त्वं सीतया सार्धं संयतः सुव्रतो भव।
राज्ञश्च मन्त्रिणश्चाष्टौ[3] सवसिष्ठस्तथाऽ[4]ब्रुवन्॥ ३
दृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राज्यवर्धनः[5]।
अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रः सवसिष्ठकः[6]॥ ४

---

१ क. ङ. गुणान्धरागा॰। च. गुणान्धकाराद्रा॰। २ ङ. त्वां। ३ क. ॰श्चाशुस॰। ४ ख. ॰स्तदाऽब्रु॰। ५ ग. घ. राष्ट्रवर्धनः। ६ क. ॰को मन्त्रपा॰।

'रात्रि में तुम सीता के साथ संयमपूर्वक व्रत का पालन करना।' राजगुरु वसिष्ठ के साथ राजा के आठ मन्त्रिगण—दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राज्यवर्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमन्त्र ने भी इसका समर्थन किया।३-४।

पित्रादिवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः।
स्थितो देवार्चनं कृत्वा कौसल्यायै[1] निवेद्य तत्॥ ५

पिता, राजगुरु और मन्त्रियों का अभिमत सुनकर राम ने 'ऐसा हो' कहकर तथा उस (समाचार) को कौशल्या को सुनाकर, देव-पूजन करके (व्रतयुक्त) हो गये।५

राजोवाच वसिष्ठादीन् रामराज्याभिषेचने।
सम्भारान् सम्भरन्तु[2] स्म इत्युक्त्वा कैकयीं गतः॥ ६

महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि से 'राम के राज्याभिषेक की सामग्री जुटायी' जाय ऐसा कह कर कैकयी के पास चले गये।६

अयोध्यालङ्कृतिं दृष्ट्वा ज्ञात्वा रामाभिषेचनम्।
भविष्यतीत्याचचक्षे कैकेयीं मन्थराऽसती[3]॥ ७

इधर राजधानी अयोध्या की सजावट को देखकर और (दूसरे दिन) राम का अभिषेक होगा – यह जानकर दुष्टा मन्थरा ने कैकेयी से कहा।७

पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता सापराधतः।
तेन वैरेण सा रामं वनवासं च[4] काङ्क्षति॥ ८

(बात यह थी कि एक बार) किसी गलती पर भगवान् राम ने उसका पैर पकड़ कर घसीटा था। उसी दुश्मनी से मन्थरा भगवान् राम का वनवास चाहती थी।८

कैकेयि[5] त्वं समुत्तिष्ठ रामराज्याभिषेचनम्।
मरणं तव पुत्रस्य मम ते नात्र संशयः॥ ९

(मन्थरा कैकेयी के पास जाकर बोली)—हे कैकेयी! तुम उठ जाओ। राम के राज्याभिषेक (का अर्थ) तेरी, तेरे पुत्र की (और) मेरी मौत (ही है) इसमें कोई सन्देह नहीं।९

कुब्जयोक्तं च तच्छ्रुत्वा एकमाभरणं ददौ।
उवाच मे यथा रामस्तथा[6] मे भरतः सुतः॥ १०

---

१ क. ख. ग. घ. ङ. कौशल्या° । २ क. ख. घ. °भवन्तु। ३ घ. °रा सखी। पा°। ४. क. च. च. कां गतिम्। कै°। ग. ङ. च काङ्क्षती। कै°। ५ क. ग. कैकयी। ख. घ. ङ. कैकयि। ६ च. रामो भरतो मत्सुकस्तथा। ङ°।

कुबड़ी (मन्थरा) की इस बात को सुनकर कैकेयी ने अपना एक आभूषण उतारकर उसे दे दिया और बोली—जैसे राम मेरे हैं वैसे ही भरत मेरे पुत्र हैं।१०

उपायं[1] तं न पश्यामि भरतो येन राज्यभाक्।
कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धा[2] हारं त्यक्त्वाथ मन्थरा॥ ११

मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं सूझ रहा है जिससे भरत राज्य के अधिकारी (भोक्ता) हो सकें। इसके बाद कुपित होकर, हार का परित्याग करके मन्थरा कैकेयी से बोली।११

मन्थरोवाच—

बालिशे रक्ष भरतमात्मानं मां च राघवात्।
भविता राघवो राजा राघवस्य ततः सुताः[3]॥ १२

मन्थरा बोली—'अयि मूर्खे! राम से भरत की, अपनी और मेरी रक्षा करो। (अभी) राम राजा होंगे तत्पश्चात् उनकी सन्तान राज्य की अधिकारी होगी।१२

राजवंशस्तु कैकेयि, भरतात्परिहास्यते।
देवासुरे पुरा युद्धे शम्बरेण हताः सुराः॥ १३

कैकयी! इस प्रकार तो राजवंश भरत के हाथ से निकल ही जायेगा। (क्या तुम्हें स्मरण नहीं कि) आज से वर्षों पहले देवासुर संग्राम में शम्बर ने देवताओं को पराजित कर दिया था।१३

रात्रौ भर्ता गतस्तत्र रक्षितो विद्यया त्वया।
वरद्वयं तदा प्रादाद्याचेदानीं नृपं च यत्॥ १४

उस युद्ध में रात्रि के समय तुम्हारे स्वामी (देवताओं की सहायता के लिए) गये हुए थे। उस समय तुमने अपनी विद्या से राजा के प्राणों की रक्षा की थी। तब प्रसन्न होकर उन्होंने तुम्हें दो वर दिये थे। इस समय उन्हीं को माँग लो।१४

रामस्य च वने वासं नव वर्षाणि पञ्च च।
यौवराज्यं च भरते तदिदानीं प्रदास्यति॥ १५

उनमें से एक वर हो राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास और दूसरा

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. °यं तु न। २ क. °वीत्कुब्जा हा°। ३ ख. घ. सुतः।

हो भरत को यौवराज्य प्रदान करना। (माँग कर तो देखो) राजा इस समय दे देंगे।१५

प्रोत्साहिता कुब्जया सा अनर्थे चार्थदर्शिनी।
उवाच सदुपायो[1] मे कथितः [2]स करिष्यति॥ १६

कुबड़ी की कूटनीति से प्रोत्साहित होकर, अनर्थ में भी स्वार्थ-सिद्धि देखने वाली कैकेयी बोली—तुमने मुझे अच्छा उपाय बतलाया। वह राजा इसे अवश्य करेगा।१६

क्रोधागारं प्रविश्याथ[3] पतिता भुवि मूर्च्छिता।
द्विजादीनर्चयित्वाथ राजा दशरथस्तदा॥ १७
ददर्श कैकयीं रुष्टामुवाच कथमीदृशी।
रोगार्ता किं भयोद्विग्ना किमिच्छसि करोमि तत्॥ १८

इसके बाद कोप-भवन में जाकर कैकेयी भूमि पर गिरकर मूर्च्छित हो गयी। तदनन्तर राजा दशरथ ने द्विज और देवताओं की पूजा से निवृत्त होकर देखा कि कैकेयी रुष्ट (पड़ी हुई) है। उन्होंने पूछा—तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हो गई है? क्या तुम किसी रोग से पीड़ित हो? अथवा किसी भय से उद्विग्न हो? कहो, क्या चाहती हो? मैं अवश्य उसको पूरा करूँगा।१७-१८।

येन रामेण हि विना न जीवामि मुहूर्तकम्।
शपामि तेन कुर्यां ते वाञ्छितं तव सुन्दरि॥ १९

अयि सुन्दरि! जिन राम के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता हूँ, उनकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे मनोरथ को अवश्य पूर्ण करूँगा।१९

सत्यं ब्रूहीति सोवाच नृप मह्यं ददासि चेत्।
वरद्वयं पूर्वदत्तं सत्यार्थं[4] देहि मे नृप॥ २०

उसने कहा—हे महाराज! सच-सच कहना। यदि तुम मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो उन दो वरों को दो जिन्हें तुम मुझे पहले ही दे चुके हो। आज अपनी बात को सत्य कर दो।२०

चतुर्दश समा रामो वने वसतु संयतः[5]।
सम्भारैरेभिरद्यैव भरतोऽत्राभिषेच्यताम्[6]॥ २१

---

१ क. ङ. च. स त्वया यन्मे कथितं कारयिष्यति। ख. घ. सदुपायं मे कञ्चित्तं कारयिष्यति। २ ख. घ. च. प्रविष्टाऽथ। ३ स दशरथः ४. घ. सत्यात्त्वं। ५ क. ग. संगतः। ६ ख. ग. ङ. च. °भिषिच्य°।

पहला वर है कि राम संयमपूर्वक चौदह वर्ष वन में रहें और इन सामग्रियों से जिनसे राम का राज्याभिषेक होने वाला था, आज ही यहीं उनसे भरत का अभिषेक कर दो ।२१

विषं पीत्वा मरिष्यामि दास्यसि त्वं न[1] चेन्नृप ।
तच्छ्रुत्वा मूर्च्छितो भूमौ वज्राहत इवापतत् ।। २२
मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ।। २२½

हे महाराज ! यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी । कैकेयी की इन बातों को सुनकर राजा दशरथ मूर्च्छित हो गए और वज्राहत के समान पृथ्वी पर गिर पड़े । थोड़ी देर बाद चेतना लौटने पर वे कैकेयी से कहने लगे ।२२½।

दशरथ उवाच—

किं कृतं तव रामेण मया वा पापनिश्चये ।
यन्मामेवं ब्रवीषि त्वं सर्वलोकाप्रियङ्करि ।। २३

दशरथ बोले——अयि ! तुम तो पाप करने पर तुल गयी हो । अरे राम ने अथवा मैंने ही तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम ऐसा कह रही हो ? हे सम्पूर्ण संसार का अप्रिय करने वाली ! ।२३

केवलं त्वत्प्रियं कृत्वा भविष्यामि सुनिन्दितः ।
न[2] त्वं भार्या कालरात्रिर्भरतो नेदृशः सुतः ।। २४

केवल तुम्हारा ही प्रिय मनोरथ पूर्ण करके मैं संसार में निन्दित हो जाऊँगा । तुम मेरी भार्या नहीं, तुम तो मेरी कालरात्रि हो । भरत ऐसा (अर्थात् तुम्हारी तरह) पुत्र नहीं है ।२४

प्रशाधि विधवा राज्यं मृते मयि गते सुते ।
सत्यपाशनिबद्धस्तु[3] राममाहूय चाब्रवीत् ।। २५

'(अच्छा तो अब) मेरे मर जाने और पुत्र राम के वन चले जाने पर तुम विधवा होकर शासन करो ।' (कैकेयी से ऐसा कहकर) सत्य के फन्दे से बँधे हुए महाराज दशरथ ने राम को बुलाकर कहा——।२५

कैकेय्या वञ्चितो राम राज्यं कुरु निगृह्य माम् ।

---

१ ग. न मे नृप । २ घ. या त्वं भार्या कालरात्रिर्भर° । ३ क. ङ. च. °पाशेन ब° ।

[१]त्वया वने तु[२] वस्तव्यं कैकेयी भरतो नृपः[३]।। २६

हे राम ! कैकेयी ने मुझे ठग लिया। तुम मुझे गिरफ्तार करके राज्य करो। (कैकेयी ने वर माँगा है कि) तुम वन में निवास करो और कैकेयी (–सहित उस) का पुत्र भरत राजा बने।२६

[४]पितरं चैव कैकेयीं नमस्कृत्य प्रदक्षिणम्।
कृत्वा नत्वा च कौसल्यां समाश्वास्य सलक्ष्मणः।। २७
सीतया भार्यया सार्धं सरथः ससुमन्त्रकः।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो दीनानाथेभ्य एव सः।। २८
मातृभिश्चैव पित्राद्यैः शोकार्तैर्निर्गतः पुरात्।। २८½

(पिता की इस बात को सुनकर) राम ने पिता (दशरथ) और कैकेयी को नमस्कार किया। उन्होंने दोनों की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् माता कौसल्या को प्रणाम करके तथा उनको सान्त्वना देकर लक्ष्मण तथा भार्या सीता सहित और सुमन्त्र के साथ रथ पर सवार होकर (राम वन को चल पड़े।) चलते समय उन्होंने ब्राह्मणों, दीनों और अनाथों को दान दिया और शोकविह्वल माताओं और पिता तथा अन्य हितचिन्तकों के साथ अयोध्या नगर से बाहर निकल गये।२७-२८½।

उषित्वा तमसातीरे[५] रात्रौ पौरान् विहाय च[६]।।२९
प्रभाते तमपश्यन्तोऽयोध्यां ते पुनरागताः।
रुदन्[७] राजापि कौसल्यागृहमागात्सुदुःखितः।। ३०

सरयू (तमसा (?) नदी के तट पर रात बिताकर अयोध्यावासियों को छोड़कर (राम आगे वन को चल पड़े।) प्रातःकाल राम को न देखकर सब पुरवासी पुनः अयोध्या लौट आये। अत्यन्त दुःखित राजा भी रोते हुए कौसल्या के भवन में आ गये।२९-३०।

पौरा जनाः स्त्रियः सर्वा रुरुदू राजयोषितः[८]।
रामो रथस्थश्चीराढ्यः शृङ्गवेरपुरं ययौ।। ३१

सब पुरवासी, स्त्रियाँ और रानियाँ धाड़ मार-मार कर रोने लगीं। (उधर) राम चीर धारण करके रथ पर बैठकर शृङ्गवेरपुर चले गये।३१

---

१ अर्थपूरणायात्र अथवा इति ग्राह्यम्। २ भवत्विति शेषः। ३ 'इति दशरथ-वाक्यं श्रुत्वा रामः' इत्यर्थपूरणायात्र ग्राह्यम्। ४ ख. ग. न। ५ रामो गत इति शेषः। ६ रुदन् मातापि कौसल्या गृहमागात्सुदुःखिता। ७ ग. तः। सस्त्रीकः सानुजो रामः शृ॰। ८ क. ङ. च. ॰त्रौ ददतु॰।

गुहेन पूजितस्तत्र इङ्गुदीमूलमाश्रितः ।
लक्ष्मणः सगुहो रात्रौ[1] चक्रतुर्जागरं हि तौ ॥ ३२

वहाँ निषादराज गुह ने भगवान् की पूजा की। राम ने एक इङ्गुदी-वृक्ष के नीचे आश्रय लिया और गुह के साथ लक्ष्मण रात भर जागते रह गये ।३२

सुमन्त्रं सरथं त्यक्त्वा प्रातर्नावाऽथ[2] जाह्नवीम् ।
रामलक्ष्मणसीताश्च[3] तीर्त्वा तेऽगुः प्रयागकम् ॥ ३३

प्रातःकाल राम ने मन्त्री सुमन्त्र को रथ के सहित लौटा दिया। राम, लक्ष्मण और सीता नाव से गङ्गा पार करके प्रयाग गये ।३३

भरद्वाजं नमस्कृत्य चित्रकूटगिरिं ययुः ।
वास्तुपूजां तत्र[4] कृत्वा स्थिता मन्दाकिनीतटे ॥ ३४

वहाँ भरद्वाज ऋषि को नमस्कार करके चित्रकूट पर्वत पर गये। वहाँ पर वास्तु-पूजा करके मन्दाकिनी नदी के किनारे रहने लगे ।३४

सीतायै दर्शयामास चित्रकूटच राघवः ।
नखैर्विदारयन्तं तं काकं तच्चक्षुराक्षिपत् ॥ ३४½
ऐषिकास्त्रेण (?) शरणं[5] प्राप्तो देवान् विहाय सः ॥ ३५

वहाँ उन्होंने सीता को चित्रकूट का दर्शन कराया। सीता जी पर नखों से चोट करने वाले उस कौए (जयन्त) को राम ने सींक के वाण से मारकर उसके एक नेत्र को फोड़ डाला। वह कौआ (रूपधारी इन्द्रपुत्र) जयन्त देवताओं को छोड़कर भगवान् की शरण में आ गया ।३४-३५½।

रामे वनं गते राजा षष्ठेऽह्नि निशि चाब्रवीत् ॥ ३६
कौशल्यायै[6] कथां पूर्वां यदज्ञानाद्धतः पुरा ।
कौमारे सरयूतीरे[7] यज्ञदत्तकुमारकः[8] ॥ ३७
[9]शब्दभेदाच्च कुम्भेन शब्दं कुर्वंश्च तत्पिता ॥ ३७½

---

१ ग. प्रातःकालेऽथ। २ क. ङ. च. °वा च जा°। ३ ग. °श्च ययुस्तीर्णाः प्र०। घ. °श्च तीर्णा आपुः प्र°। ४ घ. ग. ततः। ५ क. ङ. च. °वः। एकास्त्रेणैव श°। ६ क. घ. कौशल्यां स कथां पौर्वीं। ७ क. सरयूतीरे। ८ क. ङ. च. °दत्तः कुमा°। ९ 'शब्दभेदात्..........मुहुः' क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

राम के वन चले जाने के छठे दिन, रात में दशरथ ने कौशल्या से पहले का वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि किस प्रकार उन्होंने (अपनी) कुमारावस्था में अज्ञानवश सरयू-तट पर घड़ा भरने के शब्द को सुनकर शब्दवेधी बाण से यज्ञदत्त के पुत्र श्रवणकुमार का वध कर दिया था।३६-३७½।

शशाप विलपन्मात्रा[1]शोकं कृत्वा रुदन्मुहुः ।। ३८
पुत्रं विना मरिष्यावस्त्वं[2] च शोकान्मरिष्यसि ।
पुत्रं विना स्मरञ्शोकात्कौशल्ये मरणं मम ।। ३९
कथामुक्त्वाथ[3] हा राममुक्त्वा राजा दिवं गतः ।। ३९½

श्रवणकुमार की माता जब रो-रोकर विलाप कर रही थी, उस समय उसके पिता ने शोक करते हुए बार-बार रोते हुए राजा दशरथ को शाप दिया था—'हम दोनों तो पुत्र के बिना मर ही रहे हैं, तू भी पुत्र-शोक से मरेगा।' अतः अयि कौसल्ये ! पुत्र (राम) के बिना उसका स्मरण करते हुए शोक से मेरी मृत्यु हो जायेगी। इस कथा को कह कर 'हा राम' ऐसा कहकर राजा स्वर्ग चले गये।३८-३९½।

सुप्तं मत्वाऽथ कौशल्या सुप्ता शोकार्तमेव सा ।। ४०

कौशल्या महाराज दशरथ को शोक से कातर (अतः) सोया हुआ समझकर सो गयी।४०

सुप्रभाते शयानं तं सूतमागधवन्दिनः ।
([4]प्रबोधका वोधयन्ति न च बुध्यत्यसौ नृपः[5]) ।। ४१

दूसरे दिन सवेरे (राजा को) जगाने वाले सूत, मागध और बन्दिजन महाराज दशरथ को जगाने लगे परन्तु वह जागे ही नहीं।४१

कौशल्या तं मृतं ज्ञात्वा हा हतास्मीति चापतत्[6] ।
नरा नार्योऽथ रुरुदुस्तैलद्रोण्यां निधाय तम् ।।४२

अब कौशल्या उनको मृत समझकर 'हाय, मैं मर गयी' ऐसा कह कर गिर पड़ीं। राज्य के सब नर और नारी रोने लगे। राजा (के शरीर) को तैल की कुण्डी में रखकर—

---

१ यज्ञदत्तमात्रा सहेत्यर्थः। २ क. ङ. च. °ष्यामि त्वं च। ३ क. ङ. च.° थ वा राममुक्तो रा°। ४ प्रबोधका..............नृपः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ५. ख. घ. मृतः। ६. ख. घ. चाब्रवीत्।

वसिष्ठेन च तत्कालमानीतो भरतः किल।
सुमन्त्राद्यैः सशत्रुघ्नः शीघ्रं राजगृहात्पुरीम् ॥४३

वसिष्ठ ने तत्काल ही सुमन्त्र आदि को भेजकर शत्रुघ्न सहित भरत को राजगृह (ननिहाल) से अयोध्या नगर में बुलवा लिया।४३

दृष्ट्वा सशोकां कैकेयीं निन्दयामास दुःखितः
अकीर्तिः पातिता मूर्ध्नि कौशल्यां स प्रशस्य च ॥४४
पितरं तैलद्रोणीस्थं संस्कृत्य सरयूतटे।
वसिष्ठाद्यैर्जनैरुक्तो राज्यं कुर्विति सोऽब्रवीत् ॥४५
व्रजामि राममानेतुं रामो राजा मतो बली ॥४५½

दुःखी भरत ने शोकार्त कैकेयी को देखकर उसकी निन्दा की।

और सारा कलंक कैकयी के सिर मढ़ दिया और माता कौशल्या की प्रशंसा करके तेल की कुण्डी में रखे हुए पिता के शव का सरयू नदी के किनारे संस्कार किया। वसिष्ठ आदि ऋषियों के द्वारा राज्य सँभालने के लिए कहे जाने पर भरत ने कहा—मैं राम को बुलाने के लिए जा रहा हूँ। मेरे मत से बलवान् राम ही राजा हैं।४४-४५½।

शृङ्गवेरं[1] प्रयागं च भरद्वाजेन भोजितः ।४६

(यह कर राम को बुलाने के लिये भरतजी चल पड़े)। भरतजी शृंगवेरपुर के बाद प्रयाग में आए जहाँ भरद्वाज ने उन्हें भोजन कराया।४६

नमस्कृत्य भरद्वाजं रामं लक्ष्मणमागतः।
पिता स्वर्गं गतो राम अयोध्यायां नृपो भव ॥४७

भरत ने भरद्वाज को प्रणाम करके राम और लक्ष्मण के समीप जाकर कहा—हे भाई राम! पिताजी स्वर्ग सिधार गये हैं। अब आप अयोध्या में चलकर राजा बनिए।४७

[2]अहं वनं प्रयास्यामि त्वदादेशप्रतीक्षकः[3]।
रामः श्रुत्वा जलं दत्त्वा गृहीत्वा पादुके व्रज ॥४८

'आपका आज्ञाकारी मैं वन को चला जाऊँगा।' राम ने यह सुनकर पिता को जलाञ्जलि दी और भरत से कहा—तुम मेरी खड़ाऊँ लेकर लौट जाओ।४८

---

१ क. ङ. च. °वेरप्र°। २ अहं..........प्रतीक्षकः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ग. °प्ररक्ष°।

राज्यायाहं न यास्यामि [1]सत्याच्चीरजटाधर: ।
रामोक्तो भरतश्चागान्नन्दिग्रामे स्थितो बली ॥४९
त्यक्त्वाऽयोध्यां पादुके ते पूज्य राज्यं[2] प्रपालयत् ॥५०

मैंने तो सत्य की रक्षा के लिए चीर और जटा धारण कर लिया है, अतः राज्य के लिये अयोध्या नहीं जाऊँगा। राम के ऐसा कहने पर बलशाली भरत लौट गये और अयोध्या को छोड़कर नन्दिग्राम में रहने लगे। वे वहाँ पादुकाओं की पूजा करते हुए वहीं से राज्य का सञ्चालन भी करते थे।४९-५०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामाख्यानेऽयोध्याकाण्डे षष्ठोऽध्याय: ।६

अथ सप्तमोऽध्याय:

रामायणेऽरण्यकारण्यडवर्णनम्

नारद उवाच—

रामो वसिष्ठं मातृश्च नत्वात्रिं च प्रणम्य स: ।
अनसूयां च तत्पत्नीं शरभङ्गं सुतीक्ष्णकम् ॥१
अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यं तत्प्रसादत:[3] ।
धनु: खड्गं च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागत: ॥२

नारद बोले—राम ने पहले चित्रकूट में आये हुए गुरु वसिष्ठ और माताओं को नमस्कार करके बिदा किया। तत्पश्चात् अत्रि और उनकी पत्नी अनसूया, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य के भ्राता (अग्निजिह्व) और अगस्त्य मुनि को नमस्कार करके उनकी कृपा से तलवार और धनुष् प्राप्त करके राम दण्डकारण्य पहुँचे।१-२।

---

१ ग. सत्यं चीर० २ ख. ग. घ. राज्यमपा० । ३ क. ग. तत्प्रमाणत: ।

जनस्थाने पञ्चवट्यां स्थितो गोदावरीतटे।
तत्र शूर्पणखाऽऽयाता भक्षितुं तान्भयङ्करी ॥३

दण्डकारण्य में भगवान् राम गोदावरी नदी के किनारे पञ्चवटी में रहने लगे। उस वन में शूर्पणखा नाम की एक भयङ्कर राक्षसी उनको खा जाने के अभिप्राय से आयी।३

रामं सुरूपं दृष्ट्वा सा कामिनी वाक्यमब्रवीत् ॥४

परन्तु राम के मनोहर रूप को देखकर वह काम के वशीभूत होकर राम से कहने लगी।४

शूर्पणखा उवाच—

कस्त्वं कस्मात्समायातो भर्ता मे भव चार्थितः।
एतौ च भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वात्तुं[1] समुद्यता ॥५

शूर्पणखा बोली—तुम कौन हो? किस देश से यहाँ आये हो? मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम मेरे पति बन जाओ। किन्तु इन दोनों को तो मैं खा ही जाऊँगी।५

तस्य नासां च कर्णौ च रामोक्तो लक्ष्मणोऽच्छिनत्।
रक्तं क्षरन्ती प्रययौ खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥६

राम के कहने पर लक्ष्मण ने उसके नाक और कान काट दिये। खून बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खर के पास जाकर बोली—

मरिष्यामि विनासाऽहं खर जीवामि वै तदा।
रामस्य जाया[2] सीताऽस्ति तस्यासील्लक्ष्मणोऽनुजः ॥७
तेषां यद्रुधिरं कोष्णं पाययिष्यसि मां यदि ।७½।

खर! मैं नककटी बनकर जीवित नहीं रह सकती हूँ मैं तो तभी जीवित रहूँगी जब तुम राम, राम की स्त्री सीता और राम के छोटे भाई लक्ष्मण का गुनगुना रक्त मुझे पिलाओगे।७-७½।

खरस्तथेति तामुक्त्वा चतुर्दशसहस्रकैः ॥८
रक्षसां दूषणेनागादथ त्रिशिरसा सह।
रामं, रामोऽपि युयुधे शरैर्विव्याध राक्षसान् ॥९

---

१ क. ग. घ. °क्त्वा तं स°। च. °क्त्वाऽन्तं स°। २ ख. ग. घ. भार्या सीताऽसौ।

खर ने कहा––'ऐसा ही होगा।' वह अपने चौदह हज़ार सैनिकों तथा त्रिशिर और दूषण के साथ राम से जा भिड़ा। राम भी उससे युद्ध करने लगे और बाणों से राक्षसों को मारने लगे।८-९।

हस्त्यश्वरथपादातं वलं निन्ये यमक्षयम्।
त्रिशीर्षाणं खरं रौद्रं युध्यन्तं चैव दूषणम्।।१०

भगवान् राम ने युद्ध करने वाले भयंकर खर, दूषण को और त्रिशिर को (तथा उनके) हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना को मारकर यमलोक भेज दिया।१०

ययौ शूर्पणखा लङ्कां रावणाग्रेऽपतद्भुवि।
अब्रवीद् रावणं क्रुद्धा न त्वं राजा च[1] रक्षकः।।११

(निराश होकर) शूर्पणखा लंका में जाकर रावण के आगे पछाड़ खाकर गिर पड़ी और क्रुद्ध होकर रावण से कहने लगी––न तो तुम राजा हो और न प्रजा-रक्षक।११

खरादिहन्तू रामस्य सीतां भार्यां हरस्व च।
रामलक्ष्मणरक्तस्य पानाज्जीवामि नान्यथा।।१२

तुम खर आदि का वध करने वाले राम की पत्नी सीता का हरण कर लो। मैं राम और लक्ष्मण के रक्त को पीकर ही जीवित रह सकती हूँ अन्यथा नहीं।१२

तथेत्याह च तच्छ्रुत्वा मारीचं प्राह वै व्रज।
स्वर्णचित्रमृगो भूत्वा[2] रामलक्ष्मणकर्षकः।।१३

उसकी बातों को सुनकर रावण ने कहा––'ऐसा ही होगा'। तदनन्तर उसने मारीच से कहा––"तुम सोने का विचित्र मृग बनकर राम और लक्ष्मण के समीप जाओ और सीता के सामने उनको (छल से) दूर हटा ले जाओ।१३

सीताग्रे, तां हरिष्यामि अन्यथा मरणं तव।
मारीचो रावणं प्राह रामो मृत्युर्धनुर्धरः[3]।।१४

तब मैं सीता का हरण कर लूँगा, अन्यथा (यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो) तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।" यह सुनकर मारीच ने रावण से कहा––'धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु हैं।१४

---

१ च. ^{0}जा न राक्षसः। २ क. ख. ग. ङ. च. ^{0}चित्रो मृ^{0}। ३ ङ. मृत्युः कुतो मम। च. मृत्युर्न तद्वरम्।

रावणादपि मर्तव्यं मर्तव्यं राघवादपि ।
अवश्यं यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ।।१५

(मारीच ने मन में सोचा——) मुझे रावण से भी मरना है और राम से भी । यदि मुझे मरना ही है तो राम के हाथों से ही मरना श्रेयस्कर है रावण के हाथों से नहीं ।१५

इति मत्वा मृगो भूत्वा सीताग्रे व्यचरन्मुहुः ।
सीतया प्रेरितो रामः शरेणाथावधीच्च तम् ।।१६

ऐसा निश्चित करके वह मारीच मृग बनकर सीता के सामने बार-बार घूमने लगा । सीता के कहने पर राम ने उसको बाण से मार गिराया ।१६

म्रियमाणो मृगः प्राह हा सीते ! लक्ष्मणेति च ।
सौमित्रिः सीतयोक्तोऽथ विरुद्धं राममागतः[1] ।।१७

मरता हुआ मृग चिल्लाया——हा सीता ! हा लक्ष्मण ! सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सीता द्वारा (कटु वचन) कहे जाने पर राम की आज्ञा के विरुद्ध राम के समीप चले गये ।१७

रावणोऽप्यहरत्सीतां हत्वा गृध्रं जटायुषम् ।
जटायुषा स विरथो[2] अंसमादाय[3] जानकीम् ।।१८
गतो लङ्कामशोकाख्ये धारयामास चाब्रवीत् ।।१९

रावण ने भी जटायु नामक गीध को मारकर सीता का हरण किया । जटायु ने रावण को रथविहीन कर दिया था, अतएव वह सीता को कंधे पर रखकर लंका ले गया । वहाँ अशोक वन में सीता को रखकर बोला——।१८-१९।

रावण उवाच—

'भव भार्या ममाग्र्या त्वं', 'राक्षस्यो ![4] रक्ष्यतामियम्' ।
रामो हत्वाथ मारीचं दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ।।२०

रावण ने कहा——(हे सीते !) 'तुम मेरी पटरानी बनो । अयि राक्षसियों ! तुम सब इसकी निगरानी करती रहो ।'

मारीच को मारकर लौटते हुए राम ने (मार्ग में) लक्ष्मण को देखकर कहा——।२०

---

१ च. मृगमागतः । २ ख. ग. भिन्नाङ्गो । ३ क. अङ्कमादाय ख. अंसेनादाय । ग. अङ्गेनादाय । घ. अङ्केनादाय । ४ क. ⁰स्यो भक्ष्य⁰ ।

श्रीराम उवाच—

मायामृगोऽसौ सौमित्रे ! यथा त्वमिह चागतः ।
तथा सीता हृता नूनं नापश्यत्स गतोऽथ ताम् ।।२१

श्रीराम बोले—अरे, सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ! वह तो कपटमृग था । तुम जैसे ही इधर आये वैसे ही, लगता है कि किसी ने जरूर सीता का अपहरण कर लिया है । ऐसा कह कर राम (कुटी में) आये किन्तु वहाँ उन्होंने सीता को नहीं देखा ।२१

शुशोच विललापार्तो मां त्यक्त्वा क्व गतासि वै ।
लक्ष्मणाश्वासितो रामो मार्गयामास जानकीम् ।।२२

(सीता को न पाकर) भगवान् राम शोक करने लगे और व्यथित होकर विलाप करने लगे—'अयि सीते ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी हो ?' लक्ष्मण के समझाने-बुझाने पर राम सीता की खोज में लग गये ।२२

दृष्ट्वा जटायुस्तं[1] प्राह रावणो हृतवांश्च ताम् ।
मृतोऽथ संस्कृतस्तेन कबन्धं चावधीत्ततः ।।२३

(मार्ग में) जटायु ने राम को देखकर कहा—'सीता को रावण हर ले गया है ।' इतना कहकर (रावण के द्वारा घायल किये गये) जटायु ने प्राण-त्याग कर दिया । राम ने जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया करके फिर (मार्ग में) कबन्ध का वध किया ।२३

शापमुक्तोऽब्रवीद्रामं स त्वं सुग्रीवमाव्रज ।।२४

शापमुक्त होकर कबन्ध ने राम से कहा—'आप सुग्रीव के पास जाइये ।२४

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणेऽरण्यकाण्डे
सप्तमोऽध्यायः ।७

—

१ क. ⁰टायुः सम्प्रा⁰ ।

अथाष्टमोऽध्यायः

रामायणे किष्किन्धाकाण्डम्

नारद उवाच—

राम: पम्पासरो गत्वाऽशोचत्स शबरीं गतः ।
हनूमताऽथ सुग्रीवं नीतो मित्रं चकार ह ।।१

नारद बोले—राम पम्पा सरोवर के समीप जाकर शोकयुक्त हो गये । फिर वह शबरी के आश्रम में गये, तदनन्तर हनुमान् ने उन्हें सुग्रीव के पास ले जाकर उनसे मैत्री करा दी ।१

सप्ततालान्विनिर्भिद्य शरेणैकेन पश्यतः ।
पादेन दुन्दुभेः कायं चिक्षेप दशयोजनम् ।।२

(सुग्रीव के विश्वास के लिए) देखते ही देखते राम ने एक बाण से ताड़ के सात वृक्षों को गिरा दिया (और) एक पैर से दुन्दुभि राक्षस के शरीर को दशयोजन (४० कोस) दूर फेंक दिया ।२

तद्रिपुं वालिनं हत्वा भ्रातरं वैरकारिणम् ।
किष्किन्धां कपिराज्यं च रुमां तारां समर्पयत् ।।३

राम ने सुग्रीव से शत्रुता रखने वाले उसके भाई वालि को मारकर किष्किन्धा नामक वानर-राज्य तथा रुमा और तारा को (सुग्रीव को) दे दिया ।३

ऋष्यमूके हरीशाय, किष्किन्धेशोऽब्रवीदथ ।
सीतां त्वं प्राप्स्यसे यद्वत्तथा राम ! करोमि ते ।।४

तदनन्तर किष्किन्धा के महाराज सुग्रीव ने कहा—हे राम ! मैं वैसा ही उपाय करूँगा जिससे सीता आपको प्राप्त हो सके ।४

तच्छ्रुत्वा माल्यवत्पृष्ठे चातुर्मास्यं चकार सः ।
किष्किन्धायां च सुग्रीवो यदा नायाति दर्शनम् ।।५
तदाब्रवीत्तं रामोक्तो[1] लक्ष्मणो व्रज राघवम् ।
न च सङ्कुचितः पन्था येन वाली[2] हतो गतः ।।६
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ।।६३

१. ग. रामोक्तं । २ क. वालिहतो ।

उसकी उस बात को सुनकर भगवान् ने माल्यवान् पर्वत पर चार्तुमस्यि बिताया, (इसके बाद भी) जब किष्किन्धा में सुग्रीव दिखायी तक न पड़ा तब भगवान् राम द्वारा कहे जाने पर लक्ष्मण ने उस (सुग्रीव) से कहा—हे सुग्रीव ! तुम भगवान् राम के पास जाओ (और अपने वचन को पूरा करो) अन्यथा वह रास्ता सँकरा नहीं है जिससे वाली मारे जाने पर गया। हे सुग्रीव ! अपने वादे को पूरा करो, वालि के मार्ग को मत अपनाओ।५-६½।

सुग्रीव आह संसक्तो गतं कालं न बुद्धवान् ॥७
इत्युक्त्वा स गतो रामं नत्वोवाच हरीश्वरः ॥८

(लक्ष्मण के द्वारा राम के सन्देश को पाकर) सुग्रीव ने (लक्ष्मण से) कहा—'वासना में फँसे होने के कारण मुझे समय का व्यतीत होना ज्ञात ही नहीं हुआ' यह कहकर वानरराज सुग्रीव राम के पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—।७-८।

सुग्रीव उवाच—

आनीता वानराः सर्वे सीतायाश्च गवेषणे ।
त्वन्मताः[1] प्रेषयिष्यामि विचिन्वन्तु च जानकीम् ॥९

सुग्रीव ने कहा—मैं सब वानरों को सीता की खोज करने के लिए ले आया हूँ। इन्हें मैं आपके आज्ञानुसार (इधर-उधर) भेज दूँगा जिससे ये जानकी की खोज कर सकें।९

पूर्वादौ मासपर्यन्तं मासादूर्ध्वं निहन्मि तान् ।
इत्युक्ता वानराः पूर्वपश्चिमोत्तरमार्गगाः ॥१०
जग्मू रामं ससुग्रीवमपश्यन्तस्तु जानकीम् (?) ॥१०½।

उन्होंने वानरों से भी कहा—'वानरो ! पूर्व आदि दिशाओं में जाकर एक मास के अन्दर ही सीता की खोज कर लो। एक माह से अधिक होने पर मैं सबको मार डालूँगा'—यह सुनकर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं के मार्गों पर (सीता की खोज में) जाने वाले वानर सीताजी को न पाकर सुग्रीव सहित भगवान् राम के पास (वापस लौट) गये।१०-१०½।

रामाङ्गुलीयं सङ्गृह्य हनूमान् वानरैः सह ॥११
दक्षिणे मार्गयामास सुप्रभाया गुहान्तिके[2] ।११½।

---

१ ०न्मतात्प्रेष० । २ क. ङ. च. गुहान्तिके ।

भगवान् राम की अँगूठी लेकर हनुमान् जी वानरों के साथ दक्षिण में सुप्रभा की गुहा के पास (सीताजी की) खोज करते रहे ।११-११½।

मासादूर्ध्वं च विन्ध्यस्था[1] अपश्यन्तस्तु जानकीम् ॥१२
ऊचुर्वृथा मरिष्यामो जटायुर्धन्य एव सः ।
सीतार्थे योऽत्यजत्प्राणान् रावणेन हतो रणे ॥१३

एक महीने से अधिक समय तक विन्ध्याचल पर भटकते हुए जब उन्होंने सीताजी को नहीं देखा तब कहने लगे—"हम लोग तो व्यर्थ ही मरेंगे। जटायु ही धन्य था जिसने सीताजी के लिए रावण द्वारा मारे जाने पर प्राण-त्याग कर दिया ।१२-१३।

तच्छ्रुत्वा प्राह सम्पातिर्विहाय कपिभक्षणम् ।
भ्रातासौ मे जटायुर्वै मयोड्डीनोऽर्कमण्डलम् ॥१४

यह सुनकर सम्पाति ने वानरों को खा जाने का विचार छोड़कर कहा—वह जटायु तो मेरा भाई था। एक बार हम दोनों सूर्यमण्डल तक पहुँचने के उद्देश्य से उड़े ।१४

अर्कतापाद्रक्षितोऽगाद्दग्धपक्षो[2]ऽहमत्रगः[3] ।
रामवार्ताश्रवात्पक्षौ जातौ भूयोऽथ जानकीम् ॥१५

(जटायु तो मेरे द्वारा) सूर्य की गर्मी से बचा लिया गया और (उसे बचाने में) जले हुए पंखों वाला मैं यहाँ गिर पड़ा। भगवान् राम की वार्ता सुनने से मेरे पंख पुनः उत्पन्न हो गये । १५

पश्याम्यशोकवनिकागतां लङ्कागतां किल ।
शतयोजनविस्तीर्णे लवणाब्धौ त्रिकूटके ॥ १६
ज्ञात्वा, रामं ससुग्रीवं वानराः कथयन्तु वै ॥ १७

मैं यहीं से लवणसागर के बीच में सौ योजन विस्तृत त्रिकूट पर्वत पर स्थित लङ्का में अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता को देख रहा हूँ। हे वानरो ! (अब सीता का पता) जानकर सुग्रीव-सहित भगवान् राम से जाकर कह दो । १६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे किष्किन्धा-काण्डेऽष्टमोऽध्यायः ।८

---

१ घ. विन्यस्ता । २ च.° क्षोऽयम° । ३ घ. °हमभ्रगः ।

अथ नवमोऽध्यायः

रामायणे सुन्दरकाण्डम्

नारद उवाच—

सम्पातिवचनं श्रुत्वा हनूमानङ्गदादयः।
अब्धिं दृष्ट्वाऽब्रुवंस्तेऽब्धिं लङ्घयेत्को नु[1] जीवयेत् ॥१

नारद बोले—सम्पाति की बातों को सुनकर और साथ ही समुद्र को देखकर हनुमान्, अंगद आदि परस्पर कहने लगे कि 'हममें से कोई एक समुद्र को पार करके (सीता का पता लगाकर) हम सब की प्राण-रक्षा कर ले, ।१

कपीनां जीवनार्थाय रामकार्यप्रसिद्धये।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवेऽब्धिं स मारुतिः ॥ २

वानरों के प्राणों की रक्षा और राम के कार्य को भी सिद्ध करने के लिए पवनपुत्र हनुमान् सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ गये।२

दृष्ट्योत्थितं[2] च मैनाकं सिंहिकां विनिपात्य च।
लङ्कां दृष्ट्वा राक्षसानां गृहाणि, वनितागृहे ॥ ३
दशग्रीवस्य कुम्भस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः।
विभीषणस्येन्द्रजितो[3] गृहेऽन्येषां च रक्षसाम् ॥४
नापश्यत्पानभूम्यादौ सीतां चिन्तापरायणः ।४½।

उन्होंने (मार्ग में जल के ऊपर) उठे हुए मैनाक पर्वत को देखकर और सिंहिका को मारकर (फिर) लङ्का में (जाकर सीताजी को खोजना शुरू कर दिया।) वहाँ राक्षसों के घरों में (सीता जी को खोजा—)। रावण, कुम्भ, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद तथा दूसरे राक्षसों के स्त्रीगृहों में तथा मदिरालयों में भी सीता को (खोजने पर) चिन्ताग्रस्त हनुमान् ने नहीं पाया।३-४½।

---

१ ग. ङ. न। २ क. ङ. च. दृष्ट्वा स्थितं। ३ ङ० हे तेषां।

अशोकवनिकां गत्वा दृष्टवान् (शिंशपातले[1] ॥५
राक्षसीरक्षितां सीतां, भव भार्येतिवादिनम् ।
रावणं शिंशपास्थोऽथ नेति सीतां सुवादिनीम्) ॥६
भव भार्या रावणस्य राक्षसीर्वादिनीः कपिः ॥६½

(अन्त में) अशोकवाटिका में जाकर शीशम के वृक्ष नीचे बैठी हुई राक्षसियों से रक्षित सीता को हनुमान् जी ने देखा। शीशम के पेड़ पर बैठे हुए हनुमान् जी ने देखा कि रावण सीताजी से कह रहा है कि 'तुम मेरी पत्नी बन जाओ।' और सीताजी ने उसके प्रस्ताव को सम्यक् प्रकार से बोलते हुए अस्वीकार कर दिया। राक्षसियाँ भी सीताजी से कह रही थीं कि 'तुम रावण की भार्या बन जाओ'— ऐसा हनुमान्जी ने देखा।५-६½।

गते तु रावणे प्राह राजा दशरथोऽभवत् ॥ ७
रामोऽस्य लक्ष्मणः पुत्रौ वनवासं[2] गतौ वरौ।
रामपत्नी जानकी त्वं रावणेन हृता बलात् ॥८

रावण के चले जाने पर हनुमान् ने (वृक्ष पर बैठे ही बैठे) कहना प्रारम्भ किया—एक थे राजा दशरथ। उनके दो श्रेष्ठ पुत्र हुए—राम और लक्ष्मण जिन्हें वनवास के लिए वन में जाना पड़ा। हे जानकी ! आप राम की पत्नी हैं। रावण ने हठात् आपका अपहरण कर लिया है।७-८।

रामः सुग्रीवमित्रस्त्वां [3]मार्गयन्प्रैषयच्च माम्।
साभिज्ञानं चाङ्गुलीयं रामदत्तं गृहाण वै ॥ ६

राम ने सुग्रीव से मित्रता कर ली है। उन्होंने मुझे आपका पता लगाने के लिए स्मृति-चिह्न के साथ आपके पास भेजा है। अतः राम की दी हुई इस अँगूठी को ग्रहण कीजिए।६

सीताङ्गुलीयं जग्राह सापश्यन्मारुतिं तरौ।
भूयोऽग्रे चोपविष्टं तमुवाच यदि जीवति ॥ १०
रामः कथं न नयति शङ्किताम्ब्रवीत्कपिः ॥ ११

सीता ने अँगूठी ले ली और वृक्ष पर बैठे हुए मारुति को देखा। पुनः अपने आगे आए हुए हनुमान् से सीता ने प्रश्न किया—'यदि राम जीवित हैं तो क्यों नहीं मुझे यहाँ से ले जाते हैं?' वानरराज हनुमान् ने शंकाकुला सीता को (समझाते हुए) कहा—।१०–११।

---

१ शिंशपातले…… ……सुवादिनीम् ङ. सञ्ज्ञिते पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. च. °वासग°। ३ ङ. °गयेत्प्रेषयेच्च।

हनुमानुवाच—

रामः सीते न जानाति[1] ज्ञात्वा त्वां स नयिष्यति ।
रावणं राक्षसं हत्वा सवलं देवि मा शुचः ॥ १२

हनुमान् ने कहा—हे सीते ! राम अभी तक आप का पता ही नहीं जानते हैं। पता लग जाने पर सेना के साथ रावण का वध करके वे अवश्य आपको ले चलेंगे। देवि ! आप शोक मत कीजिए।१२

साभिज्ञानं देहि मे त्वं मणिं सीताऽददात् कपौ[2] ।
उवाच मां यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा कुरु ॥ १३

आप भी मुझे कोई अपनी पहचान दे दीजिए। पहचान के लिए वानरराज हनुमान् को अपनी चूडामणि देकर सीताजी ने कहा—'तुम ऐसा उपाय करना जिससे राम मुझे शीघ्र ही यहाँ से ले जायँ'।१३

[3]काकाक्षिपातनकथां[4] प्रातर्याहि हि शोकहा !
मणिं कथां गृहीत्वाऽऽह हनूमान्नेष्यते[5] पतिः ॥ १४

(सीता ने आगे कहा—) कौआ का रूप धारण करने वाले इन्द्रपुत्र के एक आँख फोड़ने की कथा को (इस समय मुझसे सुनकर) हे मेरे शोक को दूर करने वाले वानर तुम कल सवेरे जाना ! हनुमान्जी ने चूडामणि ले लिया और कथा भी सुन ली। फिर उन्होंने कहा—'राम अवश्य आप को यहाँ से ले चलेगें'।१४

अथवा ते त्वरा काचित्पृष्ठमारुह मे शुभे ।
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि ससुग्रीवं च राघवम् ॥१५

अथवा यदि आपको शीघ्रता हो तो आप मेरी पीठ पर बैठ जाइए। मैं आज ही आपको सुग्रीव के साथ राम का दर्शन करा दूँगा।१५

सीताऽब्रवीद्धनूमन्तं नयतां मां हि राघवः ।
हनूमान् स दशग्रीवदर्शनोपायमाकरोत् ॥१६

किन्तु सीताजी ने हनुमान्जी से कहा—'नहीं मुझे राम ही यहाँ से ले चलें।' तदनन्तर हनुमान् ने रावण को देखने के लिये उपाय ढूँढ़ निकाला।१६

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. जानीते। २ ङ. °त्कपेः। उ°। ३ काकाक्षिपातनकथारूपप्रत्यभिज्ञानं गृहीत्वा त्वं प्रातर्याहि, त्वं मच्छोकहाऽसीत्यर्थः। ४ घ. °थां प्रतियाहि हि शोकह। म°। ५ क. ख. ग. ङ. च. °मानेष्य°।

वनं बभञ्ज तत्पालान्हत्वा[1] दन्तनखादिभिः ।
हत्वा तु किङ्करान् सर्वान् सप्त मन्त्रिसुतानपि ॥१७
पुत्रमक्षं[2] कुमारं च शक्रजिच्च बबन्ध तम् ।
नागपाशेन पिङ्गाक्षं दर्शयामास रावणम् ॥१८
उवाच रावणः 'कस्त्वं' मारुतिः प्राह रावणम् ॥१९

उन्होंने वाटिका को उजाड़ दिया। दाँत और नाखूनों से वाटिका के राक्षसों को मार डाला। उन्होंने सभी सेवकों और सात मन्त्रिकुमारों तथा रावण के पुत्र अक्षकुमार को भी मार डाला। इतने में इन्द्रजित् (मेघनाद) नागपाश से हनुमान् को बाँधकर पीले नेत्रोंवाले रावण के सामने ले गया। रावण के द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'तुम कौन हो' हनुमान् ने रावण से कहा—।१७-१९।

हनूमानुवाच—

रामदूतो राघवाय सीतां देहि मरिष्यसि ।
रामबाणैर्हतः सार्धं लङ्कास्थै राक्षसैर्ध्रुवम् ॥ २०

हनुमान् बोले—मैं राम का दूत हूँ। सीता को, राम को लौटा दो अन्यथा तुम निश्चय ही राम के बाणों से लङ्कानिवासी राक्षसों के साथ मार डाले जाओगे।२०

रावणो हन्तुमुद्युक्तो विभीषणनिवारितः ।
दीपयामास लाङ्गूलं दीप्तपुच्छः स मारुतिः ॥ २१
दग्ध्वा लङ्कां राक्षसानां[3] दृष्ट्वा सीतां प्रणम्य ताम् ।
समुद्रपारमागम्य दृष्टा सीतेति चाब्रवीत् ॥ २२

(यह सुनकर) रावण (हनुमान् को) मारने के लिए तैयार हो गया, परन्तु विभीषण ने उसे रोक दिया। फिर भी रावण ने हनुमान् की पूँछ में आग लगवा दी। अपनी पूँछ को जलती हुई देखकर हनुमान् ने (उसी से) राक्षसों की लङ्का को भस्म कर दी। तत्पश्चात् उन्होंने सीता का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और फिर समुद्र के इस पार आकर अङ्गदादि साथियों को सीता का पता लग जाने का समाचार दिया।२१-२२।

---

१ क. ख. ङ. च. °ला हता द° । २ क. च. °त्रमङ्गक° । ख. ग. °त्रमक्षकु° । ङ. °त्रमुख्यं कु° । ३ ख. ग. घ. राक्षसांश्च ।

अङ्गदादीन्, अङ्गदाद्यैः पीत्वा मधुवने मधु ।
जित्वा दधिमुखादींश्च दृष्ट्वा रामं च तेऽब्रुवन् ॥२३
दृष्टा सीतेति रामोऽपि हृष्टः पप्रच्छ मारुतिम् ॥२४

(इसके बाद) अङ्गदादि वानरों के साथ मधुवन में आकर मधुपान किया। इन लोगों ने दधिमुख आदि (वनपालों) को जीतकर राम से मिलकर कहा—'सीता का पता चल गया है' यह सुनकर राम प्रसन्न हो उठे और उन्होंने पवनसुत हनुमान् से पूछा—।२३-२४।

श्रीराम उवाच—

कथं दृष्टा त्वया सीता किमुवाच च मां प्रति ।
सीताकथामृतेनैव सिञ्च मां कामवह्निगम् ॥२५

श्रीराम बोले—'तुमने सीता को कैसे देख लिया है? उसने मेरे लिए क्या कहा है? तुम सीता की अमृततुल्य कथा से ही कामाग्नि में जलते हुए मुझे शीतल करो'।२५

नारद उवाच—

हनूमानब्रवीद्रामं लङ्घयित्वाब्धिमागतः ।
सीतां दृष्ट्वा पुरीं दग्ध्वा सीतामणिं गृहाण वै ॥२६

नारद बोले—हनुमान् ने राम से कहा कि सबसे पहले मैं समुद्र को पार करके लङ्का में गया। वहाँ सीता का दर्शन करके लङ्कापुरी को जलाकर भस्म कर दिया। आप सीताजी की दी हुई इस मणि को ले लीजिये।२६

हत्वा तं रावणं सीतां प्राप्स्यसे राम मा शुचः[1] ।
गृहीत्वा तं मणिं रामो रुरोद विरहातुरः ॥२७

हे राम! आप शोक न करें क्योंकि आप शीघ्र ही उस रावण को मारकर सीता को प्राप्त कर लेंगे। विरही राम उस मणि को (हाथ में) लेकर रोने लगे।२७

मणिं दृष्ट्वा जानकी मे दृष्टा, सीतां नयस्व माम् ।
तया विना न जीवामि, सुग्रीवाद्यैः प्रबोधितः ॥२८

आज इस मणि को देखकर मैंने सीता को ही देख लिया है। मुझको सीता के पास ले चलो! मैं उसके बिना (एक क्षण भी) जीवित नहीं रह सकता। सुग्रीव आदि ने राम को समझा-बुझा दिया।२८

---

१ क. ख. घ. ङ. च. शुच ।

समुद्रतीरं गतवांस्तत्र रामं विभीषणः ।
गतस्तिरस्कृतो भ्रात्रा रावणेन दुरात्मना ॥२९

तत्पश्चात् राम अपनी सेना के साथ समुद्रतट पर पहुँच गये । वहाँ दुष्ट भाई रावण के द्वारा अपमानित होकर विभीषण राम की शरण में आ गया ।२९

रामाय देहि सीतां त्वमित्युक्तेनासहायवान् ।
रामो विभीषणं मित्रं लङ्केश्वर्येऽभ्यषेचयत् ॥३०

असहाय विभीषण का अपराध यह था कि उसने रावण से सीता को लौटा देने के लिए कहा था। राम ने विभीषण से मित्रता करके उसका लङ्का के राजा के रूप में अभिषेक कर दिया ।३०

समुद्रं प्रार्थयन्मार्गं यदा नादात्तदा शरैः ।
भेदयामास, रामं च उवाचाब्धिः समागतः ॥ ३१

राम के प्रार्थना करने पर भी जब समुद्र ने उन्हें मार्ग नहीं दिया तब उन्होंने बाणों से सागर को बींध डाला । राम के पास आकर समुद्र बोला ।३१

समुद्र उवाच—

नलेन सेतुं बद्ध्वाऽब्धौ लङ्कां व्रज गभीरकः ।
अहं त्वया कृतः पूर्वं, रामोऽपि नलसेतुना ॥ ३२
कृतेन तरुशैलाद्यैर्गतः पारं महोदधेः ।
वानरैः स सुवेलस्थः सह लङ्कां ददर्श वै ॥ ३३

समुद्र बोला—आप नल के द्वारा सेतु बँधवाकर लङ्का को चले जाइए । हे राम ! मुझको तो आपने ही गहरा बनाया है (अतः मेरी मर्यादा बचाइए) । राम भी नल के द्वारा वृक्षों और शिलाखण्डों से बनाये हुए पुल से वानरों के साथ समुद्र को पार कर गये । सागर-तट पर खड़े होकर सभी ने लंकापुरी को देखा ।३२-३३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे सुन्दरकाण्डे नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

रामायणे युद्धकाण्डम्

नारद उवाच—

रामोक्तश्चाङ्गदो गत्वा रावणं प्राह जानकी ।
दीयतां राघवायाऽऽशु अन्यथा त्वं मरिष्यसि ॥१

नारद बोले—राम के कहने पर अङ्गद ने रावण के पास जाकर कहा, 'शीघ्र ही सीता राम को दे दो, नहीं तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है' ।१

रावणो हन्तुमुद्युक्तः[1] स आगाद्धतराक्षसः ।
रामायाऽऽह दशग्रीवो युद्धमेकं तु मन्यते ॥२

यह सुनकर रावण अङ्गद को मारने के लिए तैयार हो गया । अङ्गद राक्षसों का वध करके राम के निकट आकर कहने लगा—'रावण तो युद्ध पर ही उतारू है' ।२

रामो युद्धाय तच्छ्रुत्वा लङ्कां सकपिराययौ ।
वानरा[2] हनुमान् मैन्दो द्विविदो जाम्ववान्नलः ॥३
नीलस्तारोऽङ्गदो धूम्रो सुषेणः केसरी[3] गजः ।
पनसो[4] विनतो रम्भः शरभः[5] कम्पनो[6] वली ॥४
गवाक्षो दधिवक्त्रश्च गवयो[7] गन्धमादनः ।
एते[8] चान्ये च सुग्रीव एतैर्युक्तो ह्यसङ्ख्यकैः ॥५

उस (वचन) को सुनकर राम (भी) वानरों के साथ युद्ध के लिए लङ्का में पहुँच गये । हनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, कम्पन, बली, गवाक्ष,

---

१ घ. °क्तः सङ्ग्रामोद्ध° । २ घ. ङ. वानरो । ३ ख. घ. च. केशरी । ४ क. पिनसो । ५ क. सरभः । ६ ख. ग. घ. ङ. क्रथनो । ७ क. शरया । ८ क. पप्ले ।

दधिवक्त्र, गवय, गन्धमादन तथा अन्य असंख्य वानरों के साथ सुग्रीव, (भी युद्धक्षेत्र में आ गये) ।३-५।

[1](रक्षसां वानराणां च युद्धं सङ्कुलमावभौ ।
राक्षसा वानराञ्जघ्नुः शरशक्तिगदादिभिः) ।।६

राक्षसों और वानरों में घोर युद्ध हुआ । राक्षसों ने वानरों को बाण, शक्ति और गदा आदि से मारना आरम्भ कर दिया ।६

वानरा राक्षसाञ्जघ्नुर्नखदन्तशिलादिभिः ।
हस्त्यश्वरथपादातं राक्षसानां बलं हतम् ।।७

वानरों ने राक्षसों को नख, दाँत और पत्थर आदि से प्रहार किया । राक्षसों की सेना जिसमें हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल थे—मारी गयी ।७

हनूमान् गिरिश्रृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम् ।
अकम्पनं[2] प्रहस्तं च युध्यन्तं नील आवधीत् ।।८

हनुमान् ने पर्वतशिखर के प्रहार से अपने शत्रु धूम्राक्ष को मार डाला । नील ने लड़ने वाले अकम्पन और प्रहस्त का वध कर दिया ।८

इन्द्रजिच्छरबन्धाच्च विमुक्तौ रामलक्ष्मणौ ।
तार्क्ष्यसन्दर्शनाद्बाणैर्जघ्नतू राक्षसं बलम् ।।९

गरुड़ के दर्शन से मेघनाद के (नागपाश रूप) शरबन्ध से छूटे हुए राम और लक्ष्मण ने राक्षसों की सेना का संहार किया ।९

रामः शरैर्जर्जरितं रावणं चाकरोद्रणे ।
रावणः कुम्भकर्णं च बोधयामास दुःखितः ।।१०

राम ने युद्ध में बाणों से रावण को जर्जर कर डाला । इससे दुःखी होकर रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया ।१०

कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽथ पीत्वा घटसहस्रकम् ।
मद्यस्य महिषादीनां[3] भक्षयित्वाऽऽह रावणम् ।।११

कुम्भकर्ण ने हजार घड़े मदिरा का पान करके और भैंसे आदि का मांस खाकर, तृप्त होकर रावण से कहा—।११

---

१ रक्षसां ....गदादिभिः पुस्तके नास्ति । २ ङ. अकलपनं । ३ अर्थ-पूरणायात्र "सहस्रकं च" इत्यध्याहर्तव्यम् ।

कुम्भकर्ण उवाच—

सीताया हरणं पापं कृतं, त्वं हि गुरुर्यतः ।
अतो गच्छामि युद्धाय रामं हन्मि सवानरम् ।।१२

कुम्भकर्ण ने कहा—'सीता का हरण करके किया तो तुमने पाप ही है। परन्तु तुम मुझसे बड़े हो इसलिए मैं जाता हूँ और वानरों के सहित राम को मार गिराता हूँ' ।१२

नारद उवाच—

इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान् कुम्भकर्णो ममर्द ह ।
गृहीतस्तेन सुग्रीवः कर्णनासं चकर्त सः ।। १३

नारद बोले—यह कहकर कुम्भकर्ण सभी वानरों को कुचलने लगा। **कुम्भकर्ण** के द्वारा पकड़े जाने पर सुग्रीव ने उसका नाक-कान काट लिया ।१३

कर्णनासाविहीनोऽसौ भक्षयामास वानरान् ।
रामोऽथ कुम्भकर्णस्य बाहू चिच्छेद सायकैः ।। १४

कान और नाक को खोकर उसने बहुत से बानरों को खा डाला; किन्तु (शीघ्र ही) राम ने बाणों से कुम्भकर्ण की दोनों भुजाओं को काट डाला ।१४

ततः पादौ ततश्छित्वा शिरो भूमौ न्यपातयत् ।
अथ कुम्भो निकुम्भश्च मकराक्षश्च राक्षसः ।। १५
महोदरमहापार्श्वौ मत्त उन्मत्तराक्षसः ।
प्रघसो भासकर्णश्च विरूपाक्षश्च सङ्गरे[1] ।। १६
देवान्तको नरान्तश्च त्रिशिराश्चातिकायकः ।
रामेण लक्ष्मणेनैते वानरैः सविभीषणैः ।। १७
युध्यमानास्तथा त्वन्ये राक्षसा भुवि पातिताः ।
इन्द्रजिन्मायया युध्यन्रामादीन् स बबन्ध ह ।। १८

तदनन्तर उसके दोनों पैरों और सिर को काटकर भूमि पर गिरा दिया। इसके बाद राम, लक्ष्मण, और विभीषण सहित बानरों के द्वारा लड़ाई करते हुए कुम्भ, निकुम्भ, मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक त्रिशिरा, अतिकाय और अन्य राक्षस युद्ध में पृथ्वी पर गिरा दिये गये। मेघनाद (इन्द्रजित्) ने मायापूर्वक युद्ध करते हुए राम आदि को वरदान में प्राप्त नागपाश से बाँध लिया ।१५-१८।

---

१ घ. संयुगे ।

वरदत्तैर्नागपाशैरोषध्या[1] तौ विशल्यकौ ।
[2]विशल्यययाऽव्रणौ कृत्वा मारुत्यानीतपर्वते ।। १६

वहाँ के वैद्य सुषेण ने विशल्या (नामक अस्त्र विशेष) से दोनों के अंग में से टूटे हुए बाण को निकालकर हनुमान् द्वारा लाये हुए पर्वत की ओषधि से घावों को ठीक कर दिया ।१९

हनूमान्धारयामास तत्रागं[3] यत्र संस्थितः ।
निकुम्भिलायां होमादि[4] कुर्वन्तं तं हि लक्ष्मणः ।। २०
शरैरिन्द्रजितं वीरं[5] युद्धे[6] तं तु व्यपातयत्[7] ।
रावणः शोकसन्तप्तः सीतां[8] हन्तुं समुद्यतः ।। २१

तत्पश्चात् हनुमान् ने उस पर्वत को, जहाँ पहले था, वहीं रख दिया । निकुम्भिला में होम आदि क्रिया करने वाले वीर मेघनाद को लक्ष्मण ने लड़ाई में बाणों से मार गिराया । इससे शोकसन्तप्त होकर रावण सीता को मारने के लिए तैयार हो गया ।२०-२१।

[9]अविन्ध्यवारितो[10] राजा रथस्थः सबलो ययौ ।
इन्द्रोक्तो मातली रामं रथस्थं प्रचकार तम् ।। २२

अविन्ध्य ने उसको समझाकर शान्त कर दिया । तत्पश्चात् रावण स्वयं रथ पर चढ़कर सैनिकों के साथ रणक्षेत्र में गया । इन्द्र के कहने पर मातलि ने राम को अपने रथ पर बैठा लिया ।२२

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।
रावणो वानरान्हन्ति मारुत्याद्याश्च रावणम् ।। २३

राम-रावण का युद्ध तो राम और रावण के युद्ध के समान ही था । रावण वानरों को मारता था और हनुमान् आदि रावण को मारते थे ।२३

रामः शस्त्रैस्तमस्त्रैश्च ववर्ष जलदो यथा ।
तस्य ध्वजं स चिच्छेद रथमश्वांश्च सारथिम् ।।२४

---

१ ग. घ. च °गबाणैरो° । २ क. च. विशल्यया वर्णकृतौ मा° । ख. ग. विशल्यया वर्णकृता मा° । ङ. विशिल्यादाय वर्णतो मा° । ३ क. ङ. च. तद्रागं यत्र संस्थितम् । ख. ग. तद्रामं यत्र संस्थितम् । ४ ङ. °दि कर्तुं हर्तुं समुद्य । ५ ग. वीर्यं । ६ च. °द्धे युद्धे व्य° । ७ ख. घ. व्यशातयत् । ८ क. च. °तां तां हन्तुमु° । ९ ग. अवन्ध्य° ।

राम ने रावण के ऊपर उसी प्रकार शस्त्रास्त्रों की वर्षा की जैसे मेघ जल-वृष्टि करता है। उन्होंने रावण की ध्वजा को काट गिराया तथा रथ, घोड़े और सारथि को मार गिराया।२४

धनुर्बाहूञ्शिरांस्येव उत्तिष्ठन्ति शिरांसि हि।
पैतामहेन हृदयं भित्त्वा रामेण रावणः ॥२५
भूतले पातितः सर्वै राक्षसै रुरुदुः स्त्रियः।
आश्वास्य तं च संस्कृत्य रामाज्ञप्तो विभीषणः ॥२६

जैसे-जैसे राम रावण की भुजाओं और शिरों को काटते जाते थे, वैसे-वैसे उसके (बाहु और) शिर उत्पन्न होते जाते थे।

अन्त में ब्रह्मास्त्र से उसके हृदय को बींधकर राम ने रावण को भूमितल पर गिरा दिया। यह देखकर राक्षस और राक्षसियाँ सभी विलाप करने लगे। राम की आज्ञा से विभीषण ने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया और उस (मृतक रावण) का (अग्नि) संस्कार किया।२५-२६।

हनूमताऽऽनयद्रामः सीतां शुद्धां[१]गृहीतवान्।
रामो वह्नौ प्रविष्टां तां शुद्धामिन्द्रादिभिः[२] स्तुतः ॥२७
ब्रह्मणा दशरथेन, त्वं विष्णू[३] राक्षसमर्दनः।२७½।

राम ने हनुमान् के द्वारा सीता को बुलवाया और अग्नि में प्रविष्ट सीता को शुद्ध-चरित्र समझकर पुनः अपना लिया। इन्द्रादि देवताओं, ब्रह्मा और दशरथ ने राम की स्तुति की और प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि, तुम राक्षसों का सर्वनाश करने वाले विष्णु हो।२७-२७½।

इन्द्रोऽर्थितोऽमृतवृष्ट्या जीवयामास वानरान् ॥२८

प्रार्थना किये जाने पर इन्द्र ने अमृतवर्षा की जिससे (सब मरे हुए) वानर फिर जीवित हो उठे।२८

रामेण पूजिता जग्मुर्युद्धं दृष्ट्वा दिवं च ते।
रामो विभीषणायादाल्लङ्कामभ्यर्च्य वानरान् ॥२९
ससीतः पुष्पके स्थित्वा [४]गतमार्गेण वै गतः।
दर्शयन् वनदुर्गाणि सीतायै हृष्टमानसः ॥३०

---

१ ङ. शुद्धि। २ च. °भिस्ततः। ३ क. ङ. विष्णुना राक्षसार्दन। इ°।
४ घ. पुस्तकस्थटिप्पण्यां 'स्वर्गमार्गेण वै गतः' इति पाठो वर्तते।

तदनन्तर (राम और रावण के) युद्ध को देखकर और राम से सम्मानित होकर वे स्वर्ग चले गये। राम ने विभीषण को लङ्का (का राज्य) दे दिया। वानरों का सत्कार करके, सीता के सहित पुष्पक विमान पर बैठकर जिस मार्ग से गये थे, उसी मार्ग से लौट पड़े। राम अत्यन्त प्रसन्न थे और मार्ग में सीता को वन के दुर्गम पथों को दिखाते हुए चले जा रहे थे।२९-३०।

भरद्वाजं नमस्कृत्य नन्दिग्रामं समागतः।
भरतेन [1]नतश्चागादयोध्यां तत्र संस्थितः ॥३१
वसिष्ठादीन्नमस्कृत्य कौशल्यां चैव कैकयीम्।
सुमित्रां प्राप्तराज्योऽथ ([2]द्विजादीन् सोऽभ्यपूजयत् ॥३२

भरद्वाज को प्रमाण करके राम नन्दिग्राम पहुँचे। यहाँ भरत ने नम्रतापूर्वक उनको प्रणाम किया। वहाँ से चलकर सभी लोग अयोध्या में आकर रुक गये। राज्य प्राप्त कर लेने पर राम ने वसिष्ठ आदि ऋषियों तथा कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा आदि को प्रणाम किया (और) ब्राह्मणों की पूजा की।३१-३२।

वासुदेवं[3] स्वमात्मानमश्वमेधैरथायजत्।
सर्वदानानि स ददौ, पालयामास स प्रजाः ॥३३
पुत्रवद्धर्मकामादीन्दुष्टनिग्रहणे रतः ॥३३½

भगवान् राम ने अश्वमेध यज्ञों के द्वारा आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेव की पूजा की। उन्होंने सब तरह का दान दिया (और) प्रजाओं का पुत्रवत् पालन किया। भगवान् राम धर्म, काल आदि पुरुषार्थों का पालन करते हुए दुष्टों का निग्रह करने में लग गये।३३-३३½।

सर्वो धर्मपरो लोकः सर्वसस्या च मेदिनी ॥३४
नाकालमरणं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥३५

भगवान् राम जब राज्य पर शासन कर रहे थे, सभी लोग धर्मपरायण थे। पृथ्वी सब प्रकार के धनधान्य से भरी-पूरी थी और किसी की अकालमृत्यु नहीं होती थी।३४-३५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रामायणे युद्ध काण्डे
दशमोऽध्यायः ।१०

---

१ क. ङ. च. °न गत°। २ द्विजादीन्……कामादीन् नास्ति ङ. पुस्तके।
३ क. °वं सुखात्मा°। °व° युध्यमान°।

अथैकादशोऽध्यायः

रामायण-उत्तरकाण्डम्

नारद उवाच—

राज्यस्थं राघवं जग्मुरगस्त्याद्याः सुपूजिताः ।। १

नारद बोले—राम के सिंहासनासीन होने पर सम्मानित अगस्त्य आदि ऋषि राम के पास गये ।१

ऋषय ऊचुः—

धन्यस्त्वं विजयी यस्मादिन्द्रजिद्विनिपातितः ।।१$\frac{1}{2}$

ऋषि बोले—हे राम ! तुम धन्य हो, तुम सर्वश्रेष्ठ विजेता हो, क्योंकि तुमने मेघनाद जैसे इन्द्रविजयी योद्धा का वध किया है ।१$\frac{1}{2}$

ब्रह्मात्मजः पुलस्त्योऽभूद्विश्रवास्तस्य कैकसी ।।२
[1]पुष्पोत्कटाऽभूत्प्रथमा तत्पुत्रोऽभूद्धनेश्वरः ।।
कैकस्यां रावणो जज्ञे विंशद्बाहुर्दशाननः ।। ३
तपसा ब्रह्मदत्तेन वरेण जितदैवतः ।।३$\frac{1}{2}$

ब्रह्मा के पुत्र थे पुलस्त्य । उनका पुत्र था विश्रवा । विश्रवा की कैकसी और पुष्पोत्कटा दो पत्नियाँ थीं । पुष्पोत्कटा से उसको धनेश्वर (कुबेर) नामक पुत्र हुआ । कैकसी से रावण उत्पन्न हुआ, जिसके बीस भुजाएँ और दश सिर थे । रावण ने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा से वर प्राप्त करके सब देवताओं को जीत लिया था ।२-३$\frac{1}{2}$।

कुम्भकर्णः सनिद्रोऽभूद्धर्मिष्ठोऽभूद्विभीषणः ।। ४
स्वसा शूर्पणखा तेषां रावणान्मेघनादकः ।।

---

१ पौलस्त्यस्य विश्रवसो द्वे भार्ये, एका कैकसी अन्या पुष्पोत्कटा, तयोः पुष्पोत्कटा प्रथमा, तस्यां कुबेरोऽजीजनदन्यस्यां रावणादय इत्ययमस्य श्लोकस्यार्थः ।

कैकसी का दूसरा पुत्र था कुम्भकर्ण जो बहुत सोने वाला था। तीसरा पुत्र था विभीषण, जो धर्मनिष्ठ था। इनके एक बहन थी शूर्पणखा। रावण का पुत्र मेघनाद हुआ।४

इन्द्रं जित्वेन्द्रजिच्चाभूद्रावणादधिको बली।
हतस्त्वया[1] लक्ष्मणेन देवादेः क्षेममिच्छता॥ ५

मेघनाद ने इन्द्र को जीतकर इन्द्रजित की उपाधि प्राप्त की थी। वह रावण से भी अधिक बलशाली था। देवता इत्यादि के कल्याण की कामना से आपने लक्ष्मण द्वारा उसका वध कर दिया।५

नारद उवाच—

इत्युक्त्वा ते गता विप्रा अगस्त्याद्या नमस्कृताः।
देवप्रार्थितरामोक्तः शत्रुघ्नो लवणार्दनः॥ ६

नारद बोले—यह कहकर अगस्त्य इत्यादि ऋषि अभिवादन प्राप्त कर चले गये। देवताओं की प्रार्थना पर राम ने शत्रुघ्न को लवणासुर के वध के लिये भेजा। शत्रुघ्न ने उसका वध किया।६

अभूत्पूर्मथुरा[2] काचिद्रामोक्तो भरतोऽवधीत्।
कोटित्रयं च शैलूषपुत्राणां निशितैः शरैः॥ ७

उस समय मथुरा नाम की एक नगरी थी। राम के आदेश से भरत ने वहाँ जाकर तीन करोड़ शैलूष पुत्रों को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार डाला।७

शैलूषं दृप्तगन्धर्वं[3] सिन्धुतीरनिवासिनम्।
तक्षं च पुष्करं पुत्रं स्थापयित्वाऽथ देशयोः॥ ८
भरतोऽगात्सशत्रुघ्नो राघवं पूजयन् स्थितः।
रामो दुष्टान्निहत्याजौ शिष्टान्सम्पाल्य मानवः[4]॥ ९

सिन्धु-तटवासी उद्धत गन्धर्व और शैलूष को मारकर उनके देशों के राज्यसिंहासन पर उनके पुत्र तक्ष और पुष्कर को बैठाया। तदनन्तर शत्रुघ्न के सहित भरत अयोध्या को लौट गये, जहाँ वे राम की सेवा में रहने लगे। मानवशरीरधारी राम युद्ध में दुष्टों को मारते थे एवं सज्जनों का पालन करते थे।८-९।

---

१ क. हतः स्वयं ल°। च. हतस्त्वयं ल°। २ क.° रा काशी रामो°। ङ. च. °राकारा रामो। ३ घ. च. दुष्टगन्धर्वं। ४ दानतः (मू० पा०)। ख. ग. घ. मानवः। च. दानदः।

पुत्रौ कुशलवौ जातौ वाल्मीकेराश्रमे वरौ।
लोकापवादात्त्यक्तायां ज्ञातौ सुचरितश्रवात् ॥ १०
राज्येऽभिषिच्य ब्रह्माऽहमस्मीति ध्यानतत्परः।
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥ ११
राज्यं कृत्वा[1] क्रतून् कृत्वा स्वर्गं[2] देवार्थितो[3] ययौ ॥११½

लोकापवाद के कारण निर्वासित जानकी के गर्भ से वाल्मीकि के श्रेष्ठ आश्रम में कुश, लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् सीता की सच्चरित्रता को सुनकर राम ने अपने दोनों पुत्रों को पहचाना और उन्हें राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया।

'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसे ध्यान में लगे हुए राम ने ग्यारह हजार वर्षों तक शासन किया। उन्होंने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया। देवताओं की प्रार्थना पर राम सभी पुरवासियों और भाइयों के साथ स्वर्ग चले गये।१०-११½।

सपौरः सानुजः, सीतापुत्रो [4]जनपदान्वितः[5] ॥१२

अग्निरुवाच—

वाल्मीकिर्नारदाच्छ्रुत्वा रामायणमकारयत्।
सविस्तरं, य एतच्च शृणुयात्स दिवं व्रजेत् ॥१३

पुरवासियों, अनुजों एवं जनपदवासियों समेत सीता-पुत्र लव और कुश राज्य सँभालने लगे।

अग्नि बोले—(देवर्षि) नारद के मुख से राम-कथा को सुनकर वाल्मीकि ने विस्तारपूर्वक रामायण की रचना की। जो इसको सुनता है वह अवश्य ही स्वर्ग चला जाता है।१२-१३।

इत्यादिमहापुराणआग्नेये रामायण उत्तरकाण्ड
एकादशोऽध्यायः।११

---

१ क. च. दत्त्वा। २ ङ. स्वर्गे। ३ घ. ङ. च. देवार्चितो। ४ क. ङ. च. °दास्थितः। ५ राज्यं चकारेति शेषोऽर्थः।

अथ द्वादशोऽध्याय:

कृष्णावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच—

हरिवंशं प्रवक्ष्यामि विष्णुनाभ्यम्बुजादज:[1] ।
ब्रह्मणोऽत्रिस्तत: सोम: सोमाज्जात: पुरूरवा: ॥१

अग्नि बोले—अब मैं हरिवंश का वर्णन करूँगा। विष्णु की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा से अत्रि और अत्रि से चन्द्रमा उत्पन्न हुए, तथा चन्द्रमा से पूरूरवा उत्पन्न हुए।१

तस्मादायुरभूत्तस्मान्नहुषोऽतो ययातिक: ।
यदुं च तुर्वसुं तस्माद्देवयानी व्यजायत ॥२

पुरूरवा के पुत्र आयु और आयु के नहुष हुए। नहुष का पुत्र ययाति हुआ। ययाति से देवयानी ने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रों को जन्म दिया।२

द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
यदो: कुले यादवाश्च वासुदेवस्तदुत्तम: ॥३

वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने ययाति से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक पुत्रों को जन्म दिया। यदु के वंशज यादव कहलाये। उनमें वासुदेव सबसे उत्तम हुए।३

भुवो भारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवत: ।
हिरण्यकशिपो: पुत्रा: षड्गर्भा योगनिद्रया ॥४
विष्णुप्रयुक्तया नीता देवकीजठरं पुरा ।
अभूच्च सप्तमो गर्भो देवक्या जठराद्बल: ॥५
सङ्क्रामितोऽभूद्रोहिण्यां रौहिणेयस्ततो हरि: ॥५½

वे भगवान् वासुदेव पृथ्वी के (पाप का) बोझ उतारने के लिए पिता वसुदेव तथा माता देवकी के गर्भ से (अवतरित हुए)। कृष्णजन्म के पूर्व विष्णु की प्रेरणा से योगनिद्रा हिरण्यकशिपु के छ: पुत्रों को देवकी के गर्भ में लायी

---

१ अजीजनदिति शेष: ।

थी। सातवीं बार देवकी के गर्भ से बलराम उत्पन्न हुए जिसको माया ने रोहिणी के गर्भ में रख दिया। इसलिए वे रौहिणेय (रोहिणी-पुत्र) कहलाये।४-५½।

कृष्णाष्टम्यां च [1]नभसि अर्द्धरात्रे चतुर्भुजः ।।६
देवक्या वसुदेवेन स्तुतो वालो द्विवाहुकः ।
वसुदेवः कंसभयाद्यशोदाशयनेऽनयत् ।।७

तदनन्तर भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की अर्द्धरात्रि के समय चतुर्भुज रूप में भगवान् कृष्ण प्रकट हुए। देवकी और वसुदेव के द्वारा स्तुति किये जाने पर वे दो भुजा वाले बालक बन गये। वसुदेव ने कंस के भय से कृष्ण को यशोदा की शय्या पर पहुँचा दिया।६-७।

यशोदावालिकां गृह्य देवकीशयनेऽनयत् ।
कंसो वालध्वनिं श्रुत्वा तां चिक्षेप शिलातले ।।८

वसुदेवजी ने यशोदा की कन्या को लाकर देवकी की शय्या पर रख दिया। कंस ने शिशु का रोना सुनकर उसे शिलातल पर पटक दिया।८

वारितोऽपि स देवक्या[2] मृत्युर्गर्भोऽष्टमो मम ।
श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाचमतो[3] गर्भास्तु मारिताः[4] ।।९
सा क्षिप्ता वालिका कंसमाकाशस्याऽब्रवीदिदम् ।।१०

देवकी कंस को बार-बार मना कर रही थी। कंस ने कहा कि, 'आठवाँ गर्भ मेरा काल होगा'----इस आकाशवाणी को सुनकर ही मैंने तुम्हारे पुत्रों की हत्या की है। कंस के द्वारा फेंकी जाने पर वह बालिका आकाश में जाकर कंस से कहने लगी।९-१०।

वालिकोवाच—

किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति ।
सर्वस्वभूतो देवानां भूभारहरणाय[5] सः ।।११

बालिका बोली—रे कंस, मुझे (इस प्रकार) फेंकने से क्या? तेरा वध करने वाला तो (पहले ही) उत्पन्न हो चुका है। वह देवताओं का सर्वस्व है और पृथ्वी के भार को हटाने के लिये उत्पन्न हुआ है।११

---

१ 'कृष्णाष्टम्यां नभस्ये तु इति पाठः साधीयान् स्यात्? अत्र मूलपाठः चिन्त्यः? २ ग. °क्या विवाहसमयेरितः। सा। ३ घ. वाचं मत्तो ग°। ४ घ. °ताः। ५ समर्पितास्तु देवक्या विवाहसमयेरिताः। सा।

अग्निरुवाच—

इत्युक्त्वा सा च शुम्भादीन्हत्वा इन्द्रेण च स्तुता ।
आर्या दुर्गा देवगर्भा[1] अम्बिका भद्रकाल्यपि ।।१२
भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नाम सर्वकामान्स[2] चाऽऽप्नुयात् ।।१३

अग्नि बोले—इस प्रकार कहकर और शुम्भ आदि राक्षसों का वध करके वह देवी इन्द्र के द्वारा इस प्रकार पूजित हुई—'आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रकाली, भद्रा, क्षेम्या, क्षेमकरी, नैकवाहु आदि नामों वाली हे देवि ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। जो व्यक्ति तीनों सन्ध्याओं में इन नामों का पाठ करता है उसकी सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। १२-१३।

कंसोऽपि पूतनादींश्च[3] प्रैषयद्वालनाशने ।
यशोदापतिनन्दाय वसुदेवेन चार्पितौ ।।१४
रक्षणाय च कंसादेर्भीतिनैव हि गोकुले ।
रामकृष्णौ चेरतुस्तौ गोभिर्गोपालकैः सह ।।१५
सर्वस्य जगतः पालौ गोपालौ तौ बभूवतुः । १५½।

कंस ने भी उस शिशु का नाश करने के लिए पूतना इत्यादि को भेजा। कंस आदि से डरे हुए वसुदेव ने गोकुल में यशोदापति नन्द को अपने दोनों लड़के सौंप दिये। सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाले बलराम और कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ गायों को चराते हुए स्वयं गोपाल बन गये।१४-१५½।

कृष्णश्चोलूखले बद्धो दाम्ना व्यग्रयशोदया ।।१६
यमलार्जुनमध्येऽगाद् भग्नौ च यमलार्जुनौ ।
परिवृत्तश्च शकटः पादक्षेपात्स्तनार्थिना ।।१७

एक बार यशोदा ने खीझकर कृष्ण को रस्सी से ओखली में बाँध दिया। कृष्ण (धीरे-धीरे) यमलार्जुन वृक्षों के बीच से निकले जिससे वे दोनों वृक्ष उखड़ गये। कृष्ण ने शकटासुर को चरणों के आघात से नष्ट कर दिया।१६-१७।

पूतना स्तनपानेन सा हता हन्तुमुद्यता ।।
वृन्दावनगतः कृष्णः कालियं यमुनाह्रदात् ।।१८
जित्वा निःसार्य चाब्धिस्थं चकार बलसंस्तुतः ।
क्षेमं तालवनं चक्रे हत्वा धेनुकगर्दभम् ।।१९

१ ख. घ. वेदगर्भा। २ ख. ग. घ. °मानवाप्नुया°। ३ घ. °दींश्चाप्रे°।

पूतना ने स्तनपान के लिए उत्सुक कृष्ण को अपने विषाक्त स्तनों को पिलाकर मारना चाहा, किन्तु कृष्ण ने उसके स्तनों को पीते-पीते उसे ही मार डाला। वृन्दावन में जाकर कृष्ण ने कालिय नाग को यमुना के गर्त से निकालकर सागर में डाल दिया जिससे बलदेव ने उनकी (इस अद्भुत कार्य के लिए) प्रशंसा की। धेनुकासुर को मारकर उन्होंने तालवन को बाधाओं से मुक्त कर दिया।१८-१९।

अरिष्टवृषभं हत्वा केशिनं हयरूपिणम्।
शक्रोत्सवं परित्यज्य कारितो गोत्रयज्ञकः ॥२०

बैल का रूप धारण करने वाले अरिष्टासुर को (और) घोड़े का रूप धारण करने वाले केशी को मारकर भगवान् कृष्ण ने इन्द्रोत्सव को बन्द कराकर (गोवर्धन) पर्वत के पूजन की प्रथा चला दी।२०

पर्वतं धारयित्वा च शक्राद् वृष्टिर्निवारिता।
नमस्कृतो[1] महेन्द्रेण [2]गोविन्दोऽथार्जुनोऽर्पितः ॥२१

गोवर्धन पर्वत को उठाकर उन्होंने (कुपित) इन्द्र के कोप से उत्पन्न वृष्टि से व्रजवासियों को बचा लिया। महेन्द्र ने गोविन्द को प्रणाम किया, अर्जुन ने भगवान् की शरण में आत्मसमर्पण किया।२१

इन्द्रोत्सवस्तु तुष्टेन भूयः कृष्णेन कारितः।
रथस्थो मथुरां चागात्कंसोक्ताक्रूरसंस्तुतः ॥२२

सन्तुष्ट होकर भगवान् कृष्ण ने पुनः इन्द्रोत्सव की परम्परा चला दी। कंस के भेजे हुए दूत अक्रूर के द्वारा निमन्त्रण पाकर कृष्ण रथ पर सवार होकर मथुरा को चल दिये।२२

गोपीभिरनुरक्ताभिः क्रीडिताभिर्निरीक्षितः।
रजकं [3]चाप्रयच्छन्तं हत्वा वस्त्राणि[4] सोऽग्रहीत् ॥२३

(जाते समय) साथ-साथ क्रीड़ा करने वाली, प्रेम करने वाली गोपियों के द्वारा देखे गये भगवान् कृष्ण (गोकुल से मथुरा चले गये)। (कृष्ण ने मथुरा में) एक धोबी को मार डाला क्योंकि उसने माँगने पर वस्त्रों को नहीं दिया था। तदनन्तर उन्होंने उससे वस्त्रों को ले लिया।२३

---

१ क. ख. ग. ङ. च. नमस्कृत्य। २ ख. ङ. च. °गोविन्देऽथाऽ°। ३ 'च प्रजल्पन्तं' इति घ. पुस्तकटिप्पणीस्थः पाठः। ४ ख. घ. ङ. च. °णि चाग्र°

सह रामेण मालाभृन्मालाकारे[1] वरं[2]ददौ ।
दत्तानुलेपनां कुब्जामृजुं [3]चक्रेऽहनद्गजम् ॥२४
मत्तं कुवलयापीडं द्वारि रङ्गं प्रविश्य च ।२४½।

बलराम के सहित स्वयं उन वस्त्रों को पहनकर आगे बढ़ गये। एक माली से माला माँगकर उन्होंने माला पहन ली और उसे इष्ट वरदान देकर सन्तुष्ट किया। (चन्दनादि) लेप (सामग्री) प्रदान करने वाली कुबड़ी को सीधी कर दिया। राजद्वार पर जाकर मतवाले (मार्गविरोधक) कुवलयापीड हाथी को मार गिराया ।२४-२४½।

कंसादीनां पश्यतां च मञ्चस्थाने[4] नियुद्धकम् ॥२५
चक्रे चाणूरमल्लेन मुष्टिकेन बलोऽकरोत् ।
चाणूरमुष्टिकौ ताभ्यां हतौ मल्लौ तथाऽपरे ॥२६

फिर रंगभूमि में जाकर कंस आदि राक्षसों के सामने मञ्चस्थान पर चाणूर नामक असुर मल्ल से मल्लयुद्ध करने लगे। बलराम मुष्टिक से भिड़ गये। अन्त में बलराम और कृष्ण ने चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य असुर मल्लों को मार गियारा ।२५-२६।

मथुराधिपतिं कंसं हत्वा तत्पितरं हरिः ।
चक्रे यादवराजानमस्तिप्राप्ती च कंसगे ॥२७
जरासन्धस्य ते पुत्र्यौ जरासन्धस्तदीरितः ।
चक्रे स मथुरारोधं यादवैर्युयुधे शरैः ॥२८

मथुराधिपति कंस को मारकर कृष्ण ने उसके पिता उग्रसेन को यादवों का राजा बना दिया। जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो पुत्रियाँ थीं, जिनका विवाह कंस से हुआ था। उनके कहने पर जरासन्ध ने मथुरा को चारों ओर से घेरकर बाणों से यादवों के साथ युद्ध किया ।२५-२८।

रामकृष्णौ च मथुरां त्यक्त्वा गोमन्तमागतौ ।
जरासन्धं विजित्याऽऽजौ पौण्ड्रकं वासुदेवकम् ॥२९

राम और कृष्ण मथुरा को छोड़कर गोमन्त पर्वत पर चले गये। बाद में भगवान् कृष्ण ने जरासन्ध को पराजित किया। वासुदेव (बनने वाले) पौण्ड्रक को (भगवान् ने मारा।) ।२९

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °लाभून्मा° । २ ङ. धनं । ३ क. ङ. च.° क्रे हरिः कुजम् । ४ घ. मञ्चस्थानां ।

पुरीं तु[1] द्वारकां कृत्वा न्यवसद्यादवैर्वृतः ।
भौमं तु नरकं हत्वा तेनाऽऽनीताश्च कन्यकाः ॥३०
देवगन्धर्वयक्षाणां ता उवाह जनार्दनः ।
षोडश स्त्रीसहस्राणि रुक्मिण्याद्यास्तथाऽष्ट च ॥३१

द्वारका नाम की एक नयी नगरी बसाकर कृष्ण यादवों के साथ वहीं रहने लगे । उसके बाद (कामरूप के राजा) भौम-नरकासुर का वध करके वहाँ से देव, गन्धर्व और यक्षों की अनेक कन्याओं को (छुड़ाकर) ले आये और उनसे विवाह कर लिया । इस प्रकार उनकी सोलह हजार स्त्रियाँ हो गयीं । इनके अतिरिक्त रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ और भी थीं ।३०-३१।

सत्यभामासमायुक्तो गरुडे नरकार्दनः ।
मणिशैलं सरत्नं च इन्द्रं जित्वा हरिर्दिवि ॥३२
पारिजातं समानीय सत्यभामागृहेऽकरोत् ।
सान्दीपनेश्च[2] शस्त्रास्त्रं[3] ज्ञात्वा तद्बालकं ददौ ॥३३

एक बार नरकान्तक श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुड़ पर सवार होकर देवलोक में गये । वहाँ पर उन्होंने इन्द्र को पराजित करके मणिशैल और अनेक बहुमूल्य रत्नों के साथ पारिजात का अपहरण करके सत्यभामा के अन्तःपुर में रख दिया । कृष्ण ने सान्दीपनि गुरु से शस्त्रास्त्रों की शिक्षा लेकर गुरुदक्षिणा में उनके (मृत) बालक को लाकर दे दिया ।३२-३३।

जित्वा पञ्चजनं दैत्यं यमेन च सुपूजितः ।
अवधीत्कालयवनं मुचुकुन्देन पूजितः ॥३४

उन्होंने पञ्चजन को जीता और फिर यम के द्वारा भगवान् की सम्यक् रूप से पूजा की गयी । भगवान् ने कालयवन का वध किया और मुचुकुन्द से सम्मान प्राप्त किया ।३४

वसुदेवं देवकीं च [4]भक्तविप्रांश्च सोऽर्चयत् ।
रेवत्यां बलभद्राच्च जज्ञाते[5] निषधोल्मुकौ[6] ॥३५

कृष्ण ने वसुदेव, देवकी, भक्तों और ब्राह्मणों का आदर-सत्कार किया । बलभद्र से रेवती ने निषध और उल्मुक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ।३५

---

१ घ. च. । २ ग. सान्दीपिने° । ङ. सान्दीपनाच्च । ३ च. सच्छास्त्रं । ४ ङ भक्तं वि° । ५ क. ख. घ. यज्ञाते । ग. ङ. यज्ञात्ते । च. यज्ञान्ते । ६ ख. ग. घ. निशठोन्मुकौ ।

कृष्णात्साम्बो[1] जाम्ववत्यामन्यास्वन्येऽभवन्सुताः ।
प्रद्युम्नोऽभूच्च रुक्मिण्यां षष्ठेऽह्नि स हृतो बलात् ॥३६
शम्बरेणाम्बुधौ क्षिप्तो मत्स्यो जग्राह, धीवरः ॥३६½

कृष्ण ने जाम्बवती से साम्ब को जन्म दिया। अन्य स्त्रियों से भी अनेक पुत्र हुए। रुक्मिणी से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। जन्म के छठे दिन शम्बर ने बलात् उसका अपहरण करके समुद्र में फेंक दिया। वहाँ उसे एक मत्स्य निगल गया।३६-३६½।

तं मत्स्यं शम्वरायादान्मायावत्यै च शम्बरः ॥३७
मायावती मत्स्यमध्ये दृष्ट्वा स्वं पतिमादरात् ।
पुपोष सा तं[2] चोवाच रतिस्तेऽहं पतिर्मम ॥३८

उस मछली को एक मछुए ने पकड़ा। वह मछली शम्बर को उपहार में दी गयी। शम्बर ने उसे मायावती को दे दिया। मायावती ने मछली के पेट में (वालक के रूप में आये हुए) अपने पति को देखकर आदरपूर्वक उसका पालन-पोषण किया। (बड़े होने पर) मायावती ने उससे कहा—'तुम मेरे पति हो और मैं तुम्हारी पत्नी रति हूँ।३७-३८।

([3]कामस्त्वं शम्भुनाऽनङ्गः कृतोऽहं शम्बरेण च ।
हृता, न तस्य पत्नी, त्वं मायाज्ञः शम्बरं जहि ॥३९

तुम कामदेव हो, शंकर ने तुमको भस्म करके अनंग बना दिया था और शम्बर ने मेरा अपहरण कर लिया था। मैं उसकी पत्नी नहीं हूँ। तुम माया को जानने वाले हो अतः शम्बर को मार डालो।३९

तच्छ्रुत्वा शम्बरं हत्वा प्रद्युम्नः सह भार्यया ।)
मायावत्या ययौ कृष्णं कृष्णो हृष्टोऽथ रुक्मिणी ॥४०

यह सुनकर प्रद्युम्न शम्बर को मारकर अपनी पत्नी मायावती के साथ कृष्ण के समीप आये। कृष्ण और रुक्मिणी अपने पुत्र को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये।४०

प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूदुषापतिरुदारधीः ।
बाणो बलिसुतस्तस्य सुतोषा शोणितं पुरम् ॥४१
तपसा शिवपुत्रोऽभून्मयूरध्वजपाततः[4] ।
युद्धं प्राप्स्यसि वाण त्वं वाणं तुष्टः शिवोऽभ्यधात्[5] ॥४२

---

१ घ. ङ. च. °ष्णाच्छाम्बो° । २ ङ. तं प्रोवा° । ३ कामस्त्वं........ सहभार्यया पुस्तके नास्ति । ४ ग. घ. ङ. °भून्मायूरध्वजपातितः । ५ क. ख. ग. ङ च. °भ्ययात् ।

प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का जन्म हुआ जो उषा के पति और उदार बुद्धि वाले थे बलि का पुत्र था बाण। उसकी पुत्री थी उषा। बाण की राजधानी थी शोणितपुर। बाण तपस्या द्वारा शिव का पुत्र हो गया। बाण की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने कहा—"हे बाण! जब तुम्हारा मयूरध्वज टूट कर गिर जायेगा, तब तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा।४१-४२।

शिवेन क्रीडतीं[1] गौरीं दृष्ट्वोषा[2] सस्पृहा पतौ।
तामाह गौरी भर्ता ते निशि स्वप्ने तु[3] दर्शनात्॥४३

एक बार गौरी को शिव के साथ क्रीडा करते हुए देखकर उषा ने भी पति (प्राप्त करने) की इच्छा की। गौरी ने उषा से कहा कि रात्रि में स्वप्न देखने से तुम्हें पति मिलेगा।४३

वैशाखमासद्वादश्यां[4] पुमान्भर्ता भविष्यति।
गौर्युक्ता हर्षिता चोषा गृहे सुप्ता ददर्श तत्॥४४

"वैशाख मास की द्वादशी की रात में स्वप्न के समय तुम अपने पति को प्राप्त करोगी।" गौरी के इस वरदान को सुनकर उषा प्रसन्न होकर घर चली गयी और उसी रात में स्वप्न में अपने पति का दर्शन किया।४४

आत्मना सङ्गतं ज्ञात्वा तत्सख्या चित्रलेखया।
लिखिताद्धै चित्रपटादनिरुद्धं[5] समानयत्॥४५
कृष्णपौत्रं द्वारकातो दुहित्रा वाणमन्त्रिणः।
कुम्भाण्डस्यानिरुद्धोऽगाद्रराम ह्युषया सह॥४६

स्वप्न में अपने पति के सहवास को प्राप्त कर उषा ने अपनी सखी चित्रलेखा द्वारा बनाये गये चित्रलेख से स्वप्नगत अनिरुद्ध का परिचय प्राप्त किया। उषा ने अपने पिता बाण के मन्त्री कुम्भाण्ड की कन्या तथा अपनी सहेली चित्रलेखा से कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को द्वारका से मँगा लिया। अनिरुद्ध ने आकर उषा के साथ रमण किया।४५-४६

वाणध्वजस्य सम्पातो रक्षिभिः स निवेदितः।
अनिरुद्धस्य बाणेन युद्धमासीत्सुदारुणम्॥४७

रक्षकों ने बाण को बाणध्वज के टूटकर गिरने का समाचार सुनाया। अनिरुद्ध का बाणासुर के साथ घोर युद्ध हुआ।४७

---

१ ङ. क्रीडितां। २ क. ङ. च. दृष्ट्वा सा स°। ३ घ. सुप्तेति। ४ क. ङ. च. °श्यां पुंसोभर्ता। ५ क. ङ. च. °द्धं च साऽनय°।

श्रुत्वा तु नारदात्कृष्णः प्रद्युम्नवलभद्रवान् ।
गरुडस्थोऽथ जित्वाऽग्नीञ्ज्वरं माहेश्वरं तथा ॥४८

नारद के द्वारा युद्ध का समाचार सुनकर कृष्ण, प्रद्युम्न और बलदेव के साथ गरुड़ पर सवार होकर युद्धभूमि में पहुँच गये। उन्होंने (आते ही) महेश्वर द्वारा भेजे गये माहेश्वर ज्वर और आग्नेयास्त्र को जीत लिया।४८

हरिशङ्करयोर्युद्धं वभूवाथ शराशरि ।
[1]नन्दिविनायकस्कन्दमुख्यास्ताक्ष्यादिभिर्जिताः ॥४९

इसके बाद विष्णु और शंकर में बाणों से युद्ध होने लगा। नन्दी, विनायक, स्कन्द आदि प्रमुख शिव-गणों को गरुड़ आदि विष्णु के गणों ने जीत लिया।४९

जृम्भिते शङ्करे सुप्ते[2] जृम्भणास्त्रेण विष्णुना ।
छिन्नं सहस्रं वाहूनां रुद्रेणाभयमर्थितम्[3] ॥५०

कृष्ण ने जृम्भास्त्र के प्रयोग से शंकर को सुला दिया और बाण की हजार भुजाओं को काट डाला। शिव ने बाण को अभय वरदान देने के लिये कृष्ण से प्रार्थना की।५०

विष्णुना जीवितो वाणो द्विवाहुः प्राब्रवीच्छिवम् ॥५१

विष्णु ने बाणासुर को द्विबाहु बनाकर जीवित कर दिया और शिव से कहा।५१

कृष्ण उवाच—

त्वया यदभयं दत्तं वाणस्यास्य मयाऽपि तत् ।
आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नकरमाप्नुयात् ॥५२

कृष्ण बोले—आपने जो इस बाणासुर को अभयदान दिया है, इसलिए मैंने भी उसे अभय कर दिया है। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। हम दोनों में भेद बुद्धि रखने वाला नरकगामी होता है।५२

अग्निरुवाच—

शिवाद्यैः पूजितो विष्णुः सानिरुद्ध उषादियुक् ।
द्वारकां तु गतो रेमे उग्रसेनादियादवैः ॥५३

शिव आदि से सम्मान पाकर कृष्ण उषा और अनिरुद्ध के साथ द्वारका में आ गये जहाँ वे उग्रसेन आदि यादवों के साथ क्रीड़ा करने लगे।५३

---

१ क. ङ. च. नन्दी विनायकः स्कन्दमुखास्ता° । २ क. ख. घ. च. नष्टे ।
३ क. ङ. च. °यसन्निभम् ।

अनिरुद्धात्मजो वज्रो मार्कण्डेयात्तु सर्ववित् ।
बलभद्रः प्रलम्बघ्नो यमुनाकर्षणोऽभवत् ॥५४

अनिरुद्ध का वज्र नामक एक पुत्र हुआ जो मार्कण्डेय ऋषि के प्रभाव से सर्वज्ञ हो गया। प्रलम्ब का वध करने वाले बलभद्र यमुना को खींचने के कारण यमुनाकर्षण रूप में प्रसिद्ध हो गये।५४

द्विविदस्य कपेर्भेत्ता कौरवोन्मादनाशनः ।
हरी रेमेऽनेकमूर्ती रुक्मिण्यादिभिरीश्वरः ॥५५

द्विविद नामक वानर का वध करने वाले बलरामजी ने कौरवों के उन्माद को नष्ट कर दिया। सर्वसमर्थ (कृष्णरूपधारी) विष्णु ने (अपनी माया से अनेक रूपों को धारण करके) रुक्मिणी आदि के साथ रमण किया।५५

पुत्रानुत्पादयामास त्वसङ्ख्यातान्स यादवान्[1] ।
हरिवंशं पठेद्यस्तु प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥५६

भगवान् कृष्ण ने असंख्य यादव पुत्रों को जन्म दिया। जो व्यक्ति इस हरिवंश का पाठ करता है उसकी सभी इच्छायें पूरी हो जाती हैं और वह विष्णु के पास चला जाता है।५६

इत्यादिमहापुराण आग्नेये हरिवंशे
द्वादशोऽध्यायः ।१२

---

१ स कृष्णो यादवान् पुत्रवत्पालयामासेत्यर्थः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भारताख्यानम्

अग्निरुवाच—

भारतं सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यलक्षणम् ।
भूभारमहरद्विष्णुर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥१

अग्नि बोले—अब मैं कृष्ण के माहात्म्य को सूचित करने वाली महाभारत की कथा को कहूँगा, जिसमें विष्णु ने पाण्डवों को निमित्त बनाकर पृथ्वी का भार दूर कर दिया था ।१

विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ।
सोमः सोमाद् बुधस्तस्मादैल आसीत्पुरूरवाः ॥२
तस्मादायुस्ततो राजा नहुषोऽतो ययातिकः ।
ततः पुरुस्तस्य वंशे भरतोऽथ नृपः कुरुः ॥३

विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए । ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और अत्रि के पुत्र सोम हुए । सोम से बुध और बुध से ऐल पुरूरवा का जन्म हुआ । ऐल पुरूरवा के पुत्र आयु, आयु के नहुष और नहुष के पुत्र ययाति हुए । ययाति के पुरु और पुरु के वंश में भरत हुए । भरत के वंश में कुरु हुए ।२-३।

तद्वंशे शन्तनुस्तस्माद् भीष्मो गङ्गासुतोऽनुजौ[१] ।
चित्राङ्गदो विचित्रश्च सत्यवत्यां च शन्तनोः ॥४

कुरु के वंश में शन्तनु और शन्तनु के गङ्गापुत्र भीष्म हुए । सत्यवती के गर्भ से शन्तनु के द्वारा भीष्म के दो अनुज—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए ।४

स्वर्गं गते शन्तनौ च भीष्मो भार्याविवर्जितः ।
अपालयद् भ्रातृराज्यं बालश्चित्राङ्गदो हतः ॥५

शन्तनु के स्वर्गगामी हो जाने पर भीष्म ने ब्रह्मचारी रहकर भाई के राज्य का पालन किया । (चित्राङ्गद नामक एक गन्धर्व ने) बालक चित्रांगद को मार डाला ।५

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °तो ह्वजौ ।

[1]चित्राङ्गदेन, द्वे कन्ये काशिराजस्य चाम्बिका ।
अम्बालिका च भीष्मेण आनीते विजितारिणा ॥६

शत्रुओं को जीतने वाले भीष्म काशिराज की दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिका को अपहरण करके ले आये ।६

भार्ये विचित्रवीर्यस्य, यक्ष्मणा स दिवं गतः ।
सत्यवत्या[2] ह्यनुमतादम्बिकायां नृपोऽभवत् ॥७
धृतराष्ट्रोऽम्बालिकायां पाण्डुश्च व्यासतः सुतः ।
गान्धार्यां धृतराष्ट्राच्च दुर्योधनमुखं शतम् ॥८

उन दोनों कन्याओं का विचित्रवीर्य से विवाह कर दिया । विचित्रवीर्य यक्ष्मा रोग से मर गये । सत्यवती की अनुमति से व्यास ने (नियोग द्वारा) अम्बिका से धृतराष्ट्र नामक राजा को उत्पन्न किया । उसी प्रकार अम्बालिका से पाण्डु की उत्पत्ति हुई । धृतराष्ट्र से गान्धारी के दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।७-८।

शतशृङ्गाश्रमपदे भार्यायोगादथो[3] मृतः[4] ।
ऋषिशापात्ततो धर्मात्कुन्त्यां पाण्डोर्युधिष्ठिरः ॥९
वाताद्भीमोऽर्जुनः शक्रान्माद्र्यामश्विकुमारतः ।
नकुलः सहदेवश्च, पाण्डुर्माद्रीयुतो[5] मृतः ॥१०
कर्णः कुन्त्यां हि कन्यायां जातो दुर्योधनाश्रितः ।
कुरुपाण्डवयोर्वैरं दैवयोगाद् बभूव ह ॥११

ऋषि के शाप से पाण्डु शतशृङ्ग के आश्रम में स्त्री-सहवास के कारण स्वर्गगामी हो गये । कुन्ती ने धर्म से पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को, वायु से भीम को और इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया । माद्री ने अश्विनीकुमार से नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया । माद्री के साथ सहवास करते-करते पाण्डु की मृत्यु हो गयी । कौमार्यावस्था में ही कुन्ती से कर्ण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जो कि दुर्योधन के आश्रय में रहता था । दैवयोग से कौरवों और पाण्डवों में वैर हो गया ।९-११।

दुर्योधनो जतुगृहे पाण्डवानदहत्कुधीः ।
दग्धागाराद्विनिष्क्रान्ता मातृषष्ठास्तु पाण्डवाः ॥१२

---

१ चित्राङ्गदाख्येन गन्धर्वेण हत इत्यर्थः । २ ख. °त्याम्यनु° । ३ क. °गाद्यतो मृ° । ख. ग. °गाच्च तन्मृतिः । ऋ° । ४ पाण्डुमृत इत्यर्थः । ५ क. ङ. च. °द्रीसुतो नृपः । क° ।

दुर्बुद्धि दुर्योधन ने लाक्षागृह में पाण्डवों को जला दिया किन्तु वे पाँचो पाण्डव अपनी माता के साथ जलते हुए घर से निकल आये ।१२

ततस्त[1] एकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ।
मुनिवेषाः स्थिताः सर्वे निहत्य वकराक्षसम् ।।१३

तदनन्तर एकचक्रापुरी में जाकर वे पाण्डव मुनियों के वेश में एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे । वहाँ उन्होंने बक नामक एक राक्षस का वध किया ।१३

ययुः पाञ्चालविषयं द्रौपद्यास्ते स्वयंवरे ।
सम्प्राप्ता वहुवेषेण[2] द्रौपदी[3] पञ्चपाण्डवैः[4] ।।१४

वहाँ से वे पाँचो भाई पाञ्चाल नामक प्रान्त में द्रौपदी के स्वयंवर में सम्मिलित हुए । पाँचों पाण्डवों ने अनेक वेश धारण करके द्रौपदी को प्राप्त कर लिया ।१४

अर्धराज्यं पुनः[5]प्राप्ता ज्ञाता दुर्योधनादिभिः ।
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं पावकाद्रथमुत्तमम् ।।१५
सारथिं चार्जुनः सङ्ख्ये कृष्णमक्षय्यसायकान् ।
ब्रह्मास्त्रादींस्तथा द्रोणात्सर्वे सर्वविशारदाः[6] ।।१६

वनवास से लौट आने पर दुर्योधन आदि के द्वारा जान लिये जाने पर पाण्डवों ने फिर से आधा राज्य प्राप्त कर लिया । अर्जुन ने अग्नि से गाण्डीव नामक दिव्य धनुष्, उत्तम रथ, युद्ध में सारथि के रूप में कृष्ण को, अक्षय बाणों को और ब्रह्मास्त्र आदि को प्राप्त कर लिया । सभी पाण्डव गुरु द्रोणाचार्य से सब प्रकार की अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करके शस्त्र-सञ्चालन में निपुण हो गये ।१५-१६।

कृष्णेन सोऽर्जुनो वह्निं खाण्डवे समतर्पयत् ।
इन्द्रवृष्टिं वारयंश्च शरवन्धेन[7] पाण्डवः ।।१७

अर्जुन ने कृष्ण की सहायता से खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया और अपने शस्त्र-कौशल से बाणों का जाल बिछाकर इन्द्र की वृष्टि को रोक लिया ।१७

जिता दिशः पाण्डवैस्तु राज्यं चक्रे युधिष्ठिरः ।
बहुस्वर्णं राजसूयं, न सेहे तत्सुयोधनः ।।१८

---

१. ख. ग. घ. °तस्तु ए° । २. ख. घ. ङ. बाहुवेधेन । ग. बाहुवेदेन । च. वहुबोधेन । ३. क. द्रौपदीं । ४. क. पाण्डवाः । ५. ख. घ. ततः । ६ घ. शस्त्रविशारदाः । ७. ख. ग. घ. शरवर्षेण ।

पाण्डवों ने दिग्विजय कर लिया। युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उन्होंने राजसूय यज्ञ किया जिसमें बहुत-सा सोना दान में दिया गया। सुयोधन (पाण्डवों के) इस ऐश्वर्य को बरदाश्त नहीं कर सका।१८

भ्रात्रा दुःशासनेनोक्तः कर्णेन प्राप्तभूतिना।
द्यूतकार्ये शकुनिना द्यूतेन स युधिष्ठिरम् ॥१९
अजयत्तस्य राज्यं च सभास्थो मायया हसन्।
जितो युधिष्ठिरो भ्रातृयुक्तश्चारण्यकं ययौ ॥२०

अपने भाई दुःशासन और ऐश्वर्यशाली कर्ण के कहने पर उसने शकुनी के द्वारा जुए में युधिष्ठिर को हरा दिया और सभा में ही व्यङ्ग्यपूर्वक युधिष्ठिर की हँसी उड़ाते हुए उनके राज्य को भी जीत लिया। इसके बाद हारे हुए युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों (और द्रौपदी) के साथ जंगल में चले गये।१९-२०।

वने द्वादश वर्षाणि प्रतिज्ञातानि सोऽनयत्।
अष्टाशीतिसहस्राणि भोजयन् पूर्ववद् द्विजान् ॥२१

प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने जंगल में बारह वर्ष बिताये। वन में युधिष्ठिर ने पहले की भाँति धौम्य आदि अट्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया।२१

सधौम्यो द्रौपदीषष्ठस्ततः प्रागाद्विराटकम्।
कङ्को द्विजो ह्यविज्ञातो राजा भीमोऽथ सूपकृत् ॥२२
बृहन्नडाऽर्जुनो, भार्या सैरन्ध्री, यमजौ तथा।
अन्यनाम्ना, भीमसेनः कीचकं चावधीन्निशि ॥२३

फिर वे लोग द्रौपदी के साथ घूमते हुए अज्ञात-वास करने के लिए विराट की राजधानी में गये। अपने को गुप्त रखने के लिए युधिष्ठिर ने अपने को कङ्क नामक ब्राह्मण घोषित कर दिया। भीम रसोइया बना, अर्जुन बृहन्नला और उनकी स्त्री द्रौपदी सैरन्ध्री बन गयी। इसी प्रकार नकुल और सहदेव ने भी अपने-अपने नाम बदल दिये। भीमसेन ने रात में कीचक का वध कर दिया।२२-२३।

द्रौपदीं हर्तुकामं[1] तमर्जुनश्चाजयत्कुरून्[2]।
कुर्वतो गोग्रहादींश्च तैर्ज्ञाता पाण्डवा अथ ॥२४

---

१ ङ. च. हन्तुकामं। २ क. ग. ङ. च. °श्चावधीत्क°।

क्योंकि वह (कीचक) द्रौपदी का अपहरण करना चाहता था। अर्जुन ने विराट की गायों को चुराने के लिये आये हुए कौरवों को पराजित कर दिया। इसके बाद कौरवों ने पाण्डवों को पहचान लिया।२४

सुभद्रा कृष्णभगिनी अर्जुनात्समजीजनत्।
अभिमन्युं ददौ तस्मै विराटश्चोत्तरां सुताम्॥२५

कृष्ण की बहिन सुभद्रा ने अर्जुन से अभिमन्यु नामक पुत्र को उत्पन्न किया जिसके साथ विराट ने अपनी कन्या उत्तरा का विवाह कर दिया।२५

सप्ताक्षौहिणीश आसीद्धर्मराजो रणाय सः।
कृष्णो दूतोऽब्रवीद्गत्वा दुर्योधनममर्षणम्॥२६
एकादशाक्षौहिणीशं नृपं दुर्योधनं तदा॥२६½

धर्मराज युधिष्ठिर के पास युद्ध के लिये सात अक्षौहिणी सेना थी। युधिष्ठिर का दूत बनकर भगवान् कृष्ण ने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी, असहनशील राजा दुर्योधन से कहा।२६-२६½।

युधिष्ठिरायार्धराज्यं देहि ग्रामांश्च पञ्च वा॥२७
युध्यस्व वा, वचः श्रुत्वा कृष्णमाह सुयोधनः॥२७½

युधिष्ठिर को आधा राज्य या कम से कम पाँच गाँव दे दो अन्यथा उनके साथ युद्ध करो। कृष्ण की इन बातों को सुनकर सुयोधन ने कृष्ण से कहा।२७-२७½।

सुयोधन उवाच—

भूसूच्यग्रं न दास्यामि योत्स्ये सङ्ग्रहणोद्यतः॥२८

सुयोधन बोला—मैं सुई की नोक के बराबर भूमि भी (पाण्डवों को) नहीं दूँगा, मैं तो उनके साथ युद्ध करने के लिये तैयार हूँ।२८

अग्निरुवाच—

विश्वरूपं दर्शयित्वा अधृष्यं [1]विदुरार्चितः।
प्रागाद्युधिष्ठिरं प्राह योधयैनं सुयोधनम्॥२९

अग्नि बोले—जिसको अभिभूत न किया जा सके ऐसे अपने विश्वरूप को दिखलाकर भगवान् कृष्ण (दुर्योधन की सभा से) चले आये। विदुर जी ने भग-

---

१. क. ङ. च. विदुरान्वितः।

वान् कृष्ण की पूजा की। भगवान् कृष्ण युधिष्ठिर के पास आकर बोले—'इस सुयोधन से युद्ध करना ही पड़ेगा'।२९

इत्यादिपुराण आग्नेये आदिपर्वादिभारताख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

भारताख्याने कुरुपाण्डवसङ्ग्रामवर्णनम्

अग्निरुवाच—

यौधिष्ठिरी दौर्योधनी कुरुक्षेत्रं ययौ चमूः।
भीष्मद्रोणादिकान्दृष्ट्वा नायुध्यत गुरूनिति॥१

अग्नि बोले—कुरुक्षेत्र में कौरव और पाण्डव की सेनाएँ आ डटीं। भीष्म और द्रोण आदि को रणभूमि में देखकर अर्जुन ने यह कहते हुए लड़ने में असमर्थता प्रकट की कि 'ये हमारे गुरु हैं'।१

पार्थं ह्युवाच भगवानशोच्या भीष्ममुख्यकाः।
शरीराणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति॥२

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन, भीष्म आदि के विषय में शोक करना ठीक नहीं है। नश्वर तो ये शरीर हैं, जो शरीरी है उस आत्मा का तो कभी नाश ही नहीं होता।२

अयमात्मा परं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि विद्धि तम्।
सिध्यसिद्ध्योः समो योगी राजधर्मं प्रपालय॥३

आत्मा ही परब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान से ही तुम इसे समझो। देखो, योगी उसी को कहते हैं जो सफलता और असफलता (असिद्धि) में समभाव रखता है। इसलिए (तुम योगी बनो और) राजधर्म का पालन करो।३

कृष्णोऽक्तोऽथार्जुनोऽयुध्यद्रथस्थो वाद्यशब्दवान्।
भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्योधने बले[1]॥४

---

१ क. ङ. च. रणे।

कृष्ण के समझाने से अर्जुन युद्ध के लिये तैयार होकर रथ पर सवार हो गये। रण के बाजे बजने लगे। सबसे पहले भीष्म दुर्योधन की सेना के सेनापति नियुक्त हुए।४

पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह।
धार्तराष्ट्राः पाण्डवांश्च जघ्नुर्युद्धे सभीष्मकाः ॥ ५

और शिखण्डी पाण्डवों की सेना के (सेनापति हुए)। दोनों सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हो गया। भीष्म (आदि) के साथ धृतराष्ट्र के पुत्र भी युद्ध में पाण्डवों को मारने लगे।५

धार्तराष्ट्राञ्शिखण्डाद्याः पाण्डवा जघ्नुराहवे।
देवासुरसमं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६

उधर शिखण्डी आदि पाण्डव (पक्षीय) युद्ध में कौरवों को मारने लगे। कौरव-पाण्डव सेनाओं में देवासुर-संग्राम की भाँति युद्ध होने लगा।६

बभूव खस्थदेवानां पश्यतां प्रीतिवर्धनम्।
भीष्मोऽस्त्रैः पाण्डवं सैन्यं दशाहोभिर्न्यपातयत् ॥ ७

यह युद्ध आकाश में रहने वाले देवताओं के लिये अत्यन्त प्रीतिकर था। भीष्म अपने तीक्ष्णबाणों से दस दिन तक पाण्डव-सेना का संहार करते रहे।७

दशमे ह्यर्जुनो बाणैर्भीष्मं वीरं ववर्ष ह।
शिखण्डी द्रुपदोक्तोऽस्त्रैर्ववर्ष जलदो यथा ॥ ८

दसवें दिन अर्जुन पराक्रमी भीष्म के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। द्रुपद के कहने पर शिखण्डी ने भी मेघों की भाँति बाणों की झड़ी लगा दी।८

हस्त्यश्वरथपादातमन्योन्यास्त्रनिपातितम्[1]।
भीष्मः स्वच्छन्दमृत्युश्च युद्धमार्गं प्रदर्श्य च ॥ ९
वसूक्तो वसुलोकाय शरशय्यागतः स्थितः।
उत्तरायणमीक्षंश्च ध्यायन् विष्णुं स्तुवन् स्थितः ॥ १०

(युद्ध में) असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों ने एक-दूसरे को मार गिराया। भीष्म तो इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त करने वाले थे, अतएव वह अपना रण-कौशल दिखलाकर वसुओं के कहने से वसुलोक में जाने के लिये बाणों की शय्या पर लेट गये और अपने हृदय में विष्णु का ध्यान करते हुए सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे।९-१०।

---

१ क. ङ. च.° निपीडित°।

दुर्योधने तु शोकार्ते द्रोणः सेनापतिस्त्वभूत् ।
पाण्डवे हर्षिते[1] सैन्ये धृष्टद्युम्नश्चभूपतिः ॥ ११

दुर्योधन को शोकार्त देखकर गुरु द्रोणाचार्य ने सेना की बागडोर सँभाली। इधर धृष्टद्युम्न विजयी पाण्डव-सेना का सेनापति नियुक्त हो गया।११

तयोर्युद्धं बभूवोग्रं यमराष्ट्रविवर्धनम् ।
विराटद्रुपदाद्याश्च निमग्ना द्रोणसागरे ॥ १२

दोनों सेनाओं में ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि यमराज को अपना उपनिवेश बढ़ाना पड़ा। विराट और द्रुपद आदि वीर द्रोणरूपी सागर में डूब गये। १२

दौर्योधनी महासेना हस्त्यश्वरथपत्तिनी ।
धृष्टद्युम्नाद्धि[2] पतिता द्रोणः काल इवाऽऽवभौ[3] ॥ १३

धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन की सेना के अनेक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों को मार गिराया। उस समय द्रोणाचार्य काल के समान पाण्डव-सेना का नाश करने लगे।१३

हतोऽश्वत्थामा वेत्युक्ते[4] द्रोणः शस्त्राणि[5] चात्यजत् ।
धृष्टद्युम्नशराक्रान्तः पतितः स महीतले ॥ १४
पञ्चमेऽहनि दुर्धर्षः सर्वक्षत्रं प्रमथ्य च । १४½

'अश्वत्थामा (नामक हाथी) या (मनुष्य) मारा गया'—यह सुनकर द्रोणाचार्य ने शस्त्रों को डाल दिया। पाँचवें दिन अत्यन्त पराक्रमी द्रोणाचार्य सभी क्षत्रियों को मार कर धृष्टद्युम्न के बाणों से जर्जर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।१४-१४½।

दुर्योधने तु शोकार्ते कर्णः सेनापतिस्त्वभूत् ॥ १५
अर्जुनः पाण्डवानां च तयोर्युद्धं बभूव ह ।
शस्त्राशस्त्रि महारौद्रं देवासुररणोपमम् ॥ १६

(इसे देखकर) दुर्योधन के शोकाकुल होने पर कर्ण सेनापति बने। उधर अर्जुन पाण्डवों के सेनापति बने। अर्जुन और कर्ण में युद्ध होने लगा। देवासुर-संग्राम के समान उस महाभयंकर युद्ध में शस्त्रों का जवाब शस्त्रों से दिया जाने लगा।१५-१६।

कर्णार्जुनाख्ये सङ्ग्रामे कर्णोऽरीनवधीच्छरैः ।
द्वितीयेऽहनि कर्णस्तु अर्जुनेन निपातितः ॥ १७

---

१ च° षितः सैं०। २ क. ङ. च. °म्नाभिप°। घ. °म्नाधिप°। ३ क. °वा चले। ह°। ४ घ. चेत्युक्ते। ५ क. च. सत्त्वानि।

कर्णार्जुन-युद्ध में कर्ण ने अपने बाणों से शत्रुओं का संहार कर दिया। दूसरे दिन अर्जुन ने कर्ण को मार गिराया।१७

शल्यो दिनार्धं युयुधे ह्यवधीत्तं युधिष्ठिरः ।
युयुधे भीससेनेन हतः सैन्यः सुयोधनः ॥ १८

शल्य ने आधे दिन तक युद्ध किया परन्तु (अन्त में) युधिष्ठिर ने उसे मार डाला। सेना के नष्ट हो जाने पर दुर्योधन (बची हुई सेना के साथ) भीमसेन के साथ युद्ध करने लगा।१८

वहून् हत्वा नरादींश्च भीमसेनमथाऽद्रवत्[1] ।
गदया प्रहरन्तं तु भीमस्तं तु व्यपातयत् ॥ १९

वह युद्ध में अनेक सैनिकों को मारकर भीम के ऊपर झपट पड़ा। भीम ने गदा-प्रहार करते हुए दुर्योधन को मार गिराया।१९

गदयाऽन्यानुजांस्तस्य[2] तस्मिन्नष्टादशेऽह्नि ।
रात्रौ सुषुप्तं च वलं पाण्डवानां न्यपातयत् ॥ २०
अक्षौहिणीप्रमाणं तु अश्वत्थामा महावलः ।
द्रौपदेयांश्च[3] पाञ्चालान् धृष्टद्युम्नं च सोऽवधीत् ॥ २१

दुर्योधन के अन्य छोटे भाई भी भीमसेन के द्वारा ही मारे गये। महाभारत संग्राम के उस (आखिरी) अट्ठारहवें दिन महाबली अश्वत्थामा ने रात में सोई हुई पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना को मार गिराया। उसने पाञ्चाल वीरों, द्रौपदी के पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न का भी वध कर दिया।२०-२१।

पुत्रहीनां द्रौपदीं तां[4] रुदतीमर्जुनस्ततः ।
शिरोमणिं तु जग्राह ऐषीकास्त्रेण तस्य च ॥ २२

पुत्रों के विनाश से द्रौपदी रोने-चिल्लाने लगी। फिर उसको (सान्त्वना देने के लिये) अर्जुन ने अश्वत्थामा के सिर की मणि को सींक के अस्त्र से निकाल लिया।२२

अश्वत्थामास्त्रनिर्दग्धं जीवयामास वै हरिः ।
उत्तरायास्ततो गर्भं स परीक्षिदभून्नृपः ॥ २३

कृष्ण ने अश्वत्थामा के अस्त्र से दग्धप्राय उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित की रक्षा कर ली। वही (आगे चलकर भारत का) सम्राट् हुआ।२३

---

१ क. ख. घ. ङ.° थाब्रवीत्। २ क. च. °न्यात्मजां°। ङ. °न्यांस्तथा तस्य। ३ घ. °देयान्सपा°। ४ च. तां सुद°।

कृतवर्मा कृपो द्रौणिस्त्रयो[1] मुक्तास्ततो रणात्।
पाण्डवाः सात्यकिः कृष्णः सप्त[2] मुक्ता न चापरे ॥ २४

युद्ध के बाद कौरवपक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा शेष रह गये। पाण्डव पक्ष में जो सात वीर शेष रह गये वे थे—पाँचो पाण्डव, सात्यकि और कृष्ण। और कोई (वीरों में) जिन्दा नहीं बचा।२४

स्त्रियश्चाऽऽर्ताः समाश्वास्य भीमाद्यैः स युधिष्ठिरः।
संस्कृत्य प्रहतान् वीरान् दत्तोदकधनादिकः ॥ २५

भीम आदि के साथ युधिष्ठिर ने दुःखी और रोती हुई स्त्रियों को समझा-बुझाकर युद्ध में मारे गये वीरों का (दाह) संस्कार कर दिया। उन्होंने जल-तर्पण तथा धन आदि का दान किया।२५

भीष्माच्छान्तनवाच्छ्रुत्वा धर्मान्सर्वांश्च शान्तिदान्।
राजधर्मान् मोक्षधर्मान् दानधर्मान् नृपोऽभवत् ॥ २६

युधिष्ठिर ने शन्तनु-पुत्र भीष्म से शान्ति देने वाले सब प्रकार के धर्म—राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्म को सुना और विधिपूर्वक राज्यासन ग्रहण किया।२६

अश्वमेधे ददौ दानं ब्राह्मणेभ्योऽरिमर्दनः।
श्रुत्वाऽर्जुनान्मौसलेयं[3] यादवानां च संक्षयम् ॥ २७
राज्ये परीक्षितं स्थाप्य सानुजः[4] स्वर्गमाप्तवान् ॥ २८

शत्रुओं का संहार करने वाले युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करके उसमे ब्राह्मणों को नाना प्रकार का दान दिया। तदनन्तर अर्जुन के मुख से मुसल-युद्ध द्वारा यादवों का विनाश सुनकर राज्यभार परीक्षित को सौंप दिया और अपने चारों छोटे भाइयों, (द्रौपदी तथा पालित कुत्ते) के साथ स्वर्ग चले गये। २७-२८

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भारताख्यानं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः।१४

---

१ दुर्योधनपक्षीयास्त्रयो। रणान्मुक्ताः २ पाण्डवपक्षीयाश्च सप्तेत्यर्थः।
३ क. ङ. च. °ले स या°। ४ ग. ङ. माप्नुयात्। इ°।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पाण्डवस्वर्गारोहणवर्णनम्

अग्निरुवाच—

युधिष्ठरे तु राज्यस्थे आश्रमादाश्रमान्तरम् ।
धृतराष्ट्रो वनमगाद् गान्धारी च पृथा द्विज ॥ १

अग्नि बोले—हे ब्राह्मण ! जब युधिष्ठिर राज्य करने लगे तब गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार करते हुए धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती जंगल में चले गये ।१

विदुरस्त्वग्निना दग्धो वनजेन दिवं गतः ।
एवं विष्णुर्भुवो भारमहरद् दानवादिकम् ॥ २

महात्मा विदुर दावाग्नि में जलकर स्वर्ग को सिधार गये । इस प्रकार विष्णु ने दानव और अन्यायियों का संहार करके पृथ्वी के भार को हलका कर दिया ।२

धर्मायाधर्मनाशाय निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ।
स[1] विप्रशापव्याजेन मुसलेनाहरत्[2] कुलम् ॥ ३

भगवान् कृष्ण ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिये पाण्डवों को निमित्त बनाकर यह संहार-कार्य किया । तत्पश्चात् ब्राह्मण-शाप के बहाने मुसल-युद्ध के द्वारा भारभूत यादव-कुल का संहार कर दिया ।३

यादवानां भारकरं, वज्रं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
देवादेशात्प्रभासे स देहं त्यक्त्वा स्वयं हरिः ॥ ४
इन्द्रलोके ब्रह्मलोके पूज्यते स्वर्गवासिभिः[3] ।

उन्होंने वज्र को यादवों का राजा बना दिया और स्वयं देवताओं के अनुरोध से प्रभास क्षेत्र में शरीर-त्याग करके इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक में रहने वाले देवताओं से सम्मानित हुए ।४

---

१ क. ङ. च. °प्रमायाव्या° । २ क. ङ. च. °हनत्कु° । ३ ख. ग. स्वर्निवा° ।

बलभद्रोऽनन्तमूर्तिः पातालस्वर्गमीयिवान्[1] ।। ५
अविनाशी हरिर्देवो ध्यानिभिर्ध्येय एव सः ।
विना[2] तं द्वारकास्थानं प्लावयामास सागरः ।। ६

अनन्तमूर्ति बलदेव जी पाताल-स्वर्ग को चले गये। ध्यानी जन अविनाशी भगवान् कृष्ण का ध्यान किया करते हैं। भगवान् हरि के विना द्वारकापुरी को समुद्र ने जलमग्न कर दिया।६-७।

संस्कृत्य यादवान् पार्थो दत्तोदकधनादिकः ।
स्त्रियोऽष्टावक्रशापेन भार्या विष्णोश्च याः स्थिताः ।। ७
पुनस्तच्छापतो नीता [3]गोपालैर्लगुडायुधैः ।
अर्जुनं हि तिरस्कृत्य, पार्थः शोकं चकार ह ।। ८

अर्जुन ने मरे हुए यादवों का (दाह-) संस्कार किया और उनके निमित्त जल-तर्पण और धन आदि का दान दिया। अष्टावक्र के शाप से जो स्त्रियाँ विष्णु की पत्नियाँ हुईं थीं उनको उन्हीं के शाप से गोपालों ने लाठी के जोर से अर्जुन को हराकर छीन लिया। यह देखकर अर्जुन को बड़ी चिन्ता हुई।८

व्यासेनाश्वासितो मेने बलं मे कृष्णसन्निधौ ।
हस्तिनापुरमागत्य पार्थः सर्वं न्यवेदयत् ।। ९
युधिष्ठिराय [4]सभ्रात्रे पालकाय नृणां तदा ।९½

व्यास के समझाने पर अर्जुन को ज्ञान हुआ कि उनकी जो कुछ शक्ति थी वह कृष्ण के सान्निध्य का ही परिणाम था। अर्जुन ने हस्तिनापुर आकर युधिष्ठिर से सब कुछ कह सुनाया। उस समय युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ प्रजा का पालन कर रहे थे।९-९½।

तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ।।१०
विना कृष्णेन तन्नष्टं[5] दानमश्रोत्रिये यथा ।। १०½

अर्जुन ने कहा—'मेरा धनुष वही है, रथ वही है, घोड़े भी वही हैं परन्तु कृष्ण के बिना ये सारी वस्तुएँ उसी प्रकार निष्फल हो रही हैं जिस प्रकार अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है'।१०-१०½।

---

१ क. °तालात्स्वर्ग°। २ क. °नातद्द्वार°। ३ ङ. च° र्लकुटायु°। ४ घ. °य स भ्रा°। ङ. °य सद्भ्रात्रे। ५ घ. दानं चाश्रो°।

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु राज्ये स्थाप्य परीक्षितम् ।।११
प्रस्थानं[1] प्रस्थितो धीमान् द्रौपद्या भ्रातृभिः सह ।
[2]संसारानित्यतां ज्ञात्वा जपन्नष्टशतं हरेः ।।१२

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्यभार तो परीक्षित के हाथों सौंप दिया और स्वयं द्रौपदी और भाइयों के साथ संसार को अनित्य समझकर एक-सौ आठ बार हरि का जप करते हुए महाप्रस्थान कर दिया।११-१२।

महापथे तु पतिता द्रौपदी सह देवकः ।
नकुलः फाल्गुनो भीमो राजा शोकपरायणः ।। १३

उस महापथ पर चलते हुए सर्वप्रथम द्रौपदी गिर पड़ीं, फिर सहदेव तब नकुल और तदनन्तर अर्जुन और भीम भी पृथ्वी पर गिर पड़े। इसमें राजा युधिष्ठिर शोकातुर हो गये।१३

इन्द्रानीतरथारूढः सानुजः स्वर्गमाप्तवान् ।
दृष्ट्वा दुर्योधनादींश्च वासुदेवं च हर्षितः ।। १४
एतत्ते भारतं प्रोक्तं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ।। १५

इन्द्र के लाये हुए विमान से युधिष्ठिर भाइयों के साथ स्वर्ग चले गये। वहाँ पर दुर्योधन आदि तथा कृष्ण को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार मैंने तुमको महाभारत की कथा सुना दी है। जो व्यक्ति इस आख्यान का पाठ करता है वह स्वर्ग को चला जाता है।१४-१५।

**इत्यादिमहापुराण आग्नेये पाण्डवप्रास्थानिक-
पर्ववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५**

---

१ ग. प्रास्थानं । क. °स्थानप्र° । २ क. ग. °रानन्ततां° ।

अथ षोडशोऽध्यायः

बुद्धावतारवर्णनम्

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये बुद्धावतारं च पठतः शृण्वतोऽर्थदम् ।
पुरा दे (दै) वासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥ १

अग्नि बोले—अब मैं बुद्धावतार का वर्णन करूँगा जो पढ़ने और सुनने वालों का अभीष्ट-दाता है। प्राचीन काल में देवासुर-संग्राम मे दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर दिया था।१

रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्वरम् ।
मायामोहस्वरूपोऽसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत् ॥ २

तब 'बचाइये !' 'बचाइये !' कहते हुए देवता लोग ईश्वर की शरण में गये। माया-मोह-स्वरूप भगवान् (विष्णु) शुद्धोदन पुत्ररूप में अवतरित हुए।२

मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम् ।
ते च बौद्धा बभूवुर्हि तेभ्योऽन्ये वेदवर्जिताः ॥ ३

उन्होंने दैत्यों को मोहित करके वैदिक धर्म से विमुख कर दिया। वे दैत्य ही बौद्ध हो गये। फिर उन्होंने दूसरे लोगों से भी वेद-धर्म का त्याग करवाया। ३

([१]आर्हतः सोऽभवत्पश्चादार्हतानकरोत्परान् ।
एवं पाषण्डिनो जाता वेदधर्मादिवर्जिताः ॥ ४)

स्वयं अर्हत् (बौद्ध-जैन साधु) बनकर फिर उन अन्य लोगों को भी अर्हत् बना लिया जो वैदिक धर्म पर विश्वास नहीं रखते थे। इस प्रकार वैदिक धर्म से विमुख होकर वे लोग पाखण्डी (विधर्मी) बन गये। ४

नरकार्हं कर्म चक्रुर्ग्रहीष्यन्त्यधमादपि[२] ।
सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च सङ्कराः ॥ ५

---

१ आर्हतः……धर्मादिवर्जिताः ग. पुस्तके नास्ति । २ क. ङ. च. °न्त्यवमा°

ये पाखण्डी सदा ऐसे कर्म किया करते हैं जो नरक में ले जाने वाले होते हैं। ये लोग अधमों से भी प्रतिग्रह ले लेते हैं। कलियुग के अन्त में सभी वर्ण-संकर हो जायेंगे। ५

दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः।
दश पञ्च च शाखा[1] वै प्रमाणेन भविष्यति (?) ॥ ६

सब दस्यु शीलविहीन हो जायेंगे। वेदों में केवल वाजसनेय (यजुर्वेद) और केवल दस पाँच शाखाओं की ही मान्यता रह जायेगी (?)।६

धर्मकञ्चुकसंवीता अधर्मरुचयस्तथा।
मानुषाद् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छाः पार्थिवरूपिणः॥ ७

धर्म का चोला पहने हुए और अधर्म में रुचि रखने वाले राजारूपधारी म्लेच्छ मनुष्यों का भक्षण करेंगे। ७

कल्की विष्णुयशः पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः।
[2]उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्रः कृतायुधः॥ ८

तदनन्तर भगवान् कल्कि का अवतार होगा। वे विष्णुयश के पुत्र होंगे। याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे। वे अस्त्र-शस्त्र धारण करके म्लेच्छों का संहार कर डालेंगे। ८

स्थापयिष्यति मर्यादां[3] चातुर्वर्ण्ये यथोचिताम्[4]।
आश्रमेषु च सर्वेषु प्रजा सद्धर्मवर्त्मनि॥ ९

भगवान् कल्कि चारों वर्णों और सभी आश्रमों में शास्त्रीय मर्यादा स्थापित करेंगे। वे सभी प्रजा-जनों को सद्धर्म में लगायेंगे। ९

कल्किरूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति।
ततः कृतयुगं नाम पुरावत्सम्भविष्यति॥ १०

इस प्रकार (धर्म की स्थापना करके) भगवान् कल्कि अपने रूप को छोड़-कर स्वर्ग चले जायेंगे। तत्पश्चात् पहले की भाँति कृतयुग पुनः प्रारम्भ होगा। १०

वर्णाश्रमाश्च धर्मेषु स्वेषु स्थास्यन्ति सत्तम।
एवं सर्वेषु कल्पेषु सर्वमन्वन्तरेषु च॥११
अवतारा असङ्ख्याता अतीतानागतादयः। ११½

---

१ ग. शाला वै प्रायेणैव भ॰। २ क. उच्छेद॰। ३ च. ॰दा भविष्यति पृथक्-पृथक्। वर्णाश्रमाश्च धर्मेषु स्वेषु स्थास्यन्ति सत्तम। आश्र॰। ४ क. यथेरिताम्।

हे मुनिश्रेष्ठ ! कृतयुग (सत्ययुग) आने पर सभी अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों का पालन करने लगेंगे। इसी प्रकार सब कल्पों और मन्वन्तरों में असंख्य अवतार अतीत में भी हुए हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे।११-११½।

विष्णोर्दशावतारांशान्यः[1] पठेच्छृणुयान्नरः ॥१२
सोऽवाप्तकामो विमलः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥१२½

जो मनुष्य विष्णु के दश अंशावतारों का पाठ करेगा या उसे सुनेगा वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करके सकुटुम्ब स्वर्ग को प्राप्त कर लेगा।१२-१२½।

धर्माधर्मव्यवस्थानमेवं वै कुरुते हरिः ॥१३
[2]अवतीर्णः स जगतः सर्गादेः कारणं हरिः ॥१४

संसार की सृष्टि आदि के आधारभूत भगवान् विष्णु इस प्रकार अवतार लेकर धर्म और अधर्म की व्यवस्था किया करते हैं।१३-१४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये बुद्धावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः।१६

———

१ ख. घ.° ताराख्यान्यः। २ घ.° तीर्णश्च स गतः स°।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

जगत्सर्गवर्णनम्

अग्निरुवाच—

जगत्सर्गादिकां[1] क्रीडां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु ।
स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोऽगुणः ।।१

अग्नि बोले—अब मैं भगवान् विष्णु की क्रीडा—संसार की सृष्टि आदि का वर्णन कर रहा हूँ । उसे सुनो ! स्वर्ग आदि के निर्माता विष्णु सृष्टि के आदि हैं । वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी ।१

ब्रह्माव्यक्तं[2] सदग्रेऽभून्नखं[3] रात्रिदिनादिकम् ।
प्रकृतिः[4] पुरुषं विष्णुं प्रविश्याक्षोभयत्ततः ।।२

सर्वप्रथम सत्स्वरूप अव्यक्त ब्रह्म ही थे । उस समय न आकाश था, न रात्रि थी और न दिन ही थे । तत्पश्चात् पुरुष विष्णु ने प्रकृति के अन्दर प्रविष्ट होकर उसको क्षुब्ध कर दिया ।२

सर्गकाले महत्तत्वमहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।।३

सृष्टि के समय सर्वप्रथम (अव्यक्त प्रकृति से) महत्तत्व हुआ । महत्तत्व से अहङ्कार हुआ । अहङ्कार के तीन भेद हैं—वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस ।३

अहङ्काराच्छब्दमात्रमाकाशमभवत्ततः ।
स्पर्शमात्रोऽनिलस्तस्माद्रूपमात्रोऽनलस्ततः ।।४

तामस अहङ्कार से शब्दतन्मात्र, फिर शब्दतन्मात्र से आकाश उत्पन्न हुआ । फिर स्पर्शतन्मात्र से वायु और रूप तन्मात्र से अग्नि उत्पन्न हुआ ।४

रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा[5] धरित्र्यभूत् ।
अहङ्कारात्तामसात्तु तैजसानीन्द्रियाणि च ।।५

रसतन्मात्रा से जल और गन्ध तन्मात्रा से पृथ्वी उत्पन्न हुई । राजस (तैजस) अहङ्कार से इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं ।५

---

१ क. ख. ग. ङ. च. जगत्सर्गादिकीं॰ । २ क. ङ. च. ब्रह्म व्यक्तं । ३ घ. सदाग्रे॰ । ४ ग.॰ कृतिं पुरुषो विष्णुः प्र॰ ।

वैकारिकादश देवा मन एकादशेन्द्रियम् ।५$\frac{1}{2}$

दस इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता तथा ग्यारहवाँ मन—ये वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न हुए ।५$\frac{1}{2}$।

[1]ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।।६
अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु वीर्यमवासृजत् ।।६$\frac{1}{2}$

तत्पश्चात् नाना प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा वाले भगवान् स्वयम्भू ने सर्वप्रथम जल की ही सृष्टि की और उसमें अपने वीर्य को निहित कर दिया ।६$\frac{1}{2}$

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।।७
अयनं तस्य ताः पूर्वं[2] तेन नारायणः स्मृतः ।।७$\frac{1}{2}$

अप्—जल को नार कहा गया है और उसे ही नरसूनु भी कहा गया है। पहले वही भगवान् का अयन (आश्रय, स्थान) था अतः भगवान् को नारायण कहते हैं ।७-७$\frac{1}{2}$।

हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ।।८
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ।।८$\frac{1}{2}$

उस जल से ही हिरण्यवर्ण (सुनहला) अण्डा उत्पन्न हुआ। उससे साक्षात् ब्रह्म की उत्पत्ति हुई जो 'स्वयम्भू' नाम से विख्यात हैं ।८-८$\frac{1}{2}$।

हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।।९
तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च।
तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः ।।१०

भगवान् हिरण्यगर्भ एक वर्ष तक उसी अण्डे में अवस्थित रहे। तदनन्तर उसको दो भागों में विभक्त कर स्वर्ग और भूलोक की सृष्टि की। फिर परमेश्वर ने उन दोनों खण्डों के मध्य में आकाश की सृष्टि की ।९-१०।

अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे।
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ।।११
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतिः।
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।।१२

---

१ इत आरभ्याध्यायपरिसमाप्तिपर्यन्ताः श्लोका महाभारतान्तर्गत-हरिवंश-पर्वस्थद्वितीयाध्यायत उद्धृता इति गम्यते श्लोकानामक्षरश उभयत्र पाठसाम्यात्। २ क. पूर्णं।

वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं[1] चाथ वक्त्रत: ।
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ।। १३

उन्होंने जल में तैरती हुई पृथ्वी को और दस दिशाओं को यथोचित स्थान पर रख दिया। फिर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध, रति आदि को भी उत्पन्न किया। फिर सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापति ने तदनुकूल ही सृष्टि करना प्रारम्भ किया। सबसे पहले विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्रधनुष, पक्षियों और पर्जन्य की सृष्टि की। तदनन्तर प्रजापति ने यज्ञानुष्ठान के लिए मुख से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण किया।११-१३

साध्यास्तैरयजन्देवान्भूतमुच्चावचं भुजात्[2] ।
सनत्कुमारं रुद्रं च ससर्ज क्रोधसम्भवम् ।। १४

उन (वेदों) के द्वारा साध्यगणों ने देवताओं का यजन किया। फिर ब्रह्माजी ने अपनी भुजा से ऊँचे तथा नीचे (या छोटे बड़े) भूतों को उत्पन्न किया। फिर सनत्कुमार को पैदा किया तथा क्रोध से पैदा होने वाले रुद्र को उत्पन्न किया। १४

मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वसिष्ठं[3] मानसान्सप्त ब्राह्मणानिति[4] निश्चितम्[5] ।। १५

ब्रह्माजी ने मन से मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ नामक सप्त ऋषियों को उत्पन्न किया। १५

सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्राश्च सत्तम ।
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।। १६
अर्धेन नारी तस्यां स ब्रह्मा वै चासृजत्प्रजा: ।। १७

हे मुनिश्रेष्ठ ! इन सप्तर्षियों से तथा रुद्रों से ही प्रजाओं की सृष्टि होती है। सृष्टि-वृद्धि की इच्छा से ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग किये—आधे भाग से वे पुरुष हुए और दूसरे आधे भाग से स्त्री बन गये। फिर उस नारी के गर्भ से ब्रह्मा ने प्रजाओं की सृष्टि की। (ये स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मानवीय-सृष्टि के आदि हैं)।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्याय: । १७

---

१ क.⁰ न्यं वर्षचक्रत: । २ च. ह्यजात् । ३ घ. ⁰नसा: सप्त । ४ घ. ब्रह्माण इति । ५ घ. निश्चिता: ।

अथाष्टादशोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच—

[1]प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवात् सुतौ ।
अजीजनत् सुतां रम्यां[2] शतरूपा[3] तपोऽन्विता ।। १

अग्नि बोले—स्वायम्भुव मनु ने तपस्विनी भार्या शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया ।१

काम्या कर्दमकन्याऽतः[4] सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः ।
सुरुच्यामुत्तमो जज्ञे पुत्र उत्तानपादतः ।। २
सुनीत्यां च ध्रुवः पुत्रस्तपस्तेपे सुकीर्तये ।
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि हे मुने ।। ३

वह सुन्दरी कन्या कर्दम ऋषि की पत्नी हुई जिससे चक्रवर्ती सम्राट् कुक्षि उत्पन्न हुए। सुरुचि नाम की भार्या से उत्तानपाद का पुत्र उत्तम उत्पन्न हुआ तथा सुनीति नाम की (दूसरी भार्या से) ध्रुव पैदा हुए। हे मुने! सुयश प्राप्त करने के लिये ध्रुव ने तीन हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की। २-३।

तस्मै प्रीतो हरिः प्रादान्मुन्यग्रे स्थानकं स्थिरम् ।
श्लोकं पपाठ ह्युशना वृद्धिं दृष्ट्वा स तस्य च ।। ४

उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने ध्रुव को (सप्तर्षि-मण्डल के) ऋषियों के आगे एक स्थिर स्थान प्रदान कर दिया। ध्रुव के अभ्युदय को देखकर शुक्राचार्य ने (उसकी प्रशंसा में) यह श्लोक पढ़ा। ४

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् ।
यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ।। ५

"अहो! इस ध्रुव की तपस्या में कितना बल है। इसका ज्ञान अद्भुत है जिसे आगे करके आज सप्तर्षि भी स्थित हैं। ५

---

१ अयमप्यध्यायः पूर्वाध्यायवद्बहुशो हरिवंशस्थश्लोकपाठसदृश एव। २ घ. कन्यां°। ३ घ. शतरूपां°। ४ क. ख. घ. °मभार्याऽतः।

तस्माद्[1] वृद्धिश्च भव्यश्च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत[2] ।
वृद्धेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ ६

ध्रुव से वृद्धि, भव्य और शम्भु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सुच्छाया ने वृद्धि से पाँच पुण्यात्मा पुत्रों को प्राप्त किया। ६

रिपुं रिपुञ्जयं पुष्यं[3] वृकसं[4] वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥ ७

(उन पुत्रों के नाम हैं—) रिपु, रिपुञ्जय, पुष्य, वृक और वृकतेजस रिपु से बृहती ने अत्यन्त तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया। ७

अजीजनत्पुष्करिण्यां वीरिण्यां[5] चाक्षुषो मनुम् ।
[[6]मनोरजायन्त दश नड्वलायां सुतोत्तमाः] ॥ ८

चाक्षुष ने वीरण की पुत्री पुष्करिणी से मनु को उत्पन्न किया। नड्वला से मनु को दस पुत्र उत्पन्न हुए। ८

ऊरुः[7] पूरुः[8] शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च[9] सुद्युम्नश्चातिमन्युकः ॥ ९

वे दस पुत्र थे—ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न, और अतिमन्युक।९

ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान् ।
अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ १०

आग्नेयी ने ऊरु से छह महातेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम थे—अंग, सुमनस, स्वाति, क्रतु, अंगिरा और गय। १०

अङ्गात्सुनीथापत्यं वै वेणमेकं व्यजायत ।
अरक्षकः पापरतः स हतो मुनिभिः कुशैः ॥ ११

अंग से सुनीथा ने वेण नामक पुत्र प्राप्त किया जो राजा होता हुआ भी प्रजारक्षक न था और सदा पापकर्म ही किया करता था। इसलिए मुनियों ने उसे कुशाओं से मार डाला। ११

---

१ क. घ.° स्माच्छिष्टिं च भव्यं च ध्रु°। २ क.° त। श्लिष्टेरा°। घ.° त। शिष्टेरा°। ३ ख. ग. पुत्रं। घ. रिप्रं। च. पुष्पं। ४ ख. ग. घ. वृकलं। ५ क. करिण्यां। ग. वारुण्यां। च. वारिण्यां। ६ मनोरजायन्त ....सुतोत्तमाः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ७ च. उरूः। ८ च. पुरुः। ९ क. ङ.° रात्रिश्च। ख. ग.° श्चाभिम°।

प्रजार्थमृषयोऽथास्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेणस्य मथिते पाणौ सम्बभूव पृथुर्नृपः ।। १२

उन्होंने प्रजा की रक्षा के लिये उसके दाहिने हाथ को मथना प्रारम्भ किया। वेण का हाथ मथने पर उससे राजा पृथु उत्पन्न हुआ। १२

तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।। १३

उसको देखकर ऋषियों ने कहा,—"यह राजा अवश्य अपने न्यायाचरण से प्रजाओं को सुखी बनाकर महान् यश प्राप्त करेगा"। १३

स धन्वी कवची जातस्तेजसा निर्दहन्निव ।
पृथुर्वैण्यः प्रजाः सर्वा ररक्ष[1] क्षत्रपूर्वजः ।। १४

उसने धनुष् और कवच धारण किया। वह मानों तेज से दहक रहा था। क्षत्रियों के पूर्वज उस राजा पृथु ने अपने पिता वेण की सारी प्रजाओं की रक्षा की। १४

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स पृथिवीपतिः ।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ[2] निपुणौ सूतमागधौ ।। १५

राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में वे सबसे पहले राजा थे। उस राजसूय से उत्पन्न हुए, स्तुति करने में चतुर सूतों और मागधों ने उनकी स्तुति की। १५

तत्स्तोत्रं चक्रतुर्वीरौ, राजाऽभूज्जनरञ्जनात् ।
दुग्धा गौस्तेन सस्यार्थं[3] प्रजानां जीवनाय च ।। १६

प्रजा का अनुरञ्जन करने के कारण वह (यथार्थ में) राजा कहलाया। उसने प्रजा का पालन तथा अन्न उपजाने के लिए पृथ्वी का दोहन किया। १६

सह देवैर्मुनिगणैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ।
पितृभिर्दानवैः सर्पैर्वीरुद्भिः पर्वतैर्जनैः ।। १७
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्राद्याद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ।। १८

देवता, मुनिजन, गन्धर्व, अप्सरा, पितृगण, दानव, सर्प, लता, पर्वत और मनुष्यों के सहयोग से दुही जाने वाली पृथ्वी ने उन-उन पात्रों में यथेष्ट दूध दिया, जिससे सबने प्राण धारण किये। १७-१८।

---

१ घ.° क्ष क्षेत्रपू° । २ पुत्राविति शेषः । ३ क. ङ. च. सस्यानि ।

पृथोः पुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालितौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ।। १९

पृथु के दो पुत्र हुए—अन्तर्धि और पालित। दोनों ही धर्मात्मा थे। अन्तर्धान अर्थात् अन्तर्धि से (उसकी पत्नी) शिखण्डिनी ने हविर्धान को उत्पन्न किया। १९

हविर्धाना [त्षडाग्नेयी[1] धिषणाजनयत्सुतान् ।
प्राचीन वर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ।। २०

अग्नि की पुत्री धिषणा ने हविर्धान से इन छः पुत्रों को उत्पन्न किया—प्राचीनवर्हिष्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन। २०

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां यजतो यतः ।
प्राचीनवर्हिर्भगवा] न्महानासीत्प्रजापतिः ।। २१

भगवान् प्राचीनवर्हि महान् प्रजापति थे। क्योंकि यज्ञ करते समय वे पूरब की ओर नोंक किये हुए कुशों को फैलाते थे, अतः उनका नाम प्राचीनवर्हिः पड़ गया था। २१

सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।। २२

प्राचीनवर्हि की सजातीया सामुद्री ने प्राचीनवर्हि से दस प्रचेताओं को जन्म दिया जो धनुर्वेद में पारंगत थे। २२

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।। २३

वे एक प्रकार का ही धर्म-पालन करते थे। उन्होंने दस हजार वर्षों तक समुद्र-जल में रहकर घोर तपस्या की। २३

प्रजापतित्वं सम्प्राप्य तुष्टा विष्णोश्च निर्गताः ।
भूः खं व्याप्तं हि तरुभिस्तांस्तरूनदहंश्च ते ।। २४
मुखजाग्निमरुदभ्यां च दृष्ट्वा[3] चाथ द्रुमक्षयम् ।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ।। २५

फलस्वरूप भगवान् विष्णु से प्रजापतित्व का वरदान पाकर सन्तुष्ट होकर जल से बाहर निकले। उस समय प्रायः समस्त भूमण्डल और आकाश वृक्षों से व्याप्त थे। प्रचेताओं ने उन वृक्षों को जला दिया।

---

१ त्षडाग्नेयी ......भगवान् ख. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. च. °गाः। सपृ°।
३ च. °ष्ट्वाऽनाथ°।

इस प्रकार वनस्पतियों का विनाश होता हुआ देखकर महाराज सोम ने उन प्रजापति प्रचेताओं के पास जाकर कहा ।२४-२५।

कोपं यच्छत दास्यन्ति कन्यां वो मारिषां वराम् ।
तपस्विनो मुनेः कण्डोः [1]प्रम्लोचायां मयैव च ।। २६
भविष्यं जानता सृष्टा भार्या वोऽस्तु कुलङ्करी ।
अस्यामुत्पत्स्यते दक्षः [[2]प्रजाः संवर्धयिष्यति ।। २७

आप लोग अपने क्रोध को शान्त करें। ये वृक्ष आप लोगों को मारिषा नाम की श्रेष्ठ कन्या देंगे। इस कन्या को तपस्वी मुनि कण्डु से प्रम्लोचा नाम की अप्सरा में मैंने ही भविष्य को जानते हुए उत्पन्न किया। वह आपके कुल को बढ़ाने वाली भार्या होगी। इसके गर्भ से दक्ष उत्पन्न होंगे जिनके द्वारा प्रजा की वृद्धि होगी ।२६-२७

प्रचेतसस्तां जगृहुर्दक्षोऽस्यां च ततोऽभवत् ।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।। २८

प्रचेताओं ने उस कन्या का पाणिग्रहण किया। उस (मारिषा) के गर्भ से दक्ष उत्पन्न हुए। दक्ष ने पहले चराचर, द्विपदों और चतुष्पदों की मन से सृष्टि की ।२८

स सृष्ट्वा मनसा दक्षः] पश्चादसृजत स्त्रियः ।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।। २९

इसके बाद उन्होंने स्त्रियों को उत्पन्न किया। उन स्त्रियों में से दस स्त्रियाँ धर्म को, तेरह कश्यप को दी गयीं ।२९

सप्तविंशति (तिं) सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे ह्यदात्[3] ।। ३०

सत्ताइस स्त्रियाँ चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को और दो अङ्गिरा को दीं ।३०

तासु देवाश्च नागाद्या मैथुनान्[4] मनसा पुरा ।
धर्मसर्गं प्रवक्ष्यामि दशपत्नीषु धर्मतः ।। ३१

पूर्वकाल में संकल्प-मात्र से मानसिक सृष्टि होती थी। बाद में उन दक्ष-कन्याओं में मैथुन द्वारा देवता और नाग उत्पन्न हुए। अब मैं धर्म की दस पत्नियों से उत्पन्न होने वाली धर्म की सृष्टि का वर्णन करूँगा। ३१

---

१ क. ङ. च. कण्ड्वोः। २ प्रजाः········दक्षः··· च. पुस्तके नास्ति।
३ ख. ग. घ. च. अदात्। ४ ख.° नान्मानसाः पु°।

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान्व्यजायत।
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवोऽभवन्॥ ३२

विश्वा से विश्वेदेव, साध्या से साध्यगण, मरुत्वती से मरुत्वान् लोग तथा वसु से वसु गण उत्पन्न हुए।३२

भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः।
लम्बाया धर्मतो घोषो नागवीथी च यामिजा[1]॥ ३३

भानु से भानु पुत्ररूप में उत्पन्न हुए, मुहूर्ता से मुहूर्त, धर्म के द्वारा लम्बा से घोष और नागवीथी से यामिज नामक पुत्र उत्पन्न हुए।३३

पृथिवीविषयं सर्वं[2] मरुत्वत्यां व्यजायत।
सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पा इन्दोर्नक्षत्रतः सुताः॥ ३३

मरुत्वती के गर्भ से पृथिवी से सम्बद्ध सभी प्राणी उत्पन्न हुए। संकल्पा से संकल्प उत्पन्न हुए। चन्द्रमा ने अपनी नक्षत्ररूपिणी पत्नियों से इन पुत्रों को उत्पन्न किया—

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च[3] वसवोऽष्टौ च नामतः॥ ३५

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास और आठ वसुगण।३५

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य कालो लोकान्तो वर्चाः सोमस्य वै सुतः॥ ३६

आप के पुत्र वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि हुए, ध्रुव के काल और लोकान्त, और सोम के वर्चा पुत्र हुए।३६

धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ [1]रमणस्तथा॥३७

मनोहरा के गर्भ से धर के पुत्र द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण हुए।३७

पुरोजवोऽनिलस्यासीदविज्ञातोऽनलस्य च।
अग्निपुत्रः कुमारश्च शरस्तम्बे व्यजायत॥३८

---

१ च. भूमिजा। २ घ. सर्वंमरुन्धत्यां। ३ घ. प्रभाषश्च। च. प्रभावश्च।
१ क. ग. ङ. च. °थ मरणरत°।

अनिल के पुत्र पुरोजव और अनल (अग्नि) के पुत्र अविज्ञात हुए। अग्नि के पुत्र कुमार शरस्तम्ब (सरपत) से पैदा हुए।३८

तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः।
कृत्तिकातः कार्तिकेयो यतिः सनत्कुमारकः ॥३९

बाद को अग्नि के तीन और पुत्र उत्पन्न हुए—शाख, विशाख और नैगमेय। कृत्तिका से कार्तिकेय और यति सनत्कुमार उत्पन्न हुए।३९

प्रत्यूषाद्देवलो जज्ञे विश्वकर्मा प्रभासतः[1]।
कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः[2] ॥४०

प्रत्यूष से देवल और प्रभास से विश्वकर्मा उत्पन्न हुए जो सहस्रों प्रकार के शिल्पों के आचार्य और देवताओं के बढ़ई हैं।४०

मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम्।
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञुषी ॥४१

उन्हीं के आविष्कार किये हुए शिल्प और आभूषण-निर्माण-कला को अपनाकर मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। कश्यप से सुरभी ने ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया।४१

महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च सत्तम ॥४२

हे मुनिश्रेष्ठ! महादेव जी की कृपा से युक्त होकर सती ने इन चार पुत्रों को उत्पन्न किया—अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और रुद्र।४२

त्वष्टुश्चैवात्मजः[3] श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥४३
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली दश चैककः ॥४४
रुद्राणां च शतं लक्षं यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥४५

त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप हुए जो श्रीसम्पन्न तथा महान् यशस्वी थे। (ग्यारह) रुद्र ये हैं—हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प, और कपाली। ऐसे तो सैकड़ों, लाखों रुद्र हैं जिनसे यह चराचरात्मक (सम्पूर्ण) जगत् व्याप्त है।४३-४५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः।१८

---

१ घ. प्रभापतः। २ ङ. वर्धकः। ३ ख. ग. °वानुजः।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कश्यपवंशवर्णनम्

अग्निरुवाच—

कश्यपस्य वदे सर्गमदित्यादिषु हे मुने ।
चाक्षुषे तुषिता देवास्तेऽदित्यां कश्यपात्पुनः ॥१
आसन् विष्णुश्च शक्रश्च त्वष्टा धाता तथार्यमा ।
पूषा[1] विवस्वान् सविता मित्रोऽथ वरुणो भगः ॥२
अंशुश्च द्वादशादित्या आसन् वैवस्वतेऽन्तरे ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥३

अग्नि बोले—हे मुने ! अब मैं कश्यप की अदिति आदि पत्नियों से उत्पन्न सृष्टि के बारे में कहूँगा । चाक्षुष मन्वन्तर में तुषित नामक देवता थे जो अदिति से कश्यप के पुत्र थे । वे ही इस वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य हुए विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान् सविता, मित्र, वरुण, भग, और अंशु । अरिष्टनेमि की पत्नियों से सोलह सन्तानें उत्पन्न हुईं ।१-३।

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रः विद्युतः स्मृताः[2] ।
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य[3] सुरायुधाः ॥४

विद्वान् बहुपुत्र की चार पुत्रियाँ थीं—चारों बिजलियाँ । अङ्गिरा मुनि से श्रेष्ठ ऋचाएँ उत्पन्न हुईं और कृशाश्व ऋषि से दिव्य आयुध उत्पन्न हुए ।४

उदयास्तमने सूर्ये तद्वदेते युगे-युगे[4] ।
हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षश्च कश्यपात् ॥५
सिंहिका चाभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।
राहुप्रभृतयस्तस्यां सैंहिकेया इति श्रुताः[5] ॥६

---

१ क. ङ. च. वृषा । २ घ सुताः । ३ द्र. कल्याण-हरिवंश ३-६५—
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देव-प्रहरणानि च ॥

४ द्रष्टव्य हरिवंश—'एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥३·६६
तथा मत्स्यपुराण ।६-७

५ क. ङ. च. स्मृताः ।

जिस प्रकार आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होता रहता है उसी प्रकार युग-युग में ये देवता उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं। दिति से कश्यप के दो पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष तथा एक कन्या भी हुई जिसका नाम था सिंहिका। सिंहिका विप्रचित्ति की पत्नी हुई। उस सिंहिका से उत्पन्न राहु आदि सैंहिकेय कहे जाते हैं।५-६।

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चातिवैष्णवः ॥७
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद् ह्लादपुत्रो ह्लदस्तथा।
संह्लादपुत्र[1] आयुष्मान्शिविर्वाष्कल एव च ॥८

हिरण्यकशिपु के चार ओजस्वी पुत्र हुए—अनुह्लाद, ह्लाद और परम-वैष्णव प्रह्लाद। उसका चौथा पुत्र था संह्लाद। ह्लाद का पुत्र था ह्लद। संह्लाद के तीन पुत्र थे—आयुष्मान्, शिबि और बाष्कल।७-८।

[[2]विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्।]
वलेःपुत्रशतं त्वासीद्[3] वाणज्येष्ठं महामुने ॥९

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन और विरोचन का पुत्र बलि था। हे मुनिश्रेष्ठ! बलि के सौ पुत्र थे जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ थे।९

पुराकल्पे हि[4] बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्[5]।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं प्राप्त ईश्वरात् ॥१०

पूर्वकल्प में बाण ने उमापति भगवान् शंकर को (अपनी तपस्या से) प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि "मैं आपके पास ही विचरण करता रहूँगा।"१०

हिरण्याक्षसुताः पञ्च शम्बरः शकुनिस्त्विति[6]।
द्विमूर्धा[7] शङ्कुरार्यश्च शतमासन्दनोः सुताः ॥११

हिरण्याक्ष के पांच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य। दनु के सौ पुत्र थे।११

स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची स्मृता।
उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥१२

---

१ क. ङ. च. ह्लदस्य पुत्र। २ विरोचनस्तु···· विरोचनात् ३ ख. ग. घ. °णश्रेष्ठं। क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ४ क. ङ. च. हिरण्येन। ५ घ. वरः। ६ क. ङ. च. °कुनिः स्तुतिः। द्वि°। ७ ख. शम्बराद्याश्च।

स्वर्भानु की कन्या थी सुप्रभा और पुलोमा की कन्या थी शची। वृषपर्वा की तीन कन्यायें थीं --उपदानवी, हयशिरा और शर्मिष्ठा।१२

पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते उभे।
कश्यपस्य तु भार्ये द्वे तयोः पुत्राश्च कोटयः ॥१३

वैश्वानर की पुलोमा और कालका नाम की दो कन्यायें थीं जो कश्यप की दो पत्नियाँ हुईं। इन दोनों के करोड़ों पुत्र हुए। १३

प्रह्लादस्य चतुष्कोट्यो निवातकवचाः कुले।
ताम्रायाः षट् सुताः स्युश्च काकी श्येनी च भास्यपि ॥१४
गृध्रिका च शुचिर्ग्रीवा ताभ्यः काकादयोऽभवन् ॥१४½

प्रह्लाद के कुल में ४ करोड़ असुर थे जो निवात कवच कहलाये। ताम्रा की छः पुत्रियाँ हुईं---काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका, शुचि और ग्रीवा। इन्हीं से कौए आदि उत्पन्न हुए।१४-१४½।

अश्वाश्चोष्ट्राश्च ताम्राया अरुणो गरुडस्तथा ॥१५
बिनतायाः सहस्रं तु सर्पाश्च सुरसाभवाः।
काद्रवेयाः सहस्रं तु शेषवासुकितक्षकाः ॥१६

ताम्रा से घोड़े और ऊँट पैदा हुए। विनता के दो पुत्र हुए अरुण और गरुड़। सुरसा से हजारों दाँतों वाले और क्रोधी साँप उत्पन्न हुए। कद्रू से हजारों शेष, वासुकि और तक्षक नाग उत्पन्न हुए।१५-१६।

दंष्ट्रिणः क्रोधवशगा धरायाः[१] पक्षिणो जले।
सुरभ्यां गोमहिष्यादि इरोत्पन्नास्तृणादयः ॥१७

धरा के गर्भ से जल में रहने वाले पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभि से गाय और भैंस आदि तथा इरा से तृण उत्पन्न हुए।१७

खसायां यक्षरक्षांसि मुनेरप्सरसोऽभवन्।
अरिष्टायास्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्धि स्थिरं चरम् ॥१८

खसा से यक्ष और राक्षस उत्पन्न हुए। मुनि नामक पत्नी से अप्सरायें उत्पन्न हुईं। अरिष्टा से गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस प्रकार कश्यप से स्थावर और जंगम जगत् की सृष्टि हुई।१८

---

१. क. च. धरोत्थाः।

एषां पुत्रादयोऽसङ्ख्या देवैर्वै दानवा जिताः ।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥१६

कश्यप की इन सन्तानों से असंख्य सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं । (कुछ काल बाद) देवताओं ने दानवों को हरा दिया । पुत्रों के नष्ट हो जाने से दिति ने (अपनी सेवा से) कश्यपजी को सन्तुष्ट किया । १६

पुत्रमिन्द्रप्रहर्तारमिच्छती प्राप कश्यपात् ।
पादाप्रक्षालनात्सुप्ता तस्या गर्भं जघान ह ॥२०
छिद्रमन्विष्य चेन्द्रस्तु ते देवा मरुतोऽभवन् ।
शक्रस्यैकोनपञ्चाशत्सहाया दीप्ततेजसः ॥२१

इन्द्र को मारने वाले पुत्र की इच्छा करती हुई दिति ने कश्यप से (अभिमत वर) प्राप्त किया । एक दिन दिति पैरों को धोये बिना ही सो गई । इन्द्र ने दोष पाकर उसके गर्भ को काट डाला । वह कटा हुआ गर्भ ही मरुत् देवों के रूप में उत्पन्न हुआ । वे तेजस्वी उनचास मरुत् इन्द्र की सहायता करने वाले हुए ।२०-२१।

एतत्सर्वं[1] हरिर्ब्रह्मा अभिषिच्य पृथुं नृपम् ।
ददौ क्रमेण राज्यानि अन्येषामधिपो हरिः ॥२२

ब्रह्मा और विष्णु ने इस सम्पूर्ण संसार (के राज्य) में पृथु का राज्याभिषेक कर दिया । भगवान् विष्णु ने अन्य राज्यों को भी क्रमशः बाँट दिया ।२२

द्विजौषधीनां चन्द्रस्तु अपां तु वरुणो नृपः ।
राज्ञां वैश्रवणो राजा सूर्याणां विष्णुरीश्वरः ॥२३

ब्राह्मणों और ओषधियों के राजा चन्द्रमा हुए । जल के स्वामी वरुण हुए । राजाओं के (भी) राजा कुवेर हुए और भगवान् विष्णु द्वादश सूर्यों के स्वामी हो गये ।२३

वसूनां पावको राजा मरुतां वासवः प्रभुः ।
प्रजापतीनां दक्षोऽथ प्रह्लादो दानवाधिपः ॥२४

वसुओं के राजा अग्नि और मरुतों के स्वामी वासव हो गये । प्रजापतियों के स्वामी दक्ष तथा दानवों के अधिपति प्रह्लाद हुए । २४

पितॄणां च यमो राजा भूतादीनां[2] हरः प्रभुः ।
हिमवांश्चैव शैलानां नदीनां सागरः प्रभुः ॥२५

---

१ अत्र किञ्चित् त्रुटितमिवाभाति । २ क. ङ. च. °तानां च ह° ।

पितरों के राजा यम और भूतों के अधिपति शङ्कर हुए। हिमालय शैलाधिराज हो गया और नदियों का स्वामी सागर हुआ।२५

गन्धर्वाणां चित्ररथो नागानामथ वासुकिः।
सर्पाणां तक्षको राजा गरुडः पक्षिणामथ॥२६

गन्धर्वों के स्वामी चित्ररथ और नागों के स्वामी वासुकि हुए। सर्पों के स्वामी गरुड़ बने।२६

ऐरावतो गजेन्द्राणां गोवृषोऽथ गवामपि।
मृगाणामथ शार्दूलः प्लक्षो वनस्पतीश्वरः॥२७

हाथियों के अधिनायक ऐरावत और गौओं के राजा गोवृष हुए तथा वनस्पतियों का स्वामी पाकड़ हुआ।२७

उच्चैःश्रवास्तथाश्वानां सुधन्वा पूर्वपालकः।
दक्षिणस्यां शङ्खपदः केतुमान् पालको जले॥२८

अश्वों का स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। पूर्व का स्वामी सुधन्वा तथा दक्षिण का शंखपद स्वामी बना। जल का रक्षक केतुमान् हुआ। २८

हिरण्यरोमकः सौम्ये प्रतिसर्गोऽयमीरितः।२९

उत्तर दिशा का रक्षक हिरण्यरोमक हुआ। यह प्रतिसर्ग का वर्णन किया गया।२९

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिसर्गे कश्यपवंशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।१९

अथ विंशोऽध्यायः

जगत्सर्गवर्णनम्

अग्निरुवाच—

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥१

अग्नि बोले—(प्रकृति से) महत्तत्व की सृष्टि हुई, इसे ब्रह्मा की सृष्टि समझनी चाहिये। दूसरी सृष्टि तन्मात्राओं की है, इसे भूतसर्ग कहा जाता है।१

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः[१] स्मृतः ॥
इत्येष[२] प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥२

तीसरा वैकारिक (सात्त्विक) सर्ग है जिसे ऐन्द्रियक सर्ग कहते हैं। यह प्रकृति से होने वाली सृष्टि है जिसमें बुद्धि (महत्तत्व सबसे) पहले उत्पन्न हुई।२

मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
[३]तिर्यक्स्रोतास्तु यः [४]प्रोक्तस्तैर्यग्योन्यस्ततः[५] स्मृतः ॥३

चौथा सर्ग मुख्य-सर्ग है। मुख्य कहते हैं स्थावर (वृक्ष पर्वत आदि) को। (पाँचवाँ) जो तिर्यक्स्रोत (पशु, पक्षी आदि) कहा गया है, वह तैर्यग्योन्य सर्ग कहा जाता है।३

तथोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥४

छठा सर्ग ऊर्ध्वरेता प्राणियों का है जिसे देवसर्ग कहते हैं। तदनन्तर अधोरेता प्राणियों के सातवें सर्ग का निर्माण हुआ जिसे मानुष सर्ग कहते हैं।४

अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च यः ।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ॥५

---

१ क. ङ. च. इत्येवं। २ इन्द्रिय सम्बन्धी। ३ ग. °क्स्रोतस्तु। ४ ख. ग. °क्तस्तिर्य°। ५ तिर्यग्योनि सम्बन्धी।

आठवाँ सर्ग अनुग्रह सर्ग है जो सात्विक और तामस भेद से दो प्रकार का है। इनमें से पहले के तीन सर्ग प्राकृत सर्ग और शेष पांच सर्ग वैकृत सर्ग हैं।५

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तथा।
ब्रह्मतो[1] नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ॥६

(तीन) प्राकृत, (पाँच) वैकृत (ये आठ) तथा नवाँ कौमार सर्ग—ये सब सर्ग ब्रह्मा के द्वारा निर्मित तथा संसार के मूल कारण हैं।६

ख्यात्याद्या दक्षकन्यास्तु भृग्वाद्या उपयेमिरे।
नित्यो नैमित्तिकः सर्गस्त्रिधाऽथ[2] कथितो जनैः ॥७

भृगु आदि ऋषियों ने ख्याति आदि दक्ष की कन्याओं से विवाह किया॥ कुछ लोग तीन प्रकार की सृष्टि मानते हैं—नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत।७

प्राकृतो, दैनन्दिनीयादान्तरप्रलयादनु।
जायन्ते यत्रानुदिनं नित्यसर्गो हि स[3] स्मृतः ॥८

नित्य सर्ग उसे कहते हैं जो प्रतिदिन होने वाले अवान्तर प्रलय के बाद प्रतिदिन जन्म होते रहते हैं।८

देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत।
श्रियं च, पत्नी विष्णोर्या स्तुता शक्रेण वृद्धये ॥९

भृगु से उनकी पत्नी ख्याति ने धाता और विधाता नामक दो देवताओं को जन्म दिया तथा लक्ष्मी नाम की कन्या को उत्पन्न किया जो विष्णु की पत्नी हुई तथा जिसकी स्तुति इन्द्र ने अभ्युदय के लिये किया।९

धातुर्विधातुर्द्वौ पुत्रौ क्रमात्प्राणो मृकण्डुकः[4]।
मार्कण्डेयो मृकण्डोश्च[5] जज्ञे वेदशिरास्तथा ॥१०

धाता और विधाता के क्रमशः प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए॥ मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय और मार्कण्डेय के पुत्र वेदशिरा हुए।१०

पौर्णमासश्च सम्भूत्यां मरीचेरभवत्सुतः।
स्मृत्यामाङ्गिरसः पुत्राः सिनीवाली कुहूस्तथा ॥११
राका चानुमतिश्चात्रेरनसूयाप्यजीजनत्।
सोमं दुर्वाससं पुत्रं दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥१२

---

१ ग. ब्रह्मणो। २ ख. ग. °धा प्रक°। ३ ख. संमतः। ४ ख. ग. मृकण्डकः। ५ ख. ग. मृकण्डाच्च।

मरीचि ने सम्भूति नामक पत्नी से पौर्णमास को उत्पन्न किया। अंगिरा ने स्मृति नामक पत्नी से अनेक पुत्र तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याओं को उत्पन्न किया। अत्रि से अनसूया ने सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय को जन्म दिया।११-१२।

प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत्।
[1]क्षमायां पुलहाज्जातः सहिष्णुः सर्वपादिकः[2] ॥१३

पुलस्त्य की पत्नी प्रीति से उनके पुत्र दत्तोलि का जन्म हुआ। पुलह ने क्षमा के गर्भ से सहिष्णु और सर्वपादिक को जन्म दिया।१३

सन्नत्यां च क्रतोरासन् वालखिल्या महौजसः।
अङ्गुष्ठपर्वमात्रास्ते ये हि षष्टिसहस्रिणः ॥१४

क्रतु ने सन्नति से महान् ओजस्वी बालखिल्यों को उत्पन्न किया। उन बालखिल्यों की संख्या साठ हजार थी और वे अँगूठे के एक पोर के बराबर थे।१४

ऊर्जायां च वसिष्ठाच्च[3] राजा गात्रोर्ध्ववाहुकः।
सवनश्चानघः[4] शुक्रः सुतपाः सप्त चर्षयः ॥१५

वसिष्ठ-भार्या ऊर्जा ने राजा, गात्र, ऊर्ध्वबाहुक, सवन, अनघ, शुक्र और सुतपा—इन सात ऋषियों को जन्म दिया।१५

पावकः पवमानोऽभूच्छुचिः स्वाहाग्नितोऽभवत्[5]।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयो ह्यजात् ॥१६

अग्नि ने स्वाहा से पावक, पवमान और शुचि को उत्पन्न किया। अज से अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, अनग्नि और साग्नि उत्पन्न हुए।१६

पितृभ्यश्च स्वधायां च मेना वैधारिणी सुते।
हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथानृतम् ॥१७
कन्या निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च।
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः[6] ॥१८

पितरों ने स्वधा से मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याओं को उत्पन्न किया। अधर्म की भार्या थी हिंसा। अधर्म और हिंसा से अनृत की उत्पत्ति

१ क. ङ. च. कुमार्यां। २ ख. ग. सर्ववादिकः। ३ क. ङ. रजो गात्रौर्ध्व-बाहुकः। ४ घ.° श्चालघुः शु°। ५ घ.° ग्निजोऽभ°। ६ क. ङ. च. चेदमेतयोः।

हुई। उन्हीं से निकृति नाम की कन्या भी उत्पन्न हुई। भय और नरक भी इन्हीं से उत्पन्न हुए। क्रमशः माया और वेदना इनकी पत्नियाँ हुईं।१८

तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्।
वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्॥१९

इन दोनों में से माया ने (भय से) जीवों का संहार करने वाले मृत्यु को उत्पन्न किया। और वेदना ने नरक के संयोग से दुःख नामक पुत्र को उत्पन्न किया।१९

मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे।
ब्रह्मणश्च रुदञ्जातो रोदनाद्रुद्रनामकः॥२०

मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध का जन्म हुआ। ब्रह्मा के रुद्र नामक पुत्र हुए। वे रोते हुए ही पैदा हुए इसलिए रोने के कारण ही उनका नाम रुद्र पड़ा।२०

भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः॥२१

हे ब्राह्मण ! पितामह ने महादेव को भव, शर्व, ईशान, भीम और उग्र—इन नामों से पुकारा।२१

दक्षकोपाच्च तद्भार्या देहं तत्याज सा सती।
हिमवद्दुहिता भूत्वा पत्नी शम्भोरभूत् पुनः॥२२

दक्ष के क्रोध से महादेव की पत्नी सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। सती ने ही हिमालय की कन्या पार्वती के रूप में जन्म लेकर पुनः शंकर जी की पत्नी हुई।२२

ऋषिभ्यो नारदाद्युक्ताः पूजाः स्नानादिपूर्विकाः।
स्वायम्भुवाद्यास्ताः कृत्वा विष्ण्वादेर्भुक्तिमुक्तिगाः॥२३

स्नानादिपूर्वक पूजाविधि का वर्णन किया, जिनके करने से स्वायम्भुव आदि विष्णु आदि को प्रसन्न करके भुक्ति और मुक्ति के अधिकारी बन गये।२३

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम
विंशोऽध्यायः।२०

———

अथैकविंशोऽध्यायः

विष्णवादिदेवानां सामान्यपूजाविधानम्

नारद उवाच—

सामान्यपूजां विष्णवादेर्वक्ष्ये मन्त्रांश्च सर्वदान्।
समस्तपरिवाराय अच्चुताय नमो यजेत् ॥१

नारद बोले—अब मैं विष्णु इत्यादि देवताओं की सामान्य पूजा तथा सब कुछ देने वाले मन्त्रों के सम्वन्ध में बतलाऊँगा। पूरे परिवार के साथ अच्युत को नमस्कार करके यजन करना चाहिये।१

धात्रे विधात्रे गङ्गायै यमुनायै, निधी तथा।
द्वारश्रियं वास्तुनरं शक्तिं कूर्ममनन्तकम् ॥२
पृथिवीं धर्मकं ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च।
अधर्मादीन् कन्दनालपद्मकेसरकर्णिकाः ॥३
ऋग्वेदाद्यं कृताद्यं[1] च[2] सत्त्वाद्यर्कादिमण्डलम्।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च ता यजेत् ॥४

धाता, विधाता, दोनों निधियाँ (शंखनिधि और पद्मनिधि), द्वारलक्ष्मी, वास्तु-पुरुष, शक्ति, कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म इत्यादि, कन्द, नाल पद्म, केसर, कर्णिका, ऋग् आदि वेद, कृत आदि युग, सत्व इत्यादि गुण, सूर्य आदि मण्डल तथा विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया और योगा—इनका यजन करना चाहिये।४

प्रह्वी सत्या तथेशा चानुग्रहामलमूर्तिका।
दुर्गां गिरं गणं क्षेत्रं वासुदेवादिकं यजेत् ॥५

प्रह्वी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, निर्मलमूर्ति, दुर्गा, वाणी, गण, क्षेत्र और वासुदेव आदि का यजन करना चाहिये।५

हृदयं च शिरश्चूडां वर्म नेत्रमथास्त्रकम्।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ॥६

हृदय, शिर, चूडा (शिखा), कवच, नेत्र, अस्त्र, शंश, चक्र, गदा कमल, श्रीवत्स और कौस्तुभ का यजन करना चाहिये।६

---

१ ख. गः हृदाद्य°। २ क. ङ. च. च मन्वाद्य°।

वनमालां श्रियं पुष्टिं गरुडं गुरुमर्चयेत् ।
इन्द्रमग्निं यमं रक्षो[1] जलं वायुं धनेश्वरम् ॥७
ईशानं तमजं चास्त्रं[2] वाहनं कुमुदादिकम् ।
विष्वक्सेनं मण्डलादौ सिद्धिः पूजादिना भवेत् ॥८

वनमाला, लक्ष्मी, पुष्टि, गरुड़ और गुरु की अर्चना करनी चाहिये । इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, जल, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अस्त्र, वाहन, कुमुद, विष्वक्सेन की पूजा मण्डल आदि में करने से सिद्धि होती है । ७-८।

शिवपूजाथ सामान्या पूर्वं नन्दिनमर्चयेत् ।
महाकालं यजेद् दुर्गां यमुनां च गणादिकम् ॥९
गिरं, श्रियं, गुरुं, वास्तुं शक्त्यादीन् धर्मकादिकम् ।
वामा, ज्येष्ठा तथा[3] रौद्री काली, कलविकारिणी ॥१०
बलविकारिणी चापि[4] बलप्रमथिनी क्रमात् ।
सर्वभूतदमनी च [5]मदनोन्मादिनी शिवा ॥११

सामान्यरूप से शिवपूजा के पहले नन्दी की पूजा होनी चाहिये । महाकाल, दुर्गा, यमुना, (शिव के) गण, सरस्वती, श्री, गुरु. वास्तु, शक्ति, धर्म आदि तथा वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, बल-प्रमाथिनी, सब भूतों का दमन करने वाली, मदन को उन्मत्त करने वाली शिवा की पूजा करनी चाहिये ।११

ह्रां ह्रूं ह्रां शिवमूर्तये[6] साङ्गवक्त्रं शिवं यजेत् ।
ह्रौं शिवाय ह्रौमित्यादि ह्रामीशानादिवक्त्रकम् ॥१२
ह्लीं गौरीं गं गणः शक्रमुखाश्चण्डो हृदादिकाः ॥
क्रमात्सूर्यार्चने[7] मन्त्रा दण्डी पूज्यश्च पिङ्गलः ॥१३
उच्चैःश्रवाश्चारुणश्च प्रभूतं विमलं यजेत् ।
सोमं[8] सन्ध्ये परसुखं स्कन्दाद्यं मध्यतो यजेत् ॥१४

---

१ क. ङ. च. राज्यं । २ क. ङ. च. वास्तुं । ३ क. ङ. च. ततो । ४ क. ङ. च. वाऽपि । ५ क. ख. ग. च. मनोन्मानी शिवासनम् । ६ ख. ग. साङ्गं वक्त्रं । ७ अत्र ख. ग. पुस्तकयोः "शिवपूजाक्रमः" इत्यधिकं वर्तते । ८ क. घ. ङ च. साराराध्यौ परसुखं ।

"हां हूं हां शिवमूर्तये"—इस मन्त्र से शिव के मुख तथा सभी अंगों की पूजा करनी चाहिये। "हौं शिवाय हौं" इत्यादि मन्त्र से शिव की पूजा करनी चाहिये। "हां" इत्यादि मन्त्र से (शिव के)ईशान आदि पाँच मुखों की पूजा करनी चाहिये (—हां ईशानाय नमः, हीं वामदेवाय नमः, हूं सद्योजाताय नमः, हैं अघोराय नमः, हौं तत्पुरुषाय नमः। ईशान, वामदेव, सद्योजात, अघोर और तत्पुरुष ये शिव के पाँच मुख हैं।)" ह्रीं गौर्यै नमः" इस मन्त्र से गौरी का, "गं गणाय नमः" इस मन्त्र से शिवगणों का पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार इन्द्र आदि तथा चण्ड और हृदय आदि की भी पूजा करनी चाहिये। इसी क्रम से सूर्याचंन के भी मन्त्र हैं। इनमें दण्डी सबसे पहले पूज्य है। इसके बाद पिंगल, उच्चैःश्रवा और अरुण की पूजा करनी चाहिये। प्रभूत, विमल, सोम, दोनों सन्ध्याकाल, परसुख, स्कन्द आदि की मध्य में पूजा करनी चाहिये।१२-१४।

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा।
[1]अमोघा विद्युता चैव पूज्याथो सर्वतोमुखी ॥१५

तत्पश्चात् दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिये।१५

अर्कासनं हि हं खं खं सोल्कायेति च मूर्तिकम्।
ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नम आं नमो हृदयाय च ॥१६

"हं खं" इस मन्त्र से सूर्य के आसन की, "खं सोल्काय" से सूर्य-मूर्ति की, तथा "ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः" इस मन्त्र से सूर्य की पूजा करनी चाहिये। "आं नमो हृदयाय च" इस मन्त्र से हृदय की पूजा करनी चाहिये।१६

अर्काय शिरसे तद्वदग्नीशाश्रयवायुगान्[2]।
भूर्भुवः स्वरे ज्वालिनी शिखा हूं कवचं स्मृतम् ॥१७

"अर्काय नमः" इस मन्त्र से सिर की पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार अग्नि, ईश और वायु में अधिष्ठित सूर्य की पूजा करनी चाहिये। "भूर्भुवः स्वरे ज्वालिनी शिखा हूं"—इसको कवच कहा गया है।१७

भां नेत्रं रस्तथार्कास्त्रं राज्ञी शक्तिश्च निःस्वका[3]।
सोमोऽङ्गारकोऽथ बुधो जीवः शुक्रः शनिः क्रमात् ॥१८
राहुः केतुस्तेजश्चण्डः सङ्क्षेपादथ पूजनम् ॥१८३

---

१ क. ङ. च. अयोध्या। २ घ. °शासुरवा°। ३ क. च. निर्गता। घ. निष्कुम्भा।

"मां" कहकर नेत्र की और "रः" से अर्कास्त्र की पूजा की जाती है। राज्ञी, शक्ति, निःस्वका, सोम, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, तेज और चण्ड की क्रमशः पूजा करनी चाहिये। अब संक्षेप में पूजन बतलाते हैं।१८-१८½।

आसनं मूर्त्तयो मूलं हृदाद्यं परिचारकः[1] ॥१६
विष्ण्वासनं विष्णुमूर्ते रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः।
ह्रीं सर्वमूर्तिमन्त्रोऽयमिति त्रैलोक्यमोहनः[2] ॥२०

देवता के आसन, मूर्ति, मूल, हृदय आदि और परिचारक इनकी पूजा होती है। भगवान् विष्णु के आसन की पूजा—"रां श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः" इस मन्त्र से करनी चाहिये। यह सर्वमूर्तिमन्त्र है। इसे त्रैलोक्यमोहन भी कहते हैं।१६-२०।

क्लीं हृषीकेशो हूं विष्णुः स्वरैर्दीर्घैर्हृदादिकम्।
समस्तैः पञ्चमी पूजा सङ्ग्रामादौ जयादिदा ॥२१

भगवान् हृषीकेश की पूजा "ओं क्लीं हृषीकेशाय नमः" इस मन्त्र से तथा भगवान् विष्णु की पूजा" ॐ हूं विष्णवे नमः" इस मन्त्र से करनी चाहिये। सम्पूर्ण दीर्घ स्वरों के द्वारा हृदय आदि की पूजा करनी चाहिये (जैसे "ॐ आं हृदयाय नमः" इससे हृदय की पूजा करनी चाहिये)। पाँचवीं अर्थात् परिचारकों की पूजा संग्राम आदि में विजय देने वाली है।२१

चक्रं गदां क्रमाच्छङ्खं[3] मुसलं[4] खड्गशार्ङ्गकम्।
पाशाङ्कुशौ च श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥२२

क्रमशः चक्र, गदा, शंख, मुसल, खड्ग, शार्ङ्ग, पाश, अंकुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ और वनमाला (की पूजा करनी चाहिये।)२२

श्रीं श्रीर्महालक्ष्मीस्तार्क्ष्यो गुरुरिन्द्रादयोऽर्चनम्।
सरस्वत्यासनं मूर्ति रों ह्रीं देवी सरस्वती ॥२३
हृदाद्या लक्ष्मीर्मेधा च कला तुष्टिश्च पुष्टिका।
गौरी प्रभा मतिर्दुर्गा गणो गुरुश्च क्षेत्रपः ॥२४

---

१ क. ङ. च. परिवारिकः। ख. परिचालकः। २ ङ. च. °हनम्। क्लीं। ३ क. ङ. च. °मात्खड्गं मु°। ४ क. ङ. च. शङ्खशार्ङ्गकम्।

"श्रीं" इस मन्त्र से श्री, महालक्ष्मी, गरुड़, गुरु, इन्द्र आदि और सरस्वती के आसन तथा मूर्ति की पूजा करनी चाहिये। (इनके पूजन के लिये सर्वप्रथम प्रणव तब नाम के प्रथम वर्ण में अनुस्वारयुक्त अक्षर और फिर चतुर्थी विभक्ति सहित नाम के बाद "नमः"—यह पद जोड़ना चाहिये। जैसे—'ॐ चं चक्राय नमः"; "ॐ गं गदायै नमः" इत्यादि।) सरस्वती के आसन की पूजा में, "ॐ ऐं देव्यै सरस्वत्यै नमः" इस मन्त्र का और उनकी मूर्ति की पूजा में, "ॐ ह्रीं देव्यै सरस्वत्यै नमः" इस मन्त्र का उपयोग करना चाहिये। इस तरह हृदय आदि, लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा. मति, दुर्गा, गण, गुरु और क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिये।२३-२४।

तथा गं गणपतये च ह्रीं गौर्यै च श्रीं श्रियै।
ह्रीं त्वरितायै ऐं क्लीं सौं त्रिपुरा चतुर्थ्यन्ता नमोन्तका ॥२५
प्रणवाद्याश्च नामाद्यमक्षरं बिन्दुसंयुतम्।
ॐयुता वा सर्वमन्त्राः पूजनाज्जपतः स्मृताः ॥२६
होमस्तिलघृताद्यैश्च धर्मकामार्थमोक्षदाः।
पूजामन्त्रान्पठेद्यस्तु भुक्तभोगो दिवं व्रजेत् ॥२७

गणेश की पूजा "ॐ गं गणपतये नमः"—इस मन्त्र से; गौरी की पूजा—"ॐ ह्रीं गौर्यै नमः"—इस मन्त्र से; श्री की पूजा "ॐ श्रीं श्रियै नमः"; इस मन्त्र से; त्वरिता की पूजा—"ॐ ह्रीं त्वरितायै नमः;" इस मन्त्र से और त्रिपुरा की पूजा "ॐ ऐं क्लीं सौं त्रिपुरायै नमः" इस मन्त्र से करनी चाहिये। इस प्रकार "त्रिपुरा" शब्द चतुर्थ्यन्त हो और फिर "नमः शब्द का प्रयोग हो।

(देवताओं की पूजा का मन्त्र बनाने का नियम—) सभी मन्त्रों में पहले प्रणव फिर अनुस्वारयुक्त नाम का पहला अक्षर (फिर चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में "नमः" इस पद का प्रयोग होता है।) पूजा और जप में प्रायः सभी मन्त्र ॐकार से युक्त बतलाये गये हैं।

(पूजा की समाप्ति पर—) तिल और घी से होम करना चाहिये। इस प्रकार ये देवता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाले होते हैं। जो मनुष्य पूजा के मन्त्रों को पढ़ता है वह (सभी) भोगों को भोगकर स्वर्ग चला जाता है।२५-२७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्ण्वादिदेवतासामान्य
पूजाविधानवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

"पूजाधिकारार्थं सामान्यः स्नानविधिः"

नारद उवाच—

वक्ष्ये स्नानं क्रियाद्यर्थं नृसिंहेन तु मृत्तिकाम् ।
([1]गृहीत्वा तां द्विधा कृत्वा [2]मलस्नानमथैकया[3] ॥१
निमज्ज्याचम्य विन्यस्य सिंहेन कृतरक्षकः ।
विधिस्नानं ततः) कुर्यात् प्राणायामपुरःसरम् ॥२
हृदि ध्यायन्[4] हरिं देवं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण हि ।२½

नारद बोले—किसी धार्मिक कृत्य से पूर्व स्नान करने के लिये स्नान-विधि का वर्णन कर रहा हूँ । पहले नृसिंह का नाम लेकर मिट्टी ले । उसे दो भागों में बाँटकर एक भाग से (शरीर के) मल (को दूर करने) के लिये स्नान करे । फिर डुबकी लगाकर स्नान करे और आचमन करके "ॐ नृसिंहाय नमः"—इस मन्त्र से अंगन्यास और शरीर की रक्षा करे । तत्पश्चात् विधिपूर्वक स्नान करे । स्नान के बाद हृदय में भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए—"ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर मन्त्र से प्राणायाम करे ।१-२½।

त्रिधा पाणितले मृत्सां दिग्बन्धं सिंहजप्ततः ॥३

हाथ में मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करे । फिर नृसिंह मन्त्र के जप पूर्वक (उन तीनों भागों से तीन बार) दिग्बन्ध करे (हर दिशा में वहाँ के विघ्न करने वाले भूतों को भगाने की दृष्टि से मिट्टी बिखेरने को दिग्बन्ध कहते हैं ।) ।३

वासुदेवप्रजप्तेन तीर्थं सङ्कल्प्य चालभेत् ।
गात्रं वेदादिमन्त्रैश्च[5] सम्माज्यराध्यमूर्तिगम् ॥४

तत्पश्चात् "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस वासुदेव मन्त्र से जप करके फिर संकल्प करके तीर्थ-जल का स्पर्श करना चाहिये । इसके बाद वेद आदि के मन्त्रों से अपने शरीर का और आराध्य देवता की मूर्ति का सम्मार्जन करना चाहिये ।४

---

१ गृहीत्वा·······ततः ग. पुस्तके नास्ति । २ घ. मनःस्ना° । ३ ख. °या । विमृज्याऽऽच° । ४ क. ख. घ. ङ. च. °न्हरिज्ञानं म° । ५ क. ख. ग. घ. °दिना मन्त्रैः सम्माज्यऽऽराध्यमूर्तिना° ।

स्मृत्वाघमर्षणं वस्त्रं परिधाय समाचरेत् ।
विन्यस्य मन्त्रैर्निर्माज्र्य पाणिस्थं जलमेव च ॥५
नारायणेन संयम्य वायुमाघ्राय चोत्सृजेत् ।
जलं ध्यायन्हरिं पश्चाद् दत्त्वार्घ्यं द्वादशाक्षरम् ॥६

तदनन्तर अघमर्षण मन्त्र का जप करके वस्त्र पहनकर फिर आगे का कार्य करे—अंग-न्यास करके मन्त्रों से मार्जन करना चाहिये। हाथ में जल लेकर नारायण मन्त्र से प्राण-संयम करके जल को सूँघने के बाद भगवान् हरि का ध्यान करते हुए पानी गिरा दे। इसके बाद अर्घ्य देकर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।५-६।

जप्त्वाऽ[1] न्यान्भक्तितस्तर्प्य योगपीठादितः क्रमात् ।
मन्त्रान् दिक्पालपर्यन्तानृषीन् पितृगणानपि ॥७
मनुष्यान् सर्वभूतानि स्थावरान्तान्यथाचमेत् ।
न्यस्य चात्मनि संहृत्य मन्त्रान् [2]यागगृहं व्रजेत् ॥८
एवमन्यासु पूजासु मूलाद्यैः स्नानमाचरेत् ॥९

अन्य देवताओं का भक्तिपूर्वक तर्पण करना चाहिये। फिर योगपीठ आदि के क्रम से दिक्पाल तक के मन्त्रों का, ऋषियों, पितरों, मनुष्यों और स्थावर पर्यन्त सभी प्राणियों का तर्पण करके आचमन करे। तत्पश्चात् न्यास करके हृदय में मन्त्रों का उपसंहार करके यज्ञ-गृह में प्रवेश करे। इसी प्रकार अन्य पूजाओं में भी मूल आदि मन्त्रों से स्नान करना चाहिये।७-९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सामान्यपूजाविधिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

---

१ घ. न्याञ्शतशस्तं° । २ च. न्यान्योग° ।

अथ त्रयोविंशोऽध्याय:

सामान्यआदिमूर्त्यादिदेवानां पूजाविधि:

नारद उवाच—

वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा[1] यं कृत्वा सर्वमाप्नुयात् ।
प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य वाग्यत: कृतरक्षण: ॥१

नारद ने कहा—हे ब्रह्मर्षियो ! अब मैं उस पूजाविधि का वर्णन करूँगा जिसको करके सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। पहले पादप्रक्षालन करके आचमन करे फिर मौन होकर शरीर की रक्षा करे ।१

प्राङ्मुख: स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्माद्यपरमेव च ।
यं बीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ॥२
[2]विश्लेषयेदशेषं तु [3]ध्यायन् कायात्तु कल्मषम् ॥२½

पूर्वाभिमुख होकर स्वस्तिकासन या पद्मासन या अन्य आसन लगाकर बैठे । फिर नाभि के मध्य भाग में स्थित धुएँ की तरह वर्ण वाले प्रचण्ड वायुरूप 'यं' बीज का ध्यान करते हुए अपने शरीर से सभी पापों को दूर कर दे ।२-२½।

क्षौं हृत्पङ्कजमध्यस्थं बीजं तेजोनिधिं स्मरन् ॥३
अधोर्ध्वतिर्यग्गाभिस्तु ज्वालाभि: कल्मषं दहेत् ॥३½

हृदय-कमल में स्थित तेज के आधारभूत 'क्षौं' बीज का स्मरण करते हुए नीचे, ऊपर और इधर-उधर फैलने वाली ज्वालाओं से अपने पापों को जला डालना चाहिये । ३-३½।

शशाङ्काकृतिवद्ध्यायेदम्बरस्थं सुधाम्बुभि: ॥४
हृत्पद्मव्यापिभिर्देहं[4] स्वकमाप्लावयेत्सुधी: ।
सुषुम्नायोनिमार्गेण सर्वनाडीविसर्पिभि: ॥५

(इस प्रकार पापों को जला डालने के पश्चात्) बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि आकाश में स्थित चन्द्रमा के समान अमृत बरसाने वाली पिण्डाकृति का ध्यान करके हृदय-कमल को व्याप्त करने वाली और सुषुम्ना नाडी से होकर सब नाड़ियों में फैलने वाली अमृत की धाराओं से अपने शरीर को आप्लावित करे ।४-५।

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. ⁰प्रा यत्कृत्वा । २ घ. विशेष° । ३ ख. ग च. ध्यायेत्काया° । ४ क. ङ. च. ⁰माह्लादये⁰ ।

शोधयित्वा न्यसेत्तत्वं[1] करशुद्धिरथास्त्रकम्।
व्यापकं हस्तयोरादौ दक्षिणाङ्गुष्ठतोऽङ्गकम्॥६

(इस प्रकार तत्त्वों को) शुद्ध करके उनका न्यास करे (शरीर के विभिन्न अंगों को विभिन्न देवताओं को समर्पित करने को न्यास कहते हैं।)। फिर हाथों को शुद्ध करे। इसके बाद अस्त्रों का न्यास करे। फिर व्यापक करे। दाहिने अँगूठे से प्रारम्भ करके (अन्य) अंगों में व्यापक करना चाहिये। (अब व्यापक के बारे में विस्तृत विवरण दिया जाता है।)—

मूलं देहे द्वादशाङ्गं न्यसेन्मन्त्रैर्द्विषट्ककैः[2]।
हृदयं च शिरश्चैव शिखावर्मास्त्रलोचने॥७
उदरं च तथा पृष्ठं बाहूरू जानुपादकम्[3]।
मुद्रां दत्त्वा स्मरेद् विष्णुं जप्त्वाष्टशतमर्चयेत्॥८

अपने शरीर में द्वादशाक्षर मूल मंत्र "ॐनमो भगवते वासुदेवाय" का बारह मन्त्रवाक्यों से न्यास करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, घुटना, पैर—ये शरीर के बारह स्थान हैं। इन बारह अंगों में द्वादश मंत्र के एक-एक वर्ण का न्यास करना चाहिये। (जैसे—ॐ ॐ नमो हृदये", "ॐ नं नमः शिरसि", "ॐ मों नमः शिखायाम् इत्यादि।) फिर मुद्रा का समर्पण करके भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिये। फिर अष्टोत्तरशत (१०८) मन्त्र का जप करके पूजा करनी चाहिये।७-८।

वामे तु वर्द्धनीं[4] न्यस्य पूजाद्रव्यं तु दक्षिणे।
प्रक्षाल्यास्त्रेण चार्घ्येऽथ गन्धपुष्पान्विते न्यसेत्॥९

बाईं तरफ जलपात्र और दाहिनी ओर पूजन-सामग्री रखकर (उनका) मन्त्र से प्रक्षालन करके सुगन्धित पदार्थ और पुष्पों को दो पूजा-पात्रों में रखे। ९

---

१ ख. ग. घ. °द्धिरथा°। २ ख. ग. °न्त्रैर्विसर्गकैः°। ३ क. ङ. च. पादजानुकम्। ४ वर्द्धनी जलपात्रम्।

चैतन्यं सर्वगं ज्योतिरस्त्रजप्तेन[1] वारिणा ।
फडन्तेन तु संसिच्य हस्ते ध्यात्वा हरिं परम्[2] ॥१०
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं वह्निदिङ्मुखान्[3] ।
अधर्मादीनि गात्राणि पूर्वादौ[4] योगपीठके ॥११
कूर्मं पीठे ह्यनन्तं च पद्मं[5] सूर्यादिमण्डलम् ।
विमलाद्याः केसरस्था[6] ग्रहाः कर्णिकसंस्थिताः ॥१२

'फट्' में अन्त होने वाले अस्त्र मन्त्र—"अस्त्राय फट्" से अभिमन्त्रित जल से सर्वव्यापक चैतन्यस्वरूप ज्योतिर्मय परमेश्वर को हाथ में जल लेकर नहलाये । फिर परमेश्वर श्रीहरि का ध्यान करके योगपीठ पर धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अग्नि, दिक्पाल, अधर्म आदि के विग्रह की स्थापना पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से करना चाहिये । उस पीठ पर कच्छप, अनन्त, पद्म, सूर्य आदि मण्डल और विमला आदि शक्तियों की कमल के केसर के रूप में स्थापना करे तथा ग्रहों की कर्णिका में स्थापना करनी चाहिये ।१०-१२।

पूर्वं स्वहृदये ध्यात्वा आवाह्यार्च्चेच्च मण्डले ।
अर्घ्यं पाद्यं तथाचामं मधुपर्कं पुनश्च तत् ॥१३
स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणं गन्धपुष्पकम् ।
धूपदीपनैवेद्यानि पुण्डरीकाक्षविद्यया ॥१४
यजेदङ्गानि पूर्वादौ द्वारि पूर्वे परेऽण्डजम् ।
दक्षे चक्रं गदां सौम्ये कोणे शङ्खं धनुर्न्यसेत् ॥१५
देवस्य वामतो दक्षे चेषुधी खड्गमेव च ।
वामे चर्म श्रियं दक्षे पुष्टिं वामेऽग्रतो न्यसेत् ॥१६

पहले देवता का हृदय में ध्यान करे फिर मण्डल में आवाहन करके उसकी पूजा करे । तदनन्तर (क्रम से) अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि को पुण्डरीकाक्ष-विद्या ("ॐ नमो भगवते वासुदेवाय") इस मन्त्र से अर्पित करे । इसके अनन्तर मण्डल के पूर्व आदि दिशाओं में भगवान् के पार्षदों की पूजा करे । श्रेष्ठ पूर्व के दरवाजे पर गरुड की, दक्षिण द्वार पर चक्र की, उत्तर

---

१ घ.° रष्टज° । २ क. घ. ङ. च. परे । ख. पदे । ३ क. ख. ग. घ. च. °मुखाः । अ° । ४ ङ. मप्ताऽऽदौ । ५ घ. यमं । ६ क. घ. ङ. च.° स्थानुग्रहा कर्णिकास्थिता । पू° ।

द्वार पर गदा की, ईशान तथा अग्निकोण में शंख एवं धनुष की स्थापना करनी चाहिये। भगवान् के बायें और दाहिने भाग में दो तूणीर, बायें भाग में तलवार और चर्म (ढाल), दाहिने भाग में लक्ष्मी और बाँए भाग में पुष्टि देवी की स्थापना करनी चाहिये।१३-१६।

वनमालां च श्रीवत्सकौस्तुभो दिक्पतीन् वहिः।
स्वमन्त्रैः पूजयेत्सर्वान्[1] विष्णोरर्चावसानतः ॥१७

भगवान् के सामने वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ की स्थापना करनी चाहिये। दिक्पालों को मण्डल के बाहर स्थापित करना चाहिये। सभी (पार्षदों और देवताओं की) पूजा उनके मन्त्रों से होनी चाहिये। सबके अन्त में भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिये।१७

व्यस्तेन च समस्तेन अङ्गैर्बीजेन वै यजेत्।
जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वार्घ्यं च समर्प्य च ॥१८
हृदये विन्यसेद्ध्यात्वा अहं ब्रह्म हरिस्त्विति ॥१८½

अङ्गों के साथ अलग-अलग (व्यस्त) और एक साथ (समस्त रूप से) मन्त्रों को पढ़कर भगवान् की पूजा करनी चाहिये। क्रम से जाप, प्रदक्षिणा और स्तुति करके अर्घ्य समर्पित करना चाहिये। फिर "मैं ब्रह्मस्वरूप विष्णु हूँ", ऐसा ध्यान करके हृदय में भगवान् हरि की स्थापना करनी चाहिये।१८-१८½।

आगच्छावाहने योज्यं क्षमस्वेति विसर्जने ॥१९

आवाहन-मन्त्र में "आगच्छ"! (भगवन्! "आइये") इस शब्द को जोड़ना चाहिये और विसर्जन-मन्त्र में "क्षमस्व" (त्रुटियों को क्षमा कीजिये) —यह शब्द जोड़ देना चाहिये।१९

एवमष्टाक्षराद्यैश्च[2] पूजाः[3] कृत्वा विमुक्तिभाक्।
एकमूर्त्यर्चनं प्रोक्तं नवव्यूहार्चनं शृणु ॥२०

इस प्रकार अष्टाक्षर आदि मन्त्रों से पूजा करके मनुष्य मोक्ष का भागी होता है। यह भगवान् के एक विग्रह का पूजन कहा गया। अब नौ व्यूहों के पूजन की विधि सुनो।२०

---

१ क. ङ. च. °न्विष्णवोर्घावसानतः घ. °न्विष्णुरर्घोव°। २ क. ङ. च. °राद्याश्च। ३ ग. घ. पूजां।

अङ्गुष्ठकद्वये न्यस्य वासुदेवं बलादिकान् ।
तर्जन्यादौ शरीरेऽथ शिरोललाटवक्त्रके ॥२१
हृन्नाभिगुह्यजान्वङ्घ्रौ मध्ये[1] पूर्वादिकं यजेत् ।
एकपीठं नवव्यूहं नवपीठं च पूर्ववत् ॥२२
नवाब्जे नवमूर्त्या च नवव्यूहं च पूर्ववत्[2] ।
पद्ममध्ये[3] च तत्स्थानि वासुदेवं[4] च पूजयेत् ॥२३

दोनों अँगूठों में और तर्जनी आदि में वासुदेव और बलभद्र आदि का न्यास करना चाहिये। फिर शरीर में अर्थात् सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य अंग, जानु और चरण आदि अंगों में (पूर्ववत्) अन्य देवताओं की स्थापना करके उनका पूजन करे। फिर मध्य में और पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करे। इस प्रकार एक पीठ पर एक व्यूह के क्रम से नौ व्यूहों के लिये नौ पीठों की स्थापना करनी चाहिये। नौ कमलों में नौ मूर्तियों के द्वारा पहले की तरह नौ व्यूहों की पूजा करनी चाहिये। कमल के मध्यभाग में जो भगवान् का स्थान है, उसमें वासुदेव की पूजा करनी चाहिये ।२२-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आदिमूर्त्यादिपूजाविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३

— — -

१ क. ङ. च. मध्यपू० । २ ख. ग. घ. ०त् । इष्टं म० । ३ ख. ग. घ. ०ध्ये ततः स्था० । ४ ख. ग. घ. ०वं च पूज० ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

अथ कुण्डनिर्माणाग्निकार्यादिविधिः

नारद उवाच—

अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक् ।
चतुरभ्यधिकं विंशमङ्गुलं[1] चतुरस्त्रकम् ॥१
सूत्रेण सूत्रयित्वा तु क्षेत्रं तावत् खनेत्समम् ।
खातस्य मेखलाः कार्यास्त्यक्त्वा चैवाङ्गुलद्वयम् ॥२

नारद बोले—महर्षियो ! अब मैं उस अग्निकार्य का वर्णन करूँगा जिससे मनुष्य को सभी मनोवाञ्छित वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। चौबीस अङ्गुल की चौकोर (२४×४) भूमि को सूत से नापकर उस क्षेत्र को (सभी ओर से) बराबर खोदना चाहिये। उस खोदे हुए कुण्ड के चारों ओर दो अंगुल भूमि छोड़कर एक मेखला (सी) बना लेनी चाहिये।१-२।

सत्त्वादिसञ्ज्ञाः पूर्वास्या[2] द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रिताः ।
अष्टाङ्गुलाद्व्यङ्गुलाथ चतुरङ्गुलविस्तृता ॥३

ये मेखलाएँ—सत्त्व, रजस्, तमस् नाम (संख्या में तीन होती हैं।) मेखलाओं की ऊँचाई बारह अंगुल होती है। इन मेखलाओं की चौड़ाई क्रम से आठ, दो और चार अंगुल की होती है।३

योनिर्दशाङ्गुला रम्या षट्चतुद्र्व्यङ्गुलोच्छ्रिता[3] ।
क्रमान्निम्ना तु कर्तव्या पश्चिमाशाव्यवस्थिता ॥४

(कुण्ड से) पश्चिम दिशा की ओर दस अंगुल लंबी सुन्दर योनि बनायी जाय। उस योनि को इस क्रम से आगे की ओर नीचा बनाना चाहिये अर्थात् सबसे पिछला भाग छः अंगुल, फिर उसके आगे का भाग चार अंगुल, फिर उसके भी आगे का भाग दो अंगुल ऊँचा होना चाहिये।४

अश्वत्थपत्रसदृशी किञ्चित्कुण्डे निवेशिता ।
तुर्याङ्गुलायतं[4] नालं पञ्चदशाङ्गुलायतम् ॥५
मूलन्तु त्र्यङ्गुलं योन्या अग्रं तस्याः षडङ्गुलम् ।
लक्षणं चैकहस्तस्य द्विगुणं द्विकरादिषु ॥६

---

१ च. विंशं मण्डलं। २. ख. ग. घ. पूर्वाशा। च. पूर्वासा। ३ क. घ. ङ्गुलाग्रगा। क्र॰। ङ. ॰ङ्गुला यथा। क्र॰।४ घ. तुर्याङ्गुलायता।

योनि की आकृति पीपल के पत्ते की सी होनी चाहिये। उसका कुछ भाग कुण्ड के अंदर प्रविष्ट होना चाहिये। योनि का आयाम चार अंगुल का हो तथा नाल का फैलाव पंद्रह अंगुल होना चाहिये। योनि का मूल भाग तीन अंगुल एवं उसका अग्रभाग छः अंगुल विस्तृत होना चाहिये। यह एक हाथ लंबे-चौड़े कुण्ड का लक्षण कहा गया। दो हाथ या तीन हाथ लम्बे-चौड़े कुण्ड में सभी नाप दुगने या तिगुने हो जायेंगे।५-६।

एकत्रिमेखलं कुण्डं वर्तुलादि वदाम्यहम्।
कुण्डार्द्धे तु स्थितं सूत्रं कोणे यदतिरिच्यते ॥७
तदर्द्धदिशि संस्थाप्य भ्रामितं वर्तुलं भवेत्।
कुण्डार्द्धं कोणभागार्द्धं दिशि[1] चोत्तरतो वहिः ॥८
पूर्वपश्चिमतो यत्नाल्लाञ्छयित्वा तु मध्यतः।
संस्थाप्य भ्रामितं कुण्डमर्द्धचन्द्रं भवेच्छुभम् ॥९

अब मैं एक या तीन मेखला वाले वर्तुल आदि आकार वाले कुण्डों का वर्णन करता हूँ। चौकोर कुण्ड के आधे भाग अर्थात् ठीक बीच में सूत रखकर उसे किसी एक कोण की सीमा तक ले जाना चाहिये। मध्य बिन्दु से कोण-बिन्दु तक सूत को ले जाने में सामान्य दिशाओं की अपेक्षा वह सूत जितना बढ़ जाय उसके आधे भाग को प्रत्येक दिशा में बढ़ाकर स्थापित करना चाहिये। मध्य-स्थान से उन्हीं बिन्दुओं में सब ओर सूत को घुमाने से गोल आकार का कुण्ड बन जाता है। कुण्डार्द्ध से बढ़ा हुआ जो कोणभागार्द्ध है, उसे उत्तर दिशा में बढ़ाना चाहिये। फिर यत्नपूर्वक सूत को पूरब से पश्चिम की ओर घुमाकर चिह्न लगा देना चाहिये। इस प्रकार मध्य बिन्दु से स्थापित करके अर्द्धचन्द्राकार घुमाने से अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड बन जाता है।७-९।

पद्माकारे दलानि स्युर्मेखलायां[2] तु वर्तुले।
बाहुदण्डप्रमाणन्तु होमार्थं कारयेच्छुभम्[3] ॥१०
सप्तपञ्चाङ्गुलं वापि चतुरस्रं तु कारयेत्।१०½

पद्म के आकारवाले गोलकुण्ड की मेखला पर दलाकार चिह्न बनाये जाने चाहिये।

---

१ घ. दिशाश्चोत्त॰। २ क. ङ. च. ॰लानां तु। ३ ख. ग. घ. ङ. ॰येत्स्रुचम्।

हवन के लिये अपने बाहुदण्ड के बराबर स्रुक् बनाना चाहिये। यह स्रुक् चौकोर हो। स्रुक् (बाहुदण्ड के बराबर हो अथवा) सात या पाँच अंगुल का भी हो सकता है।१०-१०½।

त्रिभागेन भवेद्गर्तं[1] मध्ये वृत्तं सुशोभनम् ॥११

तीन चौथाई भाग में गड्ढा (खोदकर) बीच में एक अत्यन्त सुन्दर मण्डल बना देना चाहिये।११

तिर्यगूर्ध्वं समं खात्वा[2] बहिरर्द्धं तु शोधयेत्।
अङ्गुलस्य चतुर्थांशं शेषार्द्धार्द्धं तथान्ततः ॥१२

उस गड्ढे को नीचे और ऊपर बराबर खुदवाकर बाहर के आधे भाग को छीलकर साफ करा देना चाहिये। चारों ओर चौथाई अंगुल—जो शेष के आधे भाग का आधा है, भीतर से भी छीलकर साफ करा देना चाहिये।१२

खातस्य मेखलां[3] रम्यां शेषार्द्धेन तु कारयेत्।
कण्ठं त्रिभागविस्तारमङ्गुष्ठकसमायतम् ॥१३

बाकी बचे आधे भाग से उक्त खात की सुन्दर मेखला बनवानी चाहिये। खात का कण्ठ मेखला के तीन चौथाई के बराबर होना चाहिये। कण्ठ की चौड़ाई एक अंगुल होनी चाहिये।१३

सार्द्धमङ्गुष्ठकं वा स्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत्।
चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ॥१४

(अथवा कण्ठ की चौड़ाई) डेढ़ अंगुल भी हो सकती है। स्रुक् के अग्रभाग में उसका मुख होना चाहिये जो चार या पांच अंगुल का हो ॥१४

त्रिकं द्व्यङ्गुलकं तत्स्यान्मध्यं[4] तस्य सुशोभनम् ॥
आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिम्नः सुशोभनः ॥१५

उसके मुख का मध्यभाग दो या तीन अंगुल का और खूब सुन्दर होना चाहिये। उसकी लम्बाई चौड़ाई के बराबर होनी चाहिये। मुख का मध्यभाग नीचा और अत्यन्त सुन्दर होना चाहिये।१५

सुषिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेद्यावत्कनीयसी।
शेषं कुण्डं तु कर्तव्यं यथारुचि विचित्रितम् ॥१६

---

१ ख. ग. ङ. °द्गर्भं म°। २ क. घ. खाताद्बहि°। ३ क. ख. ङ. च. मेखलार्द्धेन। ४ ख. ङ. च. °न्मध्यान्तं तु सु°।

स्रुक् के कण्ठ-प्रदेश में एक ऐसा सुन्दर छिद्र होना चाहिये जिसमें कनिष्ठिका अँगुली प्रविष्ट हो जाय। कुण्ड (अर्थात् स्रुक् के मुख) का शेष भाग अपनी इच्छानुसार विचित्र शोभा से सम्पन्न बनाना चाहिये।१६

([1]स्रुवं तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम्।)
[2]वटुकं (?) द्व्यङ्गुलं वृत्तं कर्तव्यं तु सुशोभनम्॥१७

(स्रुक् के अलावा) एक स्रुवा भी होना चाहिये जो दण्डभाग को मिलाकर एक हाथ लम्बा हो। गोल डंडे की मोटाई दो अंगुल हो तथा उसे खूब सुन्दर बनाना चाहिये।१७

गोपदं तु यथा मग्नमल्पपङ्के तथा भवेत्।
उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनामिकाम्[3]॥१८

थोड़ी-सी कीचड़ में गाय का पैर पड़ने पर जैसा पदचिह्न उभर आता है वैसा ही उस स्रुवा का मुख होना चाहिये। अग्निकुण्ड को लीपकर उसके भीतर की भूमि पर वीच में एक अंगुल मोटी एक रेखा खींचनी चाहिये जो दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हो। इस रेखा का नाम वज्र है।१८

सौम्याग्रां प्रथमां तस्यां रेखे पूर्वमुखे तयोः।
मध्ये तिस्रस्तथा कुर्याद् दक्षिणादिक्रमेण तु॥१९

उस उत्तराग्र प्रथम रेखा पर पूर्वाभिमुख दो रेखायें खीचनी चाहिये। फिर उन दोनों रेखाओं के बीच में तीन रेखायें दक्षिणादि-क्रम से खींचनी चाहिये अर्थात् पहली रेखा दक्षिण भाग में फिर दूसरी रेखा पहली रेखा से उत्तर की ओर और तीसरी रेखा दूसरी रेखा के भी उत्तर की ओर खींचनी चाहिये।१९

एवमुल्लिख्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित्।
विष्टरं कल्पयेत्तेन तस्मिञ्शक्तिं तु वैष्णवीम्॥२०

इस प्रकार मन्त्रज्ञ पुरुष रेखायें खींचकर, उन पर जल छिड़ककर फिर उस (परमात्मरूप) प्रणव का उच्चारण करके एक आसन की कल्पना करे, जिस पर वैष्णवी शक्ति अधिष्ठित हो।२०

---

१ अस्यश्लोकस्यार्धभागं ङ पुस्तके नास्ति। २ क. चटुकं। ङ. चतुष्कं।
३ घ. वज्रनासिकाम्।

[1]अलङ्कृतामृतुमतीं क्षिपेदग्निं हरिं स्मरन् ।
प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य तम् ॥२१

वैष्णवी देवी का इस प्रकार ध्यान करे—वे (दिव्य) आभूषणों से विभूषित हैं तथा दिव्य विग्रह से युक्त हैं। तदनन्तर हरि का स्मरण करते हुए अग्नि को (कुण्ड में) स्थापित करना चाहिये। फिर प्रादेश-मात्र (अँगूठे से लेकर तर्जनी के अग्रभाग के बराबर) समिधायें (यज्ञ की लकड़ियाँ) देकर उस (अग्नि) का परिसमूहन (अग्नि के चारों ओर कुश बिखेरने का कार्य) करना चाहिये।२१

दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादौ तत्र पात्रकम् ।
आसादयेदिध्मबर्हिर्द्वयं[2] स्रुक्स्रुवकद्वयम् ॥२२

(पूर्वोक्त परिसमूहन) कुश से तीन बार करना चाहिये। फिर पूर्व आदि सभी दिशाओं में (चारों ओर) कुश फैलाकर पात्र को तथा समिधा, कुशा दोनों को व स्रुक् और स्रुवा (इन) दोनों को (यथास्थान) रखना चाहिये।२२

आज्यस्थालीं चरुस्थालीं कुशाज्यं च प्रणीतया ।
प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणीं च गृहीत्वापूर्य वारिणा ॥२३

आज्य-स्थाली, चरुस्थाली, कुशाच्छादित घी (और प्रणीता-पात्र) को (यथास्थान रखे।) प्रणीता-पात्र, से जल छिड़ककर प्रोक्षणी-पात्र को लेकर जल से पूर्ण कर लेना चाहिये।२३

पवित्रान्तर्हिते हस्ते [3]परिस्राव्य च तज्जलम्[4] ।
अग्निं ध्यात्वाथ प्रोक्षण्यां योन्या अग्रे निधाय च ।२४

और उस जल को पवित्री से युक्त हाथ के ऊपर डालकर फिर प्रोक्षणी-पात्र में अग्नि का ध्यान करके उसे योनि के सामने रख देना चाहिये।२४

तदद्भिस्त्रिश्च सम्प्रोक्ष्य इध्मं विन्यस्य चाग्रतः ।
प्रणीतायां सपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च ॥२५

उस जल से तीन बार छिड़काव करके, आगे की ओर समिधा को रखकर, उत्तर की ओर पुष्प-युक्त प्रणीतापात्र में विष्णु का ध्यान करना चाहिये।२५

---

१ ख. ग. घ. °कृत्वा मूर्तिमतीं। २ घ. °ध्मवह्नी भूमौ च स्रुक्स्रुवद्वयम्। ३ क. ङ. च. अविस्राव्य। ४ घ. °म्। प्राङ्नीत्वा प्रोक्षणी-पात्रं ज्योतिरग्रे।

आज्यस्थालीमथाज्येन सम्पूर्याग्रे निधाय च ।
सम्प्लवोत्प्लवनाभ्यां तु कुर्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ॥२६

इसके बाद आज्य-स्थाली को आज्य से भरकर आगे की ओर रख लेना चाहिये । तदनन्तर सम्प्लवन और उत्प्लवन के द्वारा आज्य को शुद्ध कर लेना चाहिये ।२६

अखण्डिताग्रौ निर्गर्भौ कुशौ प्रादेशमात्रकौ ।
ताभ्यामुत्तानपाणिभ्यामङ्गुष्ठानामिकेन तु ।२७
आज्यं ताभ्यां[1] तु सङ्गृह्य[2] त्रिवारं चोर्ध्वमुत्क्षिपेत् ।
स्रुक्स्रुवौ चापि सङ्गृह्य ताभ्यां प्रक्षाल्य[3] वारिणा ॥२८

(अब सम्प्लवन और उत्प्लवन की विधि बताते हैं—) दो ऐसे कुशों को लेकर जिनका ऊपर का भाग टूटा न हो और जिनकी लंबाई अंगूठे से लेकर तर्जनी के बराबर हो, अंगूठे और अनामिका से पकड़ लेना चाहिये । उन दोनों कुशों से जल ग्रहण करके तीन बार ऊपर की ओर छिड़कना चाहिये । इसके बाद स्रुक् और स्रुवा को लेकर उनसे जल छिड़कना चाहिये ।२७-२८।

प्रताप्य[4] दर्भैः सम्मृज्य पुनः प्रक्षाल्य चैव हि ।
निष्टप्य स्थापयित्वा तु प्रणवेनैव साधकः ॥२९

(उन स्रुक् और स्रुवा को आग से) तपाकर, कुशों से पोंछकर और (जल से) धोकर पुनः आग से तपाकर और प्रणव का उच्चारण करके, साधक उन्हें रख दे ।२९

प्रणवादिनमोऽन्तेन पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।
गर्भाधानादिकर्माणि यादवङ्गव्यवस्थया[5] ।३०

(चतुर्थ्यन्त देवता के नाम के) पहले प्रणव तथा बाद में "नमः" पद लगाकर फिर होम करना चाहिये । गर्भाधान से लेकर सारे संस्कार अंग-व्यवस्था के अनुसार करने चाहिये ।३०

नामान्तं व्रतबन्धान्तं समावर्तावसानकम् ।
अधिकारावसानं वा कुर्यादङ्गानुसारतः ॥३१

अथवा (दूसरे मतानुसार) नामकरण, यज्ञोपवीत, समावर्तन व यज्ञाधिकार में समाप्त होने वाला यज्ञ अंगानुसार करना चाहिये ।३१

---

१ घ. तयोस्तु । २ ख. °ह्य त्रीन्वारानूर्ध्वं° । घ. °ह्य द्विर्नीत्वा त्रिखाङ् क्षिपेत् । ३ घ. प्रक्षिप्य । ४ क. ङ. च. आतप्य । ५ घ, °वदंशव्य° ।

प्रणवेनोपचारं तु कुर्यात्सर्वत्र साधकः ।
अङ्गैर्होमस्तु कर्तव्यो यथावित्तानुसारतः ॥३२

साधक सर्वत्र प्रणव के द्वारा पूजोपचार करे तथा अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अङ्गमन्त्रों के द्वारा होम करे।३२

गर्भाधानं तु प्रथमं ततः पुंसवनं स्मृतम् ।
सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामानुशासनम्[1] ॥३३
चूडाकृति[2] व्रतवन्धं वेदव्रतान्यशेषतः ।
समावर्तनं पत्न्या च योगो[3] यागाधिकारकः ॥३४

पहला संस्कार है गर्भाधान, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमन्तोन्नयन, चौथा जातकर्म, पाँचवाँ नामकरण, छठा चूडाकर्म, सातवाँ व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत), आठवाँ वेदारम्भ, नवाँ समावर्तन तथा दसवाँ पत्नीसंयोग (विवाह--) संस्कार है जो यज्ञ के लिये अधिकार प्रदान करने वाला है।३३-३४।

हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म पूज्य च ।
अष्टावष्टौ तु जुहुयात् प्रतिकर्माहुतीः पुनः ॥३५

इसके बाद प्रत्येक देवता का क्रम से ध्यान करके तथा प्रत्येक पूजन-कर्म द्वारा पूजा करके हृदय आदि अंग-मन्त्रों द्वारा प्रति कर्म के लिये आठ-आठ आहुतियाँ समर्पित करनी चाहिये।३५

पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्स्रुचा मूलेन साधकः ।
वौषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुस्वरमुच्चरन् ॥३६

इसके बाद साधक को मूलमंत्र के द्वारा पूर्णाहुति देनी चाहिये। उस समय मन्त्र के अन्त में "वौषट्" पद जोड़कर प्लुत स्वर से सुस्पष्ट मन्त्रोच्चारण करना चाहिये।३६

विष्णोर्वह्निं तु संस्कृत्य श्रपयद् वैष्णवं चरुम् ।
आराध्य स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान् संस्मृत्य पूजयेत्[4] ।३७

इस प्रकार वैष्णव अग्नि का संस्कार करके उस पर विष्णु भगवान् के निमित्त चरु पकाना चाहिये। वेदी पर भगवान् विष्णु की स्थापना एवं आराधना करके, मन्त्रों को स्मरण करके भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिये।३७

---

१ ख. निष्क्रमणं ततः । घ. ङ. नामान्नप्राशनम् । २ अत्र किञ्चित् त्रुटितमिति भाति । ३ घ. योगश्चाथाधिकारकः । ४ घ. संश्रपेत् ।

आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम् ।
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ।।३८

तदनन्तर अङ्ग और आवरण-देवताओं सहित सर्वोत्तम देवता भगवान् विष्णु को आसन आदि उपचार अर्पित करते हुए सम्यक् प्रकार से उनकी पूजा करनी चाहिये । ३८

आधायेध्ममथाधारावाज्यावग्नीशसन्निधौ ।
वायव्यनैर्ऋताशादि प्रवृत्तौ तु यथाक्रमम् ।।३९

इसके बाद अग्नि में समिधा का आधान करके अग्नीश्वर भगवान् विष्णु के समीप "आधार" नामक घृत की दो आहुतियाँ देनी चाहिये । इनमें से एक को वायव्य कोण में और दूसरे को नैर्ऋत्य कोण में देना चाहिये । यही इनका क्रम है ।३९

आज्यभागौ ततो हुत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे ।
मध्ये तु जुहुयात्[1] सर्वमन्त्रैरर्चाक्रमेण तु ।।४०

इसके पश्चात् 'आज्यभाग' नामक दो आहुतियाँ क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशा में देनी चाहिये और उनमें अग्निदेव के दायें-बायें नेत्रों की भावना करनी चाहिये । शेष आहुतियों को इन्हीं के बीच में पूजा-क्रम से मन्त्रोच्चारण-पूर्वक देना चाहिये । ४०

आज्येन, तर्पयेन्मूर्ति[2] दशांशेनाङ्गहोमकम् ।
शतं सहस्रं वाज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सदा[3] ।।४१

घी से भगवान् की मूर्ति को तृप्त करना चाहिये । अंग-देवताओं के लिये (अङ्गी भगवान् की अपेक्षा) दशांश में हवन करना चाहिये । घी आदि से अथवा समिधाओं से अथवा तिलों से, हमेशा एक सौ या एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिये ।४१

समाप्याचां तु होमान्तां शुचीञ्शिष्यानुपोषितान् ।
आहूयाग्रे निवेश्याथ ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत्पशून् ।।४२

होम में अन्त होने वाली पूजा को समाप्त करके (स्नानादि से) शुद्ध हुए तथा उपवास किये हुए शिष्यों को बुलाकर तथा उन्हें सामने बैठाकर उनमें पाशबद्ध पशु की भावना करके उनका प्रोक्षण (जल से सिंचन) करना चाहिये ।४२

---

१ क. ख. घ. च. ०मन्त्रानर्चा० । २ क. ङ. च. ०न्मूर्तेर्दशाङ्गेना० घ. ०न्मूर्तौ द० । ३ घ. सह ।

शिष्यानात्मनि संयोज्याविद्याकर्मनिबन्धनैः ।
लिङ्गानुवृत्तं चैतन्यं सह लिङ्गेन पालितम्[1] ॥४३
ध्यानमार्गेण सम्प्रोक्ष्य[2] वायुबीजेन शोषयेत्[3] ।
ततो दहनबीजेन सृष्टिं ब्रह्माण्डसञ्ज्ञिकाम् ॥४४
([4]निर्दग्धां सकलां ध्यायेत् भस्मकूटनिभस्थिताम् ।
प्लावयेद्वारिणा भस्म संसारं वाङ्मयं[5] स्मरेत्)॥४५

इसके बाद शिष्यों को भावना द्वारा अपने आत्मा से संयुक्त करना चाहिये । फिर अविद्या और कर्म के बन्धनों से बँधे हुए लिङ्ग के साथ पालित तथा लिङ्ग शरीर का अनुवर्तन करने वाले चैतन्य को ध्यान-मार्ग से प्रोक्षित करके वायु-बीज ('यं') के द्वारा (उसका) शोषण करना चाहिये । फिर अग्नि-बीज ('रं') के द्वारा ब्रह्माण्ड नामक सृष्टि को पूरी तरह से जली हुई तथा भस्मराशि के समान स्थित है, ऐसा ध्यान करना चाहिये । तदनन्तर जल-बीज ('वं') के द्वारा उस भस्म-राशि को बहा देना चाहिये और अब संसार वाणीमात्र रह गया है, ऐसा स्मरण करना चाहिये ।४३-४५।

तत्र शक्तिं न्यसेत्पश्चात् पार्थिवीं बीजसञ्ज्ञिकाम् ।
तन्मात्राभिः समस्ताभिः संवृत्तं पार्थिवं शुभम् ॥४६
अण्डं तद्भवं ध्यायेत्तदाधारं तदात्मकम् ।
तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम्॥ ४७

फिर वहाँ बीजसञ्ज्ञक पार्थिव शक्ति का न्यास करना चाहिये । सभी तन्मात्राओं से संवृत पार्थिव बीज शुभ होता है । फिर, उस पार्थिव बीज से उत्पन्न, उसी पर आधृत तथा तदात्मक अण्ड का ध्यान करना चाहिये । उस अण्ड के भीतर प्रणवस्वरूप पुरुष की मूर्ति का चिन्तन करना चाहिये ।४६-४७।

लिङ्गं सङ्क्रामयेत्पश्चात्पार्श्वस्थं[6] पूर्वसंस्कृतम् ।
विभक्तेन्द्रियसंस्थानं क्रमाद् वृद्धं विचिन्तयेत् ॥४८

---

१ घ. पाशितम् । टिप्पण्यां दर्शितम् । २ क. ङ. च. सम्प्रेक्ष्य । ३ घ. शोधयेत् । ४ निर्दग्धां......स्मरेत् ख. पुस्तके नास्ति । ५ घ. पुस्तकटिप्पण्यां वाक्षयं । ६ क. ङ. °श्चात्स्थण्डिले पू° । घ. °श्चादात्मस्थं पू° ।

तत्पश्चात् पहले से शुद्ध किये हुए एवं अपने आत्मा में स्थित लिङ्गशरीर का उस पुरुष में संक्रमण कराना चाहिये। उस शरीर में सभी इन्द्रियों का आकार अलग-अलग अभिव्यक्त हो गया है तथा वह पुरुष क्रम से बढ़ गया है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये।४८

ततोऽण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम्।
द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्मध्ये प्रजापतिम्॥४९
जातं ध्यात्वा पुनः प्रोक्ष्य प्रणवेन तु तं शिशुम्।
मन्त्रात्मकं तनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम्॥५०
विष्णुहस्तं ततो मूर्ध्नि दत्त्वा ध्यात्वा तु वैष्णवम्।
एवमेकं बहून्वापि जपित्वा[1] ध्यानयोगतः॥५१
करौ[2] सङ्गृह्य[3] मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा।
नेत्रमन्त्रेण मन्त्री[4] तानशेषानाहतेन तु॥५२
कृतपूजो गुरुः सम्यग्देवदेवस्य तत्त्ववान्।
शिष्यान् पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवेशयेत्॥५३

इसके बाद (यह चिन्तन करना चाहिये कि) एक वर्ष तक स्थित रहकर वह अण्ड दो टुकड़ा कर दिया गया है। वे दोनों टुकड़े हैं—(ऊपर) द्यु-लोक और (नीचे) पृथिवी-लोक। उन दोनों लोकों के बीच में प्रजापति पुरुष आविर्भूत हुआ है, ऐसा ध्यान करके फिर उस शिशुरूप प्रजापति का प्रणव से प्रोक्षण करना चाहिये। फिर यथोचित रूप से पूर्वोक्त न्यास करके उसके शरीर को मन्त्रमय बना देना चाहिये। इसके बाद उनके सिर पर विष्णुहस्त रखकर 'वे वैष्णव हैं'—ऐसा ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार एक अथवा बहुत से पुरुषों का ध्यानयोग से जप करना चाहिये। इसके बाद मूलमन्त्रोच्चारण से शिष्य के दोनों हाथों को सम्यक् रूप से ग्रहण करके फिर मन्त्र देने वाला गुरु नेत्रमन्त्र (वौषट्) से, छिद्ररहित वस्त्र द्वारा उन सभी शिष्यों के नेत्रों को (पट्टी) बाँध दे। फिर तत्त्वज्ञ गुरु देवाधिदेव भगवान् की पूजा करके पुष्पाञ्जलि धारण करने वाले शिष्यों को पूर्वाभिमुख बैठाना चाहिये।४९-५३।

अर्चयेयुश्च तेऽप्येवं प्रसूता गुरुणा हरिम्।
क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम्[5]।५४

---

१. ख घ. जनित्वा। २ ङ. कलौ। ३ क. ख. संयुज्य। ४ ख. तान्सदेन्शेना° घ. तान्सदनेना°। ५ ख. घ. °म्। अमन्त्रमर्चं°।

इस प्रकार गुरु के द्वारा (दूसरा) जन्म पाकर वे शिष्य भी भगवान् श्रीहरि की पूजा करें। (द्विज बनने के तुरन्त) बाद वे शिष्य भगवान् को पुष्पाञ्जलि समर्पित करके पुष्प आदि उपचारों से उनकी पूजा करें।५४

वासुदेवार्चनं कृत्वा गुरोः पादार्चनं ततः ।
विधाय दक्षिणां दद्यात् सर्वस्वं चार्धमेव वा ।।५५

तदनन्तर फिर वासुदेव की पूजा करके उसके बाद गुरु के चरणों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् (गुरु की) दक्षिणा के रूप में अपना सर्वस्व अथवा आधी सम्पत्ति समर्पित कर दे।५५

गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यांस्तैः पूज्यो नामभिर्हरिः ।
विष्वक्सेनं यजेदीशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।। ५६
तर्जयन्तं[1] च तर्जन्या मण्डलस्थं विसर्जयेत् ।
विष्णुनिर्माल्यमखिलं विष्वक्सेनाय चार्पयेत् ।।५७

फिर गुरु शिष्यों को सम्यक् रूप से शिक्षा दे और वे शिष्य भगवान् के नाम-मन्त्रों द्वारा उनकी पूजा करें। तत्पश्चात् मण्डल में विराजमान शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्वक्सेन का यजन करना चाहिये जो द्वारपाल बनकर अपनी तर्जनी अँगुली से लोगों को गलत कार्य करने से रोक रहे हैं। इसके बाद भगवान् की प्रतिमा का विसर्जन करना चाहिये । भगवान् विष्णु के सारे निर्माल्य को भगवान् विष्वक्सेन के लिये समर्पित कर देना चाहिये।५२-५७।

प्रणीताभिस्तथात्मानमभिषिच्य च कुण्डकम् ।
वह्निमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेनं विसर्जयेत् ।।५८

फिर प्रणीता-पात्र (जल-पात्र) के जल से अपना और कुण्ड का अभिषेक करके तथा अपने आत्मा में अग्नि को लीन करके भगवान् विष्वक्सेन का विसर्जन करना चाहिये।५८

बुभुक्षुः सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्लीयते हरौ।५९

ऐसा करने से भोग की इच्छा करने वाला साधक सभी मनोवाञ्छित वस्तुएँ पा जाता है और मोक्ष की इच्छा करने वाला भक्त भगवान् श्रीहरि में लीन हो जाता है अर्थात् सायुज्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ५९

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुण्डनिर्माणाद्यग्निकार्यादिवर्णनं नाम चतुर्विशोऽध्यायः ।२४

---

१. घ. तज्जपन्तं ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

वासुदेवादिमन्त्राणां लक्षणानि

नारद उवाच—

वासुदेवादिमन्त्राणां पूज्यानां लक्षणं वदे ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥ १
नमो भगवते चादौ अ आ अं अः सबीजकाः ।
ओङ्काराद्या नमोऽन्ताश्च नमो नारायणस्ततः २॥

नारद बोले—अब मैं पूज्य वासुदेवादि मन्त्रों के लक्षण कह रहा हूँ । वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—(इनके मन्त्रों की विधि इस प्रकार है—) पहले ओङ्कार कहकर फिर क्रम से अ आ अं अः—इन बीज-मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये । तब 'नमो भगवते' पद का प्रयोग करना चाहिये । इसके बाद चतुर्थी विभक्तियुक्त, 'वासुदेव,' 'सङ्कर्षण,' 'प्रद्युम्न' और 'अनिरुद्ध' शब्दों का प्रयोग करना चाहिये । (इस प्रकार ये चार मन्त्र बनते हैं—ॐ अं नमो भगवते वासुदेवाय नमः, ॐ आं नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः, ॐ अं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः. ॐ अः नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः ।) इसके बाद इस तरह नारायण-मन्त्र कहना चाहिये—'ॐ नमो नारायणाय' ।१-२।

ॐ तत्सद् ब्रह्मणे चैव हूं नमो विष्णवे नमः ।
ॐ क्षौं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय वै नमः ॥३

ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय नराधिपाः (?)
जपारुणहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः ॥४
मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वल्लभा नवनायकाः ।
अङ्गानि स्वरबीजानां स्वनामान्तैर्यथाक्रमम् ॥५
हृदयादीनि कल्पेत विभक्तैस्तन्त्रवेदिभिः ॥५½

ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह, और वराह भगवान् के मन्त्र इस प्रकार हैं—

१ ब्रह्ममन्त्र—'ॐ तत्सद् ब्रह्मणे ॐ नमः' ।
२ विष्णुमन्त्र—'ॐ विष्णवे नमः' ।
३ नरसिंहमन्त्र—'ॐ क्षौं ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमः' ।
४ वराहमन्त्र—'ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय' ।

ये सभी मन्त्रराज हैं। उपर्युक्त नौ मन्त्रों के वासुदेव आदि नौ नायक हैं जो (भक्तों के) वल्लभ (इष्ट देवता) हैं। (क्रम से) इनके ये वर्ण हैं—जवा-कुसुम के सदृश अरुण, हल्दी के समान पीला, नीला, श्यामल, लोहित, मेघ-सदृश, अग्निसदृश, मधु के समान तथा पिङ्गल। स्वर के बीजाक्षरों से क्रमशः पृथक्-पृथक् हृदय आदि अंगों की कल्पना तन्त्रवेत्ता करें। उन बीजों के अन्त में अंगों के नाम हों (जैसे—'ॐ आं हृदयाय नमः,' 'ॐ ईं शिरसे स्वाहा,' 'ॐ ऊं शिखायै वषट्' इत्यादि) ।३-५½।

व्यञ्जनादीनि बीजानि तेषां लक्षणमन्यथा ॥६
दीर्घस्वरैस्तु भिन्नानि नमोन्तान्तस्थितानि तु।
अङ्गानि ह्रस्वयुक्तानि उपाङ्गानीति वर्ण्यते ॥७

जिन मन्त्रों के प्रारम्भ में व्यञ्जन अक्षर होते हैं उनके लक्षण दूसरी तरह से होते हैं। दीर्घ स्वरों के योग से उनके रूप अलग-अलग होते हैं। उनके अन्त में अंगों के नाम होते हैं तथा अंग-नामों के अन्त में 'नमः' पद जुड़ा होता है। (यथा—'क्लां हृदयाय नमः'। 'क्लीं शिरसे स्वाहा' इत्यादि।) ह्रस्व-स्वर-युक्त अंग उपांग कहलाते हैं।६-७।

विभक्तं नामवर्णान्तस्थितं बीजात्ममुत्तमम्।
दीर्घस्वरैश्च संयुक्तमङ्गोपाङ्गैः स्वरैः क्रमात् ॥८

देवता के नामाक्षरों को अलग-अलग करके, उनमें से हर एक के अन्त में बिन्दु-रूप बीज का योग करके उनसे अंगन्यास करना भी उत्तम है। अथवा नाम के आदि अक्षर को दीर्घस्वरों से युक्त करके अंगों और उपागों के द्वारा (इस प्रकार) स्वरों से क्रमशः न्यास करना चाहिये।८

व्यञ्जनानां क्रमो ह्येष हृदयादिप्रक्लृप्तये।
स्वरबीजेषु नामान्तैर्विभक्तान्यङ्गनामभिः ॥९
युक्तानि हृदयादीनि द्वादशान्तानि पञ्चतः।
आरभ्य कल्पयित्वा तु जपेत् सिद्ध्यनुरूपतः ॥१०

हृदय आदि अंगों की कल्पना करने के लिये व्यञ्जनों का यही क्रम है। देवता के मन्त्रों के स्वर-बीजों के बाद देवता का नाम लेना चाहिये। फिर अंग-संबंधी नामों के द्वारा पृथक्-पृथक् वाक्यरचना करके उससे युक्त हृदय आदि बारह अंगों की कल्पना करनी चाहिये। पाँच से लेकर बारह अंगों तक के न्यास-वाक्य की कल्पना करके सिद्धि के अनुरूप उनका जप करना चाहिये। ९-१०।

हृदयं च शिरश्चूडा कवचं नेत्रमस्त्रकम् ।
षडङ्गानि तु वीजानां मूलस्य द्वादशाङ्गकम् ॥११
हृच्छिरश्च शिखा चैव[1] हस्तौ नेत्रे तथोदरम् ।
पृष्ठवाहूरुजानूंश्च जङ्घेपादौ क्रमान्न्यसेत् ॥१२

हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—ये छः अंग हैं। इन अंगों में मूल-मंत्र के बीजों का न्यास करना चाहिये। बारह अंग ये हैं—हृदय, सिर, शिखा, हाथ, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, जानु, जंघा और पैर। इनमें क्रमशः न्यास करना चाहिये।११-१२।

कं ठं शं पं वैनतेयः खं ठं फं षं गदानुजम् ।
गं डं वं सं पुष्टिमन्त्रोघं टं भं हं श्रियै नमः ।१३
चं णं मं क्षं पाञ्चजन्यं छं तं पं कौस्तुभाय च ।
जं खं वं सुदर्शनाय श्रीवत्साय सं वं दं च लम् ।१४
ॐ वं पं वनमालायै पद्मनाभाय[2] वै नमः ।
निर्बीजपदमन्त्राणां पदैरङ्गानि कल्पयेत् ।१५

"कं टं शं पं वैनतेयाय नमः"—यह गरुड़ का बीजमन्त्र है। "खं ठं फं षं गदायै नमः"—यह गदा-मन्त्र है। "गं डं वं सं पुष्ट्यै नमः"—यह पुष्टि का बीजमन्त्र है। "घं टं भं हं श्रियै नमः"—यह श्रीमन्त्र है। "चं णं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः"—यह पाञ्चजन्य का मन्त्र है। "छं तं पं कौस्तुभाय नमः"—यह कौस्तुभ का मन्त्र है। "जं खं वं सुदर्शनाय नमः"—यह सुदर्शन—मन्त्र है। "सं वं दं लं श्रीवत्साय नमः"—यह श्रीवत्स-मन्त्र है। "ॐ वं वनमालायै नमः"—यह वनमाला का मन्त्र है। "ॐ पं पद्मनाभाय नमः"—यह पद्म का अथवा पद्मनाभ का मन्त्र है। बीज-रहित पद वाले मन्त्रों का अंगन्यास उनके पदों द्वारा ही करना चाहिये।१३-१५।

जात्यन्तैर्नामसंयुक्तैर्हृदयादीनि पञ्चधा ।
प्रणवं हृदयादीनि ततः प्रोक्तानि पञ्चधा ।१६
प्रणवं हृदयं पूर्वं परायेति शिरः शिखा ।
नाम्नात्मना तु कवचमस्त्रं[3] नामान्तकं भवेत् ।१७
ॐ परास्त्रादिश्च नामात्मा चतुर्थ्यन्तो नमोऽन्तकः ।
एकव्यूहादिषड्विंशव्यूहान्तः[4] स्यात्समो मनुः ।१८

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. वर्म । २ ख. यमुनाभाय । घ. महानन्ताय । ३ क. ङ. च. °वचं अं आं नामा° । ४ घ.° हात्तस्यात्मनो म° ।

जात्यन्त नामसंयुक्त पदों द्वारा हृदय आदि पाँच अंगों में पाँच प्रकार से न्यास करना चाहिये। (जाति–हृदय की 'नमः', सिर की 'स्वाहा', शिखा की 'वषट्', कवच की 'हुम्' नेत्र की 'वौषट्' तथा अस्त्र की 'फट्' जाति है।) पहले प्रणव का उच्चारण, फिर हृदय आदि पूर्वोक्त पाँच अंगों के नाम पाँच प्रकार से कहे गये हैं। (यथा—ॐ हृदयाय नमः" इत्यादि।) पहले प्रणव और तब हृदय-मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। ("ॐ हृदयाय नमः'—कहकर हृदय का स्पर्श करना चाहिये।) तदनन्तर "ॐ पराय शिरसे स्वाहा" कह कर सिर का स्पर्श करना चाहिये। तब "ॐ वासुदेवाय शिखायै वषट्" कह कर शिखा का स्पर्श करना चाहिये। "ॐ आत्मने कवचाय हुम्"—इस मन्त्र से कवच-न्यास करना चाहिये। अस्त्र-न्यास करने के लिये भगवान् का नाम कह कर इस तरह मन्त्र बोलना चाहिये—"ॐ वासुदेवाय अस्त्राय फट्"। आदि में "ॐ" आदि नामात्मक पद तथा अन्त में "नमः" पद हों एवं पूज्य के नाम में चतुर्थी विभक्ति लगानी चाहिये। एक व्यूह (भगवान् का वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध अदि रूपों में आविर्भाव।) से लेकर छब्बीस व्यूह तक के यह समान मन्त्र है।१६-१८।

कनिष्ठादिकराग्रेषु प्रकृतिं देहकेऽर्चयेत्।
पराय पुरुषात्मा स्यात् प्रकृत्यात्मा द्विरूपकः।१९

अपने शरीर में प्रकृति की पूजा कनिष्ठा से लेकर सभी अँगुलियों में हाथ के अग्रभाग में न्यास करके करना चाहिये। "पराय" पद से परमात्मा पुरुष कहा जाता है। वही परमात्मा प्रकृति और पुरुष-इन दो रूपों में अभिव्यक्त होता है।१९

ॐ परायाग्न्यात्मने च वस्वर्कौ[1] वह्निरूपकः।
अग्निं त्रिमूर्तौ विन्यस्य व्यापकं करदेहयोः।२०

"ॐ परायाग्न्यात्मने नमः"—यह व्यापक-मन्त्र है। वसु, अर्क (सूर्य) और अग्नि ये तीन त्रिव्यूहात्मक मूर्तियाँ हैं। इन तीनों में अग्नि का विधिवत् न्यास करके हाथ और सम्पूर्ण शरीर में व्यापक-न्यास करना चाहिये।२०

वाय्वर्कौ करशाखासु सव्येतरकरद्वये।
हृदि मूर्तौ तनावेष त्रिव्यूहे तुर्यरूपके।२१

---

१ क. घ. ङ. च. वाश्वर्कौ।

वायु और सूर्य का क्रमशः बायें और दायें–दोनों हाथों की अँगुलियों में न्यास करना चाहिये। हृदय में मूर्तिमान् अग्नि का न्यास करना चाहिये। यह त्रिव्यूहात्मक पूजा का विधान है। अब चतुर्व्यूहात्मक पूजा का वर्णन करते हैं।२१

ऋग्वेदं व्यापकं हस्ते अङ्गुलीषु यजुर्न्यसेत्[1]।
तलद्वयेऽथर्वरूपं शिरोहृच्चरणान्तगम्[2]॥२२

सम्पूर्ण शरीर और हाथ में ऋग्वेद का, अंगुलियों में यजुर्वेद का, हथेलियों में अथर्ववेद का तथा सिर और हृदय में अंतिम वेद सामवेद का व्यापक-न्यास करना चाहिये।२२

आकाशं व्यापकं न्यस्य करे देहे तु पूर्ववत्।
अङ्गुलीषु च वाय्वादि शिरोहृद्गुह्यपादके॥२३

पञ्चव्यूह-पूजा में पहले की तरह सम्पूर्ण शरीर और हाथ में आकाश का व्यापक न्यास करना चाहिये। अँगुलियों में भी आकाश का न्यास करना चाहिये। फिर क्रम से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का सिर, हृदय, गुह्य और पैर में न्यास करना चाहिये।२३

वायुर्ज्योतिर्जलं पृथ्वी पञ्चव्यूहः समीरितः।
मनः श्रोत्रं त्वग् दृग् जिह्वा घ्राणं षड्व्यूह ईरितः॥२४

वायु, ज्योति, अग्नि, पृथ्वी और आकाश—ये पञ्चव्यूह कहलाते हैं। मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र जिह्वा और नासिका—ये षड्व्यूह कहे गये हैं।

व्यापकं मानसं न्यस्य ततोऽङ्गुष्ठादितः क्रमात्।
मूर्धास्यहृद्गुह्यपत्सु कथितः करणात्मकः[3]॥२५

मन का व्यापक-न्यास करने के बाद शेष पाँच (इन्द्रियों का) अङ्गुष्ठ आदि के क्रम से (पाँचो अँगुलियों में तथा) सिर, मुख, हृदय, गुह्य और चरण—इन पाँच अंगों में भी न्यास करना चाहिये। यह करणात्मक (इन्द्रियों का) न्यास कहा गया है।२५

आदिमूर्तिस्तु सर्वत्र व्यापको जीवसञ्ज्ञितः।
भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं च सप्तधा॥२६

---

१ ङ. °त्। स्तनद्वये°। २ ख. ग. घ. च. शिरो हृच्चरणान्तकः।
३ ख. करणार्थकः। घ. करुणात्मकः।

जीवसञ्ज्ञक आदिमूर्ति सर्वत्र व्यापक है। भूः, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यम्—इन सात (लोक-नामात्मक—महाव्याहृतियों) को सप्तव्यूह कहते हैं।२३

करे देहे न्यसेदाद्यमङ्गुष्ठादिक्रमेण तु।
तलसंस्थः सप्तमश्च लोकात्मा[1] देहके क्रमात्॥२७

(पूर्वोक्त इन सात लोकों में) प्रथम लोक 'भूः' का न्यास हाथ और सम्पूर्ण शरीर में करना चाहिये। शेष में भुवः, स्वः, महः, जनः और तपः—इन लोकों का न्यास अङ्गुष्ठ आदि के क्रम से पाँचों अँगुलियों में करना चाहिये। सातवें लोक 'सत्य' का न्यास, क्रम से हथेली में करना चाहिये। यह लोकात्मक सप्तव्यूह है जिसका सम्पूर्ण शरीर में न्यास किया जाता है।२७

देवः[2] शिरोललाटास्य हृद्गुह्याङ्घ्रिषु संस्थितः।
अग्निष्टोमस्तथोक्थस्तु षोडशी वाजपेयकः॥२८
[3]अतिरात्राऽप्तोर्यामश्च यज्ञात्मा सप्तरूपकः।
धीरहं मनः शब्दश्च स्पर्शरूपरसास्ततः॥२९
गन्धो बुद्धिर्व्यापकं च करे देहे न्यसेत्क्रमात्।
न्यसेदङ्घ्रौ च तलयोः के ललाटे मुखे हृदि॥३०
नाभौ गुह्ये च पादे च अष्टव्यूहः पुमान्स्मृतः।
जीवो बुद्धिरहङ्कारो मनः शब्दो गुणोऽनिलः॥३१
रूपं रसो नवात्मायं जीव अङ्गुष्ठकद्वये।
तर्जन्यादिक्रमाच्छेषं यावद्वामप्रदेशिनीम्॥३२
देहे शिरोललाटास्य हृन्नाभिगुह्यजानुषु।
पादयोश्च दशात्मायमिन्द्रो व्यापी समास्थितः॥३३

अब सप्त यज्ञ-स्वरूप सप्तव्यूह का वर्णन किया जाता है—परमात्मा भगवान् विष्णुदेव (सम्पूर्ण शरीर में तथा विशेष रूप से) सिर, ललाट, मुख, हृदय, गुह्य और चरण में स्थित हैं। इन अंगों में भगवान् का न्यास करना चाहिये। अग्निष्टोम, उक्यथ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम तथा यज्ञात्मा—इन सात को यज्ञमय सप्तव्यूह कहा जाता है। बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये आठ तत्त्व अष्टव्यूह हैं। बुद्धि का व्यापक-

---

१ घ. लोकेशो। २ ख. घ. ङ. च. देहः। ३ घ. °रात्राप्तोर्यामं च य°।

न्यास हाथ और शरीर में करना चाहिये। तदनन्तर उपर्युक्त आठों तत्त्वों का क्रम से पैर के तलवों, मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्यप्रदेश और पैर में न्यास करना चाहिये। इनको अष्टव्यूहात्मक पुरुष रूप में याद किया जाता है। जीव, बुद्धि, अहङ्कार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इनको नवव्यूह कहते हैं। जीव का न्यास हाथ के दोनों अँगूठों में करना चाहिये। शेष आठ तत्त्वों का न्यास, क्रम से दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से लेकर बायें हाथ की तर्जनी (मूल-प्रदेशिनी) तक आठ अँगुलियों में करना चाहिये। सम्पूर्ण शरीर, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और पाद—इन नौ स्थानों में पूर्वोक्त नौ तत्त्वों का न्यास करके इन्द्र का व्यापक-न्यास किया जाय तो यह दशव्यूहात्मक न्यास हो जाता है।२८-३३।

अङ्गुष्ठकद्वये वह्नौ तर्जन्यादौ परेषु च।
शिरोललाटवक्त्रेषु हृन्नाभिगुह्यजानुषु ॥३४
पादयोरेकादशात्मा मनः श्रोत्रं त्वगेव च।
चक्षुर्जिह्वा तथा घ्राणं वाक् पाण्यङ्घ्री[1] च पायु च ॥३५
उपस्थं मनसा ध्यायञ्श्रोत्रमङ्गुष्ठकद्वयम्।
तर्जन्यादि क्रमादष्टावतिरिक्तं तलद्वये ॥३६
उत्तमाङ्ग ललाटास्यहृन्नाभ्यङ्घ्रिषु गुह्यके।
ऊरुयुग्मे तथा जङ्घागुल्फपादेषु च क्रमात् ॥३७
विष्णुर्मधुहरश्चैव त्रिविक्रमकवामनौ।
श्रीधरोऽथ हृषीकेशः पद्मनाभस्तथैव च ॥३८
दामोदरः केशवश्च नारायण इतः परः।
माधवश्चाथ गोविन्दो विष्णुर्वै[2] व्यापकं न्यसेत् ॥३९
अङ्गुष्ठादौ तले चैव[3] पादे जानुनि वै कटौ।
[4]शिरःशिखोरःकट्यास्यजानुपादादिषु न्यसेत् ॥४०

दोनों अँगूठों में, दोनों हथेलियों में, तर्जनी आदि आठ अँगुलियों में, सिर, मस्तक, मुख, हृदय, नाभि; गुह्य (उपस्थ और पायु) दोनों जानु और दोनों पाद—इन ग्यारह अंगों में ग्यारह इन्द्रियों का न्यास 'एकादशव्यूह-न्यास' कहा जाता है। ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं—मन, श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा,

१ क. ङ. च. °ण्यङ्घ्रिश्च पावकः। २ घ. विष्णुं वै। ३ घ. द्वौ च। ४ घ. °शिखरकट्यां च जानु°।

नासिका, वाणी, हाथ, पैर, गुदा और जननेन्द्रिय। मन का ध्यान (व्यापक न्यास) करते हुए हाथ के दोनों अँगूठों में श्रवणेन्द्रिय का न्यास करना चाहिये। फिर त्वचा आदि आठ तत्त्वों का तर्जनी आदि आठ अँगुलियों में न्यास करना चाहिये। शेष ग्यारहें तत्त्व उपस्थ का दोनों हथेलियों में न्यास करना चाहिये। मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, चरण, गुह्य, ऊरुद्वय, जंघा, गुल्फ और पैर—इन ग्यारह अंगों में भी क्रम से पूर्वोक्त ग्यारह तत्त्वों का न्यास करना चाहिये। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण, माधव और गोविन्द—यह द्वादशात्मक व्यूह है। इनमें से विष्णु का व्यापक न्यास करना चाहिये। फिर शेष भगवन्नामों का अङ्गुष्ठा आदि दस अँगुलियों और दोनों हथेलियों में न्यास करना चाहिये। तदनन्तर पादतल, दक्षिण पाद, दक्षिण जानु, दक्षिण कटि, सिर, शिखा, वक्ष, वाम कटि, मुख, वाम जानु और वाम पादादि में भी न्यास करना चाहिये।३४-४०।

द्वादशात्मा पञ्चविंश षड्विंशव्यूहकस्तथा।
पुरुषो धीरहङ्कारो मनश्चित्तं च शब्दकः ॥४१
तथा स्पर्शो रसो रूपं गन्धः श्रोत्रं त्वचस्तथा।
चक्षुर्जिह्वा नासिका च वाक्पाण्यङ्घ्री च पायवः ॥४२
उपस्थो भूर्जलं तेजो वायुराकाशमेव च।
पुरुषं व्यापकं न्यस्य अङ्गुष्ठादौ दश न्यसेत् ॥४३
शेषान्हस्ततले न्यस्य शिरस्यथ ललाटके।
मुखहृन्नाभिगुह्योरुजान्वङ्घ्रिकरणोद्गते ॥४४
पादे जान्वोरुपस्थे च हृदये मूर्ध्नि च क्रमात्।
परश्च पुरुषात्मादौ षड्विंशे पूर्ववत् परम् ॥४५

यह द्वादशात्मक व्यूह हुआ। अब पञ्चविंश-व्यूह तथा षड्विंश-व्यूह का वर्णन किया जा रहा है। पुरुष, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पचीस तत्त्व हैं। इनमें से पुरुष का सर्वांग में व्यापक न्यास करके शेष दस का अंगुल इत्यादि में न्यास करना चाहिये। शेष (चौदह) का निम्न (चौदह) स्थानों में क्रम से न्यास करना चाहिये—करतल, सिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु, जानु, पैर,

उपस्थ, हृदय और मूर्धा। इसी पञ्चविंश व्यूह में सर्वप्रथम परम पुरुष परमात्मा का पूर्ववत् व्यापक-न्यास कर देने से षड्विंश-व्यूहात्मक न्यास हो जाता है ।४१-४५।

सञ्चिन्त्य मण्डलेऽब्जे[1] तु प्रकृतिं पूजयेद् बुधः ।
पूर्वयाम्याप्यसौमीषु[2] हृदयादीनि विन्यसेत् ।।४६
अस्त्रमग्न्यादिपत्रेषु वैनतेयादि पूर्ववत् ।
दिक्पालांश्च विधिस्तुल्यस्त्रिव्यूहेऽग्निश्च मध्यतः ।।४७
पूर्वादिदिग्दलावासैः[3] पाद्यादिभिरलङ्कृतः ।
कर्णिकायां नाभसश्च मानसः कर्णिकास्थितः ।।४८
विश्वरूपं सर्वसिद्ध्यै[4] यजेद्राज्यजयाय च ।
सर्वव्यूहैः समायुक्तमङ्गैरपि च पञ्चभिः ।।४९
गरुडाद्यैस्तथेन्द्राद्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
विष्वक्सेनं यजेन्नाम्ना[5] रौं बीजं नामसंयुतम् ।।५०

विद्वान् को अष्ट-दल कमल-चक्र में प्रकृति का करके उसकी पूजा चिन्तन करनी चाहिये। उस पद्म-चक्र के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दलों में हृदय आदि अंगोंका न्यास करना चाहिये। अग्निकोण आदि दलों में पूर्ववत् अस्त्र और वैनतेय (गरुड़) आदि की स्थापना करनी चाहिये । इन्द्र आदि दिक्पालों का पूर्व आदि दिशाओं में चिन्तन करना चाहिये। इन सब की पूजा-विधि समान है। (सूर्य, सोम और अग्नि—इस) त्रिव्यूह में अग्नि का मध्य में स्थान है । पूर्व आदि दिशाओं के दलों में निवास करने वाले देवताओं के साथ पाद्य-जल आदि से विभूषित कमल की कर्णिका में नाभस (आकाश की तरह व्यापक आत्मा) तथा मानस (अन्तरात्मा) स्थित है । सभी प्रकार की सिद्धियों के लिए तथा राज्य पर विजय पाने के लिए भगवान् के विश्वरूप का यजन करना चाहिये। सभी व्यूहों, हृदय आदि पाँचों अंगों, गरुड आदि तथा इन्द्र आदि दिक्पालों के साथ परमात्मा की पूजा का विधान है। इस तरह पूजा करने से साधक सभी कामनाओं को प्राप्त कर सकता है। अन्त में विष्वक्सेन की पूजा नाम-मात्र से करनी चाहिए। नाम के साथ 'रौं' बीजाक्षर लगाकर "रौं विष्वक्सेनाय नमः" ऐसा मन्त्र बोलना चाहिए। ४६-५०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिमन्त्रलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५

---

१ क. ङ. च. °ण्डले द्वे तु। घ. °ण्डलैके तु। २ क. ङ. च. °सौम्येषु। ३ ख. ग. °वासैर्वाद्या। घ. °वासी राज्यादि° ४ घ. सर्वस्थित्यै। ख. ग. °द्ध्यै जपेद्रा°। ५ क. घ. ङ च. °म्ना वै बीजं व्योमसंस्थितम्।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

मुद्रालक्षणानि

नारद उवाच—

मुद्राणां लक्षणं वक्ष्ये [1]सान्निध्यादिप्रकारकम् ।
अञ्जलिः [2]प्रथमा मुद्रा वन्दनी [3]हृदयानुगा ॥१

नारद जी बोले—हे मुनियो ! अब मैं मुद्राओं का लक्षण कहूँगा। सान्निध्य आदि, मुद्राओं के भेद हैं। पहली मुद्रा अञ्जलि है, दूसरी वन्दनी है तथा तीसरी हृदयानुगा है।१

ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिदक्षिणाङ्गुष्ठवन्धनः[4]।
सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यस्य चोर्ध्वं[5] प्रकीर्तितः[6] ।२

दोनों हाथों के अँगूठे ऊपर की ओर उठे रहें तथा बायें हाथ की मुट्ठी से दाहिने हाथ के अँगूठे को बाँध लें और बायें हाथ के अँगूठे को (दायें हाथ के अँगूठे के साथ) ऊपर की ओर उठाये ही रहें तो यह हृदयानुगा मुद्रा है। (इसी मुद्रा को अन्य ग्रन्थों में संरोधिनी या निष्ठुरा नाम दिया गया है।)

---

१ (क) 'आदि' पद से अन्य ग्रन्थों में वर्णित 'आवाहनी' आदि मुद्राओं को समझना चाहिये । (ख) दोनों हाथों के अँगूठों को ऊपर करके फिर मुट्ठी बाँधकर दोनों मुट्ठियों को परस्पर सटाकर नमस्कार करने को सान्निध्य या सन्निधापिनी मुद्रा कहते हैं।

२ अञ्जलि ही अञ्जलिमुद्रा है—'अञ्जलयञ्जलिमुद्रा स्यात्'—मन्त्रमहार्णव ।

३ वन्दनी—हाथ जोड़कर नमस्कार करना वन्दनी मुद्रा है—

"बद्ध्वाञ्जलिं पङ्कजकोशकल्पं
यद्दक्षिणज्येष्ठिकया तु वामाम् ।
ज्येष्ठां समाक्रम्य तु वन्दनीयं
मुद्रा नमस्कारविधौ प्रयोज्या ॥"

—ईशानशिवगुरुदेवपद्धति

४ क. ङ. च. °न्वनम् । सन्यस्य । ५ घ. चोर्ध्वे । ६ क. ङ. प्रकीर्तितम् ।

तिस्रः साधारणा व्यूहे अथासाधारणा इमाः ।
कनिष्ठादिविमोकेन अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम् ॥३

(उपर्युक्त) तीन साधारण मुद्रायें हैं । अब आगे ये असाधारण-(-विशेष-) मुद्रायें कही जा रही हैं । (दोनों हाथों की अँगुलियों को नवाने के बाद) कनिष्ठा आदि अँगुलियों को क्रम से मुक्त करने से आठ मुद्रायें बनती हैं ।३

([1]अष्टानां पूर्ववीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत् ।)
अङ्गुष्ठेन कनिष्ठान्तं नामयित्वाङ्गुलित्रयम् ॥४
ऊर्ध्वं कृत्वा सम्मुखं च वीजाय नवमाय वै ।
वामहस्तमथोत्तानं कृत्वोर्ध्वं[2] नामयेच्छनैः ॥५
वराहस्य स्मृता मुद्रा अङ्गानां च क्रमादिमाः ।
एकैकां मोचयेन्मुद्रां वाममुष्टौ तथाङ्गुलीम् ॥६
आकुञ्चयेत्पूर्वमुक्तां[3] दक्षिणेऽप्येवमेव च ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिर्मुद्रासिद्धिस्ततो भवेत् ॥७

'अ क च ट त प य श' —इन आठ वर्गों के पूर्व बीज 'अं कं चं टं' आदि को क्रम से सूचित करने वाली पूर्वोक्त आठ मुद्रायें हैं—ऐसा निश्चय करना चाहिए । अँगूठे से लेकर कनिष्ठा तक के बीच की अँगुलियों को नवाकर हाथ को ऊपर उठाकर सम्मुख करने से जो नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम बीज 'क्षं' के लिए है । बायें हाथ को (दाहिने हाथ के) ऊपर उत्तान करके धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकाना चाहिए । इसको वराह की मुद्रा माना गया है । ये क्रम से अंगों की मुद्रायें हैं । बाईं मुट्ठी में बँधी हुई एक-एक अंगुली को क्रम से मुक्त करना चाहिए (और) पहले से मुक्त हुई अँगुली को फिर सिकोड़ लेना चाहिए । इसी तरह से दाहिने हाथ में भी करना चाहिये । बायें हाथ के अँगूठे को ऊपर की ओर उठाये रखना चाहिये । ऐसा करने से मुद्रा सिद्ध होती है ।४-७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मुद्रालक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६

---

१ अष्टानां.........अवधारयेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ घ. कृत्वाऽर्वं ।
३ घ. °मुद्रां° द ।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शिष्येभ्यो दीक्षादानविधिः

नारद उवाच—

वक्ष्ये दीक्षां सर्वदा च मण्डलेऽब्जे हरिं यजेत् ।
दशम्यामुपसंहृत्य[1] यागद्रव्यं समस्तकम् ॥१
विन्यस्य नारसिंहेन सम्मन्त्र्य शतवारकम् ।
सर्षपांस्तु फडन्तेन रक्षोघ्नान्सर्वतः क्षिपेत् ॥२

नारद बोले—अब मैं सब कुछ देने वाली दीक्षा का वर्णन करूँगा। कमलाकार मण्डल में भगवान् श्रीहरि का यजन करना चाहिए। दशमी तिथि को यज्ञसंबंधी सारी वस्तुओं का संग्रह करके रख लेना चाहिए। फिर नरसिंह बीज-मन्त्र 'क्ष्रौं' से उनको सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिए। इस मन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाकर (बोलते हुए) राक्षसों का नाश करने वाले सरसों को सब ओर छींटना चाहिये।१-२।

शक्तिं सर्वात्मिकां तत्र न्यसेत्प्रासादरूपिणीम् ।
सर्वौषधीः समाहृत्य विकिरानभिमन्त्रयेत् ॥३
शतवारं शुभे पात्रे वासुदेवेन साधकः ।
संसाध्य पञ्चगव्यं तु पञ्चभिर्मूलमूर्तिभिः ॥४
नारायणान्तैः सम्प्रोक्ष्य कुशाग्रैस्तेन तां भुवम् ।
विकिरान्वासुदेवेन क्षिपेदुत्तानपाणिना ॥५

तदनन्तर वहाँ सर्वस्वरूपवाली प्रासादरूपिणी शक्ति का न्यास करना चाहिये। सभी ओषधियों को इकट्ठा करके बिखेरने के काम में आने वाली सरसों आदि वस्तुओं को पवित्र पात्र में रखकर साधक को वासुदेव-मन्त्र से उनको सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर वासुदेव से लेकर नारायण पर्यन्त पूर्वोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण) के मूलमन्त्रों से पञ्चगव्य तैयार करना चाहिये। फिर कुशाग्र से पञ्चगव्य पर जल छिड़क कर उस भूमि का प्रोक्षण करना चाहिये। फिर हाथ उत्तान करके वासुदेव-मन्त्र से बिखेरी जाने वाली वस्तुओं को बिखेरना चाहिये। ३-५।

---

१ ख. ग. सस्कृत्य ।

त्रिधा पूर्वामुखस्तिष्ठन् ध्यायन् विष्णुं तदा हृदि।
वर्धन्या सहिते कुम्भे साङ्गं विष्णुं प्रपूजयेत् ॥६

इसके बाद पूरब की ओर मुँह करके तीन बार हृदय में भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए वर्धनी युक्त कलश पर पार्षद-सहित भगवान् विष्णु की विधि-पूर्वक पूजा करनी चाहिये ।६

शतवारं मन्त्रयित्वा त्वस्त्रेणैव च वर्धनीम् ।
अच्छिन्नधारया सिञ्चन्नैशान्यन्तं[1] नयेच्च ताम् ॥७

सौ बार अस्त्र-मन्त्र पढ़कर वर्धनी को जल की अविच्छिन्न धार से सींचे और उसको ईशान कोण में स्थापित करे ।७

कलशं पृष्ठतो नीत्वा स्थापयेद्विकिरोपरि ।
संहृत्य विकिरान्दर्भैः कुम्भेशं कर्करीं यजेत् ॥८

कलश को पीछे की ओर ले जाकर विकिरों के ऊपर स्थापित कर दे। कुशा से विकिरों को इकट्ठा करके कुम्भेश और कर्करी की पूजा करनी चाहिये ।८

सवस्त्रे[2] पञ्चरत्नाढ्ये स्थण्डिले पूजयेद्धरिम् ।
अग्नावपि समभ्यर्च्य[3] मन्त्रैः सन्तर्प्य पूर्ववत् ॥९

वस्त्र और पञ्चरत्नों से भूषित भूमि पर विष्णु का पूजन करके अग्नि में भी पूर्ववत् मन्त्रों द्वारा अर्चना करके तर्पण करना चाहिये ।९

प्रक्षाल्य पुण्डरीकेण विलिप्यान्तः सुगन्धिना ।
उखामाज्येन सम्पूर्य गोक्षीरेण तु साधकः ॥१०
आलोड्य वासुदेवेन[4] ततः सङ्कर्षणेन च ।
तण्डुलानाज्यसंसृष्टान् क्षिपेत् क्षीरे सुसंस्कृते ॥११

पुण्डरीक-मन्त्र—"ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

(इस मंत्र) से बटलोई को धोकर उसको भीतर से सुगन्धयुक्त घी से पोंछ देना चाहिये। इसके बाद साधक उसमें गाय का दूध भर के वासुदेव-मन्त्र से उसको आलोडित (कलछुली से चलाना चाहिये) करके इसके बाद संकर्षण-मन्त्र पढ़कर उसमें घी मिले हुए चावल को छोड़ देना चाहिये ।१०-११।

---

१ ख. घ. °श्चन्नीशानान्तं । २ ख. घ. च. सवस्त्रं पञ्चरत्नाढ्यं । ३ घ. मन्त्रान् सञ्जप्य पू । ४ क. ख. घ. च. आलोक्य ।

प्रद्युम्नेन समालोड्य दर्व्या सङ्घट्टयेच्छनैः ।
पक्वमुत्तारयेत्पश्चादनिरुद्धेन देशिकः ॥१२

प्रद्युम्न-मन्त्र पढ़कर कलछुली से उसका आलोडन करके उसको धीरे-धीरे चलाना चाहिये। खीर के पक जाने पर आचार्य अनिरुद्ध-मन्त्र पढ़कर उसे (आग से नीचे) उतार दे ।१२

प्रक्षाल्यालिप्य तत्कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं तु भस्मना ।
नारायणेन पार्श्वेषु चरुमेवं सुसंस्कृतम् ॥१३

उस पर जल छिड़क करके घी से लेप करना चाहिये। फिर नारायण-मन्त्र से (ललाट एवं) पार्श्व-भागों में भस्म से ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाना चाहिये। इस प्रकार से सुसंस्कृत चरु का (चार भाग करना चाहिये) ।१३

भागमेकं तु देवाय कलशाय द्वितीयकम् ।
तृतीयेन तु भागेन प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥१४

चरु के एक भाग को देवताओं को अर्पित करे। दूसरा भाग कलश में छोड़ दे। तीसरे भाग की तीन आहुतियाँ (अग्नि में) छोड़े ।१४

शिष्यैः सह चतुर्थं तु गुरुरद्याद्विशुद्धये ।
नारायणेन सम्मन्त्र्य सप्तधा क्षीरवृक्षजम् ॥१५
([1]दन्तकाष्ठं भक्षयित्वा त्यक्त्वा ज्ञात्वा[2] स्वपातकम् ।)
ऐन्द्राग्न्युत्तरकैशानीमुखः[3] स्नातो ह्यनुत्तमम् ॥१६
शुभं[4] सिद्धमिति ज्ञात्वाचम्य[5] प्राणान्नियम्य च ।
पूजागारं[6] विशेन्मन्त्री प्रार्थ्य[7] विष्णुं प्रदक्षिणम् ॥१७

चरु के चौथे भाग को शिष्यों के साथ गुरु को आत्मशुद्धि के लिए रखना चाहिये। (दूसरे) दिन एकादशी तिथि को प्रातःकाल सात बार नारायण-मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दूधवाले वृक्ष के दातून करके उसे फेंक दे। अपने पापों का स्मरण करते हुए पूर्व, अग्निकोण, उत्तर या ईशान कोण की ओर मुँह करके स्नान करना चाहिये । स्नान से अपने को पवित्र, सिद्ध और उत्तम समझकर आचमन करे और प्राणायाम कर शुद्ध होकर मन्त्रदाता गुरु पूजागृह में जावे और विष्णु की प्रार्थना करके प्रदक्षिणा करे ।१५-१७

---

१ दन्तकाष्ठं...स्वपातकम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ख. ग. ज्ञात्वोप पा°। ३ ख. ग. घ. ङ. च. मुखं पतितमुत्त° । ४ ख. ग. °भं सिद्दशतं हुत्वा° । ५ ख. ग. घ. त्वा आचम्याथ प्रविश्य च । ६ ख. ग. घ. °रं न्यसेन्म°। ७. ख. ग. प्राच्र्य । घ. प्राच्या° ।

संसारार्णवमग्नानां पशूनां पाशमुक्तये ।
त्वमेव शरणं देव! सदा त्वं भक्तवत्सलः[1] ॥१८

प्रार्थना मन्त्र—संसार-सागर में डूबने वाले जीवों को मायाबन्धन से छुड़ाने वाले केवल आप ही हैं। हे देव ! आप सदा भक्तों पर वात्सल्यभाव रखते हैं। १८

देवदेवानुजानीहि प्राकृतैः पाशबन्धनैः ।
पाशितान् मोचयिष्यामि त्वत्प्रसादात्पशूनिमान् ॥१९

देवाधिदेव ! मुझे अनुमति दीजिये, मैं आपकी कृपा से नैसर्गिक माया-बन्धनों से बँधे हुए इन जीवों को मुक्त करूँगा।१९

इति विज्ञाप्य देवेशं सम्प्रविश्य पशूंस्ततः ।
धारणाभिस्तु संशोध्य पूर्ववज्ज्वलनादिना ॥२०
संस्कृत्य, मूर्त्या संयोज्य नेत्रे बद्ध्वा प्रदर्शयेत् ।
पुष्पपूर्णाञ्जलींस्तत्र क्षिपेत्तन्नाम योजयेत् ॥२१
अमन्त्रमर्चनं तत्र पूर्ववत्कारयेत् क्रमात् ।
यस्यां मूर्तौ पतेत्पुष्पं तस्य तन्नाम निर्दिशेत् ॥२२

इस प्रकार देवेश्वर श्रीहरि से प्रार्थना करके पूजागृह में प्रवेश करके फिर शिष्यभूत समस्त पशुओं को अग्नि आदि की धारणाओं से सम्यक् रूप से शोधन करके संस्कार करना चाहिये। फिर शिष्यों के वासुदेवादि मूर्तियों से संयोग कराके उनके नेत्र बाँधकर उन्हें मूर्तियों की ओर उन्मुख होने के लिए निर्देश करे। शिष्य उन मूर्तियों की ओर पुष्पों की पुष्पाञ्जलि फेंकें। तदनुसार मूर्तियों के साथ शिष्यों का नाम जोड़ना चाहिये। पहले की भाँति शिष्यों के द्वारा क्रम से मूर्तियों का मन्त्ररहित पूजन करना चाहिये। जिस मूर्ति पर शिष्य की पुष्पाञ्जलि गिरे उस शिष्य का वही नाम रखना चाहिये।२०-२२।

शिखान्तसम्मितं[2] सूत्रं पादाङ्गुष्ठादि[3] षड्गुणम् ।
कन्यया[4] कर्तितं रक्तं पुनस्तत् त्रिगुणीकृतम् ॥ २३
यस्यां संलीयते विश्वं यतो विश्वं प्रसूयते ।
प्रकृतिं प्रक्रियाभेदैः संस्थितां तत्र चिन्तयेत् ॥२४
तेन प्राकृतिकान् पाशान् ग्रथित्वा तत्त्वसङ्ख्यया ।
कृत्वा शरावे तत्सूत्रं कुण्डपार्श्वे निधाय तु ॥२५

१ क. ख. ग. घ. भक्तवत्सल। २ ख. ग. °खानुसं°। ३ ख. ग. °ष्ठात्रिष°। ४ ख. ग. घ. कन्यासुक°।

इसके अनन्तर कन्या के हाथ का कता हुआ लालरंग का सूत लेकर उसे छः गुना बट देना चाहिये। उस छः गुने सूत की लम्बाई शिष्य के अँगूठे से लेकर चोटी तक होनी चाहिये। फिर उसको तिगुना कर देना चाहिये। उस त्रिगुणित सूत्र में प्रक्रिया-भेद से स्थित उस प्रकृति देवी का चिन्तन करना चाहिये जिसमें सारा विश्व लीन हो जाता है और जिससे सारा विश्व उत्पन्न होता है। उस सूत्र में प्राकृतिक पाशों को तत्त्व की संख्या के अनुसार ग्रथित करे अर्थात् २४ गाँठें लगाये। उनको प्राकृतिक पाशों का प्रतीक समझना चाहिये। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूत को कसोरे में रखकर कुण्ड के पास स्थापित कर देना चाहिये।२३-२५।

ततस्तत्त्वानि सर्वाणि ध्यात्वा शिष्यतनौ न्यसेत्।
सृष्टिक्रमात् प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि देशिकः ॥२६
त्रेधा वा पञ्चधा वा स्याद् दशद्वादशधापि च।
दातव्यः सर्वभेदेन ग्रथितस्तत्त्वचिन्तकैः ॥२७

तत्पश्चात् सब तत्त्वों का ध्यान करता हुआ गुरु सृष्टिक्रम के अनुसार प्रकृति-तत्त्व से प्रारम्भ करके पृथ्वीतत्त्व तक शिष्य के शरीर पर न्यास करे। २६ तत्त्वचिन्तक यह क्रिया तीन, पाँच, दस या बारह बार करे और साथ-साथ प्रत्येक तत्त्व के अनुसार सूत में गाँठें भी देता जाय।२६-२७।

अङ्गैः पञ्चभिरस्त्रान्तं निखिलं प्रकृतिक्रमात्।
तन्मात्रात्मनि संहृत्य मायासूत्रे पशोस्तनौ ॥२८
प्रकृतिर्लिङ्गशक्तिश्च कर्ता बुद्धिस्तथा मनः।
पञ्चतन्मात्रबुद्ध्याख्यं कर्माख्यं[1] भूतपञ्चकम् ॥२९
ध्यायेच्च द्वादशात्मानं सूत्रे देहे तथेच्छया।
हुत्वा सम्पातविधिना सृष्टेः सृष्टिक्रमेण तु ॥३०
एकैकं शतहोमेन दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः।
शरावे सम्पुटीकृत्य कुम्भेशाय निवेदयेत् ॥३१

प्रकृति-क्रम (अर्थात् कारण-तत्त्व में कार्य-तत्त्व के लय के क्रम) से हृदय से लेकर अस्त्र-पर्यन्त पाँच अंग-सम्बन्धी मन्त्रों को पढ़कर सभी पञ्चभूतों को तन्मात्रास्वरूप में लीन करके उस मायामय सूत्र में और पशु (शिष्य रूपी जीव) के शरीर में भी प्रकृति, लिङ्गशक्ति, कर्ता, बुद्धि और मन—इनका

---

१ क. ङ. च. पञ्चाङ्गं।

उपसंहार करे। फिर पञ्चतन्मात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत--इस द्वादशात्मा का सूत्र और शिष्य के शरीर में भी ध्यान करे। तत्पश्चात् इच्छानुसार सृष्टि की सम्पात-विधि से हवन करके एक-एक को सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति देनी चाहिये। कसोरे में रखे हुए ग्रथित सूत्र को सम्पुट (ढँक) करके उसे कुम्भेश को समर्पित करना चाहिये।२८-३१।

अधिवास्य यथान्यायं भक्तं शिष्यं तु दीक्षयेत्।
करणीं कर्तरीं चापि रजांसि खटिकामपि ॥३२
अन्यदप्युपयोगि स्यात्सर्वं वामगोचरे[1]।
संस्थाप्य मूलमन्त्रेण परामृश्याधिवासयेत् ॥३३

तदनन्तर यथोचित रीति से अधिवासन करके भक्तशिष्य को दीक्षा देनी चाहिये। दीक्षा के समय शिष्य के वाम भाग में करनी, कर्तरी (कतरनी, कैंची), धूल या बालू, खड़िया मिट्टी तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ भी रहनी चाहिये। सम्यक् स्थापना करने के बाद मूलमन्त्र से उनका स्पर्श करके अधिवासित करना चाहिये।३२-३३।

नमो भूतेभ्यश्च बलिः कुशे[2] देयः स्मरन्हरिम्।
मण्डपं भूषयित्वाथ वितानघटलड्डुकैः ॥३४

भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए 'नमो भूतेभ्यः' मन्त्र से कुश पर बलि देना चाहिये। एक सुसज्जित मण्डप बनाकर उसमें चँदोवा टाँग दे और कलश स्थापित कर मोदक आदि भोज्य सामग्री भर दे।३४

मण्डलेऽथ यजेद्विष्णुं ततः सन्तर्प्य पावकम्।
आहूय दीक्षयेच्छिष्यान्बद्धपद्मासनस्थितान् ॥३५

इसके अनन्तर उस मण्डप में विष्णु की प्रतिष्ठा कर पूजा करे और अग्नि में आहुति देकर शिष्यों को बुलावे। शिष्य पद्मासन लगाकर बैठें और गुरु उनको दीक्षा दे।३५

सम्प्रोक्ष्य विष्णुहस्तेन मूर्धानं स्पृश्य वै क्रमात्।
प्रकृत्यादिविकृत्यन्तां साधिभूताधिदेवताम् ॥३६
सृष्टिमाध्यात्मिकीं कृत्वा हृदि तां संहरेत्क्रमात्।
तन्मात्रभूतां सकलां जीवेन समतां गताम् ॥३७

---

१ ख. ग. घ. °द्वायुगो°। २ ख. ग. घ. कुशे शेते।

बारी-बारी से शिष्यों का प्रोक्षण (जल छिड़क) करके विष्णुहस्त से उनके मस्तक का स्पर्श करना चाहिये। प्रकृति से विकृति पर्यन्त अधिभूत और अधिदैवत सहित सारी सृष्टि को आध्यात्मिक करके अर्थात् सबको अपने आत्मा में स्थित मानकर हृदय में क्रमशः उनका संहार करे। इस प्रकार तन्मात्र-स्वरूप सारी सृष्टि जीव के समान हो जाती है।३६-३७।

ततः सम्प्रार्थ्य कुम्भेशं सूत्रं संस्कृत्य देशिकः।
अग्नेः समीपमागत्य पार्श्वे तं सन्निवेश्य तु ॥३८
मूलमन्त्रेण सृष्टीशमाहुतीनां शतेन तम्।
उदासीनमथासाद्य पूर्णाहुत्या च देशिकः ॥३९
शुक्लं रजः समादाय मूलेन शतमन्त्रितम्।
सन्ताड्य हृदयं तेन हुम्फट्कारान्तसंयुतैः ॥४०
वियोगपदसंयुक्तैर्बीजैः पादादिभिः क्रमात्।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि विश्लिष्य[1] जुहुयात्ततः ॥४१

इसके बाद आचार्य कुम्भेश से प्रार्थना करके सूत्र का संस्कार करे, फिर अग्नि के समीप आकर अपने पास शिष्य को बैठाये। फिर मूलमन्त्र से सृष्टि के स्वामी ब्रह्मा के लिये सौ आहुतियाँ दे। इसके बाद उदासीन भाव से स्थित शिष्य के पास आचार्य पूर्णाहुति के साथ आये। श्वेत रेणु लेकर उसे मूल-मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिये। फिर उससे शिष्य के हृदय पर ताडन करना चाहिये। उस समय वियोगवाची क्रियापद से युक्त बीजमन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियों से घटित वाक्य की योजना करके अन्त में 'हुँ फट्' का उच्चारण करना चाहिये। यथा-'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि वियुङ्क्ष्व हुँ फट्। ॐ णं (नमः) भूतानि वियुङ्क्ष्व हुँ फट्' इत्यादि।३८-४१

वह्नावखिलतत्त्वानामालये व्याहृते[2] हरौ।
नीयमानं क्रमात्सर्वं तत्त्वाधारं स्मरेद् बुधः ॥४२
ताडनेन वियोज्यैवमादायापाद्य साम्यताम्[3]।
प्रकृत्याहृत्य जुहुयाद्यथोक्ते जातवेदसि ॥४३

---

१ क. ङ. च. विश्लेष्य। २ क. ङ. च. व्याहृतौ। ३ ख. ग. घ. शाम्यताम्।

सारे प्राकृतिक तत्त्वों का (इस प्रकार अर्थात् कार्यतत्त्वों का कारण-तत्त्वों में) लय करने के बाद उन तत्त्वों का उनके मूल आलय (लय-स्थान) भगवान् श्रीहरि में लय करना चाहिये। विद्वान् पुरुष क्रम से भगवान् श्रीहरि में सभी तत्त्वों का लय हो जाने पर सभी तत्त्वों के अधिष्ठान (भगवान् विष्णु) का स्मरण करे। पूर्वोक्त रीति से ताडन द्वारा भूतों और इन्द्रियों को पृथक् करके शुद्ध हुए शिष्य को अपनावे और प्रकृति से उसकी समता करे। फिर पूर्वोक्त अग्नि में उसके प्राकृतभाव का भी हवन करे।४२-४३।

गर्भाधानं जातकर्म भोगं चैव लयं तथा।
कृत्वाष्टौ तत्र तत्रैव ततः शुद्धं तु होमयेत् ॥४४

तदनन्तर गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लय का अनुष्ठान करके उस कर्म के निमित्त वहाँ आठ बार शुद्धि के लिये होम करना चाहिये।४४

शुद्धं तत्त्वं समुद्धृत्य पूर्णाहुत्या तु देशिकः।
सन्धयेद्धि परे तत्त्वे यावदव्याकृतं क्रमात् ॥४५

इसके बाद आचार्य पूर्णाहुति के द्वारा शुद्ध तत्त्व का उद्धार करके अव्याकृत प्रकृति-पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् का क्रमानुसार परम तत्त्व में लय कर दे।४५

तत्परं ज्ञानयोगेन विलाप्य परमात्मनि।
विमुक्तबन्धनं जीवं परस्मिन्नव्यये पदे ॥४६
निर्वृत्तं परमानन्दे शुद्धे बुद्धे स्मरेद् बुधः।
दद्यात् पूर्णाहुतिं पश्चादेवं दीक्षा समाप्यते ॥४७

उस परम-तत्त्व को ज्ञानयोग के द्वारा परमात्मा में विलीन करके बन्धन से छूटे हुए जीव को अविनाशी परमात्म-पद पर प्रतिष्ठित करे। फिर विद्वान् आचार्य यह स्मरण करे कि शिष्य शुद्ध बुद्ध परमानन्द में कृतकृत्य हो चुका है। बाद को पूर्णाहुति देनी चाहिये। इस प्रकार दीक्षा समाप्त होती है।४६-४७।

प्रयोगमन्त्रान् वक्ष्यामि यैर्दीक्षाहोमसंल्लयः।
ॐ यं भूतानि विशुद्धं[1] हुं फट्
अनेन ताडनं कुर्याद् वियोजनमिह द्वयम्।४८
ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम्
आदानं कृत्वा चानेन प्रकृत्या योजनं शृणु।
ॐ यं भूतानि पुंश्चाहो[2]

१ विशुद्धं.........मनुम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ घ. °पुंश्चाहो। हो°

होममन्त्रं प्रवक्ष्यामि ततः पूर्णाहुतेर्मनुम् ।।४९
ॐ भूतानि संहर स्वाहा
ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट् ।
पूर्णाहुत्यनन्तरं तु तत्त्वे शिष्यं तु सन्धयेत् ।।५०

अब मैं उन प्रयोग-सम्बन्धी मन्त्रों को कहूँगा जिनसे दीक्षा, होम और संल्लय का सम्पादन होता है।

"ॐ यं भूतानि विशुद्धं हुँ फट्" इस मन्त्र से ताडन करना चाहिये। वियोजन के दो मन्त्र हैं। एक पहले कहा जा चुका है। दूसरा इस प्रकार है—

"ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम्"

इस मन्त्र से आपातन (प्रकृति से वियोजन) करके पुनः प्रकृति से योजन करने का मन्त्र यह है—

"ॐ यं भूतानि पुंश्च"।

अब मैं होम करने का मन्त्र कहूँगा और उसके बाद पूर्णाहुति का मन्त्र बतलाऊँगा।

"ॐ भूतानि संहर स्वाहा" यह होम-मन्त्र है।

'ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्" यह पूर्णाहुति का मन्त्र है।

पूर्णाहुति के पश्चात् शिष्य को तत्त्व में संयुक्त करना चाहिये।४८-५०।

एवं तत्त्वानि सर्वाणि क्रमात् संशोधयेद् बुधः ।
नमोन्तेन स्वबीजेन ताडनादिपुरःसरम्[1] ।।५१

इसी प्रकार बुद्धिमान् गुरु सभी तत्त्वों का क्रम से शोधन करे। तत्त्वों के अपने-अपने बीज के अन्त में 'नमः' पद जोड़कर ताडनादिपूर्वक तत्त्वशुद्धि का सम्पादन किया जाना चाहिये।५१

ॐ रां कर्मेन्द्रियाणि, ॐ दें बुद्धीन्द्रियाणि [च] ।
यं बीजेन समानं तु ताडनादिप्रयोगकम् ।।५२

'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि'। 'ॐ दें (नमः) बुद्धीन्द्रियाणि'—इन पदों के अन्त में 'वियुङ्क्ष्व हुँ फट्' जोड़ देना चाहिये। पूर्वोक्त यं बीज की तरह प्रस्तुत मन्त्र से भी ताडन आदि प्रयोग होता है।५२

---

१ °दिप्रयोगकम्।

[1]ॐ सुं तं गन्धतन्मात्रे विम्बं युङ्क्ष्व हुं फट् ।
ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या ॥५३
जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा ।

संयोजन और होम के मन्त्र क्रम से इस प्रकार हैं--

"ॐ सुगन्धतन्मात्रे विम्वं युङ्क्ष्व हुँ फट्", "ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या अं जं हुँ गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा" ।५३

ततः पूर्णाहुतिश्चैवमुत्तरेषु प्रयुज्यते
ॐ रां रसतन्मात्रे । ॐ तें रूपतन्मात्रे ।
ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे । ॐ यं शब्दतन्मात्रे ।
ॐ भं नमः । ॐ मौ अहङ्कारः ॐ नं बुद्धौ । ॐ ॐ ॐ प्रकृतो ।
एकमूर्तावयं प्रोक्तो दीक्षायोगः समासतः ।
एवमेव प्रयोगस्तु नवव्यहादिके स्मृतः ॥५४-५८

तत्त्व-संशोधन के अनंतर 'ॐ रां रसतन्मात्रे', 'ॐ तें रूपतन्मात्रे', 'ॐ भं नमः', 'ॐ मौ अहङ्कारः', 'ॐ नं बुद्धौ', 'ॐ ॐ प्रकृतौ' इन मन्त्रों से पूर्णाहुति प्रदान करे। संक्षेप में एक मूर्ति के विषय में यह दीक्षाविधि कही गयी है । इसी प्रकार नवव्यहादि में भी दीक्षा का प्रयोग शास्त्र-सम्मत कहा गया है । ५४-५८।

दग्ध्वा परस्मिन् सन्दध्यान्निर्वाणे प्रकृतिं नरः ।
शोधयित्वाथ भूतानि कर्माक्षाणि विशोधयेत् ॥५९

जीव (शिष्य) को इस प्रकार शुद्ध कर पर (ब्रह्म) में युक्त करना चाहिये । भूत-शुद्धि के अनन्तर कर्मेन्द्रियों का विशोधन करना चाहिये ।५९

बुद्ध्यक्षाण्यथ तन्मात्रं मनो ज्ञानमहङ्कृतिम् ।
लिङ्गात्मानं विशोध्यान्ते प्रकृतिं शोधयेत्पुनः ॥६०

बुद्धि, इन्द्रियाँ, तन्मात्रा, मन, ज्ञान, अहं तत्त्व का संशोधन करे और पुनः प्रकृति का विशोधन करे—यही उपयुक्त विधि है ।६०

पुरुषं प्राकृतं शुद्धमैश्वरे धाम्नि संस्थितम् ।
स्वगोचरीकृताशेषभोगं मुक्तौ[2] कृतास्पदम् ॥६१
ध्यायेत्पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं[3] त्वधिकारदा ।
अङ्गैराराध्य मन्त्रस्य नीत्वा तत्त्वगणं समम् ॥६२
क्रमादेवं विशोध्यान्ते सर्वसिद्धिसमन्वितम् ।
ध्यायन् पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं साधके स्मृता ॥६३

१ थ. ॐ सुं तन्सात्रे वियुङ्क्ष्व हुं । २क. भुक्त्वा । ३क. ङ, च. 'यं साधके स्मृता

ईश्वरीय प्रकाश में स्थित, शुद्ध, प्राकृत-पुरुष और अपने प्रभाव से सम्पूर्ण भोगों को भोगने वाले, मुक्ति में अपना स्थान बनाने वाले अर्थात् मुक्त ब्रह्म का ध्यान कर पूर्णाहुति दे। ऐसी ही दीक्षा यथार्थ अधिकार को प्रदान करने वाली है। मन्त्र के प्रत्येक अंग से आराधना करके और तत्त्वगणों के साथ क्रमशः सबका संशोधन करके अंत में सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाले पुरुष (ब्रह्म) का ध्यान करते हुए पूर्णाहुति दे। इस विधि से दी हुई दीक्षा इष्ट को सिद्ध करने वाली मानी गई है।६१-६३।

द्रव्यस्य वा न सम्पत्तिरशक्तिर्वात्मनो यदि।
इष्ट्वा देवं यथापूर्वं सर्वोपकरणान्वितः ॥६४

यदि शिष्य के पास धन की कमी हो या किसी प्रकार की असमर्थता हो तो गुरु सब प्रकार की सामग्रियों को जुटा कर द्वादशी के दिन इष्ट देवता की पूजा करके दीक्षा प्रदान करे।६४

सद्योऽधिवास्य द्वादश्यां दीक्षयेद्देशिकोत्तमः।
भक्तो विनीतः शारीरैर्गुणैः सर्वैः समन्वितः ॥६५

जो शिष्य अत्यन्त धनी न हो परन्तु वह विनीत, भक्त और सब प्रकार के शारीरिक गुणों से युक्त हो तो वेदी पर ही देवस्थापना करके उसे दीक्षा दे देनी चाहिये।६५

शिष्यो नातिधनी यस्तु स्थण्डिलेऽभ्यर्च्य दीक्षयेत्।
अध्वानं निखिलं दैवं भौतं वाध्यात्मिकीकृतम् ॥६६
सृष्टिक्रमेण शिष्यस्य देहे ध्यात्वा तु देशिकः।
अष्टाष्टाहुतिभिः पूर्वं क्रमात्सन्तर्प्य सृष्टिमान् ॥६७
स्वमन्त्रैर्वासुदेवादीञ्[1] ज्वलनादीन्[2] विसर्जयेत्।
होमेन शोधयेत् पश्चात् संहारक्रमयोगतः[3] ॥६८

पहले गुरु सृष्टि के क्रम से शिष्य के शरीर पर अखिल अध्वा समस्त देव, भौतिक और आध्यात्मिक गुणों की प्रतिष्ठा करके और उसका ध्यान करके आठ-आठ आहुतियों से हवन करके प्रतिष्ठापित देवों को तृप्त करना चाहिये। फिर उन-उन देवों के मन्त्रों से वासुदेव आदि देवों और अग्नि का विसर्जन करे और हवन के द्वारा संहार-क्रम से संशोधन करे।६६-६८।

---

१ ख ग. घ. °दीञ्जनना°। २ ख. ग. °न्विवर्ज°। ३ ख. ग. घ. °तः। योनिसू°।

यानि सूत्राणि वद्धानि मुक्त्वा कर्माणि देशिकः ।
शिष्यदेहात्समाहृत्य क्रमात्तत्त्वानि शोधयेत् ॥६९

जो सूत बाँधे गये थे, गुरु उनको खोल दे और शिष्य की देह से सबको खींचकर तत्त्वों का क्रमशः शोधन करे।६९

अग्नौ प्राकृतिके विष्णौ लयं नीत्वाधिदैविके ।
शुद्धं तत्त्वमशुद्धेन पूर्णाहुत्या तु सन्धयेत्[1] ॥७०

और उस सूत्र को प्राकृतिक और आधिदैविक विष्णुरूप अग्नि में सबको विलीन कर पूर्णाहुति के द्वारा शुद्ध तत्त्व को अशुद्ध तत्त्व के साथ संयुक्त करके अशुद्ध को भी शुद्ध करे।७०

शिष्ये प्रकृतिमापन्ने दग्ध्वा प्राकृतिकान्गुणान् ।
मोचयेदधिकारे वा नियुञ्ज्याद्देशिकः शिशून् ॥७१

जब शिष्य के प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाये और वह प्रकृतिस्थ हो जाये अर्थात् अपने साधारण गुणों को छोड़कर दीक्षा द्वारा उत्तम गुणों को ग्रहण कर ले तो गुरु उसको अन्य शिशुओं को पढ़ाने या उपदेश देने का अधिकार दे । ७१

अथान्यां शक्तिदीक्षां वा कुर्याद् भावे स्थितो गुरुः ।
भक्त्या सम्प्रतिपन्नानां यतीनां[2] निर्धनस्य च ॥७२

गुरु उपर्युक्त प्रकार की दीक्षा के अतिरिक्त शक्ति-दीक्षा भी स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार दे सकता है। उसकी विधि इस प्रकार है कि भक्तिपूर्वक शरण में आये हुए यतियों और निर्धन भक्तों को गुरु अपने समीप पुत्र की भाँति बैठावे।७२

सम्पूज्य स्थण्डिले विष्णुं पार्श्वस्थं स्थाप्य पुत्रकम् ।
देवताभिमुखः शिष्यस्तिर्यगास्यः स्वयं स्थितः ॥७३

वेदी पर विष्णु की पूजा करके भक्त शिष्य को देवताभिमुख बैठावे और स्वयं कुछ तिरछा होकर बैठे।७३

अध्वानं निखिलं ध्यात्वा पर्वभिः स्वैर्विकल्पितम् ।
शिष्यदेहे तथा देवमाधिदैविकयाजनम्[3] ॥७४
ध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य पूर्ववत्ताडनादिना ।
क्रमात्तत्त्वानि सर्वाणि शोधयेत्स्थण्डिले हरौ ॥७५

---

१ क ङ. च. संनयेत् । घ. साधयेत् । २ ङ. सतीनां । ३ ख. ग. घ. °याचन° ।

शिष्य के शरीर पर अपने पर्वों से विकल्पित अखिल अध्वान का ध्यान कर आधिदैविक देव की पूजा करावे और पूर्वकथित नियम के अनुसार ध्यानयोग से चिन्तन कर ताडन आदि के द्वारा क्रमशः सब तत्त्वों को उस वेदी पर विष्णु के समीप ही शुद्ध करे।७४-७५।

ताडनेन वियोज्याथ गृहीत्वात्मनि तत्पुनः[1] ।
देवे संयोज्य संशोध्य गृहीत्वा तत्स्वभावतः ।।७६

ताडन के द्वारा उन तत्त्वों को वहाँ (वेदी) से पृथक् कर अपने में संयुक्त करे। फिर देव में उनको संयुक्त कर शोधन करे और स्वभावानुसार उनका ग्रहण भी करे।७६

आनीय शुद्धतत्त्वेन[2] सन्धयित्वा क्रमेण तु ।
शोधयेद्ध्यानयोगेन सर्वत्रोत्तानमुद्रया ।।७७

क्रमशः इस प्रकार उनको खींचकर लावे और शुद्ध तत्त्वों से मिलाकर ध्यानयोग से उत्तान-मुद्रा के द्वारा सर्वत्र शोधन करे।७७

शुद्धेषु सर्वतत्त्वेषु प्रधाने चेश्वरे स्थिते ।
दग्ध्वा निर्वापयेच्छिष्यान्[3] पदे चैशे नियोजयेत् ।।७८

सब तत्त्वों की शुद्धि हो जाने और प्रधान ईश्वर-तत्त्व से स्थित हो जाने पर शिष्यों के सब अशुद्ध तत्त्वों को जलाकर उनको शुद्ध कर दे और ईश्वरीय स्थान पर नियुक्त करे।७८

निनयेत् सिद्धिमार्गेण[4] साधकं देशिकोत्तमः ।
एवमेवाधिकारस्थो गृही कर्मण्यतन्द्रितः ।।७९
आत्मानं शोधयंस्तिष्ठेद्यावद्रागक्षयो भवेत् ।
क्षीणरागमथात्मानं ज्ञात्वा संशुद्धकिल्विषः ।।८०
आरोप्य पुत्रे शिष्ये वा ह्यधिकारं तु संयमी ।
दग्ध्वा मायामयं पाशं प्रव्रज्य स्वात्मनि स्थितः ।।
शरीरपातमाकाङ्क्षन्नासीताव्यक्तलिङ्गवान् ।।८१

---

१ घ. तत्परः। २ घ. शुद्धभावेन। ३ क. च. °ष्यान्यादवेशे । ४ क. ख. ग. घ. ङ. °र्गे वा सा° ।

उत्तम गुरु का कर्तव्य है कि वह साधक को सिद्धि-मार्ग से ले जाय । इस प्रकार दीक्षित होकर गृहस्थ सजग भाव से अपने कर्मों का और अपना तब तक संशोधन करे जब तक रागक्षय न हो जाय । जब गृहस्थ अपने को निष्पाप जान ले कि वह रागों से मुक्त हो गया है तब वह संयमी शिष्य या पुत्र को अपना अधिकार सौंपकर मायापाश को तोड़कर सन्यास ग्रहण कर ले और आत्मस्थ होकर सर्वदा शरीर-पात की आकांक्षा करे। किन्तु उसे अपनी विशेषताओं अर्थात् बाह्य मुद्राओं द्वारा अपने को व्यक्त न करे ॥७९-८१ ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वदीक्षाविधिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

———

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

आचार्याभिषेकविधानम

नारद उवाच—

अभिषेकं प्रवक्ष्यामि यथा[1] कुर्यात्तु पुत्रकः ।
सिद्धिभावसाधको येन रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥1

नारद ने कहा—अब मैं उस विधि को बतला रहा हूँ जिस विधि से पुत्र या शिष्य को आचार्य का अभिषेक करने से साधक मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त करता है और रोगी रोग से मुक्त हो जाता है ।१

राज्यं राजा सुतं[2] स्त्री च प्राप्नुयान्मलनाशनम्[3] ।
मृत्साकुम्भान्सुरत्नाढ्यान् मध्यपूर्वादितो न्यसेत् ॥२

इन सम्पूर्ण मलों को नष्ट कर देने वाले अभिषेक के द्वारा राजा राज्य को और पुत्राभिलाषिणी स्त्री, पुत्र को प्राप्त करती है । सबसे पहले मिट्टी के कलशों को रत्नों से भरकर मध्यकेन्द्र से पूर्व की ओर रखे ।२

सहस्रावर्तितान् कुर्यादथवा शतवर्तितान् ।
मण्डपे मण्डले बिष्णुं प्राच्यैशान्योश्च[4] पीठके ॥३

उन कलशों को हजार बार या सौ बार सूत या कपड़े से लपेटे । मण्डप के मण्डल में पूर्व और ईशानकोण की ओर पीठ पर विष्णु को स्थापित करे ।३

निवेश्य सङ्कलीकृत्य[5] पुत्रं साधकादिकम् ।
अभिषेकं समभ्यर्च्य कुर्याद् गीतादिपूर्वकम् ॥४

सब पुत्र, पौत्र आदि और साधक को वहाँ एकत्र कर अभिषेक करके मंगल-गान आदि करे ।४

---

१ खः ग. घ. ⁰थाऽऽचार्यस्तु पुत्रकः । सि⁰ । २ ख. ग. पतिं । ३ क. घ. ङ. च. ⁰म् । मूर्तिकु⁰ । ख. म्. । मृद्भिः कु⁰ । ४ ख. ग. घ. च. शान्यां च पी⁰ । ५ क. ख. ङ. च. सकलीकृत्य । घ. शकलीकृत्य ।

दद्याच्च योगपीठादींस्त्वनुग्राह्यास्त्वया नराः ।
गुरुश्च समयान् ब्रूयाद्[1] गुरुः शिष्योऽथ सर्वभाक् ॥

अभिषेक के अनन्तर योगपीठ का दान करे। उस समय गुरु को यह कहना चाहिये कि "हे ईश्वर ! तुम इन भक्तों पर अनुग्रह करो !" इस प्रकार अभिषेक करने से गुरु और शिष्य सब प्रकार के मनोरथ प्राप्त करते हैं ।५

इत्यादिमहापुराण आग्नेय आचार्याभिषेकविधिवर्णनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।२८

---

१ घ. °याद् गुप्ताशि° ।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

मन्त्रसाधनविधिः सर्वतोभद्रादिमण्डललक्षणानि च

नारद उवाच—

साधकः साधयेन्मन्त्रं देवतायतनादिके ।
शुद्धभूमौ गृहे प्राच्र्य मण्डले हरिमीश्वरम् ॥१

नारद बोले—साधक को देवतायतन आदि में शुद्ध भूमि पर मण्डल में भगवान् विष्णु की अर्चना करके मंत्र की साधना करनी चाहिये ।१

चतुरस्रीकृते[1] क्षेत्रे मण्डलादीनि वै लिखेत् ।
रसबाणाक्षिकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥२

एक वर्गाकार भूमि पर मण्डलाकार चित्र को बनाकर उसके ऊपर नवें, पाँचवें और दूसरे कोष्ठकों में सर्वतोभद्र का चित्रण करना चाहिये ।२

षट्त्रिंशत्कोष्ठकैः[2] पद्मं पीठे[3] पङ्क्त्या वहिर्भवेत् ।
द्वाभ्यां तु वीथिका तस्माद् द्वाभ्यां द्वाराणि दिक्षु च ॥३

इसके बाहर छत्तीस कोष्ठकों को बनाना चाहिये । दो पंक्तियों में बनाये हुए इन कोष्ठकों में दोनों ओर दो द्वारों का निर्माण करना चाहिये ।३

वर्तुलं भ्रामयित्वा तु पद्मक्षेत्रं पुरोदितम् ।
पद्मार्धे भ्रामयित्वा तु भागं द्वादशमं (कं) बहिः ॥४

बाहर की ओर पद्माकार मण्डल बनाकर उस पद्म के अर्ध भाग में बारह कोष्ठकों का निर्माण करना चाहिये ।४

विभज्य भ्रामयेच्छेषं चतुष्क्षेत्रं तु वर्तुलम् ।
प्रथमं कर्णिकाक्षेत्रं केसराणां द्वितीयकम् ॥५
तृतीयं दलसन्धीनां दलाग्राणां चतुर्थकम् ।
प्रसार्य कोणसूत्राणि कोणदिङ्मध्यमं ततः ॥६

इस प्रकार विभाजन करके एक-दूसरे पर चार मंडलों का चित्रण करना चाहिये । उसमें से पहला है कर्णिकार क्षेत्र, दूसरा है केसरक्षेत्र, तीसरा है दलसंधि क्षेत्र और चौथा है दलाग्रक्षेत्र । तदनन्तर त्रिकोण के बिन्दुओं को एक तागे से जोड़ देना चाहिये ।५-६।

---

१. ङ. ०तुरः स्त्रीकृ० । २ ख. ग षड्विंश० । ३ ख. घ. पीठं ।

निधाय केसराग्रे तु दलसन्धींस्तु लाञ्छयेत् ।
पातयित्वाथ सूत्राणि तत्र पत्राष्टकं लिखेत् ।।७

केसर के अग्रभाग में सूत रखकर दलसन्धियों को चिह्नित करे, फिर सूत्रों को गिराकर अष्टदलों का निर्माण करे ।७

दलमध्यान्तरालं तु मानं मध्ये निधाय तु ।
दलाग्रं भ्रामयेत्तेन तदग्रं तदनन्तरम् ।।८

तत्पश्चात् मण्डल के अन्दर दलों में अन्तराल का निर्माण करना चाहिये और एक के बाद दूसरे दलाग्रों को बनाना चाहिये ।८

तदन्तरालं तत्पार्श्वे कृत्वा वाह्यक्रमेण च ।
केसरौ तु लिखेद् द्वौ द्वौ दलमध्ये ततः पुनः ।।९

इन्हें मण्डल के पार्श्व तथा बाहर की ओर भी वना देना चाहिये । दो दलों के बीच में केसरों का चित्रण करना चाहिये ।९

पद्मलक्ष्मैतत्सामान्यं[1] तद् द्विषड्दलमुच्यते ।
कर्णिकार्धेन मानेन प्राक्संस्थं भ्रामयेत्क्रमात् ।।१०

यही बासठ दलों वाला साधारण पद्ममण्डल है । इस मण्डल के पूर्व की ओर उपयुक्त मात्रा में कर्णिकार्द्ध का चित्र बनाना चाहिये ।१०

तत्पार्श्वे भ्रमयोगेण कुण्डल्यः षड् भवन्ति हि ।
एवं द्वादश मत्स्याः स्युर्द्विषट्कदलकं च तैः ।।११

उसी के पार्श्व में मण्डलाकार छः कुण्डलियाँ वना देनी चाहिये और बासठ दल कमल में बारह मत्स्याकृतियों को बना देना चाहिये ।११

पञ्चपत्रादिसिद्ध्यर्थं मत्स्यैः कृत्वैवमब्जकम् ।
व्योमरेखावहिःपीठं तत्र कोष्ठानि मार्जयेत् ।।१२

अनुष्ठान में सिद्धि प्राप्त करने के लिये पाँच कमलदलों से एक अखण्डित मत्स्याकृति बनानी चाहिये । पीठिका के बाहर की ओर व्योमरेखा खींचकर कोष्ठकों का सम्मार्जन करना चाहिये ।१२

त्रीणि कोणेषु पादार्थं द्विद्विकान्यपराणि तु ।
चतुर्दिक्षु विलिप्तानि पत्रकाणि भवन्त्युत[2] ।।१३

तीनों कोनों में चरणों के लिये दो-दो रेखाओं को खींच देना चाहिये । पद्म के सभी दल सभी दिशाओं में फैले रहते हैं ।१३

---

१ क. घ. ङ. च. °न्यं द्विषट्कद° । २ ख. ग. °वन्त्यतः । त° ।

ततः पङ्क्तिद्वयं दिक्षु वीथ्यर्थं तु विलोपयेत् ।
द्वाराण्याशासु कुर्वीत चत्वारि चतसृष्वपि ॥१४

एक पंक्ति में मीन-पक्षों को बनाकर चारों दिशाओं में चार द्वारों का निर्माण कर देना चाहिये ।१४

द्वाराणां पार्श्वतः शोभा अष्टौ कुर्याद् विचक्षणः ।
तत्पार्श्व उपशोभास्तु तावत्यः परिकीर्तिताः ॥१५

बुद्धिमान् व्यक्ति को द्वारों के पार्श्व भाग में आठ शोभाकृतियों का निर्माण करके उनके समीप उतनी ही उपशोभाओं को बना देना चाहिये ।१५

समीप उपशोभानां कोणास्तु परिकीर्तिताः ।
चतुर्दिक्षु ततो द्वे द्वे चिन्तयेन्मध्यकोष्ठकैः ॥१६

इन उपशोभाओं के समीप कोणों का निर्माण बताया गया है। चारों दिशाओं में मध्य-कोष्ठक में दो-दो आकृतियाँ बनाई जाती हैं ।१६

चत्वारि बाह्यतो मृज्यादेकैकं पार्श्वयोरपि ।
शोभार्थं पार्श्वयोस्त्रीणि त्रीणि लुम्पेद् दलस्य तु ॥१७

पीठिका के बाहर की ओर चार-चार और पार्श्व में एक-एक आकृति बनाई जाती है। उसमें शोभा का आधान करने के लिये दलों के पार्श्व में तीन-तीन आकृतियाँ और बना दी जाती हैं ।१७

तद्वद्विपर्यये कुर्यादुपशोभां ततः परम् ।
कोणस्यान्तर्बहिस्त्रीणि चिन्तयेन्निर्विभेदतः ॥१८

इसी प्रकार विपरीत दिशाओं में भी तीन उपशोभाकृतियों का निर्माण किया जाता है किन्तु कोणों के बीच में तनिक भी स्थान नहीं छोड़ा जाता है ।१८

एवं षोडशकोष्ठं स्यादेवमन्यत्तु मण्डलम् ।
द्विषट्कभागे षड्विंशत्पदं पद्मं तु वीथिका ॥१९

इस प्रकार सोलह कोष्ठकों से युक्त एक अन्य मण्डल का भी निर्माण किया जाता है। पद्म के अन्दर उसके बासठवें भाग में छब्बीस दलों का चित्रण किया जाता है ।१९

एका पङ्क्तिः पराभ्यां तु द्वारशोभादि पूर्ववत् ।
द्वादशाङ्गुलिभिः पद्ममेकहस्ते तु मण्डले ॥२०

द्वार की शोभा के लिये पूर्व की भाँति एक पंक्ति का भी निर्माण किया जाता है। एक हाथ के विस्तार के मंडल में बारह अँगुलियों से एक पद्म का चित्रण किया जाता है।२०

द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद् वृद्ध्या[1] द्वारेण चाचरेत्।
अपीठं चतुरस्रं स्याद् द्विकरं चक्रपङ्कजम् ॥२१

अँगूठे से एक हाथ के क्षेत्रफल के द्वारा चित्रण करा देना चाहिये। तदनन्तर चार वेदिकाओं का निर्माण करना चाहिये और उसमें दो अंगुल परिधि का एक चक्राकार पद्म भी चित्रित करना चाहिये।२१

पद्मार्धं नवभिः प्रोक्तं नाभिस्तु तिसृभिः स्मृता।
अष्टाभिस्त्वारकान् कुर्यान्नेमिं तु चतुरङ्गुलैः ॥२२

पद्म का आधा भाग नौ अंगुल, नाभि तीन अंगुल, द्वार आठ अंगुल और परिधि चार अंगुल होना चाहिये।२२

त्रिधा विभज्य च क्षेत्रमन्तर्द्वाभ्यामथाङ्कयेत्।
पञ्चान्तस्त्वारसिद्ध्यर्थं तेष्वास्फाल्य लिखेदरान् ॥२३

क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित करके उसके बीच में दो अँगुलियों से चिह्नित करना चाहिये। अपने अभीष्ट को सिद्ध करने के लिये पद्म के बीच में पाँच ह्रस्व स्वरों को लिखकर अर्द्धव्यास खींच देना चाहिये।२३

इन्दीवरदलाकारानथ वा मातुलुङ्गवत्।
पद्मपत्रायतान्वापि लिखेदिच्छानुरूपतः ॥२४

तदनन्तर साधक को अपने इच्छानुसार पद्म के दलों, नीबू अथवा पद्मपत्रों के आकार का चित्रण करना चाहिये।२४

भ्रामयित्वा बहिर्नेमावरसन्ध्यन्तरे स्थितः।
भ्रामयेदरमूलं तु सन्धिमध्ये व्यवस्थितः ॥२५

अरों की सन्धियों के बीच में सूत रखकर उसे बाहर की नेमि तक ले जाय और चारों ओर घुमावे। अरे के मूल भाग को उसके संधिस्थान में सूत रखकर घुमावे।२५

अरमध्ये स्थितो मध्यमराणां भ्रामयेत्समम्।
एवं सिध्यन्त्यराः सम्यङ् मातुलिङ्गनिभाः समाः ॥२६

अर्द्धव्यास तथा परिधि के बीच के स्थान में मध्यम अरों को झुका देना चाहिये। इस प्रकार अरों की सिद्धि हो जाती है।२६

---

१ ख स्याद् बुद्ध्याधारे।

विभज्य सप्तधा क्षेत्रं चतुर्दशकरं समम् ।
त्रिधा कृते शतं ह्यत्र षण्णवत्यधिकानि तु ॥२७
कोष्ठकानि चतुर्भिस्तैर्मध्ये भद्रं समालिखेत् ।
परितो विसृजेद् वीथ्यै तथा दिक्षु समालिखेत् ॥२८

इसके बाद क्षेत्र को चौदह-चौदह अंगुल के सात कोष्ठकों में विभक्त करके दो सौ छियानबे कोष्ठकों को बनाकर उसमें 'भद्र' शब्द लिख देना चाहिये। इन कोष्ठकों को दिशाओं के नामों से अंकित पंक्तियों के द्वारा घेर देना चाहिये ।२७-२८।

कमलानि पुनर्वीथ्यै परितः परिमृज्य तु ।
द्वे द्वे मध्यकोष्ठे तु ग्रीवार्थं दिक्षु लोपयेत् ॥२९

तदनन्तर इन सभी पंक्तियों के ऊपर पद्मों की आकृतियाँ बना दी जाती हैं। बीच कोष्ठक में सभी दिशाओं में ग्रीवाओं का चित्रण करना चाहिये ।२९

चत्वारि बाह्यतः पश्चात्त्रीणि त्रीणि तु लोपयेत् ।
ग्रीवापार्श्वे बहिस्त्वेकः शोभा सा परिकीर्तिता ॥३०

बाहर की ओर चार आकृतियों को बनाकर पंक्तियों के ऊपर एक-एक आकृति बना देनी चाहिए और बाहर की ओर ग्रीवा के पास में शोभाकृति का निर्माण कर देना चाहिये ।३०

विसृज्य बाह्यकोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि मार्जयेत् ।
मण्डलं नवनालं स्यान्नवव्यूहं[1] हरिं यजेत् ॥३१

बाह्यकोण के सातो छोरों पर तीन-तीन बार जल छिड़कना चाहिये । इस प्रकार पीठिका का निर्माण कर लिया जाता है जिसके ऊपर भगवान् विष्णु का पूजन किया जाता है ।३१

पञ्चविंशतिकव्यूहं मण्डलं विश्वरूपगम् ।
द्वात्रिंशद्हस्तकं क्षेत्रं भक्तं द्वात्रिंशता समम् ॥३२

यही पचीस व्यूहों से युक्त मण्डलाकार पीठिका है जिसके ऊपर विश्वरूप भगवान् विष्णु का पूजन होता है। साधक को अपने हाथ से बत्तीस हाथ क्षेत्र नाप लेना चाहिये ।३२

---

१. घ. °वभागं ह° ।

एवं कृते चतुर्विंशत्यधिकं तु सहस्त्रकम् ।
कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः ॥३३

उसमें बने हुए सोलह बड़े-बड़े कोष्ठकों के अन्दर एक हजार चौबीस छोटे-छोटे कोष्ठक बना लिये जाते हैं ।३३

भद्रकं परिलिख्याथ पार्श्वे पङ्क्तिं विसृज्य तु ।
ततः षोडशभिः कोष्ठैर्दिक्षु भद्राष्टकं लिखेत् ॥३४

'भद्र' लिखकर और पार्श्व में पंक्ति का विसर्जन करके सभी दिशाओं में सोलह कोष्ठकों से आठ भद्रकों का चित्रण करना चाहिये ।३४

ततोऽपि पङ्क्तिं सम्मृज्य तद्वत्षोडशभद्रकम् ।
लिखित्वा परितः पङ्क्तिं विमृज्याथ प्रकल्पयेत् ॥३५

तत्पश्चात् पंक्ति मिटाकर पुनः सोलह भद्रमण्डल लिखे । तत्पश्चात् सब ओर की एक-एक पंक्ति मिटाये ।३५

द्वारद्वादशकं दिक्षु त्रीणि-त्रीणि यथाक्रमम्[1] ।
षड्बहिः परिलुप्यान्तर्मध्ये चत्वारि पार्श्वयोः ॥३६

साधक को सभी दिशाओं में तीन-तीन करके बारह द्वारों का निर्माण करके बाहर की ओर छः तथा किनारे, बीच में और सभी दिशाओं में चार-चार द्वार बना देने चाहिये ।३६

चत्वार्यन्तर्बहिर्द्वे तु शोभार्थं परिमृज्य तु ।
उपद्वारप्रसिद्ध्यर्थं त्रीण्यन्तः पञ्च बाह्यतः ॥३७

इस आकृति को सुशोभित करने के लिये बाहर और भीतर दो-दो करके चार छोरों पर तीन और बाहर की ओर पाँच द्वारों को बनाना चाहिये ।३७

परिमृज्य तथा शोभां पूर्ववत्परिकल्पयेत् ।
बहिः कोणेषु सप्तान्तस्त्राणि कोष्ठानि मार्जयेत् ॥३८

तदनन्तर पूर्व की भाँति बाह्य कोणों में सात और किनारे की ओर तीन शोभाकृतियों को चित्रित करना चाहिये ।३८

पञ्चविंशतिकव्यूहे परं ब्रह्म यजेत्[2] कजे ।
मध्ये पूर्वादितः पद्मे वासुदेवादयः क्रमात् ॥३९

---
१ ङ. °म् । यद्बहिः परिलुप्यन्ते मध्ये । २ क. ङ. °जेत्कुजे । च. °जेत्कुले । म° ।

साधक को परमब्रह्म की अर्चना पचीस व्यूह से युक्त पद्म पर करनी चाहिये और मध्य पद्म में पूर्वादि से क्रमशः वासुदेव आदि देवताओं का पूजन करना चाहिये ।३९

वाराहं पूजयित्वा तु पूर्वपद्मे ततः क्रमात् ।
व्यूहान् सम्पूजयेत्तावद्यावत् षट्विंशगो[1] भवेत् ।।४०

प्रथम पद्म के ऊपर वाराहावतार का यजन करके पचीसों व्यूहों की अर्चना करनी चाहिये यह क्रम तब तक चलता रहे जब तक छब्बीसवें तत्त्व-परमात्मा का पूजन न हो ।४०

([2]यथोक्तं व्यूहमखिलमेकस्मिन्[3] मण्डले क्रमात् ।
यष्टव्यमिति मन्त्रेण[4] प्रचेता मन्यतेऽध्वरम् ।।४१)

पद्म के सभी व्यूहों का पूजन सावधानीपूर्वक करना चाहिये । तदनन्तर साधक को यज्ञ के रूप में प्रचेतस् की कल्पना करनी चाहिये ।४१

सत्यस्तु मूर्तिभेदेन विभक्तं मन्यतेऽच्युतम् ।
चत्वारिंशत्करं क्षेत्रं ह्युत्तरं विभजेत्क्रमात् ।।४२

इसे यह कल्पना करनी चाहिये कि अच्युत ही सत्य आदि रूपों में विभक्त है । उसके बाद चालीस अंगुल क्षेत्र अलग कर लेना चाहिये ।४२

एकैकं सप्तधा भूयस्तथैकैकं द्विधा पुनः ।
चतुःषष्ट्युत्तरं सप्त शतान्येकं सहस्रकम् ।।४३

उसे पहले सात भागों में विभाजित करके तत्पश्चात् दो, चार, छः, सात, एक सौ और एक हजार भागों में विभक्त कर देना चाहिये ।४३

कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः ।
पार्श्वे वीथीं[5] ततश्चाष्टभद्राण्यथ च वीथिका ।।४४

कोष्ठकों में लिखित 'भद्र' शब्द को इनमें से सोलह कोष्ठकों से आवृत करके 'भद्र' के निकट किनारे की ओर रेखायें खींच देनी चाहिये ।४४

षोडशाब्जान्यथो वीथी चतुर्विंशतिपङ्कजम् ।
वीथीपद्मानि द्वात्रिंशत् पङ्क्तिवीथीकजान्यथ ।।४५

सोलह दल के कमल और वीथी का निर्माण करे तत्पश्चात् चौबीस दल के कमल, वीथी, बत्तीस दल के कमल और वीथी बनावे ।४५

---

१ घ. °त्षट्त्रिंशगो भ° । २ यथोक्त..........अध्वरम् ङ. पुस्तके नास्ति । ३ घ. स्मिन् पङ्कजे क्र° । ४ क. घ. च. यत्नेन । ५ च. वीर्यं ।

चत्वारिंशत्ततो वीथी शेषपङ्क्तित्रयेण तु ।
द्वारशोभोपशोभाः स्युर्दिक्षु मध्ये विलोप्य च ॥४६

सभी दिशाओं में चालीस रेखाओं और तीन पंक्तियों से द्वारों की मुख्य तथा गौण शोभाकृतियाँ बना देनी चाहिये ।४६

द्विचतुष्षड्द्वारसिद्ध्यै चतुर्दिक्षु विलोपयेत् ।
पञ्चत्रीण्येककं बाह्ये शोभोपद्वारसिद्धये ॥४७

सभी दिशाओं में दो, चार या छः द्वारों का निर्माण करना चाहिये और बाहर की ओर शोभा के लिये पाँच अथवा तीन द्वारों को बना देना चाहिये ।४७

द्वाराणां पार्श्वयोरन्तः षट्चत्वारि च मध्यतः ।
द्वे द्वे लुम्पेदेवमेव षड् भवन्त्युपशोभिकाः ॥४८

द्वारों के किनारे अथवा उनके पार्श्व में छः शोभाकृतियाँ बनायी जानी चाहिए जिनमें से चार मध्य में हों और वहीं पर छः गौण शोभाकृतियों का चित्रण कर देना चाहिये ।४८

एकस्यां दिशि सङ्ख्याः स्युश्चतस्रः परिसङ्ख्यया ।
एकैकस्यां दिशि त्रीणि द्वाराण्यपि भवन्त्यतः ॥४८

इन सभी आकृतियों को एक ओर ही बनाना चाहिये । संख्या में चार शोभायें होती हैं । प्रत्येक ओर तीन द्वार होने चाहिए ।४९

पञ्च पञ्च तु कोणेषु पङ्क्तौ पङ्क्तौ क्रमात् सृजेत् ।
कोष्ठकानि भवेदेवं सतीष्टं[1] मण्डलं शुभम् ॥५०

पाँच कोणों मे पाँच द्वारों का निर्माण होना चाहिये । इस प्रकार इस मण्डलाकार पवित्र वेदी में आठ कोष्ठक होते हैं ।५०

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वतोभद्रादिमण्डलवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।२९

---

१. घ. मर्त्येष्ट्य (ष्टं) ।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

सर्वतोभद्रमण्डलादिविधिकथनम्

नारद उवाच —

मध्ये पद्मे यजेद् ब्रह्म साङ्गं पूर्वेऽब्जनाभकम् ।
आग्नेयेऽब्जे च प्रकृतिं याम्येऽब्जे पुरुषं यजेत् ।।१

नारद बोले—सर्वतोभद्र मण्डल के बने कमल के मध्य में ब्रह्मा की और पूर्वभाग में पद्मनाभ (विष्णु) की सांगोपांग पूजा करनी चाहिये । अग्निकोण के कमल पर प्रकृति की और दक्षिण ओर के कमल पर पुरुष की पूजा करनी चाहिये ।१

पुरुषाद् दक्षिणे वह्निं नैर्ऋते वारुणेऽनिलम् ।
आदित्यमैन्दवे पद्मे ऋग्यजुश्चैंश[1] पद्मके ।।२
इन्द्रादींश्च द्वितीयायां पद्मे षोडशके तथा ।
सामाथर्वणमाकाशं वायुं तेजस्तथा जलम् ।।३
पृथिवीं च मनश्चैव श्रोत्रं त्वक्चक्षुरर्चयेत् ।
रसनां च तथा घ्राणं भूर्भुवश्चैव षोडशम् ।।४

पुरुष के दक्षिण ओर नैर्ऋत्यकोण में अग्नि की, पश्चिम ओर वायु की, सौम्य पद्म पर आदित्य की, ईश-पद्म पर ऋग्यजुष् की और द्वितीय पंक्ति पर इन्द्रादि देवताओं की तथा सोलह पँखुड़ियों वाले पद्म पर साम, अथर्व, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका और भूः भुवः स्वः आदि सोलह पदार्थों की पूजा करनी चाहिये ।२-४।

महर्जनस्तपः सत्यं तथाग्निष्टोममेव च ।
अत्यग्निष्टोमकं चोक्थं षोडशीं वाजपेयकम् ।।५
अतिरात्रं च सम्पूज्य तथाप्तोर्याममर्चयेत् ।
मनो बुद्धिमहङ्कारं ([2]शब्दं स्पर्शं च रूपकम् ।।६
रसं गन्धं च पद्मेषु चतुर्विंशतिषु क्रमात् ।
जीवं मनो धियं चाहं प्रकृतिं) शब्दमात्रकम् ।।७

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °श्चैत्र प° । २ शब्दं ········ प्रकृतिं च. पुस्तके नास्ति ।

वासुदेवादिमूर्तीश्च तथा चैव दशात्मकम् ।
मनः श्रोत्रं त्वचं प्राच्यं चक्षुश्च रसनं तथा ॥८
घ्राणं वाक्पाणिपादं च द्वात्रिंशद्वारिजेष्विमान् ।
चतुर्थावरणे पूज्याः साङ्गाः सपरिवारकाः[1]॥९

पुनः मह, जन, तप, सत्य, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोमक, उक्थ, षोडशी, वाजपेयक और अतिरात्र की पूजा कर आप्तोर्याम की चौबीस कमलों पर पूजा करे। क्रमशः मन, बुद्धि, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को जीव, मन, धी, अहङ्कार, प्रकृति, शब्दतन्मात्रा, वासुदेव आदि की मूर्तियों और मन, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाणी, पाणि, पाद आदि दस इन्द्रियों की बत्तीस कमलों पर अर्चना करे। चौथे आवरण में अंग और परिवार के सहित इन उपर्युक्त वस्तुओं की पूजा करनी चाहिये।५-९।

पायूपस्थौ च सम्पूज्य मासानां द्वादशाधिपान् ।
पुरुषोत्तमादिषड्विंशान् बाह्यावरणके यजेत् ॥१०

पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग) की पूजा करने के अनन्त बारह मासाधिपतियों का और पुरुषोत्तम आदि छब्बीस देवों का बाह्य आवरणक (कोष्ठक) में पूजन करना चाहिये।१०

चक्राब्जे तेषु सम्पूज्या मासानां पतयः क्रमात् ।
अष्टौ प्रकृतयः षड् वा पञ्च वा[2] चतुरोऽपरे ॥११

चक्र-कमल में उन कोष्ठकों में क्रमशः बारह मासाधिपतियों, आठ प्रकृतियों, छः, पाँच या चार प्रकृतियों का पूजन दूसरे कमल पर करना चाहिये।११

रजःपातं ततः कुर्याल्लिखिते मण्डले शृणु ।
कर्णिका पीतवर्णा स्याद्रेखाः सर्वाः सिताः समाः ॥१२

अब उन बने हुए कोष्ठकों अथवा कमल-कोष्ठकों पर किस प्रकार रँगा हुआ चूर्ण छोड़ना चाहिये, उसे भी सुनिये—कर्णिका पर पीले रंग का चूर्ण और सब रेखाओं को श्वेत चूर्ण से रँगना चाहिये।१२

द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्राः स्युर्हस्ते बाहुसमाः[3] सिताः ।
पद्मं शुक्लेन सन्धींस्तु कृष्णेन श्यामतोऽथ वा ॥१३

दो हाथ के मण्डल रेखायें अंगूठे के बराबर होनी चाहिये। एक हाथ के मण्डल में उनकी मोटाई आधे अंगूठे के समान रखनी चाहिये। रेखायें श्वेत बनाई जायँ। कमल को श्वेतवर्ण से और सन्धिरेखाओं को काले अथवा श्याम रंग से बनाना चाहिये।१३

१ ख. ग. ०रिचार० । २ ख. वाऽप्यूतवोप० । ३ घ. चार्धसमाः ।

केसराः रक्तपीताः स्युः कोणान् रक्तेन पूरयेत् ।
भूषयेद्योगपीठं तु यथेष्टं सार्ववर्णिकैः ॥१४

केसर को रक्त और पीत वर्ण से तथा कोणों को केवल लाल रंग से भरना चाहिये । योगपीठ को तो इच्छा के अनुसार अनेक रंगों से रँग दे ।१४

लतावितानपत्राद्यैर्वीथिकामुपशोभयेत् ।
पीठद्वारे तु शुक्लेन शोभा रक्तेन पूरिताः[1] ॥१५

इसी प्रकार लता-वितान, पत्तियों और वीथियों को रंग से रँगकर सुशोभित कर देना चाहिये । पीठ द्वार को श्वेत और रक्त चूर्ण से पूर्ण करके सजा देना चाहिये ।१५

उपशोभाश्च नीलेन कोणशङ्खांश्च वै सितान् ।
भद्रके पूरणं प्रोक्तमेवमन्येषु पूरणम् ॥१६

नीले रंग से उपशोभा को और कोण पर बने हुए शंखों को श्वेत-वर्ण का बनाना चाहिये । इस प्रकार सर्वतोभद्र मंडल में रंग भरा जाता है ।१६

त्रिकोणं सितरक्तेन कृष्णेन च विभूषयेत् ।
द्विकोणं रक्तपीताभ्यां नाभिं कृष्णेन चक्रके ॥१७

मण्डल में बने हुए त्रिकोण को श्वेत, रक्त और कृष्ण वर्ण से, द्विकोण को रक्त और पीत वर्ण से तथा चक्र की नाभि को काले रंग से रँगना चाहिये । १७

अरकान्पीतरक्ताभिः श्यामान्नेमिस्तु रक्ततः ।
सितश्यामारुणाः कृष्णाः पीता रेखास्तु बाह्यतः ॥१८

चक्र की अराओं को पीत, रक्त और श्याम वर्ण से तथा नेमि (पुठिया) को रक्त वर्ण से रँगना चाहिये । बाहर की रेखाओं को श्वेत, श्याम, अरुण, कृष्ण और पीत-वर्ण से बनाना चाहिये । १८

शालिपिष्टादि शुक्लं स्याद्रक्तं कौसुम्भकादिकम् ।
हरिद्रया च हारिद्रं कृष्णं स्याद्दग्धधान्यतः ॥१९

श्वेत रंग के लिये चावल के चूर्ण का, रक्तवर्ण के लिये कुसुम्भ के रंग का, पीले के लिये हल्दी के चूर्ण का और काले रंग के लिये जले हुए धान्य की राख का प्रयोग करना चाहिये ॥१९

---

१ घ. ङ. च पीततः ।

शमीपत्रादिकैः श्यामं बीजानां लक्षजाप्यतः ।
चतुर्लक्षैस्तु[1] मन्त्राणां विद्यानां लक्षसाधनम् ।।२०

शमी की पत्तियों को श्याम रंग के उपयोग में लाना चाहिये । बीज-मन्त्रों का एक लाख बार जप करने से, मन्त्रों को चार लाख बार जपने से और विद्याओं को एक लाख बार जपने से सिद्धि प्राप्त होती है ।२०

अयुतं वृद्धविद्यानां[2] स्तोत्राणां च सहस्रकम् ।
पूर्वमेवाथ लक्षेण मन्त्रशुद्धिस्तथात्मनः ।।२१

वृद्ध विद्याओं को दस हजार और स्तोत्रों को एक हजार बार जपने से सिद्धि प्राप्त होती है । पहले एक लाख जप करने से मन्त्रशुद्धि और आत्मशुद्धि होती है ।२१

तथापरेण लक्षेण मन्त्रः क्षेत्रीकृतो भवेत् ।
पूर्वसेवासमो होमो बीजानां सम्प्रकीर्तितः ।।२२

तथा अन्य एक लाख बार जपने से मन्त्र का क्षेत्रीकरण होता है । बीज-मन्त्रों का पहले जितना जप किया गया हो उतना ही उनके लिये होम का भी विधान है ।२२

पूर्वसेवादशांशेन मन्त्रादीनां प्रकीर्तिता ।
पुरश्चर्या तु मन्त्रेण मासिकं व्रतमाचरेत् ।।२३

अन्य मन्त्रादि के होम की संख्या पूर्व जप के दशांश के तुल्य बतायी गयी है । मन्त्रों से पुरश्चरण करने पर एक मास का व्रत करना चाहिये ।२३

भुवि न्यसेद्वामपादं न गृह्णीयात्प्रतिग्रहम् ।
एवं द्वित्रिगुणेनैव मध्यमोत्तमसिद्धयः ।।२४

पृथ्वी पर पहले अपना बायाँ पैर रखे और किसी का दिया दान न ले । इस प्रकार दो तीन बार व्रत और पुरश्चरण करने से मध्यम और उत्तम श्रेणी की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।२४

मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि येन स्यान्मन्त्रजं फलम् ।
स्थूलं शब्दमयं रूपं विग्रहं बाह्यमिष्यते ।।२५

इसके अन्तर मन्त्रध्यान की विधि बतला रहा हूँ जिससे मन्त्र का पूर्ण फल प्राप्त होता है । मन्त्र का स्थूल शब्दमय बाह्य शरीर है ।२५

सूक्ष्मं ज्योतिर्मयं रूपं हार्दं चिन्तामयं भवेत् ।
चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम् ।।२६

---

१ च. वर्णलक्षैस्तु । २ घ. बुद्धविद्यानां ।

सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, चिन्तामय रूप, हार्द (अन्तःकरण सम्बन्धी) रूप है। चिन्ता से रहित जो रूप है वही मन्त्र का उत्कृष्ट रूप है।

वाराहसिंहशक्तीनां स्थूलं रूपं प्रधानतः[1]।
चिन्तया रहितं रूपं वासुदेवस्य कीर्तितम् ॥२७

वराह, नृसिंह और शक्तियों के स्थूल रूप की प्रधानता रहती है। वासुदेव का रूप चिन्तारहित माना गया है।२७

इतरेषां स्मृतं रूपं हार्दं चिन्तामयं सदा।
स्थूलं वैराजमाख्यातं सूक्ष्मं वै[2] लिङ्गितं भवेत् ॥२८

इतर देवों का सदैव चिन्तामय हार्द रूप ही कहा गया है। स्थूल रूप को वैराज और सूक्ष्म को लिङ्गित कहा गया है।२८

चिन्तया रहितं रूपमैश्वरं परिकीर्तितम्।
हृत्पुण्डरीकनिलयं चैतन्यं ज्योतिरव्ययम् ॥२९

हृत्कमल में रहने वाले अव्यय, चैतन्य ज्योति का जो चिन्तारहित रूप है, वही ईश्वर का रूप है।२९

वीजं जीवात्मकं ध्यायेत् कदम्वकुसुमाकृतिम्।
कुम्भान्तरगतो दीपो निरुद्धप्रसवो यथा ॥३०
संहतः केवलस्तिष्ठेदेवं मन्त्रेश्वरो हृदि।
अनेकसुषिरे कुम्भे तावन्मात्रा गभस्तयः ॥३१
प्रसरन्ति वहिस्तद्वन्नाडीभिर्वीजरश्मयः।
[3]अन्त्रावभासका दैवीमात्मीकृत्य तनुं स्थितः ॥३२

कदम्ब के कुसुम की आकृति जो जीवात्मक बीज है उसका ध्यान करना चाहिये। जिस प्रकार घड़े के मध्य में रखे हुए दीप की शिखा वायु-प्रवेश न होने के कारण निश्चल रहती है उसी प्रकार मन्त्रेश्वर हृदय में निश्चल और संहत भाव से रहना चाहिये। अनेक छिद्र वाले घड़े के मध्य में स्थापित दीप की किरणें छिद्रों से जिस प्रकार फैलती रहती हैं उसी प्रकार नाड़ियों से बीज की किरणें फूटकर बिखरती रहती हैं। अतड़ियों से स्पष्ट उद्भासित होने वाली ये बीज-किरणें दैवी-प्रभा से युक्त होकर शरीर में स्थित रहती हैं।३०-३२।

---

१ क. ङ. च. विधानतः। २ ङ. त्वालिङ्गितं। ३ ख. ग. घ. च. अथाव-भासतो।

हृदयात्प्रस्थिता नाड्यो[1] दर्शनेन्द्रियगोचराः[2] ।
द्वेऽग्नीषोमात्मिके तासां नाड्यौ नासाग्रसंस्थिते[3] ॥३३

हृदय से इधर-उधर जानेवाली जो नाड़ियाँ आँख से दिखाई पड़ती हैं उनमें से दो अग्नि और सोम नाड़ियाँ नासिका के अग्र भाग में स्थित हैं । ३३

सम्यगुद्धातयोगेन[4] जित्वा देहसमीरणम् ।
जपध्यानरतो मन्त्री मन्त्रजं[5] फलमश्नुते ॥३४

भलीभाँति सिद्ध किये हुए योग के द्वारा शरीर की प्राणवायु को जीत कर सर्वदा जप के ध्यान में मग्न रहनेवाला साधक मन्त्र के सम्पूर्ण फल को पाता है । ३४

संशुद्धभूततन्मात्रः सकामो योगमभ्यसन् ।
अणिमादिमवाप्नोति विरक्तः प्रविलङ्घ्य च[6] ॥३५
चिदात्मको[7] भूतमात्रान् मुच्यते चेन्द्रियग्रहात् ॥३६

सकाम भाव से योग का अभ्यास करने वाला योगी सम्पूर्ण भूतों और गुणों को शुद्ध करके अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करता है । इसके विपरीत विरक्त (निष्काम) योगी चित्स्वरूप होकर समस्त इच्छाओं से ऊपर उठकर इन्द्रियविषयों और तन्मात्राओं (शब्द, रूप, रस आदि) से मुक्त होकर चैतन्य रूप को प्राप्त कर लेता है ।३५-३६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वतोभद्रमण्डलादिविधिकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०

---

१ क. ङ. च .दशमेन्द्रि° । ख. ग दशनेन्द्रि°। २ ख. ग. °राः । येऽग्नी° । घ. °राः । अग्नी° । ३ क. ङ. च. °सानुसं° । ४ घ. म्यग्गुह्येन यो° । ५ घ. °न्त्रलक्षणम° । ६ क. ङ. च. °विलाप्य च । ७ घ. देवात्मको ।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

अपामार्जनविधानम्

अग्निरुवाच—

रक्षां स्वस्य परेषां च वक्ष्येऽपामार्जनाह्वयाम्[1] ।
यथा विमुच्यते दुःखैः सुखं[2] च प्राप्नुयान्नरः ।।१

अग्निदेव बोले—अब मैं अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने वाली अपामार्जन-विधि को बतलाऊँगा । इसके द्वारा मनुष्य दुःखों से मुक्त होकर सुख प्राप्त करता है ।१

ॐ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने ।
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ।।२
([3]निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च ।)
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।३

ॐ महात्मा, अरूप, बहुरूप, निष्पाप, शुद्ध, ध्यानयोगरत, सर्वव्यापक, परमार्थ, पुरुष परमात्मा को नमस्कार है । आज मैं (अपामार्जनकर्ता) भगवान् को नमस्कार करके जिस तत्त्व को कह रहा हूँ उससे मेरी वाणी सफल हो ।२-३।

वराहाय नृसिंहाय वामनाय मनात्मने[4] ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।४

वराह, नृसिंह और महात्मा वामन को नमस्कार कर जो कुछ बोल रहा हूँ, वह सार्थक हो ।४

त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।५

त्रिविक्रम, राम, वैकुण्ठ और नर को नमस्कार करके जिस वाणी का उच्चारण कर रहा हूँ वह वाणी सिद्धिप्रदायिनी हो ।५

वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम ।
हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ।।६

---

१ क. ङ. च. °क्ष्ये सम्मार्जनाह्व° । घ. °क्ष्ये तां मार्ज° । २ क. ङ. च. °खं ब्रह्माप्नु° । ३ निष्कल्मषाय·······ध्यानयोगरताय च. ङ. पुस्तके नास्ति । ४ ख. ग. महामुने ।

हे वराह, नृसिंह, ईश, वामनेश, त्रिविक्रम, हयग्रीवेश, सर्वेश, हृषीकेश ! आप अब हमारे अमङ्गल का नाश कीजिये ।६

अपराजितचक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः ।
अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव ॥७

अपने चक्र आदि चारों परमायुधों के कारण अपराजित आप अपने व्यापक और नित्य अनुभावों से सब दुष्टों का संहार करें ।७

हरामुकस्य दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु ।
मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरिष्टस्य[1] च यत्फलम् ॥८
पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम् ।
गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं[2] जरया जर ॥९

अमुक व्यक्ति के दुर्योगों और पापों को नष्ट कर उसे कुशली करें । मृत्यु-बन्धन तथा अनिष्ट के भयप्रद फल, दुर्दैवों के फल, दूसरों के द्वारा प्रयुक्त हुए अभिचार तथा विषस्पर्श एवं महारोग से उत्पन्न होने वाले फल को शीघ्र ही जरा से जीर्ण कर दें ।८-९।

ॐनमो[3] वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने ।
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ॥१०

ॐ वासुदेव को नमस्कार है । खड्गधारी कृष्ण को नमस्कार है । कमल-नेत्र केशव और चक्रधर को नमस्कार है ।१०

नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ।
महाहयरिपुस्कन्धधृष्टचक्राय[4] चक्रिणे ॥११

कमल-किञ्जल्क के समान पीत और निर्मल वस्त्र को धारण करने वाले, रण में शत्रुओं के गर्दन को काट देने वाले और चक्र धारण करने वाले को नमस्कार है ।११

दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ।
महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ॥१२

अपने दाँतों पर पाताल से उठाई हुई पृथ्वी को धारण करने वाले (वराह) और त्रिमूर्तिमान् को नमस्कार है । महायज्ञ वराह और शेषनाग के फनों पर शयन करने वाले (भगवान् विष्णु) को नमस्कार है ।१२

---

१ ख. ग. दुरितस्य । २ घ. गदस्थ° । ३ ख. मो भगवते वा° । ४ घ. हरि-रिपुस्कन्दसृष्ट° ।

तप्तहाटककेशान्त[1] ज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥१३

तप्त स्वर्ण के समान सुनहले केशों वाले, जलती हुई अग्नि के समान नेत्र वाले, वज्र से भी कठोर नख को धारण करने वाले हे अलौकिक सिंह ! आपको नमस्कार है ।१३

काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिणे ।
तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते[2] गां नमो नमः ॥१४

अति लघु रूप धारण करने वाले, ऋक्, यजु और साम से सुशोभित तथा पृथ्वी को अपने पगों से नापने वाले वामनरूपधारी आपको बार-बार नमस्कार है ।१४

वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै ।
मर्द मर्द[3] महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ॥१५

हे वराह ! सम्पूर्ण अशुभों और पापफलों को नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। हे महादंष्ट्र ! उन पापफलों को रौंद दो, रौंद दो । १५

नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल !
भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान्[4] पश्यार्तिनाशन[5] ॥१६

हे नृसिंह ! करालमुख ! दन्त-पंक्तियों की उज्ज्जल प्रभा से प्रभासित ! हे पीड़ा-भंजक ! देखिये ! आप अपने गम्भीर गर्जन से इन दुष्ट शत्रुओं को नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये ।१६

ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् ।
प्रशमं सर्वदुःखानि[6] नयत्वस्य जनार्दनः ॥१७

वामनरूपधारिन् जनार्दन ! अपनी ऋक् यजुः और साम-गर्भित वाणी से इस व्यक्ति के सब दुःखों को शान्त कर दीजिये ।१७

ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् ।
चातुर्थिकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ॥१८
दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम् ।
शमं नयाशु गोविन्द छिन्धि छिन्ध्यस्य वेदनाम् ॥१९

---

१ घ. °शाग्रज्व° । २ क. ख. ग. ङ. च. °पायसृजते । ३ ङ. नर्द । ४ क. घ. ङ. च. °ष्टानस्यार्ति° । ५ क. ङ. °नार्दितान् । ऋ । ६ ङ. °र्वदुष्टानि ।

गोबिन्द ! एक दिन बाद आने वाले, दो दिन बाद आने वाले अथवा तीन दिनों के बाद आने वाले ज्वर को, चार दिन के बाद आने वाले उग्र ज्वर को, सदा रहने वाले ज्वर को, दोष-ज्वर, सन्निपात-ज्वर और भविष्य में आने वाले ज्वर को शीघ्र शान्त कीजिये । इस व्यक्ति की सब वेदनाओं का हरण कर लीजिये ।१८-१९।

नेत्रदु:खं शिरोदु:खं दुखं चोदरसम्भवम् ।
अनिश्वासमतिश्वासं[1] परितापं सवेपथुम् ।।२०
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम् ।
कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान् ।।२१
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ।।२२
ये[2] वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवा ।
कफोद्भवाश्च ये केचिद्ये चान्ये सान्निपातिका: ।।२३
आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादय: ।
ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य[3] कीर्तनात् ।।२४

नेत्रपीड़ा, सिर-पीड़ा, उदर-पीड़ा, साँस रुक-रुक कर आना, दमा, कम्पन, परिताप, गुदा, नासिका और पैर के रोग, भगन्दर, अतिसार, मुखरोग, वल्गुली, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और अन्यान्य रोग, वातजन्य और पित्तजन्य व्याधियों अथवा कफजन्य रोग, सान्निपातिक रोग, लूता, विस्फोटक आदि आगन्तुक रोग वासुदेव के नाम-कीर्तन से शीघ्र ही दूर हो जायें । २०-२४।

विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च ।
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ।।२५

ये सब रोग विष्णु के नामोच्चारण से नष्ट हो जायँ और विष्णुचक्र के प्रहार से भी रोग नष्ट हो जायँ ।२५

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।२६

मैं सच-सच कहता हूँ कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द नामोच्चारणरूपी ओषधि से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ।२६

---

१ घ. अन्त:श्वा° । २ क देवस्य चाज्ञया । बि° । ३ अत्र भगन्दरातिसारांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम् । इत्येतच्छ्लोकार्द्धं ख. ग. पुस्तकयोरधिकं वर्तते ।

स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद् विषम्।
दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ॥२७
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम्।
शमं नयतु तत् सर्वं वासुदेवस्य[1] कीर्तनम् ॥२८

स्थावर, जंगम या कृत्रिम विष को दाँत, नख या आकाश से उत्पन्न होने वाले या अन्य दुखःदायी विषों को वासुदेव का नाम-कीर्तन शान्त कर दे। २७-२८।

ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वैडाकिनीग्रहान्।
वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान्[2] ॥२९
शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान्ग्रहान्।
मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ॥३०
वृद्धिकाख्यान्[3] ग्रहां[4] श्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि।
बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ॥३१

ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, वेताल, पिशाच, गन्धर्व, अन्य राक्षस, शकुनी, पूतना आदि, वैनायक, ग्रह, मुखमंडी, क्रूर रेवती, वृद्ध रेवती, उग्र वृद्धिक नाम के ग्रह तथा उग्र मातृग्रह इन बालग्रहों को बालक रूपधारी विष्णु का चरित्र (कृष्णलीला) नष्ट करे।२९ ३१।

वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद्ये च बालग्रहाः क्वचित्।
नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने ॥३२
सटाकरालवदनो[5] नारसिंहो महाबलः।
ग्रहानशेषान्निःशेषान्करोतु जगतो हितः[6] ॥३३

जो कोई वृद्ध ग्रह बालग्रह अथवा नरसिंह की अग्निदृष्टि से यौवन में ही भस्म होने वाले ग्रह हैं उनको अपनी सटा (केसर) से विकराल वदन वाले महाबली नृसिंह संसार के कल्याण के लिये नष्ट कर दें।३२-३३।

नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन।
ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ॥३४

हे नरसिंह ! महासिंह ! ज्वाला-माला से प्रकाश-पूर्ण आनन वाले अग्नि-लोचन ! सर्वेश! सब अशुभ ग्रहों को खा जाइये, खा जाइये।३४

---

१ क. ख. ग. घ. च. कीर्तितोऽस्य जनार्दनः। २ क. ङ. °न्। वासुकीपू°। ३ घ. वृद्धका°। ४ क. ङ. च. °हांश्चान्यांस्त°। ५ घ. सदा क°। ६ ङ. हरिः।

ये रोगा ये महोत्पाता यद् विषं ये महाग्रहाः ।
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥३५
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः ।
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दन : ॥३६
किञ्चिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय ।
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ॥३७

इसके जितने रोग, महोत्पात, विष, महाग्रह, क्रूर भूत, दारुण ग्रह-पीड़ा, शस्त्रप्रहार के घावों से होने वाले घावों के दोष और ज्वाला-गर्दभ आदि दोष हैं—सर्वात्मा, परमात्मा, वासुदेव आप इन समस्त बाधाओं को कोई रूप धारण करके अपनी ज्वाला-माला से भीषण चक्रसुदर्शन के प्रहार से नष्ट कर दीजिये ।३५-३७।

सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत !
सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव ॥३८

हे देववर अच्युत ! सब दुष्टों को नष्ट कर दीजिये ! हे सुदर्शन ! महा-ज्वाल ! इसके सभी अशुभों को छिन्न-भिन्न कर दीजिये ।३८

सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण ।
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥३९

हे विभीषण ! तुम्हारे भय से सब दुष्ट राक्षस नष्ट हो जायँ ! सर्वात्मन् नृसिंह ! आप अपनी गर्जन से पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में रक्षा कीजिए ।३९

रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः[1] ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥४०
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः ।
यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४१
तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै ।
यथा विष्णौ स्मृते सद्यः सङ्क्षयं यान्ति पातकाः ॥४२
सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।
यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते ॥४३
सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ॥४४

---

१ ख. ग. घ. ङ. च. सुगर्जितैः ।

आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में पीछे, आगे और अगल-बगल व्यापक बहुरूप जनार्दन भगवान् रक्षा करें। जैसे कि विष्णु देव, असुर तथा सम्पूर्ण जगत्स्वरूप हैं. इस सत्य के द्वारा इसके सारे दुष्ट ग्रह शान्त हो जायें। जिस प्रकार विष्णु के स्मरण से सारे पातक शीघ्र नष्ट हो जाते हैं उस सत्य के आधार पर इसके सब दुरित नष्ट हो जायें। जैसे यज्ञेश्वर विष्णु की स्तुति देवमण्डली में भी की जाती है वैसे ही उस सत्य के द्वारा जो कल्याण मैं करता हूँ वह अविकल रूप से प्राप्त हो। इस (यजमान) को शान्ति मिले, शिव प्राप्त हो और इसके सब दुरित दूर हो जायें।४१-४४।

वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं[1] मया।
अपमार्जति[2] गोबिन्दो नरो नारायणस्तथा॥४५

मैंने वासुदेव के शरीर के रोम से उत्पन्न हुए कुशाओं से इसके सम्पूर्ण दुरित नष्ट कर दिये हैं, इसी प्रकार गोविन्द, नर और नारायण इस अपामार्जन से सब अशुभों को नष्ट करें। ४५

तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो[3] वचनाद्धरेः।
अपमार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम्॥४६

हरि के नाम कीर्तन से सब दुःखों की शान्ति हो जाये। इस प्रकार का अपामार्जन श्रेयस्कर, प्रशस्त और सब रोगों को दूर करने वाला है।४६

अहं हरिः कुशा[4] विष्णुर्हता रोगा मया तव।४७

मैं हरि हूँ, कुशा हूँ, मैं विष्णु हूँ। मैंने तुम्हारे सब रोगों को नष्ट कर दिया है। ४७

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुशापामार्जनस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः।३१

---

१ घ. °निर्मथितं°। २ घ. अपमार्जतु। ३ घ. °शमो जपना°। ङ °शमः कीर्तना°। ४ घ. कुशो।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच—

निर्वाणादिषु दीक्षासु चत्वारिंशत्तथाष्ट[1] च ।
संस्कारान् कारयेद्धीमाञ्शृणु तान् यैः सुरो भवेत् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं निर्वाण और दीक्षा-विधियों में जिन संस्कारों का करना किसी बुद्धिमान् के लिये आवश्यक होता है और जिसके द्वारा मनुष्य देवत्व प्राप्त करता है उनके विषय में कह रहा हूँ ।१

गर्भाधानं तु योन्यां वै ततः पुंसवनं चरेत् ।
सीमन्तोन्नयनं चैव जातकर्म च नाम च ॥२
अन्नाशनं ततश्चूडा ब्रह्मचर्यं[2] व्रतानि च ।
([3]चत्वारि वैष्णवी पार्थी भौतिकी श्रौतिकी तथा ॥३
गोदानं स्नातकत्वं च पाकयज्ञाश्च सप्त ते ।
अष्टका पार्वणश्राद्धं[4] श्रावण्याग्रायणीति[5] च ॥४)
चैत्री चाश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञांश्च ताञ्शृणु ।
आधानं चाग्निहोत्रं च दर्शो वै पौर्णमासकः ॥५
चातुर्मास्यं पशुबन्धः सौत्रामणिरथापरः ।
सोमस्थाः[6] सप्त शृणु अग्निष्टोमः क्रतूत्तमः ॥६

पहले गर्भाधान संस्कार तदनन्तर पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म और नामकरण संस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् अन्नप्राशन, चूडाकर्म और ब्रह्मचर्य-व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी—ये चार प्रकार की संस्कार-विधियाँ हैं। उपर्युक्त चार और गोदान, स्नातकत्व और पाकयज्ञ—ये मिलाकर इनकी संख्या सात हो जाती है। अष्टका पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रायणी, चैत्री और आश्वयुजी—ये पाकयज्ञ हैं। अब सात हविर्यज्ञों की नामावली सुनो! ये हैं—आधान, अग्निहोम, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध और सौत्रामणि। अब सात सोमसंस्थाओं के सम्बन्ध में सुनिये ।२-६।

---

१ क. ङ. च. °ष्टकम् । सं° । २ ख. ग. घ. ङ. °चर्यंव्र° । ६ चत्वारि······ च पुस्तके नास्ति । ४ ख. ग. °र्वणं श्रा° । ५ घ. °वण्यग्रां । ६ घ. उदक्थश्च ।

अत्यग्निष्टोम उक्थ्यश्च[1] षोडशी वाजपेयकः[2]।
[3]अतिरात्रोऽप्तोर्यामिश्च सहस्रेशा सवा इमे ॥७

उत्तम क्रतु (यज्ञ), अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेयक, अतिरात्र, आप्तोर्याम सहस्रेश सव (यज्ञ) कहलाते हैं ।७

[4]हिरण्याङ्घ्रिर्हिरण्याक्षो हिरण्यमित्र इत्यतः।
हिरण्यपाणिर्हेमाक्षो हेमाङ्गो हेमसूत्रकः ॥८
हिरण्यास्यो हिरण्याङ्गो हेमजिह्वो हिरण्यवान्।
अश्वमेधो हि सर्वेशो गुणाश्चाष्टाथ ताञ्छृणु ॥६

हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्रक, हिरण्यास्य (हिरण्यमुख), हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सर्वेश अश्वमेध—ये उत्तम यज्ञ हैं। अब अष्ट गुण का वर्णन सुनिये ।८-६।

दया च सर्वभूतेषु क्षान्तिश्चैव तथार्जवम्।
शौचं चैवमनायासो मङ्गलं चापरो गुणः ॥१०
अकार्पण्यंचास्पृहा च मूलेन जुहुयाच्छतम्।
सौरशाक्तेयविष्णवीशदीक्षास्वेते समाः स्मृताः ॥११

ये हैं—सब प्राणियों पर दया, क्षमा, विनम्रता, पवित्रता, अनायास (शक्ति के अनुसार श्रम), मङ्गल, अकृपणता (उदारता) और अस्पृहा (सन्तोष)। प्रत्येक दीक्षा-कर्म में मूलमन्त्र से सौ बार आहुति देनी चाहिये ।१०-११।

संस्कारैः संस्कृतश्चैतैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
सर्वरोगादिनिर्मुक्तो देववद् वर्तते नरः ॥१२

इन संस्कारों से संस्कृत मनुष्य भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करता है और सब प्रकार के रोगों से मुक्त होकर देवता के समान पूज्य होता है ।१२

जप्याद्धोमात्पूजनाच्च ध्यानाद्देवस्य चेष्टभाक् ॥१३

इष्टदेव के जप, हवन, पूजन और ध्यान से मनुष्य निःसन्देह अपने इष्ट को प्राप्त कर लेता है ।१३

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२

———

१ उक्थश्च। २ क. ङ. च. °कः। त्रिरात्रश्चाप्तो°। ३ ख. घ. °रात्राप्तो°। ४ ख. °व्याङ्घ्रिर्हि°।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रकारोपणविधिकथनम्

अग्निरुवाच—

पवित्रारोपणं[1] वक्ष्ये वर्षपूजाफलं[2] हरेः ।
आषाढादौ कार्तिकान्ते प्रतिपत्[3] त्यज्यते तिथिः ।।१

अग्निदेव बोले—अब मैं पवित्रारोपण विधि और हरि की वर्ष-पूजा के फल का वर्णन करूँगा। आषाढ़ से लेकर कार्तिक तक उपर्युक्त विधियों का अनुष्ठान किया जाता है परन्तु प्रत्येक मास की प्रतिपदा तिथि इन कर्मों में अग्राह्य होती है।१

श्रिया गौर्या गणेशस्य सरस्वत्या गुहस्य च ।
मार्तण्डमातृदुर्गाणां [4]नागर्षिहरिमन्मथैः ।।२
शिवस्य ब्रह्मणस्तद्वद् द्वितीयादितिथिक्रमात् ।
यस्य देवस्य यो भक्तः पवित्रा तस्य सा तिथिः ।।३

श्री, गौरी, गणेश, सरस्वती, गुह, सूर्य, मातृका, दुर्गा, नाग, ऋषि, हरि, कामदेव, शिव और ब्रह्मा की क्रमशः द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णमासी एवं अमावास्या तिथियाँ हैं। जो जिस देवता का भक्त होता है उसके लिये उस देवता की तिथि पवित्र होती है।२-३।

आरोहणे तुल्यविधिः पृथङ्मन्त्रादिकं यदि ।
सौवर्णं राजतं ताम्रं नेत्रकार्पासिकादिकम् ।।४
ब्राह्मण्या कर्तितं सूत्रं तदलाभे तु संस्कृतम् ।
द्विगुणं[5] त्रिगुणीकृत्य तेन कुर्यात्पवित्रकम् ।।५

पवित्रक के लिये सोना, चाँदी, ताँबा, नेत्र (रेशम) और कपास का सूत उत्तम होता है। सूत ब्राह्मणी के हाथ का कता हुआ होना चाहिये। अन्यथा सूत का संस्कार करके उसका उपयोग किया जा सकता है। दुगने सूत को तिगुना करके उससे पवित्रक बनाना चाहिये।४-५।

---

१ घ.° रोहणं। २ घ. °जाकलं ह°। ३ ख. °पद्वर्तते। घ. °पद्वनदा ति°। ङ. °पद्वलना ति°। ४ ङ. नागारिह°। ५ ख. घ. त्रिगुणं।

([1] अष्टोत्तरशतादूर्ध्वं तदर्धं चोत्तमादिकम् ।)
क्रियालोपविधातार्थं[2] यत्त्वयाभिहितं प्रभो ॥६
मया तत् क्रियते देव यथा यत्र पवित्रकम् ।
अविघ्नं तु भवेदेतत्[3] कुरु नाथ[4] तथाव्यय ॥७

एक सौ आठ अंगुल या उससे कुछ अधिक लम्बा सूत उत्तम कोटि का और इसका आधा लंबा सूत मध्यम कोटि का होता है । पहले त्रुटियों अथवा क्रियालोप-दोष को दूर करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये कि "हे प्रभो ! क्रिया-लोप-दोष को दूर करने के लिये जो कुछ तुम्हारे द्वारा शास्त्रों में विधि प्रदर्शन किया गया है उसी के अनुसार पवित्रक-आरोपण कर रहा हूँ । हे नाथ ! अव्यय ! आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे कि यह शुभ कर्म निर्विघ्न समाप्त हो सके । ६-७।

प्रार्थ्य तन्मण्डलादौ तु गायत्र्या बन्धयेन्नरः ।
ॐ नमो नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ॥८
ततो विष्णुः प्रचोदयात्[5]
एषा प्रयोज्या सर्वत्र देवानामनुरूपतः ॥९
जानूरुनाभिपादान्तं[6] प्रतिमासु पवित्रकम् ।
पादान्ता वनमाला स्यादष्टोत्तरसहस्रतः ॥१०

इस प्रकार प्रार्थना करके भक्त गायत्री मन्त्र से बने हुए मण्डल के चारों ओर रक्षा-बन्धन करे । मन्त्र इस प्रकार है—"ॐ नमो नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । ततो विष्णुः प्रचोदयात् ॥"

देवों के अनुरूप इस गायत्री-मन्त्र में परिवर्तन भी कर लेना चाहिये । प्रतिमा को जानु (घुटना) ऊरू और पैर तक लम्बा पवित्रक देना चाहिये । एक हजार आठ मणियों से बनी हुई वनमाला सदा पैर तक होनी चाहिये । ८-१०।

---

१ अष्टोत्तर……आदिकम् ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ ङ. विधानार्थं । ३ ख. ग. घ. ङ. च. °वेदत्र कुरु । ४ क. ख. ग. घ. च. °थ जयाव्य° । ५ ख. ग. घ. °याद्देवादिरनु । ६ ख. ग. ङ. च. °भिमानान्त° । घ. °भिनामान्त° ।

मालां तु कल्पसाध्यां वा द्विगुणां षोडशाङ्गुलात् ।
कर्णिकाकेसरैः[1] पत्रैर्मन्त्राद्यं मण्डलान्तकम् ॥११

माला शक्ति के अनुसार अथवा बत्तीस अंगुल की होनी चाहिये । एक अंगुल परिमाण के पद्ममंडल में कर्णिका, केसर, पत्र और मन्त्र तथा उसके बाह्य परिधि का पूजन करना चाहिये ।११

मण्डलाङ्गुलमात्रैकचक्राङ्गादौ[2] पवित्रकम् ।
स्थाण्डिलेऽङ्गुलमानेन आत्मनः सप्तविंशतिः ॥१२
आचार्याणाञ्च सूत्राणि पितृमात्रादिकैः[3] स्वकैः ।
नाभ्यन्तं द्वादशग्रन्थि तथा गन्धपवित्रके ॥१३

अंगुल-परिमाण से बनी हुई वेदिका के ऊपर अपने सूत्र, आचार्य और माता-पिता का पूजन करना चाहिये । (वेदिका की) नाभि के एक ओर बारह सूत्रों तथा पवित्रकों का पूजन करना चाहिये ।१२-१३।

अङ्गुलात्कल्पनादौ द्विर्माला चाष्टोत्तरं शतम् ।
अथवार्कचतुर्विंशषट्त्रिंशन्मालिका द्विज[4] ॥१४
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैर्मन्दाद्यैर्मालिकार्थिभिः ।
कनिष्ठादौ द्वादश वा ग्रन्थयः स्युः पवित्रके ॥१५
रवेः कुम्भहुताशादेः सम्भवे विष्णुवन्मतम् ।
पीटस्य पीठमानं स्यान्मेखलान्तं च कुण्डके ॥१६

तदनन्तर एक सौ आठ मन्त्रों को पढ़कर दो अँगुलियों से दो मालाओं को बाँधना चाहिये । उसके बाद अनामिका और मध्यमा अँगुलियों से सूर्य देवता के लिये अलग चौबीस और छत्तीस मालाओं का पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् कनिष्ठिका से प्रारम्भ करके अँगुलियों से विष्णु के समान सूर्य और अग्नि इत्यादि देवताओं की और बारह सूत्रों को स्थापित करना चाहिये ।१४-१६।

यथाशक्ति सूत्रग्रन्थिः परिचारेऽथ वैष्णवे ।
सूत्राणि वा सप्तदश सूत्रेण त्रिविभक्तके ॥१७
रोचनागरुकर्पूरहरिद्राकुङ्कुमादिभिः ।
रञ्जयेच्चन्दनाद्यैर्वा स्नानसन्ध्यादिकृन्नरः ॥१८

---

१ ख. घ. °सरं पत्रं मन्त्रा° । २ ख. °क्राङ्कादौ । ३ ख. °दिषुते स्वकें । ना° । घ °दि पुस्तके । ना° । ४ ख. घ. द्विजः ।

यथाशक्ति वेदी के ऊपर विष्णु की पूजन-सामग्री के साथ यज्ञोपवीत को रख देना चाहिये। स्नान और सन्ध्या करने वाले पुरुष को रोली, अगुरु, कपूर, हल्दी, लाक्षारस अथवा चन्दन से यज्ञोपवीत के सत्रह सूत्रों को तीन भागों में विभक्त करके रँग लेना चाहिये।१७-१८।

एकादश्यां यागगृहे भगवन्तं हरिं यजेत्।
समस्तपरिवाराय बलिं दद्यात्समर्चयेत् ॥१९
क्षौं क्षेत्रपालाय द्वारान्ते द्वारोपरि तथा श्रियम्।
धात्रे[1] दक्षविधात्रे च गङ्गा च यमुनां तथा ॥२०
शङ्खपद्मनिधी पूज्य मध्ये वस्त्रप्रसारणम्[2]।
सारङ्गायेति भूतानां भूतशुद्धिं स्थितश्चरेत् ॥२१

एकादशी तिथि को याग-गृह में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये। पहले समस्त परिवार को बलि दे तत्पश्चात् पूजा करे। 'क्षौं क्षेत्रपालाय नमः" —इस मन्त्र से द्वारान्त पर क्षेत्रपालों को बलि दे। द्वार के ऊपर लक्ष्मी, धातृ, दक्षविधातृ गंगा, यमुना, शंख और पद्मनिधि की पूजा करके बलि देनी चाहिये। द्वार के मध्य भाग में एक वस्त्र 'सारङ्गाय नमः' कहकर फैला दे। तत्पश्चात् स्थित होकर भूतों की पूजा करे और भूतशुद्धि करे।१९-२१।

"ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः ॥२२
ॐ ह्लूं हः फट् रूपतन्मात्रं संहरामि नमः।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ॥२३
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः।
([3]पंश्चाद्घातैर्गन्धतन्मात्रस्वरूपं भूमिमण्डलम् ॥२४
चतुरस्रं च पीठं च काञ्चनं वज्रलाञ्छितम्।
इन्द्रादिदैवतं पादयुग्ममध्यगतं स्मरेत् ॥२५
शुद्धं च रसतन्मात्रं प्रविलाप्याथ संहरेत्।
रसमात्रं रूपमात्रे क्रमेणानेन पूजकः ॥२६

१ घ. °त्रे दक्षे वि° । २ ख. ग. घ. च. वास्त्वपवारणम्। ३ पश्चोद्घातैः··· भूमिमण्डलम्·······ङपुस्तके नास्ति।

"ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः" "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रस तन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः" ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्श तन्मात्रं संहरामि नमः', ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः "— इन पाँच प्रार्थनामन्त्रों से गन्धतन्मात्रस्वरूप, चौकोर वज्र से चिह्नित सुवर्ण-मय पीठ, इन्द्रदेवतात्मक विष्णु के दोनों चरणों के मध्यवर्ती भूमण्डल का स्मरण करना चाहिये और साधक को शुद्ध रसतन्मात्र में विलयित कर संहार कर देना चाहिये ।२२-२६।

ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ॥२७
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः २८
जानुनाभिमध्यगतं श्वेतं वै पद्मलाञ्छितम् ।
शुक्लवर्णं चार्धचन्द्रे ध्यायेद्वरुणदैवतम् ॥२९
चतुर्भिश्च तदुद्घातैः शुद्धं तद्रसमात्रकम् ।
संहरेद्रसतन्मात्रं रूपमात्रे च योजयेत् ॥३०

इस क्रम से रसतन्मात्रा को रूपतन्मात्रा में आगे कहे हुए मन्त्रों का उच्चारण कर संहृत करे । मन्त्र यह है—"ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रसतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संह रामि नमः" । तदनन्तर जानु और नाभि के मध्य में श्वेतपद्म से युक्त, शुक्लवर्ण के वरुण देवतात्मक अर्धचन्द्र का ध्यान करना चाहिये । इन चार मन्त्रों से शुद्ध रस तन्मात्र को संहृत करके रसतन्मात्रा को रूपतन्मात्र से युक्त कर देना चाहिये ।२७-३०।

ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ॥३१
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।
इति त्रिभिस्तदुद्घातैस्त्रिकोणं वह्निमण्डलम् ॥३२
नाभिकण्ठमध्यगतं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् ।
ध्यात्वानलाधिदैवं तच्छुद्धं स्पर्शे लयं नयेत् ॥३३

"ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः"—इन तीन मन्त्रों से त्रिकोण वह्निमंडल, नाभि और कण्ठ के मध्यगत स्वस्तिक चिह्न से युक्त अग्निदेव का ध्यान करके शुद्ध रूपतन्मात्र को स्पर्शतन्मात्र में विलीन करना चाहिये।३१-३३।

ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥३४
कण्ठनासामध्यगतं वृत्तं वै वायुमण्डलम् ।
द्विरुद्घातैर्धूमवर्णं ध्यायेच्छुद्धेन्दुलाञ्छितम् ॥३५
स्पर्शमात्रं शब्दमात्रैः संहरेद् ध्यानयोगतः ।
ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥३६
एकोद्घातेन चाकाशं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
नासापुटशिखान्तस्थमाकाशमुपसंहरेत् ॥३७
शोषणाद्यैर्देहशुद्धिं कुर्यादेवं क्रमात्ततः ।
शुष्कं कलेवरं ध्यायेत् पादाद्यं च शिखान्तकम् ॥३८

"ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं स्पर्शतन्मात्रमुपसंहरामि नमः", "ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रमुपसंहरामि नमः"—इन दो मन्त्रों से कण्ठ और नासिका के मध्य स्थित गोलाकार धूमवर्ण और पूर्णचन्द्र से युक्त वायुमण्डल का ध्यान करके स्पर्शतन्मात्रा को ध्यान योग के द्वारा शब्द तन्मात्रा में विलीन करना चाहिये। ॐ ह्लूं हः फट् ह्लूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः "—इस मन्त्र से शुद्ध स्फटिक के समान, नासिका और शिखान्तस्थ आकाश का ध्यान करके उसे संहृत करना चाहिये। इस प्रकार शोषण (योग-क्रिया) के द्वारा क्रमशः देह-शुद्धि करनी चाहिये। तत्पश्चात् पैर से लेकर शिखा तक सम्पूर्ण शुष्क कलेवर का ध्यान करना चाहिये।३४-३८।

यं-बीजेन वं-वीजेन ज्वालामालासमायुतम् ।
देहं रमित्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्राद् विनिर्गमम् ॥३९
बिन्दुं ध्यात्वा चामृतस्य तेन भस्मकलेवरम् ।
सम्प्लावयेल्लमित्यस्माद् देहं सम्पाद्य दिव्यकम् ॥४०

'यं' 'वं'—इन बीजों से युक्त ज्वालामाला से समन्वित ब्रह्मरन्ध्र से उत्पन्न 'रम्' बीज से युक्त देह को अमृत-विन्दु का ध्यान कर उससे भस्म युक्त कलेवर को आर्द्र करना चाहिये । 'लं' मन्त्र से शरीर को दिव्य बना देना चाहिये ।३९-४०।

न्यासं कृत्वा करे देहे मानसं यागमाचरेत् ।
विष्णुं साङ्गं हृदि पद्मे मानसैः कुसुमादिभिः ॥४१
मूलमन्त्रेण देवेशं प्रार्चयेद्[1] भुक्ति मुक्तिदम् ।
स्वागतं देव ! देवेश सन्निधौ भव केशवः ॥४२
गृहाण मानसीं पूजां यथार्थं परिभाविताम् ।
आधारशक्तिः कूर्मोऽथ पूज्योऽनन्तो मही ततः ॥४३

हृदय-कमल पर अंग सहित विष्णु की प्रतिष्ठा कर मानस कुसुमों से मूल मंत्र के द्वारा भुक्ति और मुक्ति के दाता देवेश का मानस याग शरीर और हाथ पर न्यास करके करना चाहिये । मन्त्रदेव ! देवेश ! तुम्हारा स्वागत है । केशव ! तुम्हारा सामीप्य मुझे प्राप्त हो । श्रद्धापूर्वक अर्पित की हुई मानसी पूजा को ग्रहण करो । इस प्रकार विष्णु की मानसी पूजा करके आधार शक्ति, कूर्म और मही की पूजा करनी चाहिये । ४१-४३।

मध्येऽग्न्यादौ च धर्माद्या अधर्माद्याश्च मुख्यगाः ।
सत्त्वादिमध्ये पद्मं च मायाविद्याख्यतत्त्वके ॥४४
कालतत्त्वं च सूर्यादिमण्डलं पक्षिराजकः ।
मध्ये ततश्च वायव्यादीशान्ता गुरुपङ्क्तिका ॥४५
गणः सरस्वती पूज्या नारदो नलकूबर : ।
गुरुर्गुरोः पादुका च परोगुरुश्च पादुका ॥४६
पूर्वसिद्धाः परसिद्धाः केसरेषु च शक्तयः ।
लक्ष्मी सरस्वती प्रीतिः कीर्तिः शान्तिश्च कान्तिका ॥४७
पुष्टिस्तुष्टिर्महेन्द्राद्या मध्ये चावाहितो हरेः ।
धृतिः श्रीरतिकान्त्याद्या मूलेन स्थाप्यतेऽच्युतः ॥४८

अग्नि आदि के मध्य में और वायव्य तथा ईशान्त तक गुरु, गण, सरस्वती, नारद, नलकूबर, गुरु, गुरुपादुका, पर गुरु, पादुका की पूजा करनी चाहिये । कमल के सरों पर पूर्व सिद्ध, पर सिद्ध, शक्तियों, लक्ष्मी, सरस्वती,

---

१ क. ङ. च. प्रार्थये० ।

प्रीति, कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि, तुष्टि, महेन्द्र आदि की स्थापना करके मध्य में हरि का आह्वान करना चाहिये। धृति, श्री, रति, कान्ति की प्रतिष्ठा करके मूलमन्त्र से अच्युत की स्थापना करनी चाहिये।४४-४८।

ॐ अभिमुखो भवेति प्रार्थ्य प्राच्यां सन्निहितो भव।
विन्यस्यार्ध्यादिकं दत्त्वा गन्धाद्यैर्मूलतो यजेत्॥४९

"ॐ अभिमुखो भव"---इस मन्त्र से प्रार्थना करके "ॐ प्राच्यां सन्निहितो भव"—इस मन्त्र से प्रतिष्ठा करके अर्ध्य आदि देकर मूलमन्त्र से गन्ध आदि के द्वारा पूजा करनी चाहिये।४९

ॐ भीषय भीषय हृच्छिरस्त्रासय वै नमः।
मर्दय मर्दय शिखामग्न्यादौ क्रमतोऽस्त्रकम्॥५०

"ॐ भीषय भीषय हृच्छिरस्त्रासय वै नमः मर्दय मर्दय शिखामग्न्यादौ"—इस मन्त्र से क्रम से अस्त्रक करे।५०

"रक्ष रक्ष प्रध्वंसय कवचाय नमः।
ह्रूं फट् अस्त्राय नमो मूलबीजेन चाङ्गकम्॥५१

"ॐ रक्ष रक्ष प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय नमः ह्रूं फट् अस्त्राय नमः—इस मन्त्र-बीज से अङ्गन्यास करना चाहिये।५१

पूर्वदक्षाप्यसौम्येषु मूर्त्यावरणमर्चयेत्।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः॥५२

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की मूर्तियों की सांगोपांग पूजा करनी चाहिये।५२

अग्न्यादौ श्रीरतिधृतिकान्तयो मूर्तयो हरेः।
शङ्खं चक्रं गदां पद्ममग्न्यादौ पूर्वकादिकम्॥५३

अग्नि आदि कोणों में श्री, रति, धृति, कान्ति आदि विष्णु-मूर्तियों को स्थापित करके उनकी पूजा करनी चाहिये। अग्निकोण से पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म की स्थापना करनी चाहिये।५३

शार्ङ्गं च मुसलं खड्गं वनमालां च तद्बहिः।
इन्द्राद्यांश्च तथानन्तं नैर्ऋत्यां वरुणं ततः॥५४
ब्रह्मेन्द्रेशानयोर्मध्ये अस्त्रावरणकं बहिः॥५५
ऐरावतस्ततश्छागो महिषोऽथ नगेशयः॥
मृगः शशोऽथ वृषभः कूर्मो हंसस्ततो बहिः।
पृश्निगर्भः कुमुदाद्या द्वारपाला द्वयं द्वयम्॥५६

पूर्वाद्युत्तरद्वारान्तं हरिं नत्वा बलिं बहिः ।
विष्णुपार्षदेभ्यो नमो बलिपीठे बलिं ददेत् ॥५७

उसके बाद बाहर की ओर शार्ङ्ग धनुष्, मुसल, खड्ग, वनमाला की तथा कोणों में इन्द्र आदि देवों की तथा अनन्त और नैर्ऋत कोण में वरुण की, ईशान और पूर्व दिशा के मध्य में ब्रह्मा की स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। अस्त्र और आवरण को बाह्य भाग में स्थापित करना चाहिये। ऐरावत, छाग, भैंसा, नगेशय, मृग, खरहा, बैल, कछुआ और हंस को बाह्य भाग में स्थापित्त करना चाहिये। पृश्निगर्भ, कुमुद आदि दो द्वारपालों को द्वारदेश में स्थापित करके तदनन्तर पूर्व से लेकर उत्तर द्वार तक हरि को ले जाकर बाहर नमस्कार करे। "विष्णुपार्षदेभ्यो नमः"—इस मन्त्र से बलिपीठ पर बलि चढ़ानी चाहिये।५४-५७।

([1]विश्वाय विष्वक्सेनात्मने ईशानके यजेत्)
देवस्य दक्षिणे हस्ते रक्षासूत्रं च बन्धयेत् ॥५८

ईशान कोण में "विश्वाय विष्वक्सेनाय नमः" कहकर विष्वक्सेन की पूजा करे और देवता के दाहिने हाथ में रक्षासूत्र बाँध दे।५८

संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदायिने ।
पवित्रारोहणायेदं कौतुकं धारय ॐ नमः ॥५९

रक्षा-सूत्र-बन्धन मन्त्र—"एक वर्ष तक की हुई पूजा के सम्पूर्ण फल को देने वाले पवित्रक पर आरोहरण करने के लिये इस कौतुक को धारण कीजिये। आपको नमस्कार है।

उपवासादिनियमं कुर्याद्वै देवसन्निधौ ।
उपवासेन नियतो देवं सन्तोषयाम्यहम् ॥

देवता के समीप उपवासादि नियमों को करना चाहिये। उपवास संकल्प-मन्त्र—"नियमपूर्वक उपवास के द्वारा देव को प्रसन्न करूँगा"।६०

कामक्रोधादयः सर्वे मा मे तिष्ठन्तु सर्वथा ।
अद्यप्रभृति देवेश यावद् वैशेषिकं दिनम् ॥६१

देवेश! आज से लेकर जब तक वैशेषिक दिन (व्रत का दिन) रहे तब तक काम, क्रोध आदि का आक्रमण मेरे ऊपर न हो।६१

---

१ विश्वाय...... ...यजेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति ।

यजमानो ह्यशक्तश्चेत्कुर्यान्नक्तादिकं व्रती ।
हुत्वा विसर्जयेत् स्तुत्वा श्रीकरं नित्यपूजनम् ॥६२
ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नम : ॥६३

यदि यमजान अधिक दिन तक उपवास करने में समर्थ न हो तो एक दिन और रात व्रत करे। उपवासान्त में हवन करके श्रीकर का नित्यपूजन करके उसका विसर्जन करना चाहिये। विसर्जन-मन्त्र यह है—"ॐ ह्रीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः" ।६२-६३।

**इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वदेवतासाधारण-
पवित्रकारोपणविधिकथनं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।३३**

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रकारोपणे पूजाहोमादिविधिः

अग्निरुवाच—

विशेदनेन मन्त्रेण यागस्थानं च भूषयेत् ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ॥१
ऋग्यजुः सामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे ।
विलिख्य मण्डलं सायं यागद्रव्यादि चाहरेत् ॥२

अग्निदेव बोले—"ब्राह्मणों (ज्ञानियों) की रक्षा करने वाले देव, श्रीधर अव्ययात्मा, ऋक्–यजुः–साम–रूप शब्ददेह विष्णु को नमस्कार है" । इसका उच्चारण करता हुआ साधक यज्ञमण्डप में प्रवेश करे और यज्ञ-स्थान को सजा-कर मण्डल का चित्रण करे और सायंकाल याग-सामग्री मँगा ले ।१-२।

प्रक्षालितकाराङ्घ्रिः सन् विन्यस्यार्घ्यकरो नरः ।
अर्घ्याद्भिस्तु शिरः प्रोक्ष्य द्वारदेशादिकं तथा ।३
आरभेद् द्वारयागं च तोरणेशान्प्रपूजयेत् ।
अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः पूर्वादिगा नगाः ॥४
ऋगिन्द्रशोभनं प्राच्यां यजुर्यमसुभद्रकम् ।
सामापश्च सुधन्वाख्यं सोमाथर्वसुहोत्रकम् ॥५

अपने हाथ-पैर धोकर, हाथ में अर्घ्य पात्र रखकर, अर्घ्य जल से सिर पर मार्जन करके द्वारदेश पर भी उस अर्घ्यजल को छिड़क देना चाहिये । पहले द्वार-यज्ञ करे और तोरणेशों की पूजा करे । पीपल, गूलर, बरगद तथा पाकड़—इन वृक्षों की पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से पूजा करनी चाहिये । पूर्व दिशा में ऋग्वेद, इन्द्र तथा शोभन की; दक्षिण में यजुर्वेद, यम और सुभद्र की; पश्चिम में सामवेद, वरुण और सुधन्वा की और उत्तर में अथर्ववेद, सोम और सुहोत्र की पूजा करनी चाहिये ।३-५।

तोरणान्ताः[1] पताकाश्च कुमुदाद्या घटद्वयम् ।
द्वारि द्वारि स्वनाम्नाच्र्याः पूर्वे पूर्णश्च पुष्करः ॥६
आनन्दनन्दनौ दक्षो वीरसेनः सुषेणकः ।
सम्भवप्रभवौ सौम्ये द्वारपांश्चैव पूजयेत् ॥७

---

१. क. ग. घ. ङ. च. °णान्तः प° ।

प्रत्येक द्वार के मध्य में तोरण, पताका, कुमुद आदि और दो घट की स्थापना करके गोत्र आदि पूर्वक अपना नाम लेकर पूजा करनी चाहिये। पूर्व दिशा में पूर्ण और पुष्कर का, दक्षिण में आनन्द और नन्दन का, पश्चिम में वीरसेन और सुषेण का तथा उत्तर में सम्भव ओर प्रभव नामक द्वारपालों का पूजन करना चाहिये।६-७।

अस्त्रजप्तपुष्पक्षेपाद्विघ्नानुत्सार्य संविशेत्[1]।
भूतशुद्धिं विधायाथ विन्यस्य कृतमुद्रक:[2] ॥८
फट्कारान्तं[3] शिखां जप्त्वा सर्षपान्दिक्षु निक्षिपेत्।
वासुदेवेन गोमूत्रं सङ्कर्षणेन गोमयम् ॥९
प्रद्युम्नेन पयस्तज्जाद्दधि नाराणाद् घृतम्।
एकद्वित्र्यादिवारेण[4] घृताद्वै भागतोऽधिकम् ॥१०
घृतपात्रे तदेकत्र पञ्चगव्यमुदाहृतम्।
मण्डपप्रोक्षणायैकं चापरं प्राशनाय च ॥११
स्नानाय[5] दशकुम्भेषु इन्द्राद्याँल्लोकपान्यजेत्।
पूज्याज्ञां श्रावयेत्तांश्च स्थातव्यं चाज्ञया हरे: ॥१२

अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके फूलों को चारों ओर बिखेर कर यक्ष-मण्डप में प्रवेश करना चाहिये। भूतशुद्धि करके अंगन्यास को और मुद्राओं को धारण कर फट्कारान्त मन्त्र का जप करके सरसों को चारों ओर बिखेर दे। फिर पञ्चगव्य बनाना चाहिये। पञ्चगव्य बनाने की विधि—वासुदेव मन्त्र से गोमूत्र को, सङ्कर्षण-मन्त्र से गोबर को, प्रद्युम्न-मन्त्र से दूध को, अनिरुद्ध-मन्त्र से दधि को और नारायण-मन्त्र से गाय के घी को मिलाना चाहिये। अन्य पदार्थ घृत की अपेक्षा क्रमश: एक, दो, तीन और चार भाग अधिक होना चाहिये। इन सब वस्तुओं को एक घी के बरतन में मिला देना चाहिये। इसे ही पञ्चगव्य कहते हैं। उसके एक भाग से मण्डप का प्रोक्षण करे और दूसरे भाग को आचमन और स्नान के लिये रखे। दस कलशों पर इन्द्र आदि दस लोकपालों को स्थापित करके पूजन करना चाहिये और विष्णु की आज्ञा से यहाँ सदा स्थित रहना चाहिए। ८-१२।

---

१ ख. सङ्क्षिपेत्। २ क. ङ. च कृतमूत्रक:। ३ क. ख. ग. ङ. च. °रान्तसिंहजप्तस°। ४ ख. ग. घ. च. °वाराणि घृ°। ५ घ. आनीय।

यागद्रव्यादि[1] संरक्ष्य विकिरान् विकरेत्ततः ।
मूलाष्टशतसञ्जप्तान् कुशकूर्चान् हरेच्च तान् ।।१३

यज्ञ-सामग्री की देखभाल करने के बाद विकिर को चारों ओर बिखेर दे । एक सौ आठ बार मूल-मन्त्रों को जप कर कुश की कूँची से अभिमन्त्रित करे और उनको (विकिरों को) इकट्ठा कर ले ।१३

ऐशान्यां दिशि तत्रस्थं स्थाप्य कुम्भं च वर्धनीम् ।
कुम्भे साङ्गं हरिं प्राच्यं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ।।१४

ईशान-कोण में एक कलश स्थापित करके उसके समीप ही वर्धनी स्थापित करे । कलश पर सपरिवार विष्णु की साङ्गोपाङ्ग पूजा करनी चाहिये और वर्धनी पर अस्त्र की पूजा करनी चाहिये ।१४

प्रदक्षिणं यागगृहं[2] वर्धनीछिन्नधारया ।
सिञ्चन्नयेत्ततः कुम्भं पूजयेच्च स्थिरासने ।।१५

यज्ञगृह की प्रदक्षिणा करके झाड़ू से जल को छिड़कता हुआ कलश को उस स्थान से उठाकर किसी स्थिर आसन पर रखकर पूजा करे ।१५

सपञ्चरत्नवस्त्राढ्ये[3] कुम्भे गन्धादिभिर्हरिम् ।
वर्धन्यां हेमगर्भायां यजेदस्त्रं च वामतः ।।१६

पञ्चरत्न और वस्त्र से अलङ्कृत उस घट पर गन्ध आदि से हरि की पूजा करके वर्धनी में सोना रखकर बाईं ओर अस्त्र की पूजा करे ।१६

तत्समीपे वास्तुलक्ष्मीभूविनायकमर्चयेत् ।
स्नपनं कल्पयेद् विष्णोः सङ्क्रान्त्यादौ तथैव च[4] ।।१७

उसके समीप ही वास्तुलक्ष्मी और भूविनायक की पूजा करे । सङ्क्रान्ति आदि तिथियों में विशेष रूप से विष्णु की स्नान-व्यवस्था करनी चाहिये ।१७

पूर्णकुम्भानवस्थाप्य[5] नवकोणेषु निर्व्रणान् ।
पाद्यमर्घ्यं[6] चाचमनं पञ्चगव्यं च निक्षिपेत् ।।१८

शेष कोनों में भी नव पूर्ण-कुम्भों को जिनमें छेद न हो—स्थापित करके पाद्य, अर्घ्य, आचमन और पञ्चगव्य छोड़ दे ।१८

---

१ क. ङ च.° व्यादिसंरक्षा वि० । २ ख. ग. घ. °र्धन्याश्छिन्न° । ३ क. ङ. च. °स्त्राद्यैः कु० । ४ क. ख. ग. ङ. च. च । पूर्वे कु० । ५ घ.° म्भान्नव स्था० । ६ घ. मर्घ्यमाचमनीयं प० ।

पूर्वादिकलशेऽग्न्यादौ पञ्चामृतजलाधिकम् ।
दधिक्षीरं मधूष्णोदं पाद्यं स्याच्चतुरङ्गकम् ॥१९

अग्नि आदि कोणों में स्थापित प्रत्येक कलश में पञ्चामृत और दही, दूध, मधु और गरम जल मिलाकर बनाया हुआ चतुरङ्गक पाद्य देना चाहिये ।१९

पद्मश्यामाकदूर्वाश्च विष्णुपत्नी च पाद्यकम् ।
तथाष्टाङ्गार्घ्यमाख्यातं यवगन्धफलाक्षतम् ॥२०

कमल, सावाँ, दूब, तुलसीदल, जौ, गन्ध, फल और अक्षत से मिलाकर बनाया हुआ अर्घ्य अष्टाङ्गक अर्घ्य कहा जाता है ।२०

कुशाः सिद्धार्थपुष्पाणि तिला[1]द्रव्याणि चाऽऽहरेत्[2] ।
लवङ्गकक्कोलयुतं दद्यादाचमनीयकम् ॥२१

कुश, श्वेत सरसों का फूल, तिल और द्रव्य—पूजन के लिये रखना चाहिये । लवङ्ग और कक्कोल से युक्त जल को आचमन के लिये देना चाहिये ।२१

स्नपयेन्मूलमन्त्रेण देवं पञ्चामृतैरपि ।
शुद्धोदं मध्यकुम्भेन देवमूर्ध्नि विनिःक्षिपेत् ॥ २२

मूल-मन्त्र के उच्चारण द्वारा पञ्चामृत से विष्णु को स्नान कराना चाहिये । मध्य कलश से शुद्ध जल को निकालकर देवता के सिर पर छिड़के ।२२

कलशान्निःसृतं तोयं दूर्वाग्रं[3] संस्पृशेन्नरः ।
शुद्धोदकेन पाद्यं च अर्घ्यमाचमनं ददेत् ॥२३

स्वयं यजमान कलश से निकले हुए जल एवं दूर्वाग्र का स्पर्श करे । तत्पश्चात् देवता को शुद्ध जल का पाद्य, अर्घ्य और आचमन दे ।२३

परिमृज्य पटेनाङ्गं सवस्त्रं मण्डलं नयेत् ।
तत्राभ्यर्च्याचरेद् होमं कुण्डादौ प्राणसंयमी ॥२४

किसी वस्त्र से हरि का अंग सुखाकर वस्त्र आदि पहनाकर मण्डल में ले जाय । वहाँ भलीभाँति पूजा करके वह प्राण-संयमी व्यक्ति अग्नि में हवन करे ।२४

---

१ क. ङ. तिलदर्भाणि । २ क. च. चार्हणा । ख. घ. चार्हणम् । ३ क. घ. ङ च. कूर्चाग्रं ।

प्रक्षाल्य हस्तौ रेखाश्च तिस्रः पूर्वाग्रगामिनीः ।
दक्षिणादुत्तरान्ताश्च तिस्रश्चैवोत्तराग्रगाः ॥२५

दोनों हाथ धोकर कुण्ड में या वेदी पर तीन पूर्वाग्र रेखायें खींचे। ये रेखायें दक्षिण की ओर आरम्भ करके क्रमशः उत्तर की ओर से खींची जांय। फिर इन्हीं के ऊपर तीन उत्तराग्र रेखायें खींचे। (ये भी दाहिने से आरम्भ करके क्रमशः बायें खींची जाँय।) ।२५

अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
ध्यात्वात्मरूपं[1] चाग्निं तु योन्या[2] कुण्डे क्षिपेन्नरः ॥२६

अर्घ्यजल से सम्प्रोक्षण (जल छिड़क) कर योनिमुद्रा दिखलाये। आत्मरूप का ध्यान करके कुण्डयोनि से कुण्ड में अग्नि छोड़े ।२६

पात्राण्यासदयेत्पश्चाद् दर्भस्रुक्स्रुवकादिभिः ।
वाहुमात्राः परिधय इध्मव्रश्चनमेव च ॥२७
प्रणीता प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीघृतादिकम् ।
प्रस्थद्वयं तण्डुलानां युग्मं युग्ममधोमुखम् ॥२८

तत्पश्चात् कुशा, स्रुक् और स्रुवा आदि से पात्रों का स्पर्श करे। भुजा के बराबर लम्बी परिधियाँ, कुठार, प्रणीता, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, घी, दूध आदि, दो पसेरी चावल, दो पात्रों में भरकर औंधा-मुख करके रख दे ।२७-२८।

प्रणीता प्रोक्षणीपात्रे न्यसेत्प्रागग्रगं कुशम् ।
अद्भिः पूर्य प्रणीतां तु ध्यात्वा देवं प्रपूज्य च ॥२९
प्रणीतां[3] स्थापयेदग्नेर्द्रव्याणां चैव मध्यतः ।
प्रोक्षणीमद्भिः सम्पूर्य प्राच्यं दक्षे तु विन्यसेत् ॥३०

प्रणीता और प्रोक्षणीपात्र पर पूर्व की ओर आगे का हिस्सा करके कुशाओं को रख दे। प्रणीता को जल से भरकर अग्नि देवता का आह्वान करके विधिवत् पूजन करना चाहिये। प्रणीतापात्र को अग्नि तथा यज्ञार्थ रक्षित द्रव्यों के मध्य में रखना चाहिये। प्रोक्षणी को जल से भरकर उसे दक्षिण भाग में रखे ।२९-३०।

चरुं च श्रपयेदग्नौ ब्रह्माणं दक्षिणे न्यसेत् ।
कुशानास्तीर्य पूर्वादौ परिधीन् स्थापयेत्ततः ॥३१

१ ख.० त्वान्नरु० । घ. ०त्वाग्निरु० । २ ख. घ. योन्यां । ३ क. ०दग्रे द्र० ।

अग्नि पर चरु को रख दे। ब्रह्मा को अग्नि से दक्षिण दिशा में रखे। पूर्व की ओर कुशा फैलाकर उस पर परिधियों को रख दे।३१

वैष्णवीकरणं कुर्याद्गर्भाधानादिना ततः[1]।
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जनिः॥३२
नामादिसमावर्तनान्तं जुहुयादष्ट चाऽऽहुतीः।
पूर्णाहुतिं[2] प्रतिकर्म स्रुचा स्रुवसुयुक्तया॥३३

इतनी क्रिया के अनन्तर गर्भाधान आदि से वैष्णवीकरण करे। गर्भाधान, पुसंवन, सीमन्तोन्नयन, जन्म, नामकरण, चूडाकरण, व्रतबन्ध और समावर्तन संस्कार के लिये आठ आहुतियाँ दे। प्रत्येक हवन-कर्म में स्रुक् और स्रुवा में संयुक्त कर अर्थात् स्रुक् और स्रुवा से स्पर्श करते हुए पूर्णाहुति दे।३२-३३।

कुण्डमध्ये ऋतुमतीं लक्ष्मीं सञ्चिन्त्य होमयेत्।
कुण्डलक्ष्मीः समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥३४

कुण्ड के मध्य में ऋतुमती लक्ष्मी का ध्यान करके हवन करना चाहिये। विज्ञों ने कुण्डलक्ष्मी को त्रिगुणात्मक प्रकृति रूप माना है।३४

सा योनिः सर्वभूतानां विद्यामन्त्रगणस्य च।
विमुक्तेः कारणं वह्निः परमात्मा तु मुक्तिदः[3]॥३५

वह सब प्राणियों, विद्याओं और मन्त्रगणों की जननी है। अग्निदेव मुक्ति के एकमात्र कारण तथा परमात्मा मुक्ति के दाता हैं।३५

प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू कोणे व्यवस्थितौ।
ईशानाग्नेयकोणे तु जङ्घे वायव्यनैर्ऋते॥३६
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिर्योनिर्विधीयते।
गुणत्रयं मेखलाः स्युर्ध्यात्वैवं समिधो दश॥३७
पञ्चाधिकास्तु जुहुयात् प्रणवान्[4] मुष्टिमुद्रया।
पुनराधारौ जुहुयाद् वाय्वग्न्यन्तं ततः श्रयेत्॥३८

ऋतुमती लक्ष्मी का सिर पूर्व की ओर रहता है, दोनों कोणों (ईशान और नैर्ऋत) में दोनों भुजायें, ईशान और अग्नि कोण में दोनों जङ्घायें। कुण्ड उदर है और कुण्डयोनि योनि है। तीनों (सत्त्व, रजस् और तमस्—) गुण

---

१ क. घ. ङ. च. नरः। २ ख. घ. ङ. च. पूर्णाहुतीः। ३ ख. च, भुक्तिदः। ४ क. ङ. च. °वात्स्वस्तिमुद्रया।

उसकी मेखला हैं। इस प्रकार लक्ष्मी का ध्यान करके पन्द्रह समिधाओं का मुष्टिमुद्रा से हवन करे। तदनन्तर आधार हवन करे। वायु से अग्नि-पर्यन्त प्रत्येक लोकपाल के उद्देश्य से आहुतियाँ दे।३६-३८।

ईशान्तं मूलमन्त्रेण आज्यभागौ तु होमयेत्।
उत्तरे द्वादशान्तेन दक्षिणे तेन मध्यतः ।।३९
व्याहृत्या पद्ममध्यस्थं ध्यायेद् वह्नि तु संस्कृतम्।
वैष्णवं सप्तजिह्वं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।४०
[1]चन्द्रवक्त्रं च सूर्याक्षं[2] जुहुयाच्छतमष्ट च।
तदर्धं[3] चाष्टमूलेन अङ्गानां च दशांशतः ।।४१

मूल-मन्त्र से ईशान्त तक आज्यभागों की आहुति करे। उत्तर में द्वादशान्त से, दक्षिण में और मध्य में व्याहृति से हवन करे। कमल-दल के मध्य में स्थित, कोटि सूर्य के समान कान्तिमान्, सात जीभ वाले, चन्द्ररूपी मुख और सूर्यरूपी नेत्र वाले विष्णु रूप (विष्णु देवताका) अग्नि का ध्यान कर एक सौ आठ बार हवन करके उसके आधे से आठ बार अधिक और सम्पूर्ण अंगों के दशम भाग के बराबर आहुतियाँ दे।३९-४१।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पवित्रकारोपणसम्बन्धि पूजा-होमादिविधिकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४

---

१ क. ङ, च. पञ्चवक्त्रं। २ क. ङ. च. सूर्याख्यं। ३ ख, चार्घम्।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पवित्राधिवासनविधिः

अग्निरुवाच—

सम्पाताहुतिनासिच्य पवित्राण्यधिवासयेत् ।
नृसिंहमन्त्रजप्तानि गुप्तान्यस्त्रेण तानि तु ॥१
वस्त्रसंवेष्टितान्येव पात्रस्थान्यभिमन्त्रयेत् ।
([1]बिल्वाद्यद्भिः प्रोक्षितानि मन्त्रेण चैकधा द्विधा)॥२
कुम्भपात्रे तु संस्थाप्य रक्षां विज्ञाप्य देशिकः ।
दन्तकाष्ठं चामलकं पूर्वे सङ्कर्षणेन[2] तु ॥३
प्रद्युम्नेन भस्मतिलान् दक्षे गोमयमृत्तिकाम् ।
वारुणे चानिरुद्धेन सौम्ये नारायणेन च ॥४

अग्निदेव बोले—इस प्रकार उपर्युक्त विधि से पवित्रकारोपण और हवन करने के अनन्तर पवित्रक का अधिवासन करना चाहिये । नृसिंह का जप करके अस्त्र से अभिमन्त्रित करके उन पवित्रकों को गुप्त रूप से वस्त्रों से आच्छादित करके किसी पात्र में रखकर अभिमन्त्रित करे । पहले मन्त्रोच्चारण करके बिल्व-पत्र आदि से उस पात्र पर दो बार जल छिड़क दे । तत्पश्चात् गुरु उसको एक कलश में रखकर मन्त्र से रक्षित कर दे । सङ्कर्षण-मन्त्र से दातून और आँवला पूर्व दिशा में, प्रद्युम्न-मन्त्र से भस्म और तिल को दक्षिण दिशा में, गोबर और मिट्टी पश्चिम दिशा में अनिरुद्ध मन्त्र से, नारायण मन्त्र से उत्तर में कुश और जल को फेंक दे ।१-४।

दर्भोदकं चाथ हृदा अग्नौ कुङ्कुमरोचनम् ।
ऐशान्यां शिरसा धूपं शिखया नैर्ऋतेऽप्यथ ॥५
मूलपुष्पाणि दिव्यानि कवचेनाथ वायवे ।
[3]चन्दनाम्ब्वक्षतदधिदूर्वाश्च पुटिकास्थिताः ॥६

हृदय से अग्नि-कोण में कुंकुम और रोली छिड़के । सिर से ईशान-कोण में धूप, शिखा से नैर्ऋत-कोण में दिव्य मूल पुष्पों को, कवच से वायव्य-कोण में एक पुड़िये में चन्दन, जल, अक्षत, दधि और दूध रखकर फेंक दे ।५-६।

---

१ बिल्वाद्यद्भिः''''द्विधा क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ क. ङ. च. सङ्घर्षणेन ।
३ क. ङ. च. °नान्यक्ष° ।

गृहं त्रिसूत्रेणाऽऽवेष्ट्य पुनः सिद्धार्थकान् क्षिपेत् ।
दद्यात् पूजाक्रमेणाथ स्वैः स्वैर्गन्धपवित्रकम् ॥७
मन्त्रैर्वै द्वारपादिभ्यो विष्णुं कुम्भे त्वनेन च ।
विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥८
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् ।
([1]सम्पूज्य धूपदीपाद्यैर्व्रजेद् द्वारसमीपतः) ॥९

गृह को तीन सूत से आवेष्टित करके फिर पीले सरसों को चारों ओर फेंक दे। इस विधि से रक्षा-व्यवस्था करने के अनन्तर पूजन-क्रम से यथाविधि वेद-मन्त्रों से गन्ध और पवित्रक चढ़ाये। अपने-अपने मन्त्रों से द्वारपाल देवों को और कुम्भस्थ विष्णु को आगे कहे हुए मन्त्र से पूजा-सामग्री चढ़ावे। मन्त्र यह है—'देव, विष्णु-तेज से उत्पन्न, सब पापों को नष्ट करने वाले और सब मनोरथों को देने वाले इस पूजन-सामग्री (गन्ध-पुष्प आदि) को तुम्हारे अंगों पर चढ़ा रहा हूँ। इस मन्त्र द्वारा धूप-दीप आदि से पूजन करके द्वार-देश से आगे बढ़े।८-९।

गन्धपुष्पाक्षतोपेतं पवित्रं चाऽऽत्मनोऽर्पयेत् ।
पवित्रं वैष्णवं तेजो महापातकनाशनम् ॥१०
धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम् ।
([2]आसने परिवारादौ गुरौ दद्यात्पवित्रकम्) ॥११
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः[3] ।
विष्णुतेजोद्भवेत्यादिमूलेन हरयेऽर्पयेत् ॥१२

स्वयं अपने अंगों पर भी गन्ध, पुष्प, अक्षत से युक्त पवित्रक धारण करना चाहिये। पवित्रक धारण करने का मन्त्र यह है—"मैं धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिये महापापों को नष्ट करने वाले और पवित्र विष्णु तेज को अपने अंगों पर कर धारण रहा हूँ। अपने आसन, परिवार और गुरु आदि को भी पवित्रक अर्पित करे। गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि से पूजन करके 'विष्णुतेजोद्भव"—आदि मन्त्र से विष्णु को सारी पूजा अर्पित कर दे।१०-१२।

वह्निस्थाय ततो दत्त्वा देवं सम्प्रार्थयेत्ततः ।
क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥१३

---

१ संपूज्य.........धारयाम्यहम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ आसने.........पवित्र क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ख. ग. घ दिमत्। वि°

प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव !
इन्द्रादिभ्यस्ततो दत्त्वा विष्णुपार्षदके वलिम् ॥१४

तदनन्तर अग्निस्थ ब्रह्म की पूजन-सामग्री से पूजा करके देवता की प्रार्थना करे । प्रार्थना-मन्त्र यह है--"क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव ।" इन्द्र आदि और विष्णु-पार्षदों को भी विधिपूर्वक बलि देनी चाहिये ।१३-१४।

ततो देवाग्रतः कुम्भं वासोयुगसमन्वितम् ।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरगन्धाद्युदकसंयुतम् ॥१५
गन्धपुष्पादिनाऽऽभूष्य मूलमन्त्रेण पूजयेत् ।
मण्डपाद् वहिरागत्य विलिप्ते मण्डलत्रये ॥१६
पञ्चगव्यं चरुं दन्तकाष्ठं चैव क्रमाद् भजेत्[1] ।
पुराणश्रवणं स्तोत्रं पठञ्जागरणं निशि ॥१७

तदनन्तर देवता के सम्मुख युग्म-वस्त्रों से कुम्भ को आवेष्टित करके स्थापित करना चाहिये और फिर उन्हें रोचना, कपूर, केसर आदि सुगन्धित-पदार्थों से मिले हुए जल से भर देना चाहिये । फिर गन्ध, पुष्प आदि के द्वारा अलङ्कृत करके मूल-मन्त्र से पूजा करनी चाहिये । पूजनानन्तर मण्डप से बाहर आकर लिपे पुते तीन मण्डलों में क्रमशः पञ्चगव्य, चरु और दातून रखे । पुराण सुने, स्तोत्र पाठ करे और रात्रि में जागरण करे ।१५-१७।

परप्रेषकबालानां स्त्रीणां भोगभुजां तथा ।
सद्योऽधिवासनं कुर्याद्विना गन्धपवित्रकम् ॥१८

दूसरों के भेजे हुए बालकों, स्त्री और भोग-परायण व्यक्तियों का अधिवासन बिना गन्ध और पवित्रक के ही करना चाहिये ।१८

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पवित्राधिवासनविधिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।३५

---

१ ख. घ.° द्भवेत् ।

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

विष्णुपवित्रारोपणविधिः

अग्निरुवाच—

प्रातः स्नानादिकं कृत्वा द्वारपालान् प्रपूज्य च ।
प्रविश्य गुप्ते देशे च समाकृष्याथ धारयेत् ॥१
पूर्वाधिवासितं द्रव्यं वस्त्राभरणगन्धकम् ।
निरस्य सर्वं निर्माल्यं देवं संस्नाप्य पूजयेत् ॥२

अग्निदेव बोले—भक्त प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत्त होकर द्वारपालों की पूजा करके गुप्त पूजा-मण्डप में जाये और पूर्व की रखी हुई वस्तुओं—वस्त्र आभूषण, गन्ध, चन्दन, तथा पहले की संस्कृत सामग्रियों को धारण करे । सभी निर्माल्य पदार्थों को दूर हटाकर देवता को स्नान कराये और विधिपूर्वक पूजन करे । १-२।

पञ्चामृतैः कषायैश्च शुद्धगन्धोदकैस्ततः ।
पूर्वाधिवासितं दद्याद् वस्त्रं गन्धं च पुष्पकम् ॥३

पहले पञ्चामृत से स्नान करावे फिर कषाय जल और सुगन्धित जल से स्नान कराकर इष्टदेव को पहले से संस्कृत किये हुए वस्त्र, गन्ध और पुष्प आदि अर्पित करे ।३

अग्नौ हुत्वा नित्यवच्च देवं सम्प्रार्थयेन्नमेत् ।
समर्प्य कर्म देवाय पूजां नैमित्तिकीं चरेत् ॥४

नित्य की भाँति अग्नि में हवन करके देव की प्रार्थना और नमस्कार करे । सारे पूजन-कर्म को भगवान् के चरणों में अर्पित करके नैमित्तिक पूजा प्रारम्भ करे ।४

द्वारपालविष्णुकुम्भवर्धनीः प्रार्थयेद्धरिम् ।
अतो देवेति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण कुम्भके ॥५

सबसे पहले द्वारपाल, विष्णु कुम्भ. वर्धनी और हरि की 'अतो देव' इत्यादि मन्त्र से प्रार्थना करे । आगे कहे गये मूल-मन्त्र से कुम्भ पर पवित्रक चढ़ाये ।५

कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं[1] गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥६
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥७

मन्त्र इस प्रकार है—"कृष्ण ! कृष्ण ! तुमको नमस्कार है। मुझे पवित्र करने के लिये वर्ष-पूजा के फल को देने वाले इस पवित्रक को ग्रहण करें। जो कुछ दुष्कर्म मैंने किये हैं उन्हें दूर करके मुझको आज पवित्र कर दें। सुरेश्वर! तुम्हारी कृपा से मैं शुद्ध हो रहा हूँ।"६-७।

पवित्रं च हृदाद्यैस्तु आत्मानमभिषिच्य च ।
विष्णुकुम्भं च सम्प्रोक्ष्य व्रजेद् देवसमीपतः ॥८

इस मन्त्र से भगवान् को पवित्रक अर्पित करके हृद् आदि (मन्त्रों) से अपने ऊपर जल छिड़के और विष्णु-कुम्भ को भी सींचकर देवता के समीप जाय ।८

पवित्रमात्मने दद्याद्रक्षाबन्धं विसृज्य च ।
गृहाण ब्रह्मसूत्रं च यन्मया कल्पितं प्रभो ॥९
कर्मणां पूरणार्थाय यथा दोषो न मे भवेत् ।
द्वारपालासनगुरुमुख्याणां च पवित्रकम् ॥१०
कनिष्ठादि च देवाय वनमालां च मूलतः ।
हृदादिविष्वक्सेनान्ते पवित्राणि समर्पयेत् ॥११

स्वयं भी पवित्रक धारण करे और रक्षाबन्धन को हटाकर प्रार्थना करे, "प्रभो ? मैंने जो यह ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) बनाया है उसको ग्रहण कीजिये जिससे कि इस कर्म की पूर्ति हो जाये और मैं किसी दोष का भागी न बनूँ। द्वारपाल और आसनासीन गुरुजनों को पवित्रक अर्पित करे। मूलमन्त्र से वन-माला और हृद् से लेकर विष्वक्सेन तक को पवित्रक समर्पित करे।९-११।

वह्नौ हुत्वा वह्निगेभ्यो विश्वादिभ्यः पवित्रकम् ।
प्राच्य॑[2] पूर्णाहुतिं दद्यात् प्रायश्चित्ताय मूलतः ॥१२

वह्निग देवों के निमित्त अग्नि में हवन करके विश्वादि देवों को पवित्रक प्रदान करे और उनकी भली भाँति पूजा करके मूलमन्त्र से प्रायश्चित्त के लिये पूर्णाहुति दे।१२

१ ख. नमस्कृत्य। २ ख. ग. प्राच्यां। च. प्रार्थ्यं।

अष्टोत्तरशतं वापि पञ्चोपनिषदैस्ततः ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥१३
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ।
वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ॥१४
तद्वत्पवित्रतन्तूंश्च पूजां च हृदये वह ।
कामतोऽकामतो वापि यत्कृतं नियमार्चने ॥१५
विधिना विघ्नलोपेन परिपूर्णं तदस्तु मे ।
प्रार्थ्य नत्वा क्षमाप्याथ पवित्रं[1] मस्तकेऽर्पयेत् ॥१६

एक सौ आठ बार मन्त्र-जप करे। मणि विद्रुम की मालाओं से, पारिजात के फूलों से और पञ्चोपनिषद्-मन्त्रों से पूजन करे। "हे गरुड़-ध्वज ! यह आपकी वार्षिकी पूजा आपको ही समर्पित है। जिस प्रकार आपके हृदय पर सर्वदा कौस्तुभमणि और वनमाला शोभित रहती है उसी प्रकार अपने हृदय पर इन पवित्र तन्तुओं और पूजा को धारण करें। चाहे इच्छापूर्वक या अनिच्छा से अर्चना में जो कुछ त्रुटियाँ या विधिहीनता हुई हैं वे सब कुछ दूर हो जायें और पूर्णफल प्राप्त हो।"— इस प्रकार प्रार्थना करके नमस्कार करे और क्षमा-याचना करके पवित्रक को मस्तक पर धारण करे।१३-१६।

दत्त्वा बलिं दक्षिणाभिर्वैष्णवं तोषयेद् गुरुम् ।
विप्रान् भोजनवस्त्राद्यैर्दिवसं पक्षमेव वा ॥१७

देवों को बलि देकर एक या पन्द्रह दिन तक दक्षिणा द्वारा वैष्णव गुरु को और विप्रों को भोजन और वस्त्र आदि से सन्तुष्ट करता रहे ।१७

पवित्रं स्नानकाले वा अवतार्य समर्चयेत्[2] ।
अनिवारितमन्त्राद्यं दद्याद् भुङ्क्तेऽथ केवलम् ॥१८

प्रतिदिन स्नान के समय पवित्रक को उतार कर पूजा करे, पवित्र अन्न का भोग लगावे और स्वयं भी भोजन करे ।१८

विसर्जनेऽह्नि सम्पूज्य पवित्राणि विसर्जयेत् ।
सावत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ॥१९

१ क. ख. ङ च °त्रं° पुस्तके । २ ख. ग. घ. च. समर्पयेत् ।

व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः ।
मध्ये सोमेशयोः प्राच्यं विष्वक्सेनं हि तस्य च ।।२०
पवित्राणि समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय समर्पयेत् ।
यावन्तस्तन्तवस्तस्मिन् पवित्रे परिकल्पिताः ।।२१
तावद्युगसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ।
कुलानां शतमुद्धृत्य दशपूर्वान् दशापरान् ।।२२
विष्णुलोके तु संस्थाप्य स्वयं मुक्तिमवाप्नुयात् २३।।

विसर्जन के दिन भगवान् की पूजा करके पवित्रक का विसर्जन कर देना चाहिये । विसर्जन का मन्त्र यह है—"हे पवित्रक ! मेरी इस वार्षिक पूजा को विधिपूर्वक सम्पन्न करके अब विष्णुलोक को जाओ । मैं तुम्हें विदा कर रहा हूँ ।" सोम और ईश के मध्य में विष्वक्सेन की पूजा करके और उनके पवित्रक की पूजा करके ब्राह्मण को अर्पित कर देना चाहिये । उस पवित्रक में जितने धागे होते हैं, उतने हजार युगों तक वह व्यक्ति विष्णुलोक में पूजित होता है और अपने सौ कुलों का उद्धार करके और आगे-पीछे की दस दस पीढ़ियों को विष्णुलोक में स्थान दिलाकर स्वयं मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । १९-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्णुपवित्रारोपणविधिनिरूपणं नाम षटत्रिंशोऽध्यायः ।३६

———

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथ संक्षेपतः सर्वदेवसाधारणः पवित्रारोपणविधिः

अग्निरुवाच—

संक्षेपात्सर्वदेवानां पवित्रारोपणं श्रृणु !
पवित्रं पूर्वलक्ष्म[1] स्यात्[2] स्वरसानलगं त्वयि ॥१

अग्निदेव बोले—संक्षेप में सब देवताओं की पवित्रारोपण विधि को सुनो ! पवित्रक पूर्वोक्त सभी लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिये ।१

जगद्योने समागच्छ परिवारगणैः सह ।
निमन्त्रयाम्यहं प्रातर्दद्यां[3] तुभ्यं पवित्रकम् ॥२

हे जगदादिकारण ! अपने परिवार के सहित यहाँ आओ । मैं तुम्हें निमन्त्रित कर रहा हूँ । प्रातःकाल तुमको पवित्रक अर्पित करूँगा ।२

जगत्सृजे नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥३

"जगत् की सृष्टि करने वाले ! तुमको नमस्कार है । सांवत्सर-पूजा के फल को देने वाले इस पवित्रक को (मुझे) पवित्र करने के लिये ग्रहण करो !" —इस मन्त्र से जगत्-स्रष्टा भगवान् को पवित्रक अर्पित करे ।३

([4]शिव देव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।)
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥४
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु वेदवित्पते ।
सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ॥५
व्रज पवित्रकेदानीं स्वर्गलोकं विसर्जितः ।
सूर्यदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ॥६
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
([5]शिव देव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्)॥७

---

१ घ. सर्वलक्ष्म । २ क. स्यात् खर॰ । ३ क. ख. ग. ङ. च. ॰दद्यात्तुभ्यं । ४ शिव......पवित्रकम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ५ शिव...पवित्रकम् ङ.पुस्तके नास्ति ।

पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
(गणेश्वर [1]नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ॥८
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।)
शक्तिदेवि ! नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम ॥९
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
नारायणमयं सूत्रमनिरुद्धमयं परम् ॥१०
धनधान्यायुरारोग्यप्रदं[3] सम्प्रददामि ते ।
कामदेवमयं सूत्रं संकर्षणमयं[4] वरम् ॥११
([5]विद्यासन्ततिसौभाग्यप्रदं सम्प्रददामि ते ।
वासुदेवमयं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥१२
संसारसागरोत्तारकारणं प्रददामि ते ।
विश्वरूपमयं सूत्रं सर्वदं पापनाशनम्) ॥१३
अतीतानागतकुलसमुद्धारं ददामि ते ।
कनिष्ठादीनि चत्वारि मनुभिस्तु क्रमाद्ददे ॥१४

"शिव देव ! तुमको नमस्कार है। इस पवित्रक को ग्रहण करो !"— इस मन्त्र से शिव को पवित्रक अर्पित करना चाहिये । अर्पण-मन्त्र यह है— "हे वेदज्ञपति ! मणि, विद्रुम, माला और पारिजात-पुष्पों की माला के द्वारा सम्पन्न की हुई यह वर्ष-पूजा आपको अर्पित है ।" विसर्जन-मन्त्र यह है— "हे पवित्रक ! आपने इस सांवत्सरी पूजा को विधिपूर्वक सम्पन्न किया है। अब मैं आपको विसर्जित कर रहा हूँ । आप स्वर्गलोक को प्रस्थान कीजिए !" सूर्य को पवित्रक प्रदान करने का मन्त्र यह है—"हे सूर्यदेव ! आपको नमस्कार है। इस पवित्रक को ग्रहण कीजिये ! वर्ष-पूजा के फल को देने वाले इस पवित्रक के द्वारा हमें पवित्र कीजिये !" शिव को पवित्रक अर्पण करने का मन्त्र यह है—"हे शिव देव ! आपको नमस्कार है। मुझे पवित्र करने के लिये वर्ष-पूजा के फल को देने वाले इस पवित्रक को ग्रहण कीजिये ।" गणेश्वर को पवित्रक चढ़ाने का मन्त्र यह है—"हे गणेश्वर ! आपको नमस्कार है। मैं पवित्रीकरण के लिये इस वर्ष-पूजा के फल को

१ गणेश्वर.........वर्षपूजाफलप्रदम् क. पुस्तके नास्ति । २ ख. घ. बाणेश्वर । ३ च. °ग्यप्रवंशं प्र° । ४ क. ङ. च. °त्रं सर्वदं पापनाशनम् । ५ विद्यासन्तति .. ...पापनाशनम् ग्रन्थः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति ।

देने वाले पवित्रक को प्रदान कर रहा हूँ। इसे स्वीकार कीजिए !" शक्ति-मन्त्र यह है—"शक्तिदेवि ! आपको नमस्कार है। पवित्र करने के लिए आप इस वर्ष-पूजा के फल को देने वाले पवित्रक को स्वीकार कीजिए !" इस पवित्रक के तन्तु (धागे) नारायणमय, अनिरुद्धमय और उत्कृष्ट हैं। कामदेवमय सङ्कर्षणमय और श्रेष्ठ हैं। ये धन-धान्य और आरोग्य को देने वाले हैं। इसके सूत्र वासुदेवमय, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले और मोक्ष, विद्या, सन्तान व सौभाग्य प्रदान करने वाले हैं। इन्हें आप (देवताओं) को अर्पित कर रहा हूँ। पापनाशन, विश्वरूपमय, सर्वाभीष्टदाता और संसार-सागर को पार करने के कारण-भूत इन सूत्रों से युक्त; भूत और भविष्य के कुलों का उद्धार करने वाले इस पवित्रक को मैं समर्पित कर रहा हूँ।" इन उपर्युक्त मन्त्रों से क्रमशः कनिष्ठादि चारों को अर्पित करे।४-१४।

इत्यादि महापुराण आग्नेये संक्षेपतः सर्वदेवसाधारण-पवित्रारोपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।३७

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

देवालयनिर्माणफलादि

अग्निरुवाच—

वासुदेवाद्यालयस्य कृतौ वक्ष्ये फलादिकम् ।
चिकीर्षोर्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं वासुदेव आदि देवताओं के मन्दिरों के निर्माण से प्राप्त होने वाले फलों को बतला रहा हूँ। देवालय-निर्माण कराने की इच्छा करने वाले भक्त के सहस्र जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।१

मनसा सद्मकर्तृणां शतजन्माघनाशनम् ।
येऽनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरा गृहम् ॥२
तेऽपि पापैर्विनिर्मुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम् ।
समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतं नरः ॥३
विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् ।
वसन्ति[1] पितरो हृष्टा विष्णुलोके ह्यलङ्कृताः ॥४

मन में देव-गृह-निर्माण का विचार करने वाले के सौ जन्म के पाप क्षीण हो जाते हैं। जो कृष्ण-मन्दिर के निर्माण का समर्थन करते हैं वे भी अपने पापों से मुक्त होकर अच्युत-लोक को प्राप्त करते हैं। विष्णु-मन्दिर का निर्माण करा देने से मनुष्य अपने दस हजार अतीत और भविष्य की पीढ़ियों को विष्णु-लोक में पहुँचा देता है और उसके पितर विष्णु-लोक में सम्मान-पूर्वक निवास करते हैं।२-४।

विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्तुः कृष्णस्य मन्दिरम् ।
ब्रह्महत्यादिपापौघघातकं देवतालयम् ॥५

कृष्ण-मन्दिर के निर्माण-कर्ता सम्पूर्ण नारकीय दुःखों से विमुक्त हो जाते हैं और उनके ब्रह्म-हत्या आदि पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं।५

फलं यन्नाप्यते यज्ञैर्धाम कृत्वा तदाप्यते ।
देवागारे कृते सर्वतीर्थस्नानफलं लभेत् ॥६

---

१ क. ङ. च. नन्दन्ति ।

जो फल यज्ञों के द्वारा नहीं प्राप्त होते हैं वे फल देवालय के निर्माण से अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। मन्दिर का निर्माण करने पर सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त हो जाता है।६

देवाद्यर्थे[1] हतानां च रणे यत्तत्फलादिकम्।
शाठ्येन पांसुना[2] वापि कृतं धाम च नाकदम्॥७

देवता, ब्राह्मण आदि के लिये रणभूमि में मारे जाने वाले धर्मात्मा शूर-वीरों को जिस फल आदि की प्राप्ति होती है, वही देवालय के निर्माण से भी सुलभ होता है। कोई शठता (कंजूसी) के कारण धूल-मिट्टी से भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्ग-लोक प्रदान करने वाला होता है।७

एकायतनकृत्स्वर्गी त्र्यगारी ब्रह्मलोकभाक्।
पञ्चागारी शम्भु-लोकमष्टागाराद्धरौ स्थितिः॥८
षोडशालयकारी तु भुक्ति मुक्तिमवाप्नुयात्।
कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम्॥९
स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षमाप्नोति च क्रमात्।९$\frac{1}{2}$

एक मन्दिर के बनवाने से स्वर्ग मिलता है, तीन से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और पाँच से शिवलोक की तथा आठ मन्दिर बनवाने से निर्माता साक्षात् हरिरूप हो जाता है। सोलह मन्दिरों का निर्माण-कर्ता तो भुक्ति और मुक्ति दोनों का अधिकार प्राप्त कर लेता है। छोटा, बड़ा और श्रेष्ठ देवायतन बनवाने से क्रमशः स्वर्ग, विष्णुलोक और मोक्ष की प्राप्ति होती है।८-९$\frac{1}{2}$।

श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्धनवाल्लँभेत्[3]॥१०
कनिष्ठेनैव तत्पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः॥१०$\frac{1}{2}$

धनी व्यक्ति श्रेष्ठ देव-मन्दिर बनवाकर जो फल प्राप्त करता है वही फल निर्धन व्यक्ति छोटा-सा मन्दिर बनवाकर पा जाता है।१०-१०$\frac{1}{2}$।

समुत्पाद्य धनं कृत्वा स्वल्पेनापि सुरालयम्[4]॥११
कारयित्वा हरेः पुण्यं प्राप्नोत्यभ्यधिकं वरान्।११$\frac{1}{2}$

---

१ ङ. देवतीर्थे। च. देवतार्थं। २ क. घ. ङ. च. पांशुना। ३ क. ख. ग. ङ. च. °नवान्भवेत्। ४ घ. वरम्।

जो व्यक्ति स्वयं अपने श्रम से उपार्जित धन के थोड़े से अंश से भी हरि-मन्दिर का निर्माण करता है वह अत्यधिक पुण्य और अनेक शुभ वरों को प्राप्त करता है।११-११½।

लक्षेणाथ सहस्रेण शतेनार्धेन वा हरेः ॥१२
कारयन्भवनं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः ॥१२½

एक लाख, हजार, सौ या पचास रुपये की लागत से भी जो भगवान् का मन्दिर बनवाता है वह गरुडध्वज के लोक में स्थान पाता है।१२-१२½।

वाल्ये तु क्रीडमाना[1] ये पांसुभिर्भवनं हरेः ॥१३
वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः ।१३½

जो लोग बचपन में खेलते समय धूलि से भगवान् विष्णु का मन्दिर बनाते हैं वे भी उनके धाम को प्राप्त होते हैं।१३-१३½।

तीर्थे चायतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाश्रमे ।
कर्तुरायतनं विष्णोर्यथोक्तात्त्रिगुणं फलम् ।१४½

तीर्थ में, पुण्य-स्थान पर, सिद्ध-क्षेत्र में या मुनि-आश्रम में विष्णु-मन्दिर बनवाने से पूर्वोक्त फल से तिगुना फल मिलता है।१४-१४½।

वन्धूकपुष्पविन्यासैः सुधापङ्केन वैष्णवम् ॥१५
ये विलिम्पन्ति भवनं ते यान्ति भगवत्पुरम् ।१५½

जो दीवारों पर वन्धूक पुष्प का चित्र बनाकर चूने से मन्दिर को पुतवाता है वे अन्त में भगवान् के धाम में पहुँच जाते हैं।१५-१५½।

पतितं पतमानं तु तथार्धपतितं नरः ॥१६
समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम् ।१६½

गिरे हुए या गिरते हुए या आधा गिरे हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने वाला व्यक्ति दुगुना फल प्राप्त करता है।१६-१६½।

पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता ॥१७
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुरूपभाक् ।१७½

जो गिरे हुए विष्णु मन्दिर का उद्धार करता है या गिरते हुए मन्दिर की रक्षा करता है वह मनुष्य विष्णु का रूप है।१७-१७½।

---

१ घ. क्रीडमाणा ।

इष्टकानिचयस्तिष्ठेद्यावदायतनं हरेः ॥१८
सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते ।१८½

जब तक उस विष्णुमन्दिर की ईंटें रहती हैं तव तक वह व्यक्ति परिवार के सहित विष्णुलोक में सम्मानपूर्वक निवास करता है।१८१८½।

स एव पुण्यवान् पूज्य इहलोके परत्र च ॥१९
कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम् ।१९½

वही व्यक्ति पुण्यशाली और इहलोक तथा परलोक में पूज्य होता है जो कृष्ण-वासुदेव का मन्दिर बनवाता है।१९-१९½।

जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पालितम् ॥२०
विष्णुरुद्रार्कदेव्यादेर्गृहकर्ता स कीर्तिभाक् ।२०½

वही व्यक्ति सुकृती है, उसी ने अपने कुल का पालन किया हैं और वही यशस्वी है जिसने विष्णु, रुद्र, सूर्य या देवी का मन्दिर बनवा दिया है ।२०-२०½।

किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः ॥२१
दुःखार्जितैयः कृष्णस्य न कारयति केतनम् ।२१½
नोपभोग्यं धनं यस्य पितृविप्रदिवौकसाम् ॥२२
नोपभोगाय बन्धूनां व्यर्थस्तस्य धनागमः ॥२२½

जिस मूर्ख ने बड़े कष्ट से धन जोड़ा और उसकी रक्षा करता रहा परन्तु उस धन से कृष्ण का मन्दिर नहीं बनवाया; जिसके धन का उपयोग देव, पितर और ब्राह्मणों ने नहीं किया और न तो जिसका धन भाई बन्धुओं के ही उपयोग में आया उसका धनोपार्जन व्यर्थ है ।२१-२२½।

यथा ध्रुवो नृणां मृत्युर्वित्तनाशस्तथा ध्रुवः ॥२३
मूढस्तत्रानुबध्नाति जीवितेऽथ चले[1] धने ।२३½

जिस प्रकार मनुष्य की मृत्यु निश्चित है उसी प्रकार धन का नाश भी । तो वह व्यक्ति मूर्ख है जो धन और जीवन के मोह में बँधा रहता है ।२३-२३½।

यदा वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ॥२४
नापि कीर्त्यै न धर्मार्थं तस्य स्वाम्येऽथ को गुणः ।२४½

---

१ ख. ग. च. बले ।

जिस धन का उपयोग न तो दान में हुआ, न वह प्राणी के स्वयं उपभोग में आया और न उसका व्यय कीर्ति या धर्म-कार्य में ही हुआ उस धन का स्वामित्व प्राप्त करने से क्या लाभ ? २४-२४½।

तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ।२५
दद्यात्सम्यग् द्विजाग्र्येभ्यः कीर्तनानि च कारयेत् ।।२५½

इसलिये अपने पौरुष या भाग्यवश यदि धन प्राप्त हो जाये तो शुद्ध ब्राह्मणों को यथाविधि दान कर देना चाहिये और उस धन से कीर्तन कराना चाहिये ।२५-२५½।

दानेभ्यश्चाधिकं यस्मात्कीर्तनेभ्यो वरं यतः ।२६
अतश्च कारयेद्धीमान् विष्ण्वादेर्मन्दिरादिकम् ।२६½

मन्दिर-निर्माण दान और कीर्तन से श्रेष्ठ है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को विष्णु के मन्दिर आदि का निर्माण कराना चाहिये ।२६-२६½।

विनिवेश्य हरेर्धाम भक्तिमद्भिर्नरोत्तमैः ।।२७
निवेशितं भवेत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।२७½

भक्त नर-पुंगव विष्णु-मन्दिर की स्थापना करके मानों सम्पूर्ण सचराचर त्रैलोक्य के लिये मन्दिर का निर्माण कर देते हैं ।२७-२७½।

भूतं भव्यं भविष्यं च स्थूलं सूक्ष्मं तथेतरत् ।।२८
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णोः समुद्भवम् ।२८½

क्योंकि संसार में जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्य है तथा स्थूल, सूक्ष्म, एवं ब्रह्मा से लेकर तृण-पर्यन्त पदार्थ हैं सब विष्णु से ही उत्पन्न हुए हैं ।२८-२८½।

तस्य देवाधिदेवस्य[1] सर्वगस्य महात्मनः ।।२९
निवेश्य भवनं विष्णोर्न भूयो भुवि जायते ।२९½

उस सर्वव्यापक देवाधिदेव महात्मा विष्णु के मंदिर का निर्माण करके मनुष्य पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ।९२-२९½।

यथा विष्णोर्धामकृतौ फलं तद्वद् दिवौकसाम् ।।३०
शिवब्रह्मार्कविघ्नेशचण्डीलक्ष्म्यादिकात्मनाम् ।३०½

विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराने से जितना पुण्य होता है उतना ही शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, चण्डी, लक्ष्मी आदि देवों के मन्दिरों के निर्माण से भी प्राप्त होता है ।३०-३०½।

---

१ घ. °वादिदे° । २ क. ङ. च. °ष्टकाभवे ।

देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम् ।।३१
प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते ।
मृन्मयाद्दारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकोद्भवे[1] ।।३२

देवालय-निर्माण से अधिक फल प्रतिमा-निर्माण कराने से होता है। प्रतिमा-स्थापन के समय होने वाले यज्ञ के फल की तो गणना ही नहीं हो सकती है। मिट्टी की प्रतिमा से अधिक पुण्य काष्ठ-प्रतिमा के निर्माण से होता है और काष्ठ-प्रतिमा के निर्माण से अधिक पुण्य ईंट की प्रतिमा के निर्माण से होता है।३१-३२

इष्टकोत्थाच्छैलजे स्याद्धेमादेरधिकं फलम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति ।।३३

ईंट की प्रतिमा से अधिक फल पाषाण-प्रतिमा में और पाषाण-प्रतिमा से अधिक फल सोना आदि धातु की प्रतिमा बनवाने से मिलता है। इस शुभ कर्म के (देवालय के) प्रारम्भ मात्र से सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।३३

देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं स न गच्छति ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ।।३४

वह व्यक्ति कभी भी नरक में नही जाता प्रत्युत अपने सौ कुलों का उद्धार करके विष्णुलोक को ले जाता है।३४

यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः ।।३५

साक्षात् यम ने अपने दूतों को मन्दिर बनवाने वालों के लिये यह निर्देश दिया था—

[[2]यम उवाच—]
प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः ।
देवालयाद्यकर्तार आनेयास्ते[3] विशेषतः ।।३६

[**यमराज बोले-**] प्रतिमा-निर्माण और पूजा आदि करने वालों को कभी नरक में नहीं लाना चाहिये। जिन लोगों ने कभी देवालय-निर्माण नहीं किया उनको विशेषरूप से यहाँ (नरक में) लाना चाहिये।३६

---

१ क. ङ. च. °ष्टकाभवे। २ एतदत्र सर्वेष्वादर्शपुस्तकेषूपलभ्यते परं चैतदधिकम्। ३ ख. ग. ङ. °स्ते तु गोचराः। घ. °स्ते तु गोचरे।

विचरध्वं यथान्यायं नियोगो[१] मम पाल्यताम् ।
नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ।।३७

तुम लोग संसार में विचरण करो और न्यायपूर्वक मेरे इस आदेश का पालन करो । प्राणिमात्र तुम्हारी आज्ञा का उल्लङ्घन कहीं नहीं करेंगे ।३७

केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः ।
भवद्भिः परिहर्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः ।।३८

जिन्होंने जगत्पिता अनन्त भगवान् का आश्रय ग्रहण किया है उन्हें आप को छोड़ देना चाहिये, उनकी यहाँ (यमलोक में) स्थिति नहीं होती ।३८

यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः ।
पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च[२] त्याज्याः सुदूरतः ।।३९

संसार में जो भागवत हों, भगवान् में दत्तचित्त हों, भगवत्परायण हों तथा सदा भगवान् विष्णु की पूजा करते हों उन्हें तुम लोगों को दूर से ही छोड़ देना चाहिये ।३९

([३]यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन्स्खलिते स्थिते[४] ।
सङ्कीर्तयन्ति गोविन्दं ते[५] च त्याज्याः सुदूरतः ।।)४०

जो स्थिर होते, सोते, चलते, उठते, गिरते-पड़ते या खड़े होते समय गोविन्द का संकीर्तन करते हों उसको बहुत दूर से ही छोड़ देना ।४०

नित्यैर्नैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ।
नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता[६] यान्ति तद्गतिम् ।।४१

जो व्यक्ति नित्य-नैमित्तिक कर्मों से जनार्दन देव की पूजा करते हैं उनकी ओर तो आँख उठाकर भी मत देखना क्योंकि भगवान् का व्रत करने वाले सालोक्य के अधिकारी हो जाते हैं ।४१

ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः ।
अर्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये[७] गताः ।।४२

---

१ क. ङ. च. °गो मैऽनुपा° । २ घ. ते वस्त्याज्याः । ३ यस्तिष्ठन्....सुदूरतः ङ. पुस्तके नास्ति । ४ ख. ग. श्रुते । ५ घ. ते वस्त्याज्याः । ६ घ. तद्गता । ७ क. ङ. च. कृष्णाश्रये ।

जो कृष्ण-मन्दिर में जाकर पुष्प, धूप, आभूषण और वस्त्र आदि प्रिय पदार्थों से कृष्ण की पूजा करते हों, उनको मत छूना।४२

उपलेपनकर्तारः सम्मार्जनपराश्च ये।
कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् ॥४३

जो लोग कृष्ण-मन्दिर में लेप करते हों या भाड़ू लगाते हों उनको, उनके पुत्रों को और उनके परिवार को छोड़ देना।४३

येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम्।
पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा ॥४४

जिन्होंने देवालय बनवाया हो उनके कुल के सौ पीढ़ियों की ओर बुरी दृष्टि से न देखना।४४

यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा।
कारयेन्मृन्मयं वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४५

जो मिट्टी, लकड़ी या पत्थर से विष्णु का मन्दिर बनवा देते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।४५

अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम्।
प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् ॥४६

प्रतिदिन यज्ञ करने वाले को जो महाफल मिलता है वह फल विष्णु का मंदिर बनवाने वाले को प्राप्त होता है।४६

कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम्।
कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् ॥४७

भगवद्धाम का निर्माण कराकर मनुष्य अपने कुल की सौ, पीछे की और सौ आगे की पीढ़ियों को अच्युत-लोक में पहुँचा देता है।४७

सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम्।
तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान्[1] प्रतिपद्यते ॥४८

विष्णु सप्तलोकमय हैं। इसलिये जो व्यक्ति उनका मन्दिर बनवाता है वह कुल को अक्षय लोकों में पहुँचा देता है और स्वयं भी अक्षय लोकों को प्राप्त करता है।४८

इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति।
तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः ॥४९

---

१ क. ग. घ. ङ. च. °क्षयान्प्र°।

जितने वर्षों तक मन्दिर की ईंटें रहती हैं उतने हजार वर्षों तक मन्दिर का निर्माता स्वर्ग में विराजमान रहता है।४९

प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ।
देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे ॥५०

प्रतिमा-निर्माता विष्णुलोक को प्राप्त करता है और प्रतिष्ठाता विष्णु में ही लीन हो जाता है तथा देव-मन्दिर और प्रतिमा की प्रतिष्ठा करने वाला सदा भगवान् के लोक में निवास करता है।५०

अग्निरुवाच—

यमोक्ता न नयन्त्येतं प्रतिष्ठादिकृतं हरेः।
हयग्रीवः[1] प्रतिष्ठाद्यं[2] देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत् ॥५१

अग्निदेव बोले—यमराज के इस प्रकार आज्ञा देने पर यम के दूत भगवान् विष्णु की स्थापना आदि करने वालों को यमलोक में नहीं ले जाते। देवताओं की प्रतिष्ठा आदि की विधि का भगवान् हयग्रीव ने ब्रह्मा जी से वर्णन किया था।५१

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवालयनिर्माण-माहात्म्यादिवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः।३८

———

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठापने भूपरिग्रहविधानम्

हयग्रीव[1] उवाच—

विष्ण्वादीनां प्रतिष्ठादि वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणुष्व मे ।
प्रोक्तानि पञ्चरात्राणि सप्तरात्राणि वै मया ॥१

हयग्रीव बोले—ब्रह्मन् ! अब मैं विष्णु आदि देवताओं के प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा । आप ध्यानपूर्वक सुनिये ! मैं पञ्चरात्र और सप्तरात्र नामक ग्रन्थों को कहा है ।१

व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशतिसंख्यया ।
हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् ।
नारदीयं च श्रीप्रश्नं[2] शाण्डिल्यं चेश्वरं[3] तथा ॥३
सत्यक्तिं शौनकं तन्त्रं वासिष्ठं ज्ञानसागरम् ।
स्वायम्भुवं कापिलं च तार्क्ष्यं नारायणीयकम् ॥४
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारुणम् ।
बौधायनं तथाष्टाङ्गं[4] विश्वोक्तं तस्य सारतः ॥५
प्रतिष्ठां हि द्विजः कुर्यान्मध्यदेशादिसम्भवः ।
न कच्छदेशसम्भूतः कावेरीकौङ्कणोद्गतः ॥६
कामरूपः कलिङ्गोत्थः काञ्चीकाश्मीरके[5] स्थितः ।
आकाशवायुतेजाम्बुभूरेताः[6] पञ्चरात्रयः ॥७

संसार में मुनियों ने उनको ही पच्चीस भागों में व्यक्त किया है । (उन पच्चीस तन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं—) १. आदिहयशीर्षतन्त्र २. त्रैलोक्य-मोहनतन्त्र, ३. वैभव-तन्त्र, ४. पुष्कर-तन्त्र, ५. प्रह्लादतन्त्र, ६. गार्ग्यतन्त्र, ७. गालवतन्त्र, ८. नारदीयतन्त्र, ९. श्रीप्रश्नतन्त्र, १०. शाण्डिल्यतन्त्र, ११. ईश्वरतन्त्र, १२. सत्यतन्त्र, १३. शौनकतन्त्र, १४. वसिष्ठोक्त ज्ञान-

---

१ ग. अग्निरुवाच । २ घ. सम्प्रश्नं । ३ घ. वैश्वकं । ४ घ. तथार्षं तु ।
५ ख. ग. घ. च. °रकोशलः । आ° । ६ क. ख. ङ. च.° जोद्यु भू° ।

सागरतन्त्र, १५. स्वायम्भुवतन्त्र, १६. कापिलतन्त्र, १७. तार्क्ष्य (गरुड)—तन्त्र, १८. नारायणीय-तन्त्र, १९. आत्रेय-तन्त्र, २०. नारसिंह-तन्त्र, २१. आनन्दतन्त्र, २२. आरुणतन्त्र, २३. बौधायनतन्त्र, २४. अष्टाङ्गतन्त्र, और २५. विश्वतन्त्र। इन तन्त्रों के सारभूत मन्त्रों या विधियों के अनुसार मध्यदेशीय कुलीन ब्राह्मणों को ही देवविग्रहों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। कच्छदेश, कावेरी-तटवर्ती देश, कोंकण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची तथा कश्मीर देश में उत्पन्न ब्राह्मण देव-प्रतिष्ठा आदि न करे। आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी ये पञ्चमहाभूत पञ्चरात्र हैं।२-७।

अचैतन्यास्तमोद्रिक्ताः पञ्चरात्रिविवर्जिताः।
ब्रह्माहं विष्णुरमल इति विद्यात्स देशिकः ॥८

चेतना-रहित, तामस—अज्ञानान्धकार से उद्दण्ड व्यक्ति पञ्चरात्रि के योग्य नहीं हैं। जो व्यक्ति यह समझता है कि "मैं पाप-रहित परब्रह्म विष्णु हूँ"—वह देशिक—(आचार्य) होता है।८

सर्वलक्षणहीनोऽपि गुरुः स तन्त्रपारगः।
नगराभिमुखाः स्थाप्या देवा न च पराङ्मुखाः ॥९

सब लक्षणों से रहित परन्तु तन्त्र-शास्त्र में पारङ्गत विद्वान् गुरु बनने का अधिकारी है। देव-प्रतिष्ठा नगराभिमुख होनी चाहिये विपरीत दिशा में नहीं।९

कुरुक्षेत्रे गयादौ च नदीनां[1] तु समीपतः।
ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूर्वे शक्रस्य शोभनम् ॥१०

कुरुक्षेत्र, गया या नदी के समीप (तट पर) देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। ब्रह्मा का मन्दिर नगर के मध्य भाग में तथा इन्द्र का पूर्व दिशा में उत्तम माना गया है।१०

अग्नावग्नेश्च मातृणां भूतानां च यमस्य च।
दक्षिणे चण्डिकायाश्च पितृदैत्यादिकस्य च ॥११

अग्निकोण में अग्नि और मातृकाओं का, दक्षिण में भूतों और यम का, नैर्ऋत कोण में चण्डिका, पितर और दैत्य आदि का देवालय बनवाना चाहिये।११

---

१ क. ङ. च. नद्यादिषु स°।

नैर्ऋते मन्दिरं कुर्याद्वरुणादेश्च वारुणे ।
वायोर्नागस्य वायव्ये सौम्ये यक्षगुहस्य च ॥१२
चण्डीशस्य महेशस्य ऐशे विष्णोश्च सर्वशः ।
पूर्वदेवकुलं पीड्य प्रासादं स्वल्पकं त्वथ ॥१३
समं वाप्यधिकं वापि न कर्तव्यं विजानता १३½

पश्चिम में वरुण आदि का, वायव्य कोण में वायु और नाग का, उत्तर में यक्ष और गुह का तथा ईशान कोण में शिव का मन्दिर बनाना चाहिये । विष्णु की प्रतिष्ठा चारों ओर हो सकती है । ज्ञानवान् मनुष्य को पहले से स्थापित देवमन्दिर को संकुचित करके अल्प, समान या विशाल मन्दिर नहीं बनवाना चाहिये ।१२-१३½।

उभयोर्द्विगुणां सीमां त्यक्त्वा चोच्छ्रायसम्मिताम् ॥१४
प्रासादं कारयेदन्यं नोभयं पीडयेद् बुधः ।
भूमौ तु शोधितायां तु कुर्याद् भूमिपरिग्रहम् ॥१५

दो मन्दिरों की ऊँचाई के बराबर दुगुनी सीमा छोड़कर नवीन देवप्रासाद का निर्माण कराना चाहिये । विद्वान् व्यक्ति दोनों मन्दिरों को पीड़ित न करे । भूमि का शोधन करने के बाद भूमि का परिग्रह करना चाहिये ।१४-१५।

प्राकारसीमापर्यन्तं ततो भूतबलिं हरेत् ।
माषं हरिद्राचूर्णं तु सलाजं दधिसक्तुभिः ॥१६

इसके बाद मन्दिर के चहारदीवारी की सीमा तक उड़द, हल्दी का चूर्ण, धान का लावा, सत्तू और दही को मिलाकर भूतों को बलि देनी चाहिये ।१६

अष्टाक्षरेण सक्तूंश्च पातयित्वाष्टदिक्षु च ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले ॥१७
सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामहं हरेः ।
हलेन दारयित्वा[1] गां गोभिश्चैवावचारयेत्[2] ॥१८

अष्टाक्षर-मन्त्र से आठों दिशाओं में सत्तू बिखराना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है)—"इस भू-भाग पर जो राक्षस और पिशाच रहते हैं वे सब यहाँ से चले जायें । मैं यहाँ पर विष्णु का मन्दिर बनवाऊँगा ।" फिर भूमि को हल से जुतवाकर गोचारण करावे ।१७-१८।

---

१ घ. वाहयित्वा । २ ख. घ.° वदार° ।

परमाण्वष्टकेनैव रथरेणुः प्रकीर्तितः ।
रथरेण्वष्टकेनैव त्रसरेणुः प्रकीर्त्यते ॥१९
तैरष्टभिस्तु बालाग्रं लिक्षा[1] तैरष्टभिर्मता ।
ताभिर्यूकाष्टभिः ख्याता ताश्चाष्टौ यवमध्यमः ॥२०
यवाष्टकैरङ्गुलं स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः करः ।
चतुरङ्गुलसंयुक्तः स्वहस्तः[2] पद्महस्तकः ॥२१

आठ परमाणु का एक रथरेणु और आठ रथरेणु का एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणु का एक बालाग्र, आठ बालाग्र की एक लिक्षा और आठ लिक्षा की एक यूका मानी जाती है। आठ यूका का एक यव और आठ यव का एक अंगुल होता है। चौबीस अंगुल का एक हाथ और चार अंगुल से अधिक एक हाथ पद्महस्त कहा जाता है।१९-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठार्थभूपरिग्रहवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।३९

---

१ ख. ग. घ. लिख्या । २ घ. स हस्तः ।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

वास्तुमण्डलदेवतास्थापनापूजार्घ्यदानवलिदानादिविधानकथनम्

हयग्रीव[1] उवाच—

पूर्वमासीन्महद्भूतं सर्वभूतभयङ्करम् ।
तद्देवैर्निहितं भूमौ स वास्तु-पुरुषः स्मृतः ।१

हयग्रीव बोले—प्राचीन काल में सब प्राणियों को भय-त्रस्त करने वाला एक महान् भूत (प्राणी) था । देवताओं ने उसे भूमि में गाड़ दिया, वही वास्तु-पुरुष नाम से प्रसिद्ध हुआ ।१

चतुःषष्टिपदे क्षेत्रे ईशं कोणार्धसंस्थितम् ।
घृताक्षतैस्तर्पयेत्तं पर्जन्यं पदगं ततः ।।२
उत्पलाद्भिर्जयन्तं च द्विपदस्थं पताकया ।
महेन्द्रं चैककोष्ठस्थं सर्वरक्तपदे[2] रविम् ।।३

चतुःषष्टि पदों से युक्त क्षेत्र में अर्धकोण में स्थित ईश को घी एवं अक्षतों से तृप्त करे । फिर एक पद में स्थित पर्जन्य को कमल तथा जल से तृप्त करना चाहिये । द्विपदस्थ जयन्त को और एक कोष्ठ में स्थित महेन्द्र को पताका से तथा सम्पूर्ण रूप से लाल वर्णाकार कोष्ठ में स्थित रवि को चँदोवे से तृप्त करना चाहिये ।२-३।

वितानेनार्धपदगं सत्यं पादे भृशं घृतैः ।
व्योम शाकुनमांसेन कोणार्धपदसंस्थितम् ।।४

आधे पद में स्थित सत्य को और एक पद में स्थित भृश को घी से तृप्त करना चाहिये । अर्ध कोण में स्थित व्योम को शाकुन-मांस से तृप्त करना चाहिये ।४

स्रुचा चार्धपदे वह्निं पूषणं लाजयैकतः ।
स्वर्णेन वितथं द्विस्थं[3] मन्थनेन गृहाक्षतम्[4] ।।५

कोणार्घ में स्थित अग्नि को स्रुक् से, एकपदस्थ पूषा को धान के लावा से, द्विपदस्थ वितथ को स्वर्ण से और मन्थन-दण्ड से गृहाक्षत को तृप्त करना चाहिये ।५

---

१ क. ख. ग. घ. च भगवानुवाच । २ ख. घ. ङ. च. °रक्ते· प० ।
३ घ. द्विष्ठं । ४ क. ङ. च. गृहक्षतम् ।

मांसौदनेन धर्मेशमेकैकस्मिन् स्थितं द्वयम्[1] ।
गन्धर्वं द्विपदं गन्धैर्भृशं शाकुनजिह्वया ।।६

एक पद में स्थित यमराज को मांस-भात से, द्विपदस्थ गन्धर्व को गन्धों से और भृश को शाकुन-जिह्वा से तृप्त करना चाहिये ।६

एकस्थमर्धसंस्थं च यथा[2] नीलपटैस्तथा ।
पितृन् कृशरयार्धस्थं दन्तकाष्ठैः पदस्थितम् ।।७

एक या आधे कोष्ठ में स्थित देवों को जिस प्रकार नीले वस्त्र से पूजा जाता है उसी प्रकार पितरों को कृशरा (खिचड़ी) से तथा पदस्थित देवताओं को दातून से पूजना चाहिये ।७

दौवारिकं द्विसंस्थं च सुग्रीवं यावकेन तु ।
पुष्पदन्तं कुशस्तम्बैः पद्मैर्वरुणमेकतः ।।८

दो कोष्ठों में स्थित द्वारपाल सुग्रीव को हलुवे से, पुष्पदन्त को कुशसमूहों से और एक ओर वरुण की पूजा कमल से करनी चाहिये ।८

असुरं सुरया द्विस्थं[3] पदेशाय घृताम्भसा ।
यवैः पापं पदार्धस्थं रोगमध्ये च मण्डकैः ।।९

दो कोष्ठकों में स्थापित असुर को मदिरा से, शेष को घृतमिश्रित जल से, पदार्ध में स्थित पाप को यव से, अर्धपदस्थ रोग को माँड़ से तृप्त करना चाहिये ।९

नागपुष्पैः पदे नागं मुख्यं भक्ष्यैर्द्विसंस्थितम् ।
मुद्गौदनेन भल्लाटं पदे सोमं पदे तथा ।।१०

पद में स्थित नागदेव को नागकेसर से, दो कोष्ठकों में स्थित मुख्य नाग को भोज्य-पदार्थ से, पद में स्थित भल्लाट को उड़द मिले चावल से, सोम को खीर और मधु से तृप्त करना चाहिये ।१०

मधुना पायसेनाथ शालूकेन ऋषिं[4] द्वये ।
पदेऽदितिं लोपिकाभिरर्धे दितिमथापरम् ।।११

दो पदों में स्थित ऋषि को शालूक (जाती फल) से, एक पद में विद्यमान अदिति को लोपिका (एक प्रकार की मिठाई) से, दूसरे आधे में दिति को पूड़ी से तृप्त करना चाहिये ।११

---

१ क. ङ. च. स्वयम् २ क. ङ. च. मृगं । ३ घ. द्विष्ठं । ४ क. ङ. च. गिरिद्वये ।

पुरिकाभिस्ततश्चापमीशाधः पयसा पदे ।
ततोऽधश्चापवत्सं तु दध्ना चैकपदे स्थितम् ।।१२

ईश के नीचे एक कोष्ठ में चाप को दूध से, उसके नीचे चाप-वत्स को दही से अर्चित करना चाहिये ।१२

लड्डूकैश्च मरीचिं तु पूर्वकोष्ठचतुष्टये ।
सावित्रे रक्तपुष्पाणि ब्रह्माधःकोणकोष्ठके ।१३

पूर्व दिशा में चार कोष्ठकों में स्थित मरीचि को लड्डू चढ़ाना चाहिये । ब्रह्मा के अधोभाग के कोणस्थित कोष्ठ में अर्धपदस्थ सावित्र को लाल फूल चढ़ाना चाहिये ।१३

तदधःकोष्ठके दद्यात्सवित्रे च कुशोदकम् ।
विवस्वतेऽरुणं दद्याच्चन्दनं चतुरङ्घ्रिषु ।।१४

उसके निम्नवर्ती अर्ध-कोष्ठक में स्थित सविता को कुशोदक प्रदान करे । विवस्वान् के लिये चारों प्रकोष्ठों में लाल चन्दन अर्पित करना चाहिये ।१४

रक्षोऽधःकोणकोष्ठे तु इन्द्रायार्घ्यं निशान्वितम् ।
इन्द्रजयाय तस्याधो घृतार्धं कोणकोष्ठके ।।१५

रक्ष के नीचे कोने के प्रकोष्ठ में इन्द्र को हल्दी मिला अर्घ्य दे । कोने वाले प्रकोष्ठ में इन्द्रजय के लिये घी का अर्घ्य देना चाहिये ।१५

चतुष्पदे तु दातव्यमिन्द्राय गुडपायसम् ।
वाय्वधःकोणदेशे तु रुद्राय पक्वमांसकम् ।।१६

चार प्रकोष्ठों में इन्द्र के लिये गुड़ और खीर दे । वायु के नीचे वाले प्रकोष्ठ में रुद्र को पका मांस चढ़ाये ।१६

तदधःकोणकोष्ठे तु यक्षायार्धफलं तथा ।
महीधराय मांसान्नं माषं च चतुरङ्घ्रिषु ।।१७

उसके नीचे कोने के कोठे में यक्ष को आधा फल दे । महीधर (पर्वत) के लिये मांसान्न और उड़द चार प्रकोष्ठों में चढ़ाये ।१७

मध्ये चतुष्पदे स्थाप्या ब्रह्मणे तिलतण्डुलाः ।
चरकीं मांससर्पिभ्यां स्कन्दं कृशरया स्रजा ।।१८

बीच के चार प्रकोष्ठों में ब्रह्मा को तिल-तण्डुल अर्पित करे । चरकी को मांस और घी से संतुष्ट करके स्कन्द के ऊपर खिचड़ी और माला चढ़ाये ।१८

रक्तपत्रैर्विदारीं च कन्दर्पं च पलौदनैः ।
पूतनां पलपित्ताभ्यां मांसासृग्भ्यां च जम्भकम् ।।१६

विदारी को रक्तपत्र तथा कामदेव के ऊपर मांस और चावल चढ़ाये। पूतना को मांस और पित्त की बलि चढ़ाये तथा जम्भक को मांस और शोणित चढ़ाये ।१६

पित्तासृगस्थिभिः पापं पिलिपित्सं[1] स्रजासृजा ।
ईशाद्यान् रक्तमांसेन [2]अभावादक्षतैर्यजेत् ।।२०

पाप को मांस, पित्त और रक्त तथा पिलिपित्स को माला और रक्त चढ़ावे। ईश आदि को रक्त और मांस चढ़ावे, किन्तु इनके न मिलने पर अक्षत से पूजा करनी चाहिये ।२०

रक्षोमातृगणेभ्यश्च पिशाचादिभ्य एव च ।
पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो बलीन् दद्यात्प्रकामतः ।२१

रक्ष, मातृगण, पिशाच, पितर और क्षेत्रपालों को इच्छानुसार बलि चढ़ावे ।२१

अहुत्वैतानसन्तर्प्य प्रासादादीन्न कारयेत् ।
ब्रह्मस्थाने हरिं लक्ष्मीं गणं पश्चात्समर्थयेत् ।।२२

इन देवों को बिना आहुति दिये या बलि चढ़ाये मन्दिर या घर आदि नहीं बनाना चाहिये। इनको बलि आदि दे देने के अनन्तर ब्रह्मा के कोष्ठ में हरि, लक्ष्मी और गणेश की पूजा करनी चाहिये ।२२

महीं[3] नरं वास्तुमयं वर्धन्या सहितं घटम् ।
ब्रह्माणं मध्यतः कुम्भे ब्रह्मादींश्च दिगीश्वरान् ।।२३
दद्यात्पूर्णाहुतिं पश्चात् स्वस्तिवाच्य प्रणम्य च ।
प्रगृह्य कर्करीं सम्यङ्मण्डलं तु प्रदक्षिणम् ।।२४

पृथ्वी, वास्तुपुरुष और वर्धनी के सहित घट और ब्रह्मा को स्थापित करे। कलश के मध्य में ब्रह्मा आदि देवों और दिक्पालों को पूर्णाहुति दे। स्वस्तिपाठ कर प्रणाम करे। स्वयं कर्करी (छिद्रयुक्त जलपात्र) लेकर मण्डल की परिक्रमा करे ।२३-२४।

सूत्रमार्गेण हे ब्रह्मंस्तोयधारां च भ्रामयेत् ।
पूर्ववत्तेन मार्गेण सप्त बीजानि वापयेत् ।।२५

---

१ घ. पिलिपिङ्गं । २ ख. ग. अपि वा चाक्ष° । ३ घ. महीश्वरं ।

हे ब्रह्मन् ! प्रदक्षिणा करके चारों ओर बँधे सूत्रमार्ग से जलधारा गिराता हुआ घूम आये। पूर्व की भाँति उस मार्ग में सात स्थानों पर थोड़ा-सा बीज बोना चाहिये।२५

प्रारम्भं तेन मार्गेण तस्य खातस्य कारयेत्।
ततो गर्तं खनेन्मध्ये हस्तमात्रं प्रमाणतः ॥२६

उसी जलधार से सिंचे हुए मार्ग में नींव के लिये गड्ढ़ा खुदवाना प्रारम्भ करके उसके मध्यभाग में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोद देना चाहिये।२६

चतुरङ्गुलकं चाधश्चोपलिप्यार्चयेत्ततः[1]।
ध्यात्वा चतुर्भुजं विष्णुमर्घ्यं दद्यात्तु कुम्भतः ॥२७

उसके चारों ओर चार अंगुल नीचे लीपकर पूजन प्रारम्भ करे। चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करके कलश से जल लेकर अर्घ्य दे।२७

कर्कर्या पूरयेच्छ्वभ्रं शुक्लपुष्पाणि च न्यसेत्।
दक्षिणावर्तकः श्रेष्ठं बीजैर्मृद्भिश्च पूरयेत् ॥२८

कर्करी से गर्त को भरकर उसमें श्वेत पुष्प डाले। उस श्रेष्ठ दक्षिणावर्त गर्त को बीज एवं मृत्तिका से भर दे।२८

अर्घ्यदानं विनिष्पाद्य गोवस्त्रादीन् ददेद् गुरौ।
कालज्ञाय स्थपतये वैष्णवादित्यपूजनम्[2] ॥२९

अर्घ्यदान के अनन्तर गुरु को, गोवस्त्रादि का दान करे। ज्योतिषी और राजमिस्त्री का यथोचित सत्कार करके विष्णु-भक्त और सूर्य का पूजन करे।२९

ततस्तु खानयेद्यत्नाज्जलान्तं यावदेव तु।
पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ॥३०

तदनन्तर जब तक जल न निकले तब तक नींव को खुदवाना चाहिये। एक पोरसा नीचे मिली हुई हड्डी घर के लिये दोषकारक नहीं होती।३०

---

१ ख. ग. येच्च तत्। २ घ. °दिभ्य अर्चयेत्।

अस्थिशल्ये भिद्यते वै भित्तिर्वै गृहिणोऽसुखम् ।
यन्नामशब्दं शृणुयात्तत्तु[1] शल्यं तदुद्भवम् ।।३१

अस्थि (शल्य) होने पर घर की दीवार टूट जाती है और गृहपति को सुख नहीं प्राप्त होता। खुदाई के समय जो नाम-शब्द सुना जाता है वह शल्य उसी का माना जाता है।३१

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्घ्यदानविधानादिकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।४०

---

१ घ. °तत्र श°।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधानम्

हयग्रीव उवाच—

पादप्रतिष्ठां वक्ष्यामि शिलाविन्यासलक्षणाम् ।
अग्रतो मण्डपः कार्यः कुण्डानां तु चतुष्टयम् ॥१

हयग्रीव बोले—अब मैं शिलाविन्यासस्वरूपा पादप्रतिष्ठा का वर्णन करूँगा । अग्रभाग में एक मण्डप और चार कुण्ड बनवाना चाहिये ।१

कुम्भन्यासेष्टकान्यासो द्वारस्तम्भोच्छ्रयं शुभम् ।
पादोनं पूरयेत्खातं तत्र वास्तुं यजेत्समे ॥२

उसके बाद कलश-स्थापन, इष्टिकान्यास और ऊँचा माङ्गलिक द्वार-स्तम्भ बनवाना चाहिये । पहले गड्ढे को तीन चौथाई भर देना चाहिये और तब उसकी मिट्टी को बराबर करके उस पर वास्तु की पूजा करनी चाहिये ।२

इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशाङ्गुलसम्मिताः[1] ।
स्वविस्तारत्रिभागेण वैपुल्येन समन्विताः ॥३

ईंटें खूब पकी हुई बारह अंगुल लंबी हों। उनकी मोटाई, लम्बाई की तिहाई हो ।३

करप्रमाणा श्रेष्ठा स्याच्छिलाप्यथ[2] शिलामये ।
नव कुम्भांस्ताम्रमयान्स्थापयेदिष्टकाघटान् ॥४

शिलामय मन्दिर के शिलान्यास के लिये एक हाथ लम्बी शिला उपयुक्त होती है । ताँबे के नौ कलशों की अथवा मिट्टी के बने नौ कलशों की स्थापना करनी चाहिये ।४

अद्भिः पञ्चकषायेण सर्वौषधिजलेन च ।
गन्धतोयेन च तथा कुम्भैस्तोयसुपूरितैः ॥५
हिरण्यव्रीहिसंयुक्तैर्गन्धचन्दनचर्चितैः ।
आपो हि ष्ठेति तिसृभिः शं नो देवीति चाप्यथ ॥६

---

१ घ.°ताः । सुवि° । २ ख. ग. °ला स्यान्न शि° ।

तरत्समन्दीरिति च पावमानीभिरेव च ।
उदुत्तमं वरुणमिति कयानश्च तथैव च ॥७
वरुणस्येति मन्त्रेण हंसः शुचिषदित्यपि ।
श्रीसूक्तेन च तथा शिलाः संस्थाप्य सङ्घशः[१] ॥८
शय्यायां मण्डपे प्राच्यां मण्डले हरिमर्चयेत् ।
जुहुयाज्जनयित्वाग्निं समिधो द्वादशार्णतः[२] ॥६

उन कलशों को पञ्च कषाय सर्वौषधि मिले जल से भर देना चाहिये। उस जल में सुवर्ण, सप्तधान्य, गन्ध और चन्दन छोड़ देना चाहिये। चन्दन, पुष्प, गन्ध आदि से उन कलशों की भलीभाँति पूजा कर देनी चाहिये। 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं, 'शं नो देवीरभिष्टय' आदि मन्त्रों, 'तरत्समन्दीः इत्यादि मन्त्र एवं पावमानी ऋचाओं के तथा 'उदुत्तमं वरुण' 'कया नः' और 'वरुणस्योत्तम्भनमसि' इत्यादि मन्त्रों के पाठपूर्वक 'हंसः शुचिषद्' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीसूक्त का भी उच्चारण करते हुए बहुत-सी शिलाओं अथवा ईंटों का अभिषेक करे। फिर उन्हें नींव में स्थापित करके मण्डप के भीतर एक शय्या पर पूर्वमण्डल में भगवान् श्री विष्णु का पूजन करे। अरणी-मन्थन द्वारा अग्नि प्रकट करके द्वादशाक्षर-मन्त्र से उसमें समिधाओं का हवन करना चाहिये ।५-६।

आधारावाज्यभागौ तु प्रणवेनैव कारयेत् ।
अष्टाहुतीस्तथाष्टार्णैराज्यं[३] व्याहृतिभिः क्रमात् ॥१०
लोकेशायाग्नये[४] चैव सोमाय[५] च ग्रहाय च ।
पुरुषोत्तमायेति च व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ॥११

'आधार' और 'आज्य' नामक आहुतियाँ प्रणव-मन्त्र से ही कराये। फिर अष्टाक्षर-मन्त्र से आठ आहुतियाँ देकर 'ॐ भूः स्वाहा,' 'ॐ भुवः स्वाहा' 'ॐ स्वः स्वाहा'—इन तीन व्याहृतियों से क्रमशः लोकेश्वर अग्नि, सोमग्रह और भगवान् पुरुषोत्तम के निमित्त हवन करे।१०-११।

प्रायश्चित्तं ततः पूर्णां मूर्ति[६] मांसं घृतं तिलान् ।
वेदाद्य[७] द्वादशान्तेन[८] कुम्भेषु च पृथक् पृथक् ॥१२

---

१ क. संयुताः । घ. संघटाः । २ घ.° दशीस्तः । ३ घ. °ष्ठान्तैरा°. ४ घ. °शानामग्नये । ° वै सो° । ५ घ. मायावग्रहेषु च । ६ घ. मूर्तिमांसघृतास्तिला° । ७ ख. °दान्तैद्वा° ८ क. ङ. च. शार्णेन ।

प्राङ्मुखस्तु गुरुः कुर्यादष्टदिक्षु विलिप्य च।
मध्ये चैकां शिलां कुम्भान् न्यसेदेतान्सुरान् क्रमात् ॥१३

इसके बाद प्रायश्चित्त संज्ञक हवन करके प्रणवयुक्त द्वादशाक्षर-मन्त्र से मूर्ति, मांस, घी और तिल को एक साथ लेकर पूर्णाहुति-हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् आचार्य पूर्वाभिमुख होकर आठ दिशाओं में स्थापित कलशों पर पृथक्-पृथक् पद्म आदि देवताओं का स्थापन-पूजन करे। बीच में भी धरती लीपकर पत्थर की एक शिला और कलश स्थापित करे। इन नौ कलशों पर क्रमशः नीचे लिखे देवताओं की स्थापना करनी चाहिये।१२-१३।

पद्मं चैव महापद्मं मकरं कच्छपं तथा।
कुमुदं च तथानन्दं पद्मं शङ्खं च पद्मिनीम् ॥१४

पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, आनन्द, पद्म, शङ्ख और पद्मिनी-देवताओं को स्थापित करना चाहिये।१४

कुम्भान्न चालयेत्तेषु न्यसेदष्टेष्टकाः क्रमात्।
ईशानान्ताश्च पूर्वादाविष्टकाः प्रथमं न्यसेत् ॥१५

इन कलशों को हिलाये-डुलाये नहीं; उनके निकट पूर्व आदि के क्रम से ईशान कोण तक एक-एक ईंट रख दे।१५

शक्तयो विमलाद्यास्तु इष्टकानां तु देवताः।
न्यसनीया यथायोगं मध्ये न्यस्या त्वनुग्रहा ॥१६

विमला आदि शक्तियाँ उन इष्टकाओं की देवता हैं। उन देवताओं को यथायोग उन ईंटों पर स्थापित करके मध्य में अनुग्रहा देवी की स्थापना करनी चाहिये।१६

अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते।
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥७१

इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—"मुनिवर अङ्गिरा की सुपुत्री इष्टका देवी, तुम्हारा कोई अंग टूटा-फूटा या खराब नहीं हुआ है, तुम अपने सभी अंगों से पूर्ण हो। मेरा अभीष्ट पूर्ण करो। अब मैं प्रतिष्ठा करा रहा हूँ।१७

मन्त्रेणानेन विन्यस्य इष्टका देशिकोत्तमः।
गर्भाधानं ततः कुर्यान्मध्यस्थाने समाहितः ॥१८

उत्तम आचार्य इस मन्त्र से इष्टिकान्यास करके एकचित्त होकर मध्य-स्थान में गर्भाधान करे।१८

कुम्भोपरिष्टाद् देवेशं पद्मिनीं न्यस्य देवताम्।
मृत्तिकाश्चैव पुष्पाणि धातवो (तून्वै) रत्नमेव च ॥१९

कुम्भ के ऊपर देवेश और पद्मिनी (लक्ष्मी) देवी को स्थापित करके मृत्तिका (मिट्टी) पुष्प, धातु और रत्न समर्पित करे।१९

लोहादिनिर्मिते[1] चास्त्रं यजेद्वै गर्भभाजने।
द्वादशाङ्गुलविस्तारे चतुरङ्गुलकोच्छ्रये ॥२०
पद्माकारे ताम्रमये भाजने पृथिवीं यजेत्।२०½

लोहा आदि के बने गर्भभाजन पर अस्त्र की पूजा करनी चाहिये। बारह अंगुल विस्तार वाले और चार अंगुल ऊँचे पद्माकार ताँबे के पात्र में पृथिवी की पूजा करनी चाहिये।२०-२०½।

एकान्ते सर्वभूतेशे पर्वतासनमण्डिते।२१
समुद्रपरिवारे त्वं देवि गर्भं समाश्रय।
नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ॥२२
जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे!
पूर्णेऽङ्गिरस (सो) दायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ॥२३
भद्रे! काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम।
सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते।२४
जये रुचिरे नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह।
प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि ॥२५
सुभगे सुप्रभे भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम्।
पूजिते परमाश्चर्ये[2] गन्धमाल्यैरलङ्कृते ॥२६
भव भूतिकरी[3] देवि गृहे भार्गवि रम्यताम्।
[4]देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ॥२७
मनुष्यादिकतुष्टचर्थं पशुवृद्धिकरी भव।
एवमुक्त्वा ततः खातं गोमूत्रेण तु सेचयेत् ॥२८

---

१ घ. लौहानि दिक्पतेरस्त्रं। २ क. ङ. च. °माचार्ये। ३ ख. ग. °करे दे°। ४ क. ङ. च देहस्वा°।

पृथ्वी की प्रतिष्ठा का मन्त्र—"सम्पूर्ण भूतों की ईश्वरी पृथ्वीदेवी ! तुम पर्वतों के आसन से सुशोभित हो, चारों ओर समुद्रों से घिरी हुई हो; एकान्त में गर्भ धारण करो। वसिष्ठकन्या नन्दा ! वसुओं और प्रजाओं के सहित तुम मुझे आनन्दित करो। भार्गवपुत्री जया ! तुम प्रजाओं को विजय दिलाने वाली हो [मुझे भी विजय दो]। अङ्गिरा की पुत्री पूर्णा ! तुम मेरी कामनायें पूर्ण करो। महर्षि कश्यप की कन्या भद्रा ! तुम मेरी बुद्धि कल्याणमयी कर दो। सम्पूर्ण बीजों से युक्त और समस्त रत्नों एवं औषधों से सम्पन्न सुन्दरी जया देवी तथा वसिष्ठ की पुत्री नन्दा देवी ! यहाँ आनन्दपूर्वक रम जाओ। हे कश्यप की कन्या भद्रा। तुम प्रजापति की पुत्री हो, चारों ओर फैली हुई हो , परम महती हो, साथ ही सुन्दरी और सुकान्त हो। इस गृह में रमण करो। हे भार्गवी देवी ! तुम परम आश्चर्यमयी हो; गन्ध और माल्य आदि से सुशोभित एवं पूजित हो। लोकों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली देवि ! तुम इस गृह में रमण करो। इस देश के सम्राट्, इस नगर के राजा और इस घर के मालिक के बालबच्चों को तथा मनुष्य आदि प्राणियों को आनन्द देने के लिए पशु आदि सम्पदा की वृद्धि करो। इसी प्रकार प्रार्थना करके वास्तुकुण्ड को गोमूत्र से सींचना चाहिये। २१-२८।

कृत्वा निधापयेद्गर्भं गर्भाधानं भवेन्निशि ।
गोबस्त्रादि प्रदद्याच्च गुरवेऽन्येषु भोजनम् ॥२६

यह सब विधि पूर्ण करके कुण्ड में गर्भ को स्थापित करे । यह गर्भाधान रात में होना चाहिये। उस समय आचार्य को गोवस्त्रादि दान करे तथा अन्य लोगों को भोजन दे।२६

गर्भं न्यस्येष्टका न्यस्य ततो गर्भं प्रपूरयेत् ।
पीठबन्धमतः कुर्यात्ततः[1] प्रासादमानतः ॥३०

इस प्रकार गर्भपात्र रखकर और ईंटों को भी रखकर उस कुण्ड को भर दे। तत्पश्चात् मन्दिर की ऊँचाई के अनुसार प्रधान देवता के पीठ का निर्माण करे।३०

पीठोत्तमं चोच्छ्रयेण प्रासादस्यार्धविस्तरात् ।
पादहीनं मध्यमं स्यात् कनिष्ठं चोत्तमार्धतः ॥३१

१ क. ख. ग. घ. 'र्यान्मितप्रा°।

'उत्तम पीठ' वह है जो ऊँचाई में मन्दिर के आधे विस्तार के बराबर हो। उत्तम पीठ की अपेक्षा एक चौथाई कम ऊँचाई होने पर 'मध्यम पीठ' कहलाता है और 'उत्तम पीठ' की आधी ऊँचाई होने पर 'कनिष्ठ पीठ' होता है।३१

पीठबन्धोपरिष्टात्तु वास्तुयागं[1] पुनर्यजेत्।
पादप्रतिष्ठाकारी तु निष्पापो दिवि मोदते॥३२

पीठ-बन्ध के ऊपर पुनः वास्तु-देवता का पूजन करना चाहिये। केवल पाद-प्रतिमा करने वाला मनुष्य भी सब पापों से रहित होकर देवलोक में आनन्दभोग करता है।३२

देवागारं करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत्।
तस्य कायगतं पापं तदह्ना हि प्रणश्यति॥३३

'मैं देवमन्दिर बनवा रहा हूँ'—ऐसा जो मन से चिन्तन भी करता है, उसका शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाता है।३३

कृते तु किं पुनस्तस्य प्रासादे विधिनैव तु।
अष्टेष्टकासमायुक्तं यः कुर्याद् देवतालयम्॥३४
न तस्य फलसम्पत्तिर्वक्तुं शक्येत केनचित्।
अनेनैवानुमेयं हि फलं प्रासादविस्तरात्॥३५

—तो जो विधान के अनुकूल मन्दिर बनवा देता है उसके विषय में क्या कहा जाये? जो व्यक्ति अष्ट इष्टका से युक्त मन्दिर (भी) बनवाता है उसके पुण्य-फल का तो कोई वर्णन करने में समर्थ ही नहीं हो सकता। इसी से देवप्रसाद-निर्माण के विस्तृत फल-सम्पत्ति का अनुमान कर लेना चाहिये।३४-३५।

ग्राममध्ये च पूर्वस्यां[2] प्रत्यग्द्वारं प्रकल्पयेत्।
विदिशासु च सर्वासु[3] ग्रामप्रत्यङ्मुखं भवेत्॥३६
दक्षिणे चोत्तरे चैव पश्चिमे प्राङ्मुखं[4] भवेत्॥३७

---

१ क. च. वास्तुयोगं। ख. ग. वास्तु वाजं। २ ख. ग, घ. पूर्वे च। ङ. च. मध्ये च। ३ घ. ग्रामे प्रत्यङ्मुखो भ°। ४ घ. प्राङ्मुखो।

गाँव के बीच में अथवा गाँव के पूरब में बने हुए मन्दिर के द्वार का मुख पश्चिम की ओर होना चाहिये। सभी दिक्कोणों में बने हुए मन्दिरों के द्वार पश्चिमाभिमुख होने चाहिये। दक्षिण, उत्तर और पश्चिम में बने मन्दिरों का द्वार पूरब की ओर होना चाहिये।३६-३७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वशिलाविन्यासविधानादिकथनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः।४१

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासादलक्षणकथनम्

हयग्रीव उवाच—

प्रासादं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसाधारणं शृणु ।
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं भजेत्षोडशधा बुधः ॥१
मध्ये तस्य चतुर्भिस्तु कुर्यादायसमन्वितम् ।
द्वादशैव तु भागांश्च भित्त्यर्थं परिकल्पयेत् ॥२

हयग्रीव बोले—अब मैं सर्वसाधारण प्रासाद (निर्माण-विधि) के विषय में बतला रहा हूँ, । उसे सुनो । बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह एक चौकोर भूभाग को सोलह भागों में विभक्त करे । इनमें से बीच के चार भागों को आय सहित गर्भ (मन्दिर के भीतरी भाग की रिक्त भूमि) निश्चित करे तथा शेष बारह भागों को दीवार उठाने के लिये नियत करे ।१-२।

जङ्घोच्छ्रायस्तु कर्तव्यश्चतुर्भागेण चायतः ।
जङ्घाया द्विगुणोच्छ्रायो मञ्जर्याः कल्पयेद् बुधः ॥३

उक्त बारह भागों में से चार भाग की जितनी लंबाई है, उतनी ही ऊँचाई प्रासाद के दीवारों की होनी चाहिये । विद्वान् पुरुष दीवारों की ऊँचाई से दुगुनी शिखर की ऊँचाई रखे ।३

तुर्यभागेण मञ्जर्याः कार्यः[1] सम्यक्प्रदक्षिणः[2] ।
तन्माननिगमः कार्य उभयोः पार्श्वयोः समः ॥४

शिखर के चौथे भाग की ऊँचाई के अनुसार मन्दिर की परिक्रमा की ऊँचाई रखे । उसी मान के अनुसार दोनों पार्श्व भागों में निकलने का मार्ग (द्वार) बनाना चाहिये । वे द्वार एक-दूसरे के समान होने चाहिये ।४

शिखरेण समं कार्यमग्रे जगति विस्तरम् ।
द्विगुणेनापि कर्तव्यं यथाशोभानुरूपतः ॥५

---

१ क. ङ. च. कार्या । २ क. ङ. च °क्षिणा । त° ।

मन्दिर के सामने के भूभाग का विस्तार भी शिखर (की ऊँचाई) के बराबर करना चाहिये। सुन्दरता के अनुसार उसका विस्तार दुगुना भी किया जा सकता है।५

विस्तारान्मण्डपस्याग्रे गर्भसूत्रद्वयेन तु।
दैर्घ्यात्पादादिकं कुर्यान्मध्यस्तम्भैर्विभूषितम्॥६

मन्दिर के आगे का सभामण्डप विस्तार में मन्दिर के गर्भसूत्र से दूना होना चाहिये। मन्दिर के पाद-स्तम्भ आदि भित्ति के बराबर ही बनाये जाँय। वे मध्यवर्ती स्तम्भों से विभूषित हों।६

प्रासादगर्भमानं वा कुर्वीत मुखमण्डपम्।
एकाशीतिपदैर्वास्तुं पश्चान्मण्डपमारभेत्॥७

अथवा मन्दिर के गर्भ का जो मान है, वही उसके मुखमण्डप। (सभा-मण्डप या जगमोहन) का भी रखे। तत्पश्चात् इक्यासी पदों (स्थानों) से युक्त वास्तु-मण्डप का आरम्भ करे।७

शुकान्प्राग्द्वारविन्यासे ([1]पादान्तःस्थान्यजेत् सुरान्।)
तथा प्राकारविन्यासे यजेद् द्वात्रिंशदन्तगान्[2]॥८

अग्र द्वार पर शुकों का, निर्गत-द्वार पर देवताओं का और चारों ओर की दीवारों पर बत्तीस अन्तगों का पूजन होना चाहिये।८

सर्वसाधारणं चैतत् प्रासादस्य च लक्षणम्।
मानेन प्रतिमाया वा प्रासादमपरं शृणु॥९

यह तो रहा प्रासादों का सर्वसाधारण लक्षण। अब मैं प्रतिमा के मान से बनाये जाने वाले अन्य प्रासादों के सम्बन्ध में बताता हूँ, उसे भी सुनो।९

प्रतिमायाः प्रमाणेन कर्तव्या पिण्डिका शुभा।
गर्भस्तु पिण्डिकार्धेन गर्भमानास्तु भित्तयः॥१०

जितनी बड़ी प्रतिमा हो, उतनी बड़ी सुन्दर पिण्डी बनाये। पिण्डी के आधे मान से गर्भ का निर्माण करे और गर्भ के मान के ही अनुसार भित्तियाँ उठाये।१०

भित्तेरायाममानेन उत्सेधं तु प्रकल्पयेत्।
भित्त्युच्छ्रायात्तु द्विगुणं शिखरं कल्पयेद् बुधः॥११

---

१ च. पुस्तके पादान्तः......सुरान् नास्ति। २ ख. ॰न्तकान्।

भीतों की लम्बाई के अनुसार ही उनकी ऊँचाई रखे। विद्वान् पुरुष भीत की ऊँचाई से दुगुनी शिखर की ऊँचाई कराये।११

शिखरस्य तु तुर्येण भ्रमणं परिकल्पयेत्।
शिखरस्य चतुर्थेन अग्रतो मुखमण्डपम् ॥१२

शिखर की ऊँचाई की चौथाई के बराबर परिक्रमा का निर्माण कराये और इसी प्रमाण का मुखमण्डप भी होना चाहिये ॥१२

अष्टमांशेन गर्भस्य रथकानां तु निर्गमः।
परिधेर्गुणभागेन रथकांस्तत्र कल्पयेत् ॥१३

गर्भ के अष्टमांश से रथकों का निर्गम बनाना चाहिये। अथवा रथकों का निर्गम परिधि के तृतीयांश से भी बनाया जा सकता है।१३

तत्तृतीयेन वा कुर्याद्रथकानां तु निर्गमः।
वामत्रयं स्थापनीयं रथकत्रितये सदा ॥१४

अथवा उनके भी तृतीय भाग के माप का उन रथों के निकलने के मार्ग (द्वार) का निर्माण करावे। तीन रथकों पर सदा तीन वामों की स्थापना करे।१४

शिखरार्थं[1] हि सूत्राणि चत्वारि विनिपातयेत्।
शुकनासोर्ध्वतः सूत्रं तिर्यग्भूतं निपातयेत् ॥१५

शिखर के लिये चार सूत्रों का निपातन करे। शुकनासा के ऊपर से सूत को तिरछा गिरावे ॥१५

शिखरस्यार्धभागस्थं सिंहं तत्र तु कारयेत्।
शुकनासां स्थिरीकृत्य मध्यसन्धौ विधारयेत् ॥१६

शिखर के आधे भाग में सिंह की प्रतिमा का निर्माण करावे। शुकनासा पर सूत को स्थिर करके उसे मध्य सन्धि तक ले जाय।१६

अपरे च तथा पार्श्वे तद्वत्सूत्रं विधारयेत्[2]।
तदूर्ध्वं तु भवेद्वेदी सकण्ठासनसारकम्[3] ॥१७

इसी प्रकार दूसरे पार्श्व में भी सूत्रपात करे। शुकनासा के ऊपर वेदी हो और वेदी के ऊपर आसनसार नामक कण्ठसहित कलश का निर्माण कराया जाय।१७

---

१ क. ख च. शिखरार्थं।२ घ. च. निवापयेत्। ३ ख. °ण्ठासनसारकम्। घ. °ण्ठर्धं मनं।

स्कन्धभग्नं न कर्तव्यं विकरालं तथैव च ।
ऊर्ध्वं तु वेदिकामानात्कलशं परिकल्पयेत् ॥१८

(सिंह के) स्कन्ध का भंग नहीं होना चाहिये और न ही उसे विकराल बनाना चाहिये। वेदी के मान से ऊपर ही कलश की कल्पना करनी चाहिये ।१८

विस्ताराद् द्विगुणं द्वारं कर्तव्यं तु सुशोभनम् ।
उदुम्बरौ तदूर्ध्वं च न्यसेच्छाखां सुमङ्गलैः ॥१९

मन्दिर के द्वार की जितनी चौड़ाई हो, उससे दूनी उसकी ऊँचाई रखनी चाहिये। द्वार को बहुत ही सुन्दर और शोभायमान बनाना चाहिये। द्वार के ऊपरी भाग में सुन्दर मंगलमय वस्तुओं के साथ गूलर की दो शाखायें स्थापित करे (खुदवाये) ।१९

द्वारस्य तु चतुर्थांशे कार्यौ चण्डप्रचण्डकौ ।
विष्वक्सेनो वत्सदण्डो शाखार्धोदुम्बरे[1] श्रियम् ॥२०

द्वार के चतुर्थांश में चण्ड, प्रचण्ड, विष्वक्सेन और वत्सदण्ड—इन चार द्वारपालों की मूर्तियों का निर्माण करना चाहिये। गूलर की शाखा के अर्ध-भाग में लक्ष्मी देवी के श्रीविग्रह को अंकित करे ।२०

दिग्गजैः स्नाप्यमानां तां घटैः साब्जां सुरूपिकाम् ।
प्रासादस्य चतुर्थांशैः प्राकारस्योच्छ्रयो भवेत् ॥२१

(उस लक्ष्मी को) दिग्गज कलश के द्वारा नहला रहे हों, उसके हाथ में कमल हो और वह सुन्दर रूप वाली हो। मन्दिर के परकोटे की ऊँचाई उसके चतुर्थांश के बराबर हो ।२१

प्रासादात्पादहीनं तु गोपुरस्योच्छ्रयो भवेत् ।
पञ्चहस्तस्य देवस्य एकहस्ता तु पीठिका ॥२२

प्रासाद की ऊँचाई से तीन चौथाई ऊँचाई गोपुर की होती है। पाँच हाथ ऊँचे देवता की पीठिका एक हाथ ऊँची होती है ।२२

गारुडं मण्डपं चाग्रे एकं भौमादिधाम च ।
कुर्याद् द्विप्रतिमायामं[2] दिक्षु चाष्टासु चोपरि ॥२३

---

१ घ. शिखोर्ध्वोदुम्बरे। २ घ. कुर्याद्धि प्रतिमायां तु।

विष्णु-मन्दिर के सामने एक गरुड़-मण्डप तथा भौमादि-धाम का निर्माण करे। भगवान् के श्रीविग्रह के सब ओर आठों दिशाओं के ऊपरी भाग में भगवत्प्रतिमा से दुगुनी अवतारों की मूर्तियाँ बनावे।२३

पूर्वे वराहं दक्षे च नृसिंहं श्रीधरं जले।
उत्तरे तु हयग्रीवमाग्नेय्यां जामदग्न्यकम् ॥२४

पूर्व दिशा में वराह, दक्षिण में नृसिंह, पश्चिम में श्रीधर, उत्तर में हयग्रीव, और अग्निकोण में परशुराम की मूर्ति का निर्माण करना चाहिये।२४

नैर्ऋत्यां रामकं वायौ वामनं वासुदेवकम्।
ईशे प्रासादरचना देया वस्वर्ककादिभि: ॥२५

नैर्ऋत्यकोण में श्रीराम, वायव्यकोण में वामन तथा ईशानकोण में वासुदेव की मूर्ति का निर्माण करे। प्रासाद-रचना आठ, बारह आदि सम संख्या वाले स्तम्भों द्वारा करनी चाहिये।२५

द्वारस्य चाष्टमाद्यंशं त्यक्त्वा वेधो न दोषभाक् ॥२६

द्वार के अष्टम आदि अंश को छोड़कर जो वेध होता है वह दोषकारक नहीं होता।२६

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासादादीनां लक्षण-वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्याय: ।४२

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासाददेवतास्थापनभूतशान्त्यादिकथनम्

हयग्रीव उवाच—

प्रासादे देवताः स्थाप्या वक्ष्ये ब्रह्मञ्शृणुष्व मे ।
पञ्चायतनमध्ये तु वासुदेवं निवेशयेत् ।।१
वामनं नृहरिं चाश्वशीर्षं तद्वच्च शूरकम् ।
आग्नेये नैर्ऋते चैव वायव्ये चेशगोचरे ।।२

हयग्रीव बोले—ब्रह्मन् ! अब मैं मन्दिर में स्थापित करने योग्य देवताओं का वर्णन करूँगा, आप सुनें । पञ्चायतन मंदिर में जो बीच का प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेव को स्थापित करे । शेष चार मन्दिरों में से अग्नि-कोण वाले मन्दिर में भगवान् वामन की, नैर्ऋत्यकोण में नरसिंह की, वायव्य-कोण में हयग्रीव की और ईशानकोण में वराह भगवान् की स्थापना करे ।१-२।

अथ नारायणं मध्ये ह्याग्नेय्यामम्बिकां न्यसेत् ।
नैर्ऋत्यां भास्करं वायौ ब्रह्माणं लिङ्गमीशके ।।३
अथवा रुद्ररूपं तु अथवा नवधामसु ।
वासुदेवं न्यसेन्मध्ये पूर्वादौ रामरामकान्[1] ।।४
इन्द्रादील्लोँकपालांश्च अथवा नवधामसु ।
पञ्चायतनकं कुर्यान्मध्ये तु पुरुषोत्तमम् ।।५

अथवा यदि बीच में भगवान् नारायण की स्थापना करे तो अग्निकोण में दुर्गा की, नैर्ऋत्यकोण में सूर्य की, वायव्यकोण में ब्रह्मा की और ईशान-कोण में लिङ्गमय शिव की स्थापना करे। अथवा ईशान में रूद्र रूप की स्थापना करे । अथवा एक-एक आठ दिशाओं में और एक बीच में—इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवाये । उनमें से बीच में वासुदेव की स्थापना करे और पूर्वादि दिशाओं में परशुराम-राम आदि नौ अवतारों की तथा इन्द्र आदि लोकपालों की स्थापना करनी चाहिये । अथवा कुल नौ धामों में पाँच मन्दिर मुख्य बनवाये। इनके मध्य में भगवान् पुरुषोत्तम की स्थापना करे ।३-५।

---

१ ख. ग. घ. वामवामकान् ।

लक्ष्मीवैश्रवणौ पूर्वे दक्षे मातृगणं न्यसेत् ।
स्कन्दं गणेशमीशानं सूर्यादीन्पश्चिमे ग्रहान् ॥६
उत्तरे दश मत्स्यादीनाग्नेय्यां चण्डिकां तथा ।
नैर्ऋत्यामम्बिकां स्थाप्य वायव्ये तु सरस्वतीम् ॥७
पद्मामैशे वासुदेवं मध्ये नारायणं च वा ।
त्रयोदशालये मध्ये विश्वरूपं न्यसेद्धरिम् ॥८

पूर्व दिशा में लक्ष्मी और कुबेर की, दक्षिण में मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिव की, पश्चिम में सूर्य आदि नौ ग्रहों की तथा उत्तर में मत्स्य आदि दस अवतारों की स्थापना करे। इसी प्रकार अग्निकोण में चण्डी की, नैर्ऋत्य-कोण में अम्बिका की, वायव्यकोण में सरस्वती की और ईशानकोण में लक्ष्मी-जी की स्थापना करनी चाहिये। मध्यभाग में वासुदेव अथवा नारायण की स्थापना करे। अथवा तेरह कमरों वाले देवालय के मध्य में विश्वरूप भगवान् विष्णु की स्थापना करे।६-८।

पूर्वादौ केशवादीन्वा अन्यधामस्वयं हरिः[1] ।
मृन्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा ॥९
शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी[2] सप्तधा स्मृता ।
कौसुमी गन्धजा चैव मृन्मयी प्रतिमा तथा ॥१०
तत्कालपूजिताश्चैताः सर्वकामफलप्रदाः ।
अथ शैलमयीं वक्ष्ये शिला यत्र च गृह्यते ॥११

पूर्व आदि दिशाओं में केशव आदि द्वादश विग्रहों को स्थापित करे तथा इनसे अतिरिक्त गृहों में साक्षात् श्रीहरि ही विराजमान होते हैं। भगवान् की प्रतिमा मिट्टी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल—इन सात वस्तुओं की बनी हुई सात प्रकार की मानी जाती है। फूल, मिट्टी तथा चन्दन की बनी हुई प्रतिमायें बनने के बाद तुरन्त पूजी जाती हैं [अधिक काल के लिये नहीं होतीं।]। पूजन करने पर ये समस्त कामनाओं को पूर्ण करती हैं। अब मैं शैलमयी प्रतिमा का वर्णन करता हूँ, जहाँ प्रतिमा बनाने में शिला (पत्थर) का उपयोग किया जाता है।९-११।

पर्वतानामभावे च गृह्णीयाद्भूगतां शिलाम् ।
पाण्डुरा ह्यरुणा पीता कृष्णा शस्ता तु वर्णिनाम् १२

---

१ घ. हस्त्रिम् । ङ. भुवि । २ ङ. कौमुदी दशधा ।

न यदा लभ्यते सम्यग्वर्णिनां वर्णतः शिला ।
वर्णाद्यापादनं तत्र जुहुयार्त्सिहविद्यया ॥१३
शिलायां शुक्लरेखाग्र्या कृष्णाग्र्या सिंहहोमतः ।
कांस्यघण्टानिनादा स्यात्पुल्लिङ्गा विस्फुलिङ्गका ॥१४
तन्मन्दलक्षणा स्त्री स्यद्रूपाभावान्नपुंसका ।
दृश्यते मण्डलं यस्यां सगर्भा तां विवर्जयेत् ॥१५

उत्तम तो यह है कि किसी पर्वत का पत्थर लाकर प्रतिमा बनवाये । पर्वतों के अभाव में जमीन से निकले हुए पत्थर का उपयोग करे । ब्राह्मण आदि चारों वर्ण वालों के लिये क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काला पत्थर उत्तम माना गया है । यदि ब्राह्मण आदि वर्ण वालों को उनके वर्ण के अनुकूल उत्तम शिला न मिले तो उसमें आवश्यक वर्ण की कमी की पूर्ति करने के लिये नरसिंह-मन्त्र से हवन करना चाहिये । यदि शिला में सफेद रेखा हो तो वह बहुत ही उत्तम है, अगर काली रेखा हो तो वह नरसिंह-मन्त्र से हवन करने पर उत्तम होती है । यदि शिला से काँसे के बने हुए घण्टे की-सी आवाज निकलती हो और काटने पर उससे चिनगारियाँ निकलती हों तो वह पुंल्लिङ्ग है, ऐसा समझना चाहिए । यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखाई दें; तो उसे स्त्रीलिङ्ग समझना चाहिए और पुंल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग-बोधक कोई रूप न होने पर उसे नपुंसक समझना चाहिये तथा जिस शिला में कोई मण्डल का चिह्न दिखाई दे उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिये ।१२-१५।

प्रतिमार्थं धनं दत्त्वा वनयागं समाचरेत् ।
तत्र खात्वोपलिप्याथ मण्डपे तु हरिं यजेत् ॥१६
बलिं दत्त्वा कर्मशस्त्रं टङ्कादिकमथार्चयेत् ।
हुत्वाथ शालितोयेन अस्त्रेण प्रोक्षयेच्छिलाम् ॥१७
रक्षां कृत्वा नृसिंहेन मूलमन्त्रेण पूजयेत् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यात्ततो भूतबलिं गुरुः ॥१८
अत्र ये संस्थिताः सत्त्वा यातुधानाश्च गुह्यकाः ।
सिद्धादयो वा ये चान्ये तान्सम्पूज्य क्षमापयेत्[1] ॥१९

प्रतिमा बनाने के लिये वन में जाकर वनयाग आरम्भ करना चाहिये । वहाँ कुण्ड खोदकर और उसे लीपकर मण्डप में भगवान् विष्णु का पूजन

---

१ घ. °त् । विष्णुबि° ।

करना चाहिये तथा उन्हें बलि समर्पण कर कर्म में उपयोगी टंक आदि शस्त्रों की भी पूजा करनी चाहिये। फिर हवन करने के वाद अगहनी के चावल के जल से अस्त्र-मन्त्र(अस्त्राय फट्) के उच्चारण-पूर्वक उस शिला को सींचना चाहिये। नरसिंह-मन्त्र से उसकी रक्षा करके मूल-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) से पूजन करे। फिर पूर्णाहुति होम करके आचार्य भूतों के लिये बलि समर्पित करे। वहाँ जो भी अव्यक्त रूप रहने वाले जन्तु--यातुधान (राक्षस), गुह्यक और सिद्ध आदि हों अथवा और भी जो हों, उन सबका पूजन करके इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये।१६-१९।

प्रतिविम्बार्थमस्माकं यात्रैषा केशवाज्ञया।
विष्णवर्थं यद् भवेत्कार्यं युष्माकमपि तद्भवेत् ॥२०
अनेन वलिदानेन प्रीता भवत सर्वथा।
क्षेमेण गच्छतान्यत्र मुक्त्वा स्थानमिदं त्वरात् ॥२१

'भगवान् केशव की आज्ञा से प्रतिमा के लिये हम लोगों की यह यात्रा हुई है। भगवान् विष्णु के लिये जो कार्य हो, वह आप लोगों का भी कार्य है। अतः हमारे दिये हुए इस वलिदान से आप लोग सर्वथा तृप्त हों और शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर कुशलपूर्वक अन्यत्र चले जाँय'।२०-२१।

एवं प्रवोधिता मुक्त्वा यान्ति तृप्ता यथासुखम्।
शिल्पिभिश्च चरुं प्राश्य स्वप्नमन्त्रं जपेन्निशि ॥२२

इस भाँति प्रार्थना करने पर वे सभी जीव प्रसन्न हो सुखपूर्वक उस स्थान को छोड़कर चले जाते हैं। तदनन्तर शिल्पियों के सहित चरु को खाकर रात में (सोते समय) इस स्वप्न-मन्त्र का जप करे।२२

ॐ नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥२३

जो समस्त प्राणियों के निवास-स्थान हैं, व्यापक हैं, सबको उत्पन्न करने वाले हैं, स्वयं विश्वरूप हैं और सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उन स्वप्न के अधिपति भगवान् श्रीहरि को नमस्कार है ॥२३

आचक्ष्व देव देवेश प्रसुप्तोऽस्मि[1] तवान्तिकम्।
स्वप्ने सर्वाणि कार्याणि हृदिस्थानि तु यानि मे ॥२४

देव! देवेश्वर! मैं आपके निकट सो रहा हूँ। मेरे मन में जिन कार्यों का संकल्प है, उन सबके सम्बन्ध में मुझे वताइये।२४

---

१ क. ङ. च. प्रपन्नोऽस्मि।

ॐ ॐ ह्लुं फट् विष्णवे स्वाहा।
शुभे स्वप्ने शुभं सर्वं ह्यशुभे सिंहहोमतः ॥२५

'ॐ ॐ ह्लुं फट् विष्णवे स्वाहा' इस मन्त्र का जप करके सो जाने पर शुभ स्वप्न देखने पर सब शुभ होता है और अशुभ स्वप्न भी नृसिंह होम से शुभ हो जाते हैं।२५

प्रातरर्घ्यं शिलायां तु दत्त्वास्त्रेणास्त्रकं यजेत्।
कुद्दालटङ्कशस्त्राद्यं मध्वाज्याक्तमुखं चरेत् ॥२६

प्रातःकाल शिला पर अर्घ्य देकर अस्त्र-मन्त्र से अस्त्रों की पूजा करे। कुद्दाल, छेनी, टंक और शस्त्र आदि के मुख पर घी और मधु लगाकर पूजन करना चाहिये।२६

आत्मानं चिन्तयेद्विष्णुं शिल्पिनं विश्वकर्मिणम्[1]।
शस्त्रं विष्ण्वात्मकं दद्यान्मुखपृष्ठादि दर्शयेत् ॥२७

अपने आपको विष्णु रूप से चिन्तन करे। कारीगर को विश्वकर्मा माने और शस्त्र को भी विष्णु होने की ही भावना करे। फिर शस्त्र कारीगर को दे और उसका मुख, पृष्ठ आदि उसे दिखा दे।२७

जितेन्द्रियष्टङ्कहस्तः शिल्पी तु चतुरस्रकाम्।
शिलां कृत्वा पिण्डिकार्थं किञ्चिन्न्यूनां[2] तु कल्पयेत् ॥२८

जितेन्द्रिय शिल्पी उस चौकोर शिला को छेनी से काटकर पिण्डिका के लिये काँट-छाँट कर कुछ न्यून कर दे।२८

रथे स्थाप्य समानीय सवस्त्रां कारुवेश्मनि।
पूजयित्वाथ घटयेत् प्रतिमां स तु कर्मकृत् ॥२९

इसके वाद शिला को वस्त्र में लपेटकर रथ पर रखे और शिल्पशाला में लाकर पुनः उस शिला का पूजन करे। इसके बाद कारीगर प्रतिमा वनाये।२९

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासाददेवतास्थापनभूतशान्तिशिलालक्षणप्रतिमानिर्माणादिनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।४३

---

१ ख. घ. कर्मकम्। २ °चिन्मूलं त।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

वासुदेवादिप्रतिमानां लक्षणानि

हयग्रीव उवाच—
वासुदेवादिप्रतिमालक्षणं प्रवदामि ते।
प्रासादस्योत्तरे पूर्वमुखीं वा चोत्तराननाम् ॥१
संस्थाप्य पूज्य च बलिं दत्त्वाथो मध्यसूत्रकम्।
शिलां शिल्पी तु नवधा विभज्य नवमेंऽशके ॥२
सूर्यभक्ते[1] शिलायां तु भागं स्वाङ्गुलमुच्यते।
द्व्यङ्गुलं गोलकं नाम्ना कलानेत्रं[2] तदुच्यते ॥३

हयग्रीव बोले—अब मैं वासुदेव प्रतिमा का लक्षण बता रहा हूँ। सुनो! मन्दिर के उत्तर भाग में शिला को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखकर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके कारीगर शिला के बीच में सूत लगाकर उसका नौ भाग करे। नवें भाग को भी बारह भागों में विभाजित करने पर एक-एक भाग अपने अंगुल से एक अंगुल का होता है। दो अंगुल का गोलक होता है जिसे कलानेत्र भी कहते हैं।१-३।

भागमेकं त्रिधा कृत्वा पार्ष्णिभागं प्रकल्पयेत्।
भागमेकं तथा जानौ ग्रीवायां भागमेव च ॥४
मुकुटं तालमात्रं स्यात् तालमात्रं तथा मुखम्।
तालेनैकेन कण्ठं तु तालेन हृदयं तथा ॥५
नाभिमेढ्रान्तरं तालं द्वितालावूरुकौ तथा।
तालद्वयेन जङ्घा स्यात् सूत्राणि शृणु साम्प्रतम् ॥६

उक्त नौ भागों में से एक भाग के तीन हिस्से करके उसमें पार्ष्णि-भाग की कल्पना करे। एक भाग घुटने के लिए तथा एक भाग कण्ठ के लिये निश्चित रक्खे। मुकुट को एक बित्ता रखे। मूंह का भाग भी एक बित्त का होना चाहिये। इसी प्रकार एक बित्ते का कण्ठ और एक बित्तें का हृदय हो नाभि और लिङ्ग के बीच में एक बित्ते का अन्तर होना चाहिये। दोनों ऊरु दो बित्ते के हों। जंघा भी दो बित्ते की हो। अब सूत्रों का माप सुनो। ४-६।

---

१ क. ङ. च. सूर्येभक्ते। घ. सूर्पभक्तः। २ घ. कालनेत्रं।

कार्यं सूत्रद्वयं पादे जङ्घामध्ये तथापरम् ।
जानौ सूत्रद्वयं कार्यमूरुमध्ये तथापरम् ॥७
मेढ्रे तथापरं कार्यं कट्यां सूत्रं तथापरम् ।
मेखलाबन्धसिद्ध्यर्थं नाभ्यां चैवापरं तथा ॥८
हृदये च तथा कार्यं कण्ठे सूत्रद्वयं तथा ।
ललाटे चापरं कार्यं मस्तके च तथा परम् ॥९
मुकुटोपरि कर्तव्यं सूत्रमेकं विचक्षणैः ।
सूत्राण्यूर्ध्वं प्रदेयानि सप्तैव कमलोद्भव ॥१०
कक्षात्रिकान्तरेणैव षट् सूत्राणि प्रदापयेत् ।
मध्यसूत्रं तु सन्त्यज्य सूत्राण्येव निवेदयेत् ॥११

दो सूत पैर में और दो सूत जंघा में लगाये । घुटनों में दो सूत तथा दोनों उरुओं में भी दो सूत का प्रयोग करे । लिङ्ग में दूसरे दो सूत तथा कटि में भी कमरबन्ध (करधन) बनाने के लिये दूसरे दो सूतों का योग करे । नाभि में भी दो सूत काम में लाये । इसी प्रकार हृदय और कण्ठ में दो सूत का उपयोग करे । ललाट में दूसरे और मस्तक में दूसरे दो सूतों का उपयोग करे । बुद्धिमान् कारीगरों को मुकुट के ऊपर एक सूत करना चाहिये । ब्रह्मन् ! ऊपर सात ही सूत देने चाहिये । तीन कक्षाओं के अन्तर से ही छः सूत दिलावे । फिर मध्य सूत्र को त्याग दे और केवल सूत्रों को ही निवेदित करे ।७-११।

ललाटं नासिका[1] वक्त्रं कर्तव्यं चतुरङ्गुलम् ।
ग्रीवाकर्णौ तु कर्तव्यावायामाच्चतुरङ्गुलम् ॥१२
द्व्यङ्गुले हनुके कार्ये विस्ताराच्चिबुकं तथा ।
अष्टाङ्गुलं ललाटं तु विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥१३
परेण द्व्यङ्गुलौ शङ्खौ कर्तव्यावलकान्वितौ ।
चतुरङ्गुलमाख्यातमन्तरं कर्णनेत्रयोः ॥१४
द्व्यङ्गुलौ पृथुकौ कर्णौ कर्णापाङ्गार्धपञ्चमे ।
भ्रूसमेन तु सूत्रेण कर्णस्रोतः प्रकीर्तितम् ॥१५
विद्धं षडङ्गुलं कर्णमविद्धं चतुरङ्गुलम् ।
चिबुकेन समं विद्धमविद्धं वा षडङ्गुलम् ॥१६

१ घ. °सिकाव° ।

ललाट, नासिका और मुख का विस्तार चार अंगुल का होना चाहिये। गला और कान का भी चार-चार अंगुल का विस्तार करना चाहिये। दोनों ओर की हनु (ठोढ़ी) दो-दो अंगुल हो और चिबुक (ठोढ़ी के बीच का भाग) भी दो अंगुल का हो। पूरा विस्तार छः अंगुल का होना चाहिये। इसी प्रकार ललाट भी विस्तार में आठ अंगुल का बताया गया है। दोनों ओर के शंख दो-दो अंगुल के बीच बनाये जाँय और उन पर बाल भी हों। कान और नेत्र के बीच में चार अंगुल का अंतर रहना चाहिये। दो-दो अंगुल के कान और पृथुक बनाये। भौंहों के समान सूत्र के माप का कान का स्रोत कहा गया है। बिंधा हुआ कान छः अंगुल का हो और बिना बिंधा हुआ चार अंगुल का। अथवा बिंधा हुआ या बिना बिंधा, सब चिबुक के समान छः अंगुल का होना चाहिये।१२-१६।

गन्धपात्रं तथावर्तं शष्कुलीं कल्पयेत्तथा।
अङ्गुलेनाधरः कार्यस्तस्यार्धेनोत्तराधरः ।।१७
अर्धाङ्गुलं तथा[1] नेत्रं वक्त्रं तु चतुरङ्गुलम्।
आयामेन तु वैपुल्यात्सार्धमङ्गुलमुच्यते ।।१८
नासावंशसमुच्छ्रायं मूले त्वेकाङ्गुलं मतम्।
उच्छ्रायाद् द्वयङ्गुलं चाग्रे करवीरोपमा स्मृता ।।१९
अन्तरं चक्षुषोः कार्यं चतुरङ्गुलमानतः :।
द्वयङ्गुलं चाक्षिकोशं[2] च द्वयङ्गुलं चान्तरं तयोः ।।२०
तारा नेत्रत्रिभागेण दृक्तारा पञ्चमांशिका।
त्र्यङ्गुलं (लो) नेत्रविस्तारं(रो) द्रोणी चार्धाङ्गुला मता।।२१
तत्प्रमाणा भ्रुवोर्लेखा भ्रुवौ चैव समे मते।
भ्रूमध्यं द्वयङ्गुलं कार्यं भ्रूदैर्घ्यं चतुरङ्गुलम् ।।२२

गन्धपात्र, आवर्त तथा शष्कुली (कान का पूरा घेरा) भी बनावे। एक अंगुल में नीचे का ओठ और आधे अंगुल में ऊपर का ओठ बनावे। नेत्र का विस्तार आधा अंगुल का हो और मुख का विस्तार चार अंगुल का हो। मुख की चौड़ाई डेढ़ अंगुल की होनी चाहिये। नाक की ऊँचाई एक अंगुल हो और ऊँचाइ से आगे केवल लंबाई दो अंगुल की रहे। करवीर कुसुम के समान उसकी आकृति होनी चाहिये। दोनों नेत्रों के बीच चार अंगुल का अंतर हो। दो अंगुल तो आँख के घेरे में आ जाता है, सिर्फ दो अंगुल अन्तर रह जाता है।

१ क. ख. ग. ङ. च. °था गोजी व°। २ ग. कोणं च।

पूरे नेत्र का तीन भाग करके एक भाग के बराबर तारा (काली पुतली) बनावे और पाँच भाग करके, एक भाग के बराबर दृक्तारा (छोटी पुतली) बनावे। नेत्र का विस्तार दो अंगुल का हो और द्रोणी आधे अंगुल की । उतना ही प्रमाण भौहों की रेखा का हो। दोनों ओर की भौहें बराबर रहनी चाहिये। भौहों का मध्य दो अंगुल का और विस्तार चार अंगुल का होना चाहिये ।१७-२२।

षड्विंशदङ्गुलायामं मस्तकस्य तु वेष्टनम् ।
मूर्तीनां केशवादीनां द्वात्रिंशद्वेष्टनं भवेत् ॥२३
पञ्चनेत्रा त्वधोग्रीवा विस्ताराद्वेष्टनं पुनः ।
त्रिगुणं तु भवेदूर्ध्वं विस्तृताष्टाङ्गुलं पुनः ॥२४
ग्रीवात्रिगुणमायामं ग्रीवावक्षोन्तरं भवेत् ।
स्कन्धावष्टाङ्गुलौ कार्यौ त्रिकलावंशकौ शुभौ ॥
सप्तनेत्रौ स्मृतौ बाहू प्रवाहू षोडशाङ्गुलौ ।
त्रिकलौ[1] विस्तृतौ बाहू प्रवाहू चापि तत्समौ ॥२६
बाहुदण्डोर्ध्वतो ज्ञेयः परिणाहः कला नव ।
सप्तदशाङ्गुलो मध्ये कूर्परोऽर्धे च षोडश ॥२७
कूर्परस्य भवेन्नाहस्त्रिगुणः कमलोद्भव ।
नाहः प्रबाहुमध्ये तु षोडशाङ्गुल उच्यते ॥२८
अग्रहस्ते परीणाहो द्वादशाङ्गुल उच्यते ।
विस्तारेण करतलं कीर्तितं तु षडङ्गुलम् ॥२९
दैर्घ्यं सप्ताङ्गुलं कार्यं मध्या पञ्चाङ्गुला मता ।
तर्जन्यनामिका चैव तस्मादर्धाङ्गुलं विना ॥३०
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ कार्यौ चतुरङ्गुलसम्मितौ ।
द्विपर्वोऽङ्गुष्ठकः कार्यः शेषाङ्गुल्यस्त्रिपर्विकाः ॥३१
सर्वासां पर्वणोऽर्धेन नखमानं विधीयते ।
वक्षसो यत्प्रमाणं तु जठरं तत्प्रमाणतः ॥३२
अङ्गुलैका भवेन्नाभिर्वेधेन च प्रमाणतः ।
ततो मेढ्रान्तरं कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः ॥३३

भगवान् केशव आदि की मूर्तियों के मस्तक का पूरा घेरा छब्बीस अंगुल का होवे अथवा बत्तीस अंगुल का। नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस

---

१ च. त्रिकले ।

अंगुल) की हो और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अंगुल उसका वेष्टन (चारों ओर का घेरा) हो। नीचे से ऊपर की ओर ग्रीवा का विस्तार आठ अंगुल का हो। ग्रीवा और छाती के बीच का अन्तर ग्रीवा के तीन गुने विस्तारवाला होना चाहिये। दोनों ओर के कंधे आठ-आठ अंगुल के और सुन्दर अंस तीन-तीन अंगुल के हों। सात नेत्र (यानी चौदह अंगुल) की दोनों बाहें और सोलह अंगुल की दोनों-प्रबाहुएँ हों। बाहुओं की चौड़ाई छः अंगुल की हो। प्रबाहुओं की भी इनके समान ही होनी चाहिये। बाहुदण्ड का चारों ओर का घेरा कुछ ऊपर से लेकर नौ कला अथवा सत्रह अंगुल समझना चाहिये। आधे पर बीच में कोहनी है। कोहनी का घेरा सोलह अंगुल का होता है। ब्रह्माजी ! प्रबाहु के मध्य में उसका विस्तार सोलह अंगुल का हो। हाथ के अग्रभाग का विस्तार बारह अंगुल का हो और उसके बीच करतल का विस्तार छः अंगुल कहा गया है। हाथ की चौड़ाई सात अंगुल की करे। हाथ के मध्यमा अंगुली की लम्बाई पाँच अंगुल की हो और तर्जनी तथा अनामिका की लंबाई उससे आधा अंगुल कम अर्थात् ४½ अंगुल की करे। कनिष्ठिका और अँगूठे की लंबाई चार अंगुल की करे। अँगूठे में दो पोरु बनावे और बाकी सभी अँगुलियों में तीन-तीन पोरु बनावे। सभी अँगुलियों के एक-एक पोरु के आधे भाग के बराबर प्रत्येक अँगुली के नख की नाप समझनी चाहिये। छाती की जितनी नाप हो, पेट की उतनी ही रक्खे। एक अंगुल के छेद वाली नाभि हो। नाभि से लिङ्ग के बीच का अन्तर एक वित्ता होना चाहिये ।२३-३३।

नाभिमध्ये परीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः ।
अन्तरं स्तनयोः[1] कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः ।।३४
चूचुकौ[2] यवमानौ तु मण्डलं द्विपदं भवेत् ।
चतुष्षष्ट्यङ्गुलं कार्यं वेष्टनं वक्षसः स्फुटम् ।।३५
चतुर्मुखं च तदधो वेष्टनं परिकीर्तितम् ।
परिणाहस्तथा कट्याश्चतुष्पञ्चदशाङ्गुलैः ।।३६
विस्तारश्चोरुमूले तु प्रोच्यते द्वादशाङ्गुलैः ।
तस्मादभ्यधिकं मध्ये ततो निम्नतरं क्रमात् ।।३७
विस्तृताष्टाङ्गुलं जानु त्रिगुणा परिणाहतः ।
जङ्घामध्ये तु विस्तारः सप्ताङ्गुल उदाहृतः ।।३८

---

१ च. त्वनयोः । २ ख. ग. चिबुकौ ।

त्रिगुणः परिधिश्चास्य जङ्घाग्रं पञ्च विस्तरात् ।
त्रिगुणः परिधिश्चास्य पादौ तालप्रमाणकौ ॥३६॥
आयामादुत्थितौ पादौ चतुरङ्गुलमेव च ।
गुल्फात्पूर्वं तु कर्तव्यं प्रमाणाच्चतुरङ्गुलम् ॥४०॥
त्रिकलं विस्तृतौ पादौ त्र्यङ्गुलो गुह्यकः स्मृतः ।
पञ्चाङ्गुलस्य नाहोऽस्य दीर्घा तद्वत्प्रदेशिनी ॥४१॥
अष्टमाष्टांशमध्योना: शेषाङ्गुल्यः[1] क्रमेण तु ।
सपादाङ्गुलमुत्सेधमङ्गुष्ठस्य प्रकीर्तितम्[2] ॥४२॥
तदेव द्विगुणं कार्यमङ्गुष्ठस्य नखं तथा ।
अर्धाङ्गुलं तथान्यासां क्रमान्न्यूनं तु कारयेत् ॥४३॥

नाभि-मध्याङ्ग (उदर) का घेरा बयालीस अंगुल का हो। दोनों स्तनों के बीच का अन्तर एक बित्ता होना चाहिये। स्तनों का अग्रभाग— चूचुक यव के बराबर बनाये। दोनों स्तनों का घेरा दो पदों के बराबर हो। छाती का घेरा चौंसठ–अंगुल का बनावे। उसके नीचे और चारों ओर का घेरा वेष्टन कहा गया है। इसी प्रकार कमर का घेरा चौवन अंगुल का होना चाहिये। ऊरुओं के मूल का विस्तार बारह-बारह अंगुल का हो। इसके ऊपर मध्य भाग का विस्तार अधिक रखना चाहिये। मध्य भाग से नीचे के अंगों का विस्तार क्रमशः कम होना चाहिये। घुटनों का विस्तार आठ अंगुल का करे और उसके नीचे जंघा का घेरा तीन गुना अर्थात् चौबीस अंगुल का हो। जंघा के मध्य का विस्तार सात अंगुल का होना चाहिये और उसका घेरा तीन गुना अर्थात् इक्कीस अंगुल का हो। जंघा के अग्रभाग का विस्तार पाँच अंगुल और उसका घेरा तीन गुना— पन्द्रह अंगुल का हो। चरण एक-एक बित्ते लम्बे होने चाहिए। विस्तार से उठे हुए पैर अर्थात् पैरों की ऊँचाई चार अंगुल की हो। गुल्फ (घुट्टी) से पहले का हिस्सा भी चार अंगुल का ही हो। दोनों पैरों की चौड़ाई छः अंगुल की, गुह्यभाग तीन अंगुल का और उसका पंजा पाँच अंगुल का होना चाहिए। पैरों में प्रदेशिनी अर्थात् अंगूठा चौड़ा होना उचित है। शेष अंगुलियों के मध्यभाग का विस्तार क्रमशः पहली अंगुली के आठवें-आठवें भाग के बराबर कम होना चाहिए। अँगूठे की ऊँचाई सवा अङ्गुल बतायी गयी है। इसी प्रकार अँगूठे के नख का प्रमाण और अँगुलियों से दूना रखना

१ ख. शेषं गुल्फक्रमे० । २ घ °म् । यवोनमङ्गुलं का° ।

चाहिये। दूसरी अंगुली के नख का विस्तार आधा अंगुल तथा अन्य अंगुलियों के नखों का विस्तार क्रमशः जरा-जरा सा कम कर देना चाहिये।३४-४३।

त्र्यङ्गुलौ वृषणौ कार्यौ मेढ्रं तु चतुरङ्गुलम्।
परिणाहोऽत्र कोषाग्रं कर्तव्यं चतुरङ्गुलम्॥४४
षडङ्गुलपरिणाहौ वृषणौ परिकीर्तितौ।
प्रतिमा भूषणाढ्या स्यादेतदुद्देशलक्षणम्॥४५॥

दोनों अण्डकोश तीन-तीन अंगुल लम्बें बनावे और लिंग चार अंगुल लम्बा करें। इसके ऊपर का भाग चार अंगुल का रखें। अण्डकोशों का पूरा घेरा छः-छः अंगुल का होना चाहिये। इसके सिवा भगवान् की प्रतिमा सब प्रकार के भूषणों से भूषित करनी चाहिये। यह लक्षण संक्षेप से बताया गया।४४-४५।

अनयैव दिशा कार्यं लोके दृष्ट्वा तु लक्षणम्।
दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात् पद्ममेव च॥४६
वामे शङ्खं गदाधस्ताद् वासुदेवस्य लक्षणात्।
श्रीपुष्टी चापि कर्तव्ये पद्मवीणाकरान्विते॥४७
ऊरुमात्रोच्छ्रितायामे मालाविद्याधरौ तथा।
प्रभामण्डलसंस्थौ तौ प्रभा हस्त्यादिभूषणा॥४८
पद्माभं पादपीठं तु प्रतिमास्वेवमाचरेत्॥४९

इसी प्रकार लोक में देखे जाने वाले अन्य लक्षणों को भी दृष्टि में रखकर प्रतिमा में उसका निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथों में से ऊपर वाले हाथ में चक्र और नीचे वाले हाथ में पद्म धारण करावे। बायें हाथों में से ऊपर वाले हाथ में शंख और नीचे वाले हाथ में गदा बनावे। यह वासुदेव श्रीकृष्ण का चिह्न है, अतः उन्ही की प्रतिमा में रहना चाहिए। भगवान् के निकट हाथ में कमल लिए हुए लक्ष्मी तथा वीणा धारण किये पुष्टि देवी की भी प्रतिमा बनावें। इनकी ऊँचाई (भगवद्विग्रह के) ऊरुओं के बराबर होनी चाहिए। इनके अलावा प्रभामण्डल में स्थित मालाधर और विद्याधर का विग्रह बनावें। प्रभा हस्ती आदि से भूषित होती है। भगवान् के चरणों के नीचे का भाग अर्थात् पादपीठ कमल के आकार का बनावें। इस प्रकार देव-प्रतिमाओं में उक्त लक्षणों का समावेश करना चाहियें।४६-४९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वासुदेवादिप्रतिमालक्षणकथनं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।४४

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पिण्डिकादिलक्षणम्

हयग्रीव उवाच—

पिण्डिकालक्षणं वक्ष्ये दैर्घ्येण प्रतिमासमा ।
उच्छ्रायः प्रतिमार्धं तु चतुःषष्टिपुटां च ताम् ॥१
त्यक्त्वा पङ्क्तिद्वयं चाधस्तदूर्ध्वं यत्तु कोष्ठकम् ।
समन्तादुभयोः पार्श्वे अन्तस्थं परिमार्जयेत् ॥२
ऊर्ध्वं पङ्क्तिद्वयं त्यक्त्वा अधस्ताद्यत्तु कोष्ठकम् ।
अन्तः सम्मार्जयेद्यत्नात्पार्श्वयोरुभयोः समम् ॥३

हयग्रीव बोले—अब मैं पिण्डिका का लक्षण बता रहा हूं । पिण्डिका लंबाई में प्रतिमा के समान ही होती है, परन्तु उसकी ऊँचाई प्रतिमा के आधी होती है । प्रतिमा को चौंसठ कुटों (पदों या कोष्ठकों) से युक्त करके नीचे की दो पङ्क्ति छोड़ दे और उसके ऊपर का जो कोष्ठ है, उसे चारों ओर दोनों पार्श्वों में भीतर की ओर से साफ कर दे । इसी तरह ऊपर की दो पङ्क्तियों को त्याग कर उसके नीचे का जो एक कोष्ठ (या पङ्क्ति) है, उसे भीतर की ओर से साफ कर ले । दोनों पार्श्वों में समानरूप से यह क्रिया करे ।१-३।

तयोर्मध्यगतौ तत्र चतुष्कौ मार्जयेत्ततः ।
चतुर्धा भाजयित्वा तु ऊर्ध्वपङ्क्तिद्वयं बुधः ॥४
मेखला भागमात्रा स्यात् खातं तस्यार्धमानतः ।
भागं भागं परित्यज्य पार्श्वयोरुभयोः समम् ॥५
दत्त्वा चैकं पदं बाह्ये प्रणालं[1] कारयेद् बुधः ।
त्रिभागेण च भागस्याग्रे स्यात्तोयविनिर्गमः ॥६

दोनों पार्श्वों के मध्यगत जो चौक है, उनका भी मार्जन कर दे । तदनन्तर उसे चार भागों में बाँटकर विद्वान् पुरुष ऊपर की दो पक्तियों की मेखला माने । मेखला-भाग की जो मात्रा है, उसके आधे मान के अनुसार उसमें खात खुदावे । फिर दोनों पार्श्वभागों में समान रूप से एक-एक भाग को त्याग कर बाहर की ओर का एक पद नाली बनाने के लिए दे दे । विद्वान् पुरुष उसमें नाली बनवाये । फिर तीन भाग में जो एक भाग है उसके आगे जल निकलने का मार्ग रहे ।४-६।

---

१ ख. ग. घ. प्रमाणं ।

नानाप्रकारभेदेन भद्रेयं पिण्डिका शुभा ।
अष्टताला तु कर्तव्या देवो लक्ष्मीस्तथा स्त्रिय: ॥७
भ्रुवौ यवाधिके कार्ये यवहीना तु नासिका ।
गोलकेनाधिकं वक्त्रमूर्ध्वं तिर्यग्विवर्जितम् ॥८
आयते नयने कार्ये त्रिभागोनैर्यवैस्त्रिभि: ।
तदर्धेन तु वैपुल्यं नेत्रयो: परिकल्पयेत् ॥९
कर्णपाशोऽधिक: कार्य: सृक्कणी[1] समसूत्रत: ।
नम्रं कलाविहीनं तु कुर्याद्वंशद्वयं तथा ॥१०
ग्रीवा सार्धकला कार्या तद्विस्तारोपशोभिता ।
नेत्रं विना तु विस्तारौ ऊरू जानू च पिण्डिका ॥११
अङ्घ्रिपृष्ठौ स्फिचौ कट्यां यथायोगं प्रकल्पयेत् ॥११½

नाना प्रकार के भेद से यह शुभ पिण्डिका 'भद्रा' कही गयी है। लक्ष्मी देवी की प्रतिमा ताल (हथेली) के माप से आठ ताल की बनायी जानी चाहिये। अन्य देवियों की प्रतिमा भी ऐसी ही हो। दोनों भौहों को नासिका की अपेक्षा एक-एक जौ अधिक बनावे और नासिका को उनकी अपेक्षा एक जौ कम। मुख नेत्र-गोलक से कुछ अधिक प्रमाण का ऊपर की ओर बनाना चाहिये। वह ऊँचा और टेढ़ा-मेढ़ा न हो। आँखे बड़ी-बड़ी बनानी चाहिये। उनका माप सवा तीन जौ के बराबर हो। नेत्रों की चौड़ाई उनकी लंबाई की अपेक्षा आधी करे। मुख के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक की जितनी लंबाई है, उसके बराबर सूत से नाप कर कर्णपाश (कान का पूरा घेरा) बनावे। उसकी लंबाई उक्त सूत से कुछ अधिक ही रखे। दोनों कंधों को कुछ झुका हुआ और एक कला से रहित बनावे। ग्रीवा की लंबाई डेढ़ कला रखनी चाहिये। वह उतनी ही चौड़ाई से भी सुशोभित हो। दोनों ऊरुओं का विस्तार ग्रीवा की अपेक्षा एक नेत्र कम होगा। जानु (घुटने) पिण्डली, पैर, पीठ, नितम्ब तथा कटिभाग—इन सबकी यथायोग्य कल्पना करे।७-११½।

सप्तांशोनास्तथाङ्गुल्यो दीर्घविष्कम्भनाहत: ॥१२
नेत्रैकवर्जितायामा जङ्घोरुश्च तथा कटि: ।
मध्यपार्श्वं च तद्वृत्तं घनं पीनं कुचद्वयम् ॥१३

---

१ क. ङ. च. सृक्कण्यां स° । ख. सृक्किणी ।

तालमात्रौ स्तनौ कार्यौ कटिः सार्धकलाधिका ।
लक्ष्म शेषं पुरावत्स्याद्दक्षिणे चाम्बुजं करे ॥१४
वामे बिल्वं स्त्रियौ पार्श्वे शुभे चामरहस्तके ।
दीर्घघोणस्तु गरुडश्चक्राङ्गाद्यानथो वदे ॥१५

हाथ की अँगुलियाँ बड़ी हों। वे परस्पर अवरुद्ध न हों। बड़ी अँगुली की अपेक्षा छोटी अँगुलियाँ सातवें अंश से रहित हों। जंघा, ऊरु और कटि— इनकी लंबाई क्रमशः एक-एक नेत्र कम हो। शरीर के मध्यभाग के आसपास का अंग गोल हो। दोनों कुच घने (परस्पर सटे हुए) और पीन (उभरे हुए) हों। स्तनों का माप हथेली के बराबर हो। कटि उनकी अपेक्षा डेढ़ कला अधिक बड़ी हो। शेष चिह्न पूर्ववत् रहें। लक्ष्मी जी के दाहिने हाथ में कमल और बायें हाथ में बिल्वफल हो। उनके पार्श्व भाग में हाथ में चँवर लिये दो सुन्दरी स्त्रियाँ खड़ी हों। सामने बड़ी नाकवाले गरुड की स्थापना करे। अब मैं चक्राङ्कित (शालग्राम) मूर्ति आदि का वर्णन करता हूँ।१२-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पिण्डिकादीनां लक्षणवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।४५

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्राममूर्तीनां लक्षणानि

हयग्रीव उवाच—

शालग्रामादिमूर्तीश्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाः ।
वासुदेवः[1] सितो द्वारि[2] शिलालग्नद्विचक्रकः ॥१
ज्ञेयः सङ्कर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्त उत्तमः ।
सूक्ष्मचक्रो वहुच्छिद्रः[3] प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ॥२
पीतोऽनिरुद्धः पद्माङ्को वर्तुलो द्वित्रिरेखवान् ।
कृष्णो नारायणो नाभ्युन्नतः[4] सुषिरदीर्घवान् ॥३
परमेष्ठी साब्जचक्रः पृष्ठच्छिद्रश्च बिन्दुमान् ।
स्थूलचक्रोऽसितो विष्णुर्मध्ये रेखा गदाकृतिः ॥४

हयग्रीव बोले—अब मैं शालग्रामगत भगवन्मूर्तियों का वर्णन आरम्भ करता हूँ जो भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। जिस शालग्राम शिला के द्वार में दो चक्र के चिह्न हों और जिसका वर्ण श्वेत हो उसकी 'वासुदेव' संज्ञा है। जिस उत्तम शिला का रंग लाल हो और जिसमें दो चक्र के चिह्न संलग्न हों उसे भगवान् सङ्कर्षण का श्री-विग्रह समझना चाहिये। जिसमें चक्र का सूक्ष्म चिह्न हो, अनेक छिद्र हों, नील वर्ण हो और आकृति बड़ी दिखायी देती हो वह प्रद्युम्न की मूर्ति है। जहाँ कमल का चिह्न हो, जिसकी आकृतियाँ गोल और रंग पीला हो तथा जिसमें दो तीन रेखायें शोभा पा रही हों वह अनिरुद्ध का श्रीअङ्ग है। जिसकी कान्ति काली, नाभि उन्नत हो और जिसमें बड़े-बड़े छिद्र हों, उसे 'नारायण' का स्वरूप समझना चाहिये। जिसमें कमल और चक्र का चिह्न हो, पृष्ठ भाग में छिद्र हो और जो बिन्दु से युक्त हो, वह शालग्राम 'परमेष्ठी' नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें चक्र का स्थूल चिह्न हो, जिसकी कान्ति श्याम हो और मध्य में गदा जैसी रेखा हो उस शालग्राम की 'विष्णु' संज्ञा है।१-४।

---

१ घ. °देवोऽसि° । २ घ. द्वारे। ३ ख. रक्तच्छिद्रः । ४ ङ. च. °तः शिशिर° ।

नृसिंहः कपिलः स्थूलचक्रः स्यात्पञ्चबिन्दुकः ।
वराहः शक्तिलिङ्गः स्यात्तच्चक्रौ विषमौ स्मृतौ ।।५

नृसिंह-विग्रह में चक्र का स्थूल चिह्न होता है । उसकी कान्ति कपिल वर्ण की होती है और उसमें पाँच बिन्दु सुशोभित होते हैं । वराह-विग्रह में शक्ति नामक अस्त्र का चिह्न होता है । उसमें दो चक्र होते हैं जो परस्पर विषम (समानता से रहित) होते हैं ।५

इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिरेखालाञ्छितः शुभः ।
कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलावर्तकोऽसितः ।।६

इन्द्रनील के समान वर्ण वाला, स्थूल और त्रिरेखा से समन्वित शुभ माना गया है । जिसका पृष्ठभाग ऊँचा हो, जो गोलाकार आवर्त चिह्न से युक्त एवं श्याम हो, उस शालग्राम की 'कूर्म' (कच्छप) संज्ञा है ।।६

हयग्रीवोऽङ्कुशाकाररेखो नीलः सबिन्दुकः ।
वैकुण्ठ एकचक्रोऽब्जी मणिभः पुच्छरेखकः ।।७
मत्स्यो दीर्घस्त्रिबिन्दुः स्यात्काचवर्णस्तु पूरितः ।
श्रीधरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखस्तु वर्तुलः ।।८

जो अंकुश की-सी रेखा से सुशोभित, नीलवर्ण एवं बिन्दुयुक्त हो, उस शालग्राम शिला को 'हयग्रीव' कहते हैं । जिसमें एक चक्र और कमल का चिह्न हो, जो मणि के समान प्रकाशमान तथा पुच्छाकार रेखा से सुशोभित हो उस शालग्राम को 'वैकुण्ठ' समझना चाहिये । जिसकी आकृति बड़ी हो, जिसमें तीन बिन्दु शोभा पाते हों, जो काँच के समान श्वेत तथा भरा पूरा हो वह शालग्राम शिला मत्स्यावतारधारी भगवान् की मूर्ति मानी जाती है । जिसमें वनमाला का चिह्न और पाँच रेखायें हों उस गोलाकार शालग्राम-शिला को 'श्रीधर' कहते हैं ।७-८।

वामनो वर्तुलश्चातिह्रस्वो नीलः सबिन्दुकः ।
श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखो वामेन रिक्तकः[१] ।।९

गोलाकार, अत्यन्त छोटी,नीली एवं बिन्दुयुक्त शालग्राम-शिला की 'वामन' संज्ञा है । जिसकी कान्ति श्याम हो, दक्षिण भाग में हार की रेखा और बायें भाग में बिन्दु का चिह्न हो उस शालग्राम-शिला को 'त्रिविक्रम' कहते हैं । ९

---

१ घ. बिन्दुकः ।

अनन्तो नागभोगाङ्को नैकाभो नैकमूर्तिमान् ।
स्थूलो दामोदरो मध्यचक्रोऽधः सूक्ष्मबिन्दुकः ॥१०
सुदर्शनस्त्वेकचक्रो लक्ष्मीनारायणो द्वयात् ।
त्रिचक्रश्चाच्युतो देवस्त्रिचक्रो वा त्रिविक्रमः ॥११
जनार्दनश्चतुश्चक्रो वासुदेवश्च पञ्चभि : ।
षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः सङ्कर्षणश्च सप्तभिः ॥१२
दशावतारो दशभिर्दशकेनानिरुद्धकः ।
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ॥१३

जिसमें सर्प के शरीर का चिह्न हो, अनेक प्रकार की आभायें दीखती हों तथा जो अनेक मूर्तियों से मण्डित हों, वह शालग्राम-शिला 'अनन्त' (शेषनाग) कही गयी है। जो स्थूल हो, जिसके मध्यभाग में चक्र का चिह्न हो तथा अधोभाग में सूक्ष्म बिन्दु शोभा पा रहा हो, उस शालग्राम की 'दामोदर' संज्ञा है। एक चक्र वाले शालग्राम को 'सुदर्शन' कहते हैं, दो चक्र होने से उसकी 'लक्ष्मी-नारायण' संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हो, वह शिला भगवान् 'अच्युत' अथवा 'त्रिविक्रम' है चार चक्रों से युक्त शालग्राम को'जनार्दन' पाँच चक्र वाले को 'वासुदेव', छः चक्र वाले को 'प्रद्युम्न' तथा सात चक्र वाले को 'सङ्कर्षण' कहते हैं। आठ चक्र वाले शालग्राम की 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है। नौ चक्र वाले को 'नव-व्यूह' कहते हैं। दस चक्रों से युक्त शिला की 'दशावतार' संज्ञा है। ग्यारह चक्रों से युक्त होने पर उसे 'अनिरुद्ध', द्वादश चक्रों से चिह्नित होने पर 'द्वादशात्मा' तथा इससे अधिक चक्रों से युक्त होने पर उसे 'अनन्त' कहते हैं।१०-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शालग्रामादिमूर्तिलक्षणकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।४६

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्रामादिपूजाकथनम्

हयग्रीव उवाच—

शालग्रामादिचक्राङ्कपूजाः[1] सिद्ध्यै वदामि ते ।
त्रिविधा स्याद्धरेः पूजा काम्याकाम्योभयात्मिका ॥१
मीनादीनां तु पञ्चानां काम्यार्था[2] वोभयात्मिका ।
वराहस्य नृसिंहस्य वामनस्य च मुक्तये ॥२

हयग्रीव बोले—अब मैं तुम्हारे सम्मुख पूर्वोक्त चक्राङ्कित शालग्राम-विग्रहों की पूजा का वर्णन करता हूँ जो सिद्धि प्रदान करने वाली है । श्रीहरि की पूजा तीन प्रकार की होती है—काम्या, अकाम्या और उभयात्मिका । मत्स्य आदि पाँच विग्रहों की पूजा काम्या अथवा उभयात्मिका हो सकती है । पूर्वोक्त चक्रादि से सुशोभित वराह, नृसिंह और वामन—इन तीनों की पूजा मुक्ति के लिए करनी चाहिए । १६-२१।

चक्रादीनां त्रयाणां तु शालग्रामार्चनं शृणु ।
उत्तमा निष्कला[3] पूजा कनिष्ठा सकलार्चना[4] ॥३

अब शालग्राम-पूजन के विषय में सुनो, जो तीन प्रकार की होती है । इनमें निष्कला पूजा उत्तम, सकला पूजा कनिष्ठ और मूर्तिपूजा को मध्यम माना गया है । ३

मध्यमा मूर्तिपूजा स्याच्चक्राब्जे चतुरस्रके ।
प्रणवं हृदि विन्यस्य षडङ्गं करदेहयोः ॥४
कृतमुद्रात्रयश्चक्राद्वहिः पूर्वे गुरुं यजेत् ।
आप्ये गणं वायवे च धातारं नैर्ऋते यजेत् ॥५
विधातारं च कर्तारं हर्तारं दक्षसौम्ययोः ।
विष्वक्सेनं यजेदीश आग्नेये क्षेत्रपालकम् ॥६

---

१ क. च. °पूजां सि° । २ घ. °म्याद्यो वो° । ख. °म्यार्थे वो° । ३ घ. निष्फला । ४ घ. सफला° ।

ऋगादिवेदान्प्रागादावाधारानन्तकं भुवम् ।
पीठं पद्मं चार्कचन्द्रब्रह्माख्यं[1] मण्डलत्रयम् ॥७
आसनं द्वादशान्तेन[2] तत्र स्थाप्य शिलां यजेत् ।
व्यस्तेन च समस्तेन स्वबीजेन यजेत्क्रमात् ॥८
पूर्वादावथ वेदाद्यैर्गायित्रीभ्यां जितादिना ।
प्रणवेनार्चयेत्पश्चान्मुद्रास्तिस्रः प्रदर्शयेत् ॥९

चौकोर मण्डल में स्थित कमल पर पूजा की विधि इस प्रकार है—हृदय में प्रणव का न्यास करते हुए षडङ्गन्यास करे। फिर करन्यास और व्यापक न्यास करके तीन मुद्राओं का प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् चक्र के बाह्यभाग में पूर्व दिशा की ओर गुरुदेव का पूजन करे। पश्चिम दिशा में गण का, वायव्य-कोण में धाता का एवं नैर्ऋत्यकोण में विधाता का पूजन करे। दक्षिण और उत्तर दिशा में क्रमशः कर्ता और हर्ता की पूजा करे। इसी प्रकार ईशान कोण में विष्वक्सेन और अग्निकोण में क्षेत्र-पाल की पूजा करे। फिर पूर्वादि दिशाओं में ऋग्वेदादि चारों वेदों की पूजा करके आधारशक्ति, अनन्त, पृथिवी, योगपीठ, पद्म, सूर्य-चन्द्र और ब्रह्मात्मक अग्नि-इन तीनों के मण्डलों का यजन करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर-मन्त्र से आसन पर शिला की स्थापना करके पूजन करे। फिर मूल मन्त्र का विभाग करके एवं सम्पूर्ण मन्त्र से क्रमपूर्वक पूजन करे। फिर प्रणव से पूजन करने के पश्चात् तीन मुद्राओं का प्रदर्शन करे।४-९।

विष्वक्सेनस्य चक्रस्य क्षेत्रपालस्य दर्शयेत् ।
शालग्रामस्य प्रथमा पूजाऽथो निष्कलोच्यते[3] ॥१०
पूर्ववत्षोडशारं च सपद्मं मण्डलं लिखेत् ।
शङ्खचक्रगदाखड्गैर्गुर्वाद्यं पूर्ववद्यजेत् ॥११
पूर्वसौम्ये धनुर्बाणान् वेद्राद्यै रासनं ददेत् ।
शिलां न्यसेद् द्वादशार्णैस्तृतीयं पूजनं शृणु ॥१२
अष्टारमब्जं विलिखेद् गुर्वाद्यं पूर्ववद् यजेत् ।
अष्टार्णेनासनं दत्त्वा तेनैव च शिलां न्यसेत् ॥१३
पूजयेद् दशधा तेन गायत्रीभ्यां जितं ततः[4] ॥१४

१ घ. °न्द्रवह्न्याख्यं । २ घ. द्वादशार्णेन । ३ घ. निष्फलो । ४ घ. तथा ।

विष्वक्सेन, चक्र और क्षेत्रपाल को (ये मुद्रायें) दिखाये। इस प्रकार यह शालग्राम की प्रथम पूजा निष्कला कही जाती है। पूर्ववत् षोडशदलकमल से युक्त मण्डल को अङ्कित करे। उसमें शंख, चक्र, गदा और खड्ग—इन आयुधों की तथा गुरु आदि की पहले की भाँति पूजा करे। पूर्व और उत्तर दिशाओं में क्रमशः धनुष और बाण की पूजा करे। प्रणवमन्त्र से आसन समर्पण करे और द्वादशाक्षर-मन्त्र से शिला का न्यास करना चाहिये। अब तीनों प्रकार की कनिष्ठ पूजा का वर्णन करता हूँ, सुनो। अष्टदलकमल अंकित करके उस पर पहले के समान गुरु आदि की पूजा करे। फिर अष्टाक्षर मन्त्र से आसन देकर उसी से शिला का न्यास करे। उसी मन्त्र से दस बार पूजन करे और दो बार गायत्री से न्यास करे।१०-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शालग्रामादिपूजाकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।४७

———

अथाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनम्

श्रीभगवानुवाच—

[1]ओंरूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः ।
नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम् ॥१
ततो गदी माधवोऽरिशङ्खपद्मी नमामि तम् ।
चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खी गोविन्द ऊर्जितः ॥२
मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शङ्खी विष्णुश्च चक्रधृक् ।
शङ्खचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे ॥३
भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री च शङ्ख्यपि ।
शङ्खचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा ॥४

श्रीभगवान् बोले–ओंकार-स्वरूप केशव अपने हाथो में पद्म, शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले हैं। नारायण, शंख, पद्म, गदा और चक्र धारण करते हैं। मैं प्रदक्षिणापूर्वक उनके चरणों में नतमस्तक होता हूँ। माधव गदा, चक्र, शंख और पद्म धारण करने वाले हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ। गोविन्द अपने हाथों में क्रमशः चक्र, गदा, पद्म और शंख धारण करने वाले तथा बलशाली हैं। श्रीविष्णु गदा पद्म, शंख और चक्र धारण करते हैं, वे मोक्ष देने वाले हैं। मधुसूदन शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करते हैं। मैं उनके सामने भक्ति-भाव से नतमस्तक होता हूँ। त्रिविक्रम क्रमशः पद्म, गदा, चक्र एवं शंख धारण करते हैं। भगवान् वामन के हाथों में शंख चक्र, गदा एवं पद्म शोभा पाते हैं, वे सदा मेरी रक्षा करें।१-४।

गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शंख्यपि ।
हृषीकेशो गदी चक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः ॥५
करदः पद्मनाभस्तु शङ्खाब्जारिगदाधरः ।
दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामि तम् ॥६
तेने[2] गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत्[3] ।
सङ्कर्षणो गदी शङ्खी पद्मी चक्री च पातु वः ॥७

---

१ घ. तथा। २ क. च. ततो। ख. ग. वामे। ३ क, ख. ग. ङ. च.° ब्जजो जग°।

श्रीधर कमल, चक्र, शार्ङ्ग धनुष एवं शङ्ख धारण करते हैं। वे सबको सद्गति प्रदान करने वाले हैं। हृषीकेष गदा, चक्र, पद्म एवं शंख धारण करते हैं, वे हमारी रक्षा करें। वरदायक भगवान् पद्मनाभ शंख, पद्म, चक्र और गदा धारण करते हैं। दामोदर के हाथों में पद्म, शंख, गदा और चक्र शोभा पाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। गदा, शंख, चक्र और पद्म धारण करने वाले वासुदेव ने ही सम्पूर्ण जगत् का विस्तार किया है। गदा, शंख, पद्म और चक्र धारण करने वाले संकर्षण आप लोगों की रक्षा करें।५-७।

गदी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः।
अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ।।८
सुरेशोऽर्यब्जशङ्खाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः।
अधोक्षजः पद्मगदी शङ्खचक्री च पातु वः ।।९
देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदी शङ्खी नमामि तम्।
अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शङ्खी च पातु वः[1] ।।१०
वालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि।
जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः ।।११
शङ्खी पद्मी च चक्री च हरिः कौमोदकीधरः।
कृष्णः शङ्खी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तिमुक्तिदः ।।१२

वाद-(युद्ध) कुशल भगवान् प्रद्युम्न चक्र, शंख, गदा और पद्म धारण करते हैं। अनिरुद्ध चक्र, गदा, शंख और पद्म धारण करने वाले हैं। वे हम लोगों की रक्षा करें। सुरेश्वर पुरुषोत्तम चक्र, कमल, शंख और गदा धारण करते हैं, भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा शंख और चक्र धारण करने वाले हैं, वे आप लोगों की रक्षा करें। नृसिंह देव चक, कमल, गदा और शंख धारण करने वाले हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। श्रीगदा, पद्म, चक्र और शंख धारण करने वाले अच्युत आप लोगों की रक्षा करें। शंख, गदा, चक्र और पद्म धारण करने वाले बालबटुकरूपधारी वामन, पद्म, चक्र, शंख और गदा धारण करने वाले जनार्दन, शंख, पद्म, चक्र, और गदाधारी यज्ञस्वरूप श्रीहरि तथा शंख, गदा, पद्म एवं चक्र धारण करने वाले श्रीकृष्ण मुझे भोग और मोक्ष देने वाले हों।८-१२।

१क ख. च. माम्।

आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात् सङ्कर्षणोऽभवत् ।
सङ्कर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ॥१३
केशवादिप्रभेदेन एकैकः [1]स्यात्त्रिधा क्रमात् ॥१४
द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमत् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि निर्मलः सर्वमाप्नुयात् ॥१५

आदिमूर्ति भगवान् वासुदेव हैं। उनसे संकर्षण प्रकट हुए। संकर्षण से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से एक-एक क्रमशः केशव आदि मूर्तियों के भेद से तीन-तीन रूपों में अभिव्यक्त हुआ। चौबीस मूर्तियों की स्तुति से युक्त इस द्वादशाक्षर स्तोत्र का जो पाठ अथवा श्रवण करता है वह निर्मल होकर सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर लेता है।१३-१५।

इत्यादि महापुराण आग्नेये चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनं नामाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८

---

१ ख. ग. घ. °कैकस्य त्रिधा।

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मत्स्यादिदशावतारप्रतिमालक्षणवर्णनम्

श्रीभगवानुवाच—

दशावतारं[1] मत्स्यादिलक्षणं प्रवदामि ते ।
मत्स्याकारस्तु मत्स्यः स्यात्कूर्मः कूर्माकृतिर्भवेत् ॥१
नराङ्गो वाथ कर्तव्यो भूवराहो[2] गदारिभृत्[3] ।
दक्षिणे वामके शङ्खं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा ॥२
श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणानुगौ ।
वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत् ॥३
नरसिंहो विवृतास्यो वामोरुधृतदानवः[4] ।
तद्वक्षो दारयन्माली स्फुरच्चक्रगदाधरः ॥४

हयग्रीव भगवान् बोले—अब मैं तुम्हें मत्स्य आदि दस अवतार-विग्रहों का लक्षण बताता हूँ । मत्स्य भगवान् की आकृति मत्स्य के समान और कूर्म भगवान् की प्रतिमा कूर्म के आकार की होनी चाहिये । पृथ्वी के उद्धारक भगवान् वराह को मनुष्याकार बनाना चाहिये । वे दाहिने हाथ में गदा और चक्र धारण करते हैं । उनके बायें हाथ में शंख और पद्म शोभा पाते हैं । अथवा पद्म के स्थान पर बायें भाग में पद्मा देवी सुशोभित होती हैं । लक्ष्मी उनके बायें कोहनी का सहारा लिये रहती हैं । पृथ्वी तथा अनन्त चरणों के अनुगत होती हैं । भगवान् वराह की स्थापना से राज्य की प्राप्ति होती है और मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है । नरसिंह का मुंह खुला हुआ है । उन्होंने अपनी बायीं जाँघ पर दानव हिरण्यकशिपु को दबा रक्खा है और उस दैत्य के वक्ष को विदीर्ण करते दिखायी देते हैं । उनके गले में माला है और हाथों में चक्र एवं गदा प्रकाशित हो रहे हैं ।१-४।

छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः ।
रामः चापेषुहस्तः स्यात्खड्गी परशुनान्वितः ॥५

---

१ क. ङ. च. °तारम° । २ क. ड़. च. नृवराहो । ३ ख. ग. घ. °दादिभृ° ।
४ ख. ग. घ. ङ. च. °रुक्षत° ।

रामश्चापी शरी खड्गी शङ्खी वा द्विभुजः स्मृतः ।
गदालाङ्गलधारी च रामो वाथ चतुर्भुजः ॥६
वामार्धे[1] लाङ्गलं दद्यादधः शङ्खं सुशोभनम् ।
मुसलं दक्षिणार्धे[2] तु चक्रं चाधः सुशोभनम् ॥७

वामन का विग्रह छत्र एवं दण्ड से सुशोभित होता है अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज बनाया जाय । परशुराम के हाथों में धनुष और बाण होना चाहिये । वे खड्ग और फरसे से भी शोभित होते हैं । श्रीरामचन्द्रजी के श्रीविग्रह को धनुष, बाण, खड्ग और शंख से सुशोभित करना चाहिये अथवा वे द्विभुज माने गये हैं । बलरामजी गदा एवं हल धारण करने वाले हैं अथवा उन्हें भी चतुर्भुज बनाना चाहिये । उनके बायें भाग के ऊपर वाले हाथ में हल धारण कराये और नीचे वाले में सुन्दर शोभा वाला शंख, दायें भाग के ऊपर वाले हाथ में मुसल धारण कराये और नीचे वाले हाथ में शोभायमान सुदर्शन चक्र ।५-७।

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
ऊर्ध्वं पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥८
धनुस्तूर्णान्वितः कल्की म्लेच्छोत्सादकरो द्विजः ।
अथवाश्वस्थितः खड्गी शङ्खचक्रगदान्वितः ॥६

बुद्धदेव की प्रतिमा का लक्षण यों है—बुद्ध ऊँचे पद्ममय आसन पर बैठे हैं । उनके एक हाथ में वरद और दूसरे में अभय की मुद्रा है । वे शान्तस्वरूप हैं । उनके शरीर का रंग गोरा और कान लंबे हैं । वे सुन्दर पीत वस्त्र से आवृत हैं । कल्कि भगवान् धनुष और तूणीर से सुशोभित हैं । म्लेच्छों के संहार में लगे हैं । वे ब्राह्मण हैं । अथवा उनकी आकृति इस प्रकार बनाये—वे घोड़े की पीठ पर बैठे हैं और अपने चार हाथों में खड्ग, शंख चक्र एवं गदा धारण किये हैं ।८-६।

लक्षणं वासुदेवादिनवकस्य वदामि ते ।
दक्षिणार्धे[3] गदा वामे वामार्धे[4] चक्रमुत्तमम् ॥१०
ब्रह्मेशौ पार्श्वगौ नित्यं वासुदेवोऽस्ति पूर्ववत्[5] ।
शङ्खी सवरदो वाथ द्विभुजो वा चतुर्भुजः ॥११

---

१ ख. ग. घ. वामोर्ध्वे । २ ख. दक्षिणार्धेन । घ. दक्षिणोर्ध्वे ।
३ घ. दक्षिणोर्ध्वे । ४ घ. वामोर्ध्वे । ५ ख. °र्वतः । श° ।

लाङ्गली मुसली रामो गदापद्मधरः स्मृतः ।
प्रद्युम्नो दक्षिणे चक्रं[1] शङ्खं वामे धनुः करे ॥१२
गदाधन्वावृतः[2] प्रीत्या प्रद्युम्नो वा धनुःशरी ।
चतुर्भुजोऽनिरुद्धः स्यात्तथा नारायणो विभुः ॥१३
चतुर्मुखश्चतुर्वाहुर्बृहज्जठरमण्डलः ।
लम्वकूर्चो जटायुक्तो ब्रह्मा हंसाग्रवाहनः ॥१४

अव मैं तुम्हें वासुदेवादि नौ मूर्तियों के लक्षण वताता हूँ । दाहिने भाग के ऊपर वाले हाथ में उत्तम चक्र—यह वासुदेव की मुख्य पहचान है । उनके एक पार्श्व में ब्रह्मा और दूसरे भाग में महादेवजी सदा विराजमान रहते हैं । वासुदेव की शेष बातें पूर्ववत् हैं । वे शंख अथवा वरद की मुद्रा धारण करते हैं । उनका स्वरूप द्विभुज अथवा चतुर्भुज होता है । वलराम की चार भुजायें हैं । वे दायें हाथ में हल और मुसल तथा वायें हाथ में गदा और पद्म धारण करते हैं । प्रद्युम्न दायें हाथ में चक्र और शंख तथा वायें हाथ में धनुष-वाण धारण करते हैं । अथवा द्विभुज प्रद्युम्न के एक हाथ में गदा और दूसरे में धनुष है । वे प्रसन्नतापूर्वक इन अस्त्रों को धारण करते हैं । या उनके एक हाथ में धनुष और दूसरे में बाण है । अनिरुद्ध और भगवान् नारायण का विग्रह चतुर्भुज होता है । ब्रह्माजी हंस पर आरूढ होते हैं । उनके चार मुख और चार भुजायें हैं । उदरमण्डल विशाल है । लम्बी दाढ़ी और सिर पर जटा—यही उनकी प्रतिमा का लक्षण है ।१०-१४।

दक्षिणे चाक्षसूत्रं च स्रुचो वामे तु कुण्डिकाः ।
आज्यस्थाली सरस्वती सावित्री वामदक्षिणे ॥१५
विष्णुरष्टभुजस्तार्क्ष्ये[3] करे खड्गस्तु दक्षिणे ।
गदाधरश्च वरदो वामे कार्मुकखेटके ॥१६
चक्रशङ्खौ चतुर्वाहुर्नरसिंहश्चतुर्भुजः ।
शङ्खचक्रधरो वापि विदारितमहासुरः ॥१७

वे दाहिने हाथों में अक्षसूत्र और स्रुवा एवं बायें हाथों में कुण्डिका और आज्यस्थाली धारण करते हैं । उनके वाम भाग में सरस्वती और दक्षिण भाग में सावित्री हैं । विष्णु की आठ भुजायें हैं । वे गरुड पर आरूढ़ हैं । उनके दाहिने हाथ में खड्ग, गदा, बाण और वरद की मुद्रा है । बायें हाथ में धनुष,

---

१ घ. वज्रं। २ घ॰ दानम्यावृ॰ । ३ घ. ॰स्तार्क्षे क॰ ।

खेट, चक्र, और शंख हैं। अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज भी है। नृसिंह की चार भुजायें हैं। उनकी दो भुजाओं में शंख और चक्र हैं तथा दो भुजाओं से वे महान् असुर हिरण्यकशिपु का वक्ष विदीर्ण कर रहे हैं।१५-१७।

चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितले धृतः।
धारयन् बाहुना पृथ्वीं वामनः कमलामधः[1] ।१८
पादलग्ना धरा कार्या यदा लक्ष्मीर्व्यवस्थिता।
त्रैलोक्यमोहनस्तार्क्ष्ये ह्यष्टबाहुस्तु दक्षिणे ॥१९
चक्रं शङ्खं च मुसलमङ्कुशं वामके करे।
शङ्खशार्ङ्गगदापाशान् पद्मवीणासमन्विते ॥२०
लक्ष्मीः सरस्वती कार्ये विश्वरूपोऽथ दक्षिणे।
चक्रं खड्गं च मुसलमङ्कुशं पट्टिशं क्रमात् ॥२१
मुद्गरं च तथा पाशं शक्तिशूलं शरं करे।
वामे शङ्खं च शार्ङ्गं च गदां पाशं च तोमरम् ॥२२
लाङ्गलं परशुं दण्डं छुरिकां चर्म[2] चोत्तमम्।
विंशद्बाहुश्चतुर्वक्त्रो दक्षिणस्थोऽथ वामके ॥२३
त्रिनेत्रो वामपार्श्वेऽपि[3] शयितो जलशाय्यपि।
श्रिया धृतैकचरणो विमलाद्याभिरीडितः ॥२४
नाभिपद्मे चतुर्वक्त्रो हरेः, शङ्करको हरिः ॥२४½

वराह के चार भुजायें हैं। उन्होंने शेषनाग का अपने करतल में धारण कर रक्खा है। वे बायें हाथ से पृथ्वी को और वाम भाग में लक्ष्मी को धारण करते हैं। जब लक्ष्मी उनके साथ हों, तब पृथ्वी को उनके चरणों में संलग्न बनाना चाहिये। त्रैलोक्यमोहनमूर्ति श्रीहरि गरुड पर आरुढ़ हैं। उनके आठ भुजायें हैं। वे दाहिने हाथों में चक्र, शंख, मुसल और अंकुश धारण करते हैं। उनके बायें हाथों में शंख, शार्ङ्ग धनुष, गदा और पाश शोभा पाते हैं। वाम भाग में कमलधारिणी कमला और दक्षिण भाग में वीणाधारिणी सरस्वती की प्रतिमायें बनानी चाहिये। भगवान् विश्वरूप का विग्रह बीस भुजाओं से सुशोभित है। वे दाहिने हाथों में क्रमशः चक्र, खड्ग, मुसल, अंकुश पट्टिश, मुद्गर, पाश, शक्ति, शूल तथा बाण धारण करते हैं। बायें हाथों में शंख, शार्ङ्ग धनुष, गदा, पाश, तोमर, हल, फरसा, दण्ड, छुरी और उत्तम ढाल लिये रहते हैं। उनके दाहिने भाग में चतुर्भुज ब्रह्मा तथा बायें भाग में त्रिनेत्रधारी महादेव

१ घ. कमलाधरः। २ ख. ग. घ. चर्मक्षेपणम्। ३ घ. °श्र्वेन श°।

विराजमान हैं। जलशायी जल में शयन करते हैं। इनकी मूर्ति शेष-शय्या पर सोयी हुई बनानी चाहिये । भगवती लक्ष्मी उनके एक चरण की सेवा में लगी हैं। विमला आदि शक्तियाँ उनकी स्तुति करती हैं। उन श्रीहरि के नाभि-कमल पर चतुर्भुज ब्रह्मा विराज रहे हैं । हरिहरमूर्ति इस प्रकार बनानी चाहिये।१८-२४½।

शूलर्ष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरोऽपरे[1] ।।२५
रुद्रकेशवलक्ष्माङ्गो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः ।
शङ्खचक्रगदावेदपाणिश्चाश्वशिरा हरिः ।।२६
वामपादो धृतः शेषे दक्षिणः कूर्मपृष्ठगः ।
दत्तात्रेयो द्विबाहुः स्याद्वामोत्सङ्गे श्रिया सह ।।२७
विष्वक्सेनश्चक्रगदी हलशङ्खी हरेर्गणः ।।२८

वे दाहिने हाथ में शूल और शक्ति धारण करते हैं तथा अन्य बायें हाथ में गदा और चक्र। इस प्रकार शरीर के दाहिने भाग में रुद्र के चिह्न हैं और वाम भाग में केशव के। दाहिने पार्श्व में गौरी तथा वाम पार्श्व में लक्ष्मी विराज रही हैं। भगवान् हयग्रीव के चार हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और वेद शोभा पाते हैं। उन्होंने अपना बायाँ पैर शेष नाग पर और दाहिना पैर कच्छप की पीठ पर रख छोड़ा है। दत्तात्रेय के दो बाँहें हैं। उनके वामांक में लक्ष्मी शोभा पाती हैं। भगवान् के पार्षद विष्वक्सेन अपने चार हाथों में क्रमशः चक्र, गदा, हल और शंख धारण करते हैं।२५-२८।

इत्यादि महापुराण आग्नेये मत्स्यादिदशावतारप्रतिमालक्षण वर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।४९

---

१ घ. °पदे।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच—

चण्डी विंशतिबाहुः स्याद् बिभ्रती दक्षिणैः करैः ।
शूलासिशक्तिचक्राणि पाशखेटायुधाभयम् ॥१
डमरुं शक्तिकां वामैर्नागपाशं च खेटकम् ।
कुठाराङ्कुशपाशांश्च घण्टायुधगदास्तथा ॥२
आदर्शमुद्गरान्हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका ।
तदधो महिषश्छिन्नमूर्ध्ना पातितमस्तकः ॥३
शस्त्रोद्यतकरः क्रुद्धस्तद्ग्रीवासम्भवः पुमान् ।
शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रङ्मूर्धजेक्षणः ॥४
सिंहेनास्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम् ।
याम्याङ्घ्रयाक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रिर्नीचगासुरे ॥५

श्रीभगवान् बोले—चण्डी बीस भुजा वाली हो जो अपने दक्षिण हाथों में शूल, खड्ग, शक्ति, चक्र, पाश, खेट, आयुध, अभय डमरू और शक्ति धारण करती हो। बायें हाथों में नागपाश, खेटक, कुठार, अंकुश, पाश, घंटा आयुध, गदा; दर्पण और मुद्गर लिये हो अथवा चण्डी की प्रतिमा दश भुजाओं से युक्त होनी चाहिये। उसके चरणों के नीचे कटे हुए मस्तकवाला महिष हो। उसका मस्तक अलग गिरा हुआ हो। वह हाथों में शस्त्र उठाये हो। उसकी ग्रीवा से एक पुरुष प्रकट हो गया हो जो अत्यन्त कुपित हो। उसके हाथ में शूल हो, वह मुँह से रक्त उगल रहा हो। उसके गले की माला, सिर के बाल और दोनों नेत्र लाल दिखाई देते हों। देवी का वाहन सिंह उसके रूप का आस्वादन कर रहा हो। उस महिषासुर के गले में खूब कसकर पाश बाँधा गया हो। देवी का दाहिना पैर सिंह पर और बायाँ पैर नीचे महिषासुर के शरीर पर हो।१-५।

चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च सशस्त्रा रिपुमर्दिनी ।
नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वमूर्तितः[1] ॥६
आदौ मध्ये तथेन्द्राद्या नवतत्त्वात्मभिः[2] क्रमात् ॥६½

---

१ क. ङ. च. स्वरूपतः। २ क. ङ. च. °त्त्वाणुभिः।

वे चण्डी देवी त्रिनेत्रधारिणी हैं तथा शस्त्रों से सम्पन्न रहकर शत्रुओं का मर्दन करने वाली है। नवकमलात्मक पीठ पर दुर्गा की प्रतिमा में उनकी पूजा करनी चाहिये। पहले कमल के नौ दलों में तथा मध्यवर्तिनी कर्णिका में इन्द्र आदि दिक्पालों की तथा नौ तत्त्वात्मिका शक्तियों के साथ दुर्गा की पूजा करे।६-६½।

अष्टादशभुजैका तु दक्षे मुण्डं च खेटकम्।७
आदर्शं तर्जनीं चापं ध्वजं डमरुकं तथा।
पाशं वामे बिभ्रती च शक्तिमुद्गरशूलकम्॥८
वज्रखड्गाङ्कुशशरांश्चक्रं देवी शलाकया।
एतैरेवायुधैर्युक्ताः शेषाः षोडशबाहुकाः॥९
डमरुं तर्जनीं त्यक्त्वा रुद्रचण्डादयो नव।
रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका॥१०
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका।
उग्रचण्डा च मध्यस्था रोचनाभारुणा सिता॥११
नीला शुक्ला धूम्रिका च पीता श्वेता च सिंहगा।
महिषोत्थः पुमाञ्शस्त्री तत्कचग्रहमुष्टिका॥१२

दुर्गा की एक प्रतिमा अट्ठारह भुजाओं की होती है। वह दाहिने भाग के हाथों में मुण्ड, खेटक, दर्पण, तर्जनी धनुष, ध्वज, डमरू, ढाल और पाश धारण करती है तथा वाम भाग की भुजाओं में शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, बाण, चक्र और शलाका लिये रहती है। सोलह बाँह वाली दुर्गा की प्रतिमा भी इन्हीं आयुधों से युक्त होती है। अठारह में से दो भुजाओं तथा डमरू और तर्जनी—इन दो आयुधों को छोड़कर शेष सोलह हाथ उन पूर्वोक्त आयुधों से ही सम्पन्न होते हैं। रुद्रचण्डा आदि नौ दुर्गायें इस प्रकार हैं—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अतिचण्डिका और उग्रचण्डा। ये पूर्वादि आठ दिशाओं में पूजित होती हैं और नवीं उग्रचण्डा मध्यभाग में स्थापित एवं पूजित होती हैं। रुद्रचण्डा आदि आठ देवियों की अंगकान्ति क्रमशः गोरोचना के सदृश पीली, अरुणवर्णा, काली, नीली, शुक्लवर्णा, धूमवर्णा, पीतवर्णा और श्वेतवर्णा है। वे सब की सब सिंहवाहिनी हैं। महिषासुर के कण्ठ से प्रकट हुआ जो पुरुष है वह शस्त्रधारी है और ये पूर्वोक्त देवियाँ अपनी मुट्ठी में उसका केश पकड़े रहती हैं।७-१२।

आलीढा नव दुर्गाः स्युः स्थाप्याः पुत्रादिवृद्धये।
तथा[1] गौरी चण्डिकाद्या कुण्ड्यक्षररदादिधृक् ॥१३
सैव रम्भा वने सिद्धाऽग्निहीना ललिता तथा।
स्कन्धमूर्धकरा वामे द्वितीये धृतदर्पणा ॥१४
याम्ये[2] कलाङ्गुलिहस्ता सौभाग्या तत्र चर्द्धिका[3] ॥१४½

ये नौ दुर्गायें 'आलीढा' आकृति की होनी चाहिये। पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि के लिये इनकी स्थापना (एवं पूजा) करनी उचित है। गौरी ही चण्डिका आदि देवियों के रूप में पूजित होती हैं। वे ही हाथों में कुण्डी, अक्षमाला, गदा और अग्नि धारण करके 'रम्भा' कहलाती हैं। वे ही वन में 'सिद्धा' कही गयी हैं। सिद्धावस्था में वे अग्नि से रहित होती हैं। 'ललिता' भी वे ही हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—उनके एक बायें हाथ में गर्दन-सहित मुण्ड है और दूसरे में दर्पण। दाहिने हाथ में कलाङ्गुलि है और उससे ऊपर के हाथ में सौभाग्य की गदा ।१३-१४½।

लक्ष्मीर्याम्यकराम्भोजा वामे श्रीफलसंयुता ॥१५
पुस्ताक्षमालिका हस्ता वीणाहस्ता सरस्वती।
कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरे वापि जाह्नवी ॥१६
कूर्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते।
सवीणस्तुम्बुरुः शस्तः[4] शूली मात्रग्रतो वृषे ॥१७
गौरी चतुर्मुखी ब्राह्मी अक्षमालास्रुगन्विता।
कुण्डाक्षपात्रिणी वामे हंसगा शाङ्करी स्थिता[5] ॥१८
शरचापौ दक्षिणेऽस्या वामे चक्रं धनुर्वृषौ।
कौमारी शिखिगा रक्ता शक्तिहस्ता द्विबाहुका ॥१९

लक्ष्मी के दायें हाथ में कमल और बायें हाथ में श्रीफल होता है। सरस्वती के दो हाथों में पुस्तक और अक्षमाला शोभा पाती है और शेष दो हाथों में वे वीणा धारण करती हैं। गङ्गाजी की अङ्गकान्ति श्वेत है। वे मकर पर आरुढ हैं। उनके एक हाथ में कलश है और दूसरे में कमल। यमुना देवी कछुए पर आरुढ हैं। उनके दोनों हाथों में कलश है और वे श्याम-वर्णा हैं। इसी रूप में इनकी पूजा होती है। तुम्बुरु की प्रतिमा वीणासहित होनी

१ ख. ग. त्रयो। २ घ. °म्ये फला°। ३ घ. चोर्ध्विका। ४ घ. शुक्लः।
५ क. ङ. च. सिता।

चाहिये। उनकी अङ्ग-कान्ति श्वेत है। शूलपाणि शंकर वृषभ पर आरूढ हो मातृकाओं के आगे-आगे चलते हैं। ब्रह्माजी की प्रिया सावित्री गौरवर्णा एवं चतुर्मुखी हैं। उनके दाहिने हाथ में अक्षमाला और स्रुक् शोभा पाते हैं और बायें हाथ में वे कुण्ड एवं अक्षपात्र लिये रहती हैं। उनका वाहन हंस है। शंकर-प्रिया पार्वती वृषभ पर आरुढ होती हैं। उनके दाहिने हाथ में धनुष-बाण और बायें हाथ में चक्र-धनुष शोभित होते हैं। कौमारी शक्ति मोर पर आरुढ होती हैं। उनकी अङ्गकान्ति लाल होती है। उनके दो हाथ हैं और वे अपने हाथों में शक्ति धारण करती हैं।१५-१९।

शङ्खचक्रधरा सव्ये वामे लक्ष्मीर्गदाब्जधृक्।
दण्डशङ्खारिगदया[1] वाराही महिषस्थिता ॥२०
ऐन्द्री गजे[2] वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये।
चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्मांसा तु त्रिलोचना ॥२१
निर्मांसा अस्थिसारा वा ऊर्ध्वकेशी कृशोदरी।
द्वीपिचर्मधरा वामे कपालं पट्टिशं करे ॥२२
शूलं कर्त्री दक्षिणे स्याच्छवारुढास्थिभूषणा ॥२२½

लक्ष्मी अपने दायें हाथ में चक्र और शंख धारण करती हैं तथा बायें हाथ में गदा एवं कमल लिये रहती हैं। वाराही शक्ति भैंसे पर आरूढ होती हैं। उनके हाथ दण्ड, शंख, चक्र और गदा से सुशोभित होते हैं। ऐन्द्री शक्ति ऐरावत पर आरुढ होती है। उनके सहस्र नेत्र हैं तथा उनके हाथों में वज्र शोभा पाता है। ऐन्द्री देवी पूजित होने पर सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। चामुण्डा की आँखें वृक्ष के खोखले की भाँति गहरी होती हैं। उनका शरीर मांस-रहित —कंकाल दिखाई देता है। उनके तीन नेत्र हैं। मांसहीन शरीर में अस्थिमात्र ही सार है। केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं। पेट सटा हुआ है। हाथी का चमड़ा पहनती हैं। उनके बायें हाथ में कपाल और पट्टिश है तथा दायें हाथ में शूल और कटार है। वे शव पर आरुढ होती हैं और हड्डियों के गहनों से अपने शरीर को विभूषित करती हैं।२०-२२½।

विनायको नराकारो बृहत्कुक्षिर्गजाननः ॥२३
बृहच्छुण्डो[3] ह्युपवीती मुखं सप्तकलं भवेत्।
विस्ताराद् दैर्ध्यतश्चैव शुण्डं[4] षट्त्रिंशदलङ्गुम् ॥२४
कला द्वादश नाडी तु ग्रीवा सार्धकलोच्छ्रिता।
षट्त्रिंशदङ्गुलः कण्ठो गुह्यमध्यर्धमङ्गुलम् ॥२५

१ क. ङ. च. °खादिग°। २ ख. ग. घ. वामे। ३ क. ङ. च. वृहद्दण्डो। ४ क. कुण्ड°।

विनायक की आकृति मनुष्य के समान है किन्तु उनका पेट बहुत बड़ा है। मुख हाथी के समान है और सूँड़ लम्बी है । वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनके मुख की चौड़ाई सात कला है और सूँड़ की लम्बाई छत्तीस अंगुल। उनकी नाड़ी (गर्दन के ऊपर की हड्डी) बारह कला विस्तृत और गर्दन डेढ़ कला ऊँची होती है। उनके कण्ठभाग की लम्बाई छत्तीस अंगुल है और गुह्य-भाग का घेरा डेढ़ अंगुल ।२३-२५।

नाभिरूरू द्वादशं च जङ्घे पादे तु दक्षिणे ।
स्वदन्तं परशुं वामे लड्डुकं चोत्पलं शये ॥२६

नाभि और ऊरु का विस्तार बारह अंगुल है। जाँघों और पैरों का भी यही माप है। वे दाहिने हाथों में गजदन्त और फरसा धारण करते हैं तथा बायें हाथों में लड्डू एवं उत्पल लिये रहते हैं।२६

सुमुखी च बिडालाक्षी[1] पार्श्वे स्कन्दो मयूरगः ।
स्वामी शाखो विशाखश्च द्विभुजो बालरूपधृक् ॥२७
दक्षे शक्तिः कुक्कुटेऽथ एकवक्त्रोऽथ षण्मुखः ।
षड्भुजो[2] वा द्वादशभिर्ग्रामेऽरण्ये द्विबाहुकः ॥२८
शक्तीषुपाशनिस्त्रिंश[3] गदासत्तर्जनीयुतः ।
शक्त्या दक्षिणहस्तेषु षट्सु वामे करे तथा ॥२९
शिखिपिच्छं धनुः खेटं पताकाभयकुक्कुटे ।
कपालकर्तरीशूलपाशभृद्याम्यसौम्ययोः ॥३०
([4]गजचर्मभृदूर्ध्वास्यपादा स्याद्रुद्रचर्चिका ।)
सैव चाष्टभुजा देवी शिरोडमरुकान्विता ॥३१

स्कन्द स्वामी मयूर पर आरूढ़ हैं। उनके उभय पार्श्व में सुमुखी और बिडालाक्षी मातृका तथा शाख और विशाख अनुज खड़े हैं। उनके दो भुजायें हैं। वे बालरूपधारी हैं । उनके दाहिने हाथ में शक्ति शोभा पाती है और बायें हाथ में कुक्कुट। उनके एक या छः मुख बनाने चाहिये । कौमारी शक्ति की छहों दाहिनी भुजाओं में शक्ति, बाण, पाश, खड्ग, गदा और तर्जनी (मुद्रा)—ये अस्त्र रहने चाहिये और छः बायें हाथों में मोरपंख, धनुष, खेट, पताका, अभयमुद्रा तथा कुक्कुट होने चाहिये । रुद्रचर्चिका देवी हाथी के चर्म

१ घ. बिडालाक्षी। २ ङ. षड्दन्तो। ३ ख. ग. 'शस्तत्रदोस्तर्ज'। ४ गजचर्म ....र्चिका क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

धारण करती हैं। उनके मुख और एक पैर ऊपर की ओर उठे हैं। वे बायें-दायें हाथों में क्रमशः कपाल, कर्तरी, शूल और पाश धारण करती हैं। वे ही देवी—'अष्टभुजा' के रूप में चर्चित होती हैं—वे मुण्डमाला और डमरू से सुशोभित होती हैं। २७-३१।

तेन सा रुद्रचामुण्डा[1] नादेश्वर्यथ[2] नृत्यती।
इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखी ॥३२
नृवाजिमहिषेभांश्च खादन्ती च करे स्थितान्।
दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शस्त्रासिडमरुत्रिकम्।३३
बिभ्रती दक्षिणे हस्ते वामे घण्टां च खेटकम्।
खट्वाङ्गं च त्रिशूलं च सिद्धचामुण्डिकाह्वया ॥३४
सिद्धयोगेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका।
एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कुशयुतारुणा ॥३५
भैरवी रूपविद्या तु भुजैर्द्वादशभिर्युता।
एताः श्मशानजा रौद्रा [3]अम्बाष्टकमिदं स्मृतम् ॥३६

इसी (अर्थात् डमरू और मुण्डमाला से युक्त होने के) कारण से वे ही रुद्रचामुण्डा कही गयी हैं। वे नृत्य करती हैं, इसलिये नाट्येश्वरी कहलाती हैं। ये ही आसन पर बैठी हुई चतुर्मुखी 'महालक्ष्मी' (की तामसी मूर्ति) कही गयी हैं, जो अपने हाथों में पड़े हुए मनुष्यों, घोड़ों, भैंसों और हाथियों को खा रही हैं। सिद्धचामुण्डा देवी के दस भुजायें और तीन नेत्र हैं। ये दाहिने भाग के पाँचों हाथों में शस्त्र; खड्ग तथा तीन डमरू धारण करती हैं और बायें भाग के हाथों में घण्टा, खेटक, खट्वाङ्ग, त्रिशूल (और ढाल) लिये रहती हैं। सिद्धयोगेश्वरी देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। इन्हीं देवी की स्वरूपभूता एक दूसरी शक्ति हैं, जिनकी अंगकान्ति अरुण है। ये अपने दो हाथों में पाश और अंकुश धारण करती हैं तथा भैरवी नाम से विख्यात हैं। रूपविद्या बारह भुजाओं से युक्त कही गयी हैं। ये सब की सब श्मशान-भूमि में प्रकट होने वाली तथा भयंकर हैं। इन आठों देवियों को अम्बाष्टक कहते हैं। ३२-३६।

---

१ क. ङ. च. मद्रचामुण्डा । २ घ. नाटेश्व° । ३ आद्याष्टकमिति कुत्रचित्-पुस्तके पाठः ।

क्षमा शिवावृता वृद्धा द्विभुजा विवृतानना ।
दन्तुरा क्षेमकारी स्याद् भूमौ जानुकरा स्थिता ।।३७
यक्षिण्यः स्तब्धदीर्घाक्ष्यः शाकिन्यो वक्रदृष्टयः ।
पिङ्गाक्ष्यः स्युर्महारम्या रूपिण्योऽप्सरसः सदा ।।३८

क्षमादेवी—शृगालियों से आवृत हैं। वे एक बूढ़ी स्त्री के रूप में स्थित हैं। उनके दो भुजायें हैं। मुँह खुला हुआ है, दाँत निकले हुए हैं तथा ये धरती पर घुटनों और हाथ का सहारा लेकर बैठी हैं। उनके द्वारा उपासकों का कल्याण होता है। यक्षिणियों की आँखें एकटक देखने वाली और बड़ी होती हैं। शाकिनियाँ वक्रदृष्टि से देखने वाली होती हैं। अप्सरायें सदा ही अत्यन्त रमणीय एवं सुन्दर रूप वाली होती हैं। इनकी आखें भूरी होती हैं।३७-३८।

साक्षमालस्त्रिशूली[1] च नन्दीशो द्वारपालकः ।
महाकालोऽसिमुण्डी स्याच्छूलखेटकरस्तथा[2]।।३९
कृशो भृङ्गी च नृत्यन्वै कूष्माण्डस्थूलखर्ववान् ।
गजगोकर्णवक्त्राद्या वीरभद्रादयो गणाः ।।४०
घण्टाकर्णोऽष्टादशदोः पापरोगं विदारयन् ।
वज्रासिदण्डचक्रेषु मुसलाङ्कुशमुद्गरान् ।। ४१
दक्षिणे तर्जनीं खेटं शक्ति मुण्डं च पाशकम् ।
चापं घण्टां कुठारं च द्वाभ्यां चैव त्रिशूलकम् ।।४२
घण्टामालाकुलो देवो विस्फोटकविमर्दनः ।।४३

भगवान् शंकर के द्वारपाल नन्दीश्वर एक हाथ में अक्षमाला और दूसरे में त्रिशूल लिये रहते हैं। महाकाल के एक हाथ में तलवार, दूसरे में कटा हुआ सिर, तीसरे में शूल और चौथे में खेट होना चाहिये। भृङ्गी का शरीर कृश होता है। वे नृत्य की मुद्रा में देखे जाते हैं। उनका मस्तक कूष्माण्ड के समान स्थूल और गंजा होता है। वीरभद्र आदि गण हाथी और गाय के समान कान और मुख वाले होते हैं। वे पाप और रोग का विनाश करने वाले हैं। वे बायें भाग के आठों हाथों में वज्र, खड्ग, दण्ड, चक्र, बाण, मुसल, अंकुश, और मुद्गर तथा दायें भाग में आठ हाथों में तर्जनी, खेट, शक्ति, मुण्ड, पाश, धनुष, घण्टा और कुठार धारण करते हैं। शेष दो हाथों में त्रिशूल लिये रहते हैं। घण्टी की माला से अलंकृत देव घण्टाकर्ण विस्फोटक (फोड़े आदि) का निवारण करने वाले होते हैं।३९-४३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षण-निरूपणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०।

---

१ ख. ग. °क्षपात्रा त्रिशू° । २ घ. °कवांस्त° ।

अथैकञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यादिग्रहदेवताप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच—

ससप्ताश्वे सैकचक्रे रथे सूर्यो द्विपद्मधृक्।
मषीभाजनलेखन्यौ[1] बिभ्रद्दण्डी[2] तु दक्षिणे ॥१
वामे तु पिङ्गलो द्वारि दण्डभृत्स रवेर्गणः।
वालव्यजनधारिण्यौ पार्श्वे राज्ञी च निष्प्रभा ॥२
अथवाश्वसमारुढः कार्य एकस्तु भास्करः।
वरदा द्व्यब्जिनः सर्वे दिक्पाः शस्त्रकराः क्रमात् ॥३

श्रीभगवान् हयग्रीव बोले—सात अश्वों से जुते हुए एक पहिये वाले रथ पर विराजमान सूर्यदेव की प्रतिमा को स्थापित करना चाहिये। भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथों में दो कमल धारण करते हैं। उनके दाहिने भाग में दावात और कमल लिये दण्डी खडे हैं और वाम भाग में हाथ में दण्ड लिये द्वार पर पिङ्गल विद्यमान हैं। ये दोनों सूर्यदेव के पार्षद हैं। भगवान् सूर्यदेव के उभय पार्श्व में चँवर लिये राज्ञी तथा निष्प्रभा खड़ी हैं। अथवा घोड़े पर चढ़े हुए एक मात्र सूर्य की ही प्रतिमा बनानी चाहिये। समस्त दिक्पाल हाथों में वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शस्त्र लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में स्थित दिखाये जाने चाहिये।१-३।

मुद्गरशूलचक्राब्जभृतोऽग्न्यादिविदिक्स्थिताः।
सूर्यार्यमादिरक्षोऽन्ताश्चतुर्हस्ता द्विषड्दले ॥४

बारह दलों का एक कमलचक्र बनावे। उसमें सूर्य, अर्यमा आदि नामवाले बारह आदित्यों का क्रमशः बारह दलों में स्थापना करे। यह स्थापना वरुण दिशा एवं वायव्यकोण से आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोण के अन्त तक के दलों में होनी चाहिये। उक्त आदित्यगण चार-चार हाथ वाले हों और उन हाथों में मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों। अग्निकोण से लेकर नैर्ऋत्य तक, नैर्ऋत्य से वायव्य तक, वायव्य से ईशान तक और वहाँ से अग्निकोण तक के दलों में उक्त आदित्यों की स्थिति जाननी चाहिये।४

---

१ घ. मसीभा°। २ घ. °भ्रत्कुण्डी।

वरुणः सूर्यनामा च सहस्रांशुस्तथापरः ।
धाता तपनसञ्ज्ञश्च सविताऽथ गभस्तिकः ॥५
रविश्चैवाथ पर्जन्यस्त्वष्टा मित्रोऽथ विष्णुकः ।
मेषादिराशिसंस्थाश्च मार्गादिकार्तिकान्तकाः ॥६
कृष्णो रक्तो मनाग्रक्तः पीतः पाण्डरकः सितः ।
कपिलः पीतवर्णश्च शुकाभो धवलस्तथा ॥७
धूम्रो नीलः क्रमाद्वर्णाः शक्तयः केसराग्रगाः ॥७½

बारह आदित्यों के नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु । ये मेष आदि बारह राशियों में स्थित होकर जगत् को ताप एवं प्रकाश देते हैं । ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (वृश्चिक राशि) से लेकर कार्तिकमास (तुला राशि) तक के मासों (अथवा राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य करते हैं । इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ लाल, पीली, पाण्डु, श्वेत, कपिल, पीला, तोते के समान हरा, धवल, धूम्र और नीला है । शक्तियाँ द्वादश-दल कमल के केसराग्रों में स्थित होती हैं ।५-७½।

इडा सुषुम्ना विश्वार्चिरिन्दुसञ्ज्ञा प्रमर्दिनी[1] ॥८
प्रहर्षिणी महाकाली कपिला च प्रबोधिनी ।
नीलाम्बरा वनान्तस्था अमृताख्या च शक्तयः ॥९

शक्तियों के नाम ये हैं—इडा, सुषुम्ना, विश्वार्ची, इन्दु, प्रमर्दिनी, प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था और अमृता । ८-९।

वरुणादेश्च तद्वर्णा केसराग्रेषु विन्यसेत् ।
तेजश्चण्डो महावक्त्रो द्विभुजः पद्मखड्गभृत् ॥१०

वरुण आदि की जो अंगकान्ति है, वही इन शक्तियों की भी है । केसरों के अग्रभाग में इनकी स्थापना करनी चाहिये । सूर्यदेव का तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है । उनके दो भुजायें हैं । वे अपने हाथों में कमल और खड्ग धारण करते हैं ।१०

१ घ. घनान्तस्था ।

कुण्डिकाजप्यमालीन्दुः कुजः शक्त्यक्षमालिकः ।
बुधश्चापाक्षपाणिः[1] स्याज्जीवः कुण्डयक्षमालिकः ॥११
शुक्रः कुण्डयक्षमाली स्यात्किङ्किणीसूत्रवाञ्शनिः ।
अर्धचन्द्रधरो राहुः केतुः खड्गी च दीपभृत् ॥१२
अनन्तस्तक्षकः कर्कः पद्मो महाब्जः शङ्खकः ।
कुलिकः सूत्रिणः सर्वे फणवक्त्रा महाप्रभाः ॥१३
इन्द्रोवज्री गजारुढच्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान् ।
यमो दण्डी च महिषे नैर्ऋतः खड्गवान्नरे[2] ॥१४
मकरे वरुणः पाशी वायुर्वज्रधरो मृगे ।
गदी कुबेरो मेषस्थ ईशानश्च जटी वृषे ॥

चन्द्रमा, कुण्डिका और अक्षमाला से युक्त होते हैं। मंगल शक्ति और अक्षमाला धारण करते हैं। बुध के हाथों में धनुष् और अक्षमाला होती हैं। बृहस्पति कुण्डी और अक्षमालाधारी होते हैं। शुक्र के हाथों में भी कुण्डिका और अक्षमाला होती है। शनि किङ्किणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्धचन्द्र-धारी हैं तथा केतु के हाथों में खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं। अनन्त, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक आदि सभी मुख्य नागगण सूत्रधारी होते हैं। फन ही इनके मुख हैं। ये सब के सब महान् प्रभापुञ्ज से उद्भासित होते हैं। इन्द्र वज्रधारी हैं। ये हाथी पर आरुढ होते हैं। अग्नि का वाहन बकरा है। अग्नि देवशक्ति धारण करते हैं। यम दण्डधारी हैं और भैंसे पर आरुढ होते हैं। निर्ऋति खड्गधारी हैं और मनुष्य उनका वाहन है। वरुण मकर पर आरुढ हैं और पाश धारण करते हैं। वायु वज्रधारी हैं और मृग उनका वाहन है। कुबेर मेढ़ पर चढ़ते और गदा धारण करते हैं। ईशान जटाधारी हैं और वृषभ उनका वाहन है।११-१५।

द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्माक्षसूत्रभृत् ।
हनुमान् वज्रहस्तः स्यात् पद्भ्यां सम्पीडितासुरः[3] ॥१६
वीणाहस्ताः किन्नराः स्युर्मालाविद्याधराश्च खे ।
दुर्बलाङ्गाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः ॥१७
क्षेत्रपालाः शूलवन्तः प्रेता महोदराः कृशाः ॥

---

१ ख. ग. ङ. ०क्षसाली स्या० । २ घ. वान्करे । ३ ०ताश्रयः । वी० ।

समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान् जी के हाथ में वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरों से असुर को दबा रखा है। किन्नर-मूर्तियाँ हाथ में वीणा लिये हुए हों और विद्याधर माला धारण किये आकाश में स्थित दिखाये जाँय। पिशाचों के शरीर दुर्बल कंकालमात्र हों। वेतालों के मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जाँय। प्रेतों के पेट लम्बे और कृश हों ।१६-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यादिग्रहदेवताप्रतिमालक्षण-वर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५१

— — —

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चतुःषष्टियोगिनीप्रतिमालक्षणानि

श्रीभगवानुवाच —

योगिन्यष्टाष्टकं वक्ष्ये इन्द्रादीशान्ततः क्रमात् ।
अक्षोभ्यां रुक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणा[1] क्षमा ।।१
पिङ्गाक्षी चाक्षया[2] क्षेमा इला नीलालया तथा ।
लोला रक्ता[3] वलाकेशा लालसा विमला पुनः ।।२
दुर्गा[4] सा च विशालाक्षी ह्रींकारा[5] वडवामुखी ।
महाक्रूरा क्रोधना तु भयङ्करी महानना ।।३
सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा तु हयानना ।
साराख्या रससङ्ग्राही[6] शबरा [7]तालजङ्घिका ।।४
रक्ताक्षी सुप्रसिद्धा तु विद्युज्जिह्वा करङ्किणी ।
मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी वरप्रदा ।।५
चण्डा[8] चण्डवती[9] चैव प्रपञ्चा प्रलयान्तिका ।
शिशुवक्त्रा पिशाची पिशितासवलोलुपा[10] ।।६
धमनी तपनी चैव रागिणी[11] विकृतानना ।
वायुवेगा बृहत्कुक्षिर्विकृता विश्वरूपिका ।।७

१ घ. कृपणाक्षया । २ ङ. च क्षया । ३ घ. लक्ता ४ घ. हुताशा । ५ घ. हुङ्कारा । ६ क. च. सुसङ्ग्राही । ७ग. घ. रुद्रसङ्ग्राही । ८ ख. घ सम्बरा । ९ ख. ग. घ. चन्द्रा । १० ख. ग. घ. चन्द्रावली । ११ घ °ताशाचलो° ।

यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च जयन्तिका[1] ।
विडाली रेवती चैव पूतना विजयान्तिका ॥८

श्रीभगवान् बोले—अब मैं चौंसठ योगिनियों का वर्णन करूँगा । इनका स्थान क्रमशः पूर्व दिशा से ईशान-पर्यन्त है । इनके नाम इस प्रकार हैं—

१ अक्षोभ्या, २ रूक्षकर्णी, ३ राक्षसी, ४ क्षपणा, ५ क्षमा, ६ पिङ्गाक्षी, ७ अक्षया, ८ क्षेमा, ९ इला, १० नीलालया, ११ लोला, १२ रक्ता, १३ बलाकेशी, १४ लालसा, १५ विमला, १६ दुर्गा (अथवा हुताशा), १७ विशालाक्षी, १८ ह्रींकारा (अथवा हुंकारा), १९ अश्वमुखी, २० महाक्रूरा, २१ क्रोधना, २२ भयङ्करी, २३ महानना, २४ सर्वज्ञा, २५ तरला, २६ तारा, २७ ऋग्वेदा, २८ हयानना, २९ सारा, ३० रससङ्ग्राही, ३१ शबरा, ३२ तालजङ्घा, ३३ रक्ताक्षी, ३४ सुप्रसिद्धा, ३५ विद्युज्जिह्वा, ३६ करङ्किणी, ३७ मेघनादा, ३८ प्रचण्डा, ३९ उग्रा, ४० कालकर्णी, ४१ वरप्रदा, ४२ चण्डा, ४३ चण्डवती, ४४ प्रपञ्चा, ४५ प्रलयान्तिका, ४६ शिशुमुखी, ४७ पिशाची, ४८ पिसितासवलोलुपा, ४९ धमनी, ५० तपनी, ५१ रागिणी, ५२ विकृतवदना, ५३ वायुवेगा, ५४ बृहत्कुक्षि, ५५ विकृता, ५६ विश्वरूपिका, ५७ यमजिह्वा, ५८ जयन्ती, ५९ दुर्जया, ६० जयन्तिका, ६१ विडाली, ६२ रेवती, ६३ पूतना, ६४ विजयान्तिका ।१-८।

अष्टहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः ।
भैरवश्चार्कहस्तः स्याद्दन्तुरास्यो[2] जटेन्दुभृत् ॥९

ये अष्टहस्ता, चतुर्हस्ता और इच्छा के अनुसार शस्त्रों को धारण करने वाली और सब सिद्धियों को देने वाली हैं । भैरव के बारह भुजायें होती हैं । उनके दाँत मुख से बाहर निकले हुए होते हैं और वे शिर पर जटा और चन्द्रमा को धारण किये रहते हैं ।९

[3]खट्वाङ्कशकठोरेषुविश्वाभयभृदेकतः ।
चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्धवरोद्यतः[4] ॥१०

---

१ क. वामनी । २ ख. ग. घ. स्यात् कूर्परा° ३ क. घ. खड्गाङ्कुश । ४ ङ् च ०र्धवरोद्यतः ।

गजचर्मधरो द्वाभ्यां कृत्तिवासोऽहिभूषितः ।
प्रेतासनो[1] मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोऽथवा ॥११

एक ओर के हाथों में खट्वा (एक अस्त्र) अङ्कुश, कुठार, वाण और अभय (मुद्रा) को धारण करते हैं तो दूसरी ओर के हाथों में धनुष, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाश और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं । इनके अवशिष्ट दो हाथों में गजचर्म रहता है और वह स्वयं गजचर्म पहने रहते हैं। शरीर पर साँप लपेटे रहते हैं अथवा भैरव की आकृति पञ्चमुखी होती है, वे मातृकाओं के बीच प्रेतासन पर विराजमान रहते हैं और सबसे पूज्य हैं ।१०-११।

अविलोमाग्निपर्यन्तं दीर्घाष्टकैकभेदितम् ।
तत्षडङ्गानि जात्यन्तैरन्वितं च क्रमाद्यजेत् ॥१२

पूर्व दिशा से लेकर अग्नि दिशा तक अविलोमक्रम से दीर्घाष्टक के एक-एक मन्त्र से जात्यन्त से युक्त उनके षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए ।१२

मन्दिराग्निदलारूढं[2] सुवर्णरसनान्वितम्[3] ।
नादविन्द्विन्दुसंयुक्तं मातृनाथाङ्गदीपितम् ॥१३

मन्दिर के अग्निदल पर आरूढ, स्वर्ग की करधनी पहने, नाद, बिन्दु और वालचन्द्रमा से संयुक्त तथा मातृनाथ की अङ्गशोभा से दीप्त भैरव की पूजा भलीभाँति होनी चाहिये ।१३

वीरभद्रो वृषारुढो मातृगः[4] स चतुर्भजः ।
गौरी तु द्विभुजा त्र्यक्षा शूलिनी दर्पणान्विता ॥१४

चतुर्भुज वीरभद्र मातृगणों के मध्य में बैल पर सवार रहते हैं । गौरी जी के दो भुजायें और तीन नेत्र होते हैं । वह एक हाथ में शूल और दूसरे में दर्पण लिए रहती हैं।१४

त्रिशूलकुण्डिकाकुण्डिवरहस्ता चतुर्भुजा ।
अब्जस्था ललिता स्कन्दगणादर्शशलाकया ॥१५

चार भुजा वाली ललिता के हाथों में त्रिशूल, गगरी, कमण्डलु और वरद मुद्रा रहती है । वह कमलासन पर विराजमान और स्कन्दगणों से सुशोभित रहती है ।१५

चण्डिकादशहस्ता स्यात्खड्गशूलारिशक्तिधृक् ।
दक्षे वामे नागपाशं चर्माङ्कुशकुठारकम् ॥१६

---

१ घ. ० ताशनो । २ मण्डलाग्निदलारूढमिति क्वचित् पुस्तके पाठः । ३ घ. °सकान्वि° ४ ग. घ. मात्रग्रे ।

धनु: सिंहे च महिष: शूलेन प्रहतोग्रत: ।।१७

चण्डिका के दश हाथ होते हैं, जिसमें दाहिने हाथों में नागपाश, चर्म, अंकुश, कुठार और धनुष रहते हैं। वह सिंह पर आरूढ होकर शूल से महिषासुर के ऊपर प्रहार करती हैं।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतु:षष्टियोगिनीप्रतिमा-लक्षणवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय: ।५२

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय:

लिङ्गादिलक्षणम्

श्रीभगवानुवाच—

लिङ्गादिलक्षणं वक्ष्ये कमलोद्भव तच्छृणु ।
दैर्घ्यार्धं वसुभिर्भक्त्वा त्यक्त्वा भागत्रयं तत: ।।१
विष्कम्भं भूतभागैस्तु चतुरस्रं तु कारयेत् ।
आयाममृतुभिर्भक्त्वा[1] एकद्वित्रिक्रमान्न्यसेत् ।।२

अये ब्रह्मन् ! अब मैं लिङ्गादि का लक्षण बतलाऊँगा, उसे सुनो। पहले एक चौकोर प्रस्तर-खण्ड को लेकर उसे लम्बाई से दो भागों में विभक्त कर देना चाहिये। उसमें से नीचे वाले भाग के आठ बराबर भाग कर देना चाहिये। इसके तीन भागों को छोड़कर शेष पाँच भागों में से चौकोर विष्कम्भ का निर्माण कराये। फिर लम्बाई के छः भाग करके उनको एक, दो और तीन के क्रम से अलग रखिये।१-२।

ब्रह्मविष्णुशिवांशेषु वर्धमानोऽयमुच्यते ।
चतुरस्रोऽस्य कर्णार्धं गुह्यकोणेषु लाञ्छयेत् ।।३
अष्टास्रो वैष्णवो भाग: सिद्धत्येव न संशय: ।
षोडशास्रं तत: कुर्याद्द्वात्रिंशास्त्र तत: पुन: ।।
चतु:षष्ट्यस्रकं कृत्वा वर्तुलं साधयेत्तत: ।
कर्तयेदथ लिङ्गस्य शिरो वै देशिकोत्तम: ।।५

---

१ ख- ङ च. °यामं मूर्तिभि°।

विस्तारमथलिङ्गस्य अष्टधा संविभाजयेत् ।
भागार्धार्धं तु संत्यज्य च्छत्राकारं शिरो भवेत् ॥६

इनमें से प्रथम भाग ब्रह्म भाग, दूसरा विष्णु भाग और (तीसरा) शिव भाग कहलाता है। यह शिव भाग शेष दो भागों की अपेक्षा बड़ा होता है। यह वर्धमान कहलाता है। विष्णु भाग को अष्टभुजा के रूप में बना लिया जाता है। तत्पश्चात् उसकी बत्तीस और चौंसठ भुजायें बनाकर गोलाकार बना लेना चाहिये। तदनन्तर शिल्पी को लिङ्ग का सिर काटना चाहिये और लिङ्ग के विस्तार को आठ भागों में विभक्त करके उसके सिर को छत्राकार बना लेना चाहिये ।३-६।

त्रिषु भागेषु सदृश आयामो यस्य विस्तरः ।
तद्विभागसमं लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ॥७

जिसकी लम्बाई-चौड़ाई तीन भागों में समान हो वह सम भाग वाला लिङ्ग सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला कहा जाता है ।७

दैर्घ्यस्य तु चतुर्थेन विष्कम्भं देवपूजिते ।
सर्वेषामेव लिङ्गानां लक्षणं शृण साम्प्रतम् ॥८

इस लिङ्ग का विष्कम्भ पूरी लिङ्ग की लम्बाई का चतुर्थांश होता है और देवोपासना में इसी प्रमाण को स्वीकार किया जाता है। अब मैं सभी लिङ्गों का सामान्य लक्षण बताऊँगा, उसे सुनो ।८

मध्यसूत्रं समासाद्य ब्रह्मरुद्रान्तिकं बुधः ।
षोडशाङ्गुललिङ्गस्य षड्भागैर्भाजितो यथा ॥९
तद्वैयमनसूत्राभ्यां मानमन्तरमुच्यते ।
यवाष्टमुत्तरे कार्यं शेषाणां यवहानितः ॥१०

बुद्धिमान् व्यक्ति को सोलह अङ्गुल लिङ्ग को छः भागों में इस प्रकार से विभक्त करना चाहिये कि मध्यसूत्र ब्रह्म और रुद्र भागों से होता हुआ जाये। इस प्रकार सूत्रों से बने हुए भागों में पहले दो भागों का विस्तार आठ यव होता है और उसके बाद प्रत्येक वर्ग अपने पूर्व वर्ग की अपेक्षा एक यव कम होता है।९-१०।

अर्चाभागं त्रिधा कृत्वा ह्यूर्ध्वमेकं परित्यजेत् ।
अष्टधा तद्द्वयं कृत्वा ऊर्ध्वं भागत्रयं त्यजेत् ।११

उसके ऊपर के भाग को छोड़कर नीचे के भाग को तीन भागों में विभक्त कर देना चाहिये और शेष दो भागों को आठ खण्डों में विभक्त करके ऊपर के तीन भागों को अलग कर देना चाहिये।११

ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्भागाद्भ्राम्यलेखां प्रलम्बयेत् ।
भागमेकं परित्यज्य संगमं कारयेत्तयोः ॥१२

पाँचवे भाग के ऊपर घूमती हुई एक लम्बी रेखा बनावे और एक भाग को छोड़ कर बीच में उन दो रेखाओं का संगम करावे।१२

एतत्साधारणं प्रोक्तं लिङ्गानां लक्षणं मया ।
सर्वसाधारणं वक्ष्ये पिण्डिकान्तं[1] निवोध मे ॥१३

यह मैंने लिङ्गों का साधारण लक्षण बताया है, अब मै पिण्डिकान्त के सम्बन्ध में साधारण रूप से बताऊँगा इसे भी समझिये।१३

ब्रह्मभागप्रवेशं च ज्ञात्वा लिङ्गस्य चोच्छ्रयम् ।
न्यसेद्ब्रह्मशिलां विद्वान् सम्यक्कर्म शिलोपरि ॥१४
तथा समुच्छ्रयं ज्ञात्वा पिण्डिकां प्रविभाजयेत् ।
द्विभागमुच्छ्रितं पीठं विस्तारे लिंगसम्मितम् ॥१५

ब्रह्म भाग में प्रवेश तथा लिङ्ग की ऊँचाई ज्ञात करके विद्वान् व्यक्ति को कर्मशिला के ऊपर ब्रह्मशिला को स्थापित करना चाहिये। पिण्डिका के विभिन्न भागों को उसकी ऊँचाई के अनुसार ही बनाना चाहिए। पीठ की ऊँचाई ऐसे दो भागों के बराबर होनी चाहिए और उसकी लम्बाई लिङ्ग की लम्बाई के अनुसार होनी चाहिए।१४-१५।

त्रिभागं मध्यतः खातं कृत्वा पीठं विभाजयेत् ।
स्वमानार्धत्रिभागेण बाहुल्यं परिकल्पयेत् ॥१६

पीठ के मध्य भाग में खात (गड्ढा) करके उसे तीन भागों में विभाजित करे। अपने मान के त्रिभाग से बाहुल्य की कल्पना करे।१६

वाहुल्यस्य त्रिभागेण मेखलामथ कल्पयेत् ।
खातं स्यान्मेखलातुल्यं क्रमान्निम्नं तु कारयेत् ॥१७

बाहुल्य के तृतीय भाग से मेखला बनावे और मेखला के ही तुल्य खात (गड्ढा) तैयार करे। उसे क्रमशः निम्न (नीचे झुका हुआ) रखे।१७

---

१ क. घ. °कान्तान्निबो० ।

मेखलाषोडशांशेन खातं वा तत्प्रमाणतः ।
उच्छ्रायं तस्य पीठस्य विकाराङ्गं तु कारयेत् ॥१८
भूमौ प्रविष्टमेकं तु भागेनैकेन पिण्डिका ।
कण्ठं भागैस्त्रिभिः कार्यं भागेनैकेन पट्टिका ॥१९
द्व्यंशेन चोर्ध्वपट्टं तु एकांशाः शेषपट्टिकाः ।१९½

मेखला के सोलहवें अंश से खात निर्माण करे और उसी के माप के अनुसार उस पीठ की ऊँचाई बनवाये । पीठ का एक भाग भूमि में रहेगा और एक भाग से पिण्डिका बनेगा । तीन भागों से कण्ठ और एक भाग से उसकी पट्टिका का निर्माण करना चाहिए । इसी प्रकार उसके दो अंशों से ऊर्ध्व पट्ट और एक एक अंश से शेष पट्टिकाओं का निर्माण करना चाहिये ।१८-१९½।

भागं भागं प्रविष्टं तु यावत्कण्ठं ततः पुनः ।२०
निर्गमं भागमेकं तु यावद्वै शेषपट्टिका ।
प्रणालस्य त्रिभागेण निर्गमस्तु त्रिभागतः ॥२१

प्रत्येक पट्ट इतना चौड़ा होना चाहिये जिससे क्रमशः कण्ठ तक पहुँचा जा सके । तत्पश्चात् पुनः एक भाग से निर्गम (जल निकालने का मार्ग) बनाया जाय । यह शेष पट्टिकों तक रहे । प्रणाल (नाली) के तृतीय भाग से निर्गम बनाना चाहिये ।२०-२१।

मूलेऽङ्गुल्यग्रविस्तारमग्रे त्र्यंशेन चार्धतः ।
ईषन्निम्नं तु कुर्वीत खातं तच्चोत्तरेण वै ॥२२
पिण्डिकासहितं लिङ्गमेतत्साधारणं स्मृतम् ॥२३

उसके आधार की चौड़ाई एक ओर और किनारे की चौड़ाई अङ्गुल का षष्ठांश होना चाहिए और उनका ढाल कुछ-कुछ नीचे की ओर होना चाहिए । यह पिण्डिका से युक्त साधारण लिङ्ग कहा जाता है ।२२-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लिङ्गादिलक्षणवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५३

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

लिङ्गमानव्यक्ताव्यक्तलक्षणादिकथनम्

श्री भगवानुवाच —

बक्ष्याम्यन्यप्रकारेण लिङ्गमानादिकं शृणु ।
वक्ष्ये लवणजं लिङ्गं घृतजं बुद्धिवर्धनम् ॥१
भूतये वस्त्रलिङ्गं तु लिङ्गं तात्कालिकं विदुः ।
पक्वापक्वं मृन्मयं स्यादपक्वात्पक्वजं परम् ॥२

श्री भगवान् बोले—अब मै लिङ्ग के मानादि के सम्बन्ध में अन्य प्रकार से कह रहा हूँ, उसे सुनो। नमक और घी का वना हुआ लिङ्ग बुद्धिवर्धक होता है तथा वस्त्र का बना हुआ लिङ्ग सम्पत्ति को बढ़ाने वाला हुआ करता है। ये लिङ्ग पूजा के लिये तत्काल वना लिए जाते हैं। मिट्टी के लिङ्ग दो प्रकार के होते हैं—पक्व और अपक्व। अपक्व की अपेक्षा पक्व लिङ्ग उत्तम होता है।१-२।

ततो दारुमयं पुण्यं दारुजाच्छैलजं वरम् ।
शैलाद्वरं तु मुक्ताजं ततो लौहं सुवर्णजम् ॥३

मिट्टी से बने हुए लिङ्ग की अपेक्षा काष्ठलिङ्ग अधिक पुण्यप्रद होता है। काष्ठलिङ्ग से प्रस्तरलिङ्ग, प्रस्तरलिङ्ग से मौक्तिकलिङ्ग और मौक्तिकलिङ्ग से लौहलिङ्ग अधिक श्रेष्ठ होता है। किन्तु स्वर्णलिङ्ग लौहलिङ्ग से भी अधिक फल देने वाला हुआ करता है।३

राजतं[1] कीर्तितं ताम्रं पैत्तलं भुक्तिमुक्तिदम् ।
रत्नजं[2] रसलिङ्गं च भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥४

चाँदी, ताँबा, पीतल, राँगा और रस (पारद) के बने हुए लिङ्ग श्रेष्ठ और भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हुआ करते हैं।४

रसजं [3]रजलोहादिरत्नगर्भं तु बन्धयेत् ।
मानादि[4] लौष्टे सिद्धादिस्थापितेऽथ स्वयंभुवि ॥५
वाणे[5] च स्वेच्छया तेषां पीठप्रासादकल्पना ।
पूजयेत्सूर्यविम्बस्थं दर्पणे [6]प्रतिविम्बितम् ॥६

१ क. ङ. च. तारज° । २ ख. ग. घ. रङ्गजं । ३ ख ग घ रसलो° । ४ ख. ग. घ मानादिनेष्टं । ५ ख. ग. घ. वामे । ङ. च. वाणवत्स्वेच्छया । ६ ख. ग. °तिचिह्नित° ।

इस (पारद) के लिङ्ग को राँगा, लोहा, (सुवर्ण, ताँबा) आदि के भीतर रत्नादि से जटित कर स्थापित करना चाहिये । सिद्ध आदि के द्वारा स्थापित हुए अथवा स्वयंभू लिङ्ग में मान का विचार नहीं है । यही बात बाण लिङ्ग (नर्मदेश्वर) के सम्बन्ध में भी है । शिवलिङ्गों के पीठ और प्रासाद की कल्पना इच्छानुसार कर लेनी चाहिये । सूर्य बिम्ब में स्थित लिङ्ग की पूजा दर्पण में प्रतिबिम्बित करनी चाहिए ।५-६।

पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिङ्गे पूर्णार्चनं भवेत् ।
हस्तोत्तरोच्छ्रितं[1] शैलं दारुजं तद्वदेव हि ।।७

वैसे तो शिव की पूजा सर्वत्र की जा सकती है, किन्तु लिङ्ग के रूप में शिवार्चन करने से पूजा पूर्ण मानी जाती है—पत्थर और काष्ठ का बना हुआ लिङ्ग एक हाथ ऊँचा होना चाहिये ।७

चलमङ्गुलमानेन द्वारगर्भकरैः स्थिरम्[2] ।
अङ्गुलाद्गृहलिङ्गं स्याद्यावत्पञ्चदशाङ्गुलम् ।।८

चलशिवलिङ्ग का स्वरूप अङ्गुलमान के अनुसार निर्मित करना चाहिये तथा स्थिर लिङ्ग का द्वारमान गर्भमान तथा हस्तमान से । गृह में स्थापित चललिङ्ग की ऊँचाई एक अङ्गुल से लेकर पन्द्रह अङ्गुल तक होनी चाहिए ।८

द्वारमानात्त्रिसंख्याकं[3] नवधागर्भमानतः ।
नवधागर्भमानेन लिङ्गं धाम्नि[4] च पूजयेत् ।।६

द्वारमान से लिङ्ग के तीन भेद हैं । इनमें से प्रत्येक के गर्भाधान के अनुसार नौ-नौ भेद हैं । इस प्रकार कुल सत्ताईस हुए । इसके अतिरिक्त करमान से नौ लिङ्ग और हैं । इनकी देवालय में पूजा करनी चाहिए ।६

एवं लिङ्गानि षट्त्रिंशज्ज्ञेयानि ज्येष्ठमानतः ।
मध्यमानेन षट्त्रिंशत्षट्त्रिंशदधमेन च ।।१०
इत्थमैक्येन लिङ्गानां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।
एकाङ्गुलादि पञ्चान्तं कनिष्ठं[5] चलमुच्यते ।।११

इस प्रकार सबको एक में जोड़ने पर छत्तीस लिङ्ग जानने चाहिये । ये ज्येष्ठमान के अनुसार हैं । मध्यममान से छत्तीस प्रकार और अधममान से छत्तीस प्रकार के लिङ्ग होने से सब मिलाकर एक सौ आठ प्रकार के लिङ्ग होते हैं । चललिङ्ग का प्रमाण एक अङ्गुल से लेकर पांच अङ्गुल तक होता है । यह सबसे छोटा प्रमाण है ।१०-११।

---

१ घ. हस्तोत्तरविघं° । २ ख. ग. घ. स्थितम् । ३ क. ङ. च. नाद्विसं° । ४ क. ङ. च. वार्ऽग्नि । ५ क. ख. ग. घ. ङ. च. कन्यसंवलमु° ।

षडादिदशपर्यन्तं चललिङ्गं च मध्यमम् ।
एकादशाङ्गुलादि स्याज्ज्येष्ठं पञ्चदशान्तिकम् ॥१२

छः अङ्गुल से दश अङ्गुल तक मध्यममान होता है। और ग्यारह अङ्गुल से पन्द्रह अङ्गुल तक का मान ज्येष्ठमान कहा जाता है।१२

षडङ्गुलं महारत्नै रत्नैरन्यैर्नवाङ्गुलम् ।
[1]रविभिर्हेमतारोत्थं लिङ्गं शेषैस्त्रिपञ्चभिः ॥१३

महारत्नों का बना हुआ लिङ्ग छः अङ्गुल का, अन्य रत्नों का बना हुआ लिङ्ग नौ अङ्गुल का, स्वर्णभार का वना हुआ लिङ्ग बारह अङ्गुल का तथा शेष वस्तुओं से बना हुआ लिङ्ग पन्द्रह अङ्गुल का होना चाहिए।१३

षोडशांशे च वेदांशे युगं लुप्तोर्ध्वदेशतः ।
द्वात्रिंशत्षोडशांशाश्च कोणयोस्तु विलोपयेत् ॥१४

लिङ्ग शिला के षोडशांश और चतुर्थांश में ऊपर से दो भाग करके दोनों कोणों के बत्तीस और सोलह अंशों में मिटा देना चाहिए।१४

चतुर्निवेशनात्कण्ठो विंशतिस्त्रियुगैस्तथा ।
पार्श्वभ्यां विलुप्ताभ्यां घनलिङ्गं भवेद्वरम् ॥१५
धाम्नो युगर्तुनागांशैर्द्वारिमानोनितं क्रमात् ।
लिङ्गं द्वारोच्छ्रयादर्वाग्भवेत्पादोनितं क्रमात् ॥१६

तत्पश्चात् उसमें चार भाग और जोड़ देने से 'कण्ठ' बनता है। दोनों पार्श्वों के बाहर अंशों को मिटा देने से ज्येष्ठ चललिङ्ग बन जाता है। प्रासाद की ऊँचाई को सोलह भागों में विभक्त करके उसमें चार, छः और आठ अंशों द्वारा क्रमशः हीन, मध्यम और उत्तम द्वार बन जाते हैं। द्वार की ऊँचाई की एक चौथाई कम कर देने से जो ऊँचाई शेष रहती है वही लिङ्ग की ऊँचाई होती है। १५-१६।

गर्भार्धेनाधमं लिङ्गं भूतांशैः स्यात्त्रिभिर्वरम् ।
तयोर्मध्ये सूत्राणि सप्त सम्पातयेत्समम् ॥१७

लिङ्ग शिला के गर्भ की आधी ऊँचाई का शिवलिङ्ग अधम और तीन भूतांशों की ऊँचाई का शिवलिङ्ग ज्येष्ठ माना जाता है। इन दोनों के बीच में सात स्थानों पर सूत्रों के द्वारा रेखायें बना देनी चाहिए।१७

एवं स्युर्नवसूत्राणि भूतसूत्रैश्च मध्यमम् ।
द्व्यन्तरो वामवा (भाग) श्च लिङ्गानां दीर्घता नव ॥१८

१ घ. °मभारो°।

हस्ताद्वि वर्धते हस्तो यावत्स्युर्नव पाणयः ।
हीनमध्योत्तमं लिङ्गं त्रिविधं त्रिविधात्मकम् ।।१९

इस प्रकार सूत्र के द्वारा बनी हुई रेखाओं की संख्या नौ हो जाती है । इन नौ सूत्रों में पाँच सूत्रों की ऊँचाई के बराबर शिवलिङ्ग मध्यम कहलाता है। लिङ्गों की लम्बाई क्रमशः दो-दो अंशों में अन्तर से होने के कारण लिङ्गों की सम्पूर्ण संख्या नौ होगी । नव लिगों का निर्माण यदि हाथों से नाप कर किया जाय तो पहला लिङ्ग एक हाथ का बनाकर उत्तरोतर लिङ्ग की लम्बाई (ऊँचाई) में एक-एक हाथ की वृद्धि करते हुए नवाँ लिङ्ग नौ हाथ की ऊँचाई का हो जाता है । पहले हीन, मध्यम और ज्येष्ठ भेद से तीन प्रकार जो लिङ्ग बताये गये हैं उनमें भी तीन-तीन भेद होते हैं ।१८-१९।

एकैकलिङ्गमध्येषु त्रीणि त्रीणि च पादशः ।
लिङ्गानि घटयेद्धीमान्षट्सु चाष्टोत्तरेषु च ।२०
स्थिरदीर्घप्रमाणैस्तु[1] द्वारगर्भकरात्मिका ।
भागेशं चाऽऽप्यमीशं च देवेशं तुल्यसंज्ञितम् ।।२१

बुद्धिमान् व्यक्ति को एक-एक लिङ्ग में विभागशः तीन-तीन लिङ्गों का निर्माण करना चाहिए । स्थिर लिङ्ग का निर्माण तीन परिमाणों का होता है जिन्हें क्रमशः द्वारमान, गर्भमान तथा हस्तमान कहना चाहिए । उपर्युक्त परिमाणों के आधार पर ही इन लिङ्गों के तीन नाम हैं भागेश, जलेश और देवेश ।२०-२१।

चत्वारि लिङ्गरूपाणि विष्कम्भेण तु लक्षयेत् ।
दीर्घमायान्वितं कृत्वा लिङ्गं कुर्यात्त्रिरूपकम् ।।२२

विस्तार के अनुसार लिङ्गों का लक्षण चार प्रकार का होता है। लिङ्ग को आय आदि से युक्त करके लम्बा और तीन रूपों में बनाना चाहिए ।२२

चतुरष्टाष्टवृत्तं च तत्त्वत्रयगुणात्मकम् ।
लिङ्गानामीप्सितं दैर्घ्यं तेन कृत्वाऽङ्गुलानि वै ।।२३
ध्वजाद्यायैः सुरैर्भूतैः शिखिभिर्वा हरेत्कृती[2] ।
त न्यङ्गुलानि यच्छेषं लक्षयेच्च शुभाशुभम् ।।२४

इन तीनों प्रकार के लिङ्गों की लम्बाई चार या आठ हाथ होनी चाहिए । यही लिङ्ग का तत्त्वत्रय रूप है । जो लिङ्ग जितने अङ्गुल ऊँचा होता है उन अङ्गुलों को आठ, सात, पाँच, और तीन संख्याओं से भाग देने पर जो शेष बचता है उसी के अनुसार शुभाशुभ फल माना जाता है ।२३-२४।

---

१ ख. घ. प्रमेयात्तु द्वा° । २ ख. घ. °त्कृतम् । ता० ।

ध्वजाद्या ध्वजसिंहेभवृषाः श्रेष्ठाः परेऽशुभाः ।
स्वरेषु षड्जगान्धारपञ्चमाः शुभदायकाः ॥२५

ध्वज आदि आयों में श्रेष्ठ-श्रेष्ठ आय हैं—ध्वज, सिंह, गज और वृषभ। अन्य चार आय अशुभ माने जाते हैं। स्वरों में षड्ज, गान्धार, और पञ्चम शुभ फल देने वाले हुआ करते हैं।२५

भूतेषु च शुभा भूः स्यादग्निश्चाऽऽहवनीयकः ।
उक्तायामस्य चार्धांशे नागांशैर्भाजिते क्रमात् ॥२६
रसभूतांशषष्ठांशत्र्यंशाधिकशरैर्भवेत् ॥
आद्यानाद्यसुरे[1] ज्यार्क तुल्यानां चतुरस्रता ॥२७

भूतों में पृथ्वी तथा अग्नि में आहवनीय शुभ मानी गई है। लिङ्ग की लम्बाई को आधा करके और उसे आठ से भाग देने पर सात, छः, पाँच और तीन से अधिक शेष रहने पर लिङ्ग क्रमशः आढ्य, देवेज्य, अनाढ्य और अर्क तुल्य माना जाता है। यह चारों प्रकार के लिङ्ग चौकोर होते हैं।२६-२७।

पञ्चमं वर्धमानाख्यं व्यासान्नाहप्रवृद्धितः ।
द्विधा भेदा बहून्यत्र वक्ष्यन्ते विश्वकर्मतः ॥२८

व्यास की अपेक्षा नाह दीर्घ होने के कारण पाँचवें प्रकार का लिङ्ग वर्धमान नाम से जाना जाता है। इन लिङ्गों के भी दो भेद होते हैं—एक तो वह जिसमें व्यास से नाह बड़ा होता है और दूसरा वह जिसमें नाह से व्यास बड़ा होता है। विश्वकर्मा के मतानुसार इसके बहुत से भेदों के सम्बन्ध में बताया जायगा।२८

आद्यादीनां[2] त्रिधा स्थौल्यादवधूतं[3] तथाऽष्टधा ।
त्रिधा हस्ताज्जिनाख्यं च युक्तं सर्वसमेन च ॥२९

आढ्य इत्यादि लिङ्गों के स्थूलत्व के कारण तीन भेद और हो जाते हैं। इन तीनों भेदों में से एक यव की वृद्धि से सब लिङ्ग आठ प्रकार के हो जाते हैं। तदनन्तर हस्तमान से बने 'जिन' संज्ञक लिङ्ग के भी तीन भेद हो जाते हैं उसे सर्वसमलिङ्ग से युक्त कर देना चाहिए।२९

पञ्चविंशतिलिङ्गानि नाढ्ये देवार्चिते तथा ।
पञ्चसप्तभिरेकत्वाज्जिनैर्भक्तैर्भवन्ति हि ।३०

अनाढ्य तथा देवार्चित लिङ्गों के पचीस भेद हो जाते हैं। ये सभी एक एक, जिन और भक्त दोनों से पचहत्तर प्रकारों के हो जाते हैं।३०

१ घ. आढ्यानाढ्यसु॰। २ घ. आढयादीनां। ३ ख. ल्यादाद्यवृद्ध्या त॰।

चतुर्दशसहस्राणि चतुर्दशशतानि च ।
एवमष्टाङ्गुलविस्तारो नवैककरगर्भतः ।।३१

इन सब भेदों को मिलाकर शिवलिङ्ग के कुल पन्द्रह हजार चार सौ (१५४००) हो जाते हैं। इसी प्रकार आठ अङ्गुल का लिङ्ग भी एकाङ्गुल मान, हस्तमान और गर्भमान के अनुसार नौ भेदों से युक्त है।३१

तेषां कोणार्धकोणस्थैश्छिन्द्यात्कोणानि सूत्रकैः ।
विस्तारं मध्यतः कृत्वा स्थाप्यं वा मध्यतस्त्रयम् ।।३२

इनके कोणों का छेदन कोणस्थ और अर्धकोणस्थ सूत्रों के द्वारा करना चाहिए। लिङ्ग के मध्य भाग के विस्तार को ही प्रमाण मानकर उसके अनुसार ऊर्ध्व और निम्न भागों की स्थापना करनी चाहिए। ३२

विभागादूर्ध्वमष्टास्रो द्व्यष्टास्रः स्याच्छिवांशकः ।
पादाज्जान्वन्तको ब्रह्मा नाभ्यन्तो विष्णुरित्यतः ।।३३

मध्यम भाग से ऊपर अष्टकोण तथा षोडश कोण वाला विभाग शिवांश कहलाता है। लिङ्ग का पाद से लेकर जानु पर्यन्त जो भाग होता है वह ब्रह्मा का अंश माना जाता है तथा जानु से नाभि पर्यन्त जो भाग होता है उसे विष्णु का अंश माना जाता है। ३३

मूर्धान्तो भूतभागेशो व्यक्तेऽव्यक्ते च तद्भवति ।
पञ्चलिङ्गव्यवस्थायां शिरो वर्तुलमुच्यते ।।३४

लिङ्ग का मूर्धान्त भूतभागेश्वर का होता है। यह बात व्यक्त और अव्यक्त सभी लिङ्गों में सम्बन्धित है। पञ्चलिङ्ग व्यवस्था से युक्त शिवलिङ्ग का शिर वर्तुलाकार कहा गया है।३४

छत्राभं कुक्कुटाभं वा[1] वालेन्दुपुरुषाकृति ।:
एकैकस्य चतुर्भेदैः कामभेदात्फलं वदे ।।३५

वह वर्तुल (गोलाई) छत्राकार, कुक्कुट (के अण्डे) के आकार वाला चन्द्राकार और पुरुषाकार हो सकता है। इस प्रकार एक-एक के चार-चार भेद हो जाते हैं। कामनाओं के भेद के अनुसार उनके फलों को बताया जा रहा है।३५

लिङ्गमस्तकविस्तारं वसुभक्तं तु कारयेत् ।
अद्यभागं चतुर्धा तु विस्तारोच्छ्रायतो भजेत् ।।३६

१ घ. °न्दुप्रतिमाकृ° । च. °न्दुत्रपुषां° ।

लिङ्ग के मस्तक के विस्तार को आठ भाग में करना चाहिए। इनमें से प्रथम भाग को विस्तार की ऊँचाई से चार भाग में विभक्त कर देना चाहिए।३६

चत्वारि तत्र सूत्राणि भागभागानुपातनात्।
पुण्डरीकं तु भागेन विशालाख्यं विलोपनात् ॥३७
त्रिशातनात्तु श्रीवत्सं शत्रुकृद्वेदलोपनात्।
शिरःसर्वसमे श्रेष्ठं कुक्कुटाभं सुराह्वये ॥३८

उसमें प्रत्येक भाग में अनुपात से चार भाग हो जाते हैं। एक भाग को अलग कर देने से जो लिङ्ग बनता है, उसे 'पुण्डरीक' कहते हैं। दो भागों के लोप से बना लिङ्ग 'विशाल, तीन भागों का उच्छेद कर देने पर 'श्रीवत्स' संज्ञक लिङ्ग तथा चार भागों के लोप से बना हुआ लिङ्ग 'शत्रुकृत' कहा जाता है। सभी ओर से समशिर श्रेष्ठ होता है और सुर नामक लिङ्ग में वह कुक्कुट (के अण्डे) के समान होता है।३७-३८।

चतुर्भागात्मके लिङ्गे त्रपुषं द्वयलोपनात्।
अनाद्यस्य शिरः प्रोक्तमर्धचन्द्रं शिरः शृणु ॥३९

चार भागों से युक्त लिङ्ग में दो भागों का लोप कर देने से 'त्रपुष' नामक लिङ्ग बन जाता है। इसे अनाद्य नामक शिवलिङ्ग का शिर कहा जाता है। अब अर्धचन्द्र नामक शिर के सम्बन्ध में सुनिये।३९

अंशात्प्रान्ते युगांशैश्च द्वैकहान्याऽमृताक्षकम्।
पूर्णबालेन्दुकुमुदं द्वित्रिवेदक्षयात्क्रमात् ॥४०

शिवलिङ्ग के प्रान्त भाग में चार अंशों में से एक भाग को हटा देने से लिङ्ग का नाम अमृताक्ष पड़ जाता है। दो, तीन तथा चार अंशों के लोप से बनने वाले लिङ्गों के नाम हैं—पूर्णेन्दु, बालेन्दु और कुमुद।४०

चतुस्त्रिरेखं वदनं मुखलिङ्गमतः शृणु।
पूजाभागः प्रकर्त्तव्यो मूर्त्यग्निपदकल्पितः ॥४१

यह क्रमशः चतुर्मुख, त्रिमुख और द्विमुख होते हैं। अब मुखलिङ्ग के सम्बन्ध में बताया जा रहा है उसे सुनो। पूजा भाग की कल्पना तीन प्रकार से करनी चाहिए —मूर्तिपूजा, अग्निपूजा और पदपूजा।४१

अर्कांशं पूर्ववत्त्यक्त्वा षट्स्थानानि च वर्तयेत्।
शिरोन्नतिः प्रकर्तव्या ललाटं नासिका ततः ॥४२

पहले के समान द्वादशांश का परित्याग करके छः भागों के द्वारा छः स्थानों की अभिव्यक्ति करनी चाहिए। सर्वप्रथम शिरोन्नति करनी चाहिए और उसके बाद ललाट और नासिका को उठाना चाहिए।४२

वदनं चिबुकं ग्रीवा युगभागैर्भुजाक्षिभिः।
कराभ्यां मुकुलीकृत्य प्रतिमायाः प्रमाणतः ॥४३
मुखं प्रति समः कार्यो विस्तारादष्टमांसतः।
चतुर्युगं मया प्रोक्तं त्रिमुखं चोच्यते शृणु ॥४४

इसी प्रकार मुख, चिबुक और ग्रीवा को भी स्पष्ट करना चाहिए। दो भागों द्वारा दोनों भुजाओं तथा नेत्रों के साथ प्रतिमा के प्रमाणानुसार मुकुलाकार हाथों का निर्माण करके विस्तार के अष्टमांश से चारों मुखों को बनाना चाहिए। ये मुख सभी ओर से समान होते हैं। इस प्रकार चार मुख वाले लिङ्ग के सम्बन्ध में बताया गया है। अब त्रिमुख लिङ्ग के सम्बन्ध में बताया जा रहा है, इसे भी सुनिये।४३-४४।

कर्णपादाधिकास्तस्य ललाटादीनि निर्दिशेत्।
भुजौ चतुर्भिर्भागैस्तु कर्तव्यौ पश्चिमोर्जितौ ॥४५
विस्तारादष्टमांशेन मुखानां प्रतिनिर्गमः।
एकवक्त्रं तथा कार्यं पूर्वास्यं[1] सौम्यलोचनम् ॥४६

त्रिमुख लिङ्ग में चतुर्मुख लिङ्ग की अपेक्षा कान और पेट बड़े होते हैं, किन्तु ललाट इत्यादि पूर्ववत् ही रहते हैं। चार अंशों में से दो भुजाओं का निर्माण करना चाहिए जिनका पिछला भाग परिपुष्टि हो। मुखों का निर्गम लिङ्ग के विस्तार के अष्टमांश से होना चाहिए। इसी प्रकार एक मुख वाले लिङ्ग का निर्माण भी करना चाहिए जिसमें मुख पूर्व की ओर हो और जिसके नेत्र अत्यन्त सौम्य हों।४५-४६।

ललाटनासिकावक्त्रग्रीवायां च विवर्तयेत्।
भुजाच्च पञ्चमांशेन भुजहीनं विवर्तयेत् ॥४७

इस लिङ्ग के ललाट, नासिका, मुख और ग्रीवा में उभार होना चाहिए। इन भागों को मुद्रा के पञ्चमांश से बनाना चाहिए, किन्तु इसे भुजाओं से हीन ही रखना चाहिए।४७

विस्तारस्य षडंशेन मुखैर्निर्गमनं हितम्।
सर्वेषां मुखलिङ्गानां त्रपुषं वाऽथ कुक्कुटम् ॥४८

---
१ घ. पूर्वस्यां।

इसमें विस्तार के षडंश से मुख का निर्माण करना चाहिए। इन सभी लिङ्गों का मुख त्रपुष के आकार का अथवा कुक्कुट (के अण्डे) के आकार का हुआ करता है। ४८

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लिङ्गमानव्यक्ताव्यक्तलक्षणादिकथनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः। ५४

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पिण्डिकालक्षणम्

श्रीभगवानुवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमानां तु पिण्डिकाम्।
दैर्घ्येण प्रतिमा तुल्या तदर्धेन तु विस्तृता॥१

श्री भगवान् बोले—इसके अनन्तर मैं प्रतिमा की पिण्डिका (पीठ) के सम्बन्ध में बताऊँगा। पीठिका, लम्बाई में प्रतिमा के बराबर होनी चाहिये परन्तु चौड़ाई उसकी आधी होनी चाहिये। १

उच्छ्रिताऽऽयामतोऽर्धेन सुविस्ताराऽर्धभागतः।
तृतीयेन तु वा तुल्यां तत्त्रिभागेन मेखलाम्॥२

ऊँचाई और लम्बाई के आधे से और चौड़ाई के आधे से अथवा तिहाई के बराबर पीठिका और उसकी तिहाई के बराबर मेखला बनानी चाहिए। २

खातं च तत्प्रमाणं तु किञ्चिदुत्तरतो नतम्।
विस्तारस्य चतुर्थेन तोयमार्गं तु कारयेत्॥३

उसी परिमाण के बराबर प्रतिमा से उत्तर की ओर एक गड्ढा खोदना चाहिए जो आगे की ओर कुछ झुका हुआ रहे। उसके विस्तार के चौथाई भाग से जल के निकलने का मार्ग (प्रणाल) बनाना चाहिए। ३

पिण्डिकार्धेन वा तुल्यं दैर्घ्यमीशस्य[1] कीर्तितम्।
ऐशं[2] वा तुल्यदीर्घं च ज्ञात्वा सूत्रं[3] प्रकल्पयेत्॥४

मूलभाग में उसका विस्तार पूर्व के ही बराबर हो, परन्तु आगे चलकर वह आधा हो जाय। पिण्डिका के विस्तार के एक तिहाई भाग के बराबर वह

१ ख. °र्घ्यंकुश° । ङ. च. °र्घ्यंदेश° । २ ख. ङ. च. कुशं । ३ ङ. च. पुत्र° ।

जलमार्ग हो। पिण्डिका के परिमाण के बराबर प्रतिमा की लम्बाई होनी चाहिए। उसी के बराबर ईश की प्रतिमा का परिमाण जानकर सूत्र को बनाना चाहिये।४

([1]उच्छ्रायं पूर्ववत्कुर्याद्भागषोडशसंख्यया।
अधः षट्कं द्विभागं तु कण्ठे[2] कुर्यात्त्रिभागकम्॥५
शेषास्त्वेकैकशः कार्याः प्रतिष्ठा निर्गमस्तथा।
पट्टिका पिण्डिका चेयं सामान्यप्रतिमासु च॥६

सोलह भाग की संख्या के बराबर ऊँचाई अधोभाग बारह के बराबर और तीन भाग के बराबर कण्ठ बनाना चाहिये। प्रतिष्ठा निर्गम और पट्टिका एक-एक भाग के बराबर बनाना उत्तम होता है। यह सामान्य प्रतिमाओं में पिण्डिका का लक्षण बनाया गया है।५-६।

प्रासादद्वारमानेन [3]प्रतिमाद्वारमुच्यते।
गजव्यालकसंयुक्ता प्रभास्यात्प्रतिमासु च॥७

प्रासाद द्वार के मान के बराबर प्रतिमा का द्वार होता है। प्रतिमा के चारों ओर हाथी और व्याल से युक्त प्रभामण्डल अवश्य रहना चाहिये।७।

पिण्डिकाऽपि यथाशोभं कर्तव्या सततं हरेः।)
सर्वेषामेव देवानां विष्णूक्तं मानमुच्यते॥८
देवीनामपि सर्वासां लक्ष्म्युक्तं मानमुच्यते॥९

विष्णु की पिण्डिका भी सुशोभित होनी चाहिए। सब देवों की प्रतिमा के लिए विष्णु की प्रतिमा का परिमाण और सब देवियों की प्रतिमा के लिए लक्ष्मी की प्रतिमा का परिमाण उपयुक्त होता है।८-९

इत्यादि महापुराणआग्नेये पिण्डिकालक्षणवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।५५

---

१ उच्छ्रा...सततं हरेः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति। २. घ. कण्ठं। ३ ङ. च. °मा द्रव्यगु°।

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दशदिक्पालयागकथनम्

श्रीभगवानुवाच

प्रतिष्ठापञ्चकं वक्ष्ये प्रतिमात्मा तु पूरुषः ।
प्रकृतिः पिण्डिका लक्ष्मीः प्रतिष्ठा योगकस्तयोः ॥

श्रीभगवान् बोले —अब मैं प्रतिष्ठा के पाँच अङ्गों (मण्डप-निर्माण, तोरण-स्तम्भ, कलशध्वजस्थापन, दशदिक्पालपूजन) के विषय में बतला रहा हूँ। पुरुष प्रतिमा की आत्मा है, पिण्डिका प्रकृति या लक्ष्मी है। प्रतिष्ठा, प्रकृति और पुरुष को संयुक्त करती है।१

इच्छाफलार्थिभिस्तस्मात्प्रतिष्ठा क्रियते नरैः ।
गर्भसूत्रं तु निःसार्य प्रासादस्याग्रतो गुरुः ॥२
अष्टषोडशविंशान्तं मण्डपं[1] चाधमादिकम् ।
स्नानार्थं[2] कलशार्थं च यागद्रव्यार्थमर्धतः ॥३

इसलिए अपने मनोरथ को पूर्ण करने की इच्छा से मनुष्य अवश्य प्रतिमा की प्रतिष्ठा करते हैं। गुरु को प्रासाद के आगे गर्भ-सूत्र को निकाल कर आठ, सोलह, या बीस हाथ लम्बा मण्डप बनाना चाहिये। ये तीन प्रकार के मण्डप अधम, मध्यम तथा उत्तम कोटि के कहे जाते हैं। मण्डप के आधे भाग में यज्ञीय द्रव्य और स्नान के लिए कलश रखना चाहिये।२-३।

त्रिभागेणार्धभागेन वेदिं कुर्यात्तु शोभनाम् ।
कलशैर्घटिकाभिश्च वितानाद्यैर्विभूषयेत् ॥४

मण्डप के तीसरे या आधे भाग में उत्तम वेदी बनानी चाहिए। वेदी को कलश, छोटी-छोटी घण्टियों और वितानों से सुसज्जित करना चाहिए।४

पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य सर्वद्रव्याणि धारयेत् ।
अलङ्कृतो गुरुर्विष्णुं ध्यात्वा तं च प्रपूजयेत् ॥५

सब यज्ञ सामग्रियों को पञ्चगव्य छिड़क कर पवित्र कर देना चाहिए। आचार्य को नवीन वस्त्र पहनकर विष्णु का ध्यान और उनका विधिवत् पूजन करना चाहिए।५

---

१ ख. म. मण्डलं। २ च. °र्थयागद्रव्यार्थमर्थतः कलशाय च। त्रि°

अङ्गुलीयप्रभृतिभिर्मूर्तिपान्प्रार्थनादिभिः ।
कुण्डे कुण्डे स्थापयेच्च मूर्तिपांस्तत्र पारगान् ॥६
चतुष्कोणे चार्धकोणे वर्तुले पद्मसंनिभे ।
पूर्वादौ तोरणार्थं तु पिप्पलोदुम्बरौ वटः ॥७

प्रत्येक-यज्ञ कुण्ड के निकट अँगूठी, नवीन वस्त्र और मंत्रों के द्वारा विद्वान् को चारों कोणों पर, अर्ध कोण पर, तथा प्रत्येक दिशा में वृत्ताकार या पद्माकार कुण्डों के ऊपर मूर्तिपालक विद्वानों की पूजा करके उन्हें बैठाना चाहिए। तोरण के लिए पिप्पल, गूलर, वट और पाकड़ के पत्तों का प्रयोग उत्तम माना गया है ।६-७।

प्लक्षः सुशोभनं पूर्वं सुभद्रं[1] दक्षतोरणम् ।
सुकर्माणं सुहोत्रं च आप्ये सौम्ये समुच्छ्रयम् ॥८
पञ्चहस्तं तु संस्थाप्य स्योना पृथिवीति पूजयेत् ।
तोरणस्तम्भमूले तु कलशान्मङ्गलान्कुरु[2] ॥९

पूर्व दिशा का द्वार 'सुशोभन' दक्षिण दिशा का 'सुभद्र' पश्चिम का "सुकर्मा' और उत्तर का द्वार 'सुहोत्र' नाम से प्रसिद्ध है। ये सभी तोरण-स्तम्भ पाँच हाथ लम्बे होने चाहिए। इनकी स्थापना करके 'स्योनापृथिवी' आदि मंत्र से पूजन करना चाहिए। तोरणस्तम्भ के मूल में मांगलिक कलश (आम्र पल्लव यवाङ्कुर आदि से युक्त) की स्थापना करनी चाहिए ।८-९।

प्रदद्यादुपरिष्टाच्च कुर्याच्चक्रं सुदर्शनम् ।
पञ्चहस्तप्रमाणस्तु ध्वजः कार्यो विचक्षणैः ॥१०

इन मङ्गल कलशों के ऊपर सुदर्शन-चक्रों का निर्माण करना चाहिये। विद्वान् आचार्य वहाँ पर पाँच हाथ ऊँचा एक ध्वज भी गाड़ दे ।१०

वैपुल्यं[3] चास्य कुर्वीत षोडशाङ्गुलसंमितम् ।
सप्तहस्तोच्छ्रितं चास्य कुर्याद्दण्डं[4] सुरोत्तम ॥११

अये सुरोत्तम ! ध्वज की लम्बाई सोलह अंगुल की और डण्डे की ऊँचाई सात हाथ की होनी चाहिये ।११

१ क. ङ. च. सुवर्णं । २ क. °लाङ्कुरान् । प्र° । ३ ख. नैपुण्यं चास्य ।
४ क. ख. घ. ङ. च °र्यात्कुण्डं ।

अरुणोऽग्निनिभश्चैव कृष्णः शुक्लोऽथ पीतकः ।
रक्तवर्णस्तथा [1]श्वेतश्चैते वर्णाः क्रमाद्ध्वजे ॥१२
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ।
शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥१३
पूज्या कोटिगणैर्युक्ताः पूर्वाद्या ध्वजदेवताः ।

पूर्वादि दिशाओं में ध्वजाओं का वर्ण क्रमशः अरुण, अग्नि के समान, काला, शुक्ल, पीत रक्त, श्वेतवर्ण होना चाहिए । इनमें कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित कोटिगुणों से युक्त इन ध्वज-देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।१२-१३।

जलाढकसुपूरास्तु पक्वविम्वोपमाघटाः ॥१४
अष्टाविंशाधिकशतं कालदण्डेन[2] वर्जिताः ।
सहिरण्या वस्त्रकण्ठाः सोदकास्तोरणाद्बहिः ॥१५

पके हुए बिम्बफल के समान रक्तवर्ण के कलश जिनकी संख्या एक सौ अट्ठाइस (१२८) हो, वे एक-एक आढक जल से पूर्णतः भरे हों । 'कालदण्ड' नामक योग से रहित समय में इनकी स्थापना करनी चाहिये । सभी कलशों में सुवर्ण डालकर वस्त्र से कण्ठ तक ढककर जलपूर्ण कलश तोरण से बाहर स्थापित करने चाहिए ।१४-१५।

घटाः स्थाप्याश्च पूर्वादौ वेदिकायाश्च कोणगाः[3] ।
चतुरः स्थापयेत्कुम्भानाजिघ्रेति समन्ततः ॥१६

वेदी के पूर्व आदि दिशाओं तथा कोणों में भी कलश स्थापित करने चाहिए । चारों ओर चार कलशों को 'आजिघ्रकलशम्' इत्यादि मन्त्र से स्थापित करे ।१६

कुम्भेष्वावाह्य शक्रादीन्पूर्वादौ पूजयेत्क्रमात् ।
इन्द्राऽऽवागच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित ॥१७
पूर्वद्वारं च मे रक्ष देवैः सह नमोऽस्तुते ।
[4]त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अर्चयित्वा यजेद्बुधः ॥१८

---

१ घ. श्वेतः श्वेत °वर्णादिकक्रमात् । कु° । २ घ. °लमण्डनवार्जिताः । ३ घ. ङ. कोणगान् । ४ त्रातारमिन्द्र....यजेन्द् बुधः च. पुस्तके नास्ति ।

पूर्व आदि दिशाओं में उन कलशों पर क्रमशः इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन करके क्रमशः उनकी पूजा करे। हे ऐरावत ! हाथी पर विराजमान इन्द्र ! देवराज ! वज्रहस्त ! आइये। इस पूर्व द्वार में देवों के सहित स्थित होकर मेरी रक्षा कीजिए, आपको नमस्कार है। इस प्रकार विद्वान् व्यक्ति रक्षक इन्द्र की 'त्रातारमिन्द्र' इत्यादिक मन्त्र से पूजा करे।१७-१८।

आगच्छाग्ने शक्तिहस्त छागस्थ बलसंयुतः।
रक्षाऽऽग्नेयी दिशः देवैस्त्वं समरुद्भिनमोऽस्तुते ।।१९

शक्तिहस्त, छागवाहन, बलशाली, हे आग्ने ! आप आग्नेय दिशा की रक्षा करें, मेरी इस पूजा को स्वीकार करें, आपको नमस्कार है।१९

अग्निर्मूर्धेति[1] मन्त्रेण यजेद्वा अग्नये नमः।
महिषस्थ यमाऽऽगच्छ दण्डहस्त महाबल ।।२०
रक्षस्व दक्षिणं द्वारं वैवस्वत नमोऽस्तुते।
वैवस्वतं संगमनमित्यनेन यजेद्यमम् ।।२१

'अग्निर्मूर्धादिव' इत्यादि मन्त्र से अथवा 'अग्नये नमः' आदि मन्त्र से अग्नि की पूजा करे। हे महिषस्थ ! दण्डहस्त, महाबल, सूर्यपुत्र, यम, आप दक्षिण दिशा की रक्षा कीजिये, आपको नमस्कार है। यम का आवाहन कर "वैवस्वतं संगमन" इत्यादि मन्त्र से उनकी पूजा करे।२०-२१।

नैर्ऋताऽऽगच्छ खड्गाढ्य बलवाहनसंयुत।
इदमर्घ्यमिदं पाद्यं रक्षत्वं नैर्ऋतीं दिशम् ।।२२

हे नैर्ऋत, खड्गहस्त, बलवाहनसंयुत, आपको यह पाद्य और अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ। आप नैर्ऋत दिशा में मेरी रक्षा करें।२२

एष ते नैर्ऋतेत्यादि[2] यजेदर्घ्यादिभिर्नरः।
मकरारूढ वरुण पाशहस्त महाबल ।।२३
आगच्छ पश्चिमं द्वारं रक्ष रक्ष नमोऽस्तु ते।
उरुं हि राजा वरुण यजेदर्घ्यादिभिर्गुरुः ।।२४

इस प्रकार आवाहन करके 'एष ते नैर्ऋत' इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य आदि दें। हे महाबल, मकरारूढ, पाशहस्त, वरुण ! आइये, पश्चिम द्वार की रक्षा करें। 'आपको नमस्कार है'-इस मन्त्र से आवाहन करके 'उरुं हि राजा वरुण' इत्यादि मन्त्र से आचार्य को वरुण की अर्घ्यादि से पूजा करनी चाहिए।२३-२४

---

१ ख. ० तिअर्घ्याद्यैर्यजे० । २क. ख. घ. ऋतमन्त्रेण य०।

आगच्छ वायो सबल ध्वजहस्तसवाहन ।
वायव्यं रक्ष देवैस्त्वं समरुद्भिर्नमोऽस्तु ते ॥२५
वात इत्यादिभिश्चार्चेदों नमो वायवेऽपि वा ॥२५$\frac{1}{2}$

हे वायु, सबल, ध्वजहस्त, वाहनयुक्त आप मरुत आदि देवों के साथ आइये और वायव्य दिशा में मेरी रक्षा करें । इस मन्त्र से आवाहन करके 'ॐ नमो वायवे' इत्यादि मन्त्र से या 'वात' इत्यादि मन्त्र से वायु की पूजा करे ।२५-२५$\frac{1}{2}$।

आगच्छ सोम सबल गदाहस्त सवाहन ॥२६
रक्षत्वमुत्तरं द्वारं सकुबेर नमोऽस्तु ते ।
सोमं राजानमिति वा यजेत्सोमाय वै नमः ॥२७

हे सोम, सबल, गदाहस्त ! वाहनयुक्त आप कुबेर सहित उत्तर दिशा में हमारी रक्षा करें । आपको नमस्कार है । 'सोमाय नमः' इस मन्त्र से या 'सोमं राजानम्' इत्यादि मन्त्र से सोम की पूजा करे ।२६-२७।

आगच्छेशान सबल शूलहस्त वृषस्थित ।
यज्ञमण्डपस्यैशानीं दिशं रक्ष नमोऽस्तु ते ॥२८
ईशानमस्येति यजेदीशानाय नमोऽपि वा ।२८-२८$\frac{1}{2}$।

हे ईशान, वृषस्थित, शूलहस्त, सबल, आपको नमस्कार है । आप यज्ञ मण्डप के ईशान कोण में हमारी रक्षा करें, इस मन्त्र से आवाहन करके 'ईशान मस्य' इत्यादि मन्त्र से ईशान की पूजा करे । २८$\frac{1}{2}$

([1]ब्रह्मन्नागच्छ हंसस्थ स्रुक्स्रुवव्यग्रहस्तक ॥२९
सलोकोर्ध्वां दिशं रक्ष यज्ञस्याज नमोऽस्तु ते ।
हिरण्यगर्भेतियजेन्नमस्ते ब्रह्मणेऽपि वा)॥३०

ब्रह्मा का आवाहन 'हे ब्रह्मन् ! हंसस्थ ! स्रुक् और स्रुव को अपने हाथ में धारण करने वाले अज! आपको नमस्कार है । आप इस यज्ञ की रक्षा करें'—इस मन्त्र से आवाहन करके 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि अथवा 'नमस्ते ब्रह्मणे' इत्यादि मन्त्र से ब्रह्मा की पूजा करे ।२९-३०।

अनन्तागच्छ चक्राढ्य कूर्मस्था हि गणेश्वर ।
अधोदिशं रक्ष रक्ष अनन्तेश नमोऽस्तु ते ॥३१
नमोऽस्तु सर्पेति यजेदनन्ताय नमोऽपि वा ॥३२

१ ब्रह्मन्नागच्छ...........ब्रह्मणेऽपि वा ङ. च. पुस्तकयोर्नास्ति ।

हे अनन्त, कूर्मस्थ, अहिगणों के ईश्वर, चक्राढ्य, अनन्तेश ! आपको नमस्कार है। अधो दिशा की आप रक्षा करें—इस मन्त्र से आवाहन करके 'नमोऽस्तु सर्वेभ्यो' अथवा 'अनन्ताय नमः' इत्यादि मन्त्र से अनन्त देव की पूजा करे।३१-३२।

इत्यादि महापुराण आग्नेये दशदिक्पालयागकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।५६

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कलशाधिवासविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच—

भूमेः परिग्रहं कुर्यात्क्षिपेद्व्रीहींश्च सर्षपान् ।
नारसिंहेन रक्षोघ्नान्प्रोक्षयेत्पञ्चगव्यतः ॥१

श्रीभगवान् बोले—भूमि का संस्कार करके रक्षोघ्न व्रीहि तथा सरसों को नारसिंह मन्त्र पढ़कर चारों ओर छीटे और पञ्चगव्य को सब पूजन सामग्रियों के ऊपर छिड़के।१

भूमिं घटे तु सम्पूज्य[1] सरत्ने साङ्गकं हरिम् ।
अस्त्रमन्त्रेण करकं तत्र चाष्टशतं यजेत् ॥२

रत्न के साथ घट पर भूमि और हरि की अङ्ग-देवताओं के साथ पूजा करके अस्त्र-मन्त्र से एक सौ आठ करकों की पूजा करे।२

अच्छिन्नधारया सिञ्चन्व्रीहीन्संस्कृत्य[2] धारयेत् ।
प्रदक्षिणं परिभ्राम्य कलशं विकिरोपरि ॥३

व्रीहि (धान्य) को निरन्तर जलधार से सींचकर या धोकर एक ओर रख ले। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके धान्य को पृथ्वी पर बिखेरकर उस पर कलश को रखे।३

सवस्त्रे कलशे भूयः पूजयेदच्युतं श्रियम् ।
योगे योगेति मन्त्रेण न्यसेच्छय्यां तु मण्डले ॥४

---

१ ख. संग्राह्य। २ ख. °न्संत्यज्य धा°। ङ. च. °न्संहृत्य धा°।

कलश पर वस्त्र लपेट कर उस पर अच्युत और श्री की पूजा करे। "योगे योगे" इत्यादि मन्त्र से मण्डल में शय्या लगाकर रखे।४

कुशोपरि तूलिकां च शय्यायां दिग्विदिक्षु च।
विद्याधिपान्यजेद्विष्णुं मधुघातं त्रिविक्रमम् ॥५
वामनं दिक्षु वह्न्यादौ[1] श्रीधरं च हृषीकेशम्।
पद्मनाभं दामोदरमैशान्यां स्नानमण्डपे ॥६
अभ्यर्च्य पश्चादैशान्यां चतुष्कुम्भे सवेदिके।
स्नानमण्डपके सर्वद्रव्याण्यानीय निक्षिपेत् ॥७

कुश के ऊपर रूई रखकर शय्या पर प्रत्येक दिशाओं और कोणों में विद्याधीशों की मधूसूदन, त्रिविक्रम, हरि और वामन की चारों दिशाओं में पूजा करे। वह्नि आदि कोण में श्रीवर, हृषीकेश, पद्म और दामोदर का अर्चन करे। तदनन्तर ईशान कोणों में वेदी पर चतुष्कुम्भ रखकर और उसकी पूजा करके स्नानमण्डप में लाई हुई सब प्रकार की सामग्रियों को उन कलशों में छोड़ दे।५-७।

स्नानकुम्भेषु कुम्भांस्तांश्चतुर्दिक्ष्वधिवासयेत्।
कलशाः स्थापनीयास्तु अभिषेकार्थमादरात् ॥८
वटोदुम्बरकाश्वत्थांश्चम्पकाशोकश्रीद्रुमान्।
पलाशार्जुनप्लक्षांस्तु कदम्बबकुलाम्रजान्[2] ॥९
पल्लवांस्तु समानीय पूर्वकुम्भे[3] विनिक्षिपेत् ॥९½

स्नान-कलशों को चारों दिशाओं में रखे और स्नानार्थ कलशों को चारों दिशाओं में आदर के साथ स्थापित करना चाहिए। बरगद, गूलर, पीपल, चम्पक, अशोक, श्रीद्रुम, (बिल्व) पलाश, अर्जुन, पाकड़, कदम्ब, मौलश्री (बकुल) और आम्र के पल्लवों को लाकर पूर्व दिशा में स्थापित कलश पर छोड़े।८-९½।

पद्मकं रोचनां दूर्वां दर्भपिञ्जूलमेव च ॥१०
जातीपुष्पं कुन्दपुष्पं चन्दनं रक्तचन्दनम्।
सिद्धार्थं[4] तगरं चैव तण्डुलं दक्षिणे न्यसेत् ॥११

कमल, रोचना, दूर्वा, कुश, हरिद्रा, मालती, कुन्दपुष्प, चन्दन, रक्तचन्दन, श्वेतसरसों, तगर और तण्डुल को दक्षिण कलश पर छोड़े।१०-११

१ घ वाय्वादौ। २ घ. °म्रकान्। ३ ङ. च. पूर्णकुम्भे। ४ ख. ग. °द्धार्थामरणं चै°।

सुवर्णं रजतं चैव कूलद्वयमृदं तथा ।
नद्याः समुद्रगामिन्या विशेषाज्जाह्नवीमृदम् ॥१२
गोमयं च यवाञ्शालींस्तिलांश्चैव परे न्यसेत् ।
विष्णुपर्णी शालपर्णी[1] भृङ्गराजं शतावरीम् ॥१३
सहदेवीं[2] वचां सिंहीं बलां व्याघ्रीं सलक्ष्मणाम् ।
ऐशान्यामपरे कुम्भे मङ्गलानि[3] निवेशयेत् ॥१४

सोना, चाँदी, समुद्रगामिनी नदी विशेषकर गङ्गा के दोनों किनारों की मिट्टी, गोबर, यव, धान और तिल को दूसरे घड़े में, विष्णुपर्णी, शालपर्णी, भृङ्गराज, शतावरी, सहदेवी, वचा, सिंही, वला, लक्ष्मणसहितव्याघ्री, आदि माङ्गलिक ओषधियों को ईशान कोण में स्थापित दूसरे कलश में छोड़े ।१२-१४।

वल्मीकमृत्तिकां सप्तस्थानोत्थामपरे न्यसेत् ।
जाह्नवीबालुकां तोयं विन्यसेदपरे घटे ॥१५
वराहवृषनागेन्द्रविषाणोद्धृतमृत्तिकाम् ।
मृत्तिकां पद्ममूलस्य कुशस्य त्वपरे न्यसेत् ॥१६

वल्मीक की मिट्टी और सप्तमृत्तिका को अन्य कलश में छोड़े । गङ्गा जल और गङ्गा के बालू को अन्य कलश में डाले । उस कलश को छोड़कर दूसरे कलश में सूकर, साँड़, हाथी से खोदी हुई मिट्टी को तथा कुश और कमल की जड़ की मिट्टी को रखे ।१५-१६।

([4]तीर्थपवित्रमूर्द्धिश्च युक्तमप्यपरे न्यसेत् ।
नागकेशरपुष्पं च काश्मीरमपरे न्यसेत्) ॥१७
चन्दनागुरुकर्पूरैः[5] पूर्यं चैवापरे न्यसेत् ॥१७½

एक कलश में तीर्थ और पर्वतों की मिट्टी को रखे तथा दूसरे में नागकेशर और कुङ्कुम को । चन्दन, अगर और कर्पूर को दूसरे कलश में डाले १७-१७½।

वैदूर्यं विद्रुमं मुक्तां स्फटिकं वज्रमेव च ॥१८
एतान्येकत्र निक्षिप्य स्थापयेद्देवसत्तमम् ।
नदीनदतडागानां सलिलैरपरे न्यसेत् ॥१९

वैदूर्य, विद्रुम, मुक्ता, स्फटिक और वज्र आदि रत्नों को एक कलश में रखकर उस पर विष्णु को स्थापित करे। दूसरे कलश को नदी, नद और तडाग के जल से भरकर रखे ।१८-१९।

---

१ ख. ग. घ. श्यामलता° । २ घ. °वीं महादेवीं ब० ।३ ख. ग. घ. ङ्गल्यान्विनि ० ।४ तीर्थपवित्र......न्यसेत् क. ङ, च, पुस्तकेषु नास्ति । ५ घ. पुष्पं

एकाशीतिपदे चान्यान्मण्डले[1] कलशान्न्यसेत् ।
गन्धोदकाद्यैः सम्पूर्णाञ्श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रयेत् ॥२०
यवान्सिद्धार्थकं[2] गन्धं कुशाग्रं चाक्षतांस्तथा ।
तिलान्फलं तथा पुष्पमर्घ्यार्थं पूर्वतो न्यसेत् ॥२१

इक्यासी पग वाले वर्गाकार मण्डप में अन्य कलशों को स्थापित करे। उन कलशों को श्रीसूक्त से अभिमन्त्रित करके गन्ध-मिश्रित जल से भर दे। अर्घ्य के निमित्त यव, श्वेत सरसों, गन्ध, कुशाग्र, अक्षत, तिल, फल और पुष्प को पूर्व दिशा में लाकर रख दे।२०-२१।

पद्मं श्यामलतां दूर्वां विष्णुक्रान्तां[3] कुशांस्तथा ।
पाद्यार्थं दक्षिणे भागे मधुपर्कं तु पश्चिमे[4] ॥२२
([5]कक्कोलकं लवङ्गं च तथा जातीफलं शुभम् ।
उत्तरे ह्याचमनाय अग्नौ दूर्वाक्षतान्वितम् ॥२३
पात्रं नीराजनार्थं च तथोद्वर्तनमानिले ।
गन्धपिष्टान्वितं[6] पात्रमैशान्यां कलशे[7] न्यसेत् ॥२४
सुरमांसी चाऽऽमलकं सहदेवीं निशादिकम् ।
षष्टिदीपान्न्यसेदष्टौ न्यसेन्नीराजनाय च ॥२५
शङ्खं चक्रं च श्रीवत्सं कुलिशं पङ्कजादिकम् ।)
हेमादिपात्रे कृत्वा तु नानावर्णादिपुष्पकम् ॥२६

दक्षिण दिशा में पद्म, श्यामलता, दूर्वा, विष्णुक्रान्ता, कुशा को पाद्य के लिए पश्चिम की ओर मधुपर्क, और उत्तर की ओर कक्कोलक, लवङ्ग और जायफल से मिला हुआ शुभ जल आचमन के लिए रख दे। अग्निकोण में नीराजन के लिए दूर्वा और अक्षत से युक्त पात्र रखे। इसी प्रकार उबटन के लिए अग्निकोण में गन्ध और पिष्ट को एक बर्तन में रख दे। ईशान कोण में सुरमांसी आँवला, सहदेवी, हल्दी आदि रखे। नीराजन के लिए अड़सठ दीपकों को शङ्ख, चक्र, श्रीवत्स, कुलिश, कमल आदि को—रङ्ग-बिरङ्गे फूलों को स्वर्णादि के पात्रों में रखे।२२-२६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कलशाधिवासविधिकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७

——

१ ख. ग. घ. ङ. °ण्डपेक° । २ क. पञ्चसिद्धात्मकं । ३ घ. विष्णुपर्णी ।
४ ख. ग. घ. दक्षिणे । ५ कक्कोलकं....पङ्कजादिकम् क. ङ. च पुस्तके नास्ति ।
६ घ.०न्धपुष्पान्वि० । ७ ख. पात्रके ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्नपनविध्यादिकथनम्

श्रीभगवानुवाच—

ऐशान्यां[1] जनयेत्कुण्डं[2] गुरुर्वह्निं च वैष्णवम् ।
गायत्र्याऽष्टशतं हुत्वा संपातविधिना घटान् ॥१

श्री भगवान् बोले—आचार्य ईशान कोण में एक हवनकुण्ड बनाये और उसमें वैष्णव अग्नि की स्थापना करे । गायत्री मन्त्र से एकसौ आठ बार हवन करके सम्पात-विधि से घटों का प्रोक्षण करे ।१

प्रोक्षयेत्कारुशालायां शिल्पिभिर्मूर्तिपैर्व्रजेत् ।
तूर्यशब्दैः कौतुकं च वन्धयेद्दक्षिणे करे ॥२
विष्णवे शिपिविष्टेति ऊर्णासूत्रेण सर्षपैः ।
पट्टवस्त्रेण कर्तव्यं देशिकस्यापि कौतुकम् ॥३

शिल्पगृह में मूर्तिकार और मूर्तियों को संग में लेकर मङ्गल–वाद्य–ध्वनि के साथ जाना चाहिए। 'विष्णवे शिपिष्टः' इत्यादि मन्त्र से ऊन के सूत में सरसों की पोटली बाँध कर मूर्ति के दाहिने हाथ में कौतुक बाँध दे। गुरु के भी हाथ में पट्ट-वस्त्र से कौतुक बन्धन कर दे ।२–३।

मण्डले[3] प्रतिमां स्थाप्य सवस्त्रां पूजितां स्तुवन् ।
नमस्तेऽर्चे सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्मणा ॥४

शिलागृह से प्रतिमा को लाकर मण्डप में स्थापित करके वस्त्र आदि पहना कर उस मूर्ति की पूजा करके पूज्ये ! सुरेशानि ! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित ! आपको नमस्कार है इस प्रकार स्तुति करे ।४

प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः ।
त्वयि सम्पूजयामीशे नारायणमनामयम् ॥५
रहिता शिल्पिदोषैस्त्वमृद्धियुक्ता सदा भव ।
एवं विज्ञाप्य प्रतिमां नयेत्तां स्नानमण्डपम् ॥६

अशेष विश्व का शासन करने वाली जगदम्बिके ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ईशे, आप में अच्युत नारायण की पूजा कर रहा हूँ। आप

---

१ ऐशान्यामित्यारभ्य स्नपनस्य विधिः स्मृतः इत्यन्तोऽयमध्यायः क. ङ. च. पुस्केषु नास्ति ।२ ख. ग. ँयेद्दण्डं । ३ घ. मण्डपे ।

मूर्तिकार या शिल्प-कला की त्रुटियों से रहित हो सदा कल्याण प्रदान करें'— इस प्रकार की स्तुति करके उस प्रतिमा को स्नान-मण्डप में ले जाय ।५-६।

शिल्पिनं तोषयेद्द्रव्यैर्गुरवे गां प्रदापयेत् ।
चित्रं देवेति मन्त्रेण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ॥७
अग्निर्ज्योतीति दृष्टिं च दद्याद्वै भद्रपीठके ।
ततः शुक्लानि पुष्पाणि घृतं सिद्धार्थकं तथा ॥८
दूर्वां कुशाग्रं देवस्य दद्याच्छिरसि देशिकः ।
मधुवातेतिमन्त्रेण नेत्रे चाभ्यञ्जयेद्गुरुः ॥९
हिरण्यगर्भमन्त्रेण इमं मेति च कीर्तयेत् ।
घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चात्पठन्घृतवतीं पुनः ॥१०
[1]मसूरपिष्टेनोद्वर्त्य अतो देवेति कीर्तयेत् ।
क्षालयेदुष्णतोयेन[2] सप्त तेऽग्नेति देशिकः ।११
द्रुपदादिवेत्यनुलिम्पेदापो हिष्ठेति सिञ्चयेत् ।११½

मूर्तिकार द्रव्य देकर सन्तुष्ट करे और गुरु को गोदान करे । 'चित्रं देवानाम्०' इत्यादि मन्त्र से नेत्रोन्मीलन करे और 'अग्निर्ज्योति०' इत्यादि मन्त्र से दृष्टि-सञ्चार करे । फिर भद्रपीठ पर प्रतिमा को स्थापित करे । इसके अनन्तर आचार्य श्वेत पुष्प, घी, सरसों, दूर्वादल तथा कुशाग्र इष्टदेव के सिर पर चढ़ावे । इसके बाद 'मधुवाता०' इत्यादि मन्त्र से गुरु प्रतिमा के नेत्रों में अञ्जन करे । उस समय 'हिरण्यगर्भः०' इत्यादि मन्त्र तथा 'इमं मे वरुणं०' इत्यादि मन्त्र से कीर्तन करे । तत्पश्चात् पुनः 'घृतवती०' ऋचा का पाठ करते हुए घृत का अभ्यङ्ग लगावे । तत्पश्चात् मसूर के बेसन से उबटन का काम लेकर 'अतो देवाः०' इत्यादि मन्त्र का कीर्तन करे । फिर 'सप्त ते अग्ने०' इत्यादि मन्त्र बोलकर गुरु गर्म जल से प्रतिमा का प्रक्षालन करे । तदनन्तर 'द्रुपदादिव०' इत्यादि मन्त्र से अनुलेपन तथा 'आपोहिष्ठा०' इत्यादि से अभिषेक करे ।७-११½।

नदीजैस्तीर्थजैः स्नानं पावमानीति रत्नजैः ॥१२
समुद्रं गच्छ[3] गच्छेति तीर्थमृत्कलशेन च ।१२-½

१ मयूरपिच्छेनोद्वर्त्येत्यपि घ. पुस्तकस्य टिप्पणी पाठः । २ ख. °येद्वस्तुतो° । ग. येदुक्ततो° ३ ख. °च्छवसतैस्तीर्थं° । घ. °च्छ चन्दनैस्तीर्थं ।

शं नो देवीः स्नापयेच्च गायत्र्याऽप्युष्णवारिणा ॥१३

अभिषेक के पश्चात् नदी एवं तीर्थ के जल से स्नान कराकर 'पावमानी' ऋचा का पाठ करते हुए, रत्नस्पर्श युक्त जल से स्नान करावे। 'शं नो देवी°' इत्यादि तथा गायत्री मन्त्र से गरम जल के द्वारा इष्टदेव की प्रतिमा को नहलावे। १२-१३

पञ्चमृद्भिर्हिरण्येति स्नापयेत्परमेश्वरम्।
सिकताद्भिरिमं मेति [1]वल्मीकोद्घटनेन च ॥१४

'हिरण्यगर्भः°' इत्यादि मन्त्र से पञ्चमृत्तिका को प्रतिमा पर छिड़के। तीर्थवालुका और वल्मीक की मिट्टी से मिले जल से 'इमं मे°' इत्यादि मन्त्र का पाठ करके स्नान कराना चाहिए।१४

तद्विष्णोरिति ओषध्यद्भिर्या [2]ओषधि मन्त्रतः।
यज्ञा यज्ञेति काषायैः [3]पञ्चभिर्गव्यकैस्ततः ॥१५
पयः पृथिव्यां मन्त्रेण याः फलीति फलाम्बुभिः।
विश्वतश्चक्षुः सौम्येन पूर्वेण कलशेन च ॥१६

ओषधि मन्त्र या 'तद्विष्णो°' इस मन्त्र से ओषधि जल से स्नान कराना चाहिए। 'यज्ञा यज्ञा°' इत्यादि मन्त्र से काषाय जल से, 'पयः पृथिव्याम्°' इस मन्त्र से पञ्चगव्य से, 'याः फलिनीर्या°' इस मन्त्र से फल-मिश्रित जल से स्नान कराना चाहिए। 'विश्वतश्चक्षुः°' इस मन्त्र से उत्तर या पूर्व स्थापित घट से स्नान करना चाहिए।१५-१६।

सोमं राजानमित्येवं विष्णोरराटं [4]दक्षिणतः।
हंसः शुचि पश्चिमेन कुर्यादुद्वर्तनं हरेः ॥१७

'सोमं राजानम्°' इस मन्त्र से या 'विष्णोरराट्°' इस मन्त्र से दक्षिण कलश के जल से तथा 'हंसःशुचि°' इस मन्त्र से पश्चिम कलश के जल से अभिषेक करे।१७

मूर्धानमितिमन्त्रेण[5] धात्रीमांस्युदकेन[6] च।
मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेति गन्धकैः ॥१८

'मूर्धानम्°' इस मन्त्र से धात्री जल से, 'मा नस्तोके°' इस मन्त्र से जटा-मांसीयुक्त जल के द्वारा, 'गन्धद्वारां°' इस मन्त्र से गन्धमिश्रित जल से स्नान कराये।१८

इदमापेति च घटैरेकाशीतिपदस्थितैः।
एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ॥१९

---

१ ख. ग. ° कोत्थघ° । २ घ. °षवीतिम° । ३ ख. ग. भिर्द्रव्यं । ४ घ. दक्षतः । ५ घ. °र्धानंदिवम° । ६ ख. घ. धात्रीं मांसीं च के ददेत् । म

यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोऽस्तु ते ।
अनेनाऽऽवाह्य देवेशं कुर्यात्कौतुकमोचनम् ॥२०
मुञ्चामि त्वेति सूक्तेन देशिकस्यापि मोचयेत् ।२०½

'इदमाप॰' इस मन्त्र से इक्यासी पदों के मण्डल में स्थापित कलशों में भगवान् को नहलाये । भगवान् विष्णो ! लोक पर अनुग्रह दृष्टि रखने वाले ! इस यज्ञ-भाग को ग्रहण करें । वासुदेव आपको नमस्कार है । इससे देवेश का आवाह्न करके उनके हाथ में बँधा मङ्गल-सूत्र खोल दे । 'मुञ्चामि त्वा॰' इस मन्त्र से कौतुक मोचन करे । इसी मन्त्र से आचार्य का भी कौतुक-सूत्र खोल दे ।१९-२०½।

हिरण्मयेन पाद्यं दद्यादतो देवेति चार्धकम् ॥२१
मधुवाता मधुपर्कं मयि गृह्णामि चाऽऽचामेत् ।
अक्षन्नमीमदन्तेति किरेद्दूर्वाक्षतं बुधः ॥२२

'हिरण्मयेन॰' इत्यादि मन्त्र से पाद्य और 'अतो देवा॰' इस मन्त्र से अर्घ्य देवें । 'मधुवाता॰' इत्यादि मन्त्र से मधुपर्क दे । 'मयि गृह्णामि॰' इत्यादि मन्त्र, से आचमन करावे । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष 'अक्षन्नमीमदन्त॰' इत्यादि मन्त्र से अक्षत एवं दूर्वा बिखेरे ।२१-२२।

[1]काण्डान्निर्मन्थनं कुर्याद्गन्धं गन्धवतीति च ।
[2]उन्नयामीति माल्यं च इदं विष्णुः पवित्रकम् ॥२३

"काण्डात्॰" इत्यादि मन्त्र से निर्मञ्छन करे । "गन्धवती॰" इत्यादि मन्त्र से गन्ध अर्पित करे । "उन्नयामि॰" इस मन्त्र से पुष्प-माला, तथा "इदं विष्णुः" इत्यादि मन्त्र से पवित्रक चढ़ाना चाहिए ॥२३

वृहस्पतेवस्त्रयुग्मं वेदाहमुत्तरीयकम्[3]
महाव्रतेन सकलान्पुष्पं चौषधयः क्षिपेत् ॥२४

'वृहस्पते॰' इत्यादि मन्त्र से एक जोड़ा वस्त्र, 'वेदाहम्॰' इस मन्त्र से उत्तरीयक तथा "महाव्रतेन॰" इत्यादि मन्त्र से पुष्पों और ओषधियों को चढावे । २४

---

१ ग. ॰न्निर्मूर्छनं । घ. ॰निर्मञ्छनं । २ ख. ग. उन्मया॰ ३ घ. ॰हमित्युत॰ ।

धूपं दद्याद्धूरसीति विभ्राट्सूक्तेन चाञ्जनम् ।
युञ्जन्तीति च तिलकं दीर्घायुष्ट्वेति माल्यकम् ॥२५

"धूरसि०" इस मन्त्र से धूप तथा विभ्राट् सूक्त से अञ्जन लगाना चाहिए। 'युञ्जन्ति०' इत्यादि मन्त्र से तिलक और 'दीर्घायुवाष्ट्य०' इस मन्त्र से माला आदि चढ़ावे। २५

इन्द्रच्छत्रेति च्छत्रं तु आदर्शं तु विराजतः ।
चामरं तु विकर्णेन भूषां रथन्तरेण च ॥२६

'इन्द्रच्छत्र०' इत्यादि मन्त्र से छत्र और 'विराट्०' मन्त्र से दर्पण, 'विकर्ण' मन्त्र से चँवर तथा रथन्तर साम मन्त्र से आभूषण निवेदित करे।२६

व्यजनं 'वासुदेवाद्यै[1] मुञ्चामि त्वेति पुष्पकम् ।
वेदाद्यैः संस्तुतिं कुर्याद्धरेः पुरुषसूक्ततः ॥२७

वायुदेवता के मन्त्र से व्यजन डुलावे 'मुञ्चामि त्वा' इस मन्त्र से फूल चढावे। पुरुष-सूक्त और अन्य वेदमन्त्रों से विष्णु की स्तुति करे।२७

सर्वमेतत्समं[2] दद्यात् पिण्डिकादौ हरादिके ।
देवस्योत्थानसमये सौपर्णं[3] सूक्तमुच्चरेत् ॥२८

विष्णु-प्रतिमा के लिए यह जो कुछ विधि बताई गयी है वह महादेव आदि से सम्बन्धित पिण्डिका आदि के स्थापन के सम्बन्ध में भी समान समझनी चाहिए। देवता के उत्थान-काल में सौपर्ण सूक्त का पाठ करे।२८

उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य शय्याया[4] मण्डपे नयेत् ।
शाकुनेनैव सूक्तेन देवं ब्रह्मरथादिना ॥२९

" उत्तिष्ठ० " इस मन्त्र से देव-प्रतिमा को शय्या से उठा कर मण्डप में शाकुन-सूक्त का पाठ करते हुए ब्रह्मरथ पर आरुढ कराकर लाना चाहिए। २९

अतो देवेति सूक्तेन प्रतिमां पिण्डिकां तथा ।
श्रीसूक्तेन च शय्यायां विष्णोर्न सकलीकृतिः[5] ॥३०

"अतोदेव०" इत्यादि सूक्त से और श्री-सूक्त से पुरोहित को विष्णु की प्रतिमा तथा पिण्डिका को शय्या पर शयन करना चाहिए।३०

मृगराजं वृषं नागं व्यजनं कलशं तथा ।
वैजयन्तीं तथा भेरीं दीपमित्यष्टमङ्गलम् ॥३१

---

१ वायुर्दैवत्यैर्मु°। २ घ. मंकुर्यात्वि°। ३ ख. ग. सौवर्णं°। ४ ख. ग. शय्याया°। ५ घ० ष्णोस्तु शकलीकृतिः। मृ°।

मृगराज, वृष, नाग, व्यजन (पङ्खा),कलश, वैजयन्ती, भेरी, और दीप इनको अष्टमङ्गल कहते हैं। ३१

दर्शयेदश्वसूक्तेन पाददेशे त्रिपादिति ।
उखां पिधानकं पात्रमम्बिकां दीर्घिकां[1] ददेत् ।।३२

अश्वसूक्त से अष्टमङ्गल दिखाये । "त्रिपादूर्ध्व०" इस मन्त्र से पाद देश में उखा (पात्र-विशेष), ढक्कन, अम्बिका और दीर्घिका अर्पित करे ।३२

मुसलोलूखलं दद्याच्छिलां संमार्जनीं तथा ।
तथा भोजनभाण्डानि गृहोपकरणानि च ।।३३

मुसल , ओखली , शिला , झाड़ू और अन्यान्य भोजन पात्र तथा गृह की सामग्री को रखे ।३३

शिरोदेशे च निद्राख्यं वस्त्ररत्नयुतं घटम् ।
खण्डखाद्यैः पूरयित्वा शयनस्य[2] विधिः स्मृतः ।।३४

शिर की ओर वस्त्र तथा रत्न और मिष्टान्न आदि से भरकर एक निद्रासंज्ञक घट रख दे । इस प्रकार शयन की विधि शास्त्रों में बताई गई है ।३४

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेस्नपनविध्यादिकथनं नामाष्ट-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५८

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

अधिवासनविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच—
हरेः सांनिध्यकरणमधिवासनमुच्यते ।
सर्वज्ञं सर्वगं ध्यात्वा आत्मानं पुरुषोत्तम ।।१

---

१ ग. घ. दर्विकां ।२ घ. स्नपनस्य ।

ओंकारेण समायोज्य चिच्छक्तिमभिमानिनीम् ।
निःसार्याऽऽत्मैकतां कृत्वा स्वस्मिन्सर्वगते विभौ ॥२
योजयेन्मरुता पृथ्वीं वह्निबीजेन दीपयेत् ।
संहरेद्वायुना चाग्निं वायुमाकाशतो नयेत्॥३

श्रीभगवान् ने कहा—अब मैं हरि के समीप पहुँचने वाली अर्थात् सामीप्य मुक्ति प्रदान करने वाली अधिवासन-विधि का वर्णन करता हूँ। सर्वज्ञ, सर्वग और परम आत्मा पुरुषोत्तम का ध्यान करके अभिमानिनी चिच्छक्ति को ओङ्कार के द्वारा समायुक्त कर, जीव-ईश्वर का भेद मिटाकर उस सर्वगत, व्यापक परमात्मा से अवच्छिन्न आत्मा का एकीकरण करे।१-३।

अधिभूताधिदेवैस्तु साध्याख्यै (त्मै) विभवैः सह ।
तन्मात्रपातकान्कृत्वा[1] संहरेत्तत्कमाद्बुधः ॥४

वायु से पृथ्वी को मिलावे और वह्निबीज से उसको दीप्त करे। वायु से अग्नि को शान्त करके उसे आकाश में मिलाये। बुद्धिमान् व्यक्ति को साध्य नामक आधिभौतिक और आधिदैविक वस्तुओं के साथ पञ्चतन्मात्राओं की सम्मिलनात्मक कल्पना करनी चाहिये।४

आकाशं मनसाऽऽहृत्य[2] मनोऽहंकरणे कुरु ।
अहंकारं च महति तं चाप्यव्याकृते नयेत् ॥५

आकाश को मन में लीन करके मन को अहङ्कार में विलीन करके, अहङ्कार को महान में और महान् को अव्यक्त में एकाकार कर दे।५

अव्याकृतं ज्ञानरूपे वासुदेवः स ईरितः ।
सतामव्याकृतां मायामवष्टम्भ्य—सिसृक्षया ॥६
संकर्षणं संशब्दात्मा स्पर्शाख्यमसृजत्प्रभुः ।
क्षोभ्य[3] मायां स प्रद्युम्नं तेजोरूपं समासृजत्[4] ॥७
अनिरुद्धं रसमात्रं ब्रह्माणं गन्धरूपकम् ।
अनिरुद्धः स च ब्रह्मा अप आदौ ससर्ज ह ॥८

---

१ ख. घ. पात्रका॰। २ क. ख. ङ. च. साऽऽकृत्य। °घ. °साऽऽहृत्य। ३ क. ङ. च. क्षोभयामास। ४ क. ख. ग. घ. च. स चासृ॰।

अव्यक्त या अव्याकृत को ज्ञान रूप में मिला दे, उसी ज्ञानरूप को वासुदेव कहते हैं। विभु वासुदेव सृष्टि की इच्छा से अव्याकृत माया की सहायता से स्पर्शात्मक सङ्कर्षण की सृष्टि करते हैं। माया को क्षुब्ध कर उन्होंने तेजोरूप प्रद्युम्न की, रसरूप अनिरुद्ध और गन्धरूप ब्रह्मा की सृष्टि की, अनिरुद्ध और ब्रह्मा ने सबसे पहले जल की सृष्टि की।६-८।

तस्मिन्हिरण्मयं चाण्डं सोऽसृजत्पञ्चभूतवत्।
तस्मिन्सङ्क्रामते[1] जीवशक्तिरात्मोपसंहृता॥६

उस जल में उन्होंनें पञ्चभूतों के समान एक हिरण्मय अण्ड की रचना की। उस हिरण्मय अण्ड में आत्मा से गृहीत जीव शक्ति को सङ्क्रान्त कर देता है।९

प्राणो जीवेन संयुक्तो वृत्तिमानिति शब्द्यते।
जीवो व्याहृतिसंज्ञस्तु[2] प्राणेष्वाध्यात्मिकः स्मृतः॥१०

जीव से संयुक्त प्राण को वृत्तिमान् नाम से पुकारा जाता है। जीव प्राणों से संयुक्त होने पर आध्यात्मिक हो जाता है और उसको व्याहृति कहते हैं।१०

प्राणैर्युक्ता ततो बुद्धिः संजाता चाष्टवृत्तिका[3]।
अहंकारस्ततो जज्ञे मनस्तस्मादजायत॥११

बुद्धि प्राण से युक्त होने पर अष्टवृत्तिका (आठ वृत्त वाली) हो जाती है। उस बुद्धि से अहङ्कार और अहङ्कार से मन उत्पन्न हुआ॥११

अर्थाः प्रजज्ञिरे पञ्च संकल्पादियुतास्ततः।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्ध इति स्मृतः॥१२

तत्पश्चात् संकल्प आदि से युक्त पञ्च अर्थ (तत्त्व) उत्पन्न हुए। ये पाँच अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध हैं॥१२

ज्ञानशक्तियुतान्येतैरारब्धानीन्द्रियाणि तु।
त्वक् श्रोत्रघ्राणचक्षूंषि जिह्वाबुद्धीन्द्रियाणि तु॥१३
पादौ पायुस्तथा पाणी वागुपस्थश्च पञ्चमः।
कर्मेन्द्रियाणि चैतानि पञ्च भूतान्यतः शृणु॥१४

---

१ घ °न्संक्रामिते जीवे श°। २ क. ङ. च. °हृतगन्धस्तु प्राणः साध्यात्मिकः स्थितः। ३ ख घ °ष्टमूर्तिकी। अ°।

ज्ञान-शक्ति से युक्त इन पाँच पदार्थों से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, चक्षु और जिह्वा बुद्धि-इन्द्रियाँ और पाद, गुदा, पाणि, वाक् और लिङ्ग ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। अब पञ्चमहाभूतों के नाम सुनो—आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पाँच महाभूत है।१३-१४½।

आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा।
स्थूलमेभिः शरीरं तु सर्वाधारं प्रजायते ॥१५
एतेषां वाचका मन्त्रा न्यासायोच्यन्त उत्तमाः।
जीवभूतं मकारं तु देहस्य[1] व्यापकं न्यसेत् ॥१६

इन्हीं भूतों से सबका आधार स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। मैं न्यास के लिए इनके वाचक उत्तम मन्त्रों को बतला रहा हूँ। जीवभूत मकार को देह के ऊपर व्यापक न्यास में प्रयुक्त करना चाहिए।१५-१६

प्राणतत्त्वं भकारं तु जीवोपाधिगतं न्यसेत्।
हृदयस्थं बकारं तु बुद्धितत्त्वं न्यसेद् बुधः ॥१७

भकार प्राणतत्त्व है, इसका जीवोपाधिगतन्यास करना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति बुद्धितत्त्व बकार को हृदय पर न्यस्त करे।१७

फकारमपि तत्रैव ह्यहंकारमयं न्यसेत्।
मनस्तत्त्वं पकारं तु न्यसेत्संकल्पसंभवम् ॥१८

अहंकारमय फकार का वहीं (हृदय पर) न्यास करे। तदनन्तर सङ्कल्प से उत्पन्न मनस्तत्त्व पकार का भी वहीं न्यास करे।१८

शब्दतन्मात्रतत्त्वं तु नकारं मस्तके न्यसेत्।
स्पर्शात्मकं धकारं तु वक्त्रदेशे तु विन्यसेत् ॥१९
दकारं रूपतत्त्वं तु दृग्देशे विनिवेशयेत्।
थकारं वस्तिदेशे तु रसतन्मात्रकं न्यसेत् ॥२०

शब्दतन्मात्र तत्व नकार का मस्तक पर न्यास करे। स्पर्शात्मक धकार का मुख प्रदेश में रूपतत्त्व दकार को पलकों पर और रसतन्मात्र थकार का बस्ति देश (पेड़ू) पर न्यास करे।१९-२०।

तकारं गन्धतन्मात्रं जङ्घयोर्विनिवेशयेत।
णकारं श्रोत्रयोर्न्यस्य ढकारं विन्यसेत्त्वचि ॥२१

गन्ध तन्मात्र तकार को दोनो जांघों पर, णकार को दोनों कानों पर और ढकार को त्वचा पर न्यस्त करे।२१

---

[1] क. ख. ङ. देवस्य। ख. तदेव।

डकारं नेत्रयुग्मे तु रसनायां ठकारकम् ।
टकारं नासिकायां तु ञकारं वाचि विन्यसेत् ॥२२

डकार को दोनो नेत्रों पर, ढकार को रसना पर, टकार को नासिका पर और ञकार को वाक् पर विन्यस्त करे ।२२

झकारं करयोर्न्यस्य पाणितत्त्वं विचक्षणः ।
जकारं पादयोर्न्यस्य छं पायौ चमुपस्थके ॥२३

विद्वान् व्यक्ति पाणितत्त्व झकार को दोनो हाथों पर न्यस्त कर जकार का न्यास दोनों चरणों पर,छकार का गुदा पर और चकार का लिङ्ग पर न्यास करे ।२३

विन्यसेत् पृथिवीतत्त्वं ङकारं पादयुग्मके ।
बस्तौ धकारं गं तत्त्वं तैजसं हृदि विन्यसेत् ॥२४

पृथिवी तत्त्व ङकार को दोनों पैरों पर, धकार को वस्ति में और तेजस्तत्त्व-रूप गकार का हृदय में न्यास करे ।२४

खकारं वायुतत्त्वं तु नासिकायां निवेशयेत् ।
ककारं विन्यसेन्नित्यं खतत्त्वं मस्तके बुधः ॥२५

खकार वायुतत्त्व का प्रतीक है, उसको नासिका में और आकाश तत्त्व ककार को मस्तक पर न्यास करे ।२५

हृत्पुण्डरीके संन्यस्य यकारं सूर्यदैवतम् ।
द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिःसृता ॥२६
कलाषोडश संयुक्तं सकारं तत्र विन्यसेत् ।२६½

सूर्य दैवत यकार को हृत्पुण्डरीक पर न्यस्त करके हृदय कमल से चारों ओर स्फुरित होती हुई बहत्तर हजार नाड़ियों में सोलह स्वरों से युक्त सकार का न्यास करे ।२६-२६½।

तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री विन्दुं वह्नेस्तु मण्डलम् ॥२७
हकारं विन्यसेत्तत्र प्रणवेन सुरोत्तम ॥२७½

अये सुरोत्तम ! मन्त्र साधक उसके मध्य में अग्निमण्डल विन्दु का चिन्तन कर उस विन्दु में प्रणव से युक्त हकार का न्यास करे ।२७-२७½।

(ॐ आं परमेष्ठ्यात्मने आं नमः पुरुषात्मने[1] ॥२८
[2]ॐ वां नमो नित्यात्मने नां च विश्वात्मने नमः ।
वं नमः सर्वात्मने) इत्युक्ताः पञ्चशक्तयः ॥२९

ॐ आं नमः पुरुषात्मने, ॐ आं नमः परमेष्ठ्यात्मने, ॐ वां नमो नित्यात्मने, ऊं नां नमो विश्वात्मने, ॐ वं नमः सर्वात्मने —ये पाँच शक्तियाँ कही गई है।२८—२९।

स्नाने[3] तु प्रथमा योज्या द्वितीया आसने मता ।
तृतीया शयने तद्वच्चतुर्थी यानकर्मणि[4] ॥३०
अभ्यर्चायां[5] पञ्चमी स्यात् पञ्चोपनिषदः स्मृताः ।
[6]क्षकारं विन्यसेन्मध्ये ध्यात्वा मन्त्रमयं हरिम् ॥३१
[7]या मूर्त्तिः स्थाप्यते तस्याः मूलमन्त्रं न्यसेत्ततः ।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मूलकम् ॥३२

स्नान काल में पहली शक्ति का, आसन काल में दूसरी का, शयन में तीसरी का, यान कर्म अर्थात् सवारी के समय चौथी का और पूजा के समय पांचवी का ध्यान करना चाहिए। ये ही पांच उपनिषद् भी हैं। मध्य में मन्त्रमय हरि का ध्यान करके क्षकार का न्यास करना चाहिए। इसके उपरान्त जिस मूर्ति की स्थापना की जाती है, उसी के मूल मन्त्र का न्यास करना चाहिए। ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मूल मन्त्र है।३०-३२।

शिरोघ्राणललाटेषु मुखे कण्ठे हृदि क्रमात् ।
भुजयोर्जङ्घयोरङ्घ्र्योः केशवं शिरसि न्यसेत् ॥३३

शिर, नासिका, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, दो भुजा, दो पिण्डली और दो चरणों में इस मूल मन्त्र के प्रत्येक अक्षर से क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् केशव का मस्तक में न्यास करे। ३३

नारायणं न्यसेद्वक्त्रे ग्रीवायां माधवं न्यसेत् ।
गोविन्दं भुजयोर्न्यस्य विष्णुं च हृदये न्यसेत् ॥३४

---

१ क्वचित्पुस्तकेऽयं पाठोदृश्यते—ॐ षं परमेष्ठ्यात्मने यं नमः पुरुषात्मने । २ च. °ने । शं नामानि वृत्त्यात्मने लां च विश्वा° । ३ घ. ॐ वां मनोनि° । ४ ख. ग. घ. स्थाने । ५ ख. ग. प्राणकर्मणि । घ. पानकर्मणि । ६ ख. ग. घ. प्रत्यर्चायां । ७ क. ङ. च. ककार° । ख. ग. घ. हुंकारं । ८ ख. घ. यां मूर्ति स्थापयेत्तस्मान्मूल° ।

मुख में नारायण का और ग्रीवा पर माधव का न्यास करना चाहिए। भुजाओं पर गोविन्द का न्यास कर के हृदय पर विष्णु का न्यास करे। ३४

मधुसूदनकं पृष्ठे वामनं जठरे न्यसेत्।
कट्यां त्रिविक्रमं न्यस्य जङ्घायां श्रीधरं न्यसेत्॥३५

पृष्ठ भाग पर मधुसूदन का और जठर पर वामन का न्यास करे। कटि पर त्रिविक्रम का और जङ्घा पर श्रीधर का न्यास करे। ३५

हृषीकेशं दक्षिणायां पद्मनाभं तु गुल्फके।
दामोदरं पादयोश्च हृदयादिषडङ्गकम्॥३६

दक्षिण जङ्घा पर हृषीकेश का, गुल्फ पर पद्मनाभ का और चरणों पर दामोदर का न्यास करे। पश्चात् हृदय आदि का षडङ्गन्यास करे।३६

एतत्साधारणं प्रोक्तमादिमूर्तेस्तु सत्तम।
अथवा यस्य देवस्य प्रारब्धं स्थापनं भवेत्॥३७
तस्यैव मूलमन्त्रेण सजीवकरणं भवेत्।

अये सत्तम ! साधारण रूप से आदि मूर्ति का न्यास व्रत कहा गया है। अथवा जिस देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा हो, उसी के मूल मन्त्र से प्राण—प्रतिष्ठा तथा सजीवकरण होना चाहिए।३७

यस्या मूर्तेस्तु यन्नाम तस्याऽऽद्यं चाक्षरं च यत्॥३८
तत्स्वरैर्द्वादशैर्भेद्य ह्यङ्गानि परिकल्पयेत्।
हृदयादीनि देवेश मूलं च दशमाक्षरम्॥३९
यथा देवे तथा देहे तत्त्वानि विनियोजयेत्।
चक्राब्जमण्डले विष्णुं यजेद्गन्धादिना ततः[1]॥४०

जिस मूर्ति की जो संज्ञा हो उसके आदि अक्षर को द्वादश स्वरों के संयोग से पृथक्—पृथक् रूप बना कर मूल मन्त्र के द्वादश अक्षरों के समान द्वादश कल्पना कर दे। हे देवेश ! हृदयादि न्यास और द्वादशाक्षर मूल मन्त्र का तथा तत्त्वों का जिस प्रकार देवमूति पर न्यास किया जाता है, उसी प्रकार अपने अङ्गों पर भी न्यास करे। तदनन्तर चक्र के भीतर स्थित कमल मण्डल पर गन्ध आदि से विष्णु की पूजा करनी चाहिए।३८—४०

पूर्ववच्चाऽऽसनं ध्यायेत्तन्मात्रं सपरिच्छदम्।
शुभं चक्रं द्वादशारं ह्युपरिष्टाद्वि चिन्तयेत्॥४१
त्रिनाभिचक्रं द्विनेमि स्वरैस्तच्च समन्वितम्।
पृष्ठदेशे ततः प्राज्ञः प्रकृत्यादीन्निवेशयेत्॥४२

---

१ ख. ग. घ. तथा। २ घ. °येत्सगात्रं।

पूर्ववत् शरीर और वस्त्राभूषणों सहित भगवान् के आसन का ध्यान करे। ऊपरी भाग से द्वादश अंश वाले चक्र का चिन्तन करना चाहिए जिसमें तीन नाभिचक्र और दो नाभियाँ हों और जिन पर स्वरों का न्यास हुआ हो। फिर पृष्ठ-देश पर बुद्धिमान् साधक प्रकृति आदि का न्यास करे।४१-४२।

पूजयेदरकाग्रेषु सूर्यं द्वादशधा पुनः।
कलाषोडशसंयुक्तं सोमं तत्र विचिन्तयेत्[१] ॥४३

उन अराओं के अग्र भाग पर द्वादश सूर्य और सोलह कलाओं से युक्त सोम का ध्यान करे।४३

[[२]वसनत्रितयं नाभौ चिन्तयेद्देशिकत्तमः।
पद्मं च द्वादशदलं पद्ममध्ये विचिन्तयेत् ॥]४४

विज्ञ आचार्य नाभि में बलराम के साथ प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन तीन देवताओं का और पद्म के मध्य में द्वादश दल पद्म का ध्यान करे।४४

तन्मध्ये पौरुषीं शक्तिं ध्यात्वाऽभ्यर्च्य च देशिकः।
प्रतिमायां हरिं न्यस्य तत्र तं पूजयेत्सुरान् ॥४५

पुनः गुरु उस कमल के मध्य में पौरुषी शक्ति का ध्यान करके उसकी पूजा करे और प्रतिमा में हरि का न्यास करके हरि और अन्य देवताओं की पूजा करे।४५

गन्ध पुष्पादिभिः सम्यक्साङ्गं सावरणं[३] क्रमात्।
[[४]द्वादशाक्षरबीजैस्तु केशवादीन्समर्चयेत् ॥४६

क्रमशः गन्ध, पुष्प आदि से द्वादशाक्षर मन्त्र बीजों से सांग और सावरण केशव आदि का पूजन करना चाहिए।४६

द्वादशारे मण्डले तु लोकपालादिकं क्रमात्।]
प्रतिमामर्चयेत्पश्चात्गन्धपुष्पादिभिर्द्विजः ॥४७
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रियाः सूक्तेन पिण्डिकाम्।

द्वादश दल वाले मण्डल में क्रमशः लोकपालों की भी पूजा करनी चाहिए। लोकपालों की पूजा के अनन्तर गन्ध, पुष्प आदि से प्रतिमा का अर्चन पुरुषसूक्त से, और श्रीसूक्त से पिण्डिका का पूजन करना चाहिए।४७

जननादिक्रमात्पश्चाज्जनयेद्वैष्णवानलम् ॥४८
हुत्वाऽग्निं वैष्णवैर्मन्त्रैः कुर्याच्छान्त्युदकं बुधः।
तत्सिक्त्वा प्रतिमामूर्ध्नि वह्निप्रणयनं चरेत् ॥४९

१ घ. °त्। सवलं त्रि°। २ वसनत्रितयं....विचिन्तयेत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ ख. साधारणं। द्वादशाक्षरबीजैस्तु....क्रमात् ङ. पुस्तके नास्ति।

इसके पश्चात् जनना आदि संस्कार क्रम से वैष्णव से अनल को प्रज्वलित कराना चाहिए। ज्ञानी आचार्य वैष्णव मन्त्रो से अग्नि में हवन कर शान्त्य-भिषेक करे। इस जल से प्रतिमा के शिर पर सिञ्चन कर वह्निप्रणयन करे।४८-४९।

दक्षिणेऽग्नि हुतमिति कुण्डेऽग्निं प्रणयेद्बुधः।
अग्निमग्नीति पूर्वे तु कुण्डेऽग्निं प्रणयेद्बुधः ॥५०
उत्तरे प्रणयेदग्निमग्निमग्नीहरामहे।
अग्निप्रणयने मन्त्रस्त्वमग्ने द्युभिरुच्यते ॥५१

"अग्निदूतम्" इत्यादि मन्त्र से दक्षिण कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करे। "अग्निमग्नी" इत्यादि मन्त्र से पूर्व कुण्ड में अग्नि स्थापित करके, उत्तर कुण्ड में "अग्निमग्नीहरामहे" इत्यादि मन्त्र से अग्न्याधान करे। अग्नि-प्रणयन के लिए "त्वमग्नेद्युभि" इत्यादि मन्त्र भी कहा गया है।५०-५१।

पलाशसमिधानां तु अष्टोत्तरसहस्रकम्।
कुण्डे कुण्डे होमयेच्च व्रीहीन्वेदादिकैस्तथा ॥५२

एक हजार आठ पलाश की समिधाओं का प्रत्येक कुण्ड में हवन करके वैदिक मन्त्रों से व्रीहि-हवन करे।५२

साज्यांस्तिलान्व्याहृतिभिर्मूलमन्त्रेण वै घृतम्।
कुर्यात्ततः शान्तिहोमं मधुरत्रितयेन च ॥५३

व्याहृतियों से घी मिले हुए तिल की तथा मूल मन्त्र से घृत की आहुतियाँ दे। तदनन्तर मधुरत्रय (घी, शहद तथा चीनी) से शान्ति हवन करे।५३

द्वादशार्णैः स्पृशेत्पादौ नाभि हृन्मस्तकं ततः।
घृतं दधि पयो हुत्वा स्पृशेन्मूर्धन्यथो ततः ॥५४
स्पृष्ट्वा शिरोनाभिपादांश्चतस्रः स्थापयेन्नदीः[1]।
गंगा च यमुना गोदा क्रमान्नाम्ना सरस्वती ॥५५

द्वादशाक्षर–मन्त्र से दोनों पैर, नाभि, हृदय और मस्तक का स्पर्श करे। घी, दही और दूध से हवन करके मूर्धा (शिर) का—स्पर्श करे। तत्पश्चात् मस्तक, नाभि और चरणों का स्पर्श कर के गङ्गा, यमुना, गोदावरी तथा सरस्वती नामक चार नदियों को स्थापित करे।५४–५५।

---

१ क. ङ. च. °येच्च गाः। ग°।

देहे[1] तु विष्णुगायत्र्या गायत्र्या श्रपयेच्चरुम् ।
होमयेच्च बलिं दद्यादुत्तरे भोजयेद्द्विजान् ॥५६

विष्णु गायत्री से अग्नि को प्रज्वलित करके गायत्री मन्त्र से चरु को पकावे। हवन और बलि प्रदान कर के ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।५६

मासाधिपानां[2] तुष्ट्यर्थं हेमगां गुरवे ददेत् ।
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा रात्रौ कुर्याच्च जागरम् ॥५७
ब्रह्मगीतादिशब्देन सर्वभागधिवासनात् ।५८

मासाधिपों की तुष्टि के लिए गुरु को सोने की गाय की दक्षिणा दे। दिक्पालों को बलि प्रदान करके रात्रि में जागरण करे और ब्रह्मगीता आदि का पाठ करे। इस प्रकार अधिवासन (पूजन-संस्कार) क्रिया की साङ्गोपाङ्गपूर्ति करने पर मनुष्य सम्पूर्ण फलों का भागी होता है ।५७-५८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये देवताधिवासनविधिकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।५९

अथ षष्टितमोऽध्यायः

वासुदेवादिदेवतानां सामान्यः प्रतिष्ठाविधिः ।

श्रीभगवानुवाच—
पिण्डिकास्थापनार्थं तु गर्भागारं तु सप्तधा ।
विभजेद्ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ॥१

श्रीभगवान् ने कहा—विवेकी गुरु पिण्डिका स्थापन के लिए गर्भगृह को सात भागों में विभक्त करके ब्रह्म भाग में प्रतिमा की प्रतिष्ठा करे। १

देवमानुषपैशाचभागेषु न कदाचन ।
ब्रह्मभागं परित्यज्य किंचिदाश्रित्य चाण्डज ॥ २
देवमानुषभागाभ्यां स्थाप्या यत्नात्तु पिण्डिका ।
नपुंसकशिलायां तु रत्नन्यासं समाचरेत् ॥ ३

१ घ. दहेत्तु । २ घ. सामाधिपानां ।

देव, मानुष और पैशाच भागों में कभी भी प्रतिमा स्थापन करना चाहिए। हे ब्रह्मन् । ब्रह्मभागों को छोड़कर देव और मानुष भाग में से थोड़ा-थोड़ा सा अंश लेकर यत्नपूर्वक पिण्डिका को स्थापित करना चाहिए । नपुंसक शिला पर रत्न का न्यास करना चाहिए । २-३।

नारसिंहेन हुत्वाऽथ रत्नन्यासं च तेन वै ।
व्रीहीरत्नानि धातूंश्च लोहान्वै चन्दनादिकम् ।।४
पूर्वादिनवगर्तेषु न्यसेन्मध्ये यथारुचि ।
अथ चेन्द्रादिमन्त्रैश्च गर्तंगुग्गुलनाऽऽवृतम् ।।५

नारसिंह मन्त्र से हवन कर के उसी मन्त्र से रत्नन्यास भी करे । व्रीहि (धान्य)रत्न, धातु, लोहा, और चन्दन आदि को पूर्वोक्त पूर्व आदि दिशाओं में बने हुए नौ गड्ढों में रुचि के अनुसार छोड़ दे । तदनन्तर इन्द्र आदि के मन्त्रों का उच्चारण करके उन्हें गुग्गुल से भर दे ।४–५।

रत्नन्यास विधिं कृत्वा प्रतिमामालभेद्गुरुः ।
सशलाकैर्दर्भपुञ्जैः सहदेवैः समन्वितैः ।। ६
सवाह्यान्तैश्च संस्कृत्य पञ्चगव्येन शोधयेत् ।
प्रोक्षयेद्दर्भतोयेन[1] नदीतीर्थोदकेन च ।।७

इस प्रकार आचार्य के रत्न न्यास विधि को पूरा करके प्रतिमालम्भन कराना चाहिए । पहले शलाका, कुश और सहदेवी से उस प्रतिमा के चारों ओर भलीभाँति स्वच्छ करके उसे पञ्चगव्य से शुद्ध करे, फिर कुश के जल और तीर्थ के जल से उसका स्नान करावे ।६-७ ।

होमार्थे स्थण्डिलं कुर्यात्सिकताभिः समन्ततः ।
सार्धहस्तप्रमाणं तु चतुरस्रं सुशोभनम् ।। ८

हवन के लिए,डेढ़ हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी सुन्दर वर्गाकार वेदी बालुका से बनावे । आठों दिशाओं में यथाविधि कलशों को स्थापित करे ।८

अष्टदिक्षु यथान्यासं कलशानपि विन्यसेत् ।
पूर्वाद्यानष्ट वर्णेन अग्निमानीय संस्कृतम् ।। ९

उन पूर्वादि कलशों को आठ प्रकार के रंगो से सुसज्जित करे । तदनन्तर सुसंस्कृत अग्नि को ला कर हवन कुण्ड में स्थापित करे । ९

१ क. ङ- च. येन्द्रान्घतो° ।

त्वमग्ने द्युभिरिति च गायत्र्या समिधो हुनेत्।
अष्टार्णेनाष्टशतकमाज्यं[1] पूर्णां प्रदापयेत्। १०

उसमें 'त्वमग्नेद्युभि' इत्यादि गायत्री छन्द से समिधा का हवन करे। अष्टार्ण मन्त्र से एक सौ आठ घी की आहुति दे।१०

शान्त्युदकं[2] ताम्रपत्रे मूलेन शतमन्त्रितम्।
सिञ्चेद्देवस्य तन्मूर्ध्नि श्रीश्च ते ह्यनया ऋचा ॥११

तत्पश्चात् मूल मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित किये हुए शान्ति जल को आम्र पल्लवों के द्वारा 'श्रीश्च ते लक्ष्मी' इत्यादि मन्त्र से प्रतिमा के शिर पर अभिषेक करे। ११

ब्रह्मयानेन चोद्धृत्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते।
त्वं विष्णोरिति मन्त्रेण प्रासादाभिमुखं नयेत् ॥ १२

'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इत्यादि मन्त्रसे प्रतिमा को उठाकर ब्रह्मयान पर रखे तथा "त्वद् विष्णो" इस मन्त्र से ब्रह्मयान पर आरुढ़ प्रतिमा को मन्दिर की ओर ले जाये। १२

शिबिकायां हरिं स्थाप्य भ्रामयीत पुरादिकम्।
गीतवेदादिशब्दैश्च प्रासादद्वारि धारयेत् ॥ १३

वहाँ पर शिबिका में हरि को प्रतिष्ठित कर, नगर में समारोह के साथ घुमावे। साथ-साथ मंगल गीत और वेद आदि का उच्चारण होता रहे। फिर मन्दिर के द्वार पर भगवान् को शिविका से उतारे। १३

स्त्रीभिर्विप्रैर्मंगलाष्टघटैः संस्नापयेद्धरिम्।
ततो गन्धादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ १४

वहाँ स्त्रियों और ब्राह्मणों के द्वारा आठ मंगल-कलशों से उनको स्नान कराना चाहिए। स्नान के पश्चात् गुरु मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए गन्ध आदि से उसका पूजन करे। १४

अतो देवेति वस्त्राद्यमष्टाङ्गार्घ्यं निवेद्य च।
स्थिरे लग्ने पिण्डिकायां देवस्य त्वेति धारयेत् ॥ १५

"अतो देव" इत्यादि मन्त्र से वस्त्रादि पहना कर अष्टाङ्ग अर्घ अर्पण करे। स्थिर लग्न में पिण्डिका के मध्य मे "देवस्य त्वा" इस मन्त्र से प्रतिमा को स्थापित कर दे। १५

१क. ङ. च. °ष्टान्तेना° । २ ख. घ.° दकमाम्रपत्रैर्मूले ।

ॐ त्रैलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।
संस्थाप्य पिण्डिकायां तु स्थिरं कुर्याद्विचक्षणः ॥१६

विद्वान् आचार्य "ॐ त्रैलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम" इत्यादि मन्त्र से उसको पिण्डिका में भलीभाँति स्थिर कर दे ।१६

ध्रुवाद्यौरिति मन्त्रेण विश्वतश्चक्षुरित्यपि ।
पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षाल्य गन्धोदकेन च ॥१७

"ध्रुवा द्यौः" इस मन्त्र से तथा "विश्वतश्चक्षुः" इत्यादि मन्त्र से पञ्चगव्य से स्नान कराकर गन्धोदक से प्रक्षालन करे ।१७

पूजयेत्सकलीकृत्य साङ्गं साधारणं हरिम् ।
ध्यायेत्खं[1] तत्र मूर्ति तु पृथिवी तस्य पीठिका ॥१८
कल्पयेद्विग्रहं तस्य तैजसैः परमाणुभिः ।
जीवमावाहयिष्यामि पञ्चविंशतितत्त्वगम् ॥१९
चैतन्यं परमानन्दं जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम् ।
देहेन्द्रियमनोवुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ॥२०
ब्रह्मादिस्तम्वपर्यन्तं हृदयेषु व्यवस्थितम् ।
हृदयात्प्रतिमाविम्बे स्थिरो भव परमेश्वर ॥२१

सकलीकरण करने के पश्चात् साङ्ग और सावरण हरि का पूजन करे और इस प्रकार ध्यान रहे कि आकाश भगवान् का विग्रह है और पृथिवी उसकी पीठिका (सिंहासन) है । तैजस परमाणुओं से उसके शरीर की रचना की कल्पना करे और कहे कि मैं उस तैजस देह में पच्चीसों तत्त्वों में व्याप्त रहने वाले, चैतन्य, परमानन्द, जाग्रत् स्वप्न से रहित, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से विवर्जित ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त प्रत्येक वस्तुओं के हृदय में वर्तमान रहने वाले जीव (परमात्मा) का आह्वान कर रहा हूँ । हे परमेश्वर ! तुम हृदय से निकलकर इस प्रतिमा विम्ब में स्थिर हो जाओ । १८–२१।

सजीवं कुरु विम्बं त्वं सबाह्याभ्यन्तरस्थितः[2] ।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ॥२२

तुम इस विम्ब के बाहर और भीतर स्थित हो कर उसको सजीव कर दो, तुम जीवों के देहों में स्थिर रहने वाले अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष हो ।२२

१क. ङ. च. [1] येत्खातस्य मूर्तिस्तु पृ° । २ख. ङ. च. [2] स्थितम् । अ° ।

ज्योतिर्ज्ञानं परं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयकम्[1] ।
सजीवीकरणं कृत्वा प्रणवेन निबोधयेत् ॥२३

'तुम ज्योति, ज्ञान, परब्रह्म और अद्वितीय ब्रह्म हो' इत्यादि कहकर मूर्ति का सजीवीकरण सम्पन्न करे । सजीवीकरण के अनन्तर ओङ्कार से उसको जगावे ।२३

सांनिध्यकरणं नाम हृदयं स्पृश्य वै जपेत् ।
सूक्तं तु पौरुषं ध्यायन्निदं गुह्यमनु जपेत् ॥२४

भगवान् के हृदय का स्पर्श कर पुरुष सूक्त का जप करे । इसे 'सांनिध्यकरण नामक कर्म कहा गया है । इसके लिए भगवान् का ध्यान करते हुए निम्नगुह्य मन्त्र का जप करे ।२४

नमस्तेऽस्तु सुरेशाय संतोषविभवात्मने ।
ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुयायिने ॥२५

प्रभो ! आप देवताओं के स्वामी हैं । संतोष वैभव रूप हैं । आप को नमस्कार है । ज्ञान और विज्ञान आप के रूप हैं । आप ब्रह्मतेज के अनुगामी हैं । आप को नमस्कार है ॥२५

गुणातिक्रान्तरूपाय[2] पुरुषाय महात्मने ।
अक्षयाय पुराणाय विष्णो संनिहितो भव॥२६

गुणों से अतिक्रान्त रूप वाले महात्मा पुरुष को नमस्कार है। हे विष्णो ! इस प्रतिमा को अक्षय और सनातन बनाने के लिए इसमें सन्निविष्ट होइये ।२६

यच्च ते परमं तत्त्वं यच्चज्ञानमयं वपुः ।
तत्सर्वमेकतो[3] नीतमस्मिन्देहे विबुध्यताम् ॥२७

आप का जो परमतत्त्व और ज्ञानमय शरीर है, उस सब को मैंने इस मूर्ति में एकांश रूप से एकत्र किया है, इसमें अब अपने को प्रकाशित कीजिए ।२७

आत्मानं संनिधीकृत्य ब्रह्मादिपरिवारकान् ।
स्वनाम्ना स्थापयेदन्यानायुधादीन्समुद्रया ॥२८

इस प्रकार परमात्मा को उस मूर्ति में आहूत करके तथा संयुक्त करके ब्रह्मा आदि देवों को सपरिवार उनके मन्त्रों से स्थापित करे । समीप में ही उनके अस्त्रों को भी मुद्रा के साथ स्थापित करे ।२८

१ख. यमोम् । स° । २क.ख. ङ. च. °न्तदेशाय । घ. °न्तवेशाय । ३ घ. °तो लीनम° ।

यात्रावर्षादिकं दृष्ट्वा[1] ज्ञेयः संनिहितो हरिः ।
नत्वा[2] स्तुत्वा स्तवाद्यैश्च जप्त्वा चाष्टाक्षरादिकम् ॥२६

यात्रा और वर्ष आदि का विचार करके हरि को सन्निहित करना चाहिए स्तुति, प्रार्थना आदि से स्तुति कर के अष्टाक्षर मन्त्रों का जप कर के भगवान् को प्रसन्न करना चाहिए ।२९

चण्डप्रचण्डौ द्वारस्थौ निर्गत्याभ्यर्चयेद् गुरुः ।
अथ मण्डपमासाद्य गरुडं स्थाप्य पूजयेत् ॥३०

तदनन्तर आचार्य मन्दिर से निकलकर द्वार पर चण्ड और प्रचण्ड की पूजा करे, फिर मण्डप में जाकर गरुड़ की स्थापना करके पूजा करे ।३०

दिगीशान्दिशि देवांश्च स्थाप्य संपूज्य देशिकः ।
विष्वक्सेनं तु संस्थाप्य शङ्खचक्रादि पूजयेत् ॥३१
सर्वपार्षदकेभ्यश्च बलिं भूतेभ्य अर्पयेत् ।
ग्रामवस्त्रसुवर्णादि गुरवे दक्षिणां ददेत् ।३२
यागोपयोगिद्रव्याद्यमाचार्याय नरोऽर्पयेत् ।
आचार्यदक्षिणार्धं तु ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददेत् ॥३३

दिशाओं में दिक्पालों, विष्वक्सेन और शङ्ख, चक्रादि को स्थापित करके उनकी पूजा करे । सब पार्षदों और भूतों को बलि प्रदान करे । तत्पश्चात् गुरु को ग्राम, वस्त्र और स्वर्ण दक्षिणा में दे और यज्ञोपवीती द्रव्य आचार्य को अर्पित करे । आचार्य की दक्षिणा से आधी दक्षिणा ऋत्विजों को दे ।३१-३३।

अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद्भोजयेद्ब्राह्मणांस्ततः ।
अवारितान्फलं[3] दद्याद्यजमानाय वै गुरुः ॥३४

अन्य ब्राह्मणों को भी दक्षिणा देकर आगत ब्राह्मणों को भोजन कराये, किसी को रोके नहीं । इस कार्य के अनन्तर गुरु यजमान को फल प्रदान करे ।३४

विष्णुं नयेत्प्रतिष्ठाता चाऽऽत्मना सकलं कुलम् ।
सर्वेषामेव देवानामेष साधारणो विधिः ॥३५
मूलमन्त्राः पृथक्तेषां शेषं कार्यं समानकम् ॥३६

प्रतिष्ठाता पुरुष अपने पूरे परिवार को अपने साथ विष्णुलोक में ले जाता है । सब देवों की यही प्रतिष्ठा विधि है । केवल मूल मन्त्र ही पृथक्-पृथक् हैं । शेष विधियाँ समान हैं ।३५—३६।

इत्यादि महापुराण आग्नेये वासुदेवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।६०

१क. ङ. च. कृत्वा २ख. गत्वा ।३ घ. °न्फलान्दद्या° ।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

अवभृथस्नानद्वारप्रतिष्ठाध्वजारोपणादिविधिः

श्रीभगवानुवाच—

वक्ष्ये चावभृथस्नानं विष्णोर्नत्वेति[1] होमयेत् ।
एकाशीतिपदे कुम्भान्संस्थाप्य[2] स्नापयेद्धरिम् ॥१
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्बलिं दत्त्वा गुरुं यजेत् ।
द्वारप्रतिष्ठां वक्ष्यामि द्वाराधो हेम वै ददेत् ॥२

श्रीभगवान् बोले—अब मैं अवभृथ स्नान की विधि बता रहा हूँ। "विष्णोर्नत्वा" इत्यादि मन्त्र से हवन करे। इक्यासी पद वाले वर्गाकार क्षेत्र में कलशों को स्थापित करके हरि को स्नान कराकर गन्ध-पुष्प आदि चढ़ा कर बलि प्रदान करे और गुरु का पूजन करे। द्वार प्रतिष्ठा विधि यह है कि द्वार के नीचे सोना रखे।१-२।

अष्टभिः कलशैः स्थाप्य शाखोदुम्बरकौ गुरुः ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य मन्त्रैर्वेदादिभिर्गुरुः ॥३
कुण्डेषु होमयेद्वह्नि समिदाज्यतिलादिभिः[3] ।
दत्त्वा शय्यादिकं चाधो दद्यादाधारशक्तिकाम् ॥४

गुरु गूलर की दो शाखाओं को समीप में गाड़कर आठ कलशों को स्थापित करके वेदमन्त्रों से गन्ध आदि से पूजा कर के कुण्ड में समिधा, घी और तिल आदि की अग्नि में आहुतियाँ दे। भूमि पर शय्या रखकर उसे आधार शक्ति को प्रदान करे।३-४।

शाखयोर्विन्यसेन्मूले देवौ चण्डप्रचण्डकौ ।
ऊर्ध्वोदुम्बरके देवीं लक्ष्मीं सुरगणार्चिताम् ।५
न्यस्त भ्यर्च्य यथान्यायं श्रीसूक्तेन चतुर्मुखम् ।
हुत्वा तु श्रीफलादीनि आचार्यादेस्तु दक्षिणाम् ॥६

उदुम्बर की शाखाओं के मूल में चण्ड और प्रचण्ड की प्रतिष्ठा करे। देवगणों से पूजित लक्ष्मी को शाखाओं के ऊपर स्थापित करे। तत्पश्चात् यथा विधि ब्रह्मा की भी स्थापना करके श्रीसूक्त से उसकी पूजा करे। श्रीफल आदि से पूजन कर आचार्य को दक्षिणा दे।५—६।

---

१ क. ङ. च. °ष्णोर्नु कंति। ख.° ष्णोर्नमेति। २घ.° म्भान्स्थाप्य संस्थाप्य°।
३ क. घ ङ. च. मिल्लाज़ति.।

प्रतिष्ठासिद्धद्वारस्य त्वाचार्यः स्थापयेद्धरिम् ।
प्रासादस्य प्रतिष्ठां तु हृत्प्रतिष्ठेति तां शृणु ॥७

तदनन्तर आचार्य उस प्रतिष्ठा-सिद्ध द्वार पर हरि की स्थापना करे। प्रासाद की प्रतिष्ठा की जो हृदय-प्रतिष्ठा है, उसकी प्रतिष्ठा की विधि सुनो।७

समाप्तौ शुकनासाया वेद्याः प्राग्गर्भमस्तके ।
सौवर्णं राजतं कुम्भमथवा शुक्लनिर्मितम्[1] ॥८

शुक नासिका के समान आकार वाली वेदिका के अन्त में, पूर्वगर्भमस्तक पर सोने और चाँदी के कलशों को स्थापित करे।८

अष्टरत्नौषधोधातु बीजलौहान्वितं शुभम् ।
सवस्त्रपूरितं चाद्भिर्मण्डले चाधिवासयेत् ॥९
सपल्लवं नृसिंहेन हुत्वा संपातसंचितम्[2] ॥
नारायणाख्यतत्त्वेन प्राणभूतं न्यसेत्ततः ॥१०

उस कलश को वस्त्र से आच्छादित करके अष्टरत्न ओषधि, धातु बीज और लोहे को उसमें छोड़ दे। पुनः उस कलश की विधिवत् पूजा करे। नृसिंहमन्त्र से उस कलश को जल से सींचकर उस पर पल्लव रखे। नारायण तत्व से प्राण भूत तत्त्व का न्यास करे।९-१०।

वैराजरूपं[3] तं ध्यायेत्प्रासादस्य सुरेश्वर ।
ततः पुरुषवत्सर्वं प्रासादं चिन्तयेद्बुधः ॥११
अधोदत्त्वा सुवर्णं तु तत्त्वभूतं[4] घटं न्यसेत् ।
गुर्वादौ दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणादेश्च भोजनम् ॥१२

अये सुरेश्वर ! उस कलश में प्रासाद के वैराजरूप का ध्यान कर सम्पूर्ण प्रासाद की कल्पना पुरुष के रूप में करे। तदनन्तर नीचे सुवर्ण देकर तत्त्वभूत कलश की स्थापना करें। गुरु आदि को दक्षिणा देकर और ब्राह्मण भोजन करा कर यह विधि समाप्त करे।११-१२।

ततः पश्चाद्वेदिबन्धं तदूर्ध्वं कण्ठबन्धनम् ।
कण्ठोपरिष्टात्कर्तव्यं विमलामलसारकम् ॥१३
तदूर्ध्वं वृकलं[5] कुर्याच्चिक्रं चाद्यं सुदर्शनम् ।
मूर्तिं श्रीवासुदेवस्य ग्रहगुप्तां निवेदयेत् ॥१४

---

१ च. °निर्मलम् । २ ख. संपातसिञ्चितम् । ङ. तु सिञ्चितम् । ३ ख. घ. वैराजभूतं । ४ घ. तद्वद्भूतं । ५ ख चुबुकं । ङ. च . चलकं ।

इसके बाद वेदि-वन्धन और तत्पश्चात् कण्ठ-वन्धन करे। कण्ठ के ऊपर विमलामल सारक, उसके ऊपर वृकल और उसके ऊपर सुदर्शनचक्र को निहित करे। यहीं ग्रहों से सुरक्षित श्री वासुदेव की मूर्ति निवेदित करे।१३-१४।

कलशं वाऽथ कुर्वीत तदूर्ध्वं चक्रमुत्तमम्।
वेद्याश्च परितः स्थाप्या अष्टौ[1] विघ्नेश्वरास्त्वज ॥१५

इसके अनन्तर पृथक् कलश स्थापित करे। उसके ऊपर सुदर्शन-चक्र बनावे। वेदी के चारों ओर आठ विघ्नेश्वरों की स्थापना करनी चाहिये।१५

चत्वारो वा चतुर्दिक्षु स्थापनीया गरुत्मतः।
ध्वजारोहं प्रवक्ष्यामि येन भूतादि नश्यति ॥१६

अथवा चारों दिशाओं में चार ही विघ्नेश्वर स्थापित करे। अब मैं ध्वजारोहण की विधि बतला रहा हूँ जिससे भूतप्रेतादि का विनाश हो जाता है।१६

प्रासादविम्वद्रव्याणां यावन्तः परमाणवः।
तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्ता विष्णुलोकभाक् ॥१७

इस विधि को पूर्ण करने से प्रसाद बिम्व बनाने में जितनी सामग्री काम में लाई गई है और उन सामग्रियों में जितने परमाणु हैं, उतने वर्षों तक प्रासाद (मन्दिर) का निर्माता विष्णुलोक में निवास करता है।१७

कुम्भाण्डवेदिविम्बानां[2] भ्रमणाद्वायुनाऽनघ।
कण्ठस्याऽऽवेष्टनाज्ज्ञेयं फलं कोटिगुणं ध्वजात् ॥१८

निष्पाप ब्रह्माजी! जब वायु से ध्वज फहराता है और कलश, वेदि, प्रासादबिम्ब के कण्ठ को आवेष्टित कर लेता है, तब प्रासाद प्रासादकर्ता को ध्वजारोपण से प्रासादबिम्बादि की अपेक्षा कोटि गुना अधिक फल प्राप्त होता है।१८

पताकां प्रकृतिं विद्धि दण्डं पुरुषरूपिणम्।
प्रासादो वासुदेवस्य मूर्तिरूपो[3] निबोध मे ॥१९

पताका को प्रकृति और दण्ड को पुरुष समझो। देवता के मन्दिर को देवमूर्ति समझो।१९

धारणाद्धरणीं[4] विद्धि आकाशं सुषिरात्मक।
तेजस्तत्पावकं विद्धि वायुं स्पर्शगतं तथा ॥२०

१ ख. ङ. च. विघ्नेश्व। २ ख. 'दिद्रव्याणां भ्र'। ङ. च. ०दिविद्यानाँ। ३ क॰ ङ. च मूर्तिभूतं। ४ च. ०रणी' वा ०।

वह मन्दिर देवता को धारण करता है अतः उसकी धरणी (पृथ्वी) समझो। उसमें छिद्र रहता है, वह स्वयं पोला है, अतः उसको आकाश समझो, उसकी प्रभा अग्नितत्त्व है (स्पर्श) के कारण उसको वायु भी समझो।२०

पाषाणादिष्वेवजलं पार्थिवं[1] पृथिवीगुणम्।
प्रतिशब्दोद्भवं शब्दं स्पर्शं स्यात्कर्कशादिकम्॥२१

पत्थर आदि में भी जल तत्त्व और पार्थिव तत्त्व होते है, उनमें प्रतिध्वनि शब्दतत्त्व होते हैं, उनकी कठोरता स्पर्श गुण है।२१

शुक्लादिकं भवेद्रूपं रसमाह्लाद[2] दर्शकम्।
धूपादिगन्धं गन्धं तु वाग्भेर्यादिषु संस्थिता॥२२

शुक्ल आदि उसका रूप और उस मन्दिर के दर्शन से जो आनन्द मिलता है, वह रस है। धूप आदि का गन्ध गुण और वाणी (ध्वनि) भेरी आदि में है।२२

शुकनासाश्रिता नासा बाहू भद्रात्मकौ[3] स्मृतौ।
शिरस्त्वण्डं निगदितं कलशो मूर्धजाः स्मृताः॥२३

शुकनासा, वेदिकानासा और भद्रात्मक भुजायें, अण्ड शिर और कलश केश है।२३

कण्ठं कण्ठमितिज्ञेयं स्कन्धो वेदी निगद्यते।
पायूपस्थे प्रणाले तु त्वक्सुधा परिकीर्तिता॥२४

कण्ठ, कण्ठ और वेदी कन्धे हैं। जल निकालने के लिए बनी हुई नालियाँ मल-मूत्र द्वार और सुधा (चूना) त्वचा है।२४

मुखं द्वारं भवेदस्य प्रतिमा जीव उच्यते।
तच्छक्तिं पिण्डिकां विद्धि प्रकृतिं च तदाकृतिम्॥२५

द्वार मुख और प्रतिमा जीव है, पिण्डिका को उसकी शक्ति और आकृति को प्रकृति समझो।२५

निश्चलत्वं च गर्भोऽस्या अधिष्ठाता तु केशवः।
एवमेष हरिः सक्षात्प्रासादत्वेन संस्थितः॥२६

इसकी स्थिरता गर्भ और अधिष्ठाता स्वयं हरि हैं। इस प्रकार साक्षात् हरि मन्दिर रूप में स्थित रहते हैं।२६

---

१ ख. ग. ङ. च. स्पर्शं। २ क ङ. च. °समाम्लादिदर्श°। घ. °समन्तादिदं°।
३ घ. तद्रथकौ।

जङ्घा त्वस्य शिवो ज्ञेयः स्कन्धे धाता व्यवस्थितः ।
ऊर्ध्वभागे स्थितो विष्णुरेवं तस्य स्थितस्य हि ॥२७
प्रासादस्य प्रतिष्ठां तु ध्वजरूपेण मे शृणु ।
ध्वजं कृत्वा सुरैर्दैत्या जितः शस्त्रादिचिह्नितम् ॥२८

प्रासाद की जङ्घा पर शिव और कन्ध पर ब्रह्मा विराजित रहते हैं, ऊपर के भाग को स्वयं विष्णु सुशोभित करते हैं। इस प्रकार विष्णु देवरूप में स्थित मन्दिर के ऊपर ध्वज-प्रतिष्ठा की विधि और फल को सुनो । शास्त्र आदि से चिह्नित ध्वजा के कारण ही देवता दानवों को परास्त करने में सफल हुए ।२७-२८।

अण्डोर्ध्वं[1] कलशं न्यस्य तदूर्ध्वं विन्सेद्ध्वजम् ।
बिम्बार्धमानं दण्डस्य त्रिभागेणाथ कारयेत् ॥२९
अष्टारं द्वादशारं वा मध्ये मूर्तिमताऽन्वितम् ।
नारसिंहेन ताक्ष्येण ध्वजदण्डस्तु निर्व्रणः ॥३०

पहले अण्ड (मन्दिर का ऊपरी गोल भाग, गुम्बज) के ऊपर कलश स्थापित करके उसके ऊपर बिम्ब के आधे भाग के बराबर ध्वजा को रखे । वह ध्वज दण्ड के तृतीय भाग के बराबर हो और आठ या बारह पंखुड़ियों वाले कमल या अन्य मूर्ति उस पर बनी हुई हो । नरसिंह अथवा तार्क्ष्य मन्त्र से ध्वजा के बाँस की गाँठे काटकर अलग कर दे ।२९-३०।

प्रासादस्य तु विस्तारो मानं दण्डस्य कीर्तितम् ।
शिखरार्धेन वा कुर्यात्तृतीयार्धेन वा पुनः ॥३१

ध्वज दण्ड का प्रासाद के विस्तार के बराबर हो अथवा शिखर के आधे या तृतीयांश के बराबर हो ।३१

द्वारस्य दैर्घ्यादिगुणं दण्डं वा परिकल्पयेत् ।
ध्वजयष्टिर्देवगृहे ऐशान्यां वायवेऽथवा ॥३२

अथवा उसे द्वार की ऊँचाई से दूना होना चाहिए । ध्वज दण्ड देवगृह के ईशानकोण में या वायव्य कोण में स्थापित करना चाहिए ।३२

क्षौमाद्यैश्च ध्वजं कुर्याद्विचित्रं वैकवर्णकम् ।
घण्टचामरकिङ्किण्या भूषितं पापनाशनम् ॥३३

ध्वजा रेशम या किसी अच्छे वस्त्र का हो । यह चितकबरा अथवा कोई एक रंग का हो । घण्टा, चामर और किङ्किणी से भूषित ध्वज सम्पूर्ण पापों का नाशक होता है ।३३

---

१ ख. अतोर्ध्वं ।

दण्डाग्राद्धरणीं यावद्वस्त्रैक्यं[1] विस्तरेण तु।
महाध्वजः सर्वदः स्यात्तुर्यांशाद्धीनतोऽर्चितः ॥३४
ध्वजे चार्धेन विज्ञेया पताका मानवर्जिता।
विस्तारेण ध्वजः कार्यो विंशदङ्गुलसंनिभः ॥३५

दण्ड के अग्रभाग से लेकर पृथिवी तक एक वस्त्र लपेट देने से वह महा-ध्वज सब कामनाओं को देने वाला होता है। चतुर्थांश कम होने पर वह ध्वज इष्ट-प्रद होता है। ध्वज पर लगाने वाली पताका के मान का कोई परिमाण नहीं होता है, परन्तु ध्वजा का परिणाम बीस अङ्गुल से कम नहीं होता है। ३४-३५।

अधिवासविधानेन चक्रं दण्डं ध्वजं तथा।
देववत्सकलं कृत्वा मण्डपस्नपनादिकम् ॥३६
नेत्रोन्मीलनकं त्यक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वमाचरेत्।
अधिवासयेद्विधिना[2] शय्यायां स्थाप्य देशिकः ॥३७

साधिवास विधि के अनुसार चक्र, दण्ड तथा ध्वज का देवता की भाँति मण्डप स्नान आदि कराना चाहिये। नेत्रोन्मीलन को छोड़कर ये उपर्युक्त सारी विधियाँ एकाग्र भाव से सम्पन्न होनी चाहिए। आचार्य पताका को शय्या पर रखकर उसकी विधिवत् पूजा करे।३६-३७।

ततः सहस्रशीर्षेति सूक्तं चक्रे न्यसेद्बुधः।
तथा सुदर्शनं मन्त्रं मनस्तत्त्वं निवेशयेत् ॥३८

तत्पश्चात् 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि सूक्त को उस पताका पर बने हुए चक्र पर लिख दे तथा उसके ऊपर सुदर्शन मन्त्र और मनस्तत्त्व का न्यास करे।३८

मनोरूपेण तस्यैव सजीवकरणं स्मृतम्।
अरेषु मूर्तयो न्यस्याः केशवाद्याः सुरोत्तम ॥३९

उसका मन रूप से सजीवीकरण शास्त्रों द्वारा समर्थित है। अये सुरोत्तम! उस कमलचक्र की प्रत्येक अरे पर केशव आदि की मूर्तियाँ न्यस्त होनी चाहिए। ३९

नाभ्यब्जप्रतिनेमीषु न्यसेत्तत्वानि देशिकः।
नृसिंहं विश्वरूपं वा अब्जमध्ये निवेशयेत् ॥४०

आचार्य नाभि और प्रत्येक नेमि पर तत्त्वों का न्यास करे, कमल के मध्य में नृसिंह अथवा विश्वरूप का न्यास करे।४०

---

१ ख. ग. घ. 'बद्धस्तैकं वि'। २ ख. घ. 'सयेच्च विधि'।

सकलं विन्यसेद्दण्डे सूत्रात्मानं सजीवकम् ।
निष्कलं परमात्मानं ध्वजे ध्यायन्न्यसेद्धरिम् ।।४१

उस दण्ड पर सकलीभूत जीवात्मा सहित सूत्रात्मा का न्यास करे। निष्कल परमात्मा हरि का ध्यान करके ध्वज पर हरि का न्यास करे ।४१

तच्छक्तिं व्यापिनीं ध्यायेद् ध्वजरूपां बलाबलाम् ।
मण्डले[1] स्थाप्य चाभ्यर्च्य होमं कुण्डेषु कारयेत् ।।४२

उस परमात्मा की व्यापक ध्वज रूप बलाबल शक्ति का ध्यान करके उसको मण्डप में स्थापित करके उसकी पूजा करे । तदनन्तर कुण्ड में हवन करे ।४२

कलशे स्वर्णकलशं न्यस्य रत्नानि पञ्च च ।
स्थापयेच्चक्रमन्त्रेण स्वर्णचक्रमधस्ततः ।।४३

कलश पर एक सोने का कलश रखकर उसमें पञ्चरत्न छोड़े । उसके नीचे चक्रमन्त्र से एक स्वर्ण चक्र रखे ।४३

पारदेन तु संप्लाव्य[2] नेत्रपट्टेन च्छादयेत् ।
ततो निवेशयेच्चक्रं तन्मध्ये तु हरिं स्मरेत् ।४४

उस कलश को पारद (पारा) से सींचकर उसे नेत्रपट्ट से ढक दे । उसके मध्य में हरि का स्मरण करते हुए चक्र को स्थापित करे ।४४

ॐ क्षौं[3] नृसिंहाय नमः पूजयेत्स्थापयेद्धरिम् ।
ततो ध्वजं गृहीत्वा तु यजमानः सबान्धवः ।।४५
दधिभक्तयुते पात्रे ध्वजस्याग्रं निवेशयेत् ।
ध्रुवाद्येन फडन्तेन ध्वजं मन्त्रेण पूजयेत् ।।४६

'ॐ क्षौं' नृसिंहाय नमः' इत्यादि मन्त्र से हरि की स्थापना और अर्चना करे । तदनन्तर बन्धु-बान्धवों सहित उस ध्वज को उठाकर एक पात्र में दही और भात रखकर उसमें निचले सिरे को रख दे । ध्रुव को आदि में और फट् को अन्त में रखकर अर्थात् 'ॐ फट्' इत्यादि मन्त्र से ध्वज की पूजा करे ।४५-४६।

शिरस्याधाय तत्पात्रं नारायणमनुस्मरन् ।
प्रदक्षिणं तु कुर्वीत तूर्यमंगलनिःस्वनैः ।।४७

शिर पर उस पात्र को रखकर नारायण को स्मरण करता हुआ बाजे और मङ्गलगान के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा करे ।४७

---

१ घ. मण्डपे । २ क. ख. ङ. च. सम्प्राप्य । ३ ङ. च. ह्रौं ।

तत्तो निवेशयेद्दण्डं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण तु ।
मुञ्चामि त्वेतिसूक्तेन ध्वजं मुञ्चेद्विचक्षणः ॥४८

पुनः ध्वजदण्ड अष्टाक्षर मन्त्र से स्थापित करे तथा 'मुञ्चामि त्वा' इत्यादि सूक्त से ध्वज को छोड़ दे ।४८

पात्रं ध्वजं कुञ्जरादिं दद्यादाचार्यके द्विजः ।
एष साधारणः प्रोक्तो ध्वजस्याऽऽरोहणे विधिः ॥४९

द्विज आचार्य को पात्र, ध्वज, हाथी आदि दक्षिणा में दे । यह ध्वजारोपण की साधारण विधि है ।४९

यस्य देवस्य यच्चिह्नं तन्मन्त्रेण स्थिरं चरेत् ।
स्वर्गच्छेद्ध्वजदानात्तु भुवि राजा वली भवेत् ॥५०

जिस देव का जो चिह्न है, उस मन्त्र से ध्वजा को स्थिर करना चाहिए । मनुष्य ध्वज-दान से स्वर्ग प्राप्त करता है और इस पृथिवी पर वलवान् राजा बनता है ।५०

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽवभृथस्नानद्वारप्रतिष्ठाध्वजारोपणादिविधिकथनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।६१

———

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

लक्ष्म्यादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिः

श्रीभगवानुवाच—

समुदायेन देवादेः प्रतिष्ठां प्रवदामि ते ।
लक्ष्म्याः प्रतिष्ठां प्रथमं तथा देवीगणस्य च ॥१
पूर्ववत्सकलं कुर्यान्मण्डपस्नपनादिकम् ।
भद्रपीठे श्रियं न्यस्य स्थापयेदष्ट वै घटान् ॥२

श्रीभगवान् बोले—अब मैं तुमसे सामूहिक रूप से देवों की प्रतिष्ठा के विषय में बतला रहा हूँ । पहले लक्ष्मी और देवियों की प्रतिष्ठा विधि को सुनो—पूर्व की भाँति मण्डप-स्नान आदिसब विधियाँ सम्पन्न कर भद्रपीठ पर लक्ष्मी का न्यास करे और आठ कलशों को स्थापित कर पूजन करे ।१-२।

घृतेनाभ्यज्य[1] मूलेन स्नापयेत्पञ्चगव्यकैः ।
हिरण्यवर्णां हरिणीं नेत्रे चोन्मीलयेच्छ्रियाः[2] ॥३

घी से नहलाकर मूलमन्त्र से पञ्चगव्य से स्नान कराये । 'हिरण्यवर्णां हरिणीं' इत्यादि मन्त्र से लक्ष्मी का नेत्रोन्मील करे ।३

---

१ ख. °नाभ्युक्ष्य मू° । २ क ङ. °या । तस्मादावाह° । घ, °या । तन्म आ° । च° याः । श्रिश्मावाह° ।

तां म आवह इत्येवं प्रदद्यान्मधुरत्रयम् ।
अश्वपूर्णेति[1] पूर्वेण[2] तां कुम्भेनाभिषेचयेत् ।।४

'तां म आवह' इत्यादि मन्त्र से तीन प्रकार के मधुर पदार्थ अर्पित करे। "अश्वपूर्ण' इत्यादि मन्त्र से पूर्व की ओर स्थापित किये हुए कलश के जल से स्नान कराये ।४

कांसोऽस्मितेति[3] याम्येन[4] पश्चिमेनाभिषेचयेत् ।
चन्द्रां प्रभासामुच्चार्याऽऽदित्यवर्णेति चोत्तराम् ।।५

'कांसोऽस्मि' इत्यादि मन्त्र से दक्षिण दिशा वाले कलश से 'चन्द्रां-प्रभासां" इत्यादि मन्त्र से पश्चिम घट और 'आदित्यवर्णे' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए उत्तर दिशा वाले कलश से नहलावे ।५

उपैतु मेति चाऽऽग्नेयात्क्षुत्पिपासेति नैऋतात् ।
गन्धद्वारेति वायव्यान्मनसः काममाकुतिम् ।।६
ईशानकलशेनैव शिरः सौवर्णकर्दमात् ।
एकाशीतिघटैः स्नानं मन्त्रेणायं[5] सृजन्क्षितम् ।।७
आर्द्रां पुष्करिणीं गन्धैरार्द्रामित्यादि पुष्पकैः[6] ।
तां म आवह मन्त्रेण आनन्द इति चाखिलम् ।।८

'उपैतु मां' इत्यादि मन्त्र से आग्नेय घट से, 'क्षुत्पिपासा' इत्यादि मन्त्र से नैर्ऋत्य कलश से, 'गन्धद्वारा' इत्यादि मन्त्र से वायव्य से तथा 'मनसः काम-माकूर्तिं' इस मन्त्र से ईशान कलश के जल से अभिषेक करना चाहिये। 'कर्दमेन प्रजाभूता' इत्यादि मन्त्र से सुवर्णमय कलश के यव और इक्यासी कलशों के जल से 'आपः सृजन्तु' इस मन्त्र मे नहलाये, 'आर्द्रां पुष्करिणीं' इत्यादि मन्त्र से गन्ध अर्पण करे। 'आर्द्रां यः करिणीं' इत्यादि मन्त्र से पुष्प चढ़ावे। 'तां म आवह' इत्यादि मन्त्र से तथा 'आनन्द' इत्यादि श्लोक से अखिल सामग्रियों को चढ़ावे ।६-८।

श्रायन्तीयेन[7] शय्यायां श्रीसूक्तेन च संनिधिम् ।
लक्ष्मीबीजेन चिच्छक्तिं विन्यस्याभ्यर्चयेत्पुनः ।।९

श्रायन्तीय सूक्त से शय्या पर लिटावे, श्रीसूक्त से सन्निधीकरण करे और लक्ष्मीबीज से चिच्छक्ति का विन्यास करके पुनः अर्चन करे ।९

---

१ घ. अश्वपूर्वेति । २ ख. पूर्णेन । ३ घ. कामोऽस्मितेति । ४ घ. चन्द्रं । ५ घ. °णापः सृ° । ६ घ. °कैः । तन्म आ° । ७ ख.शायन्तीयेन ।

श्रीसूक्तेन मण्डपेऽथ कुण्डेष्वब्जानि होमयेत् ।
करवीराणि वा हुत्वा सहस्रं शतमेव वा ॥१०

तदनन्तर मण्डप के मध्य में कुण्ड में श्रीसूक्त से कमल का हवन करे अथवा सौ या हजार करवीर के फूलों का हवन करे ।१०

गृहोपकरणान्तादि[1] श्री सूक्तेनैव चार्पयेत् ।
ततः प्रासादसंस्कारं सर्वं कृत्वा तु पूर्ववत् ॥११
([2]मात्रार्थे [3]पिण्डिकां कृत्वा प्रतिष्ठानं ततः श्रियाः) ।
श्रीसूक्तेन च सांनिध्यं पूर्ववत्प्रत्यृचं[4] जपेत् ॥१२

गृहोपयोगी वस्तुओं को श्रीसूक्त से अर्पित करे । तत्पश्चात् पूर्व की भाँति मन्दिर का तथा पिण्डिका का संस्कार करके लक्ष्मी की प्रतिष्ठा करे । पहले की ही भाँति श्रीसूक्त से तसन्निवीकरण करके प्रत्येक ऋचा का पाठ करे ।११-१२।

चिच्छक्तिं वोधयित्वा तु मूलात्सांनिध्यकं चरेत् ।
भूस्वर्णवस्त्रगोन्नादि गुरवे ब्रह्मणेऽर्पयेत् ॥१३
एवं देव्योऽखिलाः स्थाप्य[5] राज्यस्वर्गादिभाग्भवेत् ॥१४

मूल मन्त्र से चिच्छक्ति को उद्बुद्ध करके सन्निवीकरण करे । पूजा समाप्त करके गुरु को भूमि, वस्त्र, गाय और अन्न आदि अर्पित करे । इस प्रकार अखिल देवियों की स्थापना करने से मनुष्य राज्य और स्वर्ग का अधिकारी होता है ।१३-१४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये लक्ष्म्यादिदेवताप्रतिष्ठासामान्य विधिकथनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

विष्णवादिदेवताप्रतिष्ठासामान्यविधिः पुस्तकलेखनविधिश्च

श्रीभगवानुवाच—
एवं तार्क्ष्यस्य चक्रस्य ब्रह्मणो नृहरेस्तथा ।
प्रतिष्ठा विष्णुवत्कार्या स्वस्वमन्त्रेण तां शृणु ॥१

श्रीभगवान् बोले—इसी प्रकार गरुड़, चक्र, ब्रह्मा और नृसिंहदेव की प्रतिष्ठा भी विष्णु की भाँति उन-उन देवों के मन्त्रों से करनी चाहिये । अब उसे (मुझसे) सुनिये ।१

१ ख णाद्यादि । २ मात्रार्थे...........श्रियाः घ पुस्तके नास्ति । ३ घ. मन्त्रेण । ४ ङ. यजेत् । ५ घ. स्थाप्याऽऽवाह्य स्वर्गादि भावयेत् ।

सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्टभयङ्कर, छिन्धि च्छिन्धि
भिन्धि भिन्धि विदारय विदारय परमन्त्रान्ग्रस ग्रस
भक्षय भक्षय भूतांस्त्रासय त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः ॥२
अभ्यर्च्य चक्रं चानेन रणे दारयते रिपून् ॥३

सुदर्शन महाचक्र, शान्त, दुष्ट, भयङ्कर, छिन्धि ,छिन्धि, भिन्धि, भिन्धि विदारय, विदारय, परमन्त्रान् ग्रस-ग्रस, भक्षय, भक्षय, भूतांस्त्रासय, त्रासय हुं फट् सुदर्शनाय नमः—इस मन्त्र से चक्र की पूजा करने से रण में शत्रुओं का नाश होता है ।२-३।

क्षौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा ॥४
नरसिंहस्य मन्त्रोऽयं पातालाख्यस्य[1] वच्मि ते ॥५

ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकटविकीर्णकेशरसटाप्रक्षुभितमहार्णवाम्भोदुन्दुभिनिर्घोषाय[2] सर्वमन्त्रोत्तारणाय एह्येहि भगवन्नरसिंह पुरुष परापरब्रह्म सत्येन स्फुर स्फुर विजृम्भ विजृम्भ आक्रम आक्रम गर्ज गर्ज मुञ्च मुञ्च सिंहनादं[3] विदारय विदारय विद्रावय विद्रावयाऽविशाऽविश सर्वमन्त्ररूपाणि मन्त्रजातीश्च हन हन च्छिन्द च्छिन्द संक्षिप संक्षिप दर[4] दर दारय दारय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ज्वालामालासंघातमयसर्वतोऽनन्तज्वालावज्राशनिचक्रेणसर्वपातालानुत्सादयोत्सादय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्रशरपञ्जरेण सर्वपातालान्परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरवासिनां हृदयान्याकर्षयाकर्षय शीघ्रं दह दह पच पच मथ मथ शोषय शोषय निकृन्तय निकृन्तय तावद्यावन्मे वशमागताः पातालेभ्यः ([5]फडसुरेभ्यः फण्मन्त्ररूपेभ्यः फण्मन्त्रजातिभ्यः फट् संशयान्मां भगवन्नरसिंहरूप विष्णो सर्वापद्भ्यः) सर्वमन्त्ररूपेभ्यो रक्ष रक्ष हुं फण्नमो नमस्ते ॥६

नरसिंहस्य विद्येऽयं हरिरूपाऽर्थसिद्धिदा[6] ।
त्रैलोक्यमोहनैर्मन्त्रैः स्थाप्यस्त्रैलोक्यमोहनः ॥७

'ॐ क्षौं नरसिंह उग्र रूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा' । यह नरसिंह भगवान् का मन्त्र है । अब मैं तुमको पाताल नृसिंह मन्त्र का उपदेश करता हूँ । ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे....नमो नमस्ते ।

१ ङ. °लाक्षस्य । २ क. घ. च. °म्भोददुभि° । ३ क. ङ. च. °नादान्विद्रा° ।
४ घ. सर सर । ५ फडसुरेभ्यः....सर्वापद्भ्यः । ६ ङ. च. °पा सुसि° ।

यह श्रीहरिस्वरूपिणी नृसिंह विद्या है, जो अर्थसिद्धि प्रदान करने वाली है। त्रैलोक्य-मोहन मन्त्रों से शान्ति करके द्विभुज या चतुर्भुज त्रैलोक्यमोहनविष्णु की स्थापना करनी चाहिए।४-७।

गदी दक्षे शान्तिकरो द्विभुजो वा चतुर्भुजः।
वामोर्ध्वे कारयेच्चक्रं पाञ्चजन्यमथो ह्यधः॥८
श्रीपुष्टिसंयुतं कुर्याद्‌वलेन सह भद्रया।
प्रासादे स्थापयेद्विष्णुं गृहे वा मण्डपेऽपि वा॥९

दाहिनी ओर गदा और बाँयी ओर ऊपर की ओर चक्र और नीचे पाञ्च-जन्य शंख रहे। साथ ही, बलभद्र और सुभद्रा को श्री और पुष्टि के सहित स्थापित करना चाहिए। विष्णु की स्थापना मन्दिर, घर या मण्डप में होनी चाहिए।८-९।

वामनं चैव वैकुण्ठं हयास्यमनिरुद्धकम्।
स्थापयेज्जलशय्यास्थं मत्स्यादींश्चावतारकान्॥१०

वामन, वैकुण्ठ, हयग्रीव, अनिरुद्ध और जलशय्या पर सोने वाले मत्स्य आदि अवतारों को, जलशय्या पर स्थापित करके शयन करावे।१०

संकर्षणं विश्वरूपं लिङ्गं वै रुद्रमूर्तिकम्।
अर्धनारीश्वरं तत्र[1] हरिशंकरमातृकाः॥११
भैरवं च तथा सूर्यं ग्रहांस्तद्वद्विनायकम्।
गौरीमिन्द्रादिभिः सेव्यां चित्रजां च बलाबलाम्॥१२

संकर्षण, विश्वरूप, रुद्रमूर्ति लिङ्ग अर्धनारीश्वर, हरिहर, मातृकागण, भैरव, सूर्य, ग्रह, विनायक तथा इन्द्र आदि के द्वारा सेवनीया गौरी और चित्रजा एवं 'बलाबला' विद्या की स्थापना करनी चाहिए।११-१२।

पुस्तकानां प्रतिष्ठां च वक्ष्ये लिखनतद्विधिम्।
स्वस्तिके मण्डलेऽभ्यर्च्य शरयन्त्रासने[2] स्थितम्॥१३
लेख्यं च लिखितं पुस्तं गुरुर्विद्यां हरिं यजेत्।
यजमानो गुरुं विद्यां हरिं लिपिकृतं नरम्॥१४
प्राङ्मुखः पद्मिनीं ध्यायेल्लिखित्वा श्लोकपञ्चकम्।
रौप्यस्थमष्या हैम्या च लेखन्या[3] नागराक्षरम्॥१५

अब मैं पुस्तकों की प्रतिष्ठा और पुस्तक-लेखन विधि को बतला रहा हूँ। गुरु स्वस्तिक-मण्डल में शरपत्र (शरपत) के आसन पर लिखे जाने वाले ग्रन्थ

१ घ. तद्वद्धरि°। २ घ. °रपत्रास। ३ तु वराक्षरमिति क्वचित् पुस्तके पाठः।

लेख्य सामग्री, लिखित पुस्तक, विद्या और हरि की पूजा करे । यजमान गुरु, विद्या, हरि और लिपिक की पूजा करे। पहले लिपिक पूर्वाभिमुख होकर पद्मिनी का ध्यान करके रुपहले पात्र में रखी हुई स्याही से सुनहरी लेखनी से नागराक्षर में पाँच श्लोक लिखे ।१३-१५।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या शक्त्या दद्याच्चदक्षिणाम् ।
गुरुं विद्यां हरिं प्राच्र्य[1] पुराणादि लिखेन्नरः ॥१६

यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तथा दक्षिणा देनी चाहिए। गुरु, विद्या और हरि की पूजा करके पुराणादि को मनुष्य, लिखना प्रारम्भ करे ।१६

पूर्ववन्मण्डलाद्यैश्च ऐशान्यां भद्रपीठके ।
दर्पणे पुस्तकं धृत्वा[2] सेचयेत्पूर्ववद्घटैः ॥१७

पूर्व की भाँति मण्डल आदि बनाकर ईशान कोण में भद्रपीठ के ऊपर दर्पण पर पुस्तक को रखकर स्थापित कलशों से पुस्तक का अभिषेक करे ।१७

नेत्रोन्मीलकं कृत्वा शय्यायां तु न्यसेन्नरः ।
न्यसेत्तु पौरुषं सूक्तं वेदाद्यं तत्र पुस्तके ॥१८

नेत्र खोलकर शय्या पर पुस्तक को रखे । उस पुस्तक के ऊपर पुरुषसूक्त और वेद आदि का न्यास करे ।१८

कृत्वा सजीवीकरणं प्राच्र्य हुत्वा चरुं ततः ।
संप्राच्र्य[3] दक्षिणाभिस्तु गुर्वादीन्भोजयेद्द्विजान् ॥१९

सजीवीकरण करके पुस्तक की पूजा करे, चरु का हवन करे । दक्षिणा आदि के द्वारा गुरु आदि की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ।१९

रथेन हस्तिना वाऽपि भ्रामयेत्पुस्तकं नरैः ।
गृहे देवालयादौ तु पुस्तकं स्थाप्य पूजयेत् ॥२०

तदनन्तर उस पुस्तक को रथ, हाथी या मनुष्यों के द्वारा नगर में घुमाना चाहिये । गृह और देवालय आदि में पुस्तक की स्थापना करके उसकी पूजा करनी चाहिए ।२०

वस्त्रादिवेष्टितं पाठादादावन्ते समर्चयेत् ।
जगच्छान्तिं चावधार्य पुस्तकं वाचयेन्नरः ॥२१

उस पुस्तक को वस्त्र में लपेट कर रखना चाहिए और पुस्तक पढ़ने के

---

१ ख. °च्र्य कृत्वा च वस्त्रतः । २ क. घ. ङ. च. दृष्ट्वा । ख. दत्वा । ३ घ. संप्राश्य ।

आदि और अन्त में उसकी पूजा करनी चाहिये। पाठक, जगत् में शान्ति की स्थापना के उद्देश्य से पुस्तक का पाठ करे। २१

अध्यायमेकं कुम्भादिभिर्यजमानादि सेचयेत्।
द्विजाय पुस्तकं दत्वा फलस्यान्तो न विद्यते ॥२२

एक अध्याय पढ़कर कलश के जल से यजमान आदि के ऊपर जल छिड़कना चाहिये। ब्राह्मण को पुस्तक दान करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।२२

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
नरकादुद्धरन्त्येव[1] जपवापनदोहनात् ॥२३

गाय, भूमि और सरस्वती के तीन दान ही सर्वोत्कृष्ट माने गये हैं। ये तीनों दोहन, वपन और जप करने से मनुष्य को नरक से निकालने वाले हैं।२३

विद्यादानफलं दत्त्वा मष्याक्तं पत्रसंचयम्।
यावत्तु पत्रसंख्यानमक्षराणां तथाऽनघ ॥२४
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते।
पञ्चरात्रं पुराणानि भारतानि ददन्नरः ॥२५
कुलैकविंशमुद्धृत्य परे तत्त्वे तु लीयते ॥२६

स्याही से लिखे हुए पत्रों के समूह (पुस्तक) के दान से तथा विद्या-दान से दाता उतने हजार वर्षों तक विष्णुलोक में पूजित होता है जितनी पुस्तक में पत्रों की संख्या होती है और जितनी उसमें लिखे हुए अक्षरों की संख्या होती है। पञ्चरात्र, पुराण और महाभारत का दान करने से दाता अपने कुल की इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करके परम तत्त्व में विलीन हो जाता है।२४-२६।

इत्यादि महापुराण आग्नेये विष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठासामान्य-विधिकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः।६३

---

१ एतदर्घं ङ. पुस्तक एव केवलम्।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कूपवापीतडागप्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच—

कूपवापीतडागानां प्रतिष्ठां वच्मि तां शृणु ।
जलरूपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः ॥१

श्री भगवान् बोले—अब मैं कुआँ, बावली और तड़ाग की प्रतिष्ठा को कह रहा हूँ, उसे सुनो । हरि जल-स्वरूप हैं । सोम और वरुण जल के उत्तम देवता हैं ।१

अग्नीषोममयं विश्वं विष्णुरापस्तु कारणम् ।
हैमं रौप्यं रत्नजं वा वरुणं कारयेन्नरः ॥२

अग्नि और सोममय संसार के विष्णुरूप जल कारण हैं । वरुण की पूजा के लिए मनुष्य सोने, चाँदी अथवा रत्न की वरुण प्रतिमा बनाये ।२

द्विभजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम् ।
वामेन नागपाशं तु[1] नदीनागादिसयुतम् ॥३

मूर्ति दो भुजावाली, हंस पर आरूढ़, दाहिने हाथ से अभय प्रदान करने की मुद्रा व्यक्त करने वाली हो । उसके बाएँ हाथ में नागपाश हो, नदी और नाग की प्रतिमाएँ भी साथ में हो ।३

यागमण्डपमध्ये स्याद्वेदिका कुण्डमण्डिता ।
तोरणं वारुणं कुम्भं न्यसेच्च करकान्वितम् ॥४

यज्ञमण्डप के मध्य में कुण्ड से सुशोभित एक वेदी का निर्माण करे जिसके चारों ओर तोरण बँधा हो और जिस पर करक से सुशोभित और जल से परिपूर्ण एक घट रखा हो ।४

भद्रके चार्धचन्द्रे वा स्वस्तिके द्वारिकुम्भकान् ।
अग्न्याधानं चापि[2] कुण्डे कृत्वा पूर्णां प्रदापयेत् ॥५

वरुणं स्नानपीठे तु ये ते शतेति संस्पृशेत् ।
घृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण देशिकः ॥६

द्वार पर भद्रक, अर्धचन्द्र या स्वस्तिक के आकार का मण्डप बनाकर कलशों को स्थापित करे । कुण्ड में अग्न्याधान करके उसमें पूर्णाहुति करनी

१घ. तं । २ क. ङ. च. वाप्यकुण्डे । घ. चाप्यकुण्डे ।

चाहिए। स्नानपीठ पर वरुण को स्थापित करके "ये ते शतं" इत्यादि मन्त्र से उनका स्पर्श करे। तत्पश्चात् आचार्य मूलमन्त्र पढ़कर घी से वरुण को नहलाए।५-६।

शं नो देवीति प्रक्षाल्य शुद्धवत्या शिवोदकैः।
अधिवासयेदष्टकुम्भान्सामुद्रं पूर्वकुम्भके ॥७
गाङ्गमग्नौ वर्षतोयं दक्षे रक्षस्तु[1] नैर्झरम्।
नदीतोयं पश्चिमे तु वायव्ये तु नदोदकम् ॥८
औद्भिज्जं चोत्तरे स्थाप्यमैशान्यां तीर्थसम्भवम्।
अलाभे तु नदीतोयं[2] यासां राजेति[3] मन्त्रयेत् ॥९

'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्र से प्रक्षालन कर शुद्धवती ऋचा के शुद्ध जल से स्नान कराकर, आठ दिशा के कलश में समुद्र का, अग्निकोण वाले में गङ्गा का, दक्षिण कलश में वर्षा का, नैर्ऋत कोण में झरने का, पश्चिम दिशा में नदी का, वायव्य कोण में नद का तथा उत्तरस्थ कलश में वनस्पतियों से मिश्रित और ईशान कोण में स्थापित कलश में तीर्थ-जल रखना चाहिए। यदि इतने प्रकार के जल न मिले तो सब में नदी का जल छोड़कर "यासां राजा" इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दे।७-९।

(देवं[4] निमार्ज्य निर्मथ्य[5] दुर्मित्रियेति विचक्षणः।)
नेत्रे चोन्मीलयेच्चित्रं तच्चक्षुर्मधुरत्रयैः ॥१०
ज्योतिः[6] सम्पूजयेद्धैम्यां[7] गुरवे गामथार्पयेत्।
समुद्रज्येष्ठेत्यभिषिञ्चेद्वरुणं पूर्वकुम्भतः ॥११

विद्वान् आचार्य विधिपूर्वक देवता (वरुण) के ऊपर मार्जन—जल छिड़ककर या भलीभाँति नहलाकर 'दुर्मित्रिय' इत्यादि मन्त्र से निर्मन्थन करे। "चित्रं देवानाम्" इत्यादि मन्त्र से देवप्रतिमा का नेत्रोन्मीलन करके ,'तच्चक्षुः' इत्यादि मन्त्र से मधुरत्रय अर्पित करे। तदनन्तर वरुण की हेममय मूर्ति में ज्योति की पूजा करके गुरु को गाय का दान करे। "समुद्रज्येष्ठा" इत्यादि मन्त्र से पूर्व कुम्भ के जल से वरुण को नहलाए।१०-११।

---

१ ख. रक्षः स्थले करम्। ङ. च. रक्षस्व नैर्ऋतम्। २ क. ङ. च. नदीक्षोदं। ३ ङ. च. रुद्रेति। ४ देवं.................... विचक्षणः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ५ ख. निर्मज्य। घ. निर्मञ्छ्य। ६ घ °पूरये। ७ ङ. येद्वंश्यां गु०।

समुद्रं गच्छ गाङ्गेयात्सोमो धेन्विति वर्षकात् ।
देवीरापो निर्झरादि्भर्नदादि्भः पञ्चनद्यतः ॥१२
उदि्भज्जादि्भश्चोदि्भदेन पावमान्याऽथ तीर्थकैः ।
आपो हि ष्ठा पञ्चगव्याद्धिरण्यवर्णेति स्वर्णजात् ॥१३

"समुद्रं गच्छ "इत्यादि मन्त्र से गङ्गाजल से, "सोमो धेन्वा' इत्यादि मन्त्र से वर्षाजल से, "देवीरापो" इत्यादि मन्त्र से झरने के जल से, 'पञ्चनद्यः' इत्यादि मन्त्र से नदी के जल से 'उदि्भद्भ्यः' इत्यादि मन्त्र से उदि्भज्ज जल से "पावमानी" इत्यादि मन्त्र से तीर्थजल से, "आपो हि ष्ठा" इत्यादि मन्त्र से स्वर्ण जल से स्नान कराना चाहिए ।१२-१३।

आपो अस्मेति वर्षोत्थैर्व्याहृत्या कूपसंभवैः ।
वरुणं च तडागोत्थैर्वरुणादि्भस्तु वाग्यतः[1] ॥१४
आपो देवीति गिरिजैरेकाशीतिघटैस्ततः ।
स्नापयेद्वरुणस्येति त्वं नो वरुण चार्धकम् ॥१५
व्याहृत्या मधुपर्कं तु बृहस्पतेति वस्त्रकम् ।
वरुणेति पवित्रं तु प्रणवेनोत्तरीयकम् ॥१६
यद्वारुणेन[2] पुष्पादि प्रदद्याद्वरुणाय तु ।
चामरं दर्पणं क्षत्रं व्यजनं वैजयन्तिकम् ॥१७

"आपो अस्मात्" इस मन्त्र से वर्षाजल, से व्याहृतियों से कुएँ के जल से 'वरुणं च' इत्यादि मन्त्र से तालाव के जल से और वरुण के जल से मौन होकर स्नान कराना चाहिए। 'आपो देवी' इत्यादि मन्त्र से पर्वतीय जल से स्नान कराकर इक्यासी कलशों से पुनः "वरुणस्य" इत्यादि मन्त्रों से स्नान कराना चाहिए। "त्वं नो वरुण' इत्यादि मन्त्र से अर्घ और व्याहृतियों से मधुपर्क अर्पित करे। "बृहस्पते" इस मन्त्र से वस्त्र, "वरुण" इत्यादि मन्त्र से पवित्रक, प्रणव से उत्तरीय और "यद्वारुणेन" इत्यादि से वरुण को पुष्प आदि अर्पित करे। इसी प्रकार चामर, दर्पण, क्षत्र, व्यजन और पताका भी मूलमन्त्र से चढ़ावे। "वरुणं वा" इत्यादि मन्त्र से सन्निधीकरण और "वरुण मन्त्र" से पूजा करे ।१४-१७।

मूलेनोत्तिष्ठेत्युत्थाप्य तां रात्रिमधिवासयेत् ।
वरुणं वेति सान्निध्यं यद्वारुण्येन[3] पूजयेत् ॥१८
सजीवीकरणं मूलात्पुनर्गन्धादिना यजेत् ।
मण्डले[4] पूर्ववत्प्राच्र्य कुण्डेषु समिदादिकम् ॥१९

१ख. घ. वश्यतः २घ यद्वारण्येन । ङ. च. साद्वरुण्येन । ३घ. यद्वारण्येन । ङ. च. सद्वारुण्येन । ४ घ मण्डपे ।

वेदादिमन्त्रैर्गङ्गाद्याश्चतस्रो धेनवो दुहेत् ।
दिक्ष्वथो वै यवचरुं ततः संस्थाप्य होमयेत् ॥२०
व्याहृत्या वाऽथ गायत्र्या मूलेनाऽऽमन्त्रयेत्तथा ॥२०½

मूलमन्त्र से सजीवीकरण करके पुनः गन्ध आदि से पूजन करे। मण्डल में पूर्व की भाँति अग्नि की पूजा करके हवन कुण्डों में वेदादि मन्त्रों से समिधा आदि का हवन करे। गङ्गा आदि चार धेनुओं का दोहन करे। प्रत्येक दिशा में देवों को स्थापित करके यव-चरु का हवन करे। व्याहृति, गायत्री अथवा मूलमन्त्र से आवाहन करना चाहिए।१८-२०½।

सूर्याय प्रजापतये द्यौः स्वाहा चान्तकनिग्रहाय[1] ॥२१
तस्यै पृथिव्यै देहधृत्यै इह स्वधृतये ततः ।
इह रत्यै चेह रमत्या उग्रो भीमश्च रौद्रकः ॥२२
विष्णुश्च वरुणो धाता रायस्पोषो महेन्द्रकः ।
अग्निर्यमो नैर्ऋतोऽथ वरुणो वायुरेव च ॥२३
कुवेर ईशोऽनन्तोऽथ ब्रह्मा राजा जलेश्वरः ।
तस्मै स्वाहेदं विष्णुश्च तद्विप्रासेति होमयेत् ॥२४

"सूर्याय प्रजापतये द्यौः.........तस्मै स्वाहा" इत्यादि मन्त्र से हवन करना चाहिए। "विष्णुश्च तद्विप्रासः" इत्यादि मन्त्र से भी हवन करे।२१-२४।

सोमो धेन्विति षड्हुत्वा इमं मेति च होमयेत् ।
आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिमा रुद्रेति होमयेत् ॥२५
दशदिक्षु बलिं दद्याद गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् ।
प्रतिमां तु समुत्थाप्य मण्डले विन्यसेद्बुधः ॥२६
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्हैमपुष्पादिभिः क्रमात् ।
जलशयांस्तु दिग्भागे वितस्तिद्वयसंमितान् ॥२७

"सोमो धेनु" इत्यादि मन्त्र से छह बार आहुतियाँ देकर "इमं मे" "आपो हि ष्ठा", इमा रुद्र" इन तीनों मंत्रों से तीन बार हवन करे। दशों दिशाओं में बलि प्रदान करके गन्ध-पुष्पादि से प्रतिमा की पूजा करे। कुशल आचार्य प्रतिमा को मण्डल में स्थापित करके गन्ध, पुष्प और सुवर्ण आदि से पूजन करे। तत्पश्चात् आचार्य आठों दिशाओं में दो बित्ते प्रमाण के जलाशय का निर्माण करे।२५-२७।

१ ख. घ. चान्तरिक्षकः । ङ. च. चान्तकविक्षकः ।

कृत्वाऽष्टौ स्थण्डिलान्रम्यान्सैकताद्वेदिकोत्तमः ।
वरुणस्येति मन्त्रेण आज्यमष्टशतं ततः ॥२८
चरुं यवमयं हुत्वा शान्तितोयं समाहरेत् ।
सेचयेन्मूर्ध्नि देवं तु सजीवकरणं चरेत् ॥२९

साथ ही साथ बालुका की वेदिका बनावे । "वरुणस्य" इत्यादि मन्त्र से एक सौ आठ बार घी की आहुतियाँ देकर यवमय चरु की आहुति दे और शान्ति जल से अभिषक करे । पुनःसजीवीकरण करे ।२८-२९।

ध्यायेत्तु वरुणं युक्तं गौर्यानदनदीगणैः ।
ॐ वरुणाय ततोऽभ्यर्च्य ततः सांनिध्यमाचरेत् ॥३०

गौरी, नद और नदीगण से युक्त वरुण की "ॐ वरुणाय नमः "इत्यादि मन्त्र से पूजा करके सांनिध्यकरण करे ।३०

उत्थाय नागपृष्ठाद्यैर्भ्रामयेत्तैः समङ्गलैः ।
आपो हि ष्ठेति च क्षिपेत्त्रिमध्वाक्ते घटे जले ॥३१

हाथी की पीठ पर वरुण को विठलाकर मङ्गलगान के साथ नगर में घुमाए । पुनः त्रिमधु से मिले कलश के जलमें "आपो हि ष्ठा" इत्यादि मन्त्र से उस वरुण प्रतिमा को छोड़ दे ।३१

जलाशये मध्यगतं सुगुप्तं विनिवेशयेत् ।
स्नात्वा ध्यायेच्च वरुणं सृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिकाम् ॥३२

जलाशय के मध्य में उस देव-प्रतिमा को भलीभाँति छिपा दे । स्वयं स्नान करने के पश्चात् ब्रह्माण्ड, सृष्टि और वरुण का ध्यान करे ।३२

अग्निबीजेन संदग्ध्वा (ह्य) तद्भस्म प्लावयेन्नरः ।
सर्वमापोमयं लोकं ध्यायेत्तत्र जलेश्वरम् ॥३३

नर (यजमान) अग्नि बीज से उसको जलाकर उसके भस्म को जल में बहा दे । उस समय लोक को जलमय समझे । जल-कुण्ड (तालाब) में जलेश्वर का ध्यान करे ।३३

तोयमध्यस्थितं देवं ततो यूपं निवेशयेत् ।
चतुरस्रमथाष्टास्रं वर्तुलं वा सुकीर्तितम्[1] ॥३४

जल के मध्य स्थित वरुणदेव के लिए तब यूप की स्थापना करे । वह काष्ठ यूप चौकोर, अठपहलू या गोला होना चाहिए ।३४

आराध्यं देवतालिङ्गं दशहस्तं तु कूपके ।
यूपं यज्ञी (ज्ञि) यवृक्षोत्थं मूले हैमं फलं न्यसेत् ॥३५

१ख. प्रकीर्तितम् । घ. प्रवर्तितम् । च. सुवर्णितम् ।

कुएँ में स्थापित करने के लिए दश हाथ लम्बा यूप होना चाहिए। देवता की आराधना के बाद यूप की स्थापना करनी चाहिए। यूप यज्ञीय वृक्ष के बनाये जाँय। उनके मूल में सोने का फल रखे।३५

वाप्यां पञ्चदशकरं पुष्करिण्यां तु विंशकम्
तडागे पञ्चविंशाख्यं जलमध्ये निवेशयेत् ॥३६

वापी के लिए पन्द्रह हाथ का, पुष्करिणी के लिए बीस हाथ का तथा तडाग के लिए पच्चीस हाथ का यूप होना चाहिए। ये यूप जलाशय के मध्य गाड़े जाँय।३६

यागमण्डपाङ्गणे[1] वा यूप ब्रह्मेतिमन्त्रतः[2]।
स्थाप्य तद्वेष्टयेद्वस्त्रैर्यूपोपरि पताकिकाम् ॥३७

'अथवा यूप ब्रह्म' इत्यादि मन्त्रसे यज्ञ-मण्डप के आँगन में स्थापित कर उसको वस्त्र में लपेट दे और यूप के शिखर पर पताका लगा दे।३७

तदभ्यर्च्य च गन्धाद्यैर्जगच्छान्तिं समाचरेत्।
दक्षिणां गुरवे दद्याद्भूगोहेमाम्बुपात्रकम्।३८

उस यूप की पूजा करके जगत् की शान्ति के लिए शान्ति कर्म करे। गुरु को भूमि, गाय, सुवर्ण और पात्र आदि का दान करे।३८

द्विजेभ्यो दक्षिणा देया आगतान्भोजयेत्तथा।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ये केचित्सलिलार्थिनः ॥३९
ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा।
तोयमुत्सर्जयेदेवं पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ॥४०

आगन्तुक को भोजन कराकर, अतिथि या निमन्त्रित ब्राह्मण को दक्षिणा दे। 'इस भूमण्डल पर जो भी जल के इच्छुक ब्रह्मा से लेकर पौत्रे तक हों, वे सभी इस तालाब के जल को पीकर तृप्त हों'-- यह सोचते हुए जल उत्सर्जन करे और इस जलाशय में पञ्चगव्य छोड़े।३९-४०।

आपो हिष्ठेति तिसृभिः शान्तितोयं द्विजैः कृतम्।
तीर्थतोयं क्षिपेत्पुण्यं गोकुलं चार्पयेद्द्विजान् ॥४१

ब्राह्मण "आपो हि ष्ठा" इत्यादि मन्त्र से तीन बार शान्तिजल छोड़ें और पवित्र तीर्थजल छोड़कर ब्राह्मणों को गोदान करे।४१

१ यागमण्डपाङ्गणे........मन्त्रतः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ घ. ब्रह्मेति'।

अनिवारितमन्नाद्यं सर्वजन्यं च कारयेत् ।
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ॥४२
एकाहं स्थापयेत्तोयं तत्पुण्यमयुतायुतम् ।
विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति ॥४३

सब को यथेच्छ भोजन करावे । किसी को भोजन देने में किसी प्रकार की रुकावट न हो । लाखों अश्वमेधयज्ञ करने से जो फल होता है, उससे असंख्य गुना अधिक फल एक बार की जलाशय-प्रतिष्ठा से होता है । वह जलदान करने वाला व्यक्ति स्वर्ग में विमान पर आरूढ़ होकर विहार करता है, वह नरक में कभी नहीं जाता ।४२-४३।

गवादि पिबते यस्मात्तस्मात्कर्तुर्न पातकम् ।
तोयदानात्सर्वदानफलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥४४

उसके जलाशय निर्माण करने से गौ आदि जल पीकर तृप्त होते हैं । इसलिए जलाशय-निर्माता को कोई पाप नहीं लगता और वह जलदान से सब दानों के फल को प्राप्त करता है तथा स्वर्ग का अधिकारी होता है ।४४

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कूपवापीतडागादिप्रतिष्ठाकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।६४

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः
सभादिस्थापनविधिः

श्रीभगवानुवाच—
सभादिस्थापनं वक्ष्ये तथैतेषां प्रवर्तनम् ।
भूमौ परीक्षितायां च वास्तुयागं समाचरेत् ।१

श्रीभगवान् बोले—अब मैं सभा आदि की स्थापना और उनकी प्रवर्तना के सम्बन्ध में बतलाऊँगा । सर्वप्रथम किसी परीक्षित भूमि में वास्तुयाग का अनुष्ठान करना चाहिए ।१

स्वेच्छया तु सभां कृत्वा स्वेच्छया स्थापयेत्सुरान् ।
चतुष्पथे च ग्रामादौ न शून्ये कारयेत्सभाम् ॥२

तदनन्तर अपनी इच्छानुसार सभा का निर्माण करके उसमें अपनी इच्छा से देवताओं की स्थापना करनी चाहिए । चौराहे पर, ग्राम आदि में सभा का निर्माण करावे, निर्जन प्रदेश में नहीं ।२

निर्मलः कुलमुद्धृत्य कर्ता स्वर्गे विमोदते ।
अनेन विधिना कुर्यात्सप्तभौमं हरेर्गृहम् ।।३

सभा का निर्माता निर्मल स्वभाव वाला होता है और वह अपना उद्धार करके स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। भगवान् विष्णु के सप्तभौम गृह का निर्माण इस विधि से करना चाहिए।३

यथा राज्ञां तथाऽन्येषां पूर्वाद्याश्च ध्वजादयः ।
कोणभुजान्वर्जयित्वा चतुःशालं तु वर्जयेत् ।।४

राजाओं के प्रासादों के समान अन्य (देवताओं) का भी प्रासाद बनाया जाता है। इन भवनों में पूर्व से प्रारम्भ करके जो ध्वज आदि आय होते हैं, सभा आदि के निर्माण में कोणभुजाओं और चतुःशाल का त्याग करना चाहिए।४

त्रिशालं वा द्विशालं वा एकशालमथापि वा ।
व्ययाधिकं न कुर्वीत व्ययदोषकरं हि तत् ।।५
आयाधिके भवेत्पीडा तस्मात्कुर्यात्समं द्वयम् ।
कर राशिं समस्तं तु कुर्याद्वसुगणं गुरुः ।।६

सभामण्डप तीन मंजिल वाला, दो मंजिल वाला या एक मंजिल वाला होता है। सभा का निर्माण अधिक व्यय (पद) में नहीं करना चाहिए। क्योंकि अत्यधिक व्यय (पद) दोषप्रद हुआ करता है और अधिक आय होने से भी पीड़ा होती है। अतः आय-व्यय (पद) समान होना चाहिए।५-६।

सप्तार्चिषा कृते भागे[1] गर्गविद्याविचक्षणः ।
अष्टधा भाजते तस्मिन्यच्छेषं स व्ययो मतः[2] ।।७
अथवा कर राशिं तु हन्यात्सप्तार्चिषा बुधः ।
वसुभिः संहृते[3] भागे ध्वजादि[4] परिकल्पयेत् ।।८

तदनन्तर ब्रह्म-विद्या में निष्णात व्यक्ति को उस संख्या को सात से विभक्त करना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त संख्या को पुनः आठ भागों में विभक्त करके जितना धन शेष रह जाता है उतना ही व्यय उचित माना गया है। अथवा कर की राशि को सात से विभक्त करके और इस प्रकार से प्राप्त संख्या को पुनः आठ से विभक्त करके ध्वजा इत्यादि का निर्माण करना चाहिए।७-८।

---

१ क. ङ. च. °गे खड्गादि° । २ ख. ग. घ. च. गतः । ३ ख. संस्कृते ।
४ घ. पृथ्व्यादि ।

ध्वजो[1]धूम्रस्तथा सिंहः श्वा वृषस्तु खरो गजः[2] ।
ध्वाङ्क्षश्चेति क्रमेणैव मायाष्टकमुदाहृतम् ॥९

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, हाथी और कौवा इन्हें क्रमशः मायाष्टक कहा गया है ।९

त्रिशालकत्रयं शस्तं[3] सर्वभेदविवर्जितम् ।
याम्यां परगृहोपेतं द्विशालं शस्यते[4] सदा ॥१०

सभी भेदों से रहित तीन कलशों से युक्त सभा को श्रेष्ठ कहा गया है । रात्रि में दो शालाओं से युक्त सभामण्डप सदैव प्रशंसनीय कहा गया है ।१०

याम्ये शालैकशालं तु प्रत्यक्शालमथापि वा ।
एकशालद्वयं शस्तं शेषास्त्वन्ये भयावहाः ॥११

दक्षिण दिशा में एक शाला और दो शालाओं से युक्त मण्डप सदैव प्रशंसनीय होते हैं किन्तु अन्य भयावह होते हैं ।११

चतुःशालं सदा शस्तं सर्वदोषविवर्जितम् ।
एकं भौमादि कुर्वीत भवनं सप्तभौमकम् ॥१२

चतुःशाल मण्डप श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि वह सभी दोषों से वर्जित हुआ करता है । सभाभवन को एक मंजिल से लेकर सात मंजिल तक का बनाना चाहिए ।१२

द्वारवेधादिरहितं पुराणेन[5] विवर्जितम् ।
देवगृहं देवतायाः प्रतिष्ठाविधिना सदा ॥१३

जिस प्रकार से देवता-प्रतिष्ठा का विधान है, उसी प्रकार देवगृह को भी द्वार और वेधादि से रहित तथा पुरानी सामग्री से वर्जित होना चाहिए ।१३

संस्थाप्य मनुजानां च समुदायोक्तकर्मणा ।
प्रातः सर्वौषधीस्नानं कृत्वा शुचिरतन्द्रितः ॥१४

इस गृह की स्थापना मनुष्य समुदायो के लिए कथित कर्म एवं प्रतिष्ठा-विधि के अनुसार स्थापित करे । गृहप्रवेशार्थी आलस्य को छोड़कर प्रातःकाल सर्वौषधि-मिश्रितजल से स्नान कर पवित्रहोवे ।१४

मधुरैस्तु द्विजान्भोज्य पूर्णकुम्भादिशोभितम् ।
सतोरणं स्वस्तिवाच्य द्विजान्गो[6] पृष्ठहस्तकः ॥१५
गृही गृहं प्रविशेच्च दैवज्ञान्प्राच्य संविशेत् ।
गृहे पुष्टिकरं मन्त्रं पठेच्चेमं समाहितः ॥१६

१ख. °जो धौम्रोऽथ सिंहश्च सौरभेयः ख°।२°ध्यज तथा ध्वङ्क्षस्तु पूर्वादावुद्भवन्ति विकल्पयेत् । त्रिं । ३ख. घ. च. शास्तमुदक्पूर्ववि° । ४ख. घ, लभ्यते । ५ घ. पूरणेन ६ गोपुच्छहस्तक इति घ. पुस्तकटिप्पणीस्थः पाठः ।

दैवज्ञ ब्राह्मणों की पूजा करके उन्हें मधुर अन्न (पकवान) भोजन करावे। फिर उन ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर गाय के पीठ पर हाथ रखे हुए पूर्ण कलश आदि से सुशोभित तोरण-युक्त गृह में प्रवेश करे। घर में जाकर एकाग्रचित्त हो, गौ के सम्मुख हाथ जोड़कर यह तुष्टिकारक मन्त्र पढ़े।१५-१६।

ॐ नन्दे नन्दय वाशिष्ठे वसुभिः प्रजया सह।
जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे ॥१७
पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम्।
भद्रे कश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम ॥१८
सर्ववीजौषधीयुक्ते[1] सर्वरत्नौषधीवृते।
रुचिरे नन्दने नन्दे वाशिष्ठे रम्यतामिह ॥१९
प्रजाप्रतिसुते देवि ([2]चतुरस्रे महीयसि।
सुभगे सुव्रते देवि गृहे काश्यपि रम्यताम् ॥२०
पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते।
भवभूतिकरि देवि) गृहे भार्गवि रम्यताम् ॥२१
अव्यक्तेऽव्याकृते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते।
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम्[3] ॥२२
देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामि परिगृ (ग्र) हे।
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ॥२३

"ॐ वशिष्ठ जी के द्वारा लालित-पालित नन्दे! धन और सन्तान देकर मेरा आनन्द बढ़ाओ। प्रजा को विजय प्रदान कराने वाली भार्गवनन्दिनि जये! तुम मुझे धन और सम्पत्ति से आनन्दित करो। अङ्गिरा की पुत्री पूर्णे! तुम मेरे मनोरथ को पूर्ण करो। मुझे पूर्णकाम बना दो। काश्यपकुमारी भद्रे! तुम मेरी बुद्धि को कल्याणमयी बना दो। सब को आनन्द प्रदान करने वाली वशिष्ठनन्दिनि नन्दे! तुम समस्त वीजों और ओषधियों से युक्त तथा सम्पूर्ण रत्नौषधियों से सम्पन्न होकर इस सुन्दर घर में सदा आनन्दपूर्वक रहो। कश्यप प्रजापति की पुत्री देवि भद्रे! तुम सर्वथा सुन्दर हो, महती महत्ता से युक्त हो, सौभाग्यशालिनी एवं उत्तम व्रत का पालन करने वाली हो, मेरे घर में आनन्दपूर्वक निवास करो। देवि भार्गवि जये! सर्वश्रेष्ठ आचार्यों ने तुम्हारा पूजन किया है, तुम चन्दन और माला से अलंकृत हो तथा संसार के समस्त

---

१ च.° वंजीवौष°। २ चतुरस्रे ...भवभूतिकारि देवि च पुस्तके नास्ति। ३ क. ख. च. काम पा°।

ऐश्वर्यों को देने वाली हो। तुम मेरे घर में आनन्दपूर्वक विहार करो। अङ्गिरा मुनि की पुत्री पूर्णे ! तुम अव्यक्त अव्याकृत हो, इष्टके देवि ! तुम मुझे अभीष्ट वस्त्र प्रदान करो। मैं तुम्हारी इस घर में प्रतिष्ठा चाहता हूँ। देवि ! तुम देश के स्वामी (राजा) ग्राम या नगर के स्वामी तथा गृह स्वामी पर भी अनुग्रह करने वाली हो। मेरे घर में जन, धन, हाथी, घोड़े तथा गाय भैंस आदि पशुओं की वृद्धि करने वाली बनो।१७–२३।

इत्यादि महापुराण आग्नेये सभादिस्थापनविधिकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।६५

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

देवतासामान्यप्रतिष्ठा

श्रीभगवानुवाच—

समुदायप्रतिष्ठां च वक्ष्ये सा वासुदेववत्।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा।१
ऋषयश्च तथा सर्वे वक्ष्ये तेषां विशेषकम्।
यस्य देवस्य यन्नाम तस्याऽऽद्यं गृह्य [१]चाक्षरम्।।२

श्री भगवान् बोले– अब मैं समुदाय-प्रतिष्ठा के विषय में बतलाऊँगा। समुदाय-प्रतिष्ठा भी वासुदेव-प्रतिष्ठा के ही समान होनी चाहिए। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार और सब ऋषियों की जो विशेषता है, मैं उसे भी कहूँगा। जिस देवता का जो नाम है, उसका आदि अक्षर ग्रहण करे।१–२।

मात्राभिर्भेदयित्वातु दीर्घाण्यङ्गानि भेदयेत्[२]।
प्रथमं कल्पयेद्बीजं सबिन्दुं (न्दु) प्रणवान्वितम्[३]।।३
सर्वेषां मूलमन्त्रेण पूजनं स्थापनं तथा।
नियमव्रतकृच्छ्राणां[४] मठसंक्रमवेश्मनाम्।।४
मासोपवासं द्वादश्या इत्यादि स्थापनं वदे।
शिलां पूर्णघटं कांस्यं संभारं स्थापयेत्ततः।।५

१ क. ङ. च. गृहमास्कर°। २ क. ङ. च. कल्पयेत्। ३क.ङ. च. °णवं गति स°। घ.°णवं नतिम्। ४ क. ङ. च.° यमं तत्र कि°।

तदनन्तर मात्राओं द्वारा भेदन करे। अर्थात् उनमें स्वर मात्रा लगावे, फिर दीर्घ स्वरों से युक्त उन बीजों द्वारा अङ्गन्यास करे। उस प्रथम अक्षर को विन्दु और प्रणव से संयुक्त करके 'बीज' माने। समस्त देवताओं का मूलमन्त्र से पूजन एवं स्थापन करे। इसके अतिरिक्त मैं नियम, व्रत, कृच्छ्र, मठ, सेतु, गृह, मासोपवास और द्वादशी व्रत आदि की स्थापना के विषय में भी कहूँगा। पहले शिला, पूर्णकुम्भ और कांस्य पात्र लाकर रखे।३-५।

ब्रह्मकूर्चं समाहृत्य श्रपेद्यवमयं चरुम्।
क्षीरेण कपिलायास्तु[1] तद्विष्णोरिति साधकः ॥६

ब्रह्मकूर्च को एकत्रित करके यवमय चरु को अग्नि पर रखे। उसमें कपिला गाय का दूध "तद्विष्णो" इस मन्त्र से मिलाये।६

प्रणवेनाभिधार्यैव दर्व्या संघटयेत्ततः।
साधयित्वाऽवतार्याथ विष्णुमभ्यर्च्य होमयेत् ॥७

प्रणवमन्त्र का उच्चारण करके करछुली से चलावे। पक जाने पर उसको उतार ले और विष्णु की पूजा करके हवन करे।७

व्याहृत्या चैव गायत्र्या तद्विप्रासेति होमयेत्।
विश्वतश्चक्षुर्वेदाद्यैर्भूरग्नये तथैव च ॥८
सूर्याय प्रजापतये अन्तरिक्षाय होमयेत्।
द्यौः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा पृथ्वी महाराजकः ॥९
तस्मै सोमं च राजानमिन्द्राद्यैर्होममाचरेत्।

सप्त व्याहृति, गायत्री और "तद्विप्रास" इत्यादि मन्त्रों द्वारा हवन करना चाहिए। "विश्वतश्चक्षुः" इत्यादि मन्त्र से भू, अग्नि, सूर्य, प्रजापति और अन्तरिक्ष के लिए हवन करे। द्यौः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, पृथिव्यै स्वाहा, सोमाय स्वाहा आदि मन्त्रों से सोम, राजा, इन्द्र आदि के उद्देश्य से हवन करना चाहिए।८-९।

एवं हुत्वा[2] चरोर्भागान्दद्याद्दिग्बलिमादरात् ॥१०
समिधोऽष्टशतं हुत्वा पालाशा (शी) श्चाऽऽज्यहोमकम्।
कुर्यात्पुरुषसूक्तेन इरावतीतिलाष्टकम् ॥११

इस प्रकार चरु भाग के हवन करने के अनन्तर आदरपूर्वक दिग्बलि प्रदान करे। एक सौ आठ बार समिधा का हवन करके पुरुष-सूक्त से पलाश

१क. ङ. च. °स्तु त्वं विष्णो'। २क. ङ.च. दत्त्वा।

और घी की आहुतियाँ और 'इरावती' से तिलाष्टक सम्बन्धी आहुतियाँ दे ।१०-११।

हुत्वा तु ब्रह्मविष्ण्वीशदेवानामनुयायिनाम् ।
ग्रहाणामाहुतीर्हुत्वा लोकेशानामथो पुनः ॥१२
पर्वतानां नदीनां च समुद्राणां तथाऽऽहुतीः ।
हुत्वा च व्याहृतीर्दद्यात्स्रुवपूर्णाहुतित्रयम् ॥१३

फिर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य अनुचरों को आहुति प्रदान करके ग्रहों के निमित्त आहुति देनी चाहिए । तदनन्तर लोकेशों, पर्वतों, नदियों तथा समुद्रों के निमित्त हवन करे । व्याहृतियों से स्रुवा का स्पर्श करके तीन पूर्णाहुति दे ।१२-१३।

वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन पितामह ।
पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य दत्त्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ॥१४
तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रं गामलंकृताम् ।
प्रीयतां भगवान्विष्णुरित्युत्सृजेद्व्रतं बुधः ॥१५

जिस मन्त्र के अन्त में वौषट् हो उस मन्त्र से या वैष्णव मन्त्र से पञ्चगव्य और चरु का प्राशन करे । तत्पश्चात् गुरुदक्षिणा में तिलपात्र, सोना और वस्त्र से अलङ्कृत गाय का दान कर बुद्धिमान् व्यक्ति को "अनेन भगवान् विष्णुः प्रीयताम्" इत्यादि मन्त्र से व्रत का उत्सर्जन करना चाहिए ।१४-१५।

मासोपवासादेरन्यां प्रतिष्ठां वच्मि पूर्वतः ।
यज्ञेन(नाऽऽ)तोष्य देवेश श्रपयेद्वैष्णवं चरुम् ॥१६

अब मैं पूर्व की भाँति ही व्रतोपवास प्रतिष्ठा से अन्य प्रकार की प्रतिष्ठा का वर्णन करता हूँ । पहले यज्ञ के द्वारा देवेश विष्णु भगवान् को प्रसन्न करके वैष्णव चरु को पकावे ।१६

तिलतण्डुलनीवारैः श्यामाकैरथ वा यवैः ।
आज्येनाऽऽघार्य चोत्तार्य होमयेन्मूर्तिमन्त्रकैः ॥१७

चरु की पाकविधि यह है कि तिल, चावल, नीवार, साँवा, यव को घी में भूनकर उतार ले । उस चरु को मूर्तिमन्त्रों से हवन करे ।१७

विष्ण्वादीनां मासपानां तदन्ते होमयेत्पुनः ॥१८
ॐ श्री विष्णवे स्वाहा । ॐ विष्णवे विभूषणाय[1] स्वाहा ।
ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा[2] । ॐ नरसिंहाय स्वाहा ।
ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ॥१९

१ ख. °वेऽतिभूशयाय । घ. °वे निभूयपाय । २ ख. ग. °हा । ॐ पु° ।

अन्त में विष्णु आदि मासपतियों के निमित्त हवन करे। हवन मन्त्र यह है—ॐ विष्णवे स्वाहा, ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा, ॐ विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा, ॐ नरसिंहाय स्वाहा, ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ।१८-१६।

द्वादशाश्वत्थसमिधो होमयेद्घृतसंप्लुताः ।
विष्णोरराटं मन्त्रेण ततो द्वादश चाऽऽहुतीः ॥२०

इस हवन के पश्चात् घी में भीगी हुई पीपल की समिधा की 'विष्णोरराटमसि°' इत्यादि मन्त्र से बारह आहुतियाँ दे ।२०

इदं विष्णुरिरावती चरोर्द्वादश चाऽऽहुतीः ।
हुत्वा चाऽऽज्याहुतीस्तद्वत्तद्विप्रासेति होमयेत् ॥२१

"इदं विष्णु' और 'इरावती' इत्यादि मन्त्रों से चरु की बारह आहुतियाँ दे। 'तद्विप्रासो' इत्यादि मन्त्र से घी का हवन करे ।२१

शेषहोमं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतित्रयम् ।
युञ्जतेत्यनुवाकं[1] तु जप्त्वा प्राश्यी (श्नी) त वै चरुम् ॥२२
प्रणवेन स्वशब्दान्ते कृत्वा पात्रे तु पैप्पले ।
ततो मासाधिपानां तु विप्रान्द्वादश भोजयेत् ॥२३

फिर शेष होम करके तीन पूर्णाहुति दे। 'युञ्जते' आदि अनुवाक का जप करके मन्त्र के आदि में स्वकर्तृक मन्त्रोच्चारण के पश्चात् पीपल के पत्ते आदि के पास में रखकर चरु का प्राशन करे। प्रणव से युक्त देवता के नाम से अर्थात् 'ॐ अमुकाय स्वाहा' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके पीपल के बने पात्र में चरु रखकर बारह मासाधिपतियों के निमित्त बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। २२-२३।

त्रयोदशो गुरुस्तत्र तेभ्यो दद्यात् त्रयोदश ।
कुम्भान्स्वाद्वम्बुसंयुक्तान्सच्छत्रोपानहान्वितान् ॥२४

इन मासाधिपतियों के अतिरिक्त तेरहवाँ गुरु का स्थान है। उनको मधुर जल से पूर्ण तेरह कलश, उत्तम छत्र, पादुका सहित दान दे ।२४

सुवस्त्रहेममाल्याढ्यान्व्रतपूर्त्यै त्रयोदश ।
गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः ॥२५
इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत् ।
दशहस्तं प्रपाराममठसंक्रमणादिषु ॥२६

---

१ युञ्जते.......वै चरुम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ ख. वाकाद्यं° ज° ।

साथ ही अच्छे-अच्छे तेरह वस्त्र, सोना, विभिन्न प्रकार की उत्तम मालाओं के साथ तेरह गायों को व्रत की पूर्ति के लिए दान करे ! 'गायें प्रसन्नतापूर्वक आएँ-जायें'—इस वाक्य से गौओं के आने-जाने का मार्ग छोड़ दे तथा दश हाथ लम्बा यूप जल पीने के स्थान पर उपवन, मठ और सेतु मार्ग पर गाड़ दे ।२५-२६।

गृहे च होममेवं तु कृत्वा सर्वं यथाविधि ।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृही ॥२७
अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत् ।
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्ति विचक्षणैः ॥२८

इस प्रकार विधिपूर्वक गृह में भी हवन करके पूर्वोक्त विधान से गृह में प्रवेश करे । इन कृत्यों में सब अतिथियों को अन्न और वस्त्र आदि दान दे तथा ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा भी दे ।२७-२८।

आरामं कारयेद्यस्तु नन्दने सुचिरं वसेत् ।
मठप्रदानात्स्वर्लोके शक्रलोके वसेत्ततः ॥२९

जो आराम (बगीचा) लगवाता है, वह स्वयं नन्दन वन में निवास करता है, मठ प्रदान करने से दाता स्वर्गलोक को जाता है और इन्द्रलोक में निवास करता है ।२९

प्रपादानाद्वारुणेन संक्रमेण वसेद्दिवि ।
इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद्गवाम् ॥३०

प्याऊ बैठाने वाला व्यक्ति वरुण लोक में और सेतु का निर्माता स्वर्ग में निवास करता है । ईंटों का पुल बनवाने वाला भी स्वर्गलोक में निवास करता है । गायों के लिए प्रशस्त मार्ग बनवाने वाला गोलोक को जाता है ।३०

नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छ्रकृत्सर्वपापहा [?]
गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसंप्लवम् ॥३१
समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ॥३२

नियम और व्रतों का पालक स्वयं विष्णु हो जाता है । कृच्छ्र व्रतों का आचरण (पालन) करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता है । गृह-दान कर्ता व्यक्ति कल्प पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है । गृहस्थ मनुष्यों को शिव आदि देवताओं की समुदाय—प्रतिष्ठा करनी चाहिये ।३१-३२।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवतासामान्यप्रतिष्ठाकथनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।६६

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः
जीर्णोद्धारविधिः

श्रीभगवानुवाच —
जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद्गुरुः ।
अचलां विन्यसेद्गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥१

श्रीभगवान् बोले—अब मैं जीर्णोद्धार-विधि का वर्णन कर रहा हूँ। गुरु अलङ्कृत मूर्ति को स्नान कराकर उसको घर में प्रतिष्ठित करे, अतिजीर्ण, प्रतिमा का परित्याग करे ।१

व्यङ्गां[1] भग्नां च शैलाढ्यां न्यसेदन्यां च पूर्ववत् ।
संहारविधिना तत्र तत्त्वान्संहृत्य देशिकः ॥२
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद्गुरुः ।

विकृत, भग्न अथवा शिलामात्रावशिष्ट प्रतिमा को छोड़ दे। आचार्य उसके स्थान पर पूर्ववत् देवगृह में नवीन प्रतिमा की स्थापना करे। आचार्य वहाँ पर (भूतशुद्धि प्रकरण से युक्त) संहार-विधि से उस प्रतिमा में तत्त्वों का आरोपण करके नारसिंह मन्त्र से एक हजार बार हवन करके उस प्रतिमा का उद्धार करे ।२-२½।

दारवीं दाहयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले ॥३
धातुजां रत्नजां वाऽपि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ ।
यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ॥४
वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने ॥५
कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ॥६

काठ की बनी भग्नमूर्ति को जला दे, धातु या रत्न की प्रतिमा को अगाध जल अथवा समुद्र में डुबो दे। जीर्ण-शीर्ण प्रतिमा को सवारी पर चढ़ाकर उसके जीर्णाङ्गों को वस्त्र से ढक दे। इस प्रकार उसको बाजे-गाजे के साथ समारोहपूर्वक ले जाकर जल में छोड़ दे। तदनन्तर गुरु को दक्षिणा दे। जिस परिमाण की, जितने मूल्य की वह जीर्णमूर्ति हो, उतने ही परिमाण और मूल्य की मूर्ति का निर्माण करके दिन में उसकी पुनः प्रतिष्ठा करे। कुआँ, बावली

---

१ व्यङ्गां.... पूर्ववत् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति ।

और तालाब आदि का जीर्णोद्धार करने से भी महान् फल प्राप्त होता है।३-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जीर्णोद्धारविधिकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः।६७

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

उत्सवविधिकथनम्

श्रीभगवानुवाच—

वक्ष्ये विधिं चोत्सवस्य स्थापिते तु सुरे चरेत्।
तस्मिन्दिने[1] वैकरात्रं त्रिरात्रं[2] चाष्टरात्रकम्[3] ।।१

श्रीभगवान् बोले—मैं तुम्हें देवता की प्रतिष्ठा के अनन्तर होने वाले उत्सव की विधि बतला रहा हूँ। स्थापना के वर्ष में ही एक रात, तीन रात या आठ रात तक उत्सव मनाना चाहिए।१

उत्सवेन विना यस्मात्स्थापनं निष्फलं[4] भवेत्।
अयने विषुवे चापि शयनोपवने[5] गृहे ।।२

उत्सव के विना देव प्रतिष्ठा व्यर्थ-सी हो जाती है, अतः उत्सव अवश्य कराना चाहिए। यह उत्सव अयनकाल में, विषुव काल में, घर पर या उपवन में या शयन-कक्ष में करना चाहिए।२

कारकस्यानुकूलो[6] वा यात्रां देवस्य कारयेत्।
मङ्गलाङ्कुररोपैस्तु गीतनृत्यादि वाद्यकैः ।।३
शरावघटिकापाली[7] स्वाङ्कुरारोहणे हिता[8]।
यवाञ्शालींस्तिलान्मुद्गान्गोधूमान्सितसर्षपान् ।।४
कुलत्थमाषनिष्पावान्क्षालयित्वा तु वापयेत्[9]।

अथवा कर्ता को जब अनुकूल समय मिले, तब देवता का यात्रोत्सव करे। उत्सव के समय मङ्गल अङ्कुर (का आरोप) गीत, नृत्य और बाजे आदि

---

१ क. ङ. च. 'स्मिन्नब्दे चैक'। २ च. ०त्र चतुरष्टक'। ३ क. ङ. चन्तराष्टक° ४ क. ङ. च. मिष्यजं। ५ क. ङ. च °यने स्थापने। ६ क ङ. च. °कूले वा°। ७ ख. ग. °लीस्त्वङ्कु°। ८ ख. ग. हिताः। ९ क. ङ. मापयेत्। च. मायया।

अवश्य रखने चाहिए। अङ्कुर आरोपण के लिए शराब, घटिका, पाली उपयुक्त पात्र हैं। अङ्कुर उगाने की विधि यह है कि यव, धान, तिल, मूँग, गेहूँ पीली सरसों, कुलथी, उड़द और निष्पाव को पछोर कर धो ले और ऊपर कहे हुए पात्रों में मिट्टी रखकर बो दे।३-४½।

पूर्वादौ तु वलिं दद्याद्भ्रमन्दीपैः पुरं निशि ॥५
इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च।
अनुगच्छन्ति ते[1] तत्र प्रतिरूपधरा पुनः ॥६
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न संशयः।

पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पाल, कुमुद आदि दिग्गज और सब भूतों को बलि देकर, रात्रि में दीपक हाथ में लेकर नगर में घूमे। ऐसा करने पर वे इन्द्रादि देवता भी विभिन्न रूप धारण करके उस महोत्सव में पीछे-पीछे चलते हैं। इस उत्सव को करने वाले व्यक्तियों को पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।५-६½।

आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद्गुरुः ॥७
तीर्थयात्रा त्वया[2] देव श्वः कर्तव्या सुरोत्तम।
तस्या (दा) रम्भमनुज्ञातुमर्हः[3] सर्वज्ञ सर्वदा ॥८
देवमेवं[4] तु विज्ञाप्य ततः कर्म समारभेत्।
प्ररोहघटिकाढ्यां[5] तु वेदिकां भूषितां व्रजेत् ॥९
चतुःस्तम्भां तु तन्मध्ये स्वास्तिकं प्रतिमां न्यसेत्[6]।

तत्पश्चात् गुरु देवागार में आकर भगवान् से प्रार्थना करे। 'हे सुरोत्तम! कल आपको तीर्थयात्रा करनी है, इसलिए हे सर्वज्ञ! उसको आरम्भ करने का आप आदेश प्रदान करें।' इस प्रकार देवता को सम्बोधित करके आगे का कार्य आरम्भ करे। पहले अङ्कुर और कलश में सुशोभित वेदी का निर्माण कराकर वहाँ जाय और उस वेदी के चारों कोणों पर चार स्तम्भ गाड़े। उसके मध्य में स्वस्तिक बनाकर उस पर देव प्रतिमा स्थापित करे।७-९½।

काम्यार्थं लेख्य चित्रेषु स्थाप्य तत्राधिवासयेत् ॥१०
वैष्णवैः सह कुर्वीत घृताभ्यङ्गं तु मूलतः।
घृतधाराभिषेकं वा[7] सकलां शर्वरीं बुधः ॥११

---

१ क. च. ये। २ ख. ग. घ. मया। ३ क. च. °मर्हसे देव स°। ख. ग. घ. मर्हसे देवसर्वथा। दे°। ४ क. ङ. च. °वदेवं। ५ ख. ग. घ. °कास्वर्णवे°। ६ क. ङ. °त्। कर्मार्थान्ते पवित्रे°। च. °त्। कर्मार्थाल्लिप्यचि°। ७ च.।

काम्य अर्थ को लिखकर चित्रों से स्थापित करके अधिवासन करे। पुनः देव-प्रतिमा का संस्कार आदि करे। अनेक वैष्णवजनों के साथ मूलमन्त्र से देव-प्रतिमा में घी का लेप करे अथवा रात भर घी की धारा में उसका अभिषेक करे।१०-११।

दर्पणं दर्श्य[1] नीराजगीतवाद्यैश्च[2] मङ्गलम् ।
वी (वी) जनं पूजनं दोपगन्धपुष्पादिभिर्यजेत्[3] ॥१२
हरिद्रामुक्तकाश्मीरशुक्लचूर्णादि[4] मूर्धनि ।
प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं[5] (ले ?) घृते ॥१३

दर्पण दिखाकर नीराजन प्रदान करे और मङ्गलगीत, वाद्य आदि से पूजन, वीजन और आरती आदि करे। उसके बाद दीप, धूप, गन्ध अर्पित करे। देव-प्रतिमा के शिर पर हल्दी, कपूर, केसर और श्वेत-चन्दन के चूर्ण को लगावे तथा उत्सव में सम्मिलित होने वाले वैष्णव जनों को टीका लगावे। ऐसा करने से यजमान सब तीर्थों का फल प्राप्त कर लेता है।१२-१३।

स्थापयित्वा[6] समभ्यर्च्य यात्राबिम्बं रथे स्थितम् ।
नयेद्गुरुर्नदीं नादैश्छत्राद्यै[7] राष्ट्रपालिकाम् ॥१४
निम्नगा (गां) योजनादर्वाक्तत्र[8] वेदीं तु कारयेत् ।
वाहनादवतार्यैनां[9] तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ॥१५

उसके बाद प्रतिमा को स्नान करा कर और पूजन करके उसको रथ पर स्थापित करे। गुरु इस यात्रादल को छत्र, चामर, बाजे आदि के साथ अपने प्रान्त की विशिष्ट नदी की ओर ले चले जो कि वहाँ से एक योजन से अधिक दूर न हो। वहाँ पर वेदी बनावे, रथ से प्रतिमा को उतारकर उस वेदी पर स्थापित करे। १४-१५।

चरुं च[10] श्रपयेत्तत्र पायसं होमयेत्ततः ।
अब्लिङ्गैर्वैदिकै[11] र्मन्त्रैस्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥१६

१क. ख. ग. घ. दर्शनी°। २ ख.° राजं गी°। ३ क. ख. ग. घ. च. दीपं ग°। ४क. ङ. च.° र्णानि यू°। ५क. ङ. च.° फलैर्वृते। ६क. ङ. च. स्नापयित्वा, ७ ख. ग. घ.° दैश्छात्रा°। ८ ख. ग. घ. °त्विकाः। नि०। ९ क. ङ. च. ० र्यैव त०। १० ख. ग. घ. वै। ११ अबिलंगै···ताह्येत्ततः। क. ङ. च पुस्तकेषु नास्ति।

आपो हि ष्ठोपनिषदैः (?) पूजयेदर्घ[1] (र्घ्य)मुख्यकैः ।
पुनर्देवं समादाय तोये[2] कृत्वाऽघमर्षणम् ॥१७
स्नायान्महाजनैर्विप्रैर्यामुतार्य[3] तं न्यसेत् ।
पूजयित्वा तदह्ना[4] च प्रासादं तु नयेत्ततः ॥१८
पूजयेत्पावकस्थं[5] तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१९

वहाँ चरु-पाक बनाकर खीर का हवन करे। तदनन्तर वरुण देवता सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों से सब तीर्थों का आवाहन करे। "आपो हि ष्ठा" इत्यादि मन्त्र से या उपनिषद्-मन्त्रों से अर्घ्य आदि प्रदान करे। पुनः देवता को जल के मध्य ले जाकर अघमर्षण करे, स्वयं महाजनों और भक्तों के साथ स्नान करे और प्रतिमा को पुनः वेदी पर प्रतिष्ठित करे। उस दिन वहीं पर उनकी पूजा करने के बाद देवमन्दिर में ले जाय। जो गुरु अग्नि के मध्य में स्थित (विष्णु) देव की इस प्रकार पूजा करता है, वह भुक्ति-मुक्ति का अधिकारी होता है।१६-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये उत्सवविधिकथनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८

अथ नवषष्टितमोऽध्यायः

स्नपनोत्सवविस्तारकथनम्

अग्निरुवाच—
ब्रह्मञ्शृणु प्रवक्ष्यामि स्नपनोत्सवविस्तरम् ।
प्रासादस्याग्रतः कुम्भान्मण्डपे[6] मण्डले न्यसेत् ॥१
कुर्याद्ध्यानार्चनं होमं हरेरादौ च कर्मणि[7] ।
सहस्रं वा शतं वाऽपि होमयेत्पूर्णया सह ॥२

अग्निदेव बोले—ब्रह्मन् ! सुनिये, अब मैं स्नपनोत्सव विधि का विस्तार -पूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। प्रासाद के आगे एक मण्डप बनाकर उस मण्डप-भूमि

१ च. °येद्दर्भमु° । २ च. °ये दत्वाऽघ° । ३ क. च. ° जलैर्वि° । ४ क. च. °दह्ना च प्रा° । ङ. °दह्नाच्च प्रा । ५ ख. ग. घ. °कस्तं तु गु° । ६ ख. ग. घ. मण्डलं । ७ क. ङ. च.कर्मसु ।

पर मण्डल बनाकर कलशों को स्थापित करे। सबसे पहले वहाँ हरि का ध्यान, अर्चन, होम आदि करे। पूर्णाहुति के साथ एक सौ या एक हजार आहुतियां दे ।१-२।

स्नानद्रव्याण्यथाऽऽहृत्य कलशांश्चापि विन्यसेत् ।
अधिवास्य सूत्रकण्ठान्धारयेन्मण्डितो[1] घटान् ॥३
चतुरस्रं पुरं कृत्वा [2]रुद्रैस्तं प्र (स्तत्प्र) विभावयेत् ।
मध्ये[3] तु नवकं स्थाप्य पार्श्वपङ्क्तिं[4] प्रमार्जयेत् ॥४

स्नानोपयोगी द्रव्यों को लाकर रखे, कलशों के कण्ठ में सूत्र लपेटकर उनको वहाँ मण्डल बनाकर स्थापित करे। वहाँ एक चौकोना पुर (उत्सव-मण्डप) बनाकर उसे ग्यारह रेखाओं द्वारा विभाजित कर दे। मध्य में नव कलशों को स्थापित करके इधर-उधर की पंक्ति को भी शुद्ध करे।३-४

शालिचूर्णादिनाऽऽपूर्यं पूर्वादिनवकेषु च ।
कुम्भमुद्रां ततो बद्ध्वा घटं तत्राऽऽनयेद्बुधः ॥५

कुशल व्यक्ति चावल के चूर्ण या यवचूर्ण आदि से पूर्व के नव घटों को भर दे, फिर कुम्भ-मुद्रा के द्वारा एक घट को लाये ।५

पुण्डरीकाक्षमन्त्रेण दर्भास्तांस्तु विसर्जयेत् ।
अद्भिः पूर्णं सर्वरत्नयुतं मध्ये न्यसेद्घटम् ॥६

पहले पृथ्वी पर पुण्डरीकाक्ष मन्त्र से कुशों को बिछा दे। उन कुशों पर सब रत्नों से युक्त और जल से परिपूर्ण कलश को रख दे।६

यवव्रीहितिलांश्चैव नीवाराञ्श्यामकान्क्रमात् ।
कुलित्थमुद्गसिद्धार्थान्मुक्त्वाऽन्यानष्टदिक्षु च ॥७

यव, धान्य, तिल, नीवार, श्यामाक (साँवा) कुलथी, मूंग और सरसों को क्रमशः आठों दिशाओं में छिड़क दे।७

ऐन्द्रे तु नवके मध्ये घृतपूर्णं घटं न्यसेत् ।
पलाशाश्वत्थन्यग्रोधविल्वोदुम्बरशी[5] (क्षी) रिणाम् ॥८
जम्बूशमीकपित्थानां त्वक्कषायैर्घटाष्टकम् ।
आग्नेयनवके मध्ये मधुपूर्णं घटं न्यसेत् ॥९

---

१ ङ. °येन्मण्डले पुटा° । २ क. ङ. च. रुद्रेऽस्त्रं प्रविभाजये° । ३ ख. ग. घ. °ध्येन तु चरुस्था° । ४ क. ङ. च. पङ्क्तीः प्रसर्जं° । ५ ख. ग. घ. °रसारिकाम् ।

उन नौ कलशों के मध्य में पूर्व दिशा में घी से भरे हुए एक कलश को रखे। पलाश, पीपल, वट, श्रीफल, गूलर आदि तथा जामुन, शमी, कैथ आदि के वल्कल से युक्त कषाय-जल से भरे आठ कलशों को रखे। नौ कलशों के मध्य अग्निकोण में मधु पूर्ण कलश रखे।८-९।

गोश्रृङ्गनगगङ्गाम्बुगजेन्द्रदर्शनेषु[1] च।
तीर्थक्षेत्र[2] खलेष्वष्टौ[3] मृत्तिकाः[4] स्युर्घटाष्टके ॥१०

गौ के सींग से उखाड़ी हुई, पर्वत, गङ्गाजल, गज, यज्ञस्थल, तीर्थक्षेत्र और खलिहान से लाई हुई मृत्तिका आठ घड़ों में देनी चाहिए।१०

याम्ये तु नवके मध्ये तिलतैलघटं न्यसेत्।
नारङ्गमथ जम्बीरं खर्जूरं[5] मृक्तिका (कां) क्रमात् ॥११
नारिकेलं[6] न्यसेत्पूगं दाडिमं पनसं फलम्।
नैर्ऋते नवके मध्ये क्षीरपूर्णं घटं न्यसेत् ॥१२

दक्षिण दिशा के नवम घट को तिल के तैल से भर दे। नैर्ऋत दिशा के नव घटों में से आठ में नारङ्ग, जम्बीर (नीबू), खर्जूर, अंगूर, नारियल, सुपारी, अनार और कटहल रखे। नवम घट दूध से भरा हुआ रखे।११-१२।

कुङ्कुमं नागपुष्पं च चम्पकं मालतीक्रमात्।
मल्लिकामथ पुंनागं करवीरं महोत्पलम् ॥१३

पश्चिम दिशा के नवघटों में से आठ घटों में कुङ्कुम, नागकेशर, चम्पक, मालती, मल्लिका, पुंनाग, करवीर और कमल आदि पुष्पों को रखे।१३

पुष्पाणि चान्ये (न्य) नवके मध्ये वै नारिकेलकम्।
नादेयमथ सामुद्रं सारसं कौप्यमेव च ॥१४
वर्षजं हिमतोयं च नैर्झरं गाङ्गमेव च।
उदकान्यथ वायव्ये[7] नवके कदलीजलम् ॥१५

पश्चिमीय नवक में नारिकेल-जल से पूर्ण कलश में नदी, समुद्र, सरोवर, कूप, वर्षा, हिम, निर्झर तथा देवनदी का जल छोड़े। वायव्यकोणवर्ती नवक में कदली जलपूरित कुम्भ रखे।१४-१५।

सहदेवीं कुमारीं च सिंहीं व्याघ्रीं तथाऽमृताम्।
विष्णुपर्णीं[8] शतनिभां वचां दिव्यौषधीर्न्यसेत् ॥१६

---

१ क. ङ. °गरङ्गासुग°। च. °गमङ्गासुग। २ ङ. °त्रवरे मुष्टौ। ३ क. च. °खरेष्वष्टौ। ४ क. ङ. च. तिकाश्च घटा°।५ क. ङ. च °रं पूर्विकाः क्र°। ६ क. ङ. च. नालिकेरं। ७ क. ङ. च. वा मध्ये न°। ८ क. ङ. च. °पत्रीं श°।

उत्तर दिशा के नौ घटों में से आठ में कुमारी, सिंही, व्याघ्री, अमृता, विष्णुपर्णी, शतनिभा, बच आदि ओषधियों को छोड़े ।१६

पूर्वादौ सौम्यनवके मध्ये दधिघटं न्यसेत् ।
पत्रमेलां त्वचं कुष्ठं वालकं चन्दनद्वयम् ॥१७
लतां कस्तूरिकां चैव कृष्णागरुमनुक्रमात् ।
सिद्धद्रव्याणि पूर्वादौ शान्तितोयमथैकतः ॥१८

नवम घट को दही से भरकर रखे । ऐशान्य नवक में से आठ में इलायची, त्वच, कुट, वालछड़, दोनों चन्दन, लता, कस्तूरी और कृष्ण अगरु आदि भी रखे । नवम कलश में अन्य सिद्ध (द्रव्य) और शान्ति जल को रखे ।१७-१८।

चन्द्रतारं क्रमाच्छुक्लां[1] गिरिसारं त्रपु न्यसेत् ।
घोषसारं तथा सीसं[2] पूर्वादौ रत्नमेव च ॥१६
घृतेनाभ्यज्य[3] चोद्वर्त्य स्नपयेन्मूलमन्त्रतः ।
गन्धाद्यैः पूजयेद्वह्नौ हुत्वा[4] पूर्णाहुतिं चरेत् ॥२०

शुक्ल चन्द्रतार, गिरिसार (शिलाजीत), त्रपु (राँगा), घोषसार, सीसा और रत्न, पूर्व आदि दिशाओं में रखे । इस प्रकार कलशों को स्थापित करके, देवताओं को घी से आप्लावित करके भलीभाँति मले और मूलमन्त्र से नहलाए । गन्ध आदि से पूजन करके हवन करे और पूर्णाहुति दे ।१६-२०।

वलिं च सर्वभूतेभ्यो भोजयेद्दत्तदक्षिणः[5] ।
देवैश्च मुनिभिर्भूपैर्देवं संस्नाप्य[6] चेश्वराः[7] ॥२१

सब भूतों को बलि प्रदान करके ब्राह्मण भोजन कराये और दक्षिणा दे । देवता, मुनि और राजगण इस प्रकार देवता (हरि) को स्नान कराकर शक्तिशाली हो गये ।२१

बभूवुः[8] स्नापयित्वेत्थं स्नपनोत्सवकं चरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रेण घटानां सर्वभाग्भवेत् ॥२२

इस प्रकार देवता को नहलाकर स्नपनोत्सव करे । एक हजार आठ घटों से स्नान कराने पर मनुष्य सब फलों को प्राप्त करता है ।२२

---

१ क. छ्ट. च. माद्गुल्फं गि° । २ ख.ग. घ. शीर्षं । ३ क.ङ. च. °नाऽऽसह्य चो° । ४ क. ङ. च. कृत्वा । ५ख. ग. घ.° क्षिणाम् । दे° । ६ ख. ग. घ. संस्थाप्य ७ क. °श्वरः । बभूव स्ना° । ८ ख. ग. घ. °वु; स्थापं ।

यज्ञावभृथस्नाने[1] च पूर्णसंस्नापनं[2] कृतम् ।
गौरीलक्ष्मीविवाहादि चोत्सवं स्नानपूर्वकम् ।।२३

यज्ञों में अवभृथ-स्नान करने पर पूर्ण स्नान अवश्य करना चाहिए । गौरी और लक्ष्मी आदि के विवाहोत्सव में इस प्रकार स्नानोत्सव अवश्य करना चाहिए ।२३

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्नपनोत्सवविधिकथनं नाम नवषष्टितमोऽध्यायः ।६९

— —

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

पादपप्रतिष्ठाविधिः

श्रीभगवानुवाच—

प्रतिष्ठा पादपानां च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् ।
सर्वौषध्यो(ध्यु) दकैर्लिप्तान्पिष्टातकविभूषितान्[3] ।।१

श्रीभगवान् बोले—अब भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाली वृक्ष-प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा । सब ओषधियों के जल से वृक्षों को सींचकर सुगन्धित चूर्ण वृक्षों पर डाले ।१

वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् ।
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् ।।२
हेमशलाकयाऽञ्जनं वेद्यां तु फलसप्तकम् ।
अधिवासयेच्च प्रत्येकं[4] घटान्वलिं निवेदयेत्[5] ।।३

माला से वृक्षों को सुसज्जित करके वस्त्रों से आवेष्टित कर दे । सोने की सुई से सबका कर्णभेदन करे, सुवर्ण की शलाका से अञ्जन लगाये, वेदी पर सात प्रकार के फल रखे । प्रत्येक की विधिवत् पूजा करके घट और बलि प्रदान करें ।२-३।

---

१ क. ङ. च. °थ संस्थाने पू° । २ क. ङ. च. पने कृते । गौ° । ३ क. ङ. च. कैर्दीप्ता° । ४ क. ङ. च. °कं कुम्भान्व° । ५ ख. ग. घ. °दनम् । इ° ।

इन्द्रादेरधिवासेऽथ होमः कार्यो वनस्पतेः ।
ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च[1] वारुणैर्मत्तभैरवैः[2] ॥४
वृक्षवेदिककुम्भैश्च स्नपनं द्विजपुंगवाः ।
तरुणां यजमानस्य कुर्युश्च[3] यजमानकः ॥५

इन्द्र आदि का पूजन हो जाने पर वनस्पतियों का हवन करे । ऋक्, यजुः, साम अथवा वरुण मन्त्रों से या मत्त भैरव मन्त्रों से वृक्ष के समीप बनी हुई वेदी के कलशों से उत्तम ब्राह्मणों, वृक्षों और यजमानों को नहलाए ।४-५।

भूषितो दक्षिणां दद्याद्गोभूभूषणवस्त्रकम् ।
क्षीरेण भोजनं दद्याद्यावह्निनचतुष्टयम् ॥६

यजमान स्नान के अनन्तर सब प्रकार के आभूषणों से आभूषित होकर गुरु को गाय, वस्त्र, आभूषण आदि दक्षिणा में दे । चार दिनों तक ब्राह्मणों को दुग्ध पान कराए ।६

होमस्तिलाज्यैः[4] कार्यस्तु पलाशसमिधैस्तथा ।
आचार्ये द्विगुणं दद्यात्पूर्ववन्मण्डपादिकम् ॥७

तिल, घी और पलाश समिधा का हवन करे । आचार्य को दुगुनी दक्षिणा दे । मण्डप आदि का निर्माण पूर्ववत् करे ।७

पापनाशः परा सिद्धिर्वृक्षारामप्रतिष्ठया ।
स्कन्दायेशो यथा प्राह प्रतिष्ठाद्यं[5] तथा शृणु ॥८
सूर्येशगणशक्त्यादेः परिवारस्य वै हरेः ॥९

इस प्रकार वृक्ष और आराम (बगीचा) की प्रतिष्ठा करने से पापों का नाश होता है और उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । स्कन्द को शिवजी ने सूर्य, ईश, गण, शक्ति, और विष्णु परिवार की जो प्रतिष्ठा-विधि बताई गई है, उसे ध्यान से सुनिये ।८-९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पादपप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।७०

---

१ एतस्मादनन्तरं 'वृक्षमध्यादुत्सृजेत्गां ततोऽभिषेकं च मन्त्रतः इत्यर्धमधिकं ख. ग. घ.पुस्तकेषु । २ ख. ग. घ. °र्मङ्गलै र° । ३ क. ङ. च. कुर्याच्च य° । ४ क. ख. घ. च. °लाढ्यैः का° । ५ क. ङ. च.° द्यातपुरोव° ।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गणपपूजाविधिः

ईश्वर उवाच–

गणपूजां प्रवक्ष्यामि [1]निर्विघ्नायाखिलार्थदाम्[2]।
गणाय स्वाहा हृदयमेकदंष्ट्राय वै शिरः ॥१
गजकर्णिने[3] च शिखा गजवक्त्राय चर्म[4] च।
महोदराय सुदण्डहस्तायाक्षि तथाऽस्त्रकम् ॥२
गणो गुरुः पार्श्वका[5] च शक्त्यनन्तौ च धर्मकः[6]।
मुख्यास्थिमण्डलं[7] चाधश्चोर्ध्वं (र्ध्वं) छदनमर्चयेत् ॥३

श्रीमहादेव बोले—अब मैं अखिल मनोरथों को प्रदान करने वाली गणेश पूजा-विधि को बतलाऊँगा, जिसके अनुष्ठान से विघ्न का नाश होता है। 'गणाय स्वाहा' कहकर हृदय-स्पर्श करे, 'एकदंष्ट्राय स्वाहा' कहकर शिर, 'गजकर्णिने स्वाहा' कहकर शिखा, 'गजवक्त्राय स्वाहा' से कवच, 'महोदराय स्वाहा' से नेत्र-त्रय, और 'सुदण्डहस्ताय स्वाहा' कहकर अस्त्राय फट् कहे। इस प्रकार षडङ्गन्यास करके गणेश गुरु हैं, शक्ति, अनन्त और धर्मक में पार्श्वक हैं। नीचे के मुख्य अस्थि-मण्डल और ऊपर के आवरण की भी पूजा करनी चाहिए।१-३।

पद्मकर्णिकं[8] वीजं[9] च[10] ज्वालिनीं[11] नन्दयार्चयेत्।
सूर्येशा कामरूपा च उदया कामवर्तिनी ॥४
सत्या च विघ्ननाशा च आसनं गन्ध[12] मृत्तिका[13]।
वंशो घोरं च दहनं प्लवो लम्बं तथा स्मृतम् ॥५
लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि।
तन्नोदन्तिः प्रचोदयात् ॥६

१ग.° घ्नामश्वि°। २ च°लापदा°। ३ च. लम्बकर्णिने। ४ च. वर्म। ५ ख. ग. पादुका। ६ क. च. कर्मकः। ७ क. घ.° स्वयास्त्वि म्°। ८ ख. ग. घ. °र्णिकाबीजाश्च ज्वा°। ९क. च.° बीजांश्च जालि°। १०ङ. च जालि°। ११ ख. ग. घ. °लिनी नन्दनार्चं°। १२ क. ङ. च. °न्धमूर्तिका। १३ क. च. °का.। यं °का। यं शोषणं च दहनं नष्टवो वितथाऽमृतम्।

पद्मकर्णिक के बीज, ज्वालिनी और नन्दा की भी पूजा करे। सूर्येशा, कामरूपा, उदया, कामवर्तिनी, सत्या, और विघ्ननाशा को आसन, गन्ध और मृत्तिका प्रदान करे। यं, रं, लं, वं —ये चार बीज क्रमशः शोषण, दाहन, आप्लावन तथा अमृतीकरण की प्रक्रिया पूरी करते हैं। 'लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्' यह गणेश-गायत्री मन्त्र है।४-६।

गणपतिर्गणाधिपो गणेशो गणनायकः।
गणक्रीडो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ॥७
गजवक्त्रो लम्बकुक्षिर्विकटो विघ्ननाशकः।
धूम्रवर्णो महेन्द्राद्याः पूज्या गणपतेः स्मृताः ॥८

गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गणक्रीड, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्बकुक्षि, विकट, विघ्ननाशक, धूम्रवर्ण और महेन्द्र आदि पूज्य देवता हैं, जो गणपति के पूजन में अङ्गरूप में पूजित होते हैं।७-८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गणपपूजाविधिकथनं नामैक-सप्ततितमोऽध्यायः।७१

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

स्नानविधिः

ईश्वर उवाच—
वक्ष्यामि स्कन्द नित्याद्यं स्नानं पूजां प्रतिष्ठया।
स्नात्वा[1] शिलां समुद्धृत्य मृदमष्टाङ्गुलां[2] ततः ॥१

महादेव बोले—हे स्कन्द! मैं नित्य, नैमित्तिक आदि स्नान-प्रतिष्ठा सहित पूजा की विधि बतला रहा हूँ। पहले स्नान करके आठ अङ्गुल की एक शिला (टुकड़ा) उखाड़ ले।१

सर्वात्मना समुद्धृत्य[3] पुनस्तेनैव पूजयेत्[4]।
शिरसा पयसस्तीरे निधायास्त्रेण शोधयेत् ॥२

उसको भलीभाँति यत्नपूर्वक लाकर पूजा करे। शिर से नदी तीर पर रख कर अस्त्र-मन्त्र से उसे शुद्ध करे।२

---

१ ख; °त्वाऽसिना स°। २ ख. ग. ङ. °ङ्गुलं त°। ३ क. समाहृत्य प्रमष्टेनै°। ४ ख. पूरयेत्।

तृणादि शिखयोद्धृत्य ब्रह्मणा विभजेत्त्रिधा[1] ।
एकया नाभिपादान्तं प्रक्षाल्य पुनरन्यया ।।३

ब्राह्मण तृण आदि को शिखा मन्त्र से उखाड़कर कवच मन्त्र से उस मिट्टी के टुकड़े को तीन भाग में बाँट दे। एक भाग को नाभि से लेकर पैर तक लगाये।३

अस्त्राभिलब्धया[2] लक्ष्मीदीप्तया सर्वविग्रहम् ।
निरुध्याऽऽस्याक्षि[3] पाणिभ्यां प्राणान्संयम्य वारिणि[4] ४।।
निमज्याऽऽसीत ह्यद्यस्त्रं स्मरन्कालानलप्रभम् ।
मलस्नानं विधायेत्थं समुत्थाय जलान्तरात् ।।५
अस्त्रसंध्यामुपास्याथ विधिस्नानं समाचरेत् ।

तत्पश्चात् उसे धोकर, अस्त्रमन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित हुई दूसरे भाग की दीप्तिमती मृत्तिका के द्वारा शेष सम्पूर्ण शरीर को अनुलिप्त करके, दोनों हाथों से कान-नाक आदि इन्द्रियों के छिद्रों को बन्दकर, साँस रोककर, मन ही मन कालाग्नि के समान तेजोमय अस्त्र का चिन्तन करते हुए पानी में डुबकी लगाकर स्नान करे। यह मल (शारीरिक मैल) को दूर करने वाला स्नान कहलाता है। इसे इस प्रकार करके जल के भीतर से निकल आवे और सन्ध्या करके विधि-स्नान करे।४-५½।

सारस्वतादितीर्थानामेकमङ्कुशमुद्रया ।।६
हृदाऽऽकृष्य तथाऽऽस्थाप्य[5] पुनः संहारमुद्रया ।
शेषं मृद्भागमादाय प्रविश्याऽऽनाभि वारिणि ।।७

पहले अङ्कुश-मुद्रा के द्वारा सारस्वत आदि तीर्थों को हृदय-मन्त्र (नमः) से आकृष्ट करके संहारमुद्रा के द्वारा स्थापित करे। शेष मिट्टी को लेकर नाभि तक जल में घुस जाय।६-७।

वामपाणितले कुर्याद्भागत्रयमुदङ्मुखः ।
अङ्गैर्दक्षिणमेकाद्यं पूर्वमस्त्रेण[6] सप्तधा ।।८

मिट्टी को बाँई हथेली पर रखकर उत्तराभिमुख होकर उसको तीन भागों में विभक्त कर दे। प्रथम भाग को अस्त्र आदि मन्त्रों से सात भागों में बाँटकर दाहिने अंगों में लगावे। ८

१ क. ङ. च. °जेद्द्विधा। २ ख. °स्त्रादि लब्धमारभ्य दी°। ३ ख. ग. °ध्याक्षाणि पा°। ४ ख. ग. वारिणा। ५ ख. °थाऽऽस्नाप्य। ६ ख. ग. °मन्त्रेण।

शिवेन दशधा सौम्यं[1] यजेद्भागत्रयं क्रमात् ।
सर्वदिक्षु[2] क्षिपेत्पूर्वं हुंफडन्तगवाणुना[3] ॥९

दूसरे को शिव मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से अभिमन्त्रित करके दश भागों में बाँट दे और 'हुं फट्' मन्त्र से उत्तर से प्रारम्भ करके सब दिशाओं में उन भागों को फेंक दे।९

कुर्याच्छिवेन सौम्येन शिवतीर्थेन[4] तु क्रमात् ।
सर्वाङ्गमङ्गजप्तेन मूर्धादि चरणावधि ॥१०

उसको शिवमन्त्र से शिवतीर्थ के द्वारा सिर से लेकर पैर तक सर्वाङ्ग में लगाये।१०

दक्षिणेन समालभ्य[5] पठन्नङ्गचतुष्टयम् ।
पिधाय खानि सर्वाणि षण्मुखीकरणेन च ॥११

दक्षिण अङ्ग में भी मृत्तिका लगाकर अङ्गचतुष्टय का पाठ करते हुए इन्द्रियों को बन्द करके सम्मुखीकरण करे।११

शिवं स्मरन्निमज्जेत हरिं गङ्गेति वा स्मरन् ।
वौषडन्तषडङ्गेन के कुर्यादभिषेचनम् ॥१२

शिव, हरि और गङ्गा का स्मरण करते हुए डुबकी लगाये और वौषडन्त षडङ्ग-मन्त्र से अभिषेक करे।१२

कुम्भपात्रेण रक्षार्थं पूर्वादौ विक्षिपेज्जलम् ।
स्नात्वा राजोपचारेण सुगन्धामलकादिभिः ॥१३

रक्षा के लिए घड़े में जल भरकर पूर्वादि चारों दिशाओं में गिरावे। इस प्रकार मृत्तिका-स्नान करने के पश्चात् सुगन्धित द्रव्यों और आँवला आदि से स्नान करे। १३

स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तीर्थं संहारिण्योपसंहरेत् ।
अथातो विधिशुद्धेन संहितामन्त्रितेन च ॥१४

१ ख. ग. °म्यं जपेद्भा° । २ ङ. °क्षु यजेत्पू° । ३ ख. ग. न्तशराणु° । ४ क. च. °तीर्थं रुजक्र° । ख. °तीर्थं° भुजक्र° । ५ क ङ. च. समारभ्य ।

निवृत्त्यादिविशुद्धेन भस्मना स्नानमाचरेत् ।
शिरसः पादपर्यन्तं[1] हुंफडन्त[2]गवा[3]णुना[4] ॥१५

स्नान के पश्चात् नदी से निकलकर संहारिणी (संहिता) से उपसंहा करे। तदनन्तर विधिपूर्वक शुद्ध किये हुए ,संहिता से अभिमन्त्रित, निवृत्ति आदि से परिकृष्त भस्म से 'ॐ हुं फट्' मन्त्र से शिर से पैर तक स्नान करे।१४-१५।

तेन कृत्वा मलस्नानं[5] विधिस्नानं समाचरेत् ।
ईषतत्पुरुषाघोरगुह्यकाजातसंवरैः[6] ॥१६
क्रमेणोद्वर्तयेन्मूर्ध्नि वस्त्रहृद्गुह्यविग्रहान् ।
संध्यात्रये निशीथे च वर्षापूर्वावसानयोः ॥१७

इस प्रकार विधिवत् स्नान करना चाहिए। तदनन्तर ईष, तत्पुरुष, अघोर, गुह्यक, अजात और संवर मन्त्र से क्रमशः वस्त्र, हृदय, गुह्यस्थान और अन्य अङ्गों में, तीन सन्ध्याओं में, आधी रात को, वर्षा के पूर्व और अन्त में उद्वर्तन करे।१६-१७।

सुप्त्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा[7] चाऽऽवश्यकादिकम् ।
स्त्रियं नपुंसकं शूद्रं[8] विडालशवमूषिकम् ॥१८
स्नानमाग्नेयकं स्पृष्ट्वा शुच्यम्बुचुलकं[9] चरेत् ।
सूर्यांशुवर्षसंपर्के प्राङ्मुखेनोर्ध्ववाहुना ॥१९
माहेन्द्रं स्नानमैशेन[10] कार्यं सप्तपदावधि ।
गोसंघमध्यगः[11] कुर्यात्खुरोत्खातकरेणुभिः[12] ॥२०
पावनं[13] मूलमन्त्रेण स्नानं तद्धर्मणाऽथवा[14] ।
सद्योजातादिभिर्मन्त्रैरम्भोभिरभिषेचनम् ॥२१

शयन, भोजन, पयःपान और अन्य आवश्यक कार्य करने के पश्चात् स्त्री, नपुंसक, शूद्र, बिल्ली, शव, चूहे आदि से स्पर्श हो जाने पर अग्नि की आँच में शरीर सेंककर एक चुल्लू जल पी ले। सूर्य-किरण और वर्षा से सम्पर्क होने पर पूर्वाभिमुख होकर बाहु ऊपर उठाकर ईश मन्त्र से माहेन्द्र-स्नान करे।

---

१ क. ङ. न्तं हूँ फ । ख. ग. °न्तं हूं फ° । २ ख. ग. °न्तशराणु° । ३ क. च वानना. । ४ ङ.° ना । तं कृत्वाऽऽचमनस्ना° । ५ क. च. मतं स्ना° । ६ ख. संबरैः । ७ क. ङ. च. हुत्वा । ८ क. ङ. च. द्रं वितानश° । ९ क. ङ. च. शुचावुद्धूननं च° । १० क. ङ.च. °मैशान° । का° । ११ च. गोहंसम° । १२ °र्यात्तिच्छरो° । १३ ख. ग °नं नवमं १४ख. ग. तत्कर्म°

अथवा गायों के झुण्ड में सात पद तक जाय और उनके खुरों से उठी हुई धूल से मूलमन्त्र का उच्चारण करके स्नान कर पवित्र हो जाय या धूपस्नान करे अथवा "सद्योजात" आदि मन्त्रों द्वारा जल से अभिषेक करे ।१८-२१।

मन्त्रस्नानं भवेदेवं वारुणाग्नेययोरपि ।
मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम् ॥२२
कुर्वीत मानसं स्नानं सर्वत्र विहितं च यत् ।
वैष्णवादौ च तन्मन्त्रैरेवं स्नानानि[1] कारयेत् ॥२३

इसी प्रकार मन्त्रों द्वारा वारुण और आग्नेय-स्नान भी होते हैं । पहले प्राणायाम कर मूलमन्त्र से मानस-स्नान भी करना चाहिए । यह मानस-स्नान सर्वत्र सब कार्यों में विहित है । इसी प्रकार वैष्णव कार्यों में भी वैष्णव-मन्त्र से स्नान कराना चाहिए ।२२-२३।

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रैर्भिन्नैः समं[2] गुह ।
संवीक्ष्य त्रिः पिबेदम्बु ब्रह्मतीर्थेन शंकरैः[3] ॥२४

हे गुह ! अब मैं भिन्न-भिन्न मन्त्रों के सहित सन्ध्या-विधि का वर्णन कर रहा हूँ । सूर्य की ओर देखकर ब्रह्म-तीर्थ एवं शङ्कर-मन्त्रों से तीन बार जल पीना चाहिए ।२४

स्वधान्तैरात्मतत्त्वाद्यैस्ततः खानि स्पृशेन्मृदा ।
सकलीकरणं कृत्वा प्राणायामेन संस्थितः ॥२५

तदनन्तर स्वधान्त आत्म-तत्त्व आदि मन्त्रों से इन्द्रियों को स्पर्श करे । सकलीकरण के पश्चात् प्राणायाम करे ।२५

त्रिः समावर्तयेन्मन्त्री मनसा शिवसंहितम्[4] ।
आचम्य न्यस्य संध्यां च ब्राह्मीं प्रातः स्मरेन्नरः ॥२६
हंसपद्मासनां रक्तां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम्[5] ।
अङ्गाक्षमालिनीं दक्षे वामे दण्डकमण्डलुम् ॥२७

इसके बाद मन्त्र-साधक पुरुष मन ही मन तीन बार शिवसंहिता की आवृत्ति करे । आचमनानन्तर सन्ध्या समाप्त कर 'ब्राह्मी' सन्ध्या का प्रातः काल स्मरण करे, जो चतुर्भुज, चार मुख वाली, रक्तवर्ण, हंसासन और पद्मासन पर आरूढ़ हों, जिनके वामभाग में दण्ड, कमण्डलु और दाहिने हाथ में अक्षमाला हों ।२६-२७।

---

१ क. ख. ग. च. स्नानादि । २ क. ङ. च. समन्ततः । सं° । ३ क. ङ. च. संवरैः । ४ क. च. °संमिताम् । ङ. °संमितम् । ५ ख. °म् । प्रस्कन्दमा° । ग. °म् । शङ्खपद्मान्वितां द° ।

ताक्ष्यंपद्मासनां ध्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवीं सिताम् ।
शङ्खचक्रधरां वामे दक्षिणे सगदाभयाम् ।।२८
रौद्रीं ध्यायेद्वृषाब्जस्थां त्रिनेत्रां शशिभूषिताम् ।
त्रिशूलाक्षधरां दक्षे वामे साभयशक्तिकाम् ।।२९
साक्षिण्यः[1] कर्मणां सन्ध्या आत्मानं तत्प्रभानुगम् ।
चतुर्थी ज्ञानिनः सन्ध्या निशीथादौ विभाव्यते ।।३०
हृद्बिन्दुब्रह्मरन्ध्रेषु अरूपा तु परे स्थिता ।
शिवे[2] चैव परो[3] यस्तु ना सन्ध्या परमोच्यते ।।३१

मध्याह्न-काल में श्वेतवर्ण की, गरुड़ और पद्मासन पर आसीन वैष्णवी सन्ध्या करे, जिसके बायें हाथ में शङ्ख, चक्र और दाहिने हाथ में अभय मुद्रा और गदा हो । सायंकाल बैल पर कमलासन लगाए बैठी हुई, द्वितीया के चन्द्रमा से सुशोभित, त्रिनेत्र, दाहिने हाथ में त्रिशूल और अक्षमाला धारण करने वाली, बाँये में अभय और शक्ति धारण करने वाली रौद्री सन्ध्या का ध्यान करे । ये तीनों सन्ध्याएँ सन्ध्या करने वाले व्यक्तियों के कर्म की साक्षिणी हैं । एक चौथी सन्ध्या भी है, जिनका अनुष्ठान विज्ञजन आधी रात में करते हैं । हृदय, विन्दु, ब्रह्मरन्ध्रों में वह चौथी अरुण सन्ध्या परम शिव-स्थान में स्थित है ।२८-३१।

पैत्रं मूले प्रदेशिन्याः कनिष्ठायाः प्रजापतेः ।
ब्राह्ममङ्गुष्ठमूलस्थं तीर्थं दैवं कराग्रतः ।।३२
सव्यपाणितले वह्नेस्तीर्थं सोमस्य वामतः ।
ऋषीणां तु समग्रेषु अङ्गुलीपर्वसन्धिषु ।।३३

तर्जनी के मूल को पैत्रतीर्थ, कनिष्ठा के मूल में प्रजापति, अङ्गूठे के मूल में ब्राह्म, अँगुलियों के अग्रभाग को दैव, दाहिनी हथेली को वह्नि, बाँई हथेली को सोमतीर्थ और सब अङ्गुलियों के पोरों की सन्धियों को ऋषितीर्थ कहा जाता है ।३२-३३।

ततः शिवात्मकैर्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम् ।
मार्जनं संहितामन्त्रैस्तत्तो येन समाचरेत् ।।३४

इसके पश्चात् शिवमन्त्रों से शिवतीर्थ (जल) की भावना कर उस जल से संहिता मन्त्रों द्वारा मार्जन करे ।

---

१ क. ङ. च. साक्षिणः । २ ख. ग. शिवरोधः प° । ३ क. ङ. च. परे यस्तु सामर्थ्यात्पर° ।

वामपाणिपतत्तोययोजनं[1] सव्यपाणिना ।
उत्तमाङ्गे[2] क्रमान्मन्त्रैर्मार्जनं समुदाहृतम् ॥३५

बाँये हाथ से गिरते हुए जल को दाँए हाथ में लेकर मन्त्रों से शिर आदि पर छिड़कना 'मार्जन' कहा जाता है ।३५

नीत्वा तदुपनासाग्रं दक्षपाणिपुटस्थितम् ।
बोधरूपं शिवं[3] तोयं वाममाकृष्य स्तम्भयेत् ॥३६
तत्पापं कज्जलाभासं पिङ्गयाऽऽरिच्य[4] मुष्टिना ।
क्षिपेद्वज्रशिलायां[5] यत्तद्भूवेदघमर्षणम् ॥३७

दाहिने हाथ की हथेली पर जल रखकर नासिका के अगले भाग के समीप खींच ले जाय, बोधरूप शिवतत्त्व जल में आकृष्ट कर वामभाम में स्थापित करे। पिङ्गला नाड़ी से शरीरस्थ पाप को खींचकर मुट्ठी में ग्रहण करे और उसे वज्र-शिला पर पटक दे। इस विधि को 'अघमर्षण' कहते हैं ।३६-३७।

स्वाहान्तशिवमन्त्रेण कुशपुष्पाक्षतान्वितम् ।
शिवायार्घ्याञ्जलिं दत्त्वा गायत्रीं शक्तितो यजेत् ॥३८

स्वाहान्त शिव-मन्त्र से अर्थात् 'नमः शिवाय' इस मन्त्र से कुश, पुष्प, अक्षत युक्त जल की शिव को अर्घ्याञ्जलि देकर शक्ति के अनुसार गायत्री-जप करे।३८

तर्पणं संप्रवक्ष्यामि देवतीर्थेन मन्त्रकात् ।
तर्पयेद्द्वौ शिवायेति स्वाहाऽन्यान्स्वाहया सुतान्[6] ।३९

अब तर्पण की विधि कहूँगा। देवतीर्थ से उनके नाम मन्त्र के उच्चारण-पूर्वक तर्पण करे। 'ॐ हूं शिवाय स्वाहा' ऐसा कहकर शिव को तर्पण प्रदान करे। इसी प्रकार अन्य देवताओं को भी उनके स्वाहान्त मन्त्र से तर्पण प्रदान करना चाहिए ।३९

१ क. ङ. च. °णिषु त°। २ ख. ग. °माङ्गैः क्र° । ३ ख. ग. सित° । ४ क. ङ. च. °या दिव्यमु° । ख °याऽऽविध्य मु° । ५ ख. ग. °यां तु उत्तरेद° । ६ ख. स्त्रनात् । ग. स्वतान् ।

हं[1] हृदयाय हां[2] शिरसे हुं[3] शिखायै हैं[4] कवचाय[5] ।
अस्त्रायाष्टौ देवगणान्हृदाऽऽदित्येभ्य एवं च ॥४०
हां [तु] वसुभ्यो रुद्रेभ्यो विश्वेभ्यश्चैव मरुद्भ्यः ।
भृगुभ्यो हामङ्गिरोभ्य ऋषीन्कण्ठोपवीत्यथ ॥४१
अत्रयेऽथ वशिष्ठाय नमश्चाथ पुलस्तये[6] ।
क्रतवे भारद्वाजाय विश्वामित्राय वै नमः ॥४२
प्रचेतसे मनुष्यांश्च सनकाय वषट् तथा ।
हां सनन्दायाथ वषट् सनातनाय वै वषट् ॥४३
सनत्कुमाराय वषट् कपिलाय तथा वषट् ।
पञ्चशिखाय[7] द्युभवे संलग्नकरमूलतः ॥४४
सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषड् भूतान्देवपितॄनथ ।
दक्षस्कन्धोपवीती च कुशमूलाग्रतस्तिलैः[8] ॥४५
कव्यवाहानलायाथ सोमाय च यमाय च ।
अर्यम्णे चाग्निसोमाय वर्हिषद्भ्यः[9]
स्वधायुतान्(तम्) ॥४६
आज्यपाय च सोमाय विशेषसुरवत्पितॄन्[11] ।
ॐ[12] हामोशानाय पित्रे[13] स्वधा दद्यात्पितामहे ॥४७
शान्तप्रपितामहाय[14] तथा प्रेतपितॄंस्तथा ।
पितृभ्यः पितामहेभ्यः स्वधाऽथ प्रपितामहे ॥४८
वृद्धप्रपितामहेभ्यो मातृभ्यश्च स्वधा तथा ।
हां[15] मातामहेभ्यः स्वधा हां[16] प्रमातामहेभ्यश्च ॥४९
वृद्धप्रमातामहेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यस्तथा ।
सर्वेभ्यः स्वधा ज्ञातिभ्यः सर्वाचार्येभ्य एव च ॥५०
दिशां दिक्पतिसिद्धानां मातृणां ग्रहरक्षसाम् ॥५१

'ॐ हां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ हूं शिखायै वषट् । ॐ हैं कवचाय हुम् । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हः अस्त्राय फट् ।' इन वाक्यों को

१ क. च. हां । ख. ग. ॐ । २ ख. ग. ह्रीं । ३ ख. ग. ह्रूं । ४ ख. ग. ह्रैं । ५ क. ङ. च. ° य च । अ° । ६ क. ङ. च. प्रनष्टये । ७ क. ङ. च. °यह्यन° । ८ क. च. °लैः । ह°र° । ९ क. ङ. च °द्भ्यः स्रुचा यु° । १० ङ. °शेषः सुरसन्पितृ° । ११ क. च.° षसुरसन्पितृ° । १२ ख. ग. ॐ ह्रामी° १३ क. ङ. च. त्रे पृषदाज्याय पिता° । १४ क. ङ. च.° य अथ प्र° । १५ ख. ग. ह्रां । १६ ख. ग. ह्रां ।

क्रमशः पढ़कर हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र-विषयक न्यास करना चाहिए। आठ देवगणों को उनके नाम के अन्त में 'नमः' पद जोड़कर तर्पणार्थ जल अर्पित करना चाहिए। यथा—'ॐ हां आदित्येभ्यो नमः। ॐ हां वसुभ्यो नमः। ॐ हां रुद्रेभ्यो नमः। ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ॐ हां मरुद्भ्यो नमः। ॐ हां भृगुभ्यो नमः। ॐ हां अङ्गिरोभ्यो नमः।' तत्पश्चात् जनेऊ को कण्ठ में माला की भाँति धारण करके ऋषियों का तर्पण करे। 'ॐ हां अत्रये नमः। ॐ हां वशिष्ठाय नमः। ॐ हां पुलस्त्याय नमः। ॐ हां क्रतवे नमः। ॐ हां भरद्वाजाय नमः। ॐ हां विश्वामित्राय नमः। ॐ हां प्रचेतसे नमः। ॐ हां मरीचये नमः।' इन मन्त्रों को पढ़ते हुए अत्रि आदि ऋषियों को (ऋषि-तीर्थ) से एक-एक अञ्जलि जल दे। तत्पश्चात् सनकादि मनुष्यों को (दो-दो अञ्जलि) जल देते हुए निम्नाङ्कित मन्त्र-वाक्य पढ़े।—'ॐ हाँ सनकाय वषट्। ॐ हां सनन्दनाय वषट्। ॐ हां सनातनाय वषट्। ॐ हां सनत्कुमाराय वषट्। ॐ हां कपिलाय वषट्। ॐ हां पञ्चशिखाय वषट्। ॐ हां ऋभवे वषट्' इन मन्त्रों द्वारा जुड़े हाथों की कनिष्ठिका के मूल भाग से जलाञ्जलि देनी चाहिए। 'ॐ हां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट्।' इस मन्त्र से वषट्-स्वरूप भूतगणों का तर्पण करे। तत्पश्चात् यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर करके दुहरे मुड़े हुए कुश के मूल और अग्रभाग से तिल सहित जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ दिव्य पितरों के लिए अर्पित करे। 'ॐ हां कव्यवाहनाय स्वधा। ॐ हां अनलाय स्वधा। ॐ हां सोमाय स्वधा। ॐ हां यमाय स्वधा। ॐ हां अर्यम्णे स्वधा। ॐ हां अग्निष्वात्तेभ्यः स्वधा। ॐ हां सोमपेभ्यः स्वधा।' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण कर विशिष्ट देवताओं की भाँति दिव्यपितरों को जलाञ्जलि से तृप्त करना चाहिए।

ॐ हां ईशानाय पित्रे स्वधा।' कहकर पिता को, 'ॐ हां —पितामहाय स्वधा'। कहकर पितामह को तथा 'ॐ हां शान्तप्रपितामहाय स्वधा।' कहकर प्रपितामह को भी तृप्त करे। इसी प्रकार समस्त प्रेत-पितरों का तर्पण करे। यथा—'ॐ हां पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां पितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रपितामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां प्रमातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां वृद्धप्रपातामहेभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वेभ्यः ज्ञातिभ्यः स्वधा। ॐ हां सर्वाचार्येभ्यः स्वधा। ॐ हां दिग्भ्यः स्वधा। ॐ हां दिक्पतिभ्यः स्वधा। ॐ हां सिद्धेभ्यः स्वधा। ॐ हां मातृभ्यः स्वधा। ॐ हां

ग्रहेभ्यः स्वधा । ॐ हां रक्षोभ्यः स्वधा ।' इन वाक्यों को पढ़ते हुए क्रमशः पितरों, पितामहों, वृद्ध प्रमातामहों, सभी पितरों, सभी ज्ञातिजनों, सभी आचार्यों, सभी दिशाओं, दिक्पतियों, सिद्धों, मातृकाओं, ग्रहों और राक्षसों को जलाञ्जलि प्रदान करे ।४०-५१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये स्नानादिविधिकथनं नाम
द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।७२

——

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सूर्यपूजाकथनम्

ईश्वर उवाच—
वक्ष्ये सूर्यार्चनं स्कन्द कराङ्गन्यासपूर्वकम् ।
अहं तेजोमयः सूर्य इति ध्यात्वाऽर्घ्यमर्चयेत्[1] ॥१
पूरयेद्रक्तवर्णेन ललाटाकृष्टबिन्दुना ।
तं सम्पूज्य रवेरङ्गैः कृत्वा रक्षावगुण्ठनम् ॥२

शंकर बोले—हे स्कन्द ! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्य-पूजन की विधि बतला रहा हूँ । 'मैं तेजोमय सूर्य हूँ' ऐसा ध्यान करते हुए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए और यह कल्पना करनी चाहिए कि वह अर्घ्य देवता के मस्तक पर छिड़के हुए जल से रक्तव-र्ण का हो गया है । मन्त्रों से सूर्य के अङ्गों की पूजा करके रक्षार्थ चारों ओर आवरण-वृत्त घेर देना चाहिए ।१-२।

संप्रोक्ष्य तज्जलैर्द्रव्यं पूर्वास्यो भानुमर्चयेत्[1] ।
ॐ अं हृद्वीजादि सर्वत्र पूजनं दण्डिपिङ्गलौ ॥३
द्वारिदक्षे वामपार्श्वे ईशाने अङ्गणाय च ।
अग्नौ गुरुं[2] पीठमध्ये प्रभूतं चाऽऽसनं यजेत् ॥४

पूर्वाभिमुख होकर जल से सब सामग्री को शुद्ध करके सूर्य की पूजा करे । 'ॐ अं हृदयाय नमः' इस प्रकार आदि में स्वर बीज लगाकर सर्वत्र पूजन करे । द्वार के दाहिने और बाँए पार्श्व में दण्डि और पिङ्गल का, ईशान कोण में गण-पति और अग्निकोण में गुरु और पीठमध्य में अन्य आसन (देवासन) का पूजन करे ।३-४।

---

१ क. ख. ग. घ. ङ. च. ° त्वाऽर्धम° । २ क. च. गुरुमंठ° ।

अग्न्यादौ विमलं[1] सारमाराध्यं परमं सुखम् ।
सितरक्तपीतनीलवर्णान्सिंहनिभान्यजेत् ॥५

अग्नि आदि कोणों में विमल, आराध्य परम सुखप्रद तत्त्वों का और श्वेत, रक्त, पीत, नीलवर्ण के सिंह के समान आकृति वाले देवों की पूजा करे ।५

पद्ममध्ये रां च दीप्तां रीं सूक्ष्मां रुं जयां क्रमात् ।
रूं भद्रां रें विभूतीश्च विमलां रैंममोघया ॥६
रों रौं (च) विद्युता शक्ति पूर्वाद्याः सर्वतोमुखाः ।
रं मध्ये अर्कासनं स्यात्सूर्यमूर्ति[2] षडक्षरम् ॥७

पद्म-मण्डल के मध्य दीप्त रां, सूक्ष्म रीं, रुं जया, भद्रा को रुं, विभूति को रें, विमला को रैं, अमोघा को रों, विद्युता को रौं और पूर्वा आदि को सर्वतोमुखरूप में 'रं' और षडक्षर सूर्यमूर्ति का न्यास करे ।६-७।

ॐ हं खं[3] खशोल्कायेति[4] यजेदावाह्य भास्करम् ।
ललाटाकृष्टमञ्जल्यां[5] ध्यात्वा रक्तं न्यसेद्रविम् ॥८

"ॐ हं खं खशोल्काय नमः" इत्यादि मन्त्र से सूर्य का आवाहन करके उनका पूजन करे। अञ्जलि को ललाट से लगाकर रक्तवर्ण सूर्य का ध्यान करे ।८

ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमो मुद्रयाऽऽवाहनादिकम् ।
विधाय प्रीतये बिम्बमुद्रां गन्धादिकं ददेत् ॥९

"ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः" इत्यादि मन्त्र से सूर्यमुद्रा के द्वारा आवाहन कर सूर्य की प्रसन्नता के लिए बिम्बमुद्रा दिखाए और गन्ध आदि समर्पित करे ।९

पद्ममुद्रां बिम्बमुद्रां प्रदर्श्याग्नौ हृदिरितम् ।
ॐ आं हृदयाय नमः अर्काय शिरसे तथा ॥१०
भूर्भुवः[6] स्वः सुरेशाय[7] शिखायै नैर्ऋते यजेत् ।
[8]हुं कवचाय वायव्ये ह्रां[9] नेत्रायेति मध्यतः ॥११
वः[10] अस्त्रायेति पूर्वादौ ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
धेनुमुद्रा हृदादीनां गोविषाणा च नेत्रयोः ॥१२
अस्त्रस्य त्रासनी योज्या ग्रहाणां च नमस्क्रिया ।
सों सोमं बुं वुधं बृं च जीवं भं भार्गवं यजेत् ॥१३

---

१ ख.° मलासा° । २ ख. ग.° मूर्तिष° । ३ घ. खं खोल्का° । ४ क. खसोल्का च खषोल्का । ५ क. च.°ञ्जन्यां ध्या° । ६ क. ङ. च. °वः स्वरे कालिनि शि° । ख.° वः स्वरों कालिनि शि° । ७ ख. सुरं कालिनि शि° । ८ क. ङ. च. हूं । ख. ग. हूं । ९ क. ख. ग. ङ. च. भ्रां । १० क. रः ।

पद्ममुद्रा और विम्ब मुद्रा को दिखाकर विभिन्न दिशाओं में षडङ्गन्यास करना चाहिए। "अं आं हृदयाय नमः", 'अर्काय शिरसे स्वाहा', 'भूर्भुवः स्वः सुरेशाय शिखायै" मन्त्रों से नैर्ऋत कोण में यज्ञ करे। 'हुं कवचाय नमः' इस मन्त्र से वायव्य में ' हां नेत्राय' मन्त्र से मध्य में और 'वः अस्त्राय' मन्त्र से पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करे, अनन्तर मुद्राएँ लगायें। हृदय आदि पर धेनु-मुद्रा, नेत्रों पर गोविषाणमुद्रा और ग्रहों को नमस्कारमुद्रा दिखाए," 'सों सोमाय नमः" मन्त्र से सोम का, 'बुं बुधाय नमः से बुध का, बृं बृहस्पतये नमः से बृहस्पति का, 'भं भार्गवाय नमः' से शुक्र का पूजन करे।१०-१३।

दले पूर्वादिकेऽग्न्यादौ अं (भं) भौमं शं शनैश्चरम्।
रं राहुं[1] कें केतवे च गन्धाद्यैश्च खशोल्किना[2] ॥१४

पद्मभण्डल की पंखुड़ियों पर पूर्व आदि दिशाओं में और अग्नि आदि कोणों में 'भं भौमाय नमः', 'शं शनैश्चराय नमः', 'रं राहवे नमः' और 'कें केतवे नमः' मन्त्रों से गन्ध आदि से इन ग्रहों के साथ खखोल्की नामक भगवान् सूर्य का पूजन करना चाहिए।१४

मूलं जप्त्वाऽर्घ्यपात्राम्बुं[3] दत्त्वा सूर्याय संस्तुतिः।
नत्वा पराङ्मुखं चार्कं[4] क्षमस्वेति ततो वदेत् ॥१५

मूल मन्त्र का जप करके अर्घ्य पात्र से अर्घ्य देकर सूर्य की स्तुति करे और सूर्य का पराङ्मुख नमस्कार करके 'क्षमा कीजिए' ऐसा कहे।१५

शराणुना फडन्तेन समाहृत्याणु संहृतिम्[5]।
हृत्पद्मे शिव सूर्येति संहारिण्योपसंस्कृतिम्[6] ॥१६
योजयेत्तेजश्चण्डाय रविनिर्माल्यमर्पयेत्।
अभ्यर्च्येशजपाद्ध्यानाद्धोमात्सर्वं रवेर्भवेत् ॥१७

तत्पश्चात् 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से शराणु से अणुसंहृति को इकट्ठा करके हृदय-कमल पर 'शिव और सूर्य' का आवाहन कर के अन्तिम बार पूजा करे। प्रचण्ड सूर्य को तेज से युक्त करके सूर्य को निर्माल्य अर्पित करे। 'हे ईश! इस प्रकार सूर्य का पूजन करके जप, ध्यान और हवन करने से सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध होते हैं।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सूर्यपूजाविधि-कथनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।७३

---

१ क. ख. ग. ङ. च. कं। २क. च. खषोल्कि°। ग खसोल्कि°। घ. खखोल्कय मू°। ङ खखोल्कि°। ३ क. ख. ग. ङ. च.° प्त्वाऽर्घपा°। ४ क. ख. ग. ङ. च. चार्घ क्ष°। ५ ख °हृतिः। हृ°। ६ ख. ग. संहृतम्।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच—

शिवपूजां प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवार्घ्यवान्[1] ।
द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपान्यजेत्[2] ।।१

शिव बोले—अब मैं शिवपूजन के सम्बन्ध में बतलाऊँगा । सर्व प्रथम आचमन करके मन में प्रणव का जप करके अस्त्रमन्त्रों से पवित्र रत्न के द्वारा मन्दिर के द्वार का प्रोक्षण करे तथा होम एवं अन्य द्वारपालों का अर्चन करे ।१

गणं सरस्वतीं लक्ष्मीमूर्ध्वोदुम्बरके यजेत् ।
नन्दिगङ्गे दक्षशाख[3] (खा) स्थिते वामगते यजेत् ।।२
महाकालं च यमुनां दिव्यदृष्टिनिपाति (त) तः ।
उत्सार्य दिव्यान्विघ्नांश्च पुष्पक्षेपान्तरिक्षगान्[4] ।।३

तदनन्तर लक्ष्मी और सरस्वती तथा गणपति का पूजन दरवाजेकी चौखट पर करना चाहिए । दक्षिण की ओर नन्दी और गङ्गा तथा बाँए ओर महाकाल और यमुना की अर्चना करनी चाहिए । उस समय यजमान को अपने आप को दिव्यदृष्टि से युक्त समझना चाहिए । अन्तरिक्ष में पुष्पों को फेंककर अंतरिक्ष गत विघ्नों को दूर कर देना चाहिए ।२-३।

दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठान्यागमन्दिरम् ।
देहलीं लङ्घयेद्वामशाखामाश्रित्य वै विशेत्।।४
प्रविश्य दक्षपादेन विन्यस्यास्त्रमुदुम्बरे ।
ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे मध्यतो यजेत् ।।५

दाहिने पैर की एँड़ी से तीन बार भूमि पर आघात करे । इस क्रिया द्वारा भूतलवर्ती समस्त विघ्नों के निवारण की भावना करे । तत्पश्चात् यज्ञमण्डप की देहली को लाँघे । वाम शाखा का आश्रय लेकर भीतर प्रवेश करे । दाहिने पैर से मण्डप के भीतर प्रविष्ट हो उदुम्बर वृक्ष में अस्त्र का न्यास करे तथा मण्डप के मध्य भाग में पीठ की आधार भूमि में ' ॐ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्र से वास्तुदेवत की पूजा करे ।४-५।

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °वार्घवा° २ ख. ग. °पान्यसेत् । ३ घ. दक्षिणेऽथ स्थि° । ४घ. पुष्पाक्षे° ।

निरीक्षणादिभिः शस्त्रैः शुद्धानादाय गड्डुकान्[१] ।
लब्धानुज्ञः शिवान्मौनी गङ्गादिकमनुव्रजेत् ॥६

निरीक्षण आदि शस्त्रों द्वारा शुद्ध किए हुए गडुओं को हाथ में लेकर, भावना द्वारा भगवान् शिव से आज्ञा प्राप्त करके साधक मौन हो गङ्गा आदि नदी के तट पर जाय ।६

पवित्राङ्गः प्रजप्तेन वस्त्रपूतेन वारिणा ।
पूरयेदम्बुधौ तांस्तान्गायत्र्या हृदयेन वा ॥७

वहाँ अपने शरीर को पवित्र करके गायत्री-मन्त्र का जप करते हुए वस्त्र से छाने हुए जल के द्वारा जलाशय में उन गडुओं को भरे अथवा हृदय-बीज (नमः) का उच्चारण करके जल भरे ।७

गन्धकाक्षतपुष्पादि सर्वद्रव्यसमुच्चयम् ।
सन्निधीकृत्य पूजार्थं भूतशुद्ध्यादि कारयेत् ॥८

सुगन्धित द्रव्यों, अक्षत और पुष्प इत्यादि समस्त सामग्रियों को इकट्ठा करके पूजा के लिए भूतशुद्ध्यादि कराना चाहिए ।८

देवदक्षे ततो न्यस्य सौम्यास्यश्च शरीरतः ।
संहारमुद्रयाऽऽदाय मूर्ध्नि मन्त्रेण धारयेत् ॥९

देवता के दाँई तथा बाँई ओर न्यास करके मन्त्रपाठ करते हुए संहार-मुद्रा के द्वारा शिर में न्यास करना चाहिए ।९

भोग्यकर्मोपभोगार्थं[२] पाणिकच्छपिकाख्यया ।
हृदम्बुजे निजात्मानं द्वादशान्तपदेऽथ वा ॥१०

तत्पश्चात् भोग्यकर्मों के उपयोग के लिए पाणिकच्छपिका (कूर्ममुद्रा) का प्रदर्शन करके द्वादश-दलों से युक्त हृदय-कमल में अपने आत्मा का चिन्तन करे ।१०

शोधयेत्पञ्चभूतानि संचिन्त्य सुषिरं तनौ ।
चरणाङ्गुष्ठयोर्युग्मान्सुषिरान्तर्बहिः स्मरेत् ॥११
शक्तिं हृद्व्यापिनीं पश्चाद्धूकारे पावकप्रभे ।
रन्ध्रमध्ये[३] स्थिते कृत्वा[४] प्राणरोधं हि चिन्तकः ॥१२
निवेशयेद्रेचकान्ते फडन्तेनाथ तेन च ।
हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रे विभिद्य च ॥१३

---

१ ख. गन्त्वगान् । क. ङ. च. शत्रुकान् । २ क. च. ० र्थं याने कच्छापकाक्षया । ङ. र्थं जने कच्छार्पकाक्षया । ३ क. ङ. च. चन्द्रमध्ये । ४ क. च. ०त्वा प्रणवे वह्निचि ० ।

ग्रन्थीन्निर्भिद्य [1]हुंकारं मूर्ध्नि विन्यस्य जीवनम् ।
संपुटं हृदयेनाथ पूरकाहितचेतनम्[2] ॥१४
हूं[3] शिखोपरि विन्यस्य शुद्धं[4] विन्द्वात्मकं स्मरेत् ।
कृत्वाऽथ कुम्भकं शंभावेकोद्घातेन योजयेत् ॥१५

तदनन्तर शरीर में शून्य का चिन्तन करते हुए पाँच भूतों का क्रमशः शोधन करे। पैरों के दोनों अंगूठों को पहले बाहर और भीतर से छिद्रमय (शून्यरूप) देखे। फिर कुण्डलिनी-शक्ति को मूलाधार से उठाकर हृदय-कमल से संयुक्त करके इस प्रकार चिन्तन करे "हृदय-रन्ध्र में स्थित अग्नि-तुल्य तेजस्वी 'हूं' बीज में कुण्डलिनी-शक्ति विराज रही है।" उस समय चिन्तन करने वाला साधक प्राणवायु का अवरोध (कुम्भक) करके उसका रेचक (निःसारण) करने के पश्चात् 'हुं फट्' के उच्चारणपूर्वक क्रमशः उत्तरोत्तर चक्रों का भेदन करता हुआ उस कुण्डलिनी को हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य में ले जाकर स्थापित करे। इन ग्रन्थियों का भेदन करके कुण्डलिनी के साथ हृदय-कमल से ब्रह्म-रन्ध्र में आये 'हूं' बीजस्वरूप जीव को वहीं मस्तक में स्थापित कर दे। हृदय-स्थित 'हूं' बीज से सम्पुटित हुए उस जीव में पूरक प्राणायाम द्वारा चैतन्य भाव जाग्रत किया गया है। शिखा के ऊपर 'हूं' का न्यास करके शुद्ध विन्दु स्वरूप जीव का चिन्तन करे। फिर कुम्भक प्राणायाम करके उस एकमात्र चैतन्य गुण से युक्त जीव को शिव के साथ संयुक्त कर दे।११-१५।

रेचकेन वीजवृत्त्या शिवे लीनोऽथ शोधयेत् ।
प्रतिलोमं[5] स्वदेहे[6] ,तु बिन्द्वन्तं तत्र बिन्दुकम् ॥१६
लयं नीत्वा महीवातौ[7] जलवह्नी परस्परम् ।
द्वौ द्वौ साध्यौ तथाऽऽकाशमविरोधेन तच्छृणु ॥१७

इस प्रकार शिव में लीन होकर रेचक बीजवृत्ति द्वारा अपने आप को शुद्ध करके अपने शरीर में प्रतिलोम रूप से विन्द्वन्त तक विन्दु को ले जाना चाहिए। पृथ्वी और वायु-जल तथा अग्नि एवं आकाश---इन सब में दो-दो को परस्पर अविरोध से लीन कर देना चाहिए।१६-१७।

---

१ क. च ०न्तकम्। नि० २क, च. ०न्निर्वर्त्यं हुं का०। ख. ग. ०न्निर्वर्ण्यं ह्.. । ३ख. काहृत० ४ख. हूरूं। ५ख. ग. शुद्धिविद्वानुकं। ६प्रतिलोमं....बिन्दुकम् क ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ७ ख. स्वहेतौ तु विद्धं तं त० ख. महीपातौ।

पार्थिवं मण्डलं पीतं कठिनं वज्रलाञ्छितम्[1] ।
हौमित्यात्मीयवीजेन[2] तन्निवृत्तिकलामयम् ॥१८

पार्थिव-मण्डल पीला, कठोर एवं वज्र चिह्नित हुआ करता है। 'हां' इस बीज मन्त्र से युक्त तथा 'निवृत्ति' कला से सम्पन्न है।१८

पादादारभ्य मूर्धान्तं विचिन्त्य चतुरस्रकम् ।
उद्घातपञ्चकेनैव वायुभूतं विचिन्तयेत् ॥१९

इस प्रकार पैरों से लेकर मूर्धा पर्यन्त शरीर को चौकोर रूप में समझना और उसे उद्घात-पञ्चक से वायुमय बनाना चाहिए।१९

अर्धचन्द्रं द्रवं सौम्यं शुभ्रमम्भोजलाञ्छितम् ।
ह्रीमित्यनेन[3] वीजेन प्रतिष्ठारूपतां गतम् ॥२०

जलीय मण्डल अर्धचन्द्र आकार, द्रव, शुभ और पद्मचिह्नित होता है। 'ह्रीं' इस बीज मन्त्र से वह प्रतिष्ठा कला में परिणत हो जाती है।२०

संयुक्तं राममन्त्रेण पुरुषान्तमकारणम्[4] ।
अर्घ्यं चतुर्भिरुद्घातैर्वह्निभूतं विशोधयेत् ॥२१

वह वामदेव तथा तत्पुरुष मन्त्रों से संयुक्त जलतत्त्व चार गुणों से युक्त है। उसे इस प्रकार (घुटने से नाभि तक जल का) चिन्तन करते हुए उस जल-तत्त्व का वह्नि-स्वरूप में लीन करके शोधन करे।२१

आग्नेयं मण्डलं त्र्यस्रं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् ।
ह्रूमित्यनेन वीजेन विद्यारूपं विभावयेत् ॥२२

आग्नेय मण्डल त्रिकोण, लाल और स्वस्तिक से चिह्नित होता है 'ह्रूं' इस बीज मन्त्र से उसे विद्यारूप समझना चाहिए।२२

घोराणुत्रिभिरुद्घातैर्जलभूतं विशोधयेत् ।
षडस्रं मण्डलं वायोर्विन्दुभिः षड्भिरङ्कितम् ॥२३

उसे जल के रूप में तीन उद्घातों से शुद्ध करना चाहिए। वायुमण्डल षट्कोण होता है और वह छः बिन्दुओं से चिह्नित रहा करता है।२३

[5]कृष्णं[6] ह्रेमिति वीजेन जातं शान्तिकलामयम् ।
संचिन्त्योद्घातयुग्मेन पृथ्वीभूतं विशोधयेत् ॥२४

१ख. ग.० लाच्छनम् । २ क. ङ. च० त्यार्थीय० ख.त्यात्याय । ३ ह्रीमित्यनेन ....गतम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ४ ख. न्तसका । ५ क. च. कृष्टं ह्यैमि । ङ. कृष्टं हैमि । ६ ख. ग. ष्णंह्रैमि०

नमो बिन्दुमयं वृत्तं बिन्दुशक्तिविभूषितम्[1] ।
व्योमाकारं सुवृत्तं च शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।।२५

उसका वर्ण कृष्ण रहता है तथा 'ह्लें' इस बीज-मन्त्र से वह 'शान्ति' कला युक्त रहता है। इसे पृथ्वी के रूप में कल्पित करके दो उद्घातों से शुद्ध करना चाहिए। नभोवृत्त बिन्दुमय तथा बिन्दुशक्ति से विभूषित हुआ करता है। वह व्योमाकार सुवृत्त और शुद्ध-स्फटिक के समान निर्मल रहा करता है।२४-२५।

हौंकारेण फडन्तेन शान्त्यतीतकलामयम् ।
संचिन्त्योद्घातयुग्मेन पृथ्वीभूतं विशोधयेत् ।।२६

वह 'हौं' इस मन्त्र से 'शान्त्यतीतकला' से युक्त होता है। एक उद्घात के द्वारा उसका घ्यान करते हुए उसे सुविशुद्ध समझना चाहिए।२६

आप्याययेत्ततः सर्वं मूलेनामृतवर्षिणा ।
आधाराख्या (ख्य) मनन्तं च धर्मज्ञानादिपङ्कजम् ।।२७
हृदाऽऽसनमिदं ध्यात्वा ([2]मूर्तिमावाहयेत्ततः ।
सृष्ट्या शिवमयं तस्यामात्मानं[3] द्वादशान्ततः ।।२८

तदनन्तर आधार नामक अनन्तधर्मज्ञानादि पङ्कज को अमृतवर्षी मूल से आप्यायित करना चाहिए। हृदयरूपी इस आसन का विचार करते हुए उसमें शिवमय मूर्ति और द्वादशान्त से आत्ममूर्ति का आवाहन करना चाहिए।२७-२८।

अथ तां शक्तिमन्त्रेण वौषडन्तेन सर्वतः ।
दिव्यामृतेन[4] संप्लाव्य कुर्वीत सकलीकृतम् ।।२९
हृदयादिकरान्तेषु) कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च ।
हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ।।३०

इसके बाद उस मूर्ति को वौषट् से अन्त होने वाले शक्ति मन्त्र से आप्लावित करके सकलीकरण करना चाहिए। हृदय से लेकर हाथ तक और कनिष्ठा आदि अङ्गुलियों में हृदयादि मन्त्र का न्यास सकलीकरण कहा गया है।२९-३०।

अस्त्रेण (णाऽऽ) रक्ष्य प्राकारं तनुत्रेणाथ[5] तद्बहिः ।
शक्तिजालमधश्चोर्ध्वं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ।।३१

अस्त्र से प्राकार की रक्षा करके कवच से उसके बाहर की रक्षा करनी चाहिए। नीचे की ओर शक्तिजल और ऊपर की ओर महामुद्रा का प्रदर्शन करनी चाहिए।३१

---

१ ङ. °विशेषि। २ मूर्तिमानाहृयेत्ततः नास्ति ङ. पुस्तके। ३ क. च ॰माधानं। ४ दिव्यामृतेन....करान्तेषु च. पुस्तके नास्ति। ५ क. घ. ङ. च. तन्मन्त्रेणा॰

आपादमस्तकं यावद्भावपुष्पैः शिवं हृदि।
पद्मे यजेत्पूरकेण आकृष्टामृतसद्घृतैः[1] ॥३२
शिवमन्त्रैर्नाभिकुण्डे तर्पयेत शिवानलम्।
ललाटे विन्दुरूपं च चिन्तयेच्छुभविग्रहम् ॥३३

हृदय में कमल के ऊपर भावना के पुष्पों से आपादमस्तक शिव की अर्चना करनी चाहिए। शिव मन्त्रों के द्वारा नाभिकुण्ड में शिवाग्नि का तर्पण करना चाहिए और मस्तक में विन्दु रूप में सुन्दर शरीर वाले शिव का चिन्तन करना चाहिए।३२-३३।

एकं[2] स्वर्णादिपात्राणां पात्रमस्त्राम्बुशोधितम्[3]।
विन्दुप्रसूतपीयूषरूपतोयाक्षतादिना ॥३४
हृदाऽऽपूर्य[4] षडङ्गेन[5] पूजयित्वाऽभिमन्त्रयेत्[6]।
संरक्ष्य हेतिमन्त्रेण [7]कवचेनावगुण्ठयेत्[8] ॥३५

स्वर्णादि पात्रों में एक पात्र को अस्त्राम्बु से शुद्ध करके विन्दु से उत्पन्न होने वाले अमृतमय जल और अक्षत इत्यादि से षडङ्ग से पूजा करके, अभिमन्त्रण करके अस्त्र मन्त्र से उसकी रक्षा करके, उसे कवच से अवगुण्ठित कर देना चाहिए।३४-३५।

रचयित्वाऽर्घ्यमष्टाङ्गं[9] सेचयेद्धेनुमुद्रया।
अभिषिञ्चेदथाऽऽत्मानं मूर्ध्नि तत्तोयविन्दुना ॥३६

तदनन्तर अष्टाङ्ग अर्घ्य बनाकर धेनु मुद्रा से उसका सेचन करना चाहिए और उस जल के बिन्दु से अपने मस्तक का अभिषेक करना चाहिए।३६

तत्रस्थं यागसंभारं[10] प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा।
अभिमन्त्र्य हृदा पिण्डैस्तनुत्राणेन वेष्टयेत् ॥३७

वहाँ पर रखे यज्ञ सम्भार का अस्त्र-जल से प्रोक्षण करके विन्दुओं से अभिमन्त्रित करके कवच से आवेष्टित कर देना चाहिए।३७

---

१ क. ङ. च. °त संवृतैः। २ ख. ग. एवं। ३ ख. ग. °शोभितं° ४ क. ङ. च. प्रस्रुत°। ५ ख. ग. °पूज्य ष°। ६ च. षडंशेन। ७ ख. ग °यित्वा निम°। ८ ख. ग. °चेन विलुण्ठ° °चेन विगुण्ठ। ९ क. ङ. च. °त्। वर्धयित्वा-ऽर्घम°। १० क. ङ. च. °ङ्ग. रोपये°। ख. ग. °ङ्ग. रेचये°। १० क ङ. च. °संस्कारं।

दर्शयित्वाऽमृतां मुद्रां पुष्पं दत्त्वा निजासने ।
विधाय तिलकं मूर्ध्नि पुष्पं मूलेन योजयेत् ।।३८

अमृत मुद्रा का प्रदर्शन करके अपने आसन के ऊपर एक पुष्प रख देना चाहिए और अपने मस्तक पर तिलक लगाकर मूल-मन्त्र से एक पुष्प चढ़ा देना चाहिए ।३८

स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगयोः ।
आवश्यके जपे धीरः सदा वाचं यमो भवेत् ।।३६

धीर मनुष्य को स्नान, देवार्चन, होम, भोजन, याग, योग और आवश्यक जप में सदा मूक ही रहना चाहिए ।३६

नादान्तोच्चारणान्मन्त्रं शोधयित्वा[1] सुसंस्कृताम्[2] ।
पूजामभ्यर्च्य[3] गायत्र्या सामान्यार्घ्यमुपाहरेत्[4] ।।४०

मन्त्र के अन्त में नाद (ॐ) मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए और गायत्री मन्त्र से पूजन करके सामान्य अर्घ्य को ठीक करना चाहिए ।४०

ब्रह्मपञ्चकमावर्त्य माल्यमादाय लिङ्गतः ।
ऐशान्यां दिशि चण्डाय हृदयेन निवेदयेत् ।।४१

ब्रह्मपञ्चक की आवृत्ति करके लिङ्ग से माल्य को लेकर पूर्वोत्तर कोण की ओर उसे चण्ड नामक देवता को हृदय-मन्त्र से निवेदित कारना चाहिए ।४१

प्रक्षाल्य पिण्डिकालिङ्गे अस्त्रतोये ततो हृदा ।
अर्घ्यपात्राम्बुना सिञ्चेदिति लिङ्गविशोधनम् ।।४२

अस्त्र मन्त्र तथा हृद् मन्त्र से पवित्र जल के द्वारा पिण्डिका और लिङ्ग का प्रक्षालन करके अर्घ्य पात्र के जल से लिङ्ग को सिञ्चित करना ही लिङ्ग-शोधन कहलाता है ।४२

आत्मद्रव्यमन्त्रलिङ्गशुद्धौ सर्वान्सुरान्यजेत् ।
वायव्ये गणपतये हां गुरुभ्योऽर्चयेच्छिवे ।।४३

आत्मा, द्रव्य (पूजा सामग्री) मन्त्र और लिङ्ग की शुद्धि के बाद सभी देवताओं का यजन करना चाहिंए और पश्चिमोत्तर दिशा की ओर 'हां गणपतये, 'हां गुरुभ्यो' मन्त्रों से शिवार्चन करना चाहिए ।४३

आधारशक्तिमङ्कुरनिभां कूर्मशिलास्थिताम् ।
यजेद्ब्रह्मशिलारूढं शिवस्यानन्तमासनम् ।।४४

कूर्म-शिला के ऊपर रखे हुए अङ्कुर के समान आधार शक्ति और ब्रह्मशिला के ऊपर रखे हुए शिव के अनन्त आसन का यजन करना चाहिए ।४४

---

१ क. ङ. च. °त्वा पुरा कृतम् । २ घ °स्कृतम् । ३ घ. पूजनेऽभ्य° । ४ क. ख. ग. ङ. च.° न्यार्घमु° ।

विचित्रकेसरि प्रख्यानन्योन्यं[1] पृष्ठदर्शिनः ।
कृतत्रेतादिरूपेण शिवस्याऽऽसनपादुकाम्[2] ॥४५

विचित्र सिंह की-सी आकृति से सुशोभित सिंहासन है । वे सिंह मण्डलाकार में स्थित होकर अपने आगे वाले के पृष्ठ भाग को ही देखते हैं तथा सत्ययुग त्रेता,द्वापर, कलियुग—इन चार युगों के प्रतीक हैं । तत्पश्चात् शिव की आसनपादुका की पूजा करे ।४५

धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं चाग्निदिङ्मुखान्[3] ।
कर्पूरकुङ्कुमस्वर्णकज्जलाभान्यजेत्क्रमात् ॥४६

धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य को जो कि कर्पूर, केशर, स्वर्ण और कज्जल के समान हैं, और दक्षिण दिशा की ओर मुख वाले हैं, क्रमशः यजन करना चाहिए ।४६

पद्मं च कर्णिकामध्ये[4] पूर्वादौ मध्यतो[5] नव[6] ।
वरदाभयहस्ताश्च शक्तयो धृतचामराः ॥४७

पद्म के बीच कर्णिका के मध्य में नव शक्तियों का पूजन करना चाहिए जो कि एक हाथ में चामर तथा दूसरे हाथ में अभयमुद्रा धारण किये हुए है ।४७

वामा[7] ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकारिणी[8] ।
वलविकार (रि) णी पूज्या बलप्रमथनी क्रमात् ॥४८
ह्रां सर्वभूतदमनी केसराग्रे मनोन्मनी ।
क्षित्यादिशुद्धविद्यां तु तत्त्वव्यापकमासनम् ॥४९

जिनके नाम है—वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलविकारिणी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनी । तदनन्तर पृथ्वी आदि अष्टमूर्ति तथा शुद्ध विद्या का चिन्तन एवं अर्चना करनी चाहिए ।४८-४९।

न्यसेत्सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुम् ।
दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः ॥५०

सिंहासन के ऊपर शुक्ल वर्ण वाले पञ्चमुख, दश बाहु तथा दाहिने हाथों से चन्द्रखण्ड को धारण करने वाले देवता की स्थापना करनी चाहिए ।५०

---

१ ख. केशविप्राख्या° । ग. °केशप्रख्यानमन्यो° । २ क. ख. ग. ङ. च. °कान् ध० । ३ क. ङ. च. ङ्मुखाः । °क । ४ ख. ग. °र्णिकां ग° । ५ ङ. °ध्यतोऽथ वा । °व । ६ क. ङ. च. °तो नवा । व° । ख. गतो° न. च । व° । ७ ख, रामा । ८ क. ङ. च. °का तथा । पू° ।

शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं[1] वामकैः करैः ।
डमरुं बीजपूरं च नीलाब्जं सूत्रमुत्पलम् ॥५१
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतां शैवीं[2] मूर्तिं तु मध्यतः ।
हां हं हां शिवमूर्तये स्वप्रकाशं शिवं स्मरन् ॥५२

देवता के बाँये हाथों में शक्ति, ऋष्टि, शूल, खट्वाङ्ग, डमरू, बीजपूर, नीलकमल और सूत्र रहते हैं। मध्य में बत्तीस लक्षणों से युक्त शिव की मूर्ति को स्थापित करना चाहिए और "हां हं हां शिवमूर्त्तये" मन्त्र से स्वप्रकाश शिव का स्मरण करते रहना चाहिए ।५१-५२।

ब्रह्मादिकारणत्यागमन्त्रं नीत्वा शिवास्पदम् ।
ततो ललाटमध्यस्थं स्फुरत्ताराप्रतिप्रभम् ॥५३
षडङ्गेन[3] समाकीर्णं विन्दुरूपं परं शिवम् ।
पुष्पाञ्जलिगतं ध्यात्वा लक्ष्य[4] मूर्तौ[5] निवेशयेत् ॥५४

ब्रह्म आदि कारण छोड़कर शिव के स्थान में मन्त्र का पाठ करते हुए अपने मस्तक के बीच में स्फुरणशील चन्द्रमा का ध्यान करके षडङ्गन्यास से विन्दुरूप और पुष्पाञ्जलि में स्थित शिव का ध्यान करते हुए उसे लक्ष्मी की मूर्ति में रख देना चाहिए ।५३-५४।

ॐ हां हौं शिवाय नम आवाहन्या हृदा ततः ।
आवाह्य (ह्या) स्थाप्य स्थापन्या संनिधायान्तिकं[6] शिवम् ।
निरोधयेन्निष्ठुरया [7]कालकान्त्या फडन्ततः[8] ।
[9]विघ्नानुत्सार्य[10] मुष्ट्याऽथ लिङ्गमुद्रां नमस्कृतिम् ॥५६
हृदाऽवगुण्ठयेत्पश्चादावाहः संमुखो[11] ततः ।
[12]निवेशनं[13] स्थापनं स्यात्संनिधानं तवास्मि भोः ॥५७

'ॐ हां हौं शिवाय नमः' इस मन्त्र से शिव का आवाहनी मुद्रा से आवाहन करके शिव को अपने निकट स्थापनी मुद्रा से स्थापित करना चाहिए और कालकान्ति निष्ठुरा मुद्रा से निरोधन कर फट् से अन्त होने वाले मन्त्रों के

१– शक्त्यृष्टिकरः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ क. ङ. च. गौरीं । ३ क. ङ. च. पतङ्गेन । ४ ग. घ. लक्ष्मी मू° । ५ क. ङ. च. ° मूर्ति नि° ६ क. ख. ग. ङ. च. ° घानान्ति° । ७ क. ङ. च. कालकर्ण्या । ८ क. ङ. च. °तः बिम्बा नु° । ९ ख. °घ्नान्युत्सा° । १० क. ङ. च° र्यं° षष्ट्याऽ° । घ° र्यं विष्ट्या° । ११ क. ङ. च. °खीकृतः° । १२ क. ङ. च° वेशः स्था ° । १३ क. ङ. च.° नं तत्स्यात्सं ° ।

द्वारा विघ्नों को दूर कर के लिङ्ग मुद्रा के द्वारा मूर्ति का अवगुण्ठन करके उसका आवाहन, सम्मुखीकरण, निवेशन, स्थापन और संनिधान करते हुए इस प्रकार सोचना चाहिए कि 'हे देव ! मैं आप का हूँ' ।५५-५७।

आकर्मकाण्डपर्यन्तं [1]संनिधेर्योऽपरिक्षयः[2] ।
स्वभक्तेश्च प्रकाशो यस्तद्भवेदवगुण्ठनम् ।।५८

कर्मकाण्ड पर्यन्त सन्निधि का जो अपरिक्षय और इष्ट देव की भक्ति का जो प्रकाश होता है, उसी को अवगुण्ठन कहते हैं ।५८

सकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः षड्भिरथैकताम् ।
अङ्गानामङ्गिना सार्धं विदध्यादमृतीकृतम् ।।५९
चिच्छक्तिहृदयं शंभोः शिव ऐश्वर्यमष्टधा ।
शिखा वशित्वं चाभेद्यं तेजः कवचमैश्वरम् ।।६०
प्रतापो दुःसहश्चास्त्रमन्तरायापहारकम् ।
नमः स्वधा च स्वाहा च वौषट्चेति यथाक्रमम् ।।६१

छः मन्त्रों के द्वारा सकलीकरण करके अङ्गी के साथ अङ्गों का अमृतीकरण करना चाहिए । चिच्छक्ति शिव का हृदय है, अष्टविध ऐश्वर्य शिर है, वशित्व शिखा है, तेज अभेद्य कवच है । ईश्वर का दुःसह प्रताप, अन्तराय को दूर करने वाला कवच है । हृदय आदि के साथ नमः, स्वधा, स्वाहा और वौषट् आदि का प्रयोग करना चाहिए ।५९-६१।

हृत्पुरः सरमुच्चार्य पाद्यादीनि निवेदयेत् ।
पाद्यं पादाम्बुजद्वन्द्वे वक्त्रे[3] स्वाचमनीयकम् ।।६२

हृद्मन्त्रों का उच्चारण करके पाद्यादि का निवेदन करना चाहिए । इस पाद्य को मूर्ति के चरणों के ऊपर तथा आचमनीय जल को उसके मुख के ऊपर डालना चाहिए ।६२

अर्घ्यं शिरसि देवस्य दूर्वापुष्पाक्षतानि च ।
एवं संस्कृत्य संस्कारैर्दशभिः परमेश्वरम् ।।६३
यजेत्पञ्चोपचारेण विधिना कुसुमादिभिः ।

देवता के शिर के ऊपर अर्घ्य, दूर्वा, अक्षत और पुष्पों को डालना चाहिए । इस प्रकार दश संस्कारों से परमेश्वर का संस्कार करके पञ्चोपचार विधि से पुष्प इत्यादि से देवता का यजन करना चाहिए ।६३

१ क घ. ङ. च. ॰वेयोऽप॰ । २ क. ङ. च. ॰यः । अवकाश प्र॰ । ख. ग. ॰यः । अ भ॰ । ३ क .ङ. च. ॰क्त्रे ॰वाऽऽच॰ । घ. ॰क्त्रेष्वाच॰ ।

[1]अभ्युक्ष्योद्वर्त्य[2] निर्मृज्य[3] राजिकालवणादिभिः ॥६४
[4]अर्घ्योदबिन्दुपुष्पाद्यैर्गण्डूकैः[5] स्नापयेच्छनैः ।
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात् ॥६५
ईशादिमन्त्रितैर्भुक्त्यै[6] मुक्त्यै तेषां विपर्ययः ।
तोयधूपान्तरैः सर्वैर्मूलेन स्नापयेच्छिवम् ॥६६
विरूक्ष्य यवचूर्णेन यथेष्टं शीतलैर्जलैः ॥६६½

तदनन्तर मूर्ति को नमक और राई इत्यादि से मलकर उसे दूध, दही, मक्खन, शहद तथा मधुर-सुगन्ध वाले पुष्पों के द्वारा स्नान कराना चाहिए। ईशादि मन्त्रों के द्वारा भुक्ति और मुक्ति को प्राप्ति होती है। शिव की मूर्ति को जल और धूप इत्यादि के द्वारा स्नान कराना चाहिए तथा उसके ऊपर जौ का आटा तथा यथेष्ट रूप से शीतल जल डालना चाहिए।६४-६६½।

स्वशक्त्या गन्धतोयेन संस्नाप्य शुचिवाससा ।६७
निर्मार्ज्यार्घ्यं प्रदद्याच्च नोपरि भ्रामयेत्करम् ॥
न शून्यमस्तकं लिङ्गं पुष्पैः कुर्यात्ततो ददेत् ।६८

तदनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार सुगन्धित जल से स्नान करा के, उसे पवित्र वस्त्र से पोंछ कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए, किन्तु मूर्ति के ऊपर हाथ नहीं घुमाना चाहिए और न तो मूर्ति का मस्तक पुष्पों से शून्य ही होना चाहिए।६७-६८।

चन्दनाद्यैः समालभ्य पुष्पैः प्राच्यं शिवाणुना ।
धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य शिवाणुना ॥६९
अस्त्रेण पूजितां[7] घण्टां चाऽऽदाय गुग्गुलं[8] दहेत् ।
दद्यादाचमनं [9]पश्चात्सुधाभं[10] हृदयाणुना ॥७०
आरात्रिकं[11] समुत्तार्य तथैवाऽऽचमयेत्पुनः ।
प्रणम्याऽऽदाय देवाज्ञां भोगाङ्गानि प्रपूजयेत् ॥७१

---

१ अभ्युक्ष्योद्वर्त्य ..लवणादिभिः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु ।२ घ निर्मज्ज्य । ३ख. अर्घोद° ।४ग. °गंज्जकै° ।५ ख ग.° तैर्भक्ष्यैर्मुख्यैस्तेषां ।घ. °तैर्द्रव्यैरर्च्यते° । ६ क.ङ. च.° तां मध्ये वादयेद्गुग्गु° । ७ ख. ग. घ. ददेत् । ८ क. ङ. च.°श्चाद्देवान्तं हृ° । घ.° श्चात्स्वधान्तं हृ° । ९ ख. ° धातं हृ° । १० क. च. °रातिकं । ११ग रातिकं ।

इसके बाद शिव-मन्त्रों से चन्दन और पुष्प इत्यादि चढ़ाकर उसी मन्त्र से उसकी अर्चना करनी चाहिए। धूप के पात्र के अस्त्र और शिवमन्त्रों से अर्चित घण्टे को लाकर गुग्गुल को जलाना चाहिए। इसके बाद हृद् मन्त्रों से अमृत तुल्य आचमन करना चाहिए। उसके बाद आरती करके पुनः आचमन करना चाहिए। देवता को प्रणाम करके तथा उसकी आज्ञा लेकर भोग इत्यादि लगाना चाहिए।६९-७१।

हृदग्नौ चन्द्रभं चैशे शिवं[1] चामीकरप्रभम्।
शिखां रक्तां च नैर्ऋत्ये (ते) कृष्णं चर्म[2] च वायवे ॥७२

अग्निकोण में चन्द्रप्रभ हृदय का और ईशान कोण में सुवर्ण के समान कान्ति वाले शिर का, नैर्ऋत कोण में लाल रंग की शिखा का, वायव्य कोण में कृष्ण वर्ण के कवच का पूजन करे।७२

चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं दलस्थान्पूजयेदिमान्[3]।
दंष्ट्राकरालमप्यस्त्रं पूर्वादौ वज्रसंनिभम् ॥७३

चतुर्मुख ब्रह्मा और चतुर्बाहु विष्णु की पूजा दलों के ऊपर तथा वज्रतुल्य करालदंष्ट्रा अस्त्र का पूजन पूर्व इत्यादि की ओर होना चाहिए।७३

मूले हौं[4] शिवाय नमः ॐ[5] हां हूं ह्रीं हों शिरश्च।
हूं शिखा हैं वर्म चास्त्रं परिवारयुताय च ॥७४
शिवाय दद्यात्पाद्यं च आचामं चार्घ (र्घ्यं) मेव च।
गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्याचमनीयकम् ॥७५
करोद्वर्तनताम्बूलं मुखवासं च दर्पणम्।
शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम् ॥७६

मूल में 'हौं शिवाय नमः,' 'ॐ हां हृदयाय नमः,' 'ह्रीं शिरसे स्वाहा' कह कर हृदय और शिर की पूजा करे। 'हूं' शिखायै वषट्' बोलकर शिखा की तथा 'हैं कवचाय हुम्' से कवच की तथा 'हः अस्त्राय फट्' बोलकर अस्त्र की पूजा करे। इसके बाद शिव के लिए पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य, आचमनीय, करोद्वर्तन, ताम्बूल, मुखवास, दर्पण इत्यादि प्रदान करना चाहिए। देवता के शिर के ऊपर पवित्र दूर्वा और अक्षत को रखना चाहिए।७४-७६।

---

१ क. ख. ग. ङ. च. शिरश्चामी°। २ घ. वर्म ३ क. ङ. च. दर्भस्था°।
४ क. ङ. च. हां। ५ ख. ग. ॐ हां हृ. ह्रीं शि°।

मूलमष्टशतं जप्त्वा हृदयेनाभिमन्त्रितम् ।
चर्मणा वेष्टितं खङ्गरक्षितं[1] कुशपुष्पकैः ॥७७
अक्षतैर्मुद्रया युक्तं शिवमुद्भवसंज्ञया ।
गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥७८
सिद्धिर्भवति[2] मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ।

हृद्मन्त्र से युक्त मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार जप करके कवच से वेष्टित और अस्त्र से सुरक्षित, कुश, पुष्पों और अक्षतों से युक्त उद्भव नाम की मुद्रा से समन्वित कर शिव के लिए यह श्लोक पढ़ना चाहिए— **गुह्यातिगुह्य गुप्त्यर्थं गृहाणास्मत् कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयिस्थिते ।** अर्थात् हे गोपनीयों में गोपनीय अपनी रक्षा के लिए किये गये मेरे जप को ग्रहण कीजिए जिससे आप की कृपा से और आपके रहते हुए मुझे सिद्धि-भोग की कामना वाला व्यक्ति प्राप्त हो सके ।७६-७८½।

भोगी श्लोकं पठित्वा[3] तु दक्षहस्तेन शंभवे ॥७९
मूलाणुनाऽर्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत्[4] ।
यत्किंचित्कुर्महे[5] देव सदा सुकृतदुष्कृतम् ॥८०
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शंकर ।

इस श्लोक को पढ़ते हुए मूलमन्त्र से दाहिने हाथ में शम्भु के लिए अर्घ्य-जल का निवेदन करना चाहिए । उस समय याजक को यह ध्यान करना चाहिए कि 'हे देव, मैं जो कुछ भी पाप पुण्य करता हूँ वह सब शिवाधार ही है, इसलिए आप मेरे पापों का नाश करें' ।७९-८०½।

शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥८१
शिवो जयति[6] सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ।
श्लोकद्वयमधीत्यैवं जपं देवाय चार्पयेत् ॥८२

शिव ही दाता हैं, शिव ही भक्त हैं और शिव ही सम्पूर्ण जगत् हैं । शिव की सर्वत्र विजय होती है, जो शिव है वही मैं हूँ । इस प्रकार दो श्लोकों को पढ़ते हुए देवता के लिए जप समर्पित करना चाहिए ।८१-८२।

१ग. घ. ङ. खङ्ग र° । २घ. ङ.° वतु मे । ३क. ग. ङ. च.° ठित्वाऽऽर्थं द° । घ.° ठित्वाऽऽर्घ्यं द° । ४ च. निवेशयेत् । ५ ख. च° चित्कर्म हे । ६ क. ङ. च. यजति ।

शिवाङ्गानां दशांशं च दत्त्वाऽर्घ्यं[1] स्तुतिमाचरेत् ।
प्रदक्षिणीकृत्य नमेच्चाष्टाङ्गं चाष्टमूर्तये ।।८३
नत्वा ध्यानादिभिश्चैव यजेच्चित्रेऽनलादिषु ।।८४

शिव के अङ्गों को दशांश अर्घ्य प्रदान करके स्तुति करनी चाहिए । तदनन्तर देवता की प्रदक्षिणा करके अष्टमूर्ति शंकर के लिए साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए और ध्यान इत्यादि करते हुए अग्नि आदि में यजन करना चाहिए ।८३-८४।

इत्यादि महापुराण आग्नेये शिवपूजाविधिकथनं नाम चतुःसप्तति-तमोऽध्यायः ।७४

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शिवपूजाङ्गहोमविधिः

ईश्वर उवाच—

अर्घपात्रकरो यायादग्न्यागारं सुसंवृतः ।
यागोपकरणं सर्वं दिव्यं (व्य) दृष्ट्वा (ष्टया) च कल्पयेत् ।।१

ईश्वर बोले—यजमान को हाथ में अर्घपात्र लेकर समाहित चित्त होकर अग्नि-गृह में जाना चाहिए । समस्त यज्ञ-सामग्री को भलीभाँति देखकर दिव्य बना ले ।१

उदङ्मुखः कुण्डमीक्षेत्प्रोक्षणं ताडनं कुशैः ।
विदध्यादस्त्रमन्त्रेण[2] वर्मणाऽभ्युक्षणं मतम् ।।२

उत्तराभिमुख होकर कुण्ड का अवलोकन करके अस्त्र-मन्त्र से कुशाग्रों से ताडन और प्रेक्षण करे । कवच-मन्त्र से अभ्युक्षण (सेचन) करना युक्तियुक्त है ।२

खड्गेन खातमुद्धारं पूरणं समतामपि ।
कुर्वीत वर्मणा सेकं कुट्टनं तु शराणुना[3] ।।३

१ क. ख. ग. ङ. च. °त्त्वाऽर्धं स्तु° । २ ख. ग 'ण धर्मेणाभ्यु° । ३ घ. °रात्मना ।

संमार्जनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम् ।
त्रिसूत्रीपरिधानं च वर्मणाऽभ्यर्चनं सदा ॥४
रेखात्रयमुदक्कुर्यादेकां पूर्वाननामधः ।
कुशेन च शिवास्त्रेण[1] यद्वा तासां विपर्ययः ॥५

खड्ग से गढ्ढा खोदकर उसको बराबर भी कर दे । वर्म (मन्त्र) से जल छिड़ककर शरमन्त्र से भूमि को कूटने का कार्य करे । सम्मार्जन, समालेपन, कलात्मक-चित्रण, त्रिसूत्रीधारण और पूजन सर्वदा वर्म-मन्त्र से करना चाहिए । कुश या त्रिशूल से ऊपर की ओर तीन रेखाएँ खींचे । एक रेखा उन तीनों के नीचे पश्चिम से पूर्व की ओर खींचे अथवा इसके विपरीत ही रेखाएँ खींचे । ३-५ ।

वज्रीकरणमंत्रेण[2] हृदा दर्भैश्चतुष्पथम् ।
अक्षपात्रं तनुत्रेण विन्यसेद्विष्टरं हृदा ॥६
हृदा वागीश्वरीं तत्र ईशमावाह्य[3] पूजयेत् ।
वह्निं सदाश्रयानीतं शुद्धपात्रोपरि स्थितम् ॥७

अस्त्र-मन्त्र से वज्रीकरण करे, हृद्मन्त्रों से कुशों के चतुष्पथ बनाएँ, कवच-मन्त्र से अक्षपात्र रखे और हृन्मन्त्र से विस्तर बिछाए । हृन्मन्त्र से उस चतुष्पथ पर वागीश्वरी और ईश का आवाहन करके शुद्धपात्र के ऊपर रखकर सद्ब्राह्मण द्वारा लाई हुई अग्नि की पूजा करे । ६-७ ।

क्रव्यादांशं परित्यज्य वीक्षणादिविशोधितम् ।
औदार्यं चैन्दवं[4] मौनमेकीकृत्यानलत्रयम् ॥८
ॐ हूं[5] वह्निचैतन्याय वह्निबीजेन विन्यसेत् ।
संहितामन्त्रितं वह्निं धेनुमुद्रामृतीकृतम्[6] ॥९
रक्षितं हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठितम् ।
पूजितं त्रिः परिभ्राम्य कुण्डस्योर्ध्वं प्रदक्षिणम् ॥१०

असुरों का भाग छोड़कर (यज्ञ-सामग्री का) भलीभाँति निरीक्षण करके शुद्ध कर ले । औदार्य (जठराग्नि), ऐन्दव (वडवाग्नि) और मौन (सामान्य) अग्नि को 'ॐ हूं वह्निचैतन्याय' इत्यादि वह्नि-बीज से स्थापित करे । संहिता के द्वारा आमन्त्रित अग्नि का धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके अस्त्र-मन्त्र से रक्षित करे तथा कवच से उसको अवगुण्ठित करके पूजन करे और तीन बार कुण्ड के ऊपर हाथ को घुमाकर प्रदक्षिणा करे । ८-१० ।

१ ख. °ण हृदा ता° । २ क. ङ. च. °मस्त्रेण । ३ क. ङ. च. °माराध्य पू° । ४ ख ग. चैन्धनं मौ° । ५ ख. ग. ह्रूं । ६ख. मृतं हृतं° ।

शिवबीजमिति ध्यात्वा वागीशागर्भगोचरे ।
वागीश्वरेण देवेन क्षिप्यमाणं विभावयेत् ॥११

वागीश के मध्य में दिखाई पड़ने वाले वागीश्वर से फेंके गये (छवि) का शिव-बीज मन्त्र से ध्यान करके उसकी विभावना करे।११

भूमिष्ठजानुको मन्त्री हृदाऽऽत्मसंमुखं क्षिपेत् ।
ततोऽन्तःस्थितबीजस्य नाभिदेशे समूहनम् ॥१२
संभृतिं परिधानस्य शौचमाचमनं हृदा ।
गर्भाग्नेः पूजनं कृत्वा तद्रक्षार्थं शराणुना ॥१३
बध्नीयाद्गर्भजं देव्याः कङ्कणं पाणिपल्लवे ।१३½

मंत्री (यजमान) भूमि पर घुटने टेककर हृन्मन्त्र से अपनी ओर पात्र का मुख कर अग्नि को कुण्ड में छोड़े। तदन्तर कुण्डनाभि में मध्यस्थित बीज का समूहन करे, वस्त्र को भलीभाँति पहनकर हृन्मन्त्र से अपने को पवित्र कर आचमन करे। अग्निकुण्ड के गर्भ में स्थित अग्नि की पूजा करके उसकी रक्षा के लिए शराणु मन्त्र से कंकण को देवी के पल्लव के समान कोमल कर में बाँध दे।१२-१३½।

गर्भाधानाय संपूज्य सद्योजातेन पावकम् ॥१४
ततो हृदयमन्त्रेण जुहुयादाहुतित्रयम् ।
पुंसवनाय वामेन तृतीये मासि पूजयेत् ॥१५
आहुतित्रित्रयं दद्याच्छिरसाऽम्बुकणान्वितम् ।
सीमन्तोन्नयनं षष्ठे मासि संपूज्य रूपिणा[1] ॥१६

गर्भाधान के लिए अग्नि की 'सद्योजात' मन्त्र से पूजा करके हृदयमन्त्र से तीन आहुतियाँ दे। पुंसवन के लिए तीसरे महीने में वाममन्त्र से अग्नि का पूजन करके शिर (मन्त्र) से जलकण से मिश्रित तीन आहुतियाँ दे। छठे मास में सीमन्तोन्नयन की पूजा करनी चाहिए।१४-१६।

जुहुयादाहुतीस्तिस्रः शिखया शिखयैव तु ।
वक्त्राङ्गकल्पनां कुर्याद्वक्त्रोद्घाटननिष्कृती ॥१७
जातकर्मनृकर्मभ्यां दशमे मासि पूर्ववत् ।
वह्निं संधुक्ष्य[2] दर्भाद्यैः स्नानं गर्भमलापहम् ॥१८
सुवर्णबन्धनं देव्या[3] कृतं ध्यात्वा हृदाऽर्चयेत् ।
सद्यः सूतकनाशाय प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ॥१९

---

१ क. ङ. च. दारुणा । २ क. ङ. संवीक्ष्य । च संमीक्ष्य । ३ क. ख. ग. ङ. च. देव्याः ।

तदनन्तर शिखा मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे तथा शिखामन्त्र से ही मुख और अङ्ग आदि की कल्पना करे। दशवें महीने में जातकर्म और नृकर्म करे। पूर्व की ही भाँति अग्नि को कुश आदि से प्रज्वलित कर गर्भ-दोष को दूर करने वाला स्नान करे। देवी के द्वारा किये गये सुवर्ण बन्धन का हृन्मन्त्र से ध्यान कर पूजन करे। तत्काल सूतक-दोष की निवृत्ति के लिए अस्त्रजल से सिंचन करे ॥१७-१९।

कुण्ड[1] तु बहिरस्त्रेण[2] ताडयेद्वर्मणोत्क्षिपेत्[3] ।
अस्त्रेणोत्तरपूर्वाग्रान्मेखलासु बहिः कुशान् ॥२०

अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके उसके कुण्ड को बाहर की ओर से ताड़न करे, कवच से ऊपर की ओर जल फेंके, अस्त्र से कुण्ड की मेखला पर बाहर की ओर उत्तर और पूर्व की ओर अभिमुख करके कुशों को रखे।२०

आस्थाप्य[4] स्थापयेत्तेषु हृदा परिधिविस्तरम्[5] ।
वक्त्राणामस्त्रमन्त्रेण ततो नालापनुत्तये ॥२१
समिधः पञ्च होतव्याः प्रान्ते मूसे घृतप्लुताः ।
ब्रह्माणं शंकरं विष्णुमनन्तं च हृदार्चयेत्[6] ॥२२

उन पर परिधि के विस्तार के बराबर मुख बनावे। तदनन्तर अस्त्र मन्त्र से नाल काटने के लिए घी में डुबोकर पाँच समिधाओं की आहुतियाँ दे। ब्रह्मा, शङ्कर, अनन्त और विष्णु का हृदय (मन्त्र) से पूजन करे।२१-२२।

दूर्वाक्षतैश्च पर्यन्तं परिधिस्थाननुक्रमात् ।
इन्द्रादीशानपर्यन्तान्विष्टरस्थाननुक्रमात् ।२३

दूब और अक्षत से क्रमशः परिधि मण्डल पर स्थापित आसन पर इन्द्र (पूर्व) दिशा से लेकर ईशान पर्यन्त बैठे देवों की पूजा करे।२३

अग्नेरभिमुखीभूतान्[7] निजदिक्षु हृदार्चयेत् ।
निवार्य विघ्नसंघातबालकं पालयिष्यथ[8] ॥२४
शैवीमाज्ञामिमां तेषां श्रावयेत्तदनन्तरम् ।
गृहीत्वा स्रुक्स्रुवावूर्ध्ववदनाधोमुखौ [9]क्रमात् ॥२५
प्रताप्याग्नौ त्रिधा दर्भमूलमध्याग्रकैः स्पृशेत् ।२५½

१ ख. ग. घ कुन्म°। २ ख. ग. °येद्वर्म°। ३ घ. °णोक्षयेत्। ४ क. ङ. च. आस्तीर्य। ५ ख. °विष्ठिर°। ६ क ङ. च. °त्। पूर्वाभ्यन्तरपं°। ७ क. ङ. च. °तान्नयदि°। ८ क. ङ. च. °थ। गौरीमा°। ९ ख. °मुखैः क्र°।

हृद् मन्त्र से अग्नि की ओर अभिमुख देवों की उनकी दिशाओं में पूजा करके 'सब विघ्नों को दूर कर बालक का पालन करो'—शिव की इस आज्ञा को देवताओं से निवेदित करे। तत्पश्चात् स्रुक् और स्रुवा को क्रमशः ऊर्ध्वं-मुख और अधोमुख करके अग्नि पर तीन बार तपावे, कुश के मूल से उनके मूल को, मध्य से मध्य को और शिखा से शिखा को स्पर्श कराए।२४-२५½।

कुशस्पृष्टप्रदेशेषु[1] आयुर्विद्याशिवात्मकम् ॥२६
क्रमात्तत्त्वत्रयं न्यस्य हां हीं हूं संरवैः क्रमात्।
स्रुचि शक्तिं स्रुवे शंभुं विन्यस्य हृदयाणुना ॥२७

कुश से स्पर्श किये हुए भागों पर आत्मा, विद्या और शिव तत्त्वों का क्रमशः हां हीं हूं का उच्चारण करके न्यास करे। स्रुक् पर शक्ति को और स्रुव पर शम्भु को हृदय मन्त्र से न्यस्त करे।२६-२७।

त्रिसूत्रीवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभिः।
कुशानामुपरिष्टात्तौ स्थापयित्वा स्वदक्षिणे ॥२८

त्रिसूत्री उनके गले में लपेटकर पुष्प, अक्षत और चन्दन आदि से पूजन करके अपने दक्षिण ओर कुशों पर रखे।२८

गव्यमाज्यं समादाय वीक्षणादिविशोधितम्।
स्वकां ब्रह्ममयीं मूर्तिं संचिन्त्याऽऽदाय तद्घृतम् ॥२९
कुण्डस्योर्ध्वं हृदावर्त्य[2] भ्रामयित्वाऽग्निगोचरे।
पुनर्विष्णुमयीं ध्यात्वा घृतमीशानगोचरे ॥३०
धृत्वाऽऽदाय कुशाग्रेण स्वाहान्तं शिरसाऽणुना।
जुहुयाद्विष्णवे विन्दुं रुद्ररूपमनन्तरम्[3] ॥३१
भावयन्निजमात्मानं नाभौ धृत्वा प्लवेत्ततः ॥३१½

गाय के घी को लेकर भलीभाँति निरीक्षण करके शुद्ध कर ले। अपनी ब्रह्ममयी मूर्ति का चिन्तन करके घी को हाथ में ले ले और हृद्मन्त्र से कुण्ड के ऊपर अग्नि के चारों ओर घुमाए, फिर अपनी विष्णुमयी मूर्ति का ध्यान कर के उस घृत को ईशान कोण में रखकर कुशाग्र से उस घृत का स्वाहान्त मन्त्र से, शिर (मन्त्र) से या अणु मन्त्र से विष्णु के निमित्त हवन करे। तदनन्तर अपने आप में रुद्र की भावना करके घी को अपनी नाभि में लगाए। २९-३१½।

१ ख. ग. घ. °शे तु आत्मविद्या°। २क. च. °र्त्य तापयि°। ३.क. ङ. च. °म्। तावन्निजयमात्मानं नाभौ वृद्धायवेत्ततः।

प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः ॥३२
घृताभ्यां सम्मुखं[1] वह्नेरस्त्रेणाऽऽप्लवमाचरेत् ।
हृदाऽऽत्मसंमुखं तद्वत्कुर्यात्संप्लवनं ततः ॥३३

प्रादेश परिमाण के दो कुशों को अँगूठा और अनामिका के अग्रभाग के बीच पकड़कर अग्नि के सम्मुख होकर उन कुशाओं से घृत लेकर छिड़के, फिर हृदय-मन्त्र से आत्माभिमुख होकर घृत छिड़के ।३२-३३।

हृदालब्धदग्धदर्भं शस्त्रक्षेपात्पवित्रयेत् ।
दीप्तेनापरदर्भेण[2] नीराज्यान्येन[3] दीपयेत् ॥३४
अस्त्रमन्त्रेण निर्दग्धं वह्नौ दर्भं पुनः क्षिपेत् ॥३४½

हृद् मन्त्र से हाथ में लिए हुए कुश के जल जाने पर शस्त्र-क्षेप के द्वारा पवित्र करे। एक जलते हुए कुश से उसकी आरती करके फिर दूसरे कुश से उसे जलावे। उस जले हुए कुश को अस्त्र-मन्त्र से पुनः अग्नि ही में डाल दे ।३४-३४½।

क्षिप्त्वा घृते कृतग्रन्थिकुशं प्रादेशसंमितम् ॥३५
पक्षद्वयमिडादीनां त्रयं[4] वाह्ये विभावयेत् ।
क्रमाद्भागत्रयादाज्यं स्रुवेणाऽऽदाय होमयेत् ॥३६
स्वेत्यग्नौ हा घृते भागं शेषमाज्यं क्षिपेत्क्रमात् ।
ॐ हामग्नये स्वाहा । ॐ हां सामाय स्वाहा ।
ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३७

घी में प्रादेश परिमाण लम्बा और गाँठ लगा हुआ कुश रखकर बाह्य भाग में इडा आदि तीन नाड़ियों और दो पक्षों की संभावना करे। क्रम से स्रुवा से उन तीन भागों में से घी लेकर स्वाहा का उच्चारण करने पर अग्नि में, हां का उच्चारण करने पर घी के पात्र में इस प्रकार शेष घी को भिन्न-भिन्न पात्र में छोड़े। मन्त्र यह है—'ॐ हामग्नये स्वाहा', ॐ हां सोमाय स्वाहा,' ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इत्यादि ।३५-३७।

उद्घाटनाय नेत्राणामग्नेर्नेत्रत्रये मुखे ।
स्रुवेण घृतपूर्णेन चतुर्थीमाहुतिं यजेत् ॥३८
ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥३९

---

१ क. ङ. च. °खं बाहुच्छत्रंणोत्प्लं° । २ घ. °ण निवाह्यानेन । ३ ख. नीवाह्यानेन । ४ घ ° यं वाऽऽज्ये वि° ।

नेत्र खोलने के लिए अग्निदेव के तीन नेत्रों को लक्षित कर घृतपूर्ण स्रुव से उपर्युक्त मन्त्रों से हवन करे। घी से स्रुवा को भरकर 'ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' का उच्चारण करके अग्निमुख में चौथी आहुति दे।३८-३९।

अभिमन्त्र्य षडङ्गेन बोधयेद्धेनुमुद्रया।
अवगुण्ठ्य तनुत्रेण रक्षेदाज्यं शराणुना ॥४०

षडङ्ग से अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा से उद्बोधन करे, कवच से अवगुण्ठन कर शर-मन्त्र से घी का रक्षण करे।४०

हृदाज्यबिन्दुविक्षेपात्कुर्यादभ्युक्ष्य शोधनम्।
वक्त्राभिघारसंधानं वक्त्रैकीकरणं तथा ४१

हृद् से घृत बिन्दु का विक्षेप करके सिञ्चन, शोधन, वक्त्राभिघार—संधान और मुखों का एकीकरण करे।४१

ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा। ॐ हां वामदेवाय स्वाहा।
ॐ हामघोराय स्वाहा। ॐ तत्पुरुषाय स्वाहा॥
ॐ हामीशानाय स्वाहा[1] ॥४२
इत्येकैकघृताहुत्या कुर्याद्वक्त्राभिघारकम् ॥४३

'ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा', 'ॐ हां वामदेवाय स्वाहा', 'ॐ हामघोराय स्वाहा' 'ॐ तत्पुरुषाय स्वाहा,' 'ॐ हामीशानाय स्वाहा'—इन मन्त्रों से एक-एक घृताहुति देकर वक्त्राभिघार करना चाहिए।४२-४३।

ॐ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा। ॐ हां वामदेवा-
घोराभ्यां[2] स्वाहा। ॐ हामघोरतत्पुरुषाभ्यां स्वाहा।
ॐ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा ॥४४

'ॐ हां सद्योजातवेदाभ्यां स्वाहा...... ....ॐ हां तत्पुरुषे-शानाभ्यां स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से मुखानुसन्धान करे॥४४

इतिवक्त्रानुसन्धानं मन्त्रैरेभिः क्रमाच्चरेत्। अग्नितो गतया-
वायुं निर्ऋतादिशिवान्तया। वक्त्राणामेकतां कुर्यात्स्रुवेण
घृतधारया ॥४५
ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोरतत्पुरुषेशानेभ्यः[3] स्वाहा ॥४६

अग्निकोण से प्रारम्भ करके वायु दिशा तक, नैर्ऋत कोण से ईशान दिशा पर्यन्त स्रुवा को घी से भरकर उसकी धार से 'ॐ हां सद्योजातवामदेवाघोर तत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से मुखों को एक में मिलाए।४५-४६।

---

१ क. ङ. च. °हा। एकैककया घृ°। २ क. ख. ग. ङ. च. वामाघो°।
३ क. ङ. च० वामाघो°।

इतीष्टवक्त्रे[1] वक्त्राणामन्तर्भावस्तदाकृतिः ।
ईशेन[2] वह्निमभ्यर्च्य दत्त्वाऽस्त्रेणाऽऽहुतित्रयम् ॥४७

इस प्रकार इष्ट मुख से अन्य मुखों को मिलाने पर सब एक ही आकार के हो जाते हैं। ईश मन्त्र से अग्नि की पूजा करके अस्त्र मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे ।४७

कुर्यात्सर्वात्मना नाम शिवाग्निस्त्वं हुताशन ।
हृदार्चितौ [3]विसृज्याग्नौ[4] पितरौ विधिपूरणीम् ॥४८
मूलेन वौषडन्तेन दद्यात्पूर्णां यथाविधि ।
ततो हृदम्बुजे[5] साङ्गं सासनं भासुरं परम् ॥४९
यजेत्पूर्ववदावाह्य प्रार्थ्याऽऽज्ञां तर्पयेच्छिवम् ।

तत्पश्चात् 'हे हुताशन ! तुम सब प्रकार से निश्चय ही शिवाग्नि हो'—इस प्रकार प्रार्थना करके अग्नि में विधिपूर्वक आहुति दे। यह पूर्णाहुति विधिपूर्वक वौषडन्त मूलमन्त्र से देनी चाहिए। इसके अनन्तर हृदय कमल पर अङ्ग और आसन सहित तेजस्वी शिव का पूजन करे। पहले आवाहन कर प्रार्थना करे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त करके तर्पण करे ।४८-४९।

यागाग्निशिवयोः कृत्वा नाडीसंधानमात्मना ॥५०
शक्त्या मूलाणुना होमं कुर्यादङ्गैर्दशांशतः[6] ।
घृतस्य कार्शिको[7] होमः क्षीरस्य मधुनस्तथा ॥५१
शुक्तिमात्राऽऽहुतिर्दध्नः प्रसृतिः[8] पायसस्य तु ।
यथावत्सर्वभक्षाणां लाजानां मुष्टिसंमितम् ॥५२

आत्मा द्वारा यागाग्नि और शिव के बीच नाड़ी संविधान कर शक्ति के अनुसार मूलाग्र से और अङ्गों से दशांश हवन करे। घी का हवन एक पैसे के चौथाई परिमाण में करना चाहिए और दूध, मधु, दही का एक सीप के परिमाण में, अन्य खाद्य-पदार्थों और धान के लावे को मुट्ठी भर के परिमाण में हवन करना चाहिए ।५०-५२।

खण्डत्रयं तु मूलानां फलानां तु प्रमाणतः ।
ग्रासार्धमात्रमन्नानां सूक्ष्माणि पञ्च होमयेत् ॥५३

---

१ क. ङ. च. इत्यष्ट । २ क. ऐशेन । ङ. च. ईशाने । ३ घ. °सृष्टाग्नौ । ४ क. ङ. च. °ज्याग्नेः पि° । ५ ख. ग. हृदाम्बु° । ६ख. ग. °र्दशाङ्गतः । ७ ख. ग. वार्षिको । ८ क. ङ. च. प्रसूतिः ।

जड़ वाले फल को तीन खण्ड करके और फलों का उनके परिमाण के अनुसार आधे ग्रास के परिमाण में हवन करे। अन्य अन्नों की सूक्ष्म मात्रा को लेकर पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए।५३

इक्षोरापर्विकं मानं लतानामङ्गुलद्वयम्[1]।
पुष्पं पत्रं स्वमानेन समिधा तु दशाङ्गुलम् ॥५४

गन्ने की एक-एक गाँठ का और लताओं के दो-दो अङ्गुल के खण्ड काट कर हवन करे, फूल पत्तियों का तो परिमाण उनके मान के अनुसार ही है, समिधा का मान दश अङ्गुल का है।५४

चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीयक्षकर्दमान्।
[2]कलायसंमितानेतान्गुग्गुलं[3] वदरास्थिवत् ॥५५

कर्पूर, चन्दन, केशर और कस्तूरी को मिलाकर बने सुगन्धित पदार्थों का मसूर के बराबर और गुग्गुल को बेर की गुठली के परिमाण में आहुति देनी चाहिए।५५

कन्दानामष्टमं भागं जुहुयाद्विधिवत्परम्।
होमं निर्वर्तयेदेवं ब्रह्मबीजपदैस्ततः ॥५६
घृतेन स्रुचि पूर्णायां निधायाधोमुखं स्रुवम्।
स्रुगग्रे पुष्पमारोप्य पश्चाद्वामेन पाणिना ॥५७
पुनः सव्येन तौ धृत्वा शङ्खसंनिभमुद्रया।
समुद्गतोर्ध्वकायश्च समपादः समुत्थितः ॥५८

कन्दों के आठवें भाग को एक आहुति के रूप में दे। इस प्रकार हवन करने के पश्चात् ब्रह्मबीज पद से घी से स्रुक् को परिपूर्ण करके स्रुवा को अधोमुख करके रखे। स्रुक् के अग्र भाग पर एक फूल रखकर बाँये हाथ से पकड़े, फिर दाहिने हाथ से उनको पकड़कर शङ्ख के समान मुद्रा बनाए और शिर को ऊँचा किए उठकर खड़ा हो जाय और पैरों को सीधा कर ले।५६-५८।

नाभौ तन्मूलमाधाय स्रुगग्रव्यग्रलोचनः।
[4]ब्रह्मादिकारणत्यागाद्विनिःसृत्य[4] सुषुम्नया[5] ॥५९

---

१ ख. ग. °लत्रयं°। २ ख. कपालसं°। ३ घ. °ग्गुलं ब°। ४ घ. °रणात्या°। ५ क. ङ. च. मुमुक्षया। घ. सुषुम्णया।

वामस्तनान्तमानीय[1] तयोर्मूलमतन्द्रितः ।
मूलमन्त्रमविस्पष्टं वौषडन्तं समुच्चरेत् ॥६०

नाभि पर उनके मूल को रखकर स्रुक् के अग्र भाग से नेत्रों को चञ्चल कर ब्रह्मा आदि कारणों के त्याग से सुषुम्ना की ओर से बाएँ स्तन के अन्त तक उनके मूल को लाकर अनलस भाव से वौषडन्त मूल-मन्त्र का मन्द-मन्द अस्फुट अक्षरों में उच्चारण करे ।५९-६०।

तदग्नौ जुहुयादाज्यं यवसंमितधारया ।
आचामं चन्दनं दत्त्वा ताम्बूलप्रभृतीनपि ॥६१
भक्त्या तद्भूतिमावन्द्य विदध्यात्प्रणतिं पराम् ।
ततो वह्निं समभ्यर्च्य फडन्तास्त्रेण संवरान्[2] ॥६२
संहारमुद्रयाऽऽहृत्य क्षमस्वेत्यभिधाय च ।
भासुरान्परिधींस्तांश्च पूरकेण हृदाऽणुना ॥६३
श्रद्धया परमाऽऽत्मीये स्थापयेद्धृदयाम्बुजे[3] ।
सर्वप्राकाग्रमादाय कृत्वा मण्डलकद्वयम् ॥६४

उस घी को यव के परिमाण में एक धारा के रूप में अग्नि में आहुति दे । पुनः आचमन, चन्दन, पान आदि लेकर भक्तिपूर्वक उसकी विभूति की वन्दना कर अत्यन्त विनीत भाव से वन्दना करे । तदनन्तर फडन्त अस्त्र मन्त्र से अग्नि की पूजा करके संहारमुद्रा में जल लाकर 'क्षमा करो' का उच्चारण करके तेजस्वी देवताओं और उन परिधियों को पूरक के साथ हृद् और अणु मन्त्रों से अत्यन्त श्रद्धा से अपने हृदय-कमल में स्थापित करे । सब प्रकार के बने हुए पाक में से थोड़ा सा लेकर दो मण्डल बनाए ।६१-६४।

अन्तर्बहिर्बलिं दद्यादाग्नेय्यां कुण्डसंनिधौ ।
ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा पूर्वे मातृभ्यो दक्षिणे तथा ॥६५
वरुणे हां गणेभ्यश्च स्वाहा तेभ्यस्त्वयं बलिः ।
उत्तरे हां च यक्षेभ्यः ईशाने हां[4] ग्रहैः[5] सह ॥६६
अग्नौ[6] हामसुरेभ्यश्च रक्षोभ्यो नैर्ऋते बलिः ।
वायव्ये हां च नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च मध्यतः ॥६७
हां राशिभ्यः स्वाहा वह्नौ विश्वेभ्यो नैर्ऋते तथा ।
वारुण्यां[7] क्षेत्रपालाय अन्तर्बलिरुदाहृतः ॥६८

---

१ °ख. महस्तान्त° २ ख. ग. संवरा° । ३ क. ङ. च.° येच्च हृदम्बु° । घ. येत हृदम्बु । ४ ख. ग. हां गुहेभ्यश्च । अ° । ५ घ. ग्रहेभ्य उ । अ° । ६ क. ख. ग. ङ. च. °ग्नौ होम° । ७ ख. ग. वायव्यां ।

कुण्ड के समीप ही अग्निकोण में अन्तः और बहिः बलि दे। बलि मन्त्र ये हैं—'ॐ हां रुद्रेभ्यः स्वाहा' मंत्र से पूर्व में, 'मातृभ्यः स्वाहा' से दक्षिण में, 'हां गणेभ्यःस्वाहा' से पश्चिम में, 'तेभ्यः अयं बलिः, 'हां च यक्षेभ्यः' मन्त्र से उत्तर में 'हां ग्रहेभ्यः' मन्त्र से ईशान कोण में, 'हामसुरेभ्यः' मन्त्र से अग्निकोण में, 'हां रक्षोभ्यो' मन्त्र से नैर्ऋत में, 'हां नागेभ्यः' मंत्र से वायव्य कोण में, 'हां नक्षत्रेभ्यः' मन्त्र से मध्य में, 'हां राशिभ्यः स्वाहा' मन्त्र से अग्नि में, 'विश्वेभ्यो०, मन्त्र से नैर्ऋत में, 'क्षेत्रपालाय स्वाहा' मन्त्र से पश्चिम में बलि दे। यह बलि अन्तर्बलि कही गयी है।६५-६८।

द्वितीये मण्डले वाह्य इन्द्रायाग्नेर्यमाय[1] च।
नैर्ऋताय जलेशाय वायवे धनरक्षिणे ॥६९
ईशानाय च पूर्वादावीशाने[2] ब्रह्मणे नमः।
नैर्ऋते विष्णवे स्वाहा वायसादेर्बलिर्बहिः ॥७०
वलिद्वयगतान्मन्त्रान्संहरेन्मुद्रयाऽऽत्मनि[3] ॥७१

दूसरे मण्डल के बाह्य भाग में इन्द्राय, अग्नये, यमाय, नैर्ऋताय, जलेशाय, वायवे, धनरक्षिणे और ईशानाय के साथ स्वाहा जोड़कर क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में बलि दे। ईशानकोण में 'ब्रह्मणे नमः' से और नैर्ऋत कोण में 'विष्णवे स्वाहा' मन्त्र से वायस आदि को बहिर्बलि दे। उपर्युक्त दो प्रकार की बलियों में प्रयुक्त मन्त्रों को अपनी आत्मा में संहारमुद्रा द्वारा संहार करे।६९-७१।

इत्याग्नेये महापुराणे शिवपूजाङ्गहोमविधिनिरूपणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।७५

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

चण्डपूजा

ईश्वर उवाच
ततः शिवान्तकं गत्वा पूजाहोमादिकं मम।
गृहाण भगवन्पुण्यफलमित्यभिधाय च ॥१
अर्घ्योदकेन[4] देवाय मुद्रयोद्भवसंज्ञया।
हृद्बीजपूर्वमूलेन स्थिरचित्तो निवेदयेत् ॥२

१ घ. °याग्नियमा°। २ क. ङ. च.°शानब्र°। ३ क. घ. ङ. च.°न्संहारमुद्र°। ४ क. ख. ग. छ. च. अर्घोद°।

ईश्वर बोले—इसके पश्चात् शिव के समीप जाकर 'भगवन् मेरे पूजा, होम आदि और पुण्य फल को ग्रहण कीजिए' ऐसा कहकर स्थिरचित्त होकर देवता को उद्भवमुद्रा के द्वारा हृद्बीज युक्त मूल मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करे।१-२।

ततः पूर्ववदभ्यर्च्य स्तुत्वा स्तोत्रैः प्रणम्य च।
अर्घ्यं पराङ्मुखं दत्त्वा क्षमस्वेत्यभिधाय च ॥३
नाराचमुद्रयाऽस्त्रेण फडन्तेनाऽऽत्मसंचयम्।
संहृत्य दिव्यया लिङ्गं मूर्तिमन्त्रेण योजयेत् ॥४

पुनः पूर्व की भाँति पूजन करके स्तोत्रों से स्तुति और प्रणाम करे। देवता के सम्मुख होकर अर्घ्य देकर 'आप मुझे क्षमा करें' ऐसा कहकर नाराच-मुद्रा से फडन्त अस्त्र मन्त्र से आत्मा का संचय करे। दिव्य मुद्रा के द्वारा संहार कर लिङ्ग को मूर्ति मन्त्र से युक्त कर दे।३-४।

स्थण्डिले त्वर्चिते देवे मन्त्रसंहारमात्मनि[1]।
नियोज्य विधिनोक्तेन विदध्याच्चण्डपूजनम् ॥५

वेदी पर देव की अर्चना हो जाने पर अपने अन्तः करण में मन्त्र-समूह का विनियोजन करके विधिपूर्वक चण्ड पूजन करे।५

ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्तये।
ॐ[2] धूलिचण्डेश्वराय हूं फट्[3] स्वाहा तमाह्वयेत् ॥६
चण्डहृदयाय[4] हूं फडों चण्डशिरसे तथा।
ॐ चण्डशिखायै हूं फट् चण्डायुष्कवचाय च ॥७
चण्डास्त्राय तथा हूं[5] फट् चण्डं रुद्राग्निजं स्मरेत् ।७½

उस समय, ॐ चण्डेशाय नमः' से चण्ड देवता को नमस्कार करे। फिर मण्डप के मध्य में 'चण्डमूर्तये' से चण्ड की पूजा करे। 'ॐ धूलिचण्डेश्वराय हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से आवाहन करे। 'चण्डहृदयाय हुं फट्', 'ॐ चण्डशिरसे' तथा 'ॐ चण्डशिखायै हुं फट्', 'चण्डायुष्कवचाय', 'चण्डास्त्राय' 'तथा हुं फट्' मन्त्रों से रुद्राग्नि से उत्पन्न चण्ड का स्मरण करे।६-७½।

शूलटङ्कधरं कृष्णं साक्षसूत्रकमण्डलुम्[6] ॥८
टङ्काकारेऽर्धचन्द्रे वा चतुर्वक्त्रं प्रपूजयेत्।
यथाशक्ति जपं कुर्यादङ्गानां[7] तु दशांशतः ॥९

१ क. °संहार°। घ.° संघातमा। ङ °सहतिमा°। च. संहतमा°। २ क. ङ च. ॐ ध्वनि च°। ३ ख हरूं। ४ ख. ग, हरूं। ५ खः गः ह्लूं च हुं। ६ क. ङ. च. °म्। ढक्काका°। ७ क. ङ. च. °नां तद्दशां°।

टङ्काकार या अर्धचन्द्र पर शूलटङ्कधारी, अक्षसूत्र और कमण्डलु से युक्त कृष्णवर्ण और चार मुख वाले चण्ड का पूजन करे। यथाशक्ति अङ्गों का दशमांश जप करे।८-९।

गोभूहिरण्यवस्त्रादिमणिहेमादिभूषणम्।
विहाय शेषनिर्माल्यं चण्डशाय निवेदयेत्।१०
लेह्यचोष्याद्यन्नवरं ताम्बूलं स्रग्विलेपनम्।
निर्माल्यं भोजनं तुभ्यं[1] प्रदत्तं तु शिवाज्ञया॥११
सर्वमेतत्क्रियाकाण्डं मया चण्ड तवाज्ञया।
न्यूनाधिकं कृतं मोहात्परिपूर्णं सदाऽस्तु मे॥१२

गाय, भूमि, सोना, वस्त्र, मणि और स्वर्ण के आभूषण को छोड़ कर शेष निर्माल्य चण्डेश को अर्पित कर दे। अर्पण मन्त्र यह है—मैं चाटने-चूसने और अन्य प्रकार के भोजन पदार्थों को ताम्बूल, माला, लेप, निर्माल्य और भोजन को शिव की आज्ञा से आपको प्रदान कर रहा हूँ। हे चण्ड, जो कुछ यह कर्म-काण्ड आप से आज्ञा लेकर मैंने किया है, इसमें अज्ञानवश जो कुछ न्यूनता या अधिकता हुई वह सब कुछ परिपूर्ण हो जाय। १०-१२।

इति विज्ञाप्य देवेशं दत्त्वाऽर्घ्यं तस्य संस्मरन्।
संहारमूर्तिमन्त्रेण शनैः संहारमुद्रया॥१३
पूरकान्वितमूलेन मन्त्रानात्मनि योजयेत्।
निर्माल्यापनयस्थानं लिम्पेद्गोमयवारिणा॥१४
प्रोक्ष्यार्घ्यादि[2] विसृज्याथ आचान्तोऽन्यत्समाचरेत्॥१५

इस प्रकार देवेश चण्ड से निवेदन करके अर्घ्य प्रदान करे। देवता का स्मरण करता हुआ संहारमूर्ति मन्त्र से धीरे-धीरे संहारमुद्रा के द्वारा पूरक प्राणायाम से युक्त मूल मन्त्र से मन्त्रों को आत्मा में युक्त करे। निर्माल्य जहाँ चढ़ाया गया हो वहाँ से उसको हटाकर गोबर से लीप दे। उसके ऊपर शुद्ध जल छिड़क कर अर्घ्य आदि दे और आचमन के अनन्तर अन्य कार्यों को करे।१३-१५।

इत्याग्नेये महापुराणे चण्डपूजाकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः।७६

---

१ क. ङ. तासां। च तोयं। २ ख °र्घ्याथ विमृज्या°।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

कपिलापूजनम्

ईश्वर उवाच—

कपिलापूजनं वक्ष्य एभिर्मन्त्रैर्यजेच्च गाम् ।
ॐ कपिले नन्दे नमः[1] कपिले भद्रिके नमः[2] ॥ १
कपिले सुशीले नमः कपिले सुरभिप्रभे ।
ॐ कपिले सुमनसे[3] भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ॥२

शिव बोले—अब मैं कपिला-पूजन का वर्णन कर रहा हूँ । इन मन्त्रों से गाय की पूजा करे—'ॐ कपिले नन्दे नमः,' 'कपिले बद्रिके नमः', 'कपिले सुशीले नमः', 'कपिले सुरभिप्रभे', 'ॐ कपिले भुक्तिमुक्ति प्रदे नमः ।१-२।

सौरभेयि जगन्मातर्देवानाममृतप्रदे ।
गृहाण वरदे ग्रासमीप्सितार्थं च देहि मे ॥३

अयि सौरभेयि, जगन्मातः देवों को अमृत देने वाली, वरदे, इस ग्रास को ग्रहण करो और मेरे अभीष्ट को दो ।३

वन्दिताऽसि वशिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता[4] ।
कपिले हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥४

बुद्धिमान् विश्वामित्र और वशिष्ठ ने तुम्हारी वन्दना की है । कपिले ! मेरे पापों और किए हुए दुष्कर्मों को नष्ट करो ।४

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।
गावो में हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहं ॥५

गायें सदा मेरे आगे और पीछे रहें, मेरे हृदय में रहें और मैं सर्वदा गौओं के मध्य ही रहूँ ।५

दत्तं गृहाण[5] मे ग्रासं जप्त्वाऽस्यां निर्मलः शिवः ।
प्रार्च्य विद्यापुस्तकानि गुरुपादौ नमेन्नरः ॥६

मेरे द्वारा दिये हुए इस ग्रास को ग्रहण करो । गोमन्त्र का जप करके निर्मल शिव हो जाऊँ । तदन्तर विद्यापुस्तकों की पूजा करके गुरुचरणों को वन्दना करे ।६

---

१ ख. ग. घ. °नम ॐ क° । २ ख. घ. °मः ॐ क° । ३ घ. °से नमॐ मु ।
४ क. ङ. च. जह्नुना । ५ क. घ. ङ. च. गृहणन्तु ।

यजेत्स्नात्वा तु मध्याह्ने अष्टपुष्पिकया स्वयम् ।
पीठमूर्तिशिवाङ्गानां पूजा स्यादष्टपुष्पिका ।।७

दोपहर को स्नान करके अष्टपुष्पिका से शिव की पूजा करे। पीठमूर्ति और शिवाङ्ग को अष्टपुष्पिका कहते हैं ।७

मध्याह्ने भोजनागारे सुलिप्ते पाकमानयेत् ।
ततो मृत्युञ्जयेनैव वौषडन्तेन सप्तधा ।।८
जप्तैः सदर्भशङ्खस्थैः सिञ्चेत्तं वारिविन्दुभिः ।
सर्वपापाग्रमुद्धृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ।।९
अथार्धं चुल्लिकाहोमे विधानायोपकल्पयेत् ।
विशोध्य विधिना चुल्लीं तद्वह्निं पूरकाहुतिम् ।।१०

मध्याह्न में भलीभांति लिपे पुते भोजनागार में पकाई हुई भोजन-सामग्री लाये । तदनन्तर वौषडन्त मृत्युञ्जय मन्त्र का सात बार जप करके शङ्ख में कुश और जल रखकर उन पाकों के ऊपर जल छिड़क दे । सब सामग्रियों में से थोड़ा-थोड़ा निकालकर शिव को अर्पित करे। आधा भाग चुल्हिका-विधान के लिए अलग कर ले । पहले विधिपूर्वक चूल्हे को शुद्ध कर ले। उसमें अग्नि को प्रज्वलित करके पूर्णाहुति दे ।८-१०।

हुत्वा नाभ्यग्निना चैकं ततो रेचकवायुना ।
वह्निबीजं समादाय कादिस्थानगतिक्रमात् ।११
शिवाग्निस्त्वमिति ध्यात्वा चुल्लिकाग्नौ निवेशयेत् ।।११½

नाभ्यग्नि से पुनः रेचकवायु से वह्निबीज को लेकर गतिक्रम से शिवाग्नि के रूप में उसका ध्यान करते हुए उसे चुल्हिका की अग्नि में स्थापित कर दे ।११-११½

ॐ हामग्नये [च] नमो वैं हां सोमाय वैं नमः[1] ।१२
सूर्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः ।
सर्वेभ्यश्चैव[2] देवेभ्यः सर्वविश्वेभ्य[3] एव च ।।१३
हामऽग्नये स्विष्टकृते[4] पूर्वादावर्चयेदिमान् ।
स्वाहान्तमाहुतिं दत्त्वा क्षमयित्वा विसर्जयेत् ।।१४

ॐ हामग्नये नमो हां सोमाय नमः, सूर्याय बृहस्पतये, प्रजानां पतये नमः, सर्वेभ्यश्च देवेभ्यः, सर्वविश्वेभ्यो नमः, हामनये स्विष्टकृते नमः— इन मन्त्रों से

---

१ क. ङ. च. °वेदये° । २ क. ङ. च. सर्वशश्चै° । ३ क. ङ. त्र. °श्वेश ग° । ४ क. ङ. च. ते °सर्वदादयर्च्य° ।

पूर्व आदि दिशाओं में इन देवों की पूजा करके 'अग्नये स्वाहा', 'सोमाय स्वाहा'—आदि मन्त्रों से हवन करे। तत्पश्चात् क्षमा-प्रार्थना करके देवताओं का विसर्जन करना चाहिए।१२-१४।

चुल्ल्या दक्षिणवाहौ च यजेद्धर्माय वै नमः।
वामबाहावधर्माय काञ्जिकादिकभाण्डके ॥१५
रसपरिवर्तमानाय वरुणाय जलाश्रये[1]।
[2]विघ्नराजे [3]गृहद्वारे प्रेषण्यां सुभगे नमः ॥१६

चूल्ही के दक्षिण ओर 'धर्मा वै नमः' मन्त्र से धर्म की पूजा करे। बायीं भुजा और सिरका आदि के पात्र पर अधर्म की, जलाशय में 'रसपरिवर्तमानाय वरुणाय नमः' इस मन्त्र से वरुण को गृहद्वार पर विघ्यराज विनायक की और चक्की पर शुभगा की पूजा करनी चाहिए।१५-१६।

ॐ रौद्रिके[4] गिरिके च नभश्चोलूखले यजेत्।
बलिप्रियायाऽऽयुधाय नमस्ते मुसले यजेत् ॥१७
समार्जन्यां देवतोक्ते कामाय शयनीयके।
मध्यस्तम्बे च स्कन्दाय दत्त्वा वास्तुबलिं ततः ॥१८

ओखली पर 'ॐ रौद्रिके गिरिके नमः मन्त्र' से रौद्रिका और गिरिका की पूजा करे। मुसल पर 'बलप्रियाय आयुधाय नमः' मन्त्र से मुसल की झाड़ू और पलंग पर कामदेव की पूजा करे मध्य स्तम्भ पर स्कन्द की पूजा करके वास्तुबलि प्रदान करे।१७-१८।

भुञ्जीत पात्रे सौवर्णे पद्मिन्यादिदलादिके।
आचार्यः साधकः पुत्रः समयी मौनमास्थितः ॥१९

तदन्तर सोने के पात्र या कमल के पत्ते पर स्वयं भोजन करे। आचार्य, पुत्रक, साधक और समयी—चारों मौन होकर भोजन करे।१९

[5]वटाश्वत्थार्कवातारिसर्जभल्लातकांस्त्वजेत्[6]।
आपोशा (श) नं[7] पुराऽऽदाय प्राणाद्यैः प्रणवान्वितैः ॥२०
स्वाहान्ते चाऽऽहुतीः पञ्च दत्त्वाऽऽदीप्योदरानलम् २०½

---

१ घ. °लाग्नये २ घ °राजो गृ°। ३ विघ्नराजे ....नमः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ४ घ. °के नमो गि°। ५ ख. तानि स°। घ. ताविस। ६ क. ङ. च. °तु। अपो°। ७ ख. ग. °न° सुरेशाय।

वट, पीपल, मदार, वातारि, सर्ज और भल्लातक को छोड़ दें। पहले आपोशान जल को लेकर प्रणव से युक्त प्राण आदि को स्वाहान्त कर अर्थात् ॐ प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, आदि मन्त्रों से पाँच आहुतियाँ देकर उदरानल को प्रज्वलित करे।२०-२०½।

नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥२१
एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहाऽऽपोशा (श) नवारिणा।
भक्तादिकं निवेद्याथ पिवेच्छेषोदकं नरः।२२
अमृतोपस्तरणमसि प्राणाहुतीस्ततो ददेत् २२½।

नाग, कूर्म कृकर, देवदत्त, धनञ्जय—इन पाँच उपवायुदेवों का नाम लेकर 'एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहा' मन्त्र से आपोशान के जल सहित भात आदि अर्पित कर 'अमृतोपस्तरणमसि' इत्यादि कहते हुए बचे हुए जल को पी जाए।२१-२२½।

प्राणाय स्वाहाऽपानाय समानाय ततस्तथा ॥२३
उदानाय च व्यानाय भुक्त्वा[1] चुल्ल (ल) कमाचरेत्।
अमृतापिधानमसीति[2] शरीरेऽन्नादनाय च।२४

तदनन्तर 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'समानाय स्वाहा', 'उदानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा'—मन्त्रों से प्राणाहुति प्रदान कर, भोजन करके, कुल्ला करने के बाद 'अमृतापिधानमसि' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करे। ऐसा शरीर में अन्न को आच्छादित करने या पचाने के लिए किया जाता है।२३-२४।

इत्यादि महापुराण आग्नेये कपिलापूजनादिविधिकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।७७

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

पवित्राधिवासनविधिकथनम्

ईश्वर उवाच—
पवित्रारोहणं वक्ष्ये क्रियार्चादिषु[3] पूरणम्।
नित्यं[4] तन्नित्यमुद्दिष्टं नैमित्तिकमथापरम् ॥१

१ ङ. भुक्त्वाऽऽचनमा° । २ अमृतापिऽधान.... ..शरीरेन्नादाय च। क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ३ क. ङ. च. °यार्थादि° । ४ ख. नित्ये।

आषाढादिचतुर्दश्यामथ श्रावणभाद्रयोः ।
सितासितासु कर्तव्यं चतुर्दश्यष्टमीषु तत् ।।२

भगवान् महेश्वर बोले—अब मैं देवपूजन आदि कर्मों को पूर्ण करने वाला पवित्रारोहण-विधि का वर्णन कर रहा हूँ। नित्य किए जाने वाले सन्ध्या आदि कर्म के अङ्गभूत कर्म को नित्य कहते हैं। किसी निमित्तवश किए हुए अन्य कर्मों के अङ्गभूत को नैमित्तिक कहते हैं। नैमित्तिक कर्म आषाढ़ की चतुर्दशी, श्रावण, भादों के कृष्ण और शुक्लपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को करना चाहिए।१-२।

कुर्याद्वा कार्तिकीं यावत्तिथौ प्रतिपदादिके ।
वह्निब्रह्माम्बिकेभास्यनागस्कन्दार्कशूलिनाम् ।।३
दुर्गायमेन्द्रगोविन्दस्मरशंभुसुधाभुजाम् ।
सौवर्णं राजतं ताम्रं कृतादिषु यथाक्रमम् ।।४
कलौ कार्पासजं वाऽपि पट्टपद्मादिसूत्रकम् ।४½

अथवा कार्तिक तक प्रतिपदा आदि तिथियों को अग्नि, ब्रह्मा, अम्बिका, गणेश, नाग, स्कन्द, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, इन्द्र, गोविन्द, काम, शंभु और अमृतपायी देवों की पूजा करनी चाहिए। कृतादि युगों में क्रमशः स्वर्ण, रजत और ताँबे के सूत्र का पवित्रक होता था, किन्तु कलि में उसे, कपास पट्टसूत्र या कमलसूत्र का होना चाहिए।३-४½।

प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागो गुहो हरिः ।।५
सर्वेशः सर्वदेवाः स्युः क्रमेण नवतन्तुषु ।
अष्टोत्तरशताद्य[1] (ध्य) र्धं तदर्धं[2] चोत्तमादिकम् ।।६

प्रणव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, गुह, हरि, सर्वेश और सब देव क्रमशः नवतन्तुओं में निवास करते हैं। एक सौ आठ, इसके आधे या चौथाई परिमाण का सूत्र क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम का होता है।५-६।

एकाशीत्याऽथवा सूत्रैस्त्रिंशताऽप्यष्टयुक्तया ।
पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ।।७

इक्यासी या अड़तीस या पचास के परिमाण वाला सूत्र बीच-बीच में बराबर दूरी पर गाँठ लगाकर बनाया जाता है।७

द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि च ।
लिङ्गविस्तारमानानि चतुरङ्गुलिकानि वा ।।८

१ ख. °तात्पूर्वं त°। २ ख. °र्धं चारुमासिक°।

द्वादश अङ्गुल का या व्यास से आठ या चार अङ्गुल का लिङ्ग विस्तार के मान का यह होना चाहिये ।८

तथैव पिण्डिकास्पर्शं चतुर्थं सार्वदैवतम् ।
गङ्गावतारकं कार्यं[1] प्रजातेन[2] सुधौतकम् ॥९
ग्रन्थि कुर्याच्च वामेन अघोरेणाथ शोधयेत् ।
रञ्जयेत्पुरुषेणैव रक्तचन्दनकुङ्कुभिः ॥१०
कस्तूरीरोचनाचन्द्रैर्हरिद्रागैरिकादिभिः ।
ग्रन्थयो दश कर्तव्या अथ वा तन्तुसंख्यया ॥११

इसी प्रकार पिण्डिका के परिमाण का चौथा सार्वदैवत पवित्र बनता है। यह 'गङ्गावतारक' नाम से कहा जाता है। इसे 'सद्योजात' मन्त्र से अच्छी तरह धोना चाहिए। वाम मन्त्र से ग्रन्थि लगावे तथा अघोर मन्त्र से शोधन करके पुरुष मन्त्र से रक्त चन्दन, कस्तूरी गोरोचन, कर्पूर, हल्दी और गेरू आदि से उनको रंग दे। दश ग्रन्थियाँ अथवा तन्तुओं की संख्या के बराबर उनमें गाँठे लगावे।९-११।

अन्तरं वा यथाशोभमेकद्विचतुरङ्गुलम् ।
प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी त्वपराजिता ॥१२
जयाऽन्या विजया षष्ठी अजिता च सदा शिवा ।
मनोन्मनी सर्वमुखी ग्रन्थयोऽभ्यधिकाः शुभाः ॥१३

गाँठों के बीच की दूरी शोभा की दृष्टि से एक, दो या चार अङ्गुल होनी चाहिए। प्रकृति, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, अजिता, सदाशिवा, मनोन्मनी और सर्वमुखी—ये ग्रन्थियाँ अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। सूत्र में दश से भी अधिक ग्रन्थियाँ लगाई जा सकती हैं।१२-१३।

कार्या वा[3] चन्द्रवह्न्यर्कपवित्रं शिववद्धृदि[4] ।
एकैकं निजमूर्तौ वा[5] पुस्तके गुरुके[6] गणे ॥१४
स्यादेकैकं तथा द्वारदिक्पालकलशादिषु ।
हस्तादिनवहस्तान्तं लिङ्गानां स्यात्पवित्रकम् ॥१५

पवित्रक के चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल से युक्त होने की भावना करके उसे साक्षात् शिव के तुल्य मानकर हृदय में धारण करे। शिव स्वरूप से

---

१ क. ङ. च कार्यमजा° । २ घ. सुजातेन । ३ क. ख. ग. ङ. च. चण्डव° । ४ क. ङ. च. °वत्यादि । ए° । ख. °क्तवया । ए° । ५ ख. ग. वा सप्तके गुरवे ग° । ६ क. ङ. च, गुरवे ग° ।

भावित अपने स्वरूप को, पुस्तक को तथा गुरु गण को एक-एक पवित्रक अर्पण करे। इसी प्रकार द्वारपाल, दिक्पाल और कलश आदि पर भी एक-एक पवित्रक चढ़ाया जाता है। एक हाथ से लेकर नौ हाथ तक का पवित्रक शिव-लिङ्ग के लिए होता है।१४-१५।

अष्टाविंशतितो वृद्धं दशभिर्दशभिः क्रमात्।
द्व्यङ्गुलाभ्यन्तरास्तत्र क्रमादेकाङ्गलान्तराः ॥१६
ग्रन्थयो मानमप्येषां लिङ्गविस्तारसंमितम्।१६½।

एक हाथ के पवित्रक में अट्ठाइस ग्रन्थियाँ होती हैं। इसके बाद प्रत्येक हाथ में दश ग्रन्थियाँ बढ़ती जाती हैं। इस तरह नौ हाथ वाले पवित्रक में एक सौ आठ गाँठे होती हैं। ये ग्रन्थियाँ क्रमशः एक-एक, दो-दो अङ्गुलियों के अन्तर पर होती है।१६-१६½

सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां कृतनित्यक्रियः शुचिः ॥१७
भूषयेत्पुष्पवस्त्राद्यैः सायाह्ने यागमन्दिरम्।
कृत्वा नैमित्तिकीं सन्ध्यां[1] विशेषेण च तर्पणम् ॥१८
परिगृहीते भूभागे पवित्रे[2] सूर्यमर्चयेत्।
आचम्य सकलीकृत्य प्रणवार्घ्यकरो गुरुः ॥१९

सप्तमी या त्रयोदशी के दिन नित्यक्रिया आदि समाप्त करके पवित्र होकर, सांयकाल पुष्प, वस्त्र आदि से यज्ञ-मन्दिर को सजा दे। उस दिन विशेष रूप से नैमित्तिकी सन्ध्या और विशेष तर्पण करके परिष्कृत और निर्वाचित पवित्र भूभाग पर सूर्य की पूजा करे। गुरु आचमन और सकलीकरण करने के बाद प्रणव के द्वारा अर्घ्य प्रदान करे।१७-१९।

द्वाराण्यस्त्रेण संप्रोक्ष्य पूर्वादिक्रमतोऽर्चयेत्।
हां[3] शान्तिकलाद्वाराय तथा विद्याकलात्मने ॥२०
निवृत्तिकलाद्वाराय प्रतिष्ठाख्यकलात्मने।
तच्छाखयोः प्रतिद्वारं द्वौ द्वौ द्वाराधिपौ यजेत्।।२१

सब द्वारों के ऊपर जल छिड़ककर पूर्व की ओर से क्रमशः उनकी पूजा करे। पूजा-मन्त्र है—'हां शान्तिकलाद्वाराय,' 'विद्याकलात्मने,' 'निवृत्तिकला-द्वाराय प्रतिष्ठाख्यकलात्मने' इत्यादि। प्रत्येक द्वार की दोनों शाखाओं पर दो-दो द्वारपतियों की पूजा करनी चाहिए।२०-२१।

---

१ क. ङ. च शय्यां। २ क. ख. ग. ङ. घ. सूत्रिते। ३ क. ख. ग. ङ. च हा।

नन्दिने महाकालाय[1] भृङ्गिणेऽथ गणाय च ।
वृषभाय च स्कन्दाय देव्यै चण्डाय च क्रमात् ॥२२

नन्दी, महाकाल, भृङ्गी गण, वृषभ, स्कन्द, देवी और चण्ड—इन आठ द्वाराधिपतियों की पूजा नित्य प्रति करे ।२२

नित्यं च द्वारपालादीन्प्रविश्य [2]द्वारि पश्चिमे ।
इष्ट्वा वास्तुं भूतशुद्धिं विशेषार्घ्यकरः शिवः ॥२३
प्रोक्षणाद्यं विधायाथ यज्ञसंस्कारकृन्नरः[3] ।
मन्त्रयेद्दर्भदूर्वाद्यैः[4] पुष्पाद्यैश्च हृदादिभिः ॥२४

घर में घुसकर पश्चिम द्वार पर वास्तु की पूजा करके भूतशुद्धि करे । विशेषार्घ्य प्रदान करने से विशेष कल्याण होता है । जल से सिञ्चन आदि करने के वाद यज्ञ-संस्कार करने वाला व्यक्ति कुश, दूब, फूल, हृद् आदि से देवों को आमन्त्रित करे ।२३-२४।

शिवहस्तं विधायेत्थं स्वशिरस्यधिरोपयेत् ।
शिवोऽहमादिः सर्वज्ञो मम यज्ञप्रधानता ॥२५
अत्यर्थं भावयेद्देवं ज्ञानखड्गकरो गुरुः ।
नैर्ऋतीं दिशमासाद्य प्रक्षिपेदुदगाननः ॥२६
अर्घ्याम्बु पञ्चगव्यं च समन्तान्मखमण्डपे[5] । २६½

इस प्रकार शिव-हस्त को बनाकर अपने शिर पर रखे । 'मैं आदि सर्वज्ञ शिव हूँ, यज्ञ में मेरी ही प्रधानता है'—इस प्रकार ज्ञानरूपी कृपाण को हाथ में लेने वाला गुरु विशेष रूप से अपने में देवता की भावना करे । नैर्ऋत कोण में जाकर गुरु उत्तराभिमुख होकर अर्घ्यजल और पञ्चगव्य को यज्ञ-मण्डप में चारों ओर छिड़के । २५-२६½।

चतुष्पथान्तसंस्कारैर्वीक्षणाद्यैः सुसंस्कृतैः ॥२७
विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्च्योपसंहरेत्[6] ।
तानीशदिशि वर्धन्यामासनायोपकल्पयेत् ॥२८

चतुष्पथान्त संस्कारों और निरीक्षण आदि से भलीभाँति संस्कार करके बिखेरने योग्य वस्तुओं को फेंक दे । एक दर्भपिञ्जूल लेकर उसको ईशान कोण में रखी हुई बढ़नी (झाड़ू) के ऊपर आसन के निमित्त फैला दे ।२७-२८।

---

१ ख. °य शङ्कि° । २ ख ग. द्वारमध्यमे । घ. द्वारप° ३ घ °संभार° । ४ क. ङ. च. मण्डपे दर्भकृद्वाच्यैः पु° । ५ क. ङ. च. °न्तामुख° । ६ ख. ग. घ. °कूर्चोप° ।

नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणा (न्) द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ।
पश्चिमाभिमुखं कुम्भं सर्वधान्योपरि स्थितम् ॥२६

नैर्ऋत कोण में वास्तु और सरस्वती की तथा द्वार पर लक्ष्मी की पूजा करे। सर्वधान्य के ऊपर रखे हुए पश्चिमाभिमुख कलश का पूजन करे ॥२६

प्रणवेन वृषारूढं सिंहस्थां वर्धनीं ततः ।
कुम्भे साङ्गं शिवं देवं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ॥३०

प्रणव से वृषारूढ़ शिव और सिंहस्थवर्धिनी की पूजा करके कुम्भ पर अङ्ग सहित शिव की और वर्धनी पर अस्त्र की पूजा करे।३०

दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्णब्रह्मशिवादिकान्[1] ।
वर्धनीं सम्यगादाय[2] घटपृष्ठानुगामिनीम् ॥३१
शिवाज्ञां श्रावयेन्मत्री पूर्वादीशानगोचरम् ।
अविच्छिन्नपयोधारां मूलमन्त्रमुदीरयेत् ॥३२
समन्ताद्भ्रामयेदेनां रक्षार्थं शस्त्ररूपिणीम् ।
पूर्वं कलशमारोप्य शस्त्रार्थं[3] तस्थु वामतः ॥३३
समग्रासनके कुम्भे यजेद्देवं स्थिरासने ॥३३½

दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों तथा विष्णु, ब्रह्मा और अस्त्र की पूजा करे। घट के पृष्ठ भाग में स्थापित वर्धनी को सम्हालकर हाथ में ले ले और मन्त्रोच्चारण करता हुआ पूर्व आदि दिशाओं की ओर क्रमशः मुँह करके शिव की आज्ञा को सुनावे। मूल मन्त्र उच्चारण करता हुआ अपनी रक्षा के लिए निरन्तर जल की धारा को शस्त्र रूप समझकर चारों ओर गिरा दे। पहले शस्त्र के लिए कलश स्थापन करके उसके बाँए भाग में स्थिर आसन पर स्थापित समग्रासन कलश पर देव की पूजा करे।३१-३३½।

वर्धन्यां प्रणवस्थायामायुधं तदनु द्वयोः ॥३४
भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया[4] ।
कुम्भे निवेद्य बोधासि मूलमन्त्रजपं तथा ॥३५

तत्पश्चात् प्रणवस्थ वर्धिनी पर आयुध की पूजा करे—लिङ्ग मुद्रा से कलश पर भग और लिङ्ग का संयोग करे और ज्ञान-खड्ग को निवेदित कर मूल मन्त्र का जप करे।३४-३५।

---

१ क. ङ. च. °ब्रह्मावसानका° । ख. ग. °ब्रह्मेश्वरादि° । २ क. ख. ग. ङ. च. °य मूढं दृष्ट्वाऽनु° । ३ख. °स्त्रालम्भस्य । ४क. ङ. च. °ध्यादङ्गमु° ।

तद्दशांशेन वर्धन्यां रक्षां विज्ञापयेदपि ।
गणेशं वायवेऽभ्यर्च्य हरं पञ्चामृतादिभिः ॥३६
स्नापयेत्पूर्ववत्प्राच्यं कुण्डे च शिवपावकम् ।
विधिवच्चरुकं कृत्वा संपाताहुतिशोधितम् ॥३७

मन्त्र जप की संख्या के दशांश से वर्धनी पर रक्षा का विज्ञापन करे, गणेश, वायु और शिव को पञ्चामृत आदि से नहलाकर पूजन करे और पूर्व की ही भाँति कुण्ड के मध्य में शिव और अग्नि की पूजा करे। विधिपूर्वक चरु बनाकर उसको सम्पात आहुति से शुद्ध करे।३६-३७।

देवाग्न्यात्मविभेदेन दर्व्या तं विभजेत्त्रिधा ।
दत्त्वा भागौ शिवाग्निभ्यां संरक्षेद्भागमात्मनि ॥३८

उस चरु को करछुली से देव, अग्नि और आत्मा के भेद से तीन भागों में विभक्त करे। शिव और अग्नि को उनका भाग प्रदान कर शेष भाग को अपने लिए सुरक्षित रखे।३८

नरेण[1] वर्मणा[2] देयं पूर्वतो दन्तधावनम्[3] ।
[4]भस्मघोरशिखाभ्यां[5] वा दक्षिणे पश्चिमे मृदम् ॥३९
सद्योजातेन च हृदा चोत्तरे[6] वाऽऽमलीफलम् ।
जलं वामेन शिरसा ईशे[7] गन्धान्वितं जलम् ॥४०
पञ्चगव्यं पलाशादिपुटकं वै समन्ततः ।४०½

पहले वर्म मन्त्र से दन्तधावन, घोर और शिखा से भस्म, दक्षिण और पश्चिम में 'सद्योजात' मन्त्र से मिट्टी, हृद् मन्त्र से उत्तर में आँवले का फल, वाम भाग की ओर जल, ईशान कोण में सुगन्धित जल, पञ्चगव्य और चारों ओर पलाश के बने दोने को रखे।३९-४०½।

ऐशान्यां कुसुमं दद्यादाग्नेय्यां दिशि रोचनाम् ॥४१
अगुरुं निर्ऋताशायां वायव्यां च चतुःसमम् ।
होमद्रव्याणि सर्वाणि सद्योजातैः कुशैः सह ॥४२
दण्डाक्षसूत्रकौपीनभिक्षापात्राणि रूपिणे ।
कज्जलं कुंकुमं तैलं शलाकां केशशोधिनीम् ॥४३
ताम्बूलं दर्पणं दद्यादुत्तरे रोचनामपि ।४३½

१ घ. शरेण । २ ख. धर्मणा । ३ ख. ग. घ. °म् । तस्माद्घोर° । ४ क. ङ. च. भस्माङ्गार° । ५ ख. ग. °शिवाभ्यां । ६ ख. ग. °रे बामलीकृतम् । घ° रे वामनीकृतम् । ७ क.ख. ग. ङ. च. ईशग° ।

ईशान कोण में फूल, अग्निकोण में गोरोचन, नैर्ऋत कोण में अगरु, वायव्य कोण में चतुःसम (कस्तूरी, लवङ्ग, कर्पूर, कुङ्कुम) और उत्तर दिशा में नवीन कुशों के सहित सकल हवन सामग्री, दण्ड, रुद्राक्ष, सूत्र, कौपीन भिक्षा-पात्र, कज्जल, कुङ्कुम, तेल, शलाका, कंघी, ताम्बूल, दर्पण और गोरोचना रखे। ४१—४३½।

आसनं पादुके[1] पात्रं योगपट्टातपत्रकम्[2] ॥४४
ऐशान्यामीशमन्त्रेण दद्यादीशानतुष्टये।
पूर्वस्यां चरुकं साज्यं दद्याद्गन्धादिकं नरे[3] ॥४५
पवित्राणि समादाय प्रोक्षितान्यर्घ्यवारिणा।
संहितामन्त्रपूतानि नीत्वा पावकसंनिधिम् ॥४६

आसन, खड़ाऊँ, पात्र, योगपट्ट तथा छाते को ईश मन्त्र से ईशान आदि चारों कोणों में रखे। पूर्व दिशा में घी सहित चरु और गन्ध आदि दे। हाथ में पवित्रक लेकर उसके ऊपर अर्घ्य-जल छिड़क कर संहितामन्त्रों से उनको पवित्र करके उसको अग्नि के समीप ले जाये।४४-४६।

कृष्णाजिनादिनाऽऽच्छाद्य स्मरन्संवत्सरात्मकम्।
साक्षिणं सर्वकृत्यानां गोप्तारं शिवमव्ययम् ॥४७
स्वेति हेति प्रयोगेण मन्त्रसंहितया पुनः।
शोधयेच्च पवित्राणि वाराणामेकविंशतिम् ॥४८

कृष्ण मृग-चर्म से ढक कर संवत्सरात्मक, सब कर्मों के साक्षी, रक्षक और अव्यय शिव का स्मरण करते हुए स्वाहा के द्वारा तथा पुनः मन्त्र-संहिता से पवित्रक को इक्कीस बार शोधन करे।४७-४८।

गृहादि वेष्टयेत्सूत्रैर्गन्धाद्यं रवये ददेत्।
पूजिताय समाचम्य कृतन्यासः कृतार्घ्यकः ॥४९
नन्दादिभ्योऽथ गन्धाख्यं वास्तोश्चाथ प्रविश्य च।
शस्त्रेभ्यो लोकपालेभ्यः स्वनाम्ना शिवकुम्भके ॥५०
वर्धन्यै विघ्नराजाय गुरवे ह्यात्मने यजेत्।५०½

घर आदि सूत्र से वेष्टित करके सूर्य को गन्ध आदि अर्पित करे। फिर पूजित सूर्य को आचमनपूर्वक अर्घ्य दे। न्यास करके नन्दी आदि द्वारपालों को और वास्तु देवता को भी गन्धादि समर्पित करे। तदनन्तर यज्ञ-मण्डप के

---

१ ख॰ दुकापा॰। २ ख ॰ट्टादिपात्रं॰। ३ घ. नवे।

भीतर प्रवेश करके शिव-कलश पर उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों और उनके शस्त्रों की अपने-अपने नाम-मन्त्रों से पूजा करे। इसके बाद वर्धनी में विघ्नराज, गुरु और आत्मा का पूजन करे।४९-५०½।

अथ सर्वौषधीलिप्तं धूपितं पुष्पदूर्वया ॥५१
आमन्त्र्य च पवित्रं तद्विधायाञ्जलिमध्यगम्।
ॐ समस्तविधिच्छिद्रपूरणे च विधिं प्रति ॥५२
प्रभवान्मन्त्रयामि त्वां त्वदिच्छावाप्तिकारिकाम्।
तत्सिद्धिमनुजानीहि यजतश्चिदचित्पते ॥५३
सर्वथा सर्वदा शंभो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे।५३½

सब औषधियों से लिप्त, धूप से सुवासित पवित्रक को पुष्प तथा दूर्वा से आमन्त्रित कर अपनी अञ्जलि में रखे। 'ॐ समस्त विधियों के दोष को दूर करने वाली, सब कर्मों के सिद्धि के आदि कारण तुमको आमन्त्रित कर रहा हूँ, तुम अपनी इच्छाओं को अनुकूल बनाने वाली कार्यसिद्धि को मेरे यज्ञ की सिद्धि के लिए प्रेरित कर भेजो' —इस मन्त्र से वर्धनी की पूजा करे। चित्पते! शम्भो! आप को सर्वदा नमस्कार है, आप मुझ पर प्रसन्न होइये।५१-५३½।

आमन्त्रितोऽसि देवेश सह देव्या गणेश्वरैः ॥५४
मन्त्रेशैर्लोकपालैश्च सहितः परिचारकैः।
निमन्त्रयाम्यहं तुभ्यं प्रभाते तु पवित्रकम् ॥५५
नियमं च करिष्यामि परमेश तवाज्ञया।

देवेश! मैं पार्वती, गणेश्वर, मन्त्रेश, लोकपाल और परिचारक वृन्दों के सहित आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ। देव! परमेश्वर! मैं आपकी आज्ञा से कल प्रातःकाल पवित्राधिवासन और नियम-व्रत करूँगा।५४-५५।

इत्येवं देवमामन्त्र्य रेचकेनामृतीकृतम् ॥५६
शिवान्तं मूलमुच्चार्य तच्छिवाय निवेदयेत्।
जपं[1] स्तोत्रं प्रणामं च कृत्वा शभूं क्षमापयेत् ॥५७

इस प्रकार शिव को आमन्त्रित करके रेचक प्राणायाम से अमृतीकरण कर मूलमन्त्र में शिव शब्द जोड़कर उस मन्त्र से प्रार्थना करे। जप स्तोत्र और प्रणाम करने के अनन्तर क्षमापन करे।५६-५७।

---

१ ख. ग जप्त्वा।

हुत्वा चरोस्तृतीयांशं तद्[1] (तं द) दीत शिवाग्नये।
दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमात्रगणैः[2] सह ॥५८
रुद्रेभ्यः क्षेत्रपादिभ्यो नमः स्वाहा बलिस्त्वयम्।
दिग्गजाद्यैश्च[3] पूर्वादौ क्षेत्राय चाग्नये बलिः ॥५९

चरु के तीसरे भाग का हवन कर उसको शिवाग्नि को अर्पित कर दे। फिर " दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमात्र गणैः सह रुद्रेभ्यः क्षेत्रपादिभ्यो नमः स्वाहा"—इस मन्त्र से बलि प्रदान करे। पूर्वादि दिशाओं में दिग्गजों, क्षेत्रपतियों और अग्नि को भी बलि दे।५८-५९।

समाचम्य विधिच्छिद्रपूरकं होममाचरेत्।
पूर्णां व्याहृतिहोमं च कृत्वा रुन्धीत पावकम् ॥६०
तत ओमग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि।
ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते तथा ॥६१
इत्याहुतिचतुष्कं तु दत्त्वा कुर्यात्तु योजनाम् ॥६१½

आचमन करके विधिच्छिद्रपूरक हवन करे। पूर्णाहुति तथा व्याहृति होम से अग्नि को अवरुद्ध कर दे। इतनी क्रिया के पश्चात् 'ओम् अग्नये स्वाहा', 'सोमाय स्वाहा', 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा'—इन मन्त्रों से चार आहुतियों को देकर योजना करे।६०-६१½।

वह्निकुण्डार्चितं देवं मण्डलाभ्यर्चिते शिवे ॥६२
नाडीसंधानरूपेण[4] विधिना योजयेत्ततः।
वंशादिपात्रे[5] विन्यस्य अस्त्रं च हृदयं ततः ॥६३
अधिरोप्य पवित्राणि कलाभिर्वाऽथ मन्त्रयेत्।६३½

मण्डल में पूजित शिव में और अग्निकुण्ड में अर्जित शिव को नाड़ी संधान रूप से विधिपूर्वक संयुक्त करे। वंश आदि पात्र में अस्त्र और हृदय का न्यास करके पवित्रक को रखकर कलाओं के द्वारा उसे अभिमन्त्रित करे।६२-६३½।

षडङ्ग[6] ब्रह्ममूलैर्वा हृद्वर्मास्त्रं[7] च योजयेत् ॥६४
विधाय सूत्रैः संवेष्ट्य पूजयित्वाऽङ्गसंभवैः[8]।
रक्षार्थं जगदीशाय भक्तिनम्रः समर्पयेत् ॥६५

---

१ क. च. तदधीत शिवालये। २ ख. ग. घ. °गणेभ्य उ। रु°। ३ दिग्गजाद्यैश्च.... बलिः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ४ क. ङ. च. नाभिसं°। ५ ख पात्रं वि°। ६ ख पूजिते। ७ ख. ग. ङ. च. हृद्वर्मा°। ८ क. ङ. च. ङ्गसस्वनैः। र°। ख. ग. °ङ्गशंकरैः। र°।

ब्रह्ममूल से षडङ्ग से हृद् और वर्मास्त्र की योजना करे। इस प्रकार योजना करके उसको सूत्र से घेरकर रक्षा के लिए अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रों से पूजन करके जगदीश के सम्मुख भक्ति से विनम्र होकर आत्मार्पण करे।६४-६५।

पूजिते पुष्पधूपाद्यैर्दत्त्वा सिद्धान्तपुस्तके।
गुरोः पादान्तिकं गत्वा भक्त्या दद्यात्पवित्रकम् ॥६६

पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजन करने के पश्चात् सिद्धान्त पुस्तक का दान कर गुरुचरणों के समीप जाकर भक्तिपूर्वक पवित्रक का दान करना चाहिए।६६

निर्गत्य वहिराचम्य गोमये मण्डलत्रये[1]।
पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च क्रमाद्यजेत् ॥६७

वहाँ से बाहर आकर आचमन करके गोबर के बने तीन मण्डलों में पञ्चगव्य, चरु और दन्तधावन रखकर क्रमशः उनकी पूजा करे।६७

स्वाचान्तो[2] मन्त्रसंनद्धः[3] कृतसंगीतजागरः।
स्वपेदन्तः स्मरन्नीशं बुभुक्षुर्दर्भसंस्तरे ॥६८

आचमन के अनन्तर मन्त्र-जप में तल्लीन हो गान आदि के द्वारा जागरण करे। अन्त में विना कुछ खाये, हृदय में शिव का स्मरण करते हुए कुशासन पर सोये।६८

अनेनैव प्रकारेण मुमुक्षुरपि संविशेत्।
केवलं भस्मशय्यायां सोपवासः[4] समाहितः ॥६९

इसी प्रकार से मुमुक्षु-जन को भी सोना चाहिए। उसे केवल भस्म की शय्या पर एकाग्र होकर सोना और निराहार रहना चाहिए।६९

इत्यादि महापुराण आग्नेये पवित्राधिवासनविधिकथनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः।७८

---

१ क. ङ. च. °ण्डपत्र°। २ घ. आचान्तो। ३ घ. °संबद्धः। ४ क. ङ. च. °परागः स°।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

पवित्रारोहणविधिः

ईश्वर उवाच—

अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानः समाहितः ।
कृतसंध्यार्चनो मन्त्री प्रविश्य मखमण्डलम्[1] ।१

महेश्वर बोले—इसके बाद प्रातःकाल उठकर स्नान करे और एकाग्र होकर सन्ध्या-पूजा आदि करके यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करे ।१

समादाय पवित्राणि अविसर्जितदेवतः ।
ऐशान्यां भाजने शुद्धे स्थापयेत्कृतमण्डले ।।२

पवित्रक को हाथ में लेकर देवताओं को विना विसर्जित किये ही ईशान-कोण में शुद्ध पात्र में मण्डल बनाकर उसमें पवित्रक को स्थापित करे ।२

ततो विसर्ज्य देवेशं निर्माल्यमपनीय च ।
पूर्ववद्भूतले शुद्धे कृत्वाऽऽह्निकमथद्वयम्[2] ।३
आदित्यद्वारदिक्पालकुम्भेशानौ शिवेऽनले ।
नैमित्तिकीं सविस्तारां कुर्यात्पूजां विशेषतः ।।४।।

तदनन्तर देवेश शिव को विसर्जित करके निर्माल्य को पृथक् कर दे । पूर्व की भाँति शुद्ध-भूमि पर दो बार आह्निक कर्म करके आदित्य, द्वारपाल, दिक्पाल, कुम्भ, ईशान, शिव और अग्नि की विस्तारपूर्वक विशेष रूप से नैमित्तिकी पूजा करे ।३-४।

मन्त्राणां तर्पणं[3] प्रायश्चित्तहोमं शराणुना[4] ।
अष्टोत्तरशतं कृत्वा[5] दद्यात्पूर्णाहुतिं शनैः ।।५
पवित्रं भानवे दत्त्वा समाचम्य ददीत च ।
द्वारपालादिदिक्पालकुम्भवर्धनिकादिषु ।।६

मन्त्रों का तर्पण और एक सौ आठ बार शर-मन्त्र से प्रायश्चित्त होम करके पूर्णाहुति प्रदान करे । सूर्य को पवित्रक प्रदान करके स्वयं आचमन करे और द्वारपाल तथा दिक्पाल के लिए कुम्भ और वर्धनिकादि पर भी पवित्रक समर्पित कर दे ।५-६।

---

१ क. च. मण्डमण्डपे । त° । २ ख. ग.° मखद्व° । ३ क. ङ. च. °र्पणे होमं प्रायश्चित्तं श° । ४ घ. °रात्मना । ५ क. ख. ग. ङ. च. हुत्वा ।

संनिधाने ततः शम्भोरुपविश्य निजासने[1] ।
पवित्रमात्मने दद्याद्गणाय गुरुवह्नये ।।७
ॐ कालात्मना[2] त्वया देव यद्दिष्टं[3] मामके विधौ ।
कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं कृतं गुप्तं च यत्कृतम् ।।८
तदस्तु क्लिष्टमक्लिष्टं कृतं[4] क्लिष्टमसंस्कृतम् ।
सर्वात्मनाऽमुना शंभो पवित्रेण त्वदिच्छया ।।९
ॐ पूरय मखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा ।।१०

तदन्तर शिव के समीप अपने आसन पर बैठकर आत्मा, गुरु, गण और अग्नि को पवित्रक दे। ॐ देव ! कालात्मन् ! तुम्हारी प्रेरणा से मेरी यज्ञ-विधि में जो कुछ कठिनाई के कारण छूट गये हैं, वे सब कुछ तुम्हारी कृपा से भली-भाँति इस पवित्रक प्रदान से सरल हो जाये और कठिनाइयाँ दूर हो जाय। ॐ नियमेश्वर को स्वाहा, मेरे यज्ञ-व्रत को पूर्ण कीजिए।७-१०।

आत्मतत्त्वे प्रकृत्यन्ते पालिते पद्मयोनिना ।
मूलं लयान्तमुच्चार्य पवित्रेणार्चयेच्छिवम् ।।११
विद्यातत्त्वे[5] च विद्यान्ते[6] विष्णुकारणपालिते ।
ईश्वरान्तं समुच्चार्य पवित्रमधिरोपयेत् ।।१२
शिवान्ते[7] शिवतत्त्वे च रुद्रकारणपालिते ।
शिवान्तं मन्त्रमुच्चार्य तस्मै देयं पवित्रकम् ।।१३
सर्वकारणपालेषु[8] शिवमुच्चार्य सुव्रत ।
मूलं लयान्तमुच्चार्य दद्याद्गङ्गावतारकम्[9] ।।१४

ब्रह्मा से पालित प्रकृति पर्यन्त आत्मतत्त्व में लयान्त मूल का उच्चारण करके पवित्रक प्रदान करे। विष्णु से पालित विद्यातत्त्व में तथा विद्या के अन्त में ईश्वरान्त विष्णु-मन्त्र का उच्चारण करके पवित्रक चढ़ावे। रुद्र से पालित शिवान्त शिव-तत्त्व को शिव मन्त्र का उच्चारण करके पवित्रक समर्पित करे। अये ! सुव्रत ! सब कारणों के पालक के विषय में शिव का उच्चारण करके गङ्गावतारक प्रदान करे।११-१४।

---

१ ग. सुखासने। २ ङ. च. °कारार्थं त्व°। ३ ङ. च यद्दृष्टं। ४ क. ङ. च. °तं क्षिप्तम°। ५ क. ङ. च.° तत्त्वं च। ६ ख. °वविद्यादिभिः। ७ ख. शिवान्तं। ८ क. ङ. च. °षु सर्वतत्त्वेषु सु°। ९ क. ङ. च. °रणम्।

आत्मविद्याशिवैः प्रोक्तं मुमुक्षूणां पवित्रकम् ।
विनिर्दिष्टं बुभुक्षूणां शिवतत्त्वात्मभिः[1] क्रमात् ॥१५
स्वाहान्तं वा नमोन्तं वा मन्त्रमेषामुदीरयेत् ॥१६

आत्मविद्या और शिव के क्रम से आचार्यों ने मुमुक्षुजनों के लिए पवित्रक-विधि का वर्णन किया है और शिव, शक्ति और आत्मा के क्रम से भोग की इच्छा रखने वालों के लिए पवित्रक का विधान है । इनका मन्त्र स्वाहान्त (शिवाय स्वाहा) या नमोऽन्त (नमः शिवाय) कहा गया है ।१५-१६।

ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।
ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।
ॐ[2] हौं शिवतत्त्वाधिपतये[3] शिवाय स्वाहा ।
ॐ हौं सर्वतत्त्वाधिपतये[4] शिवाय स्वाहा ॥१७

"ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा.........ॐ हौं सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा"—ये पवित्रक प्रदान के मन्त्र हैं ।१७

नत्वा[5] गङ्गावतारं तु प्रार्थयेत्तं[6] कृताञ्जलिः ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां संस्थितिस्त्वं चराचरे ॥१८

गङ्गावतार पवित्रक को नमस्कार करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करें—"परमेश्वर ! तुम सब भूतों की एक मात्र गति हो । तुम चराचर की स्थिति हो ।१८

अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर ।
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ॥१९

तुम सब प्राणियों के अन्तःकरण में रहकर उनकी गतिविधि को देखते हो । मैं कार्य, मन और वाणी से तुमको ही अपना एकमात्र गति समझता हूँ । अन्य की नहीं ।१९

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं[7] द्रव्यहीनं च यत्कृतम् ।
जपहोमार्चनैर्हीनं कृतं नित्यं मया तव ॥२०
अकृतं वाक्यहीनं च तत्पूरय महेश्वर ॥२०½

---

१ ख. °वविद्यादिभिः । २ ॐ हौं...शिवाय स्वाहा ख. ग. पुस्तकयोरन्यथा ग्रन्थः स यथा—"ॐ हां बलतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा" इति । ३ क. ङ. च. °धिपाय शि° । ४ क. ङ. च. °धिपाय शि° । ५ क. ख. ग. ङ. च. दत्त्वा । ६ ख. °येत्तु कृ° । ७ ङ. °नं °विधिही° । च नं भक्तिहीं° ।

हे परमेश्वर ! मैंने जो कुछ मन्त्रहीन, क्रियाहीन, द्रव्यहीन (दक्षिणा हीन) कर्म किए हैं, जप, होम और विधिवत् पूजन से या वाक्य से हीन जो कुछ मैंने तुम्हारी पूजा की है, उसको तुम पूर्ण करो ।२०-२०½।

सुपूतस्त्वं परेशान पवित्रं पापनाशनम् ॥२१
त्वया पवित्रितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
खण्डितं यन्मया देव व्रतं वैकल्ययोगतः ॥२२
एकी भवतु तत्सर्वं तवाऽऽज्ञासूत्रगुम्फितम् ।२२½

अये परेश ! तुम अति पवित्र हो, पवित्र और पापनाशन हो । तुमने सारे स्थावर-जङ्गम को पवित्र कर दिया है । देव ! विह्वलता या अभाव के कारण मेरा जो व्रत खण्डित हो गया है, वह तुम्हारी आज्ञारूपी सूत से गूँथकर एक हो जाय ।" २१-२२½।

जपं निवेद्य देवस्य भक्त्या स्तोत्रं विधाय च ॥२३
नत्वा तु गुरुणाऽऽदिष्टं गृहणीयान्नियमं नरः ।
चतुर्मासं त्रिमासं वा त्र्यहमेकाहमेव च ॥२४

भक्त, जप को शिवार्पण और स्तुति करके गुरु को प्रणाम करे और उनके आदेश से व्रत नियम स्वीकार करे । यह व्रत चार या तीन मास, तीन दिन या एक दिन का होना चाहिए ।२३-२४।

प्रणम्य क्षमयित्वेशं गत्वा कुण्डान्तिकं व्रती ।
पावकस्थे शिवेऽप्येवं पवित्राणां चतुष्टयम् ॥२५
समारोप्य समभ्यर्च्य पुष्पधूपाक्षतादिभिः ।
अन्तर्बलिं पवित्रं च रुद्रादिभ्यो निवेदयेत् ॥२६

व्रतान्त में व्रती ईश को प्रणाम कर क्षमाप्रार्थना करे । तदनन्तर कुण्ड के समीप जाकर अग्नि में स्थित शिव को चार पवित्रक प्रदान करे । पुष्प, धूप, अक्षत आदि से पूजन कर अन्तर्बलि और पवित्रक रुद्र आदि देवों को समर्पित करे ।२५-२६।

प्रविश्यान्तः शिवं स्तुत्वा सप्रणामं क्षमापयेत् ।
प्रायश्चित्तकृतं होमं कृत्वा हुत्वा च पायसम् ॥२७
शनैः पूर्णाहुतिं दत्त्वा वह्निस्थं विसृजेच्छिवम् ।
होमं व्याहृतिभिः कृत्वा[1] रुन्ध्यान्निष्ठुरयाऽनलम् ॥२८

---

१ क. ङ. च 'त्वा कन्या विष्टर' ।

मण्डप में प्रवेश कर शिव की स्तुति करके प्रणामपूर्वक क्षमायाचना करके खीर की आहुति दे और पूर्णाहुति प्रदान करके अग्निस्थ शिव का विसर्जन करे। व्याहृति के द्वारा हवन का निष्ठुर मुद्रा से अग्नि का अवरोध करे।२७-२८।

अग्नादिभ्यस्ततो दद्यादाहुतीनां चतुष्टयम्।
दिक्पतिभ्यस्ततो दद्यात्सपवित्रं[1] बहिर्बलिम्॥२९
सिद्धान्तपुस्तके दद्यात्सप्रमाणं पवित्रकम्॥३०

इसके अनन्तर अग्न्यादि देवों को चार आहुतियाँ देनी चाहिए। दिक्पालों को पवित्रक के सहित बहिर्बलि, सिद्धान्त-पुस्तक पर विहित प्रमाणानुरूप पवित्रक समर्पित करे।२९-३०।

ॐ हां भूः स्वाहा। ॐ हां भुवः स्वाहा।
ॐ हां स्वः स्वाहा। ॐ हां भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥३१
होमं व्याहृतिभिः कृत्वा दत्त्वाऽऽहुतिचतुष्टयम्॥३२
ॐ हामग्नये स्वाहा। ॐ हां सोमाय नमः स्वाहा।
ॐ हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।
ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा[2]॥३३
गुरुं शिवमिवाभ्यर्च्य वस्त्रभूषादिविस्तरैः।
समग्रं सफलं तस्य क्रियाकाण्डादि वार्षिकम्॥३४

"ॐ हां भूः स्वाहा, ॐ हां भुवः स्वाहा, ॐ हां स्वः स्वाहा, ॐ हां भूर्भुवः स्वाहा"—इन व्याहृतियों से हवन करने के पश्चात् चार आहुतियाँ दे। मन्त्र ये हैं—"ॐ हामग्नये स्वाहा, ॐ हां सोमाय नमः स्वाहा, ॐ हामग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।" शिव की भाँति वस्तु, आभूषण, आसन आदि से गुरु की भी पूजा करे। परमेश्वर ने कहा है कि इस प्रकार गुरु की पूजा करने से गुरु के सन्तुष्ट हो जाने पर मनुष्य के सम्पूर्ण क्रियाकाण्डादि वार्षिक कार्य सफल हो जाते हैं।३१-३४।

यस्य तुष्टो गुरुः सम्यगित्याह परमेश्वरः।
इत्थं गुरोः समारोप्य हृदालम्बि पवित्रकम्॥३५
द्विजादीन्भोजयित्वा तु भक्त्या वस्त्रादिकं ददेत्।
दानेनानेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः॥३६

इस प्रकार का गुरु का पूजन करके उन्हें हृदय तक लटकता हुआ पवित्रक धारण करावे तथा ब्राह्मण आदि को भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उन्हें वस्त्रादि दे। हे देवेश! मेरे द्वारा दिये हुए इस दान से सदा शिव प्रसन्न होवें।३५-३६।

---

१ ख. दत्त्वा सप॰। २ ख. स्वाहेति। गु॰।

भक्त्या स्नानादिकं प्रातः कृत्वा शंभोः समाहरेत् ।
पवित्राण्यष्टपुष्पैस्तं पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥३७

प्रातःकाल स्नान करके भक्तिपूर्वक शम्भु की पूजा करे और पुनः आठ पुष्पों से युक्त पवित्रकों से पूजन कर विसर्जन करे ।३७

नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा विस्तरेण यथा पुरा ।
पवित्राणि समारोप्य प्रणम्याग्नौ शिवं यजेत् ॥३८

पहले की ही भाँति विस्तारपूर्वक नित्य और नैमित्तिक कर्मों को करके पवित्रकों को समर्पित कर प्रणाम करे और अग्नि में शिव की पूजा करे ।३८

प्रायश्चित्तं ततोऽस्त्रेण हुत्वा पूर्णाहुतिं यजेत् ।
भुक्तिकामः शिवायाथ कुर्यात्कर्मसमर्पणम् ॥३९
त्वत्प्रसादेन कर्मेदं ममास्तु फलसाधकम् ।
मुक्तिकामस्तुकर्मेदं माऽस्तु मे नाथ बन्धकम् ॥४०

प्रायश्चित्त हवन करके पूर्णाहुति दे। भक्ति की कामना करने वाले व्यक्ति को अपने किये हुए कर्मों को —"नाथ तुम्हारी कृपा से मेरा यह कर्म फल देने वाला हो, मुमुक्षु-जन को मेरे लिए यह कर्म-बन्धन न बने"—मन्त्र से शिवार्पण कर देना चाहिए ।३९-४०।

वह्निस्थं नाडीयोगेन शिवं संयोजयेच्छिवे ।
हृदि न्यस्याणुसंघातं[1] पावकं च विसर्जयेत् ॥४१
समाचम्य प्रविश्यान्तः कुम्भानुगतसंवरान् ।
शिवं संयोज्य साक्षेपं[2] क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥४२

नाडी योग से अग्निस्थ शिव को शिव में संयुक्त करे । हृदय में अणु समूह का न्यास करके अग्नि को विसर्जित कर दे । तत्पश्चात् आचमन कर मण्डप में प्रवेश करे और कलश के जल से शिव को स्नान कराकर अपने प्रति आक्षेप युक्त बातें कह कर, 'क्षमा करो' कहकर विसर्जन करे ।४१-४२।

विसृज्य लोकपालादीनादायेशात्पवित्रकम् ।
सति चण्डेश्वरे पूजां कृत्वा दत्त्वा पवित्रकम् ॥४३
तन्निर्माल्यादिकं तस्मै सपवित्रं समर्पयेत् ।४३½

लोकपाल आदि का विसर्जन कर शिव को अर्पित किये हुए पवित्रक को लेकर चण्डेश्वर की पूजा करे। उनको पवित्रक अर्पित करके पवित्रक सहित निर्माल्य आदि अर्पित करे ।४३-४३½।

---

१ क. ङ. च. 'स्याश्वसं' । घ. 'स्याग्निसं' । २ क. ख. ङ. सापेक्षा ।

अथवा स्थण्डिले चण्डं विधिना पूर्ववद्यजेत् ।।४४
यत्किचिद्वार्षिकं कर्म कृतं न्यूनाधिकं मया ।
तदस्तु परिपूर्णं मे चण्डनाथ तवाज्ञया ।।४५
इति विज्ञाप्य देवेशं नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् ।।४५½

अथवा किसी वेदी पर चण्डी की विधिवत् पूजा करके प्रार्थना करे कि "हे नाथ ! हे चण्ड ! मेरे किए हुए वार्षिक कृत्य में जो कुछ कमी या अधिकता हुई हो, तुम्हारी आज्ञा से वह परिपूर्ण हो जाय।" इस प्रकार विज्ञापित कर देवेश को नमस्कार कर और स्तुति करके उसका विसर्जन करे ।४४-४५½।

त्यक्तनिर्माल्यकः शुद्धः स्नापयित्वा शिवं यजेत् ।
पञ्चयोजनसंस्थोऽपि पवित्रं गुरुसन्निधौ ।।४६

सब निर्माल्य को पृथक् करके शुद्ध होकर शिव को स्नान कराकर उनका पूजन करे। पाँच योजन दूर रहने पर भी गुरु के समीप जाकर पवित्रक को अर्पण करके पूजन करे ।४६

इत्यादि महापुराण आग्नेये पवित्रारोहणविधिकथनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।७९

अथाशीतितमोऽध्यायः

दमनकारोहणविधिः

ईश्वर उवाच--

वक्ष्ये दमनकारोहविधिं पूर्ववदाचरेत् ।
हरकोपात्पुरा जातो भैरवो दमिताः सुराः ।।१

महेश्वर बोले—अब मैं दमनकारोपण-विधि को बतला रहा हूँ। पहले अध्यायों में बतायी हुई विधि के अनुसार पूजन करना चाहिए। प्राचीन काल में शङ्कर के क्रोध से भैरव उत्पन्न हुए, उन्होंने देवताओं का दमन किया ।१

तेनाथ शप्तो विटपो भवेति त्रिपुरारिणा ।
प्रसन्नेनेरितं चेदं पूजयिष्यन्ति ये नराः ॥२
परिपूर्णं फलं तेषामन्यथा न भविष्यति ॥२½

त्रिपुरारि ने उसको शाप दिया कि तुम वृक्ष हो जावो—अनुनय-विनय से प्रसन्न होकर कहा कि जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे, उनके मनोरथ पूर्ण होंगे, उनकी आशा विफल न होगी ।२-२½।

सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां दमनं संहिताणुभिः[1] ॥३
संपूज्य वोधयेद्वृक्षं भववाक्येन मन्त्रवित् ।
हरप्रसादसंभूत त्वमत्र संनिधी भव ॥४
शिवकार्यं समुद्दिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया ।
गृहेऽप्यामन्त्रणं[2] कुर्यात्सायाह्ने चाधिवासनम् ॥५

पूजनविधि इस प्रकार है कि सप्तमी या त्रयोदशी के दिन संहिता-मन्त्रों के द्वारा दमन की पूजा करके मन्त्रज्ञ व्यक्ति शिव की आज्ञा से वृक्ष को लगावे —'हे शिव के प्रसाद से उत्पन्न होने वाले ! तुम इस वृक्ष में वास करो, तुमको शिव की आज्ञा से शिव कार्य के लिए जाना है ।' सायं-काल अपने घर पर भी आमन्त्रित करके अधिवासन करे ।३-५।

यथाविधि समभ्यर्च्य सूर्यशंकरपावकान् ।
देवस्य पश्चिमे मूलं[3] दद्यात्तस्य मृदायुतम्[4] ।६

सूर्य, शङ्कर और अग्नि की यथाविधि पूजा करके देवता के पश्चिम ओर मिट्टी से युक्त मूल रख दे ।६

वामेन शिरसा वाऽथ नालं धात्रीं तथोत्तरे ।
दक्षिणे[5] भग्नपत्रं[6] च[7] प्राच्यां[8] पुष्पं च धावनम्[9] ॥७
पुटिकास्थं[10] फलं मूलमथैशान्यां यजेच्छिवम् ।
पञ्चाङ्गमञ्जलौ कृत्वा आमन्त्र्य शिरसि न्यसेत् ॥८

वाम अथवा शिर (मन्त्र) से उत्तर दिशा में नाल या आँवले को रखे, दक्षिण में भग्नपत्र तथा पूर्व में धावन तथा पुष्प रखे । ईशान कोण

---

१ घ. °तात्मभिः २ ख. °हेऽत्राम° । ३ क. च.° लं गं ध्रं° तस्य च शाश्वतम् । ङ. °लं गत्वा तस्य च शाश्वतम् ४ ख. फलं । ५ ङ. °णेऽम्भसः प° । ६ ख. च. भस्म प° । ७ ङ. च. पुष्पं च दन्तधावनम् । ८ क. च. पुष्पं° । ९ ख. धावलम् । घ. धारणम् । १० क. ङ. च. कारकं फ° । ख. कास्त्रफ° ।

मे पुटिका में पुष्प फल रखकर शिव की पूजा करे। अञ्जलि में पञ्चाङ्ग (मूल, पत्र, फूल, फल, वल्कल) रखकर आमन्त्रित करे और शिर पर चढ़ा दे।७-८।

आमन्त्रितोऽसि देवेश प्रातः काले मया प्रभो।
कर्तव्यस्तपसोलाभः पूर्णं सर्वं तवाज्ञया ॥९

उस समय यह प्रार्थना करे कि "हे देवेश! प्रातःकाल के लिए आपको आमन्त्रित करता हूँ। तुम्हारी आज्ञा से मेरी सारी कर्तव्यविधियाँ पूर्णरूप से लाभप्रद हों।'

मूलेन शेषं पात्रस्थं पिधायाथ पवित्रकम्।
प्रातः स्नात्वा जगन्नाथं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१०

मूल मन्त्र से वस्तुओं के ऊपर पवित्रक रखकर ढक दे और प्रातःकाल स्नान के पश्चात् गन्ध-पुष्प आदि से जगन्नाथ की पूजा करे।१०

नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा दमनैः पूजयेत्ततः।
शेषमञ्जलिमादाय आत्मविद्याशिवात्मभिः[1] ॥११
मूलाद्यैरीश्वरान्तैश्च चतुर्थाञ्जलिना ततः ॥१२

तदनन्तर नित्य और नैमित्तिक कार्य को समाप्त करके दमन से पूजा करे। शेष अञ्जलि को हाथ में लेकर आत्म, विद्या, और शिवतत्त्वों से मूलादि और ईश्वरान्त मन्त्रों से चौथी अञ्जलि प्रदान करे।११-१२।

[2]हौं महेष्वराय[3] मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः ॥१३
शिवं वह्निं च सम्पूज्य गुरुं प्राच्यर्थ बोधयेत्[4]।
भगवन्नतिरिक्तं वा हीनं वा यन्मया कृतम् ॥१४
सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं यच्च दामनकं मम।
सकलं चैत्रमासोत्थं फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥१५

उसका मन्त्र यह है—"ॐ हौं महेश्वराय मखं पूरय शूलपाणये नमः"। शिव और अग्नि की पूजा करके गुरु की पूजा करे। तत्पश्चात् भगवान् की प्रार्थना करके क्षमाप्रार्थना करे कि 'हे भगवन्! इस विधि में जो त्रुटि या अधिकता हुई हो, उससे उत्पन्न दोष दूर हो जाय। मेरा यह दमन-पूजन पूर्ण फल दे।' इस प्रकार हवन की पूजा करने से मनुष्य चैत्रमास व्रत के सब फल को प्राप्त कर स्वर्ग को जाता है।१३-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दमनकारोहणविधिकथनं नामाशीतितमोऽध्यायः ८०।

---

१. ख. °वाणुंभिः। २ क. ङ. च. ॐ हौं मग्नेश्व°। ३ घ. मखेश्व°।
४ ख. शोधयेत्।

अथैकाशोतितमोऽध्यायः

समयदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्यामि भोगमोक्षार्थं दीक्षां पापक्षयं करीम् ।
मलमायादिपाशानां विश्लेषः क्रियते यया ॥१

महादेव बोले—मैं आपसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए पापों को नष्ट करने वाली उस दीक्षा को कहूँगा, जो कि माया आदि मल और पाशों से मनुष्य को छुड़ा देती है । १

ज्ञानं च जन्यते शिष्ये सा दीक्षा भुक्तिमुक्तिदा ।
विज्ञातकलनामैको[1] द्वितीयः प्रलयाकलः ॥२
तृतीयः सकलः शास्त्रेऽनुग्राह्यस्त्रिविधो मतः ॥२½

यह दीक्षा शिष्य को ज्ञानी बनाकर उसे भुक्ति-मुक्ति प्रदान करती है । शास्त्र में दीक्षा प्रदान के योग्य अनुग्राह्य जीव तीन प्रकार के माने गये हैं—पहला विज्ञानाकल, दूसरा प्रलयाकल, तीसरा सकल ॥ २-२½

तत्राऽऽद्यो मलमात्रेण[2] मुक्तोऽन्यो मलकर्मभिः ॥ ३
कलादिभूमिपर्यन्तं स्तम्बैस्तु[3] सकलो मतः[4] ।
निरधाराऽथ साधारा दीक्षाऽपि द्विविधा मता ॥ ४

इनमें पहला जीव मल नामक पाश से मुक्त होता है । दूसरा मल और कर्म से, तीसरा कला से लेकर भूमि पर्यन्त सभी से अर्थात् मल, माया और कर्म से बँधा रहता है—ऐसा शास्त्रों में प्रतिपादित है । दीक्षा भी निराधार और साधार भेद से दो प्रकार की होती है ॥३–४ ।

निराधारा द्वयोस्तेषां साधारा सकलस्य तु ।
आधार निरपेक्षेण क्रियते शंभुचर्यया ॥५
तीव्रशक्तिनिपातेन निराधारेति सा स्मृता ॥५½

निराधार दीक्षा दो प्रकार (विज्ञानाकल तथा प्रलयाकल) जीवों के लिए, साधार सकल के लिए उपयुक्त मानी गयी है । केवल शम्भु की पूजा से जो

---

१ ख. 'तकाल' । २ ख. 'ण युक्तोऽ' । ३ घ. स्तवैस्तु । ४ ख. युतः ।

आधार निरपेक्ष और तीव्र शक्ति के निपात से सम्पन्न की जाती है उस दीक्षा को निराधार कहते हैं ।५-५½।

आचार्यमूर्तिमास्थाय मायातीव्रादिभेदया ।। ६
शक्त्या यां कुरुते शंभुः सा साधिकरणोच्यते ।
इयं चतुर्विधा प्रोक्ता सबीजा वीजवर्जिता ।। ७
साधिकाराऽनधिकारा यथा तदभिधीयते ।
समयाचारसंयुक्ता सबीजा जायते नृणाम् ।।८

आचार्य की मूर्ति की प्रतिष्ठा करके मन्द, तीव्र आदि शक्तिपात के भेद से जिस दीक्षा को शम्भु कहते हैं, उसको साधारा कहते हैं। यह चार प्रकार की है—सबीजा, निर्वीजा साधिकारा और निरधिकारा। इसकी जो परिभाषा है, उसे कह रहा हूँ। मनुष्यों को समयानुकूल आचार से संसक्त दी जाने वाली दीक्षा सबीजा कही जाती है। ६-८।

निर्बीजा[1] त्वसमर्थानां समयाचारवर्जिता ।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये यतः[2] स्यादधिकारिता ।। ९
साधिकारा भवेद्दीक्षा साधकाचार्ययोरतः[3] ।
निर्बीजा दीक्षितानां तु[4] तथा समयि पुत्रयोः ।। १०

असमर्थों के समयाचार से वर्जित दी जाने वाली दीक्षा निर्बीजा है। नित्य, नैमित्तिक और काम्यकार्यों में जिसके द्वारा साधक और आचार्य को अधिकार प्राप्त होता है, उसको साधिकारा कहते हैं। निर्वाण-दीक्षा तो समयी और पुत्रक नामक शिष्यों के लिए हुआ करती है। ९-१०।

[5]नित्यमांत्राअधिकारत्वाद्दीक्षा[6] (?) निरधिकारिका ।
द्विविधेयं द्विरूपा[7] हि प्रत्येकमुपजायते ।। ११

निरधिकारा दीक्षा से नित्य कर्मों अथवा ऐसे कर्मों के करने की योग्यता प्राप्त होती है, जिनको करने से मनुष्य को कुछ लाभ तो नहीं होता, किन्तु जिन्हें न करने से उसके गुणों का ह्रास हो जाता है। यह द्विविध दीक्षा दो रूपों में सम्पन्न की जाती है ।। ११

---

१ कः ख. °बींजत्वे स° । २ क. ङ. च. यत्र । ३ क. ङ. च. °यंगी चरे । नि° । ४ ख. तु यथा सदपि पु° । घ. तु यदा स मम पु° । ५ च. °मात्माविकारित्वा° । ६ क. ङ. °त्राविकारित्वा° । ७ क. ङ. च. °रूपाऽपि प्र° ।

एका क्रियावती तत्र कुण्डमण्डलपूर्विका ।
मनोव्यापारमात्रेण या सा ज्ञानवती मता ।। १२

एक क्रियावती, जो कुण्ड और मण्डल आदि से सम्पन्न की जाती है और दूसरी, केवल मानसिक भावना से सम्पन्न की जाने वाली ज्ञानवती मानी जाती है ।।१२

इत्थं लब्धाधिकारेण दीक्षाऽऽचार्येण साध्यते ।
स्कन्ददीक्षां गुरुः कुर्यात्कृत्वा[1] नित्यक्रियां ततः ।। १३

हे स्कन्द ! इस प्रकार अधिकारी आचार्य के द्वारा दीक्षा दी जानी चाहिए । गुरु नित्य-क्रिया करने के पश्चात् ही दीक्षा दे । १३

प्रणवार्घ्यं कराम्भोजः कृतद्वाराधिपार्चनः[2] ।
विघ्नानुत्सार्य देहल्यां न्यस्यास्त्रं स्वासने स्थितः ।। १४

पहले अपने कमलवत् हाथों में अर्घ्य-जल से ॐ कार के उच्चारणपूर्वक द्वाराधिप की पूजा करे । विघ्नों का अपसारण करके देहली पर अस्त्र का न्यास करके अपने आसन पर बैठ जाय । १४

कुर्वीत भूतसंशुद्धिं मन्त्रयोगं यथोदितम् ।
तिलतण्डुलसिद्धार्थकुशदूर्वाक्षतोदकम् ।। १५
सयवक्षीरनीरं च विशेषार्घ्यमिदं ततः ।।१५½

नियम के अनुसार मन्त्रयोग से भूत-शुद्धि करे । तिल, अक्षत, सरसों, कुश, दूब, जल, यव और दूध मिला हुआ जल विशेषार्घ्य कहा जाता है । ।१५-१५½।

तदम्बुना द्रव्यशुद्धिं तिलकं स्वासनात्मनोः ।। १६
पूजनं मन्त्रशुद्धिं[3] च पञ्चगव्यं च पूर्ववत् ।
लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाक्षतं कुशान् ।। १७
विकिराञ्शुद्धलाजां[4]स्तान्सधूपानस्त्रमन्त्रितान्[5] ।
शस्त्राम्बुप्रोक्षितानेतान्कवचेनावगुण्ठितान् ।। १८

विशेषार्घ्य के अनन्तर उपर्युक्त मिश्रित जल से द्रव्यशुद्धि, अपनी और आसन की शुद्धि और तिलक करे । फिर पूर्ववत् पूजन, मन्त्रशोधन तथा

---

१ क. ङ. च. °त्कृतनित्यक्रियोनृपः । प्र° । २ क. ङ. च. °रा (र) विपर्ययः । वि° । ३ क. ङ च. °न्त्रसंशुद्धिं प । ४ क. ङ. च. °लाजास्थान्स° । ५ ख. °न् भस्त्रा° ।

पञ्चगव्य-प्राशन आदि कार्य करने चाहिए। क्रमशः लावा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वा, अक्षत, कुश और अन्त में पुनः शुद्ध लावा—ये सब 'विकिर' (बिखरने-योग्य द्रव्य) कहे गये हैं। इन सब वस्तुओं को एकत्र करके सात बार अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से इनका प्रोक्षण करके फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से अवगुण्ठन करे। १६-१८।

नानाप्रहरणाकारान्विघ्नौघविनिवारकान्।
दर्भाणां तालमानेन[1] कृत्वा[2] षट्त्रिंशतादलैः ॥ १९
सप्तजप्तं शिवास्त्रेण वेणीं बोधासिमुत्तमम्।
शिवमात्मनि विन्यस्य सृष्ट्याधारमभीप्सितम् ॥ २०
निष्कलं च शिवं न्यस्य शिवोऽहमिति भावयेत्।
उष्णीषं शिरसि न्यस्य अलं कुर्यात्स्वदेहकम् ॥ २१

विघ्नों को दूर करने के लिए कुशों के छत्तीस दलों से एक बालिश्त अनेक शस्त्रों के आकार की वस्तु बनाये। शिवास्त्र का सात बार जप करके उत्तम वेणी और ज्ञान खड्ग बनाये। अपने शरीर पर अभीप्सित सृष्ट्याधार शिव का न्यास करके, निष्कल शिव का न्यास करे तथा अपने में 'मैं शिव हूँ' ऐसी भावना करे। शिर पर पगड़ी बाँधकर अपने को आभूषण और उत्तम वस्त्रों से अलंकृत करे।१९-२१।

गन्धमण्डनकं[3] स्वीये विदध्याद्दक्षिणे करे।
विधिनाऽत्रार्चयेदीशमित्थं[4] स्याच्छिव हस्तकम्[5] ॥ २२

अपने दाहिने हाथ में सुगन्धित लेप आदि लगाकर विधिपूर्वक दाहिने हाथ पर शिव की पूजा करे। ऐसा करने से वह दाहिना हाथ शिवहस्तक (शुभहस्त) हो जाता है।२२

विन्यस्य शिवमन्त्रेण भास्वरं[6] निजमस्तके।
शिवादभिन्नमात्मानं कर्तारं भावयेद्यथा ॥ २३

आचार्य शिव-मन्त्र से अपने मस्तक पर भास्वर (तेज) का न्यास करके अपने में शिव से अभिन्नकर्ता की भावना करे।२३

मण्डले कर्मणां साक्षी कलशे यज्ञरक्षकः।
होमाधिकरणं[7] वह्नौ शिष्ये पाशविमोचकः ॥ २४

---

१ ख °मात्रेण कृ°। २ क. ख. ङ. च. कृतां। ३ क. ख. ङ. च. °ण्डलकं। ४ ख. घ. °वमस्त°। ५ ख. °स्तके। वि°। ६ क. ङ. च. °भास्करं। ७ ख. °मादिक°।

स्वात्मन्यन्यगृहीतेति षडाधारो य ईश्वरः ।
सोऽहमेवेति कुर्वीत भावं[1] स्थिरतरं पुनः ॥२५

मण्डल में अपने आप में उस ईश्वर की भावना करे जो कर्म का साक्षी, कलश पर यज्ञरक्षक, अग्नि में हवन का आधार, शिष्य में पाशविमोचक और अपनी आत्मा में अनुगृहीत होने से षडाधार हैं। २४-२५।

ज्ञानखड्गकरः स्थित्वा नैर्ऋत्या (त्य) भिमुखो नरः ।
साध्यम्बुपञ्चगव्याभ्यां प्रोक्षयेद्यागमण्डपम् ॥ २६
चतुष्पथान्तसंस्कारैः संस्कुर्यादीक्षणादिभिः ॥२६½

ज्ञानखड्ग को हाथ में लेकर नैर्ऋत्याभिमुख होकर बैठ जाना चाहिए। अर्घ्यजल और पञ्चगव्य से ज्ञानमण्डप का प्रोक्षण (सिञ्चन) करें, चतुष्पथान्त संस्कार और ईक्षण आदि से अग्नि का संस्कार करे।२६-२६½।

विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्चोपसंहरेत् ॥ २७
तानीशदिशि वर्धन्यामासनायोपकल्पयेत् ।
नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणान्द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥ २८

उस यागमण्डप में अक्षतों को बिखेर कर कुश की बनी कूची से उसको बटोर ले। उनको ईशान कोण में वर्धनी पर आसन के लिए रख दे। नैर्ऋत कोण में वास्तु और देवताओं की और द्वार पर लक्ष्मी की विधिवत् पूजा करे।२७-२८।

आज्ये[2] रत्नैः[3] पूरयन्तीं हृदा मण्डपरूपिणीम् ।
साम्बुवस्त्रे सरले च धान्यस्थे पश्चिमानने ॥२९

घृत-पात्र में उनकी स्थापना करके हृद्-मन्त्र से मण्डपरूपिणी रत्नों से परिपूर्ण करने वाली पश्चिमाभिमुख वस्त्र से आवेष्टित, पञ्चरत्नयुक्त तथा जल से परिपूर्ण लक्ष्मी की पूजा करे।२९

ऐशे कुम्भे यजेच्छम्भुं शक्तिं कुम्भस्य दक्षिणे ।
पश्चिमस्यां (मायां) तु सिंहस्थां वर्धनीं खड्गरूपिणीम् ॥३०

ईशान कोण में जल, वस्त्र, रत्नयुक्त कलश को धान्यराशि पर रखकर पश्चिम की ओर उसे उन्मुख करे, उस पर शम्भु की पूजा करे। कलश के दक्षिण में पश्चिमाभिमुख, सिंहारूढ, वर्धिनी और खड्गरूपिणी-शक्ति की पूजा करे ।३०

---

१ क. च.° वं च सुस्थिरं पु° । २ ख. आद्ये । ३ क. ङ. बलिः ।

दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्ण्वन्तान्प्रणवासनान्[1] ।
वाहनायुधसंयुक्तान्हृदाऽभ्यर्च्य स्वनामभिः ॥ ३१
प्रथमं तान्समादाय कुम्भस्याग्राभिगामिनीम्[2] ।
अविच्छिन्नपयोधारां भ्रामयित्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३२

सब दिशाओं में इन्द्र से लेकर विष्णु-पर्यन्त उन देवों का हृद्-मन्त्र से तत्तद् देवताओं के नामों का निर्देश करते हुए पूजन करे, जो प्रणवासन पर स्थित हों और अपने वाहन तथा अस्त्र से युक्त हों। प्रथम उन देवताओं को लेकर कलश के आगे की ओर से अविच्छिन्न जलधारा चारों ओर घुमाए और प्रदक्षिण करे ।३१-३२।

शिवाज्ञां लोकपालानां श्रावयेन्मूलमुच्चरन् ।
संरक्षत यथायोगं कुम्भं धृत्वाऽथ तां धरेत् ॥ ३३
ततः स्थिरासने कुम्भे साङ्गं सम्पूज्य शङ्करम् ॥ ३३½

मूल मन्त्र का उच्चारण करता हुआ लोकपालों को शिव का आदेश सुनाये कि "आप लोग यथोचित रूप से यज्ञ-कुम्भ की रक्षा करें, इसके अनन्तर शक्ति देवी को धारण करें और कलश को स्थिर करके उसके ऊपर शङ्कर की साङ्गोपाङ्ग पूजा करें"।३३-३३½।

विन्यस्य शोध्यमध्वानं वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ॥ ३४
ॐ हः,[3] अस्त्रासनाय[4] हूं फट् ।ॐ [5]ओमस्त्रमूर्तये नमः ।
ॐ[6] हूं फट्, पाशुपतास्त्राय नमः । ॐ ॐहृदयाय हूं फट्, नमः ।
ॐ[7] श्रीं शिरसे हूं फट्, नमः । ॐ यं शिखायै हूं फट्, नमः ।
ॐ गूं[8] कवचाय हूं फट्, नमः । ॐ[9] फट्, अस्त्राय ह्रूं फट्, नमः॥३५

वर्धनी पर शोध्य अध्वा का न्यास करके अस्त्र की पूजा करे। न्यास और अस्त्र-पूजन के मन्त्र ये हैं—'ॐ हः अस्त्रासनाय हूँ फट्,' 'ॐ अस्त्रमूर्तये नमः', 'ॐ हूं फट् 'पाशुपतास्त्राय नमः', 'ॐ हृदयाय हूँ फट् नमः,' ॐ श्रीं शिरसे हूं फट् नमः,' 'ॐ यं शिखायै हूँ फट् नमः,' ॐ गूं कवचाय हूँ फट् नमः,' 'ॐ फट् अस्त्राय ह्रूं फट् नमः । ३४-३५ ।

---

१ क. ङ. च. °न्विष्कम्भान्प्र° । २ च. ग्रानुवर्तिनी° । ३ क. ङ. च. ॐ° ग्रहः । ४ क. ङ. च. °य. फ° । ५ क. ङ. घ. ॐ ग्रं ॐ-ग्रस्त्र° । ६ क. ङ. च. ॐ यं रूं हूं । ७ क. च. ग्लां । ८ क. च. श्रूं । ९ क. च. ॐ हूं फ° ।

चतुर्वक्त्रं सदंष्ट्रं च स्मरेदस्त्रं सशक्तिकम् ।
समुद्गुरत्रिशूलासिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।। ३६

पूजा के समय चतुर्मुख, बड़े-बड़े दाँतों वाले, शक्तियुक्त, मुद्गर, त्रिशूल और खड्ग को धारण करने वाले तथा कोटिसूर्य के समान प्रभावशाली अस्त्र-देवता का स्मरण करे । ३६

भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया ।
अंगुष्ठेन स्पृशेत्कुम्भं हृदा[1] मुष्ट्याऽस्त्रवर्धनीम् ।।३७

लिङ्गमुद्रा के द्वारा भग और लिङ्ग का संयोग करे । अंगूठे से कुम्भ का स्पर्श करे । हृद् मन्त्र का उच्चारण करके मुट्ठी से अस्त्र और वर्धनी का स्पर्श करना चाहिए । ३७

भुक्तये मुक्तये त्वादौ मुष्टिना वर्धनीं स्पृशेत् ।
कुम्भस्य मुखरक्षार्थं ज्ञानखड्गं समर्पयेत् ।। ३८
शस्त्रं च मूलमन्त्रस्य शतकुम्भे निवेशयेत् ।
तद्दशांशेन वर्धन्यां रक्षां विज्ञापयेत्ततः ।। ३९

सर्वप्रथम भुक्ति और मुक्ति दोनों के लिए मुट्ठी से वर्धनी का स्पर्श करना चाहिए । कुम्भ-मुख की रक्षा के लिए ज्ञान-खड्ग को समर्पित करे । मूलमन्त्र का उच्चारण करके शस्त्र को शत-कुम्भ में प्रविष्ट कर दे । उसके दशवें भाग वर्धनी पर रक्षा के लिए निवेदन करे । ३८-३९ ।

यथेदं कृत (त) (?) यत्नेन भगवन्मखमन्दिरम् ।
रक्षणीयं जगन्नाथ सर्वाध्वरधर त्वया ।। ४०
प्रणवस्थं चतुर्बाहुं वायव्ये गणमर्चयेत् ।
स्थण्डिले शिवमभ्यर्च्य सार्घ्यः कुण्डं व्रजेन्नरः ।।४१
निविष्टो[2] मन्त्रतुष्ट्यर्थं अर्घ्यगन्धघृतादिकम् ।
वामे सव्ये तु विन्यस्य समिद्दर्भतिलादिकम् ।। ४२

इतनी क्रिया समाप्त हो जाने पर हे भगवान् ! हे जगन्नाथ ! जिस प्रकार यत्न से इस यज्ञ-मण्डप का निर्माण हुआ है, अखिलयज्ञों के एक मात्र धारक ! आप इसकी रक्षा करें । इस प्रार्थना-मन्त्र से यज्ञमण्डप की रक्षा के लिए यज्ञ-पति विष्णु की प्रार्थना करे । वायव्य कोण में प्रणव पर स्थित चतुर्बाहु गण की अर्चना करे । यजमान को वेदी पर शिव की पूजा करके अर्घ्य के सहित कुण्ड

---

१ ख. °दा पुष्ट्याऽ° । २ घ. °न्त्रतृप्त्यर्थं° ।

के निकट जाना चाहिए। वहाँ आसन पर बैठकर मन्त्रतुष्टि के लिए अर्घ्यं, गन्ध, घृत आदि बाँए भाग में तथा समिधा, कुश एवं तिल आदि दाहिने भाग में रखे।४०-४२।

कुण्डवह्निस्रुगाज्यादि प्राग्वत्संस्कृत्य भावयेत्।
मुख्यतामूर्ध्ववक्त्रस्य हृदि वह्नौ शिव यजेत्॥ ४३
स्वमूर्तौ शिवकुम्भे च स्थण्डिले त्वग्निशिष्ययोः।
सृष्टिन्यासेन विन्यस्य (स्याऽऽ)शोध्याध्वानं यथाविधि॥४४

कुण्ड, वह्नि, स्रुक् और घृत आदि का संस्कार करके हृदय में ऊर्ध्वमुख (अग्नि) की प्रधानता की भावना करे। अग्नि में शिव की पूजा करे। स्वमूर्ति, शिवकुम्भ और वेदी पर अग्नि और शिष्य का सृष्टिन्यास कर, यथाविधि शोध्य, अध्वा का न्यास करे।४३-४४।

कुण्डमानं मुखं ध्यात्वा हृदाहुतिभिरीप्सितम्।
वीजानि सप्तजिह्वानामग्नेर्होमाय भण्यते॥४५

कुण्ड के परिमाण में मुख का ध्यान कर हृद्मन्त्र से आहुतियों को प्राप्तकर अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है। अग्नि की सप्तजिह्वाओं के वीज अग्नि में होम के लिए कहे जाते हैं।४५

विरेफावन्तिमौ[1] वर्णौ रेफषष्ठखरान्वितौ[2]।
इन्दुविन्दुशिखायुक्तौ[3] जिह्वाबीजाद्यनुक्रमात्[4]॥४६
हिरण्या, कनका रक्ता कृष्णा तदनुसुप्रभा।
अतिरिक्ता बहुरूपा रुद्रेन्द्राग्न्याप्यदिङ्मुखाः (?)॥४७

वर्णमाला के रेफ को छोड़कर अन्तिम सात वर्ण यदि रकार और छठें स्वर (ऊ) पर आरूढ़ हों, विन्दु और इन्द्रशिखा से युक्त हों तो ये ही सात वह्निजिह्वा के वीज हैं—(य्रूँ, ल्रूँ, व्रूँ, श्रूँ, स्रूँ, ष्रूँ, ह्रूँ) आदि। अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम हैं—हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा अतिरिक्ता और बहुरूपा। ये सभी अग्निदेह के विभिन्न कोणों को व्याप्त किये रहती हैं।४६-४७।

क्षीरादि मधुरैर्होमं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिके।
अभिचारे तु पिण्याकसक्तुकञ्चुककाञ्जिकैः॥४८

---

१ ख. ॰मौ रे॰। २ ख. ॰ष्ठसुरक्षितौ। ३ ख. ॰शिवायु॰। ४ ज 'जानुपंक्र'।

लवणैराजिकातक्रकटुतैलैश्च कण्टकैः ।
समिद्भिरपि वक्त्राभिः क्रुद्धो भाष्याणना यजेत् ॥४९

शान्ति और पौष्टिक कर्मों में दुग्ध आदि मधुर पदार्थों का हवन करना चाहिए । अभिचार में पिण्याक (तिल की खली), सत्तू, सर्प की केंचुल, सिरका, लवण, राई, तक्र, कड़ुआ तेल, कटीली समिधाओं की आहुतियाँ मुखमुद्रा के द्वारा क्रोध की अभिव्यक्ति करते हुए, भाष्यमन्त्र का उच्चारण करके देनी चाहिए ।४८-४९।

कलम्बकलिकाहोमाद्यक्षिणी सिद्ध्यति ध्रुवम् ।
वन्धूकर्किशुकादीनि वश्याकर्षाय होमयेत् ।५०

कदम्ब की कली का हवन करने से निश्चित रूप से यक्षिणी सिद्ध होती है । गुलदुपहरिया तथा पलाश के फूलों का हवन करने से वशीकरण तथा आकर्षण होता है ।५०

विल्वं राज्याय लक्ष्म्यर्थं पाटलांश्चम्पकानपि ।
पद्मानि चक्रवर्तित्वे भक्ष्यभोज्यानि संपदे ॥५१

राज्य प्राप्ति के लिए बेल का, धन प्राप्ति के लिए पाटल और चम्पक का, चक्रवर्ती बनने की इच्छा से कमल का तथा विभव प्राप्ति के लिए भक्ष्य और भोज्य पदार्थ का हवन करन चाहिए ।५१

दूर्वा व्याधिविनाशाय सर्वसत्त्ववशीकृते ।
प्रियंगुपाटलीपुष्पं चूतपत्रं ज्वरान्तकम् ।५२
मृत्युञ्जयो मृत्युजित्स्याद्[1] वृद्धिः स्यात्तिलहोमतः ।
रुद्रशान्तिः सर्वशान्त्या अथ प्रस्तुतमुच्यते ॥५३

रोगनाश के लिए दूब की, सब जीवों को वश में करने के लिए प्रियङ्गु और पाटलीपुष्प की आहुति श्रेष्ठ है । आम की पत्तियों के हवन से ज्वर नष्ट होता है, तिल के होम से मृत्यु पर विजय प्राप्ति होती है और होता की वैभव वृद्धि होती है । सब प्रकार की शान्ति के लिए रुद्र-शान्ति का विधान है । अब प्रस्तुत प्रसंग पुनः प्रारम्भ किया जा रहा है ।५२-५३।

आहुत्यष्टशतैर्मूलमङ्गानि तु दशांशतः ।
संतर्पयेत्[2] मूलेन दद्यात्पूर्णां यथा पुरा ॥५४

मूलमन्त्र से एक सौ साठ आहुतियाँ देकर अङ्गों के दशांश तर्पण करे, पुनः मूलमन्त्र से पूर्णाहुति दे ।५४

---

१. ख.° त्स्याद्विष्टिः स्या° । २. ख.° तर्प्य प्लुत° ।

तथा शिष्यप्रवेशाय[1] प्रतिशिष्यं शतं जपेत् ।
दुर्निमित्तापसाराय सुनिमित्तकृते तथा ॥५५
शतद्वयं च होतव्यं मूलमन्त्रेण पूर्ववत् ।
मूलाद्यष्टास्त्रमन्त्राणां स्वाहान्तैस्तर्पणं सकृत् ॥५६

पहले की (दीक्षाविधि की) भाँति शिष्यों के प्रवेश के लिए प्रत्येक शिष्य के अनुसार सौ-सौ बार मन्त्रों का जप करें। अमंगल को हटाने तथा शुभ वातावरण उत्पन्न करने के लिए मूल मन्त्र से दो सौ बार आहुतियाँ देनी चाहिए। स्वाहान्त मूल आदि आठ अस्त्र मन्त्रों से एक बार तर्पण करे।५५-५६।

शिखासंपुटितैर्बीजैर्हूंफडन्तैश्च[2] दीपनम् ।
ॐ हौं शिवाय स्वाहा इत्यादिमन्त्रैश्च तर्पणम् ॥५७
ॐ ह्रूं ह्लौं ह्रीं शिवाय ह्रूँ फडित्यादि [च] दीपनम् ।
ततः शिवाम्भसा स्थालीं क्षालितां वर्मगुण्ठिताम् ॥५८

शिखा से सम्पुटित 'हुं फट्' इत्यादि मन्त्रों से दीपन करे। 'ॐ हौं शिवाय स्वाहा'—आदि मन्त्रों मे तर्पण और 'ॐ ह्रूं ह्लौं ह्रीं शिवाय हूं फट्'—इत्यादि से दीपन करना चाहिए। तदनन्तर पवित्र जल से स्थाली का प्रक्षालन करके कवच से उसे अवगुण्ठित कर दे।५७-५८।

चन्दनादिसमालब्धां बध्नीयात्कटकं गले ।
वर्मास्त्रजप्तसद्दर्भपत्राभ्यां[3] चरुसिद्धये ॥५९

चन्दन आदि का लेप लगाकर उसके गले में कटक नामक आभूषण विशेष बाँध दे। चरु को वर्म और अस्त्र से अभिमन्त्रित करके अच्छे कुश और पत्र से ढक दे।५९

धर्माद्यैरासने दत्ते[4] सार्धेन्दुकृतमण्डले ।
न्यस्तायां मूर्तिभूतायां भावपुष्पैः शिवं यजेत् ॥६०

अर्धचन्द्राकार बने हुए मण्डल पर दिये गये आसन पर धर्म आदि के सहित न्यस्त प्रतिमा में शिव की भावना के फूलों से उसकी पूजा करे।६०

वस्त्रबद्धमुखायां वा स्थाल्यां पुष्पैर्बहिर्भवैः ।
चुल्ल्यां पश्चिमवक्त्रायां शुद्धायां वीक्षणादिभिः ॥६१
न्यस्ताहंकारबीजायां न्यस्तायां कुण्डदक्षिणे ।
धर्माधर्मशरीरायां जप्तायां मानुषात्मना ॥६२

---

१. ख. °प्रदेशा° ।२ ख. °जैर्हूं रूफ° । ३ ख. °प्तसंदर्भ प° । ४ ख. °त्ते मात्रो यक्र° ।

अथवा स्थाली के मुख को वस्त्र से आच्छादित करके उसी पर विभिन्न प्रकार के फूलों से शिव की पूजा करे। इसके बाद कुण्ड के दक्षिण में रखी हुई उस चूल्ही पर स्थाली को रख दे, जिसका मुख पश्चिम दिशा की ओर हो, जिसको देखकर भलीभाँति शुद्ध कर लिया गया हो, जिस पर अहंकार बीज का न्यास किया गया हो, जो धर्म और अधर्म रूपी शरीर से युक्त और मानवात्मा के रूप में अभिमन्त्रित की गयी हो।६१-६२।

स्थालीमारोपयेदस्त्रजप्तां[1] गव्याम्बुमार्जिताम्।
गव्यं पयोऽस्त्रसशुद्धं प्रासादशतमन्त्रितम्॥६३
तण्डुलान्श्यामकादीनां निक्षिपेत्तत्र तद्यथा।
एकशिष्यविधानाय तेषां प्रसृतिपञ्चकम्॥६४

उसको अस्त्र से अभिमन्त्रित करके दूध और जल से उसका मार्जन कर दे। उसमें अस्त्र-मन्त्र से शुद्ध किया हुआ और सौ प्रासादमन्त्रों से अभिमन्त्रित किये हुए गाय के दूध को छोड़कर उसमें तण्डुल या साँवा छोड़ दे। एक शिष्य के निमित्त पाँच पसर चावल या साँवा छोड़ना चाहिए।६३-६४।

प्रसृतिं प्रसृतिं पश्चाद्वर्धयेद्द्वयादिषु क्रमात्।
कुर्याच्चानलमन्त्रेण[2] विधानं कवचाणुना॥६५

दो शिष्यों के लिए एक पसर और बढ़ा दे। इसी प्रकार क्रमशः एक-एक शिष्य के निमित्त एक एक पसर बढ़ाते जाना चाहिए। अग्नि मन्त्र से आग जलावे तथा कवच मन्त्र से ढक देना चाहिए॥६५

शिवाग्नौ मूलमन्त्रेण पूर्वास्यश्चरुकं यजेत्।
सुस्विन्ने तत्र तच्चुल्ल्यां स्रुवमापूर्य सर्पिषा॥६६
स्वाहान्तैः संहितामन्त्रैर्दत्त्वा तप्ताभिधारणम्।
संस्थाप्य मण्डले स्थालीं सद्दर्भेऽस्त्राणुनाकृते॥६७
प्रणवेन पिधायास्यां तद्देहलेपनं हृदा।
सुशीतलो भवत्येवं प्राप्य शीताभिधारणम्॥६८

शिवाग्नि पर मूलमन्त्र का उच्चारण करके स्वयं पूर्वाभिमुख होकर चरु का पाचन करे। जब उस चूल्हे पर ही चरु भलीभाँति पक जाय, तब घी से स्रुवा को भरकर स्वाहान्त संहितामन्त्रों से तप्ताभिघारण दे। अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके बनाए हुए मण्डल में कुशा बिछाकर, उस पर स्थाली को चूल्हे

---

१ ख. °जप्तग°। २ ख. कुर्वश्चालनमस्त्रेण।

मे उतार कर रख दे। उसे प्रणव मन्त्र से ढककर हृद्-मन्त्र से स्थाली में देह-लेपन करे। इस प्रकार शीताभिधारण करने पर चरु शीतल हो जाता है।६६-६८।

विदध्यात्संहितामन्त्रै: शिष्यं प्रति सकृत्सकृत्।
धर्माद्यासनके हुत्वा[1] कुण्डमण्डलपश्चिमे[2] ॥६९
संपातं च स्रुचा हुत्वा शुद्धिं संहितयाऽऽचरेत्।
चरुकं सकृदालभ्य तयैव वषडन्तया ॥७०
धेनुमुद्रामृतीभूतं स्थण्डिले शान्तिकं नयेत्।
साज्यभागं स्वशिष्याणां भागो देवाय वह्नये ॥७१
कुर्यात्तु लोकपालादे: समध्वाज्यमिदं त्रयम्।
नमोऽन्तेन हृदा दद्यात्तेनैवाऽऽचमनीयकम्[3] ॥७२

संहितामन्त्रों से प्रत्येक शिष्य के लिए एक-एक बार हवन करे। धर्म आदि के आसन के समीप, कुण्डमण्डल के पश्चिम भाग में हवन करके स्रुक् से संपात आहुति दे। तदनन्तर संहिता से शुद्धि करे। एक बार चरु का आलम्भन करके वषडन्त संहिता से वेदी पर धेनु मुद्रा से अमृतीभूत शान्ति-भाग को ले जाय। शिष्यों, अग्नि और लोकपाल आदि को मधु, घी आदि से युक्त तीन भाग बनाकर नम: पद से युक्त हृद्-मन्त्र से अर्पित करके उसी मन्त्र से आचमन भी कराये।६९-७२।

साज्यं[4] मन्त्रशतं हुत्वा दद्यात्पूर्णां यथाविधि।
मण्डलं कुण्डत: पूर्वे मध्ये वा शंभुकुम्भयो: ॥७३
रुद्रमातृगणादीनां निर्वर्त्यान्तर्बलिं हृदा।
शिवमध्येऽथ[5] लब्धाज्ञो विधायैकत्वभावनाम् ॥७४
सर्वज्ञतादियुक्तोऽहं समन्ताच्चोपरिस्थित:।
ममांशो योजनास्थानमधिष्ठाताऽहमध्वरे ॥७५

सौ मन्त्रों से आज्य की आहुतियाँ देकर यथाविधि पूर्णाहुति देनी चाहिए। कुण्ड के पूर्व में या शम्भु या कुम्भ के मध्य में मण्डल बनाकर रुद्र और मातृ-गण आदि को हृद्-मन्त्र से अन्तर्बलि दे। शिव से आज्ञा प्राप्तकर शिव और अपने में एकत्व की भावना करके "मैं सर्वज्ञाता आदि गुणों से युक्त हूँ, चारों

---

१ ख. घृत्वा। २ ख °ण्डपप°। ३ ख. °नीत्रयम्। ४ ख. सायं। ५ घ. °ध्येऽप्यल°।

ओर, ऊपर मैं अनेक रूपों में स्थित हूँ, यज्ञ में योजना-स्थान और अधिष्ठाता मैं ही हूँ" ।७३-७५ ।

शिवोऽहमित्यहंकारी निष्क्रमेद्यागमण्डपात् ।
न्यस्तपूर्वाग्रसंदर्भे[1] शस्त्राणकृतमण्डले ॥७६
प्रणवासनके शिष्यं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकम् ।७६½

"मैं शिव हूँ"—इस प्रकार अहंकार की भावना करके यज्ञ-मण्डप से बाहर निकल जाय । अस्त्र-मन्त्र के द्वारा विरचित मण्डल में जिसके अग्रभाग की रचना पूर्व दिशा की ओर हुई हो, प्रणवासन पर उस शिष्य को बिठलाए, जो स्नान से पवित्र होकर श्वेत उत्तरीय वस्त्र धारण किए हुए हो । ७६-७६½।

स्नातं चोदङ्मुखं मुक्त्यै पूर्ववक्त्रं तु भुक्तये ॥७७
ऊर्ध्वकायं समारोप्य पूर्वास्यं प्रविलोकयेत् ।
चरणादिशिखां यावन्मुक्तौ भुक्तौ विलोमतः ॥७८
चक्षुषा सप्रसादेन शैवं धाम विवृण्वता ।७८½

मुक्ति की इच्छा वाले शिष्य को उत्तराभिमुख और भुक्ति की कामना वाले को पूर्वाभिमुख बैठाये । वह पूर्वाभिमुख होकर सीधे बैठ जाय । गुरु, शिष्य को यदि मुक्ति प्राप्ति के लिए दीक्षा दे रहा हो तो अपने नेत्रों को प्रसन्न मुद्रा से शैव-तेज को उसके अङ्गों पर फैलाता हुआ चरण से लेकर शिखा तक देखे । यह क्रम मुक्ति के लिए है । यदि शिष्य को लौकिक भोग की इच्छा हो तो विलोम रूप से (शिर से चरण तक) देखे ।७७-७८½।

अस्त्रोदकेन संप्रोक्ष्य मन्त्राम्बुस्नानसिद्धये ।७९
भस्मस्नानाय विघ्नानां शान्तये पापभित्तये ।
सृष्टिसंहारयोगेन (ण) ताडयेदस्त्रभस्मना ॥८०

इसके अनन्तर अस्त्र जल से सिञ्चन करके, मन्त्र जल से स्नान कराने के लिए, भस्म स्नान के लिए, विघ्नशान्ति और पापनाश के लिए सृष्टि-संहार योग से अस्त्र भस्म से ताडन करे ।७९-८० ।

पुनरस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य सकलीकरणाय तम् ।
नाभेरूर्ध्वं कुशाग्रेण मार्जनीयास्त्रमुच्चरन् ।८१

---

१ घ. ॰ग्रसन्धर्मे ।

पुनः शिष्य के सकलीकरण के लिए उसके ऊपर अस्त्र-जल छिड़के । अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके नाभि से ऊपर कुशाग्र से मार्जन करे ।८१

त्रिधाऽऽलभेत तन्मूलैरघमर्षाय नाभ्यधः ।
द्वैविध्याय च पाशानामालभेत शराणुना ।।८२

अघमर्षण के लिए नाभि के नीचे कुशमूल से तीन बार स्पर्श करे, पाशों के छेदन के लिए शरमन्त्र से आलम्भन करे ।८२

तच्छरीरे शिवं साङ्गं सासनं विन्यसेत्ततः ।
पुष्पादिपूजितस्यास्य नेत्रे नेत्रेण वा हृदा ।।८३
वद्ध्वा मन्त्रितवस्त्रेण सितेन सदशेन च ।
प्रदक्षिणक्रमादेनं प्रवेश्य शिवदक्षिणम् ।।८४
सवस्त्रमासनं दद्याद्यथावर्णं निवेदयेत् ।।८४½

तत्पश्चात् शिव के शरीर पर अङ्गों और आसन सहित शिव का न्यास करे। पुष्प आदि से पूजन करके नेत्र (मन्त्र) से नेत्र का न्यास करे अथवा हृद्-मन्त्र से अभिमन्त्रित श्वेतवस्त्र से अञ्चल बाँधकर शिव के दक्षिण भाग में प्रदक्षिणा विधि से ले जाकर, रुचि के अनुसार वस्त्र और आसन दे ।८३-८४½।

संहारमुद्रयाऽऽत्मानं मूर्त्या तस्य हृदम्बुजे ।।८५
निरुध्य शोधिते काये न्यासं कृत्वा तमर्चयेत् ।
पूर्वाननस्य शिष्यस्य मूलमन्त्रेण मस्तके ।८६
शिवहस्तं प्रदातव्यं रुद्रेशपददायकम् [?] ।
शिवसेवाग्रहोपायं दत्तहस्तं शिवाणुना ।.८७
शिवे प्रक्षेपयेत्पुष्पमपनीयार्चकान्तरम् ।
तत्पात्रस्थानमन्त्राढ्यं शिवदेवगणानुगम् ।।८८
विप्रादीनां क्रमान्नाम कुर्याद्वा स्वेच्छया गुरुः ।।८८½

प्रदक्षिणा-विधि से ले जाकर, रुचि के अनुसार वस्त्र और आसन दे। संहार-मुद्रा से अपने को मूर्ति रूप में उसके हृदय-कमल में निरुद्ध करके, उसके शुद्ध किए हुए शरीर पर शिव का न्यास करके उसकी पूजा करे । पूर्वाभिमुख स्थित शिष्य के मस्तक पर मूल मन्त्र से रुद्र और ईश के पद को प्रदान करने

वाले शिव हस्त को रखे। शिव मन्त्र से शिवभक्ति को प्रदान करने का साधन शिव हस्त को देकर, शिव के समीप से अन्य चढ़ाई हुई पूजन सामग्री को हटा कर उन पर पुष्प चढ़ाए। उस समय शिष्य को शिवमन्त्रों का पाठ करना चाहिए। शिष्य को शिव के गणों का अनुगमन करने वाले ब्राह्मण आदि का नाम रखना चाहिए अथवा गुरु अपने इच्छा से शिष्य का नामकरण करे।८५-८८½।

प्रणतिं कुम्भवर्धन्योः कारयित्वाऽनलान्तिके ।८९
सदक्षिणासने तद्वत्सौम्यास्यमुपवेशयेत् ।
शिष्यदेहविनिष्क्रान्तां सुषुम्नामिव चिन्तयेत् ॥९०

कुम्भ और वर्धनी का नमस्कार कराकर शिष्य को अग्नि के दाहिने पार्श्व में शान्त मुख-मुद्रा में बैठाए। शिष्य के शरीर से निकलती हुई सुषुम्ना अपने शरीर में विलीन हो रही है, ऐसी भावना करे।८९-९०।

निजविग्रहलीनां च दर्भमूलेन मन्त्रितम् ।
दर्भाग्रं दक्षिणे तस्य विधाय करपल्लवे ॥९१
तन्मूलमात्मजङ्घायामग्रं चेति शिखिध्वज[1] ।
शिष्यस्य हृदयं गत्वा रेचकेन शिवाणुना ॥९२
पूरकेण समागत्य स्वकीयं हृदयान्तरम् ।
शिवाग्निना पुनः कृत्वा नाडीसंधानमीदृशम् ॥९३

कुश-मूल से अभिमन्त्रित कुशाग्र को उसके दक्षिण कर-पल्लवों में रखकर उसके मूल और अग्रभाग को अपनी जङ्घा पर रखे। शिव मन्त्र और रेचक के द्वारा शिष्य के हृदय में भावना से जाकर पुनः पूरक प्राणायाम से अपने हृदय आ जाए। पुनः शिवाग्नि से इसी प्रकार नाडी-सन्धान करे।९१-९३।

हृदा तत्संनिधानार्थं जुहुयादाहुतित्रयम् ।
शिवहस्तस्थिरत्वार्थं शतं मूलेन होमयेत् ॥९४
इत्थं समयदीक्षायां भवेद्योग्यो भवार्चने ॥९५

उसकी समीपता की प्राप्ति के लिए हृद्-मन्त्र से तीन बार आहुतियाँ दे। शिवहस्त की स्थिरता के लिए मूल से सौ बार आहुतियाँ देनी चाहिए। इस प्रकार समय-दीक्षा ग्रहण कर लेने पर मनुष्य शिवार्चन का अधिकारी हो जाता है।९४-९५।

इत्यादि महापुराण आग्नेये समयदीक्षाविधिकथनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः। ८१

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

संस्कारदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्ये संस्कारदीक्षाया विधानं शृणु षण्मुख ।
आवाहयेन्महेशस्य वह्निस्थस्य शिवौ[1] हृदि ॥१

महेश्वर बोले—हे षडानन ! अब मैं संस्कार-दीक्षा का विधान बतला रहा हूँ, उसे सुनो । पहले हृदय में अग्निस्थ शिवा-शिवमय महेश का आवाहन करे ।१

संश्लिष्टौ तौ समभ्यर्च्य संतर्प्य हृदयाणुना[2] ।
तयोः संनिधये दद्यात्तेनैवाऽऽहुतिपञ्चकम् ॥२

एकीकृत उन दोनों की पूजा करके हृदय-मन्त्र से तर्पण करे । उनका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए उसी मन्त्र से पाँच आहुतियाँ दे ।२

कुसुमेनास्त्रलिप्तेन ताडयेत्तं हृदा शिशुम् ।
प्रस्फुरत्तारकाकारं चैतन्यं तत्र भावयेत् ॥

अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित पुष्प से उस शिशु का ताडन हृद्मन्त्र का उच्चारण करते हुए करे । उसमें तेज विकीर्ण करने वाले, तारा के आकार की चैतन्य-ज्योति की भावना करे ।३

प्रविश्य तत्र[3] हुंकारमुक्तं रेचकयोगतः ।
संहारिण्या तदाहृष्य[4] पूरकेण हृदि न्यसेत् ॥४
ततो वागीश्वरीं योनौ मुद्रयोद्भवसंज्ञया ।
हृत्संपुटितमन्त्रेण[5] रेचकेन विनिक्षिपेत् ॥५
ॐ हां हां[6] हामात्मने नमः ॥६

जाज्वल्यमाने निर्धूमे जुहुयादिष्टसिद्धये ।
अप्रवृद्धे[7] सधूमे तु होमो वह्नौ न सिद्ध्यति ॥७

---

१ घ. शिरो । २ ग. °चात्मना । ३ ख. °त्र हूरू का° । ४ घ. °दाकृष्य । ५ क. ङ. च. °पुटात्मम° ख. °पुटासमुद्रेण । ६ ४ क. ङ. च. हं । ७ क. ङ. च. अप्रबुद्धे ।

उस ज्योति में प्रवेश करके रेचक योग से हुंकार का उच्चारण कर (संहारिणी) मुद्रा के द्वारा उसको पूरक योग से आकृष्ट कर हृदय में स्थापित करे। तदनन्तर वागीश्वरी योनि में उद्भव नामक मुद्रा के द्वारा हृद् से सम्पुटित मन्त्र से युक्त रेचक से वागीश्वरी को निक्षिप्त करे। निक्षेप मन्त्र यह है—"ॐ हां-हां हामात्मने नमः"। इष्ट-सिद्धि के लिए धूमरहित प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिए, भली-भाँति न जलने वाली धूमयुक्त अग्नि में हवन करने से इष्ट-सिद्धि नहीं होती।४-७।

स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः सुगन्धिः शस्यतेऽनलः।
विपरीतः स्फुलिङ्गी च भूमिस्पृङ्न[1] प्रशस्यते॥८
इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्हुत्वा शिष्यस्य कल्मषम्।
पापभक्षणहोमेन दहेद्वातं[2] भवात्मना॥९

स्निग्ध, दक्षिणावर्त लपटों से युक्त और सुगन्धित अग्नि हवन के लिए प्रशस्त मानी गई है। विपरीत क्रम से जलने वाली, जिसमें से चिनगारियाँ निकल रहीं हों और जिसकी लपटें भूमि का ही स्पर्श करती हों—ऐसी अग्नि हवन के लिए प्रशस्त नहीं मानी गई है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त अग्नि में पाप-भक्षण हवन करके शिष्य के कल्मषों को जला डाले, शिव की भावना से भावित होकर वात (दोष) को भी दूर करे।८-९।

द्विजत्वापादनार्थाय तथा रुद्रांशभावने।
आहारबीजसंशुद्धौ गर्भाधानाय संस्थितौ॥१०
सीमन्ते जन्मतो नामकरणाय च होमयेत्।
शतानि पञ्चमूलेन वौषडादिदशांशतः॥११

द्विजत्व की प्राप्ति के लिए, रुद्ररूप में उसको भावित करने के लिए, आहार-बीज की शुद्धि के लिए, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, जन्म और नामकरण आदि संस्कारों के निमित्त एक सौ पाँच बार मूलमन्त्र से वौषट् जिसके अन्त में आये, उस मन्त्र से दशांश हवन करे।१०-११।

शिथिलीभूतबन्धस्य[3] शक्तावुत्कर्षणं च यत्।
आत्मनो रुद्रपुत्रत्वे गर्भाधानं तदुच्यते॥१२

शिथिलीभूत वन्ध को शक्ति से खींचकर ले जाना और अपने आप को रुद्र के अंश में समझना 'गर्भाधान' कहलाता है।१२

---

१ घ. °भिस्पर्शः प्र°। २ क. ङ. च. °तं नवा°। ३ क. ङ. च. शिखिनां भू°।

स्वातन्त्र्यात्मगुणव्यक्तिरिह पुंसवनं मतम् ।
मायात्मनोर्विवेकेन ज्ञानं सीमन्तवर्धनम् ॥१३
शिवादितत्त्वशुद्धेस्तु[1] स्वीकारो जननं मतम् ।
बोधनं यच्छिवत्वेन शिवत्वार्हस्य नो मतम् ॥१४

स्वतन्त्रतापूर्वक आत्मगुणों की अभिव्यक्ति 'पुंसवन' है, माया और आत्मा के विवेक से युक्त ज्ञान 'सीमन्तवर्धन' कहा जाता है। शिव आदि तत्त्व-शुद्धि को स्वीकार करना 'जनन' है। शिवत्व के योग्य आत्मा में शिवत्व की प्रतीति या बोध ही सच्चा ज्ञान माना गया है।१३-१४।

संहारमुद्रयाऽऽत्मानं स्फुरद्वह्निकणोपमम् ।
विदधीत समादाय निजे हृदयपंकजे ॥१५
ततः कुम्भकयोगेन मूलमन्त्रमुदीरयेत् ।
कुर्यात्समरसीभावं[2] तदा च शिवयोर्हृदि ॥१६

अपने हृदय-कमल में संहारमुद्रा के द्वारा तेज बिखेरने वाले वह्निकण के समान आत्मतेज को खींचकर स्थापित करे। तदनन्तर कुम्भक योग से मूल-मन्त्र का उच्चारण करे और हृदय में उभय शिव का समरसीभाव करे।१५-१६।

ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमाद्रेचकयोगतः[3] ।
नीत्वा शिवान्तमात्मानमादायोद्भवमुद्रया ॥१७
हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विधानवित् ।
शिष्यस्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां विनिक्षिपेत् ॥१८

रेचक प्राणायाम के द्वारा आदि कारण ब्रह्मा को क्रमशः छोड़ते हुए उद्-भव मुद्रा के द्वारा आत्मा को शिवतत्त्व के समीप ले जाकर विधानज्ञ योगी हृद्-सम्पुटित मन्त्र से रेचक प्राणायाम करके उस शिव-तत्त्व को शिष्य के हृदय-कमल की कर्णिका में स्थापित कर दे।१७-१८।

पूजां शिवस्य वह्नेश्च गुरुः कुर्यात्तदोचिताम् ।
प्रणतिं चाऽऽत्मने शिष्यं समयाञ्श्रावयेत्तथा[4] ॥१९

---

१ क. ङ. च. °त्वसिद्धस्तु। २ घ.° मवशीभा° । ३ घ. °रणात्या° ।
४ ख. °येद्यथा।

देवं[1] न निन्देच्छस्त्राणि[2] निर्माल्यादि न लङ्घयेत् ।
शिवाग्निगुरुपूजा च कर्तव्या जीवितावधि ॥ २०
बालबालिशवृद्धस्त्रीभोगभुग्व्याधितात्मनाम् ।
यथाशक्ति ददीतार्थं[3] समर्थस्य समग्रकान् ॥२१

इस प्रकार शिष्य के हृदय-कमल में शिवतत्त्व का आधान करने के बाद गुरु उचित रीति से शिव और अग्नि की पूजा करे और प्रणाम करके अपने शिष्य से प्रतिज्ञाएँ कराये कि वह देव और शास्त्र की निन्दा नहीं करेगा, जब तक प्राण रहेंगे शिव, अग्नि और यथाशक्ति गुरु की पूजा करता रहेगा। बालक, प्रमादी, वृद्ध, स्त्री, कर्मभोग करने वाले और रोगी की यथा-शक्ति धन से सहायता करेगा। १६-२१।

व्रताङ्गानि[4] जटाभस्मदण्डकौपीनसंयमान् ।
ईशानाद्यैर्हृदाद्यैर्वा परिजप्य यथाक्रमात् ॥ २२
स्वाहान्तसंहितामन्त्रैः पात्रेष्वारोप्य पूर्ववत् ।
संपाताभिहुतं[5] हुत्वा स्थण्डिलेशाय दर्शयेत् ॥ २३

इसके अनन्तर गुरु जटा, भस्म, दण्ड, कौपीन आदि व्रत की सामग्रियों को क्रमशः ईशान या हृद् आदि मन्त्रों का जप करके अभिमन्त्रित करे और स्वाहान्त संहिता-मन्त्रों का पाठ करके पात्रों में रखकर, संपात आहुति दे और वेदी के स्वामी शिव को दिखा दे।२२-२३।

रक्षणाय घटाधस्तादारोप्य क्षणमात्रकम् ।
शिवादाज्ञां समादाय ददीत व्रतिने गुरुः ॥ २४
एवं समयदीक्षायां विशिष्टायां विशेषतः ।
वह्निहोमागमज्ञानयोग्यः संजायते शिशुः[6] ॥ २५

रक्षा के निमित्त उसे क्षण भर कलश के नीचे रख दे और पुनः शिव की आज्ञा से वहाँ से उठाकर व्रती शिष्य को दे दे। इस प्रकार विशिष्ट रूप से समय-दीक्षा करने से शिशु शिष्य हवन-कर्म और शास्त्र-ज्ञान का विशेष रूप से अधिकारी हो जाता है।२४-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये संस्कारदीक्षाविधिकथनं नाम
द्व्यशीतितमोऽध्यायः।८२

---

१ च. देवान्न नि॰ । २ क. ङ. च. ॰स्त्रादि नि॰ । ३ क. ङ. च. ॰तान्नं ॰स॰ ।
४ ख. घ. भूताङ्गानि । ५ घ. ॰पादितद्रुतं । ६ ख. शुचिः ।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच—

अथ निर्वाणदीक्षायां कुर्यान्मूलादिदीपनम्[1] ।
पाशबन्धनशक्त्यर्थं ताडनादिकृतेन[2] वा ॥१
एकैकया तदाहुत्या[3] प्रत्येकं तत्त्रयेण वा ।
बीजगर्भशिखाद्यं[4] तु हूंफडन्तध्रुवादिना ॥ २

भगवान् शिव बोले—इसके पश्चात् निर्वाण दीक्षा में पाश-बन्धन शक्ति प्राप्त करने के लिए मूलमन्त्र आदि का दीपन करे। ताडन आदि के द्वारा, एक-एक आहुति से या प्रत्येक को तीन-तीन आहुतियों से, बीजगर्भ शिखार्ध से अथवा 'हूं फट्' से अन्त होने वाले मन्त्र से दीपन करना चाहिए ।१-२।

ॐ[5] ह्लूं ह्लौं ह्लौं ह्लूं फडिति मूलमन्त्रस्य दीपनम् ।
ॐ[6] ह्लूं ह्लौं ह्लौं ह्लूं फडिति हृदय एवं शिरोमुखे ॥ ३

"ॐ ह्लूं ह्लौं ह्लौं ह्लूं फट्" इस मन्त्र से मूल मन्त्र का दीपन करे, "ॐ ह्लूं ह्लौं ह्लौं ह्लूं फट्" इस मन्त्र से हृदय, शिर और मुख पर न्यास करे ।३

प्रत्येकं दीपनं कुर्यात्सर्वस्मिन्क्रूरकर्मणि[7] ।
शान्तिके पौष्टिके चास्य वषडन्तादिनाऽणुना[8] ॥४

सभी प्रकार के अभिचार कर्म में प्रत्येक का दीपन करना चाहिए। शान्ति और पौष्टिक कर्मों में 'वषट्' से अन्त होने वाले मन्त्र से दीपन करना चाहिए ।४

वषड्वौषट्समोपेतैः सर्वकाम्योपरि स्थितैः ।
हवनं[9] संवरैः कुर्यात्सर्वत्राऽऽप्यायनादिषु ॥५

'वषट्' और 'वौषट्' से युक्त तथा सम्पूर्ण काम्य-कर्मों के ऊपर स्थित शम्बर-मन्त्रों द्वारा आप्यायन आदि सभी कर्मों में हवन करना चाहिए । ५

---

१ ख. °पकम् । २ क. ङ. च. °कृतेऽपि वा । ३ क. ख. ङ. च. हुत्वा प्रा° । ४ क. ख. ङ. च. °खाद्यं द्वं हूं° । ५ ङ. च. ॐ हूं हौं हूं हूं फ° । ६ क. ङ. च. ॐ हूं हूं हां हूं हूं फ° । ७ ख. °स्मिन्सुर° । ८ ख. °डन्तशिवाणु° ९ क. ङ. च. हिरण्यं ।

ततः स्वसव्यभागस्थं मण्डले शुद्धविग्रहम्[1] ।
शिष्यं संपूज्य[2] तत्सूत्रं सुषुम्नेति विभावितम् ।। ६
मूलेन तच्छिखाबन्धं पादाङ्गुष्ठान्तमानयेत् ।
संहारेण मुमुक्षोस्तु बध्नीयाच्छिष्यकायके ।।७

तदनन्तर मण्डल में अपनी दाहिनी ओर बैठे हुए शुद्ध शरीर वाले शिष्य की पूजा करके उस सूत्र को सुषुम्ना से भावित कर मूल-मन्त्र से उसके शिखा-बन्ध को पैर के अंगूठे तक ले जाना चाहिए। संहार-मुद्रा के द्वारा मुक्ति चाहने वाले शिष्य के शरीर को बाँध दे। ६-७।

पुंसस्तु दक्षिणे भागे वामे नार्या नियोजयेत् ।
शक्तिं च शक्तिमन्त्रेण पूजितां तस्य मस्तके ।। ८
संहारमुद्रयाऽऽदाय सूत्रं[3] तेनैव योजयेत् ।
नाडीं त्वादाय मूलेन सूत्रे न्यस्य हृदार्चयेत् ।। ९

पुरुष के दाहिने भाग में और स्त्री के वाम भाग में सूत्र-बन्धन करना चाहिए। उसके मस्तक पर शक्तिमन्त्र से शक्ति की पूजा करके संहारमुद्रा के द्वारा सूत्र को बांधना चाहिए। मूल-मन्त्र से नाडी का न्यास करके हृद्मन्त्र से उसकी पूजा करे। ८-९।

अवगुण्ठ्य तु रुद्रेण हृदयेनाऽऽहुतित्रयम् ।
प्रदद्यात्संनिधानार्थं शक्तावप्येवमेवहि ।।१०

रुद्र-मन्त्र से अवगुण्ठन करके हृदय से तीन आहुतियाँ दे। शक्ति में भी इसी प्रकार सन्निधान के लिए तीन आहुतियाँ दे। १०

([4]ॐ हां पदाध्वने[5] नमः[6] ।। ११
ॐ हां वर्णाध्वने[7] नमो[8] हां भवाध्वने नमः ।
ॐ हां कलाध्वने[9] नमः ([10]शोध्याध्वानं हि सूत्रके ।।१२

---

१ ख. मण्डलैः । २ ख. °ज्य सत्सू° । ३ ख. सूत्रे । ४ ॐ हां......नमः घ. पुस्तके नस्ति । ५ क. ङ. च. °दात्मने । ६ क. ख. ङ. च. °मः । हां । ७क ङ. च.° र्णात्मने । ८ क. ङ. च. हां भुवनात्मने । ९ क. ङ. च. °लात्मने । १० शोध्याध्वानं......प्रविश्य च सम्पुटितः क. ङ. च. पुस्तकेषु ।

न्यस्यास्त्रवारिणा शिष्यं प्रोक्ष्यास्त्रमन्त्रितेन च।
पुष्पेण हृदि संताड्य शिष्यदेहे प्रविश्य च) ॥१३
गुरुश्च तत्र[1] हूंकारयुक्तं[2] रेचकयोगतः।
चैतन्यं हंसबीजस्थं [3]विश्लिष्येदायुधाणुना[4] ॥ १४

इन आहुतियों के मन्त्र निम्न हैं—'ॐ हां तत्त्वात्मने नमः' 'ॐ हां पदाध्वने नमः' 'ॐ हां वर्णाध्वने नमः', 'ॐ हां मन्त्राध्वने नमः', 'ॐ हां भुवनाध्वने नमः', 'ॐ कलाध्वने नमः' ।' सूत्र पर शोध्याध्वा का न्यास करके अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से शिष्य के शरीर पर जल छिड़क कर अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित पुष्प से हृदय में ताडन करे तथा गुरु को उसके हृदय में प्रवेश करना चाहिए और वहाँ पर रेचक योग से हुंकार युक्त, हंस बीजस्थ चैतन्य को आयुध मन्त्र से वियुक्त करे। ११-१४।

ॐ हौं हूं[5] फट् ॥ १५
आच्छिद्य शक्तिसूत्रेण[6] हां हं स्वाहेति चाणुना।
संहारमुद्रया सूत्रे नाडीभूते नियोजयेत् ॥१६
ॐ हां हं हामात्मने नमः[7] ।१७
व्यापकं भावयेदेनं तनुत्रेणावगुण्ठयेत्।
आहुतित्रितयं दद्याद्धृदा संनिधिहेतवे ॥१८

'ॐ हौं हूं फट्' ये आयुध मन्त्र हैं। शक्ति-सूत्र से 'हां हं स्वाहा'—मन्त्र से आच्छादन करके संहार मुद्रा से नाडी रूप सूत्र में उसको नियोजित करे। 'ॐ हां हं हामात्मने नमः'—मन्त्र से व्यापक रूप की भावना करे और कवच मन्त्र से उसे अवगुण्ठित कर दे। समीप लाने के लिए हृद्-मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे। १५-१८।

विद्यादेहं च विन्यस्य शान्त्यतीतावलोकनम्।
तस्यामितरतत्त्वाद्यं[8] मन्त्रभूतं विचिन्तयेत्[9] ॥१९
ॐ हां हौं शान्त्यतीतकलापाशाय।
नम इत्यनेनावलोकयेत् ॥२०

---

१ क. ङ.च. °त्र हुंका°। ख. °त्र ह्रूं का°। २ क. ख. ङ. च. °रमुक्तरे°। ३ घ. °धात्मना। ४ ख °ना। ह्रौं ह्रौं फ°। ५ क. ङ. च. हां। ६ ख. हां। ७ ख. °मः। ॐ हौं हं हुम्। आ°। ८ क. ख. ङ. च. °त्वाद्यम°। ९ क. ङ. च. °त्। ऐं हौं।

विद्यादेह का विन्यास करके शान्त्यतीता कला का अवलोकन करे। उसमें अन्य तत्त्वों के आद्य मन्त्र-भूत का चिन्तन करे। 'ॐ हां हौं शान्त्यतीतकला-पाशाय नमः'—मन्त्र से अवलोकन करे।१९-२०।

द्वे तत्त्वे मन्त्रमप्येकं पदं वर्णा (र्णां) श्च षोडश।
तथाऽष्टौ भुवनान्यस्यां बीजनाडीकथद्वयम्[1] ॥२१
विषयं च गुणं चैकं कारणं च सदाशिवम्[2]।
सितायां शान्त्यतीयामन्तर्भाव्यं प्रपीडयेत् ॥२२

दो तत्त्वों, एक मन्त्र, पद, सोलह वर्ण, आठ भुवन, बीजनाडी, कथ (कर) द्वय, विषय, गुण, एककारण सदाशिव को श्वेत शान्त्यतीत कला में अन्तर्भाव करके प्रपीडन करे।२१-२२।

ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं[3] फट् ॥२३
संहारमुद्रयाऽऽदाय विदध्यात्सूत्रमस्तके।
पूजयेदाहुतीस्तिस्त्रो दद्यात्संनिधिहेतवे ॥२४

'ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय हूँ फट्'—मन्त्र से संहार मुद्रा के द्वारा सूत्र को लेकर उस पर गाँठ लगावे। उसकी पूजा करके सन्निधि के लिए तीन आहुतियाँ दे।२३-२४।

तत्त्वे द्वे अक्षरे द्वे च बीजनाडीकथद्वयम्[4]।
गुणौ मन्त्रौ तथाऽब्जस्थमेकं[5] कारणमीश्वरम् ॥२५
पदानि भानुसंख्यानि भुवनानि[6] च सप्त च।
एकं च विषयं[7] शान्तौ कृष्णायामच्युतं[8] स्मरेत् ॥

दो तत्त्व, दो अक्षर, बीजवाडी, दो कर, दो गुण, दो मन्त्र तथा पद्मस्थ एक कारणभूत ईश्वर का, द्वादशपदों, सत्रह भुवनों और एक विषय और अच्युत का कृष्णवर्ण की शान्तिकला में स्मरण करे।२५-२६।

ताडयित्वा समादाय मुखसूत्रे नियोजयेत्।
जुहुयान्निजबीजेन सांनिध्यायाऽऽहुतित्रयम् ॥२७

फिर उसका ताडन करके उसको उठा ले और उसे मुख-सूत्र में नियोजित करे। अपने ही बीज से सान्निध्य के लिए तीन आहुतियाँ दे।२७

---

१ ख. °करद्व°। २ क. ख. ङ. च. °म्। शिता°। ३ क. ङ. च. हुं। ख. हू्रु। ४. ख. °कखद्व°। ५ ख. °थाऽन्तस्थ°। ६ ख. घ. °नि दश स°। ७ क. ङ. च. मध्यतः। ८ क. ङ. च. कृष्टायां मध्यतः स्म°।

विद्यायां सप्ततत्त्वानि[१] पादानामेकविंशतिम् ।
षड्वर्णान्संचरं[२] चैकं लोकानां पञ्चविंशतिम् ॥२८
गुणानां त्रयमेकं च विषयं[३] रुद्रकारणम् ।
अन्दर्भाव्यातिरिक्तायां वीजनाडी[४]कथद्वयम्[५] ॥२९

विद्या में सात तत्त्वों, इक्कीस पदों, छः वर्णों, एक मन्त्र और पच्चीस लोकों, तीन गुणों, एक विषय और कारण रुद्र को अन्तर्भूत करके रक्तवर्ण की विद्याकला में बीजनाडी और दो करों का अन्तर्भाव करे ।२८-२९।

तान्यादाय विदध्याच्च पदं द्व्यधिकविंशतिम् ।
लोकानां च कलानां च षष्टिं गुणाचतुष्टयम् ।३०
मन्त्राणां त्रयमेकं च विषयं कारणं हरिम् ।
अन्तर्भाव्य प्रतिष्ठायां शुक्लायां ताडनादिकम् ॥३१
विधाय नाभिसूत्रस्थां संनिधायाऽऽहुतीर्यजेत्[६] ।

उन सबको लेकर बाईस पद का विधान करे, फिर लोकों, साठ कलाओं, चार गुणों, तीन मन्त्रों, एक विषय और कारण हरि का शुक्ला कला(प्रतिष्ठा) में अन्तर्भाव करके, नाभिसूत्रस्थान पर ताडन करके सन्निधि के लिए तीन आहुतियाँ दे ।३०-३१।

ह्रीं भुवनानां शत साग्रं[७] पदानामष्टविंशतिम्[८] ॥३२
बीजनाडीसमीरणां द्वयोरिन्द्रिययोरपि[९] ।
वर्णं तत्त्वं च विषयमेकैकं गुलपञ्चकम् ॥३३
हेतुं ब्रह्माण्डमन्तस्थं[१०] शम्बराणां चतुष्टयम् ।
वृनित्तौ पीतवर्णायामन्तर्भाव्य प्रताडयेत् ॥३४

(ह्रीं) सौ भुवनों, अट्ठाइस पदों, बीजनाडी, समीर, दोनों प्रकार की इन्द्रियों, एकवर्णतत्त्व, विषय, पाँच गुणों, एक हेतु, अन्तस्थ ब्रह्माण्ड और चार शम्बरों को पीतवर्ण की निवृत्ति कला में अन्तर्भूत करके प्रताडन करे ।३२-३४।

आदौं[११] य्रत्तत्त्वभागान्ते सूत्रे विन्यस्य पूजयेत् ।
जुहुयादाहुतीस्तिस्रः संनिधानाय पावके ॥३५

---

१ क. ङ. च. °नि पदा° । २ क. ङ. च. षडन्तात्सस्वर° । ३ च. °यं करणं हरिम् । ४ क. ङ. °करद्व° । ख. °कखद्व° । ५ घ. °म् । अश्वमादाय द° । ६ क. ङ. च. °त् । केवलानां । ७ ख. °ग्रं पादा° । ८ ङ °नामेक विं° । ९ ङ. °योरन्तरयो° । १० क. ङ. च. °न्तस्थमसुरा° । ११ क. ङ. च. आदायैतत्रिभा° ।

सर्वप्रथम तत्त्व भाग के अन्त में सूत्र का न्यास करके पूजन करे और सन्निधि के लिए अग्नि में तीन बार आहुतियाँ दे ।।३५

इत्यादाय कलासूत्रे योजयेच्छिष्यविग्रहात् ।
सवीजायां तु दीक्षायां समयाचारयागतः[1] ।।३६
देहारम्भकरक्षार्थं[2] मन्त्रसिद्धिफलादपि ।।३६½

इस प्रकार आहुति करने के पश्चात् शिष्य के शरीर से कला-सूत्र को बाँध दे। सवीजदीक्षा में समयाचार याग (पाश) से रक्षा के लिए मन्त्र-सिद्धि के फल देने वाले (कवच से) देहारम्भक करे।३६-३६½।

इष्टापूर्तादिधर्मार्थं[3] व्यतिरिक्तं प्रवन्धकम् ।।३७
चैतन्यवोधकं[4] सूक्ष्मं कलानामन्तरे न्यसेत् ।
अमुनैव क्रमेणाथ कुर्यात्तर्पणदीपने ।।३८
आहुतिभिः स्वमन्त्रेण तिसृभिः तिसृभिस्तथा ।।३९

इष्ट, आपूर्त आदि धर्म-कृत्यों में अतिरिक्त प्रबन्धक कर्म भी करना चाहिए। कलाओं के मध्य चैतन्यबोधक सूक्ष्म का स्मरण करना चाहिए। इसी क्रम से तर्पण और दीपन करे। तदन्तर अपने मन्त्रों से तीन-तीन आहुतियाँ दे।३७-३९।

ॐ हौं[5] शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहेत्यादि तर्पणम् ।
ॐ हां[6] हं हां[7] शान्त्यतीतकलापाशाय हूं[8]
फडित्यादिदीपनम् ।।४०
तत्सूत्रं व्याप्तिवोधाय[9] कलास्थानेषु पञ्चसु ।
संगृह्य कुंकुमाद्येन[10] तत्र साङ्गं शिवं यजेत्[11] ।।४१

"ॐ हौं शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहा" से तर्पण और "ॐ हाँ हं हाँ शान्त्यतीतकलापाशाय फट्" मन्त्र से दीपन करे। पहले के सूत्र को व्याप्ति-बोध के लिए पाँच कला स्थानों पर बाँधकर वहाँ कुङ्कुम आदि से साङ्ग-शिव की पूजा करे।४०-४१।

हूं फडन्तैः कलामन्त्रैर्भित्त्वा पाशाननुक्रमात् ।
नमोन्तैश्च प्रविश्यान्तः कुर्याद्ग्रहणबन्धने ।।४२

---

१ क. ङ. च. °रपाशतः । २ क. ङ. च. °कधर्मार्थं । ३ ख. °र्थं प्रतिबीजं प्र° । ४ क. ङ. च. °न्यरोचकं मृक्षंक° । ५ ख. हां । ६ क. ङ. च. हां हू हौं शा° । ७ ख. हौं । ८ ख. हः । ९ क. ङ. च. °प्तिरोवा° । १० घ. ङ. °माज्येन । ११ ख. °त् ।

ॐ हूं हां हौं हां हूं फट्शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बध्नामि चेत्यादि—
भिर्मन्त्रैः कलानां ग्रहणबन्धनादिप्रयोगः ।।४३
पाशादीनां च स्वीकारो ग्रहणं बन्धनं पुनः ।
पुरुषं प्रति निःशेषव्यापारप्रतिपत्तये[1] ।।४४

'हूँ' और 'फट्' जिनके अन्त में हो ऐसे कला-मन्त्रों से पाशों का क्रमशः भेदन करके, 'नमः' जिसके अन्त में हो ऐसे मन्त्र से अन्तःप्रवेश कर ग्रहण और बन्धन आदि का प्रयोग करे। "ॐ हूं हाँ हौं हाँ हूँ फट् शान्त्यतीतकलां गृह्णामि बघ्नामि च"—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा कलाओं के ग्रहण और बन्धन का प्रयोग करे। पाश आदि का स्वीकार, ग्रहण और बन्धन पुरुष को सम्पूर्ण व्यापारों में सिद्धि प्राप्त कराता है।४२-४४।

उपवेश्याथ तत्सूत्रं शिष्यस्कन्धे निवेशयेत् ।
विस्मृताघप्रमोषाय[2] शतं मूलेन होमयेत् ।।४५

इतनी क्रिया के अनन्तर शिष्य को समीप बैठाकर उस सूत्र को शिष्य के कन्धे पर रख दे। भूले और अनजान पापों के नाश के लिए मूल-मन्त्र से सौ आहुतियाँ देनी चाहिए।४५

शरावसंपुटे पुंसः स्त्रियाश्च प्रणितोदरे ।
हृदस्त्रसंपुटं सूत्रं[3] विधायाभ्यर्चयेद्धृदा ।।४६

पुरुष के लिए मिट्टी की तस्तरी के सम्पुट में, स्त्रियों के लिए प्रणीता (मिट्टी के पात्र-विशेष) में हृद् और अस्त्र मन्त्र से सम्पुटित सूत्र को रखकर हृद् मन्त्र से पूजन करे।४६

सूत्रं शिवेन साङ्गेन कृत्वा संपातशोधितम् ।
निदध्यात्कलशस्याधो रक्षां विज्ञापयेदिति ।।४७

साङ्गशिव मन्त्र से संपात के द्वारा सूत्र का संशोधन करके उसको कलश के नीचे रखकर रक्षा-मन्त्र से रक्षा के लिए निवेदन करे।४७

शिष्यं पुष्पं करे दत्त्वा सम्पूज्य[4] कलशादिकम् ।
प्रणमय्य बहिर्यायाद्यागमन्दिरमध्यतः ।।४८
मण्डलत्रितयं कृत्वा मुमुक्षूनुत्तराननान् ।
भुक्तये पूर्ववक्त्रांश्च शिष्यांस्तत्र निवेशयेत् ।।४९

शिष्य के हाथ में पुष्प देकर, कलश की पूजा करके यज्ञ-मण्डप से बाहर चला जाय। यज्ञ-मण्डप के बाहर तीन मण्डल बनाकर मुक्ति चाहने वालों को उत्तराभिमुख और सांसारिक सुख चाहने वाले शिष्यों को पूर्वाभिमुख—बैठाए।४८-४९।

---

१ क. ङ. च. °तिषेचनम् । ड.° । २ घ. विस्तृता°। ३ क. ङ.च. °त्रं निधा ।
४ च. संपूर्य । ५ घ. °च्चुल्लक° ।

प्रथमे पञ्चगव्यस्य प्राशयेच्चुलुकत्रयम्[1] ।
पाणिना कुशयुक्तेन अर्चितानन्तरान्तरम् ॥५०
चरुं ततस्तृतीये तु ग्रासत्रितयसंमितम् ।
अष्टग्रासप्रमाणं वा दशनस्पर्शवर्जितम् ॥५१

पहले मण्डल में बैठाकर उसको तीन चुल्लू पञ्चगव्य पिलाए । द्वितीय मण्डल में तीन ग्रास या आठ ग्रास चरु खिलाए । चरु खाते समय दाँत का स्पर्श न हो ।५०-५१।

पालाशपुटके मुक्तौ भुक्तौ पिप्पलपत्रके ।
हृदा सभोजनं दत्त्वा पूतैराचामयेज्जलैः ॥५२

मुक्ति की कामना करने वालों को पीपल के पत्ते पर, हृद् मन्त्र से भोजन परोसना चाहिए । भोजन के पश्चात् पवित्र जल से आचमन कराये ।५२

दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेच्छोभने शुभम् ।
न्यूनादिदोषमोषाय[2] मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ॥५३

हृद् मन्त्र से दन्तधावन करके उस शुभ दातून को अच्छे स्थान पर फेंक दे । न्यूनाधिक दोष को दूर करने के लिए मूल-मन्त्र से एक सौ आठ बार हवन करे ।५३

विधाय स्थण्डिलेशाय सर्वकर्मसमर्पणम् ।
पूजाविसर्जनं चास्य चण्डेशस्य च पूजनम् ॥५४

वेदी के अधिपति देवता को समस्त कर्म समर्पित करके पूजा-विसर्जन और वेदी के अधिपति देव की पूजा करे ।५४

निर्माल्यमपनीयाथ शेषमग्नौ यजेच्चरोः ।
कलशं लोकपालांश्च पूजयित्वा विसृज्य च ॥५५

निर्माल्य को हटाकर शेष चरु को अग्नि में डाल दे । कलश और लोक पालों की पूजा करके उनका विसर्जन करें ।५५

विसृजेद्गणमग्निं[3] च रक्षितं यदि वाह्यतः ।
बाह्यतो लोकपालानां दत्त्वा संक्षेपतो वलिम् ॥५६

गणेश और अग्नि का विसर्जन करे । यदि बाहर से अन्य देवों द्वारा रक्षित हों तो बाहर से लोकपालों को संक्षेप में बलि दे ।५६

---

१ क. ङ. च. °मोक्षाय ।२ क. ङ. च. °जेत्क्षरण° । ख. °जेद्गण° । ३ क. ङ च. °य श्रावये° । ख. °य स्थाप्य ।

भस्मना शुद्धतोयैर्वा स्नात्वा यागालयं विशेत् ।
गृहस्थान्दर्भशय्यायां पूर्वशीर्षान्सुरक्षितान् ॥५७
हृदा सद्भस्मशय्यायां यतीन्दक्षिणमस्तकान् ।५७½

भस्म से या शुद्धजल से स्नान कर यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करे। कुश के आसन पर गृहस्थों को पूर्वाभिमुख बैठाकर हृद् मन्त्र का उच्चारण करते हुए भस्म के उत्तम आसन पर सन्यासियों को दक्षिणाभिमुख बैठावे ।५७-५७½।

शिखाबद्धशिखानस्त्रसप्तमाणवकान्वितान् ॥५८
विज्ञाय[1] स्नापयेच्छिष्यांस्ततो यायात्पुनर्बहिः ॥५९
ॐ हिलि हिलि[2] शूलपाणये स्वाहा ॥६०

शिखा मन्त्र से शिखा बाँधे हुए सात बटुओं को भी वहाँ बैठाये, पुनः अस्त्र मन्त्र से उन शिष्यों को नहलाए, तत्पश्चात् यज्ञ-मन्दिर से बाहर जाय और "ॐ हिलि शूलपाणये स्वाहा"—मन्त्र का उच्चारण करे ।५८-६०।

पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य गृहीत्वा दन्तधावनम् ।
समाचम्य शिवं ध्यात्वा शय्यामास्थाय[2] पावनीम् ॥६१
दीक्षागतं[3] क्रियाकाण्डं संस्मरन्संविशेद्गुरुः ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तो विधिर्दीक्षाधिवासने ॥६२

पञ्चगव्य और चरु का स्वयं भक्षण करके दातून ले ले। आचमन करके शिव का ध्यान करके पवित्र शय्या पर सोने के लिए जाए। गुरु दीक्षा सम्बन्धी क्रिया-कलापों का स्मरण करता हुआ सो जाये। इस प्रकार यहाँ संक्षेप रूप में दीक्षाधिवासन की विधि बतायी गयी है ।६१-६२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायामधिवासनविधिकथनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।८३

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनम्

ईश्वर उवाच—

अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानादिको गुरुः ।
दध्यार्द्रमांसमद्यादेः प्रशस्ताऽभ्यवहारिता ॥१

---

१ घ. °लि त्रिशू° । २ ख. °मादाय । ३ घ. 'गतक्रि° ।

गजश्वारोहणं स्वप्ने शुभं शुक्लांशुकादिकम् ।
तैलाभ्यङ्गादिकं हीनं होमोऽघोरेण शान्तये ।।

महादेव बोले—गुरु को प्रातःकाल उठकर स्नान इत्यादि करना चाहिए। उसकी पूर्व की रात्रि में गुरु के द्वारा स्वप्न में दही, अदरक, कच्चा मांस और मद्यादि का भोजन देखना शुभ होता है। स्वप्न में हाथी अथवा घोड़े पर चढ़ना और शुक्ल वस्त्रादि का देखना भी शुभ माना गया है किन्तु शरीर के ऊपर तैलादि की मालिश करना अनिष्टकर होता है जिसकी शान्ति अघोर मन्त्र से यज्ञ करने से हो सकती है।१-२।

नित्यकर्मद्वयं कृत्वा प्रविश्य मखमण्डपम् ।
स्वाचान्तो[1] नित्यवत्कर्म कुर्यान्नैमित्तिके विधौ ।।३

गुरु को दोनों नित्य कर्म (सन्ध्या) करके यज्ञ-मण्डप में प्रवेश करना चाहिए। अच्छी तरह आचमन करके नैमित्तिक-कार्य नित्य-कर्म के समान करना चाहिए।३

ततः संशोध्य चाऽऽत्मानं शिवहस्तं[2] तथाऽऽत्मनि ।
विन्यस्य कुम्भगं प्रार्च्य इन्द्रादीनामनुक्रमात् ।।४
मण्डले स्थण्डिले वाऽपि प्रकुर्वीत शिवार्चनम् ।
तर्पणं पूजनं वह्नेः पूर्णान्तं मन्त्रतर्पणम् ।।५

अपनी आत्मा तथा शिवहस्त नामक हाथ के अङ्ग को पवित्र करके अपने अन्दर इन्द्र आदि दिक्पालों का न्यास करना चाहिए। शिव का अर्चन किसी मण्डल अथवा स्थण्डिल पर करना चाहिए और अग्नि का पूजन तथा मन्त्रों से तर्पण भी करना चाहिए।४-५।

दुःस्वप्नदोषमोषाय शस्त्रेणाष्टाधिकं शतम् ।
हुत्वा[3] हूंसंपुटेनैव विदध्यान्मन्त्रदीपनम् ।।६

उपर्युक्त दुःस्वप्नों से उत्पन्न दोषों से मुक्ति पाने के लिए 'हुं' सम्पुटपूर्वक शस्त्र-मन्त्र से एक सौ आठ वार हवन करके मन्त्र को दीप्त करना चाहिए।६

अन्तर्बलिविधानं च मध्ये स्थण्डिलकुम्भयोः ।
कृत्वा शिष्यप्रवेशाय लब्धानुज्ञो बहिर्व्रजेत् ।।७

स्थण्डिल और कुम्भ के बीच में अन्तर्बलि का विधान करके देवता से शिष्य के प्रवेश की आज्ञा प्राप्त करके बाहर चला जाना चाहिए।७

---

१ क. ङ. च. स्वधान्तं। २ ख. शिवं हंसं त°। ३ क. ङ. च. °त्वा हुं सं°। ख. °त्वा हूं सं°।

कुर्यात्समयवत्तत्र[1] मण्डलारोपणादिकम् ।
संपातहोमं[2] तन्नाडीरूपदर्भकरानुगम् ॥८
तत्संनिधानाय तिस्रो हुत्वा मूलाणुनाऽऽहुतीः ।
कुम्भस्थं शिवमभ्यर्च्य पाशसूत्रमपाहरेत्[3] ॥९

वहाँ समय-दीक्षा के समय मण्डल आरोपण इत्यादि क्रियाएँ करनी चाहिए। वहाँ पर पवित्र कुशाग्रों के द्वारा सम्पात होम करना चाहिए। उसके सन्निधान के लिए मूल-मन्त्र से तीन आहुतियाँ देनी चाहिए और कुम्भस्थ शिव की अर्चना करके पाश-सूत्र को हाथ में उठा लेना चाहिए ।८-९।

स्वदक्षिणोर्ध्वकायस्य शिष्यस्याभ्यर्चितस्य च ।
तच्छिखायां निवध्नीयात्पादाङ्गुष्ठावलम्बितम् ॥१०

तदन्नतर पूजित शिष्य के ऊपरी शरीर के दक्षिणी भाग में—उसकी शिखा में उस सूत्र को बाँधे और उसे पैर के अंगूठे तक लम्बा रखे ।१०

तं निवेश्य निवृत्तेस्तु व्याप्तिमालोक्य चेतसा ।
ज्ञेयानि भुवनान्यस्यां शतमष्टाधिकं ततः ॥११

इस प्रकार उस पाश का निवेश करके उसमें मन ही मन निवृत्ति कला की व्याप्ति का दर्शन करे। उसमें एक सौ आठ भुवन जानने योग्य हैं ।११

कपालोऽजश्च बुद्धश्च वज्रदेहः प्रमर्दनः ।
विभूतिरव्ययः शास्ता पिनाकी त्रिदशाधिपः ॥१२
अग्नी[4] रुद्रो हुताशी च पिङ्गलः खादको हरः ।
ज्वलनो दहनो[5] वभ्रुर्भस्मान्तकक्षपान्तकौ ॥१३
याम्यमृत्युहरो[6] धाता विधाता कार्यरञ्जकः[7] ।
कालो धर्मोऽप्यधर्मश्च संयोक्ता[8] च वियोजकः ॥१४
नैर्ऋतो मारणो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयानकः ।
ऊर्ध्वांशको विरूपाक्षो धूम्रलोहितदंष्ट्रवान् ॥१५
वलश्चातिवलश्चैव पाशहस्ती[9] महावलः ।
श्वेतश्च जयभद्रश्च दीर्घवाहुर्जलान्तकः ॥१६

---

१ क. ङ. च.० यकं तत्र। २ ख. °होमवन्ना° । ३ घ. °त्रमुपा° । ४ क. ख ङ. च. अग्निरुद्रोह्° । ५ ख. °नो वाऽपि भस्मा° । ६ क. ख. ङ. च. याम्यो मृ° । ७ क. च. °र्यवञ्चकः । ८ क. ङ. च. °क्ताविधिपोषकः । ९ क. ङ. च. °हस्तो म° ।

वडवास्यश्च[१] भीमश्च दशैते वारुणाः स्मृताः ।
दीर्घो[२] लघुवायुवेगः सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षमान्तकः[३] ॥१७
पञ्चान्तकः पञ्चशिखः कपर्दी मेघवाहनः ।
जटामुकुटधारी च नानारत्नधरस्तथा ॥१८
निधीशो [४]रूपवान्धन्यः[५] सौम्यदेहः प्रसादकृत् ।
प्रकाशोऽप्यथ लक्ष्मीवान्कामरूपो दशोत्तरे ॥१९
विद्याधरो ज्ञानधरः सर्वज्ञो वेदपारगः ।
मातृवृत्तश्च पिङ्गाक्षो भूतपालो वलिप्रियः ॥२०
सर्वविद्याविधाता च सुखदुःखहरो दश ।
अनन्तः पालको धीरः[६] पातालाधिपतिस्तथा ॥२१
वृषो वृषधरो[७] वीर्यो ग्रसनः सर्वतोमुखः ।
लोहितश्चैव विज्ञेया दशरुद्राः फणिस्थिताः ॥२२
शंभुविभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षस्त्रिदशवन्दितः ।
संवाहश्च[८] विवाहश्च[९] लाभो लिप्सुर्विचक्षणः ॥२३
अत्ता कुहककालाग्निरुद्रो हाटक एव च ।
कूष्माण्डश्चैव सत्यश्च ब्रह्मा विष्णुश्च सप्तमः ॥२४
रुद्रश्चाष्टाविमे रुद्राः कटाहाभ्यन्तरे स्थिताः ।
एतेषामेव नामानि भुवनानामपि स्मरेत् ॥२५
भवोद्भवः सर्वभूतः सर्वभूतसुखप्रदः ।
सर्वसांनिध्यकृद्ब्रह्मविष्णुरुद्रशरार्चितः[१०] ॥२६
संस्तुतपूर्वस्थित, ॐ साक्षिन्,[११] ॐ रुद्रान्तक, ॐ पतंग,
ॐ शब्द, ॐ सूक्ष्म, ॐ शिव सर्वसर्वद सर्वसांनिध्यकर
ब्रह्मविष्णुरुद्रकर[१२], ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो नमः[१३] ॥२७
अष्टाविंशतिपादानि[१४] व्योमव्यापिमनोगुह ।
सद्योहृदस्त्रनेत्राणि[१५] मन्त्रवर्णाष्टको मतः ॥२८

---

१ च. °श्च भौम° । २ घ. शीघ्रो । ३ क. ङ. च. क्षपान्तकः । घ. क्षयान्तकः । ४ ख. °वान्वद्यः सौ° । ५ घ. °न्वन्योऽसौ० । ६ क. ङ. च. वीरः । ७ क. च. °रो धार्यो ग्रथनः । ८ घ. संधारश्च विहारश्च । ९ ख. °श्चनभोलि° । १० क. ङ. च. °तः । अनर्चित, अ सं° । ११ क. ख. ङ. च. °न्, तुङ्ग°, पतङ्ग°, ज्ञान°, शब्द°, सूक्ष्म°, शिव°, सर्वदण्ड°, सर्वसां° । १२ क. ङ. च. °द्र पर, । १३ क. ङ. च. °मः, ॐ शिवाय, ॐ नमो नमः । अ° । १४ क. ख. ङ. च. °तिपदा° । १५ क. ङ. च. °दस्ते ने° ।

वीजकारो मकारश्च नाड्याविडापिङ्गलाह्वये ।
प्राणापानावुभौ वायू घ्राणोपस्थौ तथेन्द्रिये ॥२९

गन्धस्तु विषयः प्रोक्तो गन्धादिगुणपञ्चके ।
पार्थिवं मण्डलं पीतं वज्राङ्कं चतुरस्रकम् ॥३०

उनके नाम हैं—कपाल, अज, बुद्ध, वज्रदेह, प्रमर्दन, विभूति अव्यय, शास्ता, पिनाकी, इन्द्र, अग्नि, रुद्र, हुताशी, पिङ्गल, खादक, हर, ज्वलन, दहन, बभ्रु, भस्मान्तक, क्षपान्तक, याम्य, मृत्युहर, धाता, विधाता, कार्यरञ्जक, काल, धर्म, अधर्म, संयोक्ता, वियोजक, नैर्ऋत, मारण, हन्ता, क्रूरदृष्टि, भयानक, ऊर्ध्वांशक, विरूपाक्ष, धूम्र, लोहित, दंष्ट्री, बल, अतिबल, पाशहस्त, महाबल, श्वेत, जयभद्र, दीर्घबाहु, जलान्तक, बडवास्य, भीम, (इनमें से अंतिम दश वरुण दिशा में स्थिर रहते हैं), दीर्घ, लघु, वायुवेग, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, क्षमान्तक, पञ्चान्तक, पञ्चशिख, कपर्दी, मेघबाहन, जटामुकुटधारी, नानारत्नधर, निधीश, रूपवान्, धन्य, सौम्यदेह, प्रसादकृत्, प्रकाश, लक्ष्मीवान्, कामरूप, (ये रुद्र उत्तर दिशा में अवस्थित हैं) विद्याधर, ज्ञानधर, सर्वज्ञ, वेदपारग, मातृवृत्त, पिङ्गाक्ष, भूतपाल, बलिप्रिय, सर्वविद्याविधाता, सुखदुखहर, अनन्त, पालक, धीर, पातालाधिपति, वृष, वृषधर, वीर्य, ग्रसन, सर्वतोमुख, लोहित, (इनमें से अन्तिम दश शेषनाग की फण अर्थात् पाताललोक में अवस्थित हैं।) शम्भु, विभु, गणाध्यक्ष, त्र्यक्ष, त्रिदशवन्दित, संवाह, विवाह, लाभ, लिप्सु, विचक्षण, अत्ता, कुहक; कालाग्निरुद्र, हाटक, कूष्माण्ड, सत्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (इनमें से आठ कटाह स्थित रुद्र के प्रतिरूप हैं)। ये नाम एक सौ आठ भुवनों के भी हैं। भवोद्भव, सर्वभूतसुखप्रद, सर्वसान्निध्यकर, ब्रह्मविष्णुरुद्रपर, अनर्चितानर्चित, असंस्तुतासंस्तुत, पूर्वस्थित, साक्षिन्, पतंग, शब्द, सूक्ष्म, शिव, सर्व, सर्वद, ॐ नमोनमः, ॐ नमः-शिवाय, नमोनमः, ये अट्ठाइस पाद हैं। हे स्कन्द ! उपर्युक्त पाशसूत्र में निवृत्तिकला को अट्ठाइस पादों से युक्त समझना चाहिए। उनमें सद्यो, हृदय, तथा नेत्र ये तीन मन्त्र हैं। उसमें अकार और लकार बीजमन्त्र, इडा और पिङ्गला नामक नाड़ियाँ, प्राण और अपान वायु, घ्राण तथा उपस्थ इन्द्रियाँ और गन्धादि गुण पञ्चकों में गन्ध विषय भी रहा करता है। पार्थिव मण्डल पीतवर्ण, चतुष्कोण और वज्राङ्कित होता है।१२-३०।

विस्तारो योजनानां तु कोटिरस्य शताहता ।
अत्रैवान्तर्गता ज्ञेया योनयोऽपि चतुर्दश ॥३१

उसका विस्तार सौ करोड़ योजन होता है। इसी के अन्तर्गत चौदह योनियाँ भी होती हैं ।३१

प्रथमा[1] सोमदेवानामश्वाद्या[2] देवयोनयः ।
मृगः[3] पक्षी च पशवश्चतुर्धा तु सरीसृपाः ॥३२
स्थावरं पञ्चमं सर्वं योनिः षष्ठी अमानुषी ।
पैशाचं राक्षसं याक्षं गान्धर्वं चैन्द्रमेव च ॥३३
सौम्यं प्राजेश्वरं[4] ब्राह्ममष्टमं परिकीर्तितम् ।
अष्टानां पार्थिवं तत्त्वमधिकारास्पदं मतम् ॥३४

प्रथम योनियाँ सोमदेवों की है और अन्य अश्व आदि देवयोनियाँ हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—मृग, पक्षी पशु और सरीसृप, पाँचवीं स्थावर, तथा छठीं अमानुषी योनि, पैशाची राक्षसी, याक्षी, गान्धर्वी, ऐन्द्री, सौमी, प्राजापत्या और ब्राह्मी ये आठ देवयोनियाँ हैं। इन आठों योनियों में पार्थिव तत्त्व का अधिकार रहता है ।३२-३४।

लयस्तु प्रकृतौ बुद्धौ भोगो ब्रह्मा च कारणम् ।
ततो जाग्रदवस्थानैः समस्तैर्भुवनादिभिः ॥३५
निर्वृत्ति गर्भितां ध्यात्वा स्वमन्त्रेण नियोज्य च ॥३६

इनका लय प्रकृति में, भोगबुद्धि में होता है और ब्रह्मा कारण है। उसी की जाग्रत अवस्थाओं के कारण इन भुवनादिकों की स्थिति रहा करती है। सर्व प्रथम इन सबसे गर्भिता निवृत्ति का ध्यान करके अपने मन्त्र से उनका विनियोग करना चाहिए ।३५-३६।

ॐ हां ह्लूं[5] हां निवृत्तिकलापाशाय हूं[6] फट् तत ॐ हां[7] हां निवृत्तिकलापाशाय स्वाहेत्यनेनाङ्कुशमुद्रया पूरकेणाऽऽकृष्य, ॐ ह्लूं[8] ह्लां ह्लूं निवृत्तिकलापाशाय ह्लूं[9] फडित्यनेन संहारमुद्रया[10] कुम्भकेनाधःस्थानादादाय, ॐ[11] ॐ ह्लूं हां निवृत्तिकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भव-मुद्रया रेचकेन कुम्भे[12] संस्थाप्य, ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय

---

१. घ. 'मा सर्वदे' । २ घ. 'वानां मन्वाद्या । ३ ख. घ. मृगप० । ४ घ. प्राणेश्व० । ५ ख. रूं । ६ ख. हृरूं । चहुं । ७ ख. हां नि' । घ. हां हूं हां । ८ च. हूं हूं हूं नि' । ९ ख हुं । १० घ. कुम्भेन साम्यावस्था' । ११ ख. ॐ हूं हां नि' । च ॐ हां हूं नि' । १२ घ. कुम्भे संप्राप्य, ॐ हूं नि' ।

नम इत्यनेनार्घ्यं दत्वा संपूज्य विमुखेनैव स्वाहान्तेनैव संनिधानायाऽऽहुतित्रयं संतर्पणाहुतित्रयं च दत्त्वा, ॐ हां ब्रह्मणे नम इति ब्रह्माणमावाह्य संपूज्य च स्वाहान्ते संतर्प्य ।।३७

"ॐ हां ह्रूं हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा"। तदनन्तर 'ॐ हां ह्लूं हां निवृत्तिकलापाशाय स्वाहा'—इस मन्त्र से अङ्कुशमुद्रा के द्वारा पूरक से आकृष्ट करना चाहिए। 'ॐ ह्लूं हां ह्लूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्'—इस मन्त्र से संहार-मुद्रा एवं कुम्भक द्वारा नाभि के नीचे से ग्रहण करना चाहिए; ":ॐ ॐ ह्लं हां निवृत्तिकलापाशाय नमः"—इस मन्त्र से उद्भव-मुद्रा के द्वारा रेचक प्राणायाम से कुम्भ में स्थापित करना चाहिए। 'ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः'—इस मन्त्र से अर्घ्य देकर पूजन करके और स्वाहा से अन्त करके इसी मन्त्र के द्वारा तीन संनिधानाहुति और संतर्पणाहुतियाँ देनी चाहिए, 'ॐ हां ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्र से ब्रह्म का आवहान करके ब्रह्मा का पूजन और तर्पण करना चाहिए।३७

ब्रह्मं स्तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं ।
भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विधिं विज्ञापयेदिति ।।३८

हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे इस अधिकार में मैं मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ इसलिए यह विधि आपके अनुकूल होनी चाहिए, ऐसा निवेदन करना चाहिए।३८

आवाहयेत्ततो देवीं रक्षां वागीश्वरीं हृदां ।
इच्छाज्ञानक्रियारूपां षड्विधां[1] ह्येककारणम् ।।३९

इसके बाद हृद्-मन्त्र से वागीश्वरी रक्षा देवी का आवाहन करना चाहिए। यह इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप है। छह प्रकार की यह एक मात्र कारण होती है।३९

पूजयेत्तर्पयेद्देवीं प्रकारेणामुनः ततः ।
वागीश्वरीं[2] विनिःशेषयोनिविक्षोभकारणम् ।।४०
हृत्संपुटार्थबीजादिहूंफडन्तशराणना ।
ताडयेद्धृदये तस्य प्रविशेत्स विधानवित्[3] ।।४१
ततः शिष्यस्य चैतन्यं हृदि वह्निकणोपमम् ।

---

१ क. ङ. च. °ड्विधायैककारणात् । पू० । २ क. ङ. च. °श्वर च निः°
३ क. ङ. च. °शेच्च वि° ।

निवृत्तिस्थं युतं पाशैर्ज्येष्ठया विभजेद्यथा ॥४२
ॐ हां[1] हूं[2] हः, हूं फट् ॥४३

इसके बाद इस प्रकार से देवी का पूजन तथा तर्पण करना चाहिए। मुख्य मन्त्रों के आदि में हृद्मन्त्र तथा अन्त में हुं फट् शब्दों का सम्पुट करना चाहिए और जिससे पहले वागीश्वरी के गर्भ को विक्षुब्ध किया गया उससे शिष्य के हृदय को भी प्रभावित करना चाहिए। इन विधियों से पारङ्गत गुरु को शिष्य के हृदय में प्रवेश करके वह्लिकण के समान उसके निवृत्तस्थ चैतन्य को "ॐ हां ह्लूं हः, हूं फट्" मन्त्र से विभक्त करना चाहिए।४०-४३।

ॐ हां स्वाहेत्यनेनाथ पूरकेणाङ्कुशमुद्रया।
तदाकृष्य[3] स्वमन्त्रेण गृहीत्वाऽऽत्मनि योजयेत् ॥४४
ॐ हां[4] ह्लूं हामात्मने नमः ॥ ४५

'ॐ हां स्वाहा' इस मन्त्र से पूरक प्राणायाम और अंकुश-मुद्रा के द्वारा उस जीव चैतन्य को हृदय में आकृष्ट करके, आत्ममन्त्र से पकड़कर, उसे अपनी आत्मा में योजित करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ हां ह्लूं हामात्मने नमः' ।४४-४५।

पित्रोर्विभाव्य संयोगं चैतन्यं रेचकेन तत्।
ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमान्नीत्वा शिवास्पदम् ॥४६
गर्भाधानार्थमादाय युगपत्सर्वयानिषु।
क्षिपेद्वागीश्वरीयोनौ वामयोद्भवमुद्रया ॥४७

माता पिता के संयोग की कल्पना करके रेचक से चैतन्य को ब्रह्मादि कारणों के त्याग से शिव के स्थान पर युक्त करना चाहिए। गर्भाधान के लिए उद्भव-मुद्रा से वागीश्वरी योनि में उसका प्रक्षेप कर देना चाहिए।४६-४७।

ॐ हां[5] हां हामात्मने नमः ॥४८
पूजयेदप्यनेनैव तर्पयेदपि पञ्चधा।
अन्ययोनिषु सर्वासु देहशुद्धिं हृदाऽऽचरेत् ॥४९

'ॐ हां हां हामात्मने नमः'—इस मन्त्र से पूजन और पाँच प्रकार का तर्पण भी करना चाहिए। अन्य सभी योनियों में हृद्मन्त्र से देहशुद्धि का आचरण करना चाहिए।४८-४९।

---

१ ख. हां ह्लूं हां हः, ह्लूं फं। २ क. ङ. च. हूं हां हः। ३ क. ङ. च. °कृष्याऽऽत्मम°। ४ क. ङ. च. हं। ५ क. ङ. च. हं।

नात्र पुंसवनं स्त्र्यादिशरीरस्यापि संभवात् ।
सीमन्तोन्नयनं वाऽपि दैवान्यङ्गानि देहवत् ।। ५०
शिरसा जन्म कुर्वीत युगपत्सर्वदेहिनाम् ।
तथैव भावयेदेषामधिकारं शिवाणुना[1] ।। ५१

यहाँ पर पुंसवन संस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्त्री आदि शरीर की सम्भावना हो सकती है। न तो सीमन्तोन्नयन करना चाहिए। शिरस् मन्त्र के द्वारा जन्म कराना चाहिए और शिव-मन्त्र से उसके अधिकार की भावना करनी चाहिए। ५०-५१।

भोगं कवचमन्त्रेण शस्त्रेण विषयात्मना ।
मोहरूपमभेद्यं च लयसंज्ञं विभावयेत् ।। ५२

कवच-मन्त्र से भोग और शस्त्र-मन्त्र से विषयों की शुद्धि करनी चाहिए तथा आत्मा-मन्त्रों से मोह, रूप, अभेद्य और लय की भी भावना करनी चाहिए। ५२

शिवेन स्रोतसां शुद्धिं हृदा तत्त्वविशोधनम् ।
पञ्च पञ्चाऽऽहुतीर्दद्याद्गर्भाधानादिषु क्रमात् ।। ५३
मायया मलकर्मादिपाशबन्धनिवृत्तये ।
निष्कृत्यैव हृदा पश्चाद्यजेत शतमाहुतीः ।।५४

शिव मन्त्र से कानों की शुद्धि करनी चाहिए और हृद्मन्त्र से तत्त्वों का विशोधन। गर्भाधान इत्यादि में पाँच बार आहुतियाँ देनी चाहिए तथा माया मन्त्र से शिष्य के पापों का शमन करना चाहिए। इसी प्रकार कर्मादि के पाशों से मुक्त करने के लिए भी माया मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। हृद्-मन्त्र से सौ आहुतियाँ देकर आहुति देने से सभी बन्धनों से शिष्य का निस्तार हो जाता है।५३-५४।

मलशक्तिनिरोधेन[2] पाशानां च वियोजनम्[3] ।
स्वाहान्तायुधमन्त्रेण पञ्च पञ्चाहुतीर्यजेत् ।।५५

मल-शक्ति के निरोध से ही पाशों की विमुक्ति होती है। स्वाहा से अन्त करके आयुधमन्त्र के द्वारा पाँच-पाँच आहुतियाँ पाँच बार देनी चाहिए। ५५

---

१ क. ङ. च. शिखण्डिना। २ क. ङ. च. मनः शं°। ३ क. ङ. च. नियोजनम्।

मायाद्यन्तस्य[1] पाशस्य सप्तवारास्त्रजप्तया ।
कर्तर्या छेदनं कुर्यात्कल्पशस्त्रेण तद्यथा ॥५६

अस्त्र मन्त्रों से सात बार पाठ करके मायादि पाश का छेदन करना चाहिए। उसके लिए कल्पशस्त्र से तथा कर्तरी से उसका छेदन भी करना चाहिए ।५६

ॐ हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्॥ ५७
बन्धकत्वं च निर्वर्त्य हस्ताभ्यां च शराणुना ।
विसृज्य वर्तुलीकृत्य घृतपूर्णे स्रुवे धरेत्[2] ॥५८
दहेदनुकलास्त्रेण केवलास्त्रेण भस्मसात् ।
कुर्यात्पञ्चाऽऽहुतीर्दत्त्वा पाशाङ्कुशनिवृत्तये[3] ॥५९

'ॐ हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट्'—इस मन्त्र से हाथों से बन्धन को हटाकर उसको वर्तुलाकार करके घृतपूर्ण स्रुव में रखना चाहिए तथा अनुकलास्त्र मन्त्र से उसे जलाकर केवलास्त्र मन्त्र से उसे भस्मसात् कर देना चाहिए। पाशाङ्कुश निवृत्ति के लिए इसी मन्त्र से पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।५७-५९।

ॐ हः,[4] अस्त्राय हूं[5] फट् ॥६०
प्रायश्चित्तं ततः कुर्यादस्त्राहुतिभिरष्टभिः ।
अथाऽऽवाह्य विधातारं पूजयेत्तर्पयेत्तथा ॥६१
ततः—ॐ हां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन्गृहाण स्वाहेत्याहुतित्रयेणाधिकारमस्य समर्पयेत् ॥६२

'ॐ हः अस्त्राय हूं फट्' इस मन्त्र से आठ अस्त्राहुतियाँ देकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। तदनन्तर ब्रह्मा का आवाहन करके उसका पूजन तथा तर्पण करना चाहिए और 'ॐहां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन् गृहाण स्वाहा' इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ देकर उसके अधिकार को समर्पित करना चाहिए ।६०-६२।

दग्धनिःशेषपापस्य ब्रह्मन्नस्य पशोस्त्वया ।
बन्धाय न पुनः स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति ॥६३
ततो विसृज्य धातारं नाड्या दक्षिणया शनैः ।
संहारमुद्रयाऽऽत्मानं कुम्भकेन निजात्मना[6] ॥६४

---

१ क. ङ. च. °न्तस्यपा° । २ क. ङ. च. चरेत् । ३ क. ङ. च. पाशशङ्कुनि°।
४ क. ङ. च. हूं । ५ क. ङ. च. हुं । ६ घ. जात्मना ।

राहुयुक्तैकदेशेन चन्द्रविम्बेन संनिभम् ।
आदाय योजयेत्सूत्रे रेचकेनोद्भवाख्यया ॥६५

उस समय इस शिव आज्ञा को भी सुनाना चाहिए कि हे ब्रह्मन् ! इस पशु के पाप दग्ध हो चुके हैं, अतः उसे पुनः बन्धन में मत डालना । इसके बाद विधाता को विदा करके कुम्भक के द्वारा संहारमुद्रा से दक्षिण नाडी को पूरित करना चाहिए और अपने आपको उस परमात्मा के साथ एकाकार करना चाहिए जो राहुग्रस्त चन्द्र-बिम्ब के समान प्रतीत होता है । उद्भव-नामक मुद्रा से रेचक द्वारा उसे सूत्र से युक्त करना चाहिए ।६३-६५।

पूजयित्वाऽर्घ्यपात्रस्थतोयविन्दुसुधोपमम् ।
आप्यायनाय शिष्यस्य गुरुः शिरसि विन्यसेत् ॥६६

तदनन्तर अर्घ्यपात्र में रहने वाले अमृतोपम जल-विन्दु की अर्चना करके गुरु को उसे शिष्य के आप्यायन के लिए सिर पर रख देना चाहिए ।६६

विसृज्य पितरौ दद्याद्वौषडन्तशिवाणुना[1] ।
पूरणाय[2] विधिः पूर्णा निवृत्तिरिति शोधिता ॥६७

तदनन्तर देवता और देवी को विदा करके वौषट् से अन्त होने वाले शिव-मन्त्र का पाठ करना चाहिए । इस प्रकार से निवृत्ति-विधि की शुद्धि और पूर्ति की जाती है ।६७

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः । ८४

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिः

ईश्वर उवाच—

तत्त्वयोरथसंधानं[3] कुर्याच्छुद्धविशुद्धयोः ।
ह्रस्वदीर्घप्रयोगेण नादनादान्तसङ्गिना[4] ॥१
ॐ हां ह् रूं हाम् ॥२

---

१ ख. °न्तशराण° । २ क. ङ. च. श्रावणाय । ३ क. ङ. च. तत्तयो° ।
४ ख. ग. °न्तसंज्ञिना ।

भगवान शिव बोले—ह्रस्व और दीर्घ मात्रा वाले और नाद तथा घोष प्रयत्न वाले 'ॐ हां ह्रूं हाम्' इस मन्त्र का उच्चारण करके शुद्ध और अविशुद्ध निवृत्ति और प्रतिष्ठा कला को जोड़ देना चाहिए। १-२।

अप्तेजो वायुराकाशं तन्मात्रेन्द्रियबुद्धयः।
गुणत्रयमहंकारश्चतुर्विंशः पुमानिति ॥३
प्रतिष्ठायां निविष्टानि तत्त्वान्येतानि भावयेत्।
पञ्चविंशतिसंख्यानि खादियान्ताक्षराणि च ॥ ४
पञ्चाशदधिका षष्टिर्भुवनैस्तुल्यसंज्ञिताः[1]।
तावन्त एव रूपाश्च विज्ञेयास्तत्र तद्यथा ॥ ५

तदन्तर जल, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा, इन्द्रियाँ, बुद्धि, सत्त्व, रज, तम, अहङ्कार, चौबीसवाँ पुरुष—इन पच्चीस तत्त्वों का ध्यान करना चाहिए, जो प्रतिष्ठा-कला में निविष्ट हैं। तत्पश्चात् 'ख' से लेकर 'य' तक अक्षरों, छप्पन-भुवनों का और इतनी ही संख्या में रुद्रों का ध्यान करना चाहिए। ३-५।

अमरेशः प्रभावश्च नैमिषः[2] पुष्करोऽपि च।
तथा[3] पादिश्च दण्डिश्च भावभूतिरथाष्टमः ॥६
नकुलीशो हरिश्चन्द्रः श्रीशैलो दशमः स्मृतः[4]।
अन्वीशोऽभ्रातिकेशश्च[5] महाकालोऽथ मध्यमः ॥७
केदारो भैरवश्चैव द्वितीयाष्टकमीरितम्।
ततो गयाकुरुक्षेत्रखलानादिकनादिके[6] ॥८
विमलश्चाट्टहासश्च[7] माहेन्द्रो भीम एव च।
वस्वापदं[8] रुद्रकोटिरवियुक्तो महाबलः ॥ ९
गोकर्णो भद्रकर्णश्च स्वर्णाक्षः स्थाणुरेव च[9]।
अजेशश्चैव सर्वज्ञो भास्वरः सूदनान्तरः[10] ॥१०
सुबाहुर्बहुरूपी[11] च विशालो जटिलस्तथा।
रौद्रोऽथ पिङ्गलाक्षश्च कालदंष्ट्री भवेत्ततः ॥११

---

१. क. ख. ग. ङ. च. °वनास्तुल्य°। २ क. ङ. च. °षः प्लक्षवोऽपि। ३ क. ङ. च. तथाऽऽषाढिश्च। ४ क. ङ. च. °तः। जलान्सौम्याति°। ५ घ. °शोऽस्त्राति°। ६ ख. ग. गयां कुरुक्षेत्रं खलोना°। ७ क. ङ. च. °श्चाथ होमश्च मा°। घ. °चाट्टहा°। ८ क. ख. ग. ङ. च. वस्त्राप°। ९ ख. च। ओजे°। १० क. ङ. च.° रः। स्वराहुर्मत्तरू°। ११ घ. °हुर्मत्तरू°।

विदुरश्चैव[1] घोरश्च प्राजापत्यो हुताशनः ।
कामरूपी तथा कालः कर्णोऽप्यथ भयानकः[2] ॥१२
मतङ्गः पिङ्गलश्चैव हरो वैधातृसंज्ञकः ।
शङ्कुकर्णो विधानश्च श्रीकण्ठश्चन्द्रशूलिना[3] ॥
सहैतेन च पर्यन्ताः कथ्यन्तेऽथ पदान्यपि ॥१३

अमरेश, प्रभाव, नैमिष, पुष्कर, पादि, दण्डि, भावभूति, नकुलीश, हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, अन्वीश, अम्रातिकेश, महाकाल, मध्यम, केदार, भैरव, गया, कुरुक्षेत्र, खल, अनादिक, नादिक, विमल, अट्टहास, महेन्द्र, भीम, वस्त्रापद्र, रुद्रकोटि, अवियुक्त, महाबल, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णाक्ष, स्थाणु, अजेश, सर्वज्ञ, भास्वर, सूदनान्तर, सुबाहु, मन्त्ररूपी, विशाल, जटिल, रौद्र, पिङ्गलाक्ष, कालदंष्ट्री, विदुर, घोर, प्राजापत्य, हुताशन, कामरूपी, काल, कर्ण, भयानक, मतङ्ग, पिङ्गल, हर, धातृसंज्ञक, शङ्कुकर्ण, विधान, श्रीकण्ठ और चन्द्रशूली,—यह रुद्रों की नामावली है । इसके पश्चात् पदों को बतलाया जा रहा है । ६-१३।

व्यापिन्[4], ओम्रूप, ॐ प्रमथ, ॐ तेजः, ॐ ज्योतिः,
ॐ पुरुष, ओमग्ने, ॐ धूम, ओमभस्म [न्],
ॐ अनादि, ॐ नाना, ॐ धूधू, ॐ भूः, ॐ भुवः,
ॐ स्वः, अनिधन विधनोद्भव शिव शर्व परमात्मन्-
महेश्वर महादेव सद्भावेश्वर महातेजः, भोगाधिपते[5]
मुञ्च[6] प्रमथ[7] सर्वसर्वेति द्वात्रिंशत्पदानि ॥१४

व्यापिन्, अरूपिन्, प्रमथ, तेजस्, ज्योतिः, अरूप, पुरुष, अनग्ने, अधूम, अभस्मन्, अनादे, नाना नाना, धूधू धूधू, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, अनिधन, निधन, निधनोद्भव, शिव, शर्व, परमात्मन्, महेश्वर, महादेव, सद्भाव, ईश्वर, महातेजा, योगाधिपते, मुञ्च, प्रमथ, सर्व, सर्वसर्व—ये बत्तीस पद हैं ।१४

---

१ ख. विदूर° । २ क. ङ. च. °कः । पतङ्गश्चैव बहवः श्री° । ३ घ. °न्द्रशेखरः । स° । ४ क. ङ. च. ° न्, अरूप, २ प्रथम तेज (जो) ज्योतिः २ पुरुषः (ष) (?) २ अनश्व २ अधूम, २ अभस्म २ अनादि २ नाना २ वृत्त २ ॐ भूः । ५ ख. ग. घ. योगाधिपतये । ६ ख. °ञ्च ॐ प्र° । ७ ख. °थम, ॐ स° ।

वी (वी) जभावे त्रयोमन्त्रा वामदेवः शिवः शिखा[1] ।
गान्धारी च सुषुम्ना च नाड्यौ द्वौ मारुतौ तथा ॥१५
समानोदाननामानौ रसना पायुरिन्द्रिये ।
रसस्तु विषयो रूपशब्दस्पर्शरसा गुणाः ॥१६
मण्डलं वर्तुलं तच्च पुण्डरीकाङ्कितं सितम्[2] ।
स्वप्नावस्था प्रतिष्ठायां कारणं गरुडध्वजम् ॥१७

प्रतिष्ठा कला में दो बीज और वामदेव शिव तथा शिखा के तीन मन्त्र हैं। गान्धारी तथा सुषुम्ना नामक नाडियों का, समान तथा उदान नामक वायु का, जिह्वा और पायु नामक इन्द्रियों का, रस, विषय तथा रूप, शब्द, स्पर्श और रस नामक गुणों का, कमल से अङ्कित, स्वच्छ और वर्तुलाकार मण्डल का, स्वप्नावस्था का तथा कारणभूत गरुडध्वज भगवान् का ध्यान करना चाहिए।१५-१७।

प्रतिष्ठान्तर्गतं सर्वं संचिन्त्य भुवनादिकम् ।
सूत्रं देहेऽथ[3] मन्त्रेण प्रविश्यैनां वियोजयेत् ॥१८

ॐ हां खीं[4] प्रतिष्ठाकलापाशाय, ॐ फट्[5] । स्वाहान्तेनानेनैव पूरकेणाङ्कुशमुद्रया समाकर्षेत् । ततः ॐ हां[6] ह्लूं ह्लां ह्लूं प्रतिष्ठाकलापाशाय ह्लं[7] फडित्यनेन संहारमुद्रया कुम्भकेन हृदयादधो नाभिसूत्रादादाय,[8] ॐ हां ह्लूं[9] हां[10] हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन कुम्भे समारोपयेत् । ॐ हां[11] ह्लीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनार्चयित्वा[12] संपूज्य स्वाहान्तेनाऽऽहुतीनां त्रयेण संनिधाय ततः—ॐ हां विष्णवे नम इति विष्णुमावाह्य संपूज्य संतर्प्य ॥१९

तदनन्तर शिष्यदेह में सूत्र संयोजन कर प्रतिष्ठा कला के अन्तर्गत समस्त भुवन आदि का वियोजन 'ॐ हां खीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय ॐ फट् स्वाहा' इस मन्त्र से शरीर पर उसे धारण करना चाहिए। पुनः इसी मन्त्र को पढ़कर पूरक प्राणायाम तथा अंकुश मुद्रा करके वायु को ऊपर खींचना चाहिए।

---

१ ख. सखा। २ क. ख. ग. ङ. च. शितम्। ३ घ. देहे स्वम०। ४ क. ङ. च. खां। ५ क. ङ. च. हुं। ६ क. ङ. च. हां हूं क्लीं हां हूं प्र०। ख. हां हुं ह्लूं प्र०। ७ क. ङ. च. हुं। ८ घ. नाडीसू०। ९ क. ङ. च. हूं। १० क. ख. ग. घ. ङ. च. हां प्र०। ११ क. ख. ग. ङ. च. हरां। १२ क. ख. ग. ङ. च. °नार्घयि०।

तत्पश्चात् 'ॐ हां हूं हां हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट्' मन्त्र को पढ़कर कुम्भक प्राणायाम तथा संहार मुद्रा करके सूत्र को हृदय से नीचे नाभि तक ले जाकर डाल लेना चाहिए और 'ॐ हां हूं हां हां प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः' मन्त्र को पढ़कर रेचक-प्राणायाम तथा उद्भव-मुद्रा के द्वारा सूत्र को घट के ऊपर स्थापित कर दे। तत्पश्चात् 'ॐ हां ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः' मन्त्र से कलश की पूजा करके इसी मन्त्र में 'स्वाहा' शब्द जोड़कर तीन बार आहुतियाँ डाले। अनन्तर 'ॐ हां विष्णवे नमः' इस मन्त्र से विष्णु का आवाहन, पूजन तथा तर्पण करके यह प्रार्थना करे।१८-१९।

विष्णो तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं ।
भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विष्णुं विज्ञापयेदिति ॥२०

हे विष्णो ! आपके इस अधिकार में मैं मोक्षाभिलाषी जन को दीक्षा देता हूँ। आप इसमें अनुकूलता प्रदान करें। २०

ततो वागीश्वरीं देवीं वागीशमपि पूर्ववत् ।
आवाह्याभ्यर्च्य संतर्प्य शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ॥२१
ॐ हां[1] हां हं फट् ॥ २२
प्रविशेदप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः ।२२½

तदनन्तर वागीश्वरी देवी तथा वागीश का भी पूर्ववत् आवाहन, पूजन, तर्पण करके 'ॐ हां हां हं फट्' मन्त्र से शिष्य के हृदय पर ताडन करे और इसी मन्त्र से प्रवेश भी करे (अर्थात् इस मन्त्र को पढ़ते हुए यह भावना भी करे कि मैं शिष्य के अन्तःकरण में प्रविष्ट हूँ)।२१-२२½।

शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ॥२३
ॐ हां हं[2] हों[3] हूं फट् ॥२४
स्वाहान्तेन हृदाऽऽकृष्य तेनैव पुटितात्मना ।
गृहीत्वा[4] तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत् ॥२५

इसके बाद उस सूत्र में शस्त्र-मन्त्र से पाश-युक्त चैतन्य का विभाग कर ज्येष्ठा अंकुशमुद्रा के द्वारा 'ॐ हां हं हों हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से सूत्र को हृदय से खींचकर 'ॐ हां हं होमात्मने नमः' मन्त्र से अपनी आत्मा में उसका नियोग करे।२३-२५।

---

१ क. ङ. च. हां हं हां हः फ०। २ क. ङ. च. हं हां हूं फ०। ३ ख. हां।
४ ख. °हीत्वाऽन्तर्नमो०।

ॐ हां हं[1] होमात्मनेनमः ॥ २६
पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया ।
वामया[2] तदनेनैव देवीगर्भे[3] विनिक्षिपेत् ॥२७

तत्पश्चात् पहले की भाँति उद्भव-मुद्रा से उसका पितृसंयोग करके 'ॐ हां हं होमात्मने नमः' मन्त्र को पढ़कर वामा मुद्रा से देवी (वागीश्वरी) के गर्भ में उसका प्रक्षेप करे ।२६-२७।

ॐ हां हं हामात्मने नमः ॥ २८
देहोत्पत्तौ हृदा ह्येवं शिरसा जन्मना[4] तथा ।
शिखया वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना[5] ॥२९

साथ ही 'ॐ हां हं हामात्मने नमः' इस मन्त्र का उच्चारण करे । देह की उत्पत्ति हो जाने पर उसके अधिकार तथा भोग की रक्षा के लिए हृदय, शिर, जन्म, शिखा तथा कवच के मन्त्र से उसका संस्कार करना चाहिए ।२८-२९।

तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानाय पूर्ववत् ।
शिरसा पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैवं शतं जपेत्[6] ॥३०
एवं पाशवियोगेऽपि ततः शस्त्रात्मजप्तया ।
छिन्द्यादस्त्रेण कर्तर्या कला वीजवता यथा ॥३१
ॐ ह्रीं[7] प्रतिष्ठाकलापाशाय हः[8] फट् ॥३२
विसृज्य वर्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण पूर्ववत् ।
घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥३३

तदनन्तर उसके अङ्गभूत तत्त्व की शुद्धि हृदय-मन्त्र से सम्पन्न करके पहिले की भाँति गर्भाधान करना चाहिए । फिर सांसारिक बन्धनों को शिथिल करने के लिए सौ बार शिरोमन्त्र का जप करके पाश-वियोग होने पर शस्त्र-मन्त्र का जप करे । तत्पश्चात् 'ॐ ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हः फट्' कला-मन्त्र से सूत्र को चाकू से काट दे । उस कटे हुए सूत्र का पाशमन्त्र से गुट्ठल बनाकर घृतपूर्ण स्रुव के ऊपर रखकर कलामन्त्र से हवन करे । ३०-३३।

---

१ क. ङ. च. हं हामा° । २ क. ङ. °गपादतलेनै° । ३ ख. देवो ग° । ४ क. ख. ग. ङ. च. जन्मने । ५ क. ङ. च. °ना । नवणु° । ख. ग. ना° । वलशु° । ६ क. ङ. च. यजेत् । ७ क. ङ. च. क्लीं । ८ ङ. च. हः । वि० ।

अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये[1]।
प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाऽऽहुतीस्ततः[2] ॥३४

पाश तथा अंकुश की निवृत्ति के लिए 'ॐ हं अस्त्राय हूं फट्' इस अस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुतियाँ डालकर प्रायश्चित्त का निवारण करने के लिए इसी मन्त्र से आहुतियाँ डाले ।३४

ॐ हः, अस्त्राय[3] हू[4] फट् ॥ ३५
हृदाऽऽवाह्य हृषीकेशं कृत्वा पूजनतर्पणे ।
पूर्वोक्तविधिना कुर्यादधिकारसमर्पणम् ॥ ३६
ॐ हां रसशुल्कं गृहाण स्वाहा ॥ ३७

'ॐ हः, अस्त्राय हू फट्' इस अस्त्र-मन्त्र से आहुति डाले। तदनन्तर हृदय-मन्त्र से हृषीकेश का आवाहन करके पूजन, तर्पण करे और 'ॐ हां रसशुल्कं गृहाण-स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर पूर्वोक्त विधि से अधिकार समर्पण करे। ३५-३७।

निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य हरे त्वया ।
न स्थेयं वन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति ॥३८
ततो विसृज्य गोविन्दं विद्यात्मानं नियोज्य[5] च ।
राहुमुक्तार्धदृश्येन चन्द्रविम्बेन संनिभम् ॥३९

पश्चात्—'हे हरे ! इस पशु का पाश निःशेष होकर जल गया है। अतः आप इसको बन्धन में नहीं डालेंगे'—यह शिव की आज्ञा सुनकर गोविन्द का विसर्जन करे और संहार-मुद्रा से आत्मा का इस प्रकार नियोग करे कि मानो राहु से छोड़ा हुआ आधा दिखाई देने वाला चन्द्रबिम्ब हो ।३८-३९।

संहारमुद्रया स्वस्थं विधायोद्भवमुद्रया ।
सूत्रे संयोज्य विन्यस्य तोयविन्दुं[6] यथा पुरा ॥४०
विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः ।
दद्यात्पूर्णां विधानेन प्रतिष्ठाऽपि विशोधिता ॥४१

फिर उद्भव-मुद्रा से जलबिन्दु की तरह आत्मा को सूत्र के साथ संयुक्त करके पुष्पादि से पूजित वागीश्वरी देवी और वागीश्वर देवता का विसर्जन

---

१ ख. ग. घ. °ङ्कुरनि°। २ क. ङ. च. °तः। अ°। ३ क. ङ. च. °यं फ°। ४ ख. हुं। ५ ख. ग. घ. च। बाहू°। ६ ख. ग. °यविद्धं य°।

करे। अन्त में विधिपूर्वक पूर्णाहुति प्रदान करे। इस प्रकार प्रतिष्ठा-कला का भी शोधन सम्पन्न होता है। ४०-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां प्रतिष्ठाकलासंशोधनविधिकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः। ८५

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

विद्यासंशोधनविधिः

ईश्वर उवाच—

संधानमथ विद्यायाः प्राचीनकलया सह।
कुर्वीत पूर्ववत्कृत्वा तत्त्वं[1] वर्णाय तद्यथा ॥१
ॐ[2] हों क्षीमिति संधानम्[3] ॥२
रागश्च[4] शुद्धविद्या च नियतिः कलया सह।
कालो माया तथाऽविद्या तत्त्वानामिति सप्तकम् ॥३
रलवाः शषसा वर्णाः षड्विद्यायां प्रकीर्तिताः।
पदानि प्रणवादीनि एकविंशतिसंख्यया ॥४
ॐ नमः शिवाय सर्वप्रभवे[5] शिवायेशानमूर्धाय तत्पुरुषवक्त्रायाघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्तये ॐ नमो नमो गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रेऽनिधनाय सर्वाधिपाय[6] ज्योतीरूपाय परमेश्वराय[7] भावेन, ॐ व्योम ॥५

महेश्वर बोले—'ॐ हों क्षीम्' इस मन्त्र से प्रतिष्ठा-कला के साथ विद्या-कला का संधान पहले की ही भाँति करना चाहिये। अब मैं विद्या-कला के तत्त्व, वर्ण आदि बतला रहा हूँ। राग, शुद्धविद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या—ये सात तत्त्व हैं। विद्या के छः वर्ण हैं—र, ल, व, श, ष, स।

---

१ क. ङ. च. तद्वद्वर्णोदितं यथा। २ क. च. ॐ हां क्लीं हूं हां संधाने। रोग°। ङ. ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लां संधाने। रोग°। ३ ख. ग. °म्। योग° ४ क. ख. ङ. च. °गश्चाशु°। ५ घ. °वे हं शि°। ६ क. ङ. च. सर्वविद्याधि°। ७ क. ङ. च. °रायाचिन्तनाय। रुद्राय भु°।

इसके प्रणव आदि पदों की संख्या इक्कीस है, जो ये हैं—ॐ नमः शिवाय, सर्व प्रभवे, शिवाय, ईशानमूर्ध्ने, तत्पुरुषवक्त्राय, अघोरहृदयाय, वामदेवगुह्याय, सद्योजातमूर्तये, ॐ नमः नमः गुह्यातिगुह्याय, गोप्त्रे, अनिधनाय, सर्वभोगाधिकृताय, सर्वयोगाधिपाय, ज्योतीरूपाय, परमेश्वराय, अचेतन-अचेतन, व्योमन्-व्योमन् ।१-५।

ॐ रुद्राणां भुवनानां च स्वरूपमथ[1] कथ्यते ।
प्रथमो वामदेवः स्यात्ततः सर्वभवोद्भवः ॥६
वज्रदेहः प्रभुर्धाता क्रमविक्रमसुप्रभाः[2] ।
वटुः प्रशान्तनामा च परमाक्षरसंज्ञकः ॥७
शिवश्च सशिवो बभ्रुरक्षयः शंभुरेव च ।
अदृष्टरूपनामानौ तथाऽन्यो रूपवर्धनः ॥८
मनोन्मनो महावीर्यश्चित्राङ्गस्तदनन्तरम् ।
कल्याण इति विज्ञेयाः पञ्चविंशतिसंख्यया ॥९

अब रुद्रों का तथा भुवनों का स्वरूप वर्णन करता हूँ । उनका प्रथम नाम है—वामदेव । उसके बाद सर्वभवोद्भव, वज्रदेह, प्रभु, धाता, क्रम, विक्रम, सुप्रभ, बटु, प्रशान्त, परमाक्षर, शिव, सुशिव (कल्याणयुक्त) बभ्रु, अक्षय, शम्भु, अदृष्टरूप, अदृष्टनाम, रूपवर्धन, मनोन्मन, महावीर्य, चित्राङ्ग तथा कल्याण—ये पच्चीस नाम हैं ।६-९।

मन्त्रौ[3] घोरामरौ बीजे नाड्यौ द्वे तत्र ते यथा[4] ।
पूर्वा च हस्तिजिह्वा च व्याननागौ प्रभञ्जनौ ॥१०
विषयो रूपमेवैकमिन्द्रिये पादचक्षुषी ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च त्रय एते गुणाः स्मृताः ॥११

बीज मन्त्र दो हैं—घोर और अमर बीज, दो नाड़ियाँ हैं—पूर्वा और हस्त जिह्वा । वायु दो हैं—व्यान और प्रभंजन । विषय एक ही है । रूप, इन्द्रियाँ दो हैं—चरण और नेत्र । गुण तीन हैं—शब्द, स्पर्श और रूप ।१०-११।

अवस्थाऽत्र सुषुप्तिश्च रुद्रो देवस्तु कारणम् ।
विद्यामध्यगतं सर्वं भावयेद्भुवनादिकम् ॥१२

---

१ ख. °मपि क° । २ क. ङ. च °प्रजाः । ब° । ३ ख. ग. घ. ङ. च. मन्त्रो ।
४ ख. ग. तथा ।

इसकी अवस्था है सुषुप्ति और कारण हैं रुद्र-देवता। (गुरु को) विद्या के मध्य में भुवन आदि सकल पदार्थों का चिन्तन करना चाहिए।१२

ताडनं छेदनं तत्र प्रवेशं चापि योजनम्।
आकृष्य ग्रहणं कुर्याद्विद्यया[1] हृत्प्रदेशतः ॥१३

फिर वहाँ ताडन, छेदन, प्रवेश तथा योजन करके विद्या के द्वारा (शिष्य के) हृदय-प्रदेश से खींचकर ग्रहण करना चाहिए।१३

आत्मन्यारोप्य संगृह्य कलां[2] कुण्डे निवेशयेत्।
वामया योजयेद्योनौ गृहीत्वा द्वादशान्ततः ॥१४

तत्पश्चात् कला को आत्मा में आरोपित तथा गृहीत करके कुण्ड में प्रविष्ट कर दे। तदनन्तर द्वादशान्त से लेकर वामा मुद्रा से योनि में नियुक्त करे।१४

कुर्वीत देहसंपत्तिं जन्माधिकारमेव च।
भोगं लयं तथा स्रोतः शुद्धिस्तत्त्वविशोधनम् ॥१५
निःशेषमलकर्मादिपाशवन्धनिवृत्तये।
निष्कृत्यैव विधानेन यजेत शतमाहुतीः ॥१६
अस्त्रेण पाशशैथिल्यं मलशक्तितिरोहितम्[3]।
छेदनं मर्दनं तेषां वर्तुलीकरणं तथा ॥१७
दाहं तदक्षराभावं[4] प्रायश्चित्तमथोदितम् ॥१७½

तत्पश्चात् पाश-बन्धन से छुटकारा पाने के लिए देहसम्पत्ति, जन्माधिकार, भोग, लय, स्रोतः-शुद्धि, तत्त्वविशोधन और मलनिराकरण आदि कार्य करे। इस प्रकार निस्तार के लिए विधिपूर्वक सौ आहुतियाँ डालकर अस्त्र-मन्त्र से पाठ की शिथिलता, मलशक्ति का तिरोधान, छेदन, मर्दन, वर्तुलीकरण, दाह, अक्षराभाव तथा प्रायश्चित्त करे।१५-१७½।

रुद्राण्यावाहनं पूजा रूपगन्धसमर्पणम् ॥१८
ॐ ह्लीं[5] रूपगन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा ॥१९
संश्राव्य शाम्भवीमाज्ञां रुद्रं विसृज्य कारणम्।
विधायाऽऽत्मनि चैतन्यं पाशसूत्रे निवेशयेत् ॥२०

---

१ क. ङ. च. 'द्विक्षेपाद्घृतप्रवेश'। २ क. ङ. च. कलाकु'। ख. ग. कल्पकु'। ३ घ. 'रोहिताम्। ४ क. ङ. च. 'दङ्गनाभा'। ५ क. ङ. च. ह्रां।

तदनन्तर रुद्राणी का आवाहन करके 'ॐ ह्रीं रूप-गन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा'—इस मन्त्र से रूप, गन्ध आदि वस्तु समर्पित करे। फिर शिव की आज्ञा सुनाकर कारणरूप रुद्र का विसर्जन करे। तत्पश्चात् आत्मा में चेतनता का ध्यान करके पाश-सूत्र में उसे आरोपित करे।१८-२०।

विन्दुं शिरसि विन्यस्य विसृजेत्पितरौ ततः।
दद्यात्पूर्णां विधानेन समस्तविधिपूरणीम् ॥२१

शिर पर विन्दु का न्यास करके वागीश्वरी और वागीश्वर का विसर्जन करे। तदनन्दर विधानपूर्वक सकलविधियों को पूर्ण करने वाली पूर्णा दक्षिणा देनी चाहिए।२१

पूर्वोक्तविधिना कार्यं विद्यायां ताडनादिकम्।
स्वबीजं तु विशेषः[1] स्यादिति विद्या विशोधिता ॥२२

फिर पूर्वोक्त विधि से विद्या में ताडन आदि करना चाहिए। पूर्वोक्त विधि से इसमें इतनी विशेषता यह है कि यहाँ पर अपने (विद्या) बीज मन्त्र का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार विद्या-कला की शुद्धि की जाती है।२२

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षायां विद्याशोधनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः।८६

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शान्तिशोधनम्

ईश्वर उवाच—

संदध्यादधुना विद्यां शान्त्या सार्धं यथाविधि।
शान्तौ तन्तुद्वयं[2] लीनं[3] भावेश्वरसदाशिवौ ॥१

महेश्वर बोले—अब शान्ति कला के साथ विधिपूर्वक विद्या-कला का सन्निधान करना चाहिए। शान्ति में ईश्वर और सदाशिव—ये दो तत्त्व विद्यमान रहते हैं।१

---

१ क. ख. ग. ङ. च. विशेषं। २ क. ङ. च. तत्त्वत्रयं नीलं भा....।
३ ख. ग. नीलं।

हकारश्च क्षकारश्च द्वौ वर्णौ परिकीर्तितौ ।
रुद्राः समाननामानो भुवनैः सह तद्यथा ॥२
प्रभवः समयः क्षुद्रो विमलः शिव इत्यपि ।
घनौ[1] निरञ्जनाकारौ श्वशुरौ दीप्तकारणौ ॥३
त्रिदशेश्वरनामा च त्रिदशः कालसंज्ञकः ।
सूक्ष्माम्बुजेश्वरश्चेति रुद्राः शान्तौ प्रतिष्ठिताः[2] ॥४
व्योमव्यापिने व्योमव्याप्यरूपाय सर्वव्यापिने शिवायानन्ता-[3]
यानाथायानाश्रिताय ध्रुवाय[4]शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय
नित्ययोगिने ध्यानाहारायेति द्वादशपदानि ॥५
पुरुषः कवचोमन्त्रो[5] बीजे विन्दूपकारकौ ॥५१/२

इसमें हकार और क्षकार वर्ण तथा समान नाम वाले रुद्र और भुवन ये हैं—प्रभव, समय, क्षुद्र, विमल, शिव, घन, निरञ्जन, अङ्गार, सुशिरस्, दीप्त, कारण, त्रिदशेश्वर, कालसूक्ष्म और अम्बुजेश्वर । शान्ति कला में निम्न बारह पद विद्यमान हैं—व्योमव्याप्यरूपाय, सर्वव्यापिने, शिवाय, अन्ताय, अनाथाय, अनाश्रिताय, ध्रुवाय, शाश्वताय, योगपीठसंस्थिताय, नित्ययोगिने तथा ध्यानाहाराय। पुरुष और कवच में दो बीज मन्त्र हैं—बिन्दु और पकार वर्ण हैं। २-५१/२।

अलम्बुषायसानाड्यौ वायूकृकरकूर्मकौ ॥६
इन्द्रिये त्वक्करावस्याः स्पर्शस्तु विषयो मतः ।
गुणौ[6] स्पर्शनिनादौ द्वावेकः कारणमीश्वरः ॥७
तुर्यावस्थितिशान्तिस्थं[7] संभाव्य भुवनादिकम् ।
विदध्यात्ताडन भेदं प्रवेशं च[8] वियोजनम् ॥८

इसकी अलम्बुषा और अयसा नाडियाँ, कृकर और कूर्मक नामक वायु हैं। दो इन्द्रियाँ मानी गयी हैं—त्वचा और हाथ, जिनका विषय स्पर्श माना गया है। स्पर्श और निनाद नामक दो गुण हैं। इसका कारण ईश्वर है और तुर्यावस्था शान्ति कला की अवस्था है। इस प्रकार शान्ति कला में विद्यमान भुवनादि का ताडन, भेद, प्रवेश और वियोजन करना चाहिए।६-८।

---

१ ख. ग. घनौ । २ क. ङ. च. °ताः । व्या° । ३ क. °वायानाथा° । ङ. °वायानाश्रि° । च. वाय स्वनाथा° । ४ क. ङ. च. क्रूराय । ५ घ कवचौ । ६ क. ङ. च. °णौ चात्र नि° । ७ ख. ग. शान्त्यर्थे सं० । ८ क. ङ. च. नियोजयेत् ।

आकृष्य ग्रहणं कुर्याच्छान्तेर्वदनसूत्रतः ।
आत्मन्यारोप्य संगृह्य[1] कलां कुण्डे निवेशयेत् ॥९
ईश[2] तवाधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम् ।
भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन कुर्याद्विज्ञापनामिति ॥१०

गुरु को शान्ति में प्रवेश करके वदन सूत्र से आत्मा को खींचकर अपने आप में आरोप और संग्रह करके कला को कुण्ड में निवेशित करना चाहिए। उस समय उसे इस प्रकार निवेदन करना चाहिए—'हे ईश। आपके अधिकार में मैं इस मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ।' आपको इसके अनुकूल होना चाहिये। ९-१०।

आवाहनादिकं पित्रोः शिष्यस्य ताडनादिकम् ।
विधायाऽऽदाय चैतन्यं विधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ॥११

उसे माता और पिता (रूपी देवी और देवता) का आवाहन करके, शिष्य का ताडनादि करके विधिपूर्वक चैतन्य को ग्रहण करके उसे अपने आप में विनियुक्त करना चाहिए।११

पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया ।
हृत्संपुटात्मबीजेन देवीगर्भे नियोजयेत् ॥१२

पूर्ववत् उद्भव नाम्नी मुद्रा से पितृसंयोग की कल्पना करके हृत् सम्पुट मन्त्र युक्त आत्मबीज से देवी के गर्भ में नियोजित करना चाहिए।१२

देहोत्पत्तौ हृदा पञ्च शिरसा जन्महेतवे ।
शिखया[3] वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना ॥१३

शरीर की उत्पत्ति में हृद्-मन्त्र और जन्म के लिए पाँच बार शिरस् मन्त्र, अविकार के लिए शिखा मन्त्र और भोग के लिए कवच-मन्त्र हुआ करता है।१३

लयाय शस्त्रमन्त्रेण स्रोतः शुद्धौ शिवेन च ।
तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानादि पूर्ववत् ॥१४

लय के लिए शस्त्र मन्त्र और स्रोतः शुद्धि शिव मन्त्र से की जाती है। तत्त्व शुद्धि हृद्-मन्त्र से होती है और गर्भाधानादि पूर्ववत् किये जाते हैं।१४

वर्मणा पाशशैथिल्यं निष्कृत्यैवं शतं यजेत्[4] ।
मलशक्तितिरोधाने शस्त्रेणाऽऽहुतिपञ्चकम् ॥१५

---

१. क. ङ. च. संपूज्य। २ क. ङ. च. ईशे। ३ क. ङ. च. °या चाधि°। ४ घ. जपेत्।

कवच-मन्त्र से पाश को शिथिल करके सौ आहुतियाँ देनी चाहिए और मल-शक्ति को दूर करने के लिए शस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए। १५

एवं पाशवियोगेऽपि ततः सप्तास्त्रजप्तया।
छिन्द्यादस्त्रेण कर्तर्या पाशान्वीजवता यथा ॥१६

इसी प्रकार पाश के विमोचन में सात बार अस्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिए और बीज युक्त अस्त्र-मन्त्र से पाशों का छेदन करना चाहिए। १६

ॐ ह्रौं[1] शान्तिकलापाशाय हः,[2] हूं फट्॥ १७

उस समय "ॐ ह्रौं शान्तिकलापाशाय हः, हूं फट्" इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए। १७

विसृज्य वर्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण[3] पूर्ववत्।
घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥१८

पूर्ववत् अस्त्र-मन्त्र से पाश को वर्तुलाकार करके उसे छुड़ाकर घृतपूर्ण स्रुव को लेकर अस्त्र-मन्त्र से होम करना चाहिए। १८

अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये।
प्रायश्चित्तनिषेधाय दद्यादष्टाऽऽहुतीरथ ॥१९
ॐ हः, अस्त्राय[4] हूं फट् ॥२०

पाशाङ्कुश की निवृत्ति के लिए अस्त्र-मन्त्र से पाँच आहुतियाँ डालनी चाहिए और प्रायश्चित का निषेध करने के लिए आठ आहुतियाँ देनी चाहिए। उस समय 'ॐ हः अस्त्राय हूं फट्' यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।१९-२०।

हृदेश्वरं समावाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे।
विदधीत विधानेन तस्मै शुल्कसमर्पणम् ॥२१

हृदेश्वर का आवाहन करके तथा उसका पूजन, तर्पण करके विधानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए। २१

ॐ हामीश्वर बुद्ध्यहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा ॥२२

उस समय 'ॐ हामीश्वर बुद्ध्यहंकारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ना चाहिए। २२

---

१ क. ङ. च. हूं। २ क. ङ. च. हाः। ३ ख. °मन्त्रेण। ४ ख. ह्लूं।

नि:शेषदग्धपाशस्य[1] पशोरस्येश्वर त्वया ।
न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति ।।२३

उस समय इस शिवाज्ञा को सुनना चाहिए। "हे ईश्वर! जिसके समस्त पाश दग्ध हो गये हैं, उस इस पशु के बन्धन के रूप में तुम्हें नहीं रहना चाहिए।२३

विसृजेदीश्वरं देवं रौद्रात्मानं नियोजयेत् ।
ईशश्चन्द्रमिवाऽऽत्मानं विधिनाऽऽमनि योजयेत् ।।२४

तदनन्तर इन देवता को विदा करके रुद्र का विनियोग करना चाहिए और अपने आप में ईश और चन्द्रमा की तरह योग कराना चाहिए।२४

सूत्रे संयोजयेदेनं शुद्धयोद्भवमुद्रया ।
दद्यान्मूलेन शिष्यस्य शिरस्यमृतविन्दुकम्[1] ।।२५

तदनन्तर शुद्धि उद्भव मुद्रा से इसे सूत्र से संयुक्त करके मूल मन्त्र से शिष्य के मस्तक पर अमृतविन्दु डालना चाहिए। २५

विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः ।
दद्यात्पूर्णां विधानज्ञो निःशेषविधिपूरणीम् ।।२६

पुष्पादि से पूजित माता-पिता रूप दोनों देवताओं को विदा करके विधान को जानने वाले गुरु को निःशेष विधि की पूर्ति के लिए पूर्णाहुति देनी चाहिए। २६

अस्यामपि विधातव्यं पूर्ववत्ताडनादिकम् ।
स्वबीजं तु विशेषः स्याच्छुद्धिः शान्तेरपीडिता ।।२७

इसमें भी पूर्ववत् ताडन इत्यादि का विधान करना चाहिए। यहाँ पर भी पूर्वोक्त विधि से इतनी ही विशेषता आती है कि यहाँ विधि में शान्ति कला के बीज का विनियोग किया जाय। इस प्रकार शान्ति-कला की शुद्धि पूरी होती है।२७

इत्याग्नेये महापुराणे निर्वाणदीक्षायां शान्तिशोधनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।८७

---

१ क. ङ. च. °तपिण्डक° ।

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाशेषविधिः

ईश्वर उवाच—

संधानं शान्त्यतीतायाः शान्त्या सार्धं विशुद्धया ।
कुर्वीत पूर्ववत्तत्र तत्त्ववर्णादि[1] तद्यथा ॥१
ॐ ह्लीं[2] क्षौं हौं हामिति संधानानि ॥२
उभौ शक्तिशिवौ तत्त्वे भुवनाष्टकसिद्धिकम्[3] ।
दीपकं रोचिकं[4] चैव मोचकं चोर्ध्वगामि च ॥३
व्योमरूपमनाथं च स्यादनाश्रितमष्टकम् ।
ॐकारपदमीशाने[5] मन्त्रो वर्णाश्च षोडश ॥४

महेश्वर बोले—विशुद्ध शान्ति के साथ शान्त्यतीत कला को जोड़ते हुए पहले की विधि का अनुसरण करे। शान्त्यतोत कला में तत्त्व, वर्ण आदि बताए जाते हैं। शान्ति कला को मिलाने का मन्त्र यह है--'ॐ ह्लीं क्षौं हौं हाम्' इसमें शक्ति और शिव—ये दो तत्त्व हैं। दीपक, रोचिक, मोचक, ऊर्ध्वगामि, व्योमरूप, अनाथ अनाश्रित और ॐकार पद—ये आठ सिद्धि के भुवन हैं। और ईशान मन्त्र है। अकार से लेकर विसर्ग पर्यन्त सोलह वर्ण हैं।१-४।

अकारादिविसर्गान्ता वीजेन देहकारकौ ।
कुहूश्च शङ्खिनी नाड्यौ[6] देवदत्तधनंजयौ ॥५

अकार से लेकर विसर्ग पर्यन्त सोलह अक्षर हैं, नाद और हकार बीज हैं। कुहू और शङ्खिनी नामक दो नाड़ियाँ हैं। देवदत्त और धनञ्जय नामक दो वायु हैं।५

मारुतौ[7] स्पर्शनं श्रोत्रमिन्द्रिये विषयो नभः ।
शब्दो गुणोऽस्यावस्था तु तुर्यातीता तु पञ्चमी ॥६
हेतुः सदाशिवो देव इति तत्त्वादिसंचयम् ।
संचिन्त्य शान्त्यतीताख्यं[8] विदध्यात्ताडनादिकम् ॥७

---

१. क. च °वर्णोदितं य° । २ क. ङ. च. हां । ख. ह्रीं । ३ क. ङ. च.° कमिश्रितम् । ४ क. च. रौचकं । ५ क. ङ. च. .शानं म° । ६ क. ख. ङ. च. नाथौ । ७ मारुतौ.........पञ्चमी नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ८ क. ङ. च. °तायां वि° ।

त्वचा और श्रोत्र—ये दो इन्द्रियाँ हैं, शब्द विषय है, गुण भी वही है और अवस्था पाँचवीं तुरीयातीता है। सदाशिव देव ही एकमात्र हेतु है। इस तत्त्वादि संचय की शान्त्यतीतकला में स्थिति है, ऐसा चिन्तन कर ताडन आदि कर्म करे।६-७।

कलापाशं समाताड्य फडन्तेन विभिद्य च।
प्रविश्यान्तर्नमोन्तेन फडन्तेन[1] वियोजयेत् ।।८

कलापाश के ताडन करने के बाद अन्त में 'फट्' से अन्त होने वाले मन्त्र से उसे काट दे। पश्चात् 'नमः' जुड़े हुए मन्त्र से भीतर प्रवेश करके 'फट्' से अन्त होने वाले मन्त्र से उसे वियुक्त कर दे।८

शिखाहृत्संपुटीभूतं स्वाहान्तं सृणिमुद्रया[2]।
पूरकेण समाकृष्य पाशं मस्तकसूत्रतः ।।९
कुम्भकेन समादाय रेचकेनोद्भवाख्यया[3]।
हृत्संपुटनमोन्तेन[4] वह्नि[5] कुण्डे निवेशयेत् ।।१०

शिखा और हृद्-मन्त्र से सम्पुटित और अन्त में स्वाहा शब्द से युक्त शान्ति मन्त्र पढ़कर अङ्कुश मुद्रा बनाकर पूरक प्राणायाम कर लेने के पश्चात् पाश को मस्तक सूत्र से खींच ले। फिर कुम्भक प्राणायाम करने के बाद उसे हाथ में लेकर रेचक प्राणायाम तथा उद्भव मुद्रा करके 'हृद्' शब्द से सम्पुटित और अन्त में 'नमः' शब्द से युक्त मन्त्र पढ़कर अग्नि को कुण्ड में स्थापित करे।९-१०।

अस्याः पूजादिकं सर्वं निवृत्तेरिव साधयेत्।
सदाशिवं समावाह्य पूजयित्वा प्रतर्प्य च ।।११
सदाऽऽख्यातेऽधिकारेऽस्मिन्मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहम्।
भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन भक्त्या विज्ञापयेदिति ।।१२

शान्त्यतीत कला की भी पूजा आदि निवृत्ति कला की ही तरह करनी चाहिए। सदाशिव का आवाहन, पूजन तथा तर्पण करके उससे भक्तिपूर्वक निवेदन करे कि—'इस नित्य प्रसिद्ध अधिकार में मैं मुमुक्षु को दीक्षित कर रहा हूँ। इसलिए आप अनुकूल रहें'।११-१२।

---

१ क. ङ. च. °न नियो°। २ क. ङ. च. प्राणमुद्रया। ख. ग. शूलमुद्रया। ३ क. ङ. च. °केनान्तराख्य°। ४ ख. ग. °पुटं न°। ५ क. ख. ग. ङ. च. वह्निकु°।

पित्रोरावाहनं पूजां कृत्वा तर्पणसंनिधौ।
हृत्सम्पुटात्मबीजेन शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ॥१३

तदनन्तर माता-पिता का आवाहन और पूजन तथा तर्पण करके 'हृद्' शब्द से सम्पुटित बीज-मन्त्र के द्वारा शिष्य के वक्षःस्थल पर ताडन करे ।१३

ॐ[1] हां हूं हां[2] फट् ॥१४
प्रविश्य चाप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः।
शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ॥१५
ॐ हां[3] हः, हूं[4] फट् ॥१६
स्वाहान्तेन तदाकृष्य तेनैव पुटितात्मना।
गृहीत्वा तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत् ॥१७
ॐ हां हं[5] हीमात्मने नमः ॥१८

इसका बीज-मन्त्र यह है—'ॐ हां हूं हां फट्' इसी मन्त्र से प्रवेश भी करना चाहिए। तदनन्तर 'ॐ हां हः, हूं फट्' मन्त्र पढ़कर ज्येष्ठा नामक अङ्कुश मुद्रा बनाकर शस्त्र से पाशसंयुक्त चैतन्य को विभक्त करे। फिर अन्त में 'स्वाहा' शब्द जोड़कर इसी मन्त्र से पाश को खींचकर 'ॐ हां हं हीमात्मने नमः' मन्त्र से उसे आत्मा से नियोजित करे।१४-१८।

पूर्ववत्पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया।
वामया तदनेनैव देव्या गर्भे नियोजयेत् ॥१९

पहले की भाँति उद्भव-मुद्रा से पितृसंयोग उत्पन्न करके, उपर्युक्त मन्त्र से देवी के गर्भ में नियोग करे।१९

गर्भाधानादिकं सर्वं पूर्वोक्तविधिनाऽऽचरेत्[6]।
मूलेन पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैव शतं जपेत् ॥२०

गर्भाधान आदि समस्त कार्य पूर्वोक्त विधि से सम्पन्न करना चाहिए। मूल मन्त्र से पाश को शिथिल कर निष्कृति के लिए सौ बार मन्त्र का जप करना चाहिए।२०

मलशक्तितिरोधाने पाशानां च वियोजने।
पञ्च पञ्चाऽऽहुतीर्दद्यादायुधेन यथा पुरा ॥२१

---

१ ख. ॐ ह्लां ह्लूं ह्लां फ०। २ घ. हं। ३ क. ङ. च. हां हूं।
४ ख. ग. ह्लूं। ५ क. ङ. च. हं हामा। ६ क. ङ च. ०धिमाच०।

मल-शक्ति को तिरोहित करने में तथा पाशों को वियुक्त करने में पूर्व की भाँति आयुध-मन्त्र से पाँच-पाँच आहुतियाँ डाले।२१

पाशानायुधमन्त्रेण सप्तवाराभिजप्तया।
छिन्द्यास्त्रेण कर्तर्या कलाबीजयुजा यथा ॥२२
ॐ हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः, हूं[1] फट् ॥२३
विसृज्य वर्तुलीकृत्य पाशानस्त्रेण पूर्ववत्।
घृतपूर्णे स्रुवे दत्त्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥२४
अस्त्रेण जुहुयात्पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये।
प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाऽऽहुतीस्ततः ॥२५

आयुध मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित की हुई छुरी से 'ॐ हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः हूं फट्' यह कलावीज मन्त्र पढ़ते हुए पाशों को काट दे। पुनः पहले की भाँति विसर्जन कर पाशों की गुठली बनाकर अस्त्र मन्त्र से घृत पूर्ण स्रुव पर रखकर कलास्त्र मन्त्र से हवन करे। पाश तथा अङ्कुश का दोष दूर करने के लिए अस्त्र मन्त्र से पाँच आहुतियाँ दे और प्रायश्चित्त के निषेध के लिए आठ आहुतियाँ दे।२२-२५।

सदाशिवं हृदाऽऽवाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे।
पूर्वोक्तविधिना कुर्यादधिकारसमर्पणम् ॥२६
ॐ हां सदाशिव[2] मनोबिन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा ॥२७
निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य सदाशिव।
बन्धाय न त्वया स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति ॥२८

तदनन्तर हृद्-मन्त्र से सदाशिव का आवाहन, पूजन और तर्पण करके 'ॐ हां सदाशिव मनोविन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा' मन्त्र से पहले की भाँति अधिकार समर्पण करे और शिव की यह आज्ञा सुनाये—'हे सदाशिव! जिसका पाश भलीभाँति जल गया है, ऐसे पशु को तुम बन्धन में मत डालो'।२६-२८।

मूलेन जुहुयात्पूर्णां विसृजेत्तु सदाशिवम्[2]।
ततो विशुद्धमात्मानं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ॥२९
संहारमुद्रया रौद्र्या संयोज्य गुरुरात्मनि[3]।
कुर्वीत शिष्यदेहस्थमुद्धृत्योद्भवमुद्रया ॥३०

---

१ क. ङ च. हुं। ख. ह्रूं। २ क. च. ०व नमो बि०। ३ क. ङ. च.० त्मवान्। कु०।

इसके बाद मूलमन्त्र से हवन करके सदाशिव का विसर्जन करे। तत्पश्चात् गुरु शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान विशुद्ध मन को रुद्र देवता वाली संहार-मुद्रा से आत्मा में संयुक्त करके उद्भव-मुद्रा से उसे शिष्य की देह में स्थापित करे।२९-३०।

दद्यादाप्यायनायास्य मस्तकेऽर्घ्याम्बुबिन्दुकम्[1] ।
क्षमयित्वा महाभक्त्या पितरौ विसृजेत्तथा ॥३१
खेदितौ शिष्यदीक्षायै यन्मया पितरौ युवाम् ।
कारुण्यान्मोक्ष (च) यित्वा तद्व्रज त्वं स्थानमात्मनः ॥३२

तदनन्तर वृद्धि के लिए शिष्य के मस्तक पर अर्घ्य-जल का बिन्दु छिड़ककर अत्यन्त भक्ति से क्षमाप्रार्थनापूर्वक माता-पिता का विसर्जन करते हुए यह कहे कि—'शिष्य की दीक्षा के लिए जो मैंने आप दोनों को कष्ट दिया है, उसे कृपया क्षमा करके अपने स्थान को जाइये' ।३१-३२।

शिखामन्त्रितकर्तर्या बोधशक्तिस्वरूपिणीम् ।
शिखां छिन्द्याच्छिवास्त्रेण शिष्यस्य चतुरङ्गुलाम्[2] ॥३३
ॐ क्लीं[3] शिखायै हूं[4] फट्, ओमस्त्राय हूं[5] फट् ॥३४

तत्पश्चात् 'ॐ क्लीं शिखायै हूं फट्, ओमस्त्राय हूं फट्' इस शिवास्त्र-मन्त्र को पढ़कर शिखा-मन्त्र से अभिमन्त्रित की हुई छूरी से चार अंगुलियों की बोधशक्तिरूप शिखा को काट डाले।३३-३४।

स्रुचि तां घृतपूर्णायां गोविड्गोलकमध्यगाम्[6] ।
संविधायास्त्रमन्त्रेण[7] हूंफडन्तेन होमयेत् ॥३५
ॐ हौं हः,[8] अस्त्राय[9] हूं फट् ॥३६

उस कटी हुई शिखा को गोबर के गोलों के बीच में रखकर घृतपूर्ण स्रुव के ऊपर रखकर 'ॐ हौं हः अस्त्राय हूं फट्'—इस अस्त्र-मन्त्र से हवन करे।३५-३६।

प्रक्षाल्य स्रुक्स्रुवौ शिष्यं संस्नाप्याऽऽचम्य च स्वयम् ।
योजनिकास्थमात्मानं[10] शस्त्रमन्त्रेण ताडयेत् ॥३७

---

१ ख. ग. °स्तके ह्यम्बु° । २ क. ख. ग. ङ. च. °ङ्गुलम् । ३ क. ङ. च. ह्लूं । ख. ग. हूं । ४ ख. ग. ह्लूं । ५ ख. ग. ह्लूं । ६ ख. ग. °विन्दोऽल° । ७ ख. °ण हरूं फ° । ८ क. ङ. च. हं । ९ ख. °य फ° । १० क. ङ. च. °जनीकाक्षमा° ।

इसके बाद स्रुक् तथा स्रुव को धोकर, शिष्य को नहलाकर स्वयं आचमन करके अस्त्र-मन्त्र से योजनिका स्थित आत्मा का ताडन करे।३७

वियोज्याऽऽकृष्य संपूज्य[1] पूर्ववद्द्वादशांशतः।
आत्मीयहृदयाम्भोजकर्णिकायां निवेशयेत् ॥३८

फिर पहले की भाँति वियोग, आकर्षण तथा पूजन करके द्वादशान्त से लेकर अपने हृदय-कमल की कर्णिका पर उसे स्थान दे।३८

पूरितं[2] स्रुवमाज्येन विहिताधोमुखस्रुचा[3]।
नित्योक्तविधिनाऽऽदाय शङ्खसंनिभमुद्रया ॥३९

स्रुव को घी से भरकर अधोमुख स्रुक् से स्पर्श कराकर, शङ्खमुद्रा बनाकर, पूर्वोक्त विधि से ही उसका ग्रहण करे।३९

प्रसारितशिरोग्रीवो नादोच्चारानुसारतः।
समदृष्टिः[4] स्थिरश्चान्तः परभावसमन्वितः ॥४०
कुम्भमण्डलवह्निभ्यः शिष्यादपि निजात्मनः।
गृहीत्वा[5] षड्विधाध्वानं श्रु (स्रु) गग्रे प्राणनाडिकम्[6] ॥४१

उस समय नाद के उच्चारण के अनुसार शिर और ग्रीवा को सीधा रखे। दृष्टि समान और स्थिर होनी चाहिए। हृदय में आकृष्ट भाव रखना चाहिए। तदनन्तर यह चिन्तन करे कि 'कुम्भमण्डल की अग्नियों से, शिष्य से तथा अपनी आत्मा से लेकर षड्विध अध्वा तक स्रुवा के अग्रभाग पर प्राणनाड़ी में स्थित हैं' ।४०-४१।

संचिन्त्य[7] विन्दुवद्ध्यात्वा क्रमशः सप्तधा यथा।
प्रथमं प्राणसंयोगस्वरूपमपरं[8] ततः ॥४२
हृदयादिक्रमोच्चारविसृष्टं[9] मन्त्रसंज्ञकम्[10]।
सुषुम्नानुगतं नादस्वरूपं[11] तु तृतीयकम् ॥४३

---

१ क. ङ. च. संगृह्य। २ क. ङ. च. °तं श्रुव°। ३ क. घ. ङ. च. °खश्रुचा। ४ ख. ग. घ. °दृष्टिशिवश्चा°। ५ क. ङ. च. °त्वा स द्विधाऽऽत्मानं, श्रुगाग्रे। ६ क. ङ. च. °डिगम्। ७ क. ङ. च. °न्त्य विश्रवं ध्यात्वा। ८ ख. ङ. च. °योगं स्व°। ९ क. ङ. च. °न्त्ररूपक°। १०. 'मन्त्रसंज्ञकम्' इत्यस्याग्रे 'पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक्'—इत्यर्धमधिकं घ. पुस्तके। ११ ख. नादं स्व°।

सप्तमे कारणत्यागात्प्रशान्तविस्वरं[1] लयः ।
शक्तिनादोर्ध्वसंचारस्तच्छक्ति विस्वरं[2] मतम् ॥४४
प्राणस्य निखिलस्यापि शक्तिप्रमेयवर्जितम् ।
तत्कालविस्वरं[3] षष्ठं शक्त्यतीतं[4] च सप्तकम् ॥४५

इस प्रकार चिन्तन कर फिर विन्दु की तरह क्रमशः सात विषुओं का ध्यान करे। जैसे, पहले प्राण संयोगस्वरूप का, दूसरे हृदयादि क्रम से उच्चारण करके परित्यक्त मन्त्रसंज्ञकस्वरूप का, तीसरे सुषुम्ना का अनुगमन करने वाले नादस्वरूप का, चौथे सातवें में कारण के त्याग से प्रशान्त विषुवस्वरूप का, पाँचवे शक्तिनाद के ऊपर संचरण करने की शक्तिरूप विषुव का, छठे निखिल प्राणों की अभेद शक्ति से वर्जित काल विषुव स्वरूप का और सातवें अतीतशक्ति-स्वरूप तत्त्व विषुव का ध्यान करे।४२-४५।

तदेतद्योजनस्थानं[5] विस्वरं[6] तत्त्वसंज्ञकम् ।
पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक् ॥४६
शनैरुदीरयन्मूलं कृत्वा शिष्यात्मनो[7] लयम् ।
हकारे तडिदाकारे षडध्वप्राणरूपिणि ॥४७

इसी को योजन स्थान कहते हैं। इसके बाद पूरक तथा कुम्भक प्राणायाम करके थोड़ा सा मुख खोलकर धीरे-धीरे मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए बिजली जैसी आकृति वाले तथा षडध्व के प्राणरूप हकार में शिष्य की आत्मा का लय करे।४६-४७।

उकारं परतो नाभेर्वितस्तिं व्याप्य संस्थितम् ।
ततः परमकारस्तु हृदयाच्चतुरङ्गुलम् ॥४८
ॐ[8] कारवाचकं[9] विष्णोस्ततोऽष्टाङ्गुलकण्टकम्[10] ।
चतुरङ्गुलतालस्थं मकारं रुद्रवाचकम् ॥४९
तद्वल्ललाटमध्यस्थं विन्दुमीश्वरवाचकम् ।
नादं सदाशिवं देवं ब्रह्मरन्ध्रावसानकम् ॥५०
शक्तिं च ब्रह्मरन्ध्रस्थां त्यजन्नित्यमनुक्रमात् ।
दिव्यं पिपीलिकास्पर्शं तस्मिन्नेवानुभूय च ॥५१

---

१ क. ख. ग. ङ. च. विषुवं ल° । २ क. ख. ग. ङ. च. विषुवं । ३ क. ख. ग. ङ. च. °विषुवं ष° । ४ क. ङ. च. °तं तु संयुतम् । ५ घ. °जनास्था° । ६ क ख. ग. ङ. च. विषुवं । ७ क. ख. ग. ङ. च. °त्मना ल° । ८ ख. घ. °कारं वा° । ९ ख. °चको वि° । १० घ. °कण्ठक° ।

नाभि के ऊपर एक बालिश्त तक व्याप्त करके, स्थिर उकार को हृदय से चार अङ्गुल ऊपर तक व्याप्त करके स्थिर आकार को, कण्ठ से आठ अङ्गुल ऊपर तक व्याप्त करके स्थिर विष्णुवाचक ॐकार को, तालु से चार अङ्गुल ऊपर तक व्याप्त करके स्थिर रुद्रवाचक मकार को, ललाट के मध्य में स्थित ईश्वर वाचक विन्दु को, ब्रह्मरन्ध्र के अन्त में स्थित नादरूप सदाशिव देव को और ब्रह्मरन्ध्र में स्थित शक्ति को अनुक्रम से छोड़ते हुए उसी ब्रह्मरन्ध्र में दिव्य पिपीलिका स्पर्श का अनुभव करे ।४८-५१।

द्वादशान्ते परे तत्त्वे परमानन्दलक्षणे ।
भावशून्ये मनोतीते शिवे नित्यगुणोदये ।।५२
विलीयमानमेतस्मिञ्शिष्यात्मानं[1] विभावयेत् ।५२½

पश्चात् ऐसी भावना करे कि परमानन्द लक्षण वाले द्वादशानन मन से परे, भावशून्य, नित्यगुणों के उदय से सम्पन्न और परम तत्त्वस्वरूप शिव में शिष्य की आत्मा विलीन हो गई है ।५२-५२½।

विमुञ्चन्सर्पिषो धारां ज्वालान्तेऽपि परे शिवे ।।५३
योजनिकास्थिरत्वाय[2] वौषडन्तशिवाणुना ।
दत्त्वा पूर्णां विधानेन गुणापादनमाचरेत् ।।५४
ॐ हामात्मने सर्वज्ञो भव स्वाहा । ॐ हामात्मने परितृप्तो भव स्वाहा[3] । ॐ हूमात्मनेऽनादिबोधो भव स्वाहा । ॐ हौमात्मने स्वतन्त्रो भव स्वाहा । ॐ हौमात्मन्नलुप्तशक्तिर्भव स्वाहा । ॐ हः, आत्मनेऽनन्तशक्तिर्भव स्वाहा ।।५५

इसके बाद 'ॐ हामात्मने सर्वज्ञो भव स्वाहा ।' 'ॐ हामात्मने परितृप्तो भव स्वाहा' । 'ॐ हूमात्मनेऽनादिबोधो भव स्वाहा । 'ॐ हामात्मने स्वतन्त्रो भव स्वाहा । 'ॐ हौमात्मन्न..........स्वाहा ।' 'ॐ हः, आत्मनेऽनन्तशक्तिर्भव स्वाहा ।' इन मन्त्रों से प्रज्वलित अग्नि में परमशिव के उद्देश्य से घी की धारा छोड़कर योजनिका की स्थिरता के लिए अन्त में 'वौषट्' शब्द से युक्त शिवमन्त्र से विधिपूर्वक पूर्ण दक्षिणा का दान करे ।५३-५५।

इत्थं षड्गुणमात्मानं गृहीत्वा परमाक्षरात् ।
विधिना भावनोपेतः शिष्यदेहे[4] नियोजयेत् ।।५६

१ ख. ग. घ. °नसे त° । २ क. ङ. च. °जनीयास्थि° । ३ ख. °हा । ओ मा° । ४ क. ङ. च. शिवदे° ।

इस प्रकार भावनायुक्त होकर परमाक्षर षड्गुणसम्पन्न आत्मा का ग्रहण करके उसे शिष्य की देह में नियुक्त करे ।५६

तीव्राणुशक्तिसंपातजनितश्रमशान्तये ।
शिष्यमूर्धनि विन्यस्येद्[1] अर्घ्यादमृतबिन्दुकम्[2] ॥५७
प्रणमय्येशकुम्भादीञ्शिवाद्दक्षिणमण्डले ।
सौम्यवक्त्रं व्यवस्थाप्य शिष्यं दक्षिणमात्मनः ॥५८
त्वयैवानुगृहीतोऽयं मूर्तिमास्थाय मामकीम् ।
देवे वह्नौ गुरौ तस्माद्भक्तिं[3] चाप्यस्य वर्धय ॥५९

तदनन्तर तीव्र अणुशक्ति के संपात से उत्पन्न श्रम की शान्ति के लिए शिष्य के मस्तक पर अर्घ्य से अमृत-बिन्दु को छिड़क दे और शिवकुम्भ आदि (पात्रों) को प्रणाम करके शिव से दक्षिण ओर के मण्डल में प्रसन्न मुख वाले शिष्य को अपनी दाहिनी ओर बैठा कर देवेश से यह निवेदन करे कि—"मेरी मूर्ति को धारण कर आपने ही इसे अनुगृहीत किया है। इसलिए देवता, अग्नि तथा गुरु में इसकी भक्ति को बढ़ाते रहिए" ।५७-५९।

इति विज्ञाप्य देवेशं प्रणम्य च गुरुः स्वयम् ।
श्रेयस्तवास्त्विति ब्रूयादाशिषं शिष्यमादरात् ॥६०
ततः परमया भक्त्या दत्त्वा देवेऽष्टपुष्पिकाम् ।
पुत्रकं शिवकुम्भेन संस्नाप्य विसृजेन्मखम् ॥६१

यह कहकर स्वयं गुरु देवेश को प्रणाम कर शिष्य को आदरपूर्वक आशीर्वाद दे कि—'तुम्हारा कल्याण हो।' तदनन्तर देवता को परम भक्तिपूर्वक आठ पुष्पों का गुच्छा समर्पित करके शिष्य को शिव-कुम्भ के जल से नहला कर यज्ञ का विसर्जन कर देना चाहिए ।६०-६१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये निर्वाणदीक्षाकथनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।८८

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

एकतत्त्वदीक्षाविधिः

ईश्वर उवाच
अथैकतात्त्विकी दीक्षा लघुत्वादुपदिश्यते ।
सूत्रबन्धादि कुर्वीत यथायोगं निजाणुना[4] ॥१

---

१ क. ङ. च. °न्यस्य दद्यादमृ° । २ ख. ग. °दर्घाद° । ३ क. ङ. च. °क्तिंनाशस्य । ४ घ. °जात्मना ।

कालाग्न्यादिशिवान्तानि तत्त्वानि परिभावयेत् ।
समतत्त्वे समग्राणि सूत्रे मणिगणानिव ।।२
आवाह्य शिवतत्त्वादि[1] गर्भाधानादि पूर्ववत् ।
मूलेन किं तु कुर्वीत सर्वशुल्कसमर्पणम् ।।३
प्रददीत ततः पूर्णां तत्त्वव्रातोपगर्भिताम् ।
एकयैव यया शिष्यो निर्वाणमधिगच्छति ।।४
योजनायै शिवे चान्यां स्थिरत्वापादनाय च ।
दत्त्वा पूर्णां प्रकुर्वीत शिवकुम्भाभिषेचनम् ।।५

महेश्वर बोले--अब एक तत्त्व की दीक्षा लघु होने के कारण पहले मैं उसे ही बता रहा हूँ। यथावसर यथोचित विधि से स्वकीय मन्त्र से सूत्र-बन्धन आदि करके कालाग्नि से लेकर शिव पर्यन्त तत्त्वों का इस प्रकार चिन्तन करे कि 'यथा सूत्र में मणियाँ गूँथी रहती हैं, वैसे ही शिव तत्त्व में अन्य समस्त तत्त्व ओत-प्रोत हैं।' तदनन्तर शिव तत्त्व आदि का आवाहन करके पूर्व की भाँति गर्भाधान आदि संस्कार करके मूल मन्त्र से सब शुल्कों का समर्पण करे। फिर तत्त्व समूह से उपगर्भित पूर्णाहुति प्रदान करे, जिससे शिष्य को निर्वाण की प्राप्ति हो जाय। शिवभक्ति में नियोजन और स्थिरता की प्राप्ति के लिए दूसरी बार पूर्णाहुति देकर शिव-कुम्भ के जल से उसका अभिषेक करना चाहिए।१-५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकतत्त्वदीक्षाविधिकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः। ८९

अथ नवतितमोऽध्यायः

अभिषेकादिविधिकथनम्

ईश्वर उवाच

शिवमभ्यर्च्याभिषेकं कुर्याच्छिष्यादिके श्रिये ।
कुम्भानीशादिकाष्ठासु क्रमशो नव विन्यसेत् ।।१

१ ख. °त्त्वानि ग° ।

तेषु क्षारोदं क्षीरोदं दध्युदं घृतसागरम् ।
इक्षुकादम्वरीस्वादुमस्तूदानष्ट सागरान् ॥२
निवेशयेद्यथासंख्यमष्टौ विद्येश्वरानथ[1] ।
एकं शिखण्डिनं रुद्रं श्रीकण्ठं तु द्वितीयकम् ॥३
त्रिमूर्तिमेकरुद्राक्षमेकनेत्रं[2] शिवोत्तमम् ।
सप्तमं[3] सूक्ष्मनामानमनन्तं रुद्रमष्टमम् ॥४
मध्ये शिवं समुद्रं च शिवमन्त्रं च विन्यसेत् ।
यागालयान्दिगीशस्य[4] रचिते स्नानमण्डपे ॥५

महेश्वर बोले—शिव का पूजन करके शिष्य आदि के कल्याण के लिए उसका अभिषेक करे। उत्तर पूर्व आदि दिशा-विदिशाओं में क्रमशः नौ घटों की स्थापना करे। उन घटों में लवण-समुद्र, क्षीर-समुद्र, दधि-समुद्र, घृत-समुद्र, इक्षु-समुद्र, मद्य-समुद्र, मधु-समुद्र और तर्क-समुद्र—इन आठ समुद्रों का (भावात्मक) निवेश करके क्रमशः आठ विद्येश्वरों को भी उनमें सन्निविष्ट कर दे। पहला विद्येश्वर (रुद्र) शिखण्डी है, दूसरा श्रीकण्ठ, तीसरा त्रिमूर्ति, चौथा एक रुद्राक्ष, पाँचवाँ एक नेत्र, छठा शिवोत्तम, सातवाँ सूक्ष्म, आठवाँ अनन्त है। मध्य में शिव, समुद्र तथा शिवमन्त्र का न्यास करना चाहिए तथा यज्ञ-मन्दिर एवं दिक्पालों के स्नान-मण्डप का निर्माण करना चाहिए।१-५।

कुर्यात्करद्वयायामां वेदीमटाष्ङ्गुलोच्छ्रिताम् ।
श्रीपर्णाद्यासने तत्र विन्यस्यानन्तमासनम्[5] ॥६
शिष्यं निवेश्य पूर्वास्यं सकलीकृत्य पूजयेत् ।
काञ्जिकौदनमृद्भस्मदूर्वागोमयगोलकैः ॥७
सिद्धार्थदधितोयैश्च कुर्यान्निर्मन्थनं[6] ततः[7] ।
क्षारोदानुक्रमेणाथ हृदा विद्येशशम्बरैः[8] ॥८
कलशैः स्नपयेच्छिष्यं सुधाधारणयाऽन्वितम् ।
परिधाप्य सिते वस्त्रे निवेश्य शिवदक्षिणे ॥९

---

१ क. ख. ग. ङ. च. विश्वेश्व० । २ ख. ग. घ. ०मूर्तमे० । ३ ख. ग. ०मं शूकना० । ४ ख. ग. ०यादिग्गरीश० । ५ घ. ङ. ०मानसम् । ६ ख. ग. ०मंथनं । ७ क. ङ. च. ०तः । क्षीरो० । ८ च. ०शसंचरैः ।

पूर्वोदितासने शिष्यं पुनः पूर्ववदर्चयेत् ।
उष्णीषं योगपटंट् च मुकुट्टं[1] कर्तरीं घटीम्[2]।१०
अक्षमालां पुस्तकादि[3] शिबिकाद्यधिकारकम् ।
दीक्षाव्याख्याप्रतिष्ठाद्यं ज्ञात्वाऽद्यप्रभृति त्वया ।।११
सुपरीक्ष्य विधातव्यमाज्ञां संश्रावयेदिति ।
अभिवाद्य ततः शिष्यं प्रणिपत्य महेश्वरम् ।।१२
विघ्नज्वालापनोदार्थं कुर्याद्विज्ञापनां[4] यथा ।
अभिषेकार्थमादिष्टस्त्वयाऽहं गुरुमूर्तिना ।।१३
संहितापारगः सोऽयमभिषिक्तो मया शिव ।
तृप्तये मन्त्रचक्रस्य पञ्चपञ्चाऽऽहुतीर्यजेत् ।।१४

तदनन्तर दो हाथ लम्बी-चौड़ी और आठ अङ्गुल ऊँची वेदी का निर्माण करे। बिल्वपत्र आदि के बने आसन पर अनन्त (भगवान्) के आसन की रचना करके शिष्य को पूर्वाभिमुख बैठाकर सकलीकरणपूर्वक पूजन करे। पश्चात्, काँजी, भात, मिट्टी, भस्म, दूब, गोबर, सरसों, और तक्र से क्रमशः शिष्य के देह को मलकर लवण-समुद्र आदि के क्रम से मन्त्रोच्चारणपूर्वक विद्येश्वरों के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए कलशों के जल से उस शिष्य को स्नान कराये, जो उस जलधारा को अमृत के समान समझता हो। स्नानोत्तर शुक्ल वस्त्र पहनाकर शिव से दाहिनी ओर पूर्वोक्त आसन पर बैठाकर पुनः पहले की भाँति पूजन करे। तदनन्तर शिष्य से कहे कि "आज से तुम दीक्षा की व्याख्या, प्रतिष्ठा आदि जानकर उष्णीष, योगपट्ट, मुकुट, कर्तरी, (कैंची) घटी, रुद्राक्ष-माला, पुस्तक, शिबिका आदि वस्तुओं की भलीभाँति परीक्षा करके उसका व्यवहार करो।" इसके बाद शिष्य और महादेव का अभिवादन करके विघ्न ज्वाला की शान्ति के लिए (शिव से) निवेदन करे कि "हे शिव ! गुरुमूर्तिरूप अपने अभिषेक के लिए मुझे आदेश दिया है, इसलिए मैंने संहिता भाग का पूर्ण अध्ययन किए हुए, इस शिष्य को अभिषिक्त किया है।" तदन्तर मन्त्र-चक्र की तृप्ति के लिए पाँच-पाँच आहुतियाँ डालकर पूर्णाहुति प्रदान करे।९-१४।

---

१ ख. मुकुरं। २ ख. पटीम्। ३ ख. ङ. पुष्पका°। ४ ख. 'पनं तथा।

दद्यात्पूर्णां ततः शिष्यं स्थापयेन्निजदक्षिणे ।
शिष्यदक्षिणपाणिस्था अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीः क्रमात् ।।१५
लाञ्छयेदुपवद्धाय[1] दग्धदर्भाग्रशम्बरैः ।
कुसुमानि करे दत्त्वा प्रणामं कारयेदमुम् ।।१६
कुम्भेऽनले शिवे स्वस्मिंस्ततस्तत्कृत्यमाविशेत् ।
अनुग्राह्यास्त्वया शिष्याः शास्त्रेण सुपरीक्षिताः ।।१७
भूपवन्मानवादीनामभिषेकादभीप्सितम् ।
[2]ॐ[3] श्रां श्रौं पशुं हूं फडित्यस्त्रराजाभिषेकतः ।।१८

फिर शिष्य को अपने दाहिने भाग में बैठाकर उसके दाहिने हाथ के अंगूठे और अङ्गुलियों को क्रमशः जले हुए कुशों के अग्रभाग से पोंछकर उसके हाथ में फूल देकर उससे घट, अग्नि, शिव तथा अपने को प्रणाम कराये । तत्पश्चात् देवता से यह प्रार्थना करे कि "शास्त्र द्वारा परीक्षा किये हुए शिष्यों के ऊपर आप अनुग्रह किया करें ।" जैसे राज्याभिषेक के बाद राजा प्रजा की अभिलाषाएँ पूरी करता है उसी भाँति 'ॐ श्रां श्रौं पशुं हुं फट्—' इस, मन्त्रराज के द्वारा अभिषिक्त होने पर शिष्य की सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं ।१५-१८।

इत्याग्नेये महापुराणेऽभिषेकादिविधिकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।९०

अथैकनवतितमोऽध्यायः

अभिषिक्तेन कर्तव्यस्य तत्तद्देवतापूजनस्य विधिः

ईश्वर उवाच—

अभिषिक्तः शिवं विष्णुं पूजयेद्भास्करादिकान् ।
शङ्खभेर्यादिनिर्घोषैः स्नापयेत्पञ्चगव्यकैः ।।१

---

१ ग. ङ. च. °येद्दूषरत्वायदग्रगर्भाङ्गसंचरैः । २ ॐ श्रां............... राजाभिषेकतः क. ङ. घ. पुस्तकेषु नास्ति । ३ ख. ॐ श्रां पशून्हुँ फ° ।

[1]योदेवान्देवलोकं स याति स्वं कुलमुद्धरन् ।
वर्षकोटिसहस्रै स्तु यत्पापं समुपार्जितम्[2] ॥२
घृताभ्यङ्गेन देवानां भस्मीभवति पावके ।
आढकेन घृताद्यैश्च देवान्स्नाप्य सुरो भवेत् ॥३

महादेव बोले––अभिषिक्त शिष्य को शङ्ख और भेरी आदि निर्घोष से शिव, विष्णु और भास्करादि का पूजन करना चाहिए। पहले उनको पञ्चगव्य से स्नान कराना चाहिए। ऐसा करने वाला शिष्य अपने कुल का उद्धार करके देवलोक को जाता है। घृत से देवताओं का अभ्यञ्जन करने वाले शिष्य के हजारों करोड़ वर्षों में समुपार्जित पापों का नाश हो जाता है। एक आढक परिमाण घृत इत्यादि से देवताओं को स्नान कराने वाला व्यक्ति स्वयं देवता हो जाता है।१-३।

चन्देनानुलिप्याथ गन्धाद्यैः पूजयेत्तथा[3] ।
अल्पायासेन स्तुतिभिः स्तुता देवास्तु सर्वदा ॥४
अतीतानागतज्ञानमन्त्रधोभुक्तिमुक्तिदाः ।
गृहीत्वा प्रश्नसूक्ष्मार्णे हृते द्वाभ्यां शुभाशुभम् ॥५
त्रिभिर्जीवो [4]मूलधातुश्चतुर्भिर्ब्राह्मणादिधीः ।
पञ्चादौ भूततत्त्वादि शेषे चैवं जयादिकम् ॥६
एकत्रिकातित्रिकान्ते[5] पदे[6] द्विपमकान्तके[7] ।
अशुभं मध्यमं मध्येष्विन्द्रस्त्रिषु[8] नृपः शुभः ॥७
संख्यावृन्दे[9] जीविताब्दं[10] यमोऽब्ददशहा ध्रुवम् ।
सूर्येभास्येशदुर्गाश्रीविष्णुमन्त्रैर्लिखेत्कजे ॥८
कठिन्या जप्तया स्पृष्टे[11] गोमूत्राकृतिरेखया[12] ।१२
आरभ्यैकं त्रिकं यावत्त्रिचतुष्कावसानकम् ॥९
मरुद्व्योममरुद्वीजैश्चतुःषष्टिपदे[13] तथा ।
अक्षाणां[14] पातनात्स्पर्शाद्विषमादौ शुभादिकम् ॥१०

---

१ यो देवान्....कुलमुद्धरन् क. ङ. च. पुस्तकेषुनास्ति। २ ख °मुपस्थित°। ३ क. ख. ग. ङ. च. °जयंस्तथा। ४ क. ङ. च. °तुर्बहूक्तेर्ब्रा° । ५ ख. °कात्रित्रि। ६ क. ङ. च. °द्वे द्वयम°। ७ °पदका°। ८ क. ङ. च. °ध्ये स्वकेन्द्रस्त्रिनृ° ख. °ध्ये स्वे केन्द्रस्त्रिनृ°। ९ ख. °वृत्ते जी°। १० ख. °ब्दं मयोऽब्द°। ११ क. ङ. स्पृष्टो गो°। १२ क. ख. ग. ङ. च. °मूत्र्याकृ°। १३ क. ङ. ञ. °रुत्वोराम रुद्वे गैश्च°। १४ घ. °णां पत°।

एकत्रिकादिमारभ्य अन्ते चाष्टत्रिकं तथा[1] ।
ध्वजाद्याया: समा हीना विषमा: शोभनादिदा:[2] ॥११
आईपल्लवितै:[3] काद्यै: षोडशस्वरपूर्वगै: ।
आद्यैस्तै:[4] सस्वरै:काद्यैस्त्रिपुरानाम[5] मन्त्रका:[6] ॥१२
ह्रीं वीजा: प्रणवाद्या: स्युर्नमोन्ता यत्र पूजने ।
मन्त्रा विंशतिसाहस्रा: शतं षष्ठ्यधिकं[7] तत: ॥१३

चन्दन से लेपादि करने के वाद गन्ध आदि से देवार्चन करना चाहिए। थोड़े से परिश्रम से स्तुतियों द्वारा देवताओं की सर्वदा स्तुति करनी चाहिए। इससे भूत, भविष्य का ज्ञान, फल, मन्त्र, वुद्धि, योग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रश्नकर्ता के संक्षिप्त प्रश्न वाक्य के अक्षरों को गिनकर उसमें दो से भाग दे। एक और दो वचने पर क्रमश: शुभाशुभ की प्राप्ति होती है, तीन से व्यक्ति की मूल धातु मालूम होती है, चारमन्त्रों से व्राह्मणों की वुद्धि पाँचमन्त्रों से भूततत्त्वादि ज्ञान की प्राप्ति होती है और शेष से जय इत्यादि प्राप्त होते हैं। यदि मन्त्रपद के अन्त में एक मिथ (तीन बीजाक्षर) हों, अधिक बीजाक्षर हों अथवा दो प, म एवं क हो तो इनमें से प्रथम वर्ण अशुभ, वीच वाला मध्यम तथा अन्तिम वर्ण शुभ है। यदि अन्त में संख्या समूह हो तो वह जीवनकाय के दशवर्ष का सूचक है। यदि दश की संख्या हो तो दश वर्ष बाद साधक पर यमराज का आक्रमण होगा। भविष्य को जानने के लिए पद्माकर चित्र में गुरु को सूर्य, गणेश, दुर्गा और लक्ष्मी के लिए पवित्र मन्त्रों का उल्लेख करना चाहिए। मन्त्र को कनिष्ठिका अङ्गुली पर गोमूत्रिका चित्र की भाँति जपना चाहिए, जिसकी प्रत्येक रेखा तीन भागों में विभक्त हो और इन तीन भागों को वाद में चौंसठ भागों में विभक्त किया गया हो। यक्ष को इन वर्गों में डालकर प्रश्न का उत्तर पूछना चाहिए। यदि यक्ष युग्म संख्या का स्पर्श कर ले तो प्रश्न का उत्तर शुभ समझना चाहिए। 'यं वं हं' इन तीन वर्णों के आठ मिथ हैं। वे ध्वज आदि आठ आयों के प्रतीक हैं। इन आयों में जो सम हैं, वे अशुभ हैं। विषम आय शुभप्रद कहे गये हैं। त्रिपुर मन्त्र 'क' अक्षर से युक्त होता है जिसके पूर्व सोलह स्वर होते हैं। इन मन्त्रों का बीज

१ ख. त्रिधा। २ क. ङ. च. °दिका:। आ°। ३ क. आए प°। ख. आहाप°। ४ क. ङ. च. संवरै:। ख. सुस्वरै:। ५ क. ङ. च. °मन्त्रिका:। ६ क. ङ. च. °का:। क्लीं बी°। ७ ख. षष्ठ्याऽधि।

ह्रीं होता है और इनका प्रारम्भ 'ॐ' तथा अन्त 'नमः' से किया जाता है। इनकी संख्या बीस हजार एक सौ साठ होती है ।४-१३।

आं[1] ह्रींमन्त्राः सरस्वत्याश्चण्डिकायास्तथैव च।
तथा गौर्याश्च दुर्गाया आं[2] श्रीमंत्राः श्रियस्तथा[3] ॥१४
तथा[4] क्षौंमन्त्राः सूर्यस्य[5] आंह्रौंमन्त्राः शिवस्य च।
आंगंमन्त्रा[6] गणेशस्य[7] आंमन्त्राश्च तथा हरेः ॥१५
शतार्धैकाधिकैः काद्यैस्तथा[8] षोडशभिः स्वरैः।
काद्यैस्तैः सस्वरैराद्यैः कान्तैर्मन्त्रास्तथाऽखिलाः ॥१६
रवीशदेवीविष्णूनां खाब्धोदेवेन्द्रवर्तनात्।
शतत्रयं[9] षष्ठ्यधिकं प्रत्येकं मण्डलं क्रमात् ॥१७
अभिषिक्तो जपेद्ध्यायेच्छिष्यादीन्दीक्षयेद्गुरुः ॥१८

'आं ह्रीं' मन्त्र सरस्वती और चण्डिका के कहे गये हैं तथा गौरी, दुर्गा और श्री के मन्त्र 'आं श्रीं' माने गये हैं। इसी प्रकार 'आं क्षौं' मन्त्र सूर्य के, 'आं ह्रौं' मन्त्र शिव के, 'आं गं' मन्त्र गणेश के और 'आं' मन्त्र विष्णु के माने गये हैं। शिष्य को अभिषिक्त करने के बाद गुरु को उपर्युक्त मन्त्रों को तीन सौ छः बार पढ़ना चाहिए। ये मन्त्र क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा, देवी और विष्णु से सम्बन्धित हैं और इनकी रचना सोलह-स्वरों के साथ 'क' आदि इक्यावन अक्षरों को मिलाकर की जाती है और इन मन्त्रों का अन्त भी 'क' अक्षर से होता है। अभिषिक्त गुरु इन सब मन्त्रों तथा देवताओं का जप-ध्यान करे तथा शिष्य आदि को भी दीक्षा दे ।४-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽभिषिक्तेन कर्तव्यस्य तत्तद्देवतापूजनस्य विधिकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१

---

१ क. च. अश्रीमन्ताः। २ क. ख. ग. ङ. च. अश्रीमंत्राः। ३ क. ङ. च. °था। क्षौ°। ४ ख. ग. °था क्रौम°। घ. °था क्रौंक्षौं°। ५ क. च. °स्य आक्रौंम°। ६ क. च. आगमन्ता। ७ क. ख. ग. ङ. च. °स्य आयान्ताश्च। ८ क. ख. ग. ङ. च. °द्यै राद्यैः षो°। ९ ख. शतद्वयं।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

संक्षेपेण प्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच—

प्रतिष्ठां संप्रवक्ष्यामि क्रमात्संक्षेपतो गुह ।
पीठं शक्तिं शिवो लिङ्गं तद्योगः सा शिवाणुभिः ॥१
प्रतिष्ठायाः पञ्चभेदास्तेषां रूपं वदामि ते ।
यत्र ब्रह्मशिलायोगः सा प्रतिष्ठा विशेषतः ॥२
स्थापनं तु यथायोगं पीठ एव निवेशनम् ।
प्रतिष्ठा भिन्नपीठस्य स्थितस्थापनमुच्यते ॥३

महादेव बोले—अये कार्तिकेय ! मैं क्रमशः संक्षेप में प्रतिष्ठा का वर्णन करता हूँ । प्रतिष्ठा के पाँच भेद होते हैं—पीठ, शक्ति, शिव, लिङ्ग तथा इनका सम्बन्ध । प्रतिष्ठा शिव मन्त्रों से करनी चाहिए । मैं तुम्हें उनके भेदों का स्वरूप बता रहा हूँ । जिस प्रतिष्ठा का ब्रह्मशिला योग होता है, वह विशेष कहलाती है । योग के अनुसार पीठ पर निवेश करने को हीं स्थापना कहते हैं । भिन्न पीठ की प्रतिष्ठा स्थित स्थापना कहलाती है ।१-३।

उत्थापनं च सा प्रोक्ता लिङ्गोद्धारपुरःसरा ।
यस्यां तु[1] लिङ्गमारोप्य संस्कारः क्रियते बुधैः ॥४
आस्थापनं तदुद्दिष्टं द्विधा विष्ण्वादिकस्य च ।
आसु सर्वासु चैतन्यं नियुञ्जीत परं शिवम् ॥५
यदाधारादिभेदेन प्रासादेष्वपि पञ्चधा ।
परीक्षामथ मेदिन्याः कुर्यात्प्रासादकाम्यया ॥६

जिस प्रतिष्ठा में लिङ्गोद्धार किया जाता है, उसे उत्थापना कहते हैं । जिसमें लिङ्ग को आरोपित कर विद्वान् लोग संस्कार करते हैं, उसे आस्थापना कहते हैं । विष्णु आदि देवताओं की आस्थापना दो प्रकार की मानी गयी है । उन सब प्रकार की प्रतिष्ठाओं में चैतन्य रूप शिव को नियुक्त करना चाहिए । उनके आधार आदि भेद से प्रासादों में भी पाँच प्रकार की प्रतिष्ठा मानी गई

---

१ क. ङ. च. तु पीठमा° ।

है। जहाँ प्रासाद बनाना हो, पहले वहाँ की भूमि परीक्षित कर लेनी चाहिए।४-६।

[1]शुक्लाऽऽज्यगन्धा[2] रक्ता च रक्तगन्धा सुगन्धिनी।
पीता कृष्णा सुरागन्धा विप्रादीनां मही क्रमात्॥७
पूर्वेशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां[3] विशिष्यते।
आखाते[4] हास्तिके यस्याः पूर्णे[5] मृदधिका भवेत्॥८
उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षिताम्।
अस्थ्यङ्गारादिभिर्दुष्टामत्यन्तं[6] शोधयेद्गुरुः[7]॥९

ब्राह्मण आदि वर्णों के लिए क्रमशः शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण की भूमि होनी चाहिए, जिनमें शुक्ल भूमि की गन्ध घी के समान, पीत भूमि की गन्ध सुगन्धित द्रव्य के समान और कृष्ण भूमि की गन्ध मद्य के समान होनी चाहिए। यद्यपि पूर्व, उत्तर और पूर्वोत्तर—ये तीनों दिशाएँ भवन-निर्माण के लिए शुभ हैं, तथापि इनमें पूर्व दिशा सबसे उत्तम है। एक हाथी के बराबर की खाईं खोदने पर यदि खाईं के भीतर मिट्टी ही मिट्टी मिले या जल आदि (पवित्र चीजें) मिले तो वहाँ की भूमि उत्तम समझनी चाहिए। यदि हड्डी, कोयला आदि चीजों से अत्यन्त दूषित भूमि मिले तो गुरु को उस भूमि का शोधन करना चाहिए।७-९।

नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम्।
खननैर्गोकुलावासैः कषणैर्वा मुहुर्मुहुः॥१०
मण्डपे द्वारपूजादिमन्त्रतृप्त्यवसानकम्[8]।
कर्म निर्वर्त्याघोरास्त्रं[9] सहस्रं विधिना यजेत्॥११

नगर, ग्राम, दुर्ग, ग्रह और प्रासाद के लिए निर्धारित भूमि का संशोधन भूमि को खोदकर, वहाँ पर गोष्ठ बनाकर तथा बार-बार उसे जोतकर कर लेना चाहिए। मण्डप में द्वार-पूजा, हवन आदि कर्म करके एक हजार बार अघोरास्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिए।१०-११।

समीकृत्योपलिप्तायां भूमौ संशोधयेद्दिशः।
स्वर्णदध्यक्षतै रेखाः प्रकुर्वीत प्रदक्षिणम्॥१२

---

१ क. घ. ङ. च. शुल्काऽऽज्य। २ ख. ग. °क्लाऽऽद्यग°। ३ ख. ग. परा। ४ क. ङ. च. आख्याते। ५ ख. पूर्वे। ६ क. च. अस्त्रागारा°। ७ ख. °येत्पुरा। न०। ८ च. °न्त्रदृष्ट्यव°। ९ क. ख. ग. ङ. च. °र्वर्त्य घोरास्त्रस°। ख. ग. °र्वर्त्य घो°।

मध्यादीशानकोष्ठस्थे पूर्णकुम्भे शिवं यजेत् ।
वास्तुमभ्यर्च्य तत्तोयैः सिञ्चेत्कुद्दालकादिकम् ॥१३
वाह्ये रक्षोगणानिष्ट्वा विधिना दिग्वलिं[1] क्षिपेत् ।
भूमिं संसिच्य[2] संस्नाप्य कुद्दालाद्यं प्रपूजयेत् ॥१४

भूमि को समतल करके उसे लीप-पोतकर दिशा की शुद्धि करे। सोना, दही तथा अक्षत से रेखा खींचकर मध्य में ईशान कोण में स्थित पूर्ण कुम्भ के ऊपर शिव का पूजन करे। डीह की अर्चना करके कलश के पानी को कुदाल आदि पर छिड़क दे। वाहर रक्षोगण की पूजा करके विधिपूर्वक दिशाओं को वलि चढ़ावे। भूमि पर जल छिड़क कर, कुदाल आदि को धोकर उनकी पूजा करे।१२-१४।

अन्यं वस्त्रयुगच्छन्नं कुम्भं स्कन्धे द्विजन्मनः ।
निधाय गीतवाद्यादिब्रह्मघोषसमाकुलम् ॥१५
पूजां कुम्भे समाहृत्य प्राप्ते लग्नेऽग्निकोष्ठके ।
कुद्दालेनाभिषिक्तेन मध्वक्तेन[3] तु खानयेत् ॥१६
नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृत्स्नां खाते कुम्भजलं क्षिपेत् ।
पुरस्य पूर्वसीमान्तं नयेद्यावदभीप्सितम् ॥१७
अथ तद्रक्षणं स्थित्वा भ्रामयेत्परितः[4] पुरम् ।
सिञ्चन्सीमान्तचिह्नानि यावदीशानगोचरम् ॥१८

किसी ब्राह्मण के कन्धे पर एक जोड़े वस्त्र से आच्छादित एक दूसरे घड़े को रखकर गाना, बजाना, वेदध्वनि आदि के साथ घट की पूजा करके अग्नि-कोण में ठीक लग्न के समय अभिषिक्त तथा मधुलिप्त कुदाल से खोदना प्रारम्भ करे। खोदी हुई मिट्टी को नैर्ऋत्य कोण में फेंककर गड्ढे में घड़े का जल छिड़के। उस घड़े को नगर की सीमा तक ले जाकर सुरक्षापूर्वक नगर की परिक्रमा करके ईशान कोण तक सीमान्त के चिह्नों में जल छिड़क देना चाहिए।१५-१८।

अर्घ्यदानमिदं[5] प्रोक्तं[6] तत्र कुम्भपरिभ्रमात् ।
इत्थं परिग्रहं भूमेः कुर्वीत तदनन्तरम् ॥१९

---

१ ख. ग. °ग्वलीन्क्षिपे° । २ क. ख. ग. ङ. च. संस्थाप्य । ३ क. ङ. च. सरक्तेन । ४ ख. ग. °मयन्परि° । ५ क. ख. ग. ङ. च. अर्घदा° । ६ क. ङ. च.° क्तं भद्रकु°।

कर्करान्तं जलान्तं वा शल्यदोषजिघांसया[1] ।
खानयेद्भूकुमारीं चेद्विधिना शल्यमुद्धरेत् ॥२०

वहाँ घड़े को घुमाने से अर्घ्यदान हो जाता है। इस प्रकार भूमि का परिग्रह करके शल्य-दोष को दूर करने के लिए भूमि को तब तक खोदे, जब तक कंकड़ या जल न दिखाई पड़ जाय। यदि वहाँ (वास्तुभूमि के अन्दर) शल्य (हड्डी आदि) मिलने की आशंका हो तो उसका विधिपूर्वक उद्धार करना चाहिए।१९-२०।

([2]अकचटतपयशहान्मानवश्चेत्प्रश्नाक्षराणि तु ।
अग्नेर्ध्वजादिपतिताः[3] स्वस्थाने शल्यमाख्यान्ति ॥२१
कर्तुश्चाङ्गविकारेण जानीयात्तत्प्रमाणतः ।
पश्वादीनां प्रवेशेन कीर्तनैर्विरुतैर्दिशः ॥२२
मातृकामष्टवर्गाढ्यां फलके भुवि वा लिखेत् ।
शल्यज्ञानं वर्गवशात्पूर्वादीशान्ततः क्रमात् ॥२३
अवर्गे चैव लोहं तु कवर्गेऽङ्गारमग्नितः ।
चवर्गे भस्म दक्षे स्वादृवर्गेऽस्थि[4] च नैर्ऋते ॥२४
तवर्गे चेष्टका चाऽऽप्ये कपालं च पवर्गके ।
यवर्गे शवकीटादि शवर्गे लोहमादिशेत्[5] ॥२५
हवर्गे रजतं तद्वदवर्गाच्चिचानर्थकरानपि ।
प्रोक्ष्याश्मभिः[6] करापूरैरष्टाङ्गुलमृदन्तरैः ॥२६
पादोनं खातमापूर्य सजलैर्मुद्गराहतैः ।
लिप्तां समप्लवां तत्र कारयित्वा भुवं गुरुः ॥२७

इस जगह शल्य है या नहीं—इस प्रकार के प्रश्न करने वाले के मुख से अ क च ट त प य श ह—ये अक्षर निकले तो वे ही पूर्व से लेकर मध्य पर्यन्त शल्यकारण होते हैं (जैसे 'अ' कहने से पूर्व दिशा में और 'क' कहने से अग्नि कोण में शल्य को बतलाना चाहिए इत्यादि।) प्रश्नकर्ता के अङ्गविकार से भी शल्याशल्य का विचार किया जा सकता है। अर्थात् प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता किस अङ्ग के बल बैठा है, किस अङ्ग का स्पर्श कर रहा है—इन सब बातों

---

१ क.ङ. च. जिहास° । २ अकचटत.........तत्प्रमाणतः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ३ ख. ग. °दिपाति° । ४ क. ङ. च.° वर्गे स्थिरनै° । ख. ग. °वर्गे चरनै° । ५ क. ङ. च. °त् । कवर्गे रजतं तद्वद्रक्षास्ताञ्च करान्° । ख. ग. °त् । कवर्गे रजतं तद्वदवर्गानिर्थंचारपि । ६ घ. प्रोक्ष्याऽश्मभिः ।

के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है। (उस स्थान में उस समय) पशु-पक्षियों के प्रवेश करने तथा शब्द करने से भी शब्द का ज्ञान होता है। (शल्यज्ञान करने के उपर्युक्त प्रकारों का स्पष्टीकरण यह है कि)—किसी तख्ते के ऊपर या भूमि पर (अवर्ग आदि) आठ वर्गों के मातृकाक्षरों को लिखकर पूर्व से ईशान कोण की दिशा तक क्रमशः वर्ग द्वारा शल्य ज्ञान कराना चाहिए। अवर्ग के पड़ने से अग्निकोण में कोयला समझना चाहिए। चवर्ग के पड़ने से दक्षिण दिशा में भस्म, टवर्ग के पड़ने से नैर्ऋत कोण में हड्डी और तवर्ग के पड़ने से पश्चिम दिशा में ईंट समझना चाहिए। पवर्ग के पड़ने से शव और कीड़े-मकोड़े आदि तथा शवर्ग के पड़ने से (अवशिष्ट दिशाओं में) लोहा समझना चाहिए। इसी भाँति हवर्ग में चाँदी और अवर्ग में अनर्थकारी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिए। गुरु को मुगद्र से मिट्टी के बड़े-बड़े टुकड़ों को तुड़वाकर भूमि को समतल और चिकनी करवा लेना चाहिए।२१-२७।

सामान्यार्घ्यकरो[1] यायान्मण्डपं वक्ष्यमाणकम्।
तोरणद्वाःपतीनिष्ट्वा प्रत्यग्द्वारेण संविशेत् ॥२८
कुर्यात्तत्राऽऽत्मशुद्ध्यादिकुण्डमण्डपसंस्कृतिम्।
कलशं वर्धनीशक्तं लोकपालशिवार्चनम् ॥२९
अग्नेर्ज्वलनपूजादि[2] सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
यजमानान्वितो यायाच्छिलानां[3] स्नानमण्डपम् ॥३०
शिलाः प्रासादलिङ्गस्य पादा[4] धर्मादिसंज्ञकाः।
अष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः शस्ताश्चतुरस्राः करायताः ॥३१
पाषाणानां शिलाः कार्या इष्टकानां तदर्धतः।
प्रासादेऽश्मशिलाः शैल इष्टका इष्टकामये ॥३२

उसके बाद भूमि के आठ अङ्गुल ऊँची मिट्टी से लिपवाकर उसे जल से भलीभाँति स्वच्छ करवा लेना चाहिए। इस प्रकार भूमि को समतल बनवाकर और लिपवाकर सामान्य अर्घ्य-जल को लेकर गुरु को आगे कहे जाने वाले मण्डप के लिए प्रस्थान करना चाहिए। मण्डप के मुख्य द्वार पर द्वारपतियों की पूजा करके उसमें पश्चिम द्वार से प्रवेश करे। वहाँ आत्म-शुद्धि करके कुण्ड तथा मण्डप का संस्कार करे। फिर टोंटी वाले कलश की स्थापना करके, लोक-

---

१ क. ख. ग. ङ. च॒ °न्यार्घक°। २ घ. °ग्नेर्जनन°। ३ ख. ग. नां स्थान°। ४ घ. पादध°।

पाल और शिव की अर्चना करके, अग्नि-प्रज्वालन तथा पूजन आदि सब कार्य पहले ही की भाँति कर लेना चाहिए। (अब शिलान्यास की विधि बतायी जा रही है) गुरु यजमान को साथ लेकर उस स्थान में जाय जहाँ शिलाएँ रखी हुई हों। महल बनाने की शिला पाद और धर्म आदि के नाम से पुकारी जाती है। पत्थर की शिला आठ अङ्गुल ऊँची, सुन्दर, चौकोर तथा हाथ भर लम्बी होनी चाहिए और इट की शिला आकार में उसकी आधी होनी चाहिए। पत्थर का महल बनवाना हो तो पत्थर की शिला का न्यास करे और ईंट का बनवाना हो तो ईंट का शिलान्यास करे।२८-३२।

अङ्किता नववक्त्राद्यैः पङ्कजाः पङ्कजान्विताः।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाख्या पञ्चमी मता ।।३३
आसां पद्मो महापद्मः शङ्खोऽथ मकरस्तथा।
समुद्रश्चेति पञ्चामी निधिकुम्भाः क्रमादधः ।।३४
नन्दा भद्रा जया पूर्णा अजिता चापराजिता।
विजया मङ्गलाख्या[1] च धरणी नवमी शिला ।।३५
सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः[2]।
जयोऽथ विजयश्चैव कुम्भः पूर्णस्तथोत्तरः[3] ।।३६
नवानां तु यथासंख्यं निधिकुम्भा अमी नव।३६½

शिला के ऊपर नौ मुखों तथा कमलों का चिह्न अङ्कित करना चाहिए। नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता तथा पूर्णा—ये पाँच निधियाँ और इनके पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर और समुद्र—ये पाँच कुम्भ क्रमशः नीचे की ओर अङ्कित रहने चाहिए। नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मंगला और धरणी—ये नौ निधियाँ तथा इनके सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पनन्दक, जय, विजय, कुम्भ, पूर्ण और उत्तर—ये नौ कुम्भ भी अङ्कित होने चाहिए।३३-३६½।

आसनं प्रथमं[4] दत्त्वाऽऽताड्योल्लिख्य शराणुना ।।३७
सर्वासामविशेषेण तनुत्रेणावगुण्ठनम्।
मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा ।।३८
अस्त्रेण[5] हुंफडन्तेन मलस्नानं समाचरेत्।
विधिना[6] पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च ।।३९

---

१ क. च. मण्डलाक्षा। २ क. ङ. च. °ष्पदन्तकः। ३ क. ङ. च. पूर्वस्त°।
४ क. ख. ग. ङ. च. प्रणवं। ५ घ. °ण हूं फ°। ६ क. ङ. च. कुम्भानां।

गन्धतोयान्तरं कुर्यान्निजनामाङ्कितागुना ।
फलरत्नसुवर्णानां[1] गोश्रृङ्गसलिलैस्ततः ॥४०

तदनन्तर शिला को आसन पर रखकर शस्त्र-मन्त्र से ताड़न करके उस पर मन्त्र लिख दे। फिर कवच से लपेट कर 'हुं फट्' शब्द से अन्त होने वाले अस्त्र-मन्त्र को पढ़कर मिट्टी, गोबर, गोमूत्र, कषाय और गन्ध-जल से मलस्नान कराये। तत्पश्चात् पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराकर अपना नाम जुड़े हुए मन्त्र-द्वारा गन्ध, फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोश्रृङ्ग के जल से स्नान कराये।३७-४०।

चन्दनेन समालभ्य [2]वस्त्रैराच्छादयेच्छिलाम्[3] ।
स्वर्णोत्थमासनं दत्त्वा नीत्वा योगं[4] प्रदक्षिणम् ॥४१
शय्यायां कुशतल्पे वा हृदयेन निवेशयेत् ।
संपूज्य न्यस्य बुद्ध्यादिधरान्तं तत्त्वसंचयम् ॥४२
त्रिखण्डव्यापकं तत्त्वत्रयं चानुक्रमान्न्यसेत् ।
बुद्ध्यादौ चित्तपर्यन्ते चिन्तातन्मात्रकावधौ[5] ॥४३
तन्मात्रादौ धरान्ते[6] च शिवविद्यात्मनां स्थितिः ।
तत्त्वानि निजमन्त्रेण तत्त्वेशांश्च हृदार्चयेत् ॥४४

तदनन्तर चन्दन का लेप कर वस्त्रों से शिला को आच्छादित कर दे, फिर उसे सोने का आसन देकर सामान्य शय्या या कुश की बनी हुई शय्या पर उसे हृदय-मन्त्र से स्थापित करे। तदनन्तर उसका पूजन करके बुद्धि से धरा तक तत्त्व का सञ्चय करते हुए त्रिखण्ड में व्याप्त तीन तत्त्वों का क्रमशः न्यास करे। उस समय यह भावना करे कि बुद्धि से चित्त तक, चित्त से तन्मात्रा तक और तन्मात्रा से धरा तक शिव, विद्या और आत्मतत्त्वों की स्थिति है। तत्पश्चात् अपने मन्त्र से तत्त्वों का और हृद् मन्त्र से तत्त्वेशों का पूजन करे।४१-४४।

स्थानेषु पुष्पमालादिचिह्नितेषु यथाक्रमम् ॥४५
ॐ हूं[7] शिवतत्त्वाय नमः। ॐ हूं[8] शिवतत्त्वाधिपतये
रुद्राय नमः। ॐ हां[9] विद्यातत्त्वाय नमः। ॐ हां विद्या-
तत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः। ॐ हामात्मतत्त्वाय नमः ॥
ॐ हामात्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः ॥४६

---

१ क. ङ. च°लवत्सुसु। २ क. ङ. च. °च्छिलाः। तद्वर्णनाश°। ३ ख. ग. °म्। यदुत्थ°। ४ घ. यागं। ५ क. ङ. च. चित्तं तैर्मातृका°। ६ क. ङ. वरान्ते। ७ ख. ग. ह्लं। ८ ख. ग. ह्लं। ९ क. ङ. च. ह्लीं। ख. हीं।

पुष्प, माला आदि से चिह्नित स्थानों पर क्रमशः 'ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः।' 'ॐ हूं शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः।' 'ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः।' 'ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपाय विष्णवे नमः।' ॐहामात्मतत्त्वाय नमः।' 'ॐहामात्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः।'—इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पूजन करना चाहिए ।४५-४६।

क्षमाग्नियजमानार्काञ्जलवातेन्दुखानि च ।
प्रतितत्त्वं न्यसेदष्टौ मूर्तीः प्रतिशिलां शिलाम् ।।४७
स (श) र्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम् ।
महादेवं च भीमं च मूर्तीशांश्च यथाक्रमात् ।।४८
ॐ[1] धरामूर्तये नमः । ॐ[2] धराधिपतये नमः[3] ।।४९
इत्यादिमन्त्राँल्लोकपालान्यथासंख्यं निजाणुभिः ।
विन्यस्य पूजयेत्कुम्भांस्तन्मन्त्रैर्वा निजाणुभिः ।
इन्द्रादीनां तु बीजानि वक्ष्यमाणक्रमेण तु[4] ।।५०
लूं रूं शूं पूं वूं यूं मूं हूं क्षूमिति ।।५१
उक्तो नवशिलापक्षः शिला पञ्चपदा तथा[5] ।
प्रतितत्त्वं न्यसेन्मूर्तीः सृष्ट्या पञ्च धरादिकाः ।।५२
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते च पञ्चमूर्तीशा यष्टव्यास्तासु पूर्ववत् ।।५३
ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः । ॐ पृथ्वामूर्त्यधिपतये
ब्रह्मणे नमः । इत्यादि मन्त्राः ।।५४

तदनन्तर प्रत्येक तत्त्व में पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु और आकाश—इन आठ मूर्तियों का न्यास करके प्रत्येक शिला में शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, महेश्वर, महादेव और भीम—इन आठ मूर्ति स्वामियों का भी क्रमशः न्यास करे। उसके वाद 'ॐ धरामूर्तये नमः।' ॐ धराधिपतये नमः'—इत्यादि मन्त्रों से तथा लोकपालों का अपने मन्त्र से संख्यानुसार न्यास करके कुम्भों का उनके मन्त्र से अथवा अपने मन्त्र से न्यास करना चाहिए । इन्द्र आदि के बीज मन्त्र ये हैं—'लूं रूं शूं पूं वूं यूं मूं हूं क्षूम्'। इस प्रकार नव विद्या पक्ष की विधि का वर्णन हुआ अब पञ्चशिला पक्ष का वर्णन किया जाता है—प्रत्येक तत्त्व में सृष्टि-प्रक्रिया से पृथिवी आदि पाँच मूर्तियों को शिलाओं

१. क. ङ. च. ॐ वरा॰। २ क. ङ. च. ॐ वरा। ३ क. ङ. च. 'मः। लोकपालानन्तान्तान्य॰। ४ क. ङ. च. तु। ॐ सूं रूं यूं शूं हूं कुमि॰। ५ क. ख. ग. ङ. च. तदा।

के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—इन पाँच मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। उनके 'ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः।' 'ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः' इत्यादि मन्त्र हैं।४७-५४।

संपूज्य कलशान्पञ्च क्रमेण निजनामभिः।
निरुन्धीत विधानेन न्यासो मध्यशिलाक्रमात् ॥५५
कुर्यात्प्राकारमन्त्रेण भूतिदर्भैस्तिलैस्ततः।
कुण्डेषु[1] धारिकां शक्तिं विन्यस्याभ्यर्च्य तर्पयेत् ॥५६
तत्त्वतत्त्वाधिपान्मूर्तिमूर्तीशांश्च घृतादिभिः।५६½

तदनन्तर अपने नामों से पाँच कलशों का क्रमपूर्वक पूजन करके मध्यशिला से लेकर विधिपूर्वक न्यास करे। फिर कुश-तिल लेकर प्राकारमन्त्र से कुण्डों में धारिका-शक्ति का न्यास करके, पूजन करके, घी आदि से तत्त्वों, तत्त्वाधिपों और मूर्तियों-मूर्तीशों का तर्पण करना चाहिए।५५-५६½।

ततो ब्रह्मांशशुद्ध्यर्थं मूलाङ्गं ब्रह्मभिः क्रमात् ॥५७
कृत्वा शतादिपूर्णान्तं प्रोक्ष्य[2] शान्तिजलैः शिलाः।
पूजयेच्च कुशैः स्पृष्ट्वा प्रतितत्त्वमनुक्रमात् ॥५८
सान्निध्यमथ संधानं कृत्वा शुद्धं पुनर्न्यसेत्।
एवं भागत्रये कर्म गत्वा गत्वा समाचरेत् ॥५९
ॐ, आम्, ईम्, आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नम इति ॥६०
संस्पृशेद्दर्भमूलाद्यैर्ब्रह्माङ्गादित्रयं क्रमात्।
कुर्यात्तत्वानुसंधानं ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः ॥६१
ॐ हाम्[3], ॐ विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः ॥६२

तदनन्तर ब्रह्मांश की शुद्धि के लिए मन्त्रों से क्रमशः शान्ति जल को शिलाओं के ऊपर छिड़क कर कुशाओं से स्पर्श करके प्रत्येक तत्त्व का क्रमशः पूजन करे। 'ॐ, आं, ईम्, आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नमः—इस मन्त्र से तत्त्व का सान्निध्य तथा सन्धान करके फिर शुद्ध तत्त्व का न्यास करे। इस प्रकार तीन भागों में जा-जाकर कर्म सम्पादन करना चाहिए। इसके बाद कुश के मूल से ब्रह्माङ्ग आदि तीनों का स्पर्श करके 'ॐ हाम्, ॐ विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः'—मन्त्र से ह्रस्व, दीर्घ (स्वरों) के उच्चारणपूर्वक तत्त्वानुसंधान करे।५७-६२।

---

१ क. ङ. च. कुम्भेषु। ख. कुशेषु। २ घ. प्रोक्ष्याः। ३ क. ङ. च. ईं।

घृतेन मधुना पूर्णांस्ताम्रकुम्भान्सरत्नकान् ।
पञ्चगव्यार्घ्यसंसिक्ताँल्लोकपालाधिदैवतान् ॥६३
पूजयित्वा निजैर्मन्त्रैः संनिधौ होममाचरेत् ।
शिलानामथ सर्वासां संस्मरेदधिदेवताः ॥६४
विद्यारूपाः कृतस्नाना हेमवर्णाः शिलाम्बराः ।
[1]न्यूनादिदोषमोषार्थं[2] वास्तुभूमेश्च शुद्धये ॥
यजेदस्त्रेण[3] मूर्धान्तमाहुतीनां शतं शतम् ॥६५

तदनन्तर ऐसे पूर्ण कुम्भों का, जो रत्न, पञ्चगव्य तथा जल से पूर्ण हों, पूजन करके समीप ही तत्तद् मन्त्रों से हवन करे। इसके पश्चात् समस्त शिलाओं के देवताओं का इस प्रकार स्मरण करे कि उनके रूप विद्या ही हैं, वर्ण सोने के समान है, वस्त्र शिला के सदृश हैं और वे स्नान कर चुके हैं। फिर न्यूनादि-दोष-निवारणार्थ तथा वास्तु-भूमि की शुद्धि के लिए अस्त्र-मन्त्र से सौ-बार आहुतियाँ डाले ।६३-६५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठाङ्गशिलान्यासविधिकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।९२

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

वास्तुपूजादिविधिः

ईश्वर उवाच—

ततः प्रासादमासूत्र्य[4] वर्तयेद्वास्तुमण्डपम्[5] ।
कुर्यात्कोष्ठचतुःषष्ठि क्षेत्रे वेदास्रके[6] समे ॥१

महेश्वर बोले—तदनन्तर महल को नापकर उस चौकोर और समतल क्षेत्र में चौंसठ कोठरियों वाले एक वास्तुमण्डप की रचना करे ।१

कोणेषु [7]विन्यसेद्वंशौ[8] रज्जवोऽष्टौ[9] विकोणगाः ।
द्विपदाः षट्पदास्तास्तु वास्तुं तत्रार्चयेद्यथा ॥२

---

१ क. ङ. च. °षनाशार्थं । २ ख. °मोक्षार्थं । ३ क. ङ. च. °ण शुद्ध्यर्थमाकृती° । ४ क. ङ. च. °माश्रित्य व° । ५ क. ख. ग. ङ. च. °ण्डलम् । ६ क. ङ. च. °दाग्रके । ७ क. ङ. च. सेद्वंसौ र° । ८ क. ङ. च. °शौराज्ञानष्टौ द्विको° । ९ ख. ग. रज्जावष्टौ ।

आकुञ्चितकरं[1] वास्तुमुत्तानमसुराकृतिम् ।
स्मरेत्पूजासु कुड्यादिनिवेशे[2] त्वधराननम् ।।३
जानुनी कूर्परौ सक्थि दिशि वातहुताशयोः ।
पैत्र्यां पादपुटौ[3] रौद्र्यां शिरोऽस्य हृदयेऽञ्जलिः ।।४
अस्य देहे समारूढा देवताः पूजिताः शुभाः ।
अष्टौ कोणाधिपास्तत्र कोणार्धेष्वष्टसु स्थिताः ।।५
षट्पदास्तु[4] मरीच्याद्या दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ।
मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा शेषास्तु पदिकाः[5] स्मृताः ।।६

क्षेत्र के चारों कोणों पर एक-एक बाँस गाड़कर अष्टकोण बनाने वाले बिन्दुओं से रस्सियाँ लगानी चाहिए । मण्डप के दो तथा छः कोष्ठों में अवस्थित देवताओं की संयुक्त पूजा वासुदेव के साथ होनी चाहिए । पूजा-काल में वास्तु (अधिदेवता) इस प्रकार रहे कि उसके हाथ सिकुड़े हुए हैं, शरीर उत्तान पड़ा हुआ है, आकृति असुर की तरह है; भित्ति के निवेश का ध्यान इस प्रकार है—मुख नीचे की ओर लटका हुआ है, घुटना, कोहनी, तथा जङ्घा वायु तथा अग्निकोण में स्थित हैं, चरण नैऋत कोण में और शिर, हृदय तथा अञ्जलि ईशान कोण में स्थित हैं । उसके शरीर में सम्मानित देवगणों का वास है । आठ कोणों के आधे-आधे हिस्से में आठकोणपति निवास करते हैं । पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः मरीचि आदि ऋषियों का छः कोष्ठों में पूजन करना चाहिए, मध्य में ब्रह्मा का पूजन चार कोष्ठों में और शेष देवताओं का पूजन एक कोष्ठ में करना चाहिए ।२-६।

समस्तनाडीसंयोगे महामर्मानुजं[6] हृलम्[7] ।
त्रिशूलं स्वस्तिकं वज्रं महास्वस्तिकसंपुटौ ।।७
त्रिकटं[8] मणिवन्धं च सुविशुद्धं पदं तथा ।
इति द्वाद्वश मर्माणि वास्तोर्भित्त्यादिषु त्यजेत् ।।८
साज्यमक्षतमीशाय पर्जन्यायाम्बुजोदकम् ।
ददीताथ जयन्ताय पताकां कुङ्कुमोज्ज्वलाम् ।।९
रत्नवारि महेन्द्राय खौ धूम्रं वितानकम् ।
सत्याय घृतगोधूममाज्यभक्तं भृशाय च ।।१०

१ घ. कर्च. वा° । २ घ. °वेश उत्तरा° । ३ घ. °पुटे रौ° । ४ क. ख. ग. ङ. °दासु म° । ५ ख. पट्टिकाः । ६ ख. °र्माम्बुजं । ७ घ. फलम् । ८ घ. त्रिकटुं ।

विमांसमन्तरिक्षाय[1] शकुन्तेभ्यश्च पूर्ववत् ।
मधुक्षीराज्यसंपूर्णां[2] प्रदद्याद्वह्नये श्रु[3] (स्रु) चम्[4] ॥११
लाजान्पूर्णे[5] सुवर्णाम्बु वितथाय निवेदयेत् ॥११½

समस्त नाड़ी सम्पात, महामर्म, कमल, हल, त्रिशूल, स्वस्तिक, वज्र, महास्वस्तिक, सम्पुट, त्रिकटि, मणिबन्ध, सुविशुद्ध, और पद—ये बारह मर्मस्थान हैं। वास्तु की भित्ति आदि में इन सबका पूजन करे। इसके बाद शिव को घी सहित अक्षत और मेघ को कमल-जल समर्पित करे। जयन्त को श्वेत तथा केसरिया रंग की पताका, महेन्द्र को रत्न का जल, सूर्य को धूम्रवर्ण का वितान, सत्य को घी, गेहूँ तथा भृश को घी-भात, अन्तरिक्ष को विशिष्ट मांस, पक्षियों को पूर्ववत् (वस्तुएँ) और अग्नि को मधु, दूध तथा घी से पूर्ण स्रुव प्रदान करे। लावा और सोने का जल वितथ को अर्पित करे।७-११½।

दद्याद्गृहक्षते[6] क्षौद्रं यमराजे पलौदनम् ॥१२
गन्धं गन्धर्वनाथाय जिह्वा भृङ्गाय[7] पक्षिणः ।
मृगाय[8] यवपर्णानि याम्यामित्यष्ट देवताः ॥१३
पित्रे तिलोदकं क्षीरं वृक्षजं दन्तधावनम् ।
दौवारिकाय देवाय प्रदद्याद्धेनुमुद्रया ॥१४
सुग्रीवाय [9]दिशेत्पूगान्पुष्पदन्ताय[10] दर्भकम् ।
रक्तं प्रचेतसे पद्ममसुराय सुरासवम् ॥१५
घृतं गुडौदनं शेषे रोगाय घृतमण्डकान् ।
लाजान्वा पश्चिमाशायां देवाष्टकमितीरितम् ॥१६
मारुताय ध्वजं पीतं नागाय नागकेशरम् ।
[11]मुख्ये[12] भक्ष्याणि भल्लाटे मुद्गसूपं सुसंस्कृतम् ॥१७
सोमाय पायसं साज्यं शालूकमृषये[13] दिशेत् ।
लोपीमदितये दित्यै पुरीमित्युत्तराष्टकम् ॥१८

---

१ क. ङ. च. °य सकृद्वेत्यथ पूर्वतः । म° । २ ख. ग. °पूर्णं प्र° । ३ क. ङ. च. श्रुवम् । ख. ग. श्रुतम् । ४ ख. °म् । जालां पूर्णे । ५ क. ङ. च. °र्णेऽथव° । ६ ख. ग. °द्यात्भूतकृते । ७ ख. ग. भृङ्गाय । ८ घ. य° पद्मय° । ९ क. ङ. च. °शेद्यूपान्पु° । १० घ. °त्पूपान्पु° । ११ मुख्ये... सुसंस्कृतम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । १२ ख. ग. सुखे । १३ क. ङ. च. °लूकं मृगये । ग. °लूकं संशये ।

मोदकान्ब्रह्मणः प्राच्यां षट्पदाय मरीचये ।
सवित्रे रक्तपुष्पाणि[1] ब्रह्माधः कोणकोष्ठके ॥१९
तदधः कोष्ठके दद्यात्सावित्र्यै च कुशोदकम् ।
दक्षिणे चन्दनं रक्तं षट्पदाय विवस्वते ॥२०
हरिद्रौदनमिन्द्राय रक्षोधः कोणकोष्ठके ।
इन्द्रजयाय मिश्रान्नमिन्द्राधस्तान्निवेदयेत् ॥२१

ग्रहक्षत को मधु और यमराज को मांस तथा भात समर्पित करे । गन्धर्वेश को गन्ध, भृङ्ग को जिह्वा और मृग को जौ के पत्ते दान करे । ये आठ देवता दक्षिण दिशा के माने गये हैं । पितर को तिल और जल देना चाहिए । द्वारपाल देवता को धेनुमुद्रा दिखाकर वृक्ष का दूब तथा दातून देनी चाहिए । सुग्रीव को सुपाड़ी, पुष्पदन्त को कुशा, प्रचेतस् को रक्त कमल, असुर को मद्य, शेषनाग को घी तथा गुड़-भात और रोग को घी, माँड़ तथा लावा देना चाहिए । ये आठ देवता पश्चिम दिशा के स्वामी माने गये हैं । हनुमान को पीली पताका, नाग को नागकेशर का पुष्प, मुख्य को भक्ष्यपदार्थ, भल्लाट को भलीभाँति पकाई हुई मूँग की दाल, चन्द्रमा को घी सहित खीर और उषा देवी को शालूक (जलीय-कन्द) देना चाहिए । अदिति को लोपी (एक प्रकार की मिठाई) और दिति को पुरी देनी चाहिए । ये हैं—उत्तर दिशा के आठ देवता । पूर्व दिशा में ब्रह्मा को तथा छः कोष्ठों पर अधिकार रखने वाले मरीचि को लड्डू देना चाहिए । अग्निकोण के कोष्ठ में सूर्य को लाल-पुष्प और उससे नीचे के कोष्ठ में सावित्री को कुशोदक समर्पण करना चाहिए । दक्षिण दिशा में छः कोष्ठों वाले विवस्वान् को रक्तचन्दन, नैर्ऋतकोण के कोष्ठ में इन्द्र को हल्दी, भात और इन्द्र के नीचे इन्द्रजय को मिश्रित अन्न समर्पण करना चाहिए ।१२-२१।

वारुण्यां षट्पदासीने मित्रे सगुडमोदनम् ।
रुद्राय घृतसिद्धान्नं वायुकोणाधरे पदे ॥२२
तदधो रुद्रदासाय मांसं मार्गमथोत्तरे ।
ददीत माषनैवेद्यं षट्पदस्थे धराधरे ॥२३
आपाय[2] शिवकोणाधस्तद्वत्साय च तत्तले[3] ।
क्रमाद्दद्याद्दधि क्षीरं पूजयित्वा विधानतः ॥२४

१ घ. °णि वह्निचयः° । २ क. ङ. च. अपाय । ३ घ. तत्स्थले ।

चतुष्पदे निविष्टाय ब्रह्मणे मध्यदेशतः ।
पञ्चगव्याक्षतोपेतं चरुं साज्यं निवेदयेत् ।।२५
ईशादिवायुपर्यन्तकोणेष्वथ यथाक्रमम् ।
वास्तुबाह्ये चरक्याद्याश्चतस्रः पूजयेद्यथा[1] ।।२६

पश्चिम दिशा में छः कोष्ठों वाले मित्र देवता को गुड़-भात, वायुकोण में नीचे के कोष्ठ में अधिकारी रुद्र को घी तथा सिद्ध अन्न और उससे नीचे रुद्र दास को हिरन का मांस देना चाहिए। छः कोष्टों के अधिकारी पर्वत देवता को उड़द का नैवेद्य और ईशान कोण के जल का तथा उसके नीचे वत्स का विधिपूर्वक पूजन करके क्रमशः दोनों को दही और दूध समर्पित करना चाहिए। मण्डप के मध्यवर्ती चार कोष्ठों में ब्रह्मा को पञ्चगव्य, अक्षत, चरु तथा घी समर्पित करना चाहिए। ईशान कोण से लेकर वायव्य कोण तक वास-भूमि से बाहर चरकी आदि चार राक्षसियों की पूजा करनी चाहिए।२२-२६।

चरक्यै सघृतं मांसं[2] विदार्यै दधिपङ्कजम् ।
पूतनायै पलं पित्तं रुधिरं च निवेदयेत् ।।२७
अस्थीनि पापराक्षस्यै रक्तपित्तपलानि च ।
ततो माषौदनं प्राच्यां स्कन्दाय विनिवेदयेत् ।।२८
अर्यम्णे दक्षिणाशायां पूपान्कृसरया युताम् ।
जम्भकाय च वारुण्यामामिषं रुधिरान्वितम् ।।२९
उदीच्यां पिलिपिच्छाय[3] रक्तान्नं कुसुमानि च ।
यजेद्वा सकलं वास्तुं कुशदध्यक्षतैर्जलैः ।।३०

चरकी को घी और मांस अर्पित करना चाहिए। विदारी को दही-कमल, पूतना को मांस, पित्त तथा शोणित और पापराक्षसी को हड्डी, रक्त, पित्त तथा मांस अर्पित करना चाहिए। तदनन्तर पूर्व दिशा में स्कन्द को उड़द की खिचड़ी अर्पित करनी चाहिए। दक्षिण-दिशा में अर्यमा को खिचड़ी तथा पुआ, पश्चिम दिशा में जम्भक को मांस, शोणित और उत्तर दिशा में पिलिपिच्छ को लाल अन्न और फूल चढ़ाना चाहिए अथवा सकल देवताओं के साथ वास्तुदेव का (केवल) कुश, दही, अक्षत तथा जल से पूजन करना चाहिए।२७-३०।

---

१ ख. ग. °था। वाराह्यै स°। २ ख. ग. °सं पूजयित्वा विधानतः। पू०।
३ घ. °पिञ्जाय।

गृहे च नगरादौ च एकाशीतिपदैर्यजेत् ।
त्रिपदा रज्जवः कार्याः षट्पदाश्च विकोणके ॥३१
ईशाद्याः पादिकास्तस्मिन्नागाद्याश्च[1] द्विकोष्ठगाः[2] ।
षट्पदस्था मरीचा (च्या) द्या ब्रह्मा नवपदः स्मृतः ॥३२
नगरग्रामखेटादौ वास्तुः शतपदोऽपि वा ।
वंशद्वयं कोणगतं दुर्जयं दुर्धरं सदा ॥३३
यथा देवालये न्यासस्तथा[3] शतपदे हितः ।
ग्रहाः स्कन्दादयस्तत्र विज्ञेयाश्चैव षट्पदाः ॥३४
चरक्याद्या[4] भूतपदा रज्जुवंशादि पूर्ववत् ।
देशसंस्थापने वास्तु[5] चतुस्त्रिंशच्छतं[6] भवेत् ॥३५

यदि गृह तथा नगर आदि की स्थापना करनी हो तो इक्यासी प्रकोष्ठ वाले वास्तु-मण्डप की रचना करनी चाहिए। वहाँ कोण स्थित तीन कोष्ठों में तथा विकोण स्थित छः कोष्ठों में रस्सियाँ बाँधनी चाहिए। ईश आदि देवताओं को एक कोष्ठ, नाग आदि को दो कोष्ठ, मरीचि आदि को छः कोष्ठ और ब्रह्मा को नौ कोष्ठ अर्पित करना चाहिए। यदि (महा) नगर, ग्राम तथा खेट (ग्राम का भेद) आदि की प्रतिष्ठा करनी हो तो सौ कोष्ठ वाले वास्तु का विधान करना चाहिए। वहाँ दुर्जय तथा दुर्धर नामक दो बाँसों को कोने में गाड़ना चाहिए और जैसे देवालय की स्थापना में न्यास किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी न्यास करना चाहिए। वहाँ ग्रहों तथा स्कन्द आदि राक्षसियों को पाँच कोष्ठ प्राप्त होने चाहिए। रस्सी तथा बाँस आदि की स्थापना उपर्युक्त प्रकार से करनी चाहिए। यदि देश की प्रतिष्ठा करनी हो तो चौंतीस सौ कोष्ठ वाले वास्तु का विधान करना चाहिए।३१-३५।

चतुःषष्टिपदो ब्रह्मा मरीच्याद्याश्च देवताः ।
चतुष्पञ्चाशत्पदिका[7] आपाद्यष्टौ रसाग्निभिः ॥३६
ईशानाद्या नवपदाः स्कन्दाद्या शतिकाः स्मृताः ।
चरक्याद्यास्तद्वदेव रज्जुवंशादि पूर्ववत् ॥३७
ज्ञेयो विंशसहस्रैस्तु वास्तुमण्डलगः पदैः ।
न्यासो नवगुणस्तत्र कर्तव्यो देशवास्तुवत्[8] ॥३८

१ ख. ग. °न्नापाद्या° । २ क. ख. ग. ङ. च. °ष्ठकाः । ष° । ३ ख. ग. °स्तदा श° । ४ ख. ग. °रकाद्या । ५ क. ङ. च. °स्तुश्च तु° । ६ क. ङ. च. °तं श (म) तम् । च° । ७ चतुष्पञ्चाशत् ......रसाग्निभिः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ८ ख. ग. देव वा° ।

पञ्चविंशत्पदा (दो) वास्तुर्वैतालाख्यश्चितौ स्मृतः ।
अन्यो नवपदो वास्तुः षोडशाङ्घ्रिस्तथाऽपरः ॥३६
षडस्त्र्यस्रवृत्तादेर्मध्ये स्याच्चतुरस्रकम् ।
खाते[1] वास्तुसमं[2] पृष्ठे न्यासे ब्रह्मशिलात्मके ॥४०
शावाकस्य निवेशे च मूर्तिसंस्थापने तथा ।
पायसेन तु नैवेद्यं सर्वेषां वा प्रदापयेत् ।४१
उक्तानुक्ते तु वै वास्तुः पञ्चहस्तप्रमाणतः ।
गृहप्रासादमानेन वास्तुः श्रेष्ठस्तु सर्वदा ॥४२

वहाँ ब्रह्मा को चौंसठ कोष्ठ, मरीचि आदि देवताओं को आठ कोष्ठ और चरकी आदि राक्षसियों को भी स्कन्द आदि के बराबर ही कोष्ठ प्राप्त होने चाहिए। वहाँ भी पहिले की भाँति रस्सी तथा बांस इत्यादि की स्थापना करनी चाहिए। परन्तु वहाँ नगर-निर्माण की अपेक्षा नव गुने बार अधिक न्यास करना चाहिए। चिति की स्थापना में पचीस कोष्ठों में विभक्त मण्डल को वैताल कहा जाता है। अन्य प्रकार के मण्डल क्रमशः नौ और सोलह कोष्ठों में विभक्त रहा करते हैं। त्रिकोण, षट्कोण और चक्र के अन्दर चतुष्कोण का निर्माण करना चाहिए। ब्रह्मशिला की भाँति इसके चारों ओर किये गये उत्खनन में भी न्यास करना चाहिए। पूर्ववत् न्यास उसी प्रकार चाहिए जैसे कि वह शिवलिङ्ग की स्थापना में अथवा शिवालय के निर्माण में किया जाता है। सभी देवताओं को खीर का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए। यदि वास्तु की माप का कोई नियम निर्दिष्ट न किया गया हो तो पाँच हाथों का माप रखना चाहिए। गृह और प्रासाद के बराबर का माप रखना वास्तु के लिए सर्वदा उत्तम है।३६-४२।

इत्यादि महापुराण आग्नेये वास्तुपूजाविधिकथनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः।९३

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधिः

ईश्वर उवाच—
ईशादिषु चरक्याद्याः पूर्ववत्पूजयेद्वहिः[3] ।
आहुतित्रितयं दद्यात्प्रतिदेवमनुक्रमात् ॥१

---

१ ख. ग. खातवा° । २ घ. °वास्तोः स° । ३ ख. °येद्धरिः । आ°
५ ख. °येद्धरिः । आ° ।

दत्त्वा भूतबलिं लग्ने शिलान्यासमनुक्रमात् ।
मध्यसूत्रे न्यसेच्छक्तिं कुम्भं जान्वन्तमुत्तमम् ॥२
नकारारूढमूलेन कुम्भेऽस्मिन्धारयेच्छिलाम् ।
कुम्भानष्टौ सुभद्रादीन्दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥३
लोकपालाणुभिर्न्यस्य[1] श्वभ्रेषु[2] न्यस्तशक्तिषु ।
शिलास्तेष्वथ नन्दाद्याः क्रमेण विनिवेशयेत् ॥४
शम्बरैर्मूर्तिनाथानां यथा स्युर्भित्तिमध्यतः[3] ।
[4]तासु[5]धर्मादिकानष्टौ कोणात्कोणं विभागशः ॥५

महादेव बोले—गुरु को पूर्व की भाँति ईशान आदि कोणों में चरकी आदि राक्षसियों का पूजन करके वास्तु की सीमा-पंक्ति से बाहर प्रत्येक देवता को क्रमशः तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिए। लग्न-काल में भूतों को बलि चढ़ा कर क्रमशः शिलान्यास करना चाहिए। जैसे मध्यसूत्र में (अर्थात् शिव के आसन के बीच में) शक्ति देवी का न्यास करके उसके ऊपर अनन्त नामक उत्तम घट स्थापित करना चाहिए। उस घट के ऊपर 'न' अक्षर से युक्त मूल मन्त्र से शिला की स्थापना करके पूर्व आदि दिशाओं में सुभद्र आदि नाम वाले आठ घटों को लोकपाल के मन्त्रों से क्रमशः स्थापित करना चाहिए। घटों को उन छिद्रों (गड्ढों) में रखे जहाँ पहले शक्ति देवी का आवाहन कर लिया गया हो। फिर उन घटों के ऊपर नन्दा आदि नाम वाली शिलाओं को भित्ति के मध्य भाग में मूर्तिपतियों के मन्त्रों से क्रमपूर्वक स्थापित करना चाहिए। प्रत्येक कोण के विभाग से उन शिलाओं पर धर्म आदि आठ देवताओं का आवाहन करना चाहिए।१-५।

सुभद्रादिषु नन्दाद्याश्चतस्रोऽग्न्यादिकोणगाः ।
अजिताद्याश्च पूर्वादिजयादिष्वथविन्यसेत् ॥६

---

१ क. ङ. च. °र्न्यस्येत्पात्रेषु । २ ख. ग. सूत्रेषु ३ ख. ग. स्युर्भितिम° ।
४ तासु.........विभागशः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ५ ख. ग. तास्वध° ।

[1]ब्रह्माणं चोपरि न्यस्य व्यापकं च महेश्वरम् ।
[2]चिन्तयेदेष[3] चाऽऽत्मानं[4] व्योमप्रासादमध्यगम् ।।७
बलिं दत्त्वा जपेदस्त्रं विघ्नदोषनिवारणम् ।
शिलापञ्चकपक्षेऽपि मनागुद्दिश्यते यथा ।।८
मध्ये पूर्णाशिलान्यास:[5] सुभद्रकलशेऽर्धत:[6] ।
पद्मादिषु च नन्दाद्या: कोणेष्वग्न्यादिषु क्रमात् ।।९
मध्याभावे[7] चतस्रोऽपि मातृवद्भावसंमता: ।
ॐ पूर्णे त्वं महाविद्ये सर्वसंदोहलक्षणे ।।१०
सर्वं (वं) संपूर्णमेवात्र कुरुष्वाङ्गिरस: सुते ।
ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम् ।।११
प्रासादे तिष्ठ संतृप्ता यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।
आयु: कामं श्रियं नन्दे देहि वाशिष्ठि देहिनाम् ।।१२
अस्मिन्रक्षा सदा कार्या प्रासादे यत्नतस्त्वया ।
ॐ भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि ।।१३

सुभद्र आदि चार घटों के ऊपर नन्दा आदि चार शिलाओं को अग्नि आदि कोणों में स्थापित करे और जय आदि चार घटों के ऊपर अजिता आदि शिलाओं को पूर्व आदि दिशाओं में स्थापित करे। घटों के ऊपर ब्रह्मा तथा व्यापक महेश्वर का न्यास करके प्रासाद के आकाश में विद्यमान आत्मा का ध्यान करे। तदनन्तर उसे बलि देकर विघ्न-दोष की निवृत्ति के लिए अस्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिए। अब जहाँ पाँच ही शिलाओं की स्थापना का विधान है, उस पक्ष का भी थोड़ा वर्णन किया जा रहा है। यज्ञमण्डप के मध्य में सुभद्र नामक कलश के ऊपर पूर्णा नामक शिला को स्थापित करे। अन्यत्र मातृसद्भाव मन्त्र में प्रदर्शित पूर्णा, नन्दा आदि शिलाओं को पद्म आदि नाम वाले घटों के ऊपर अग्नि आदि कोणों में क्रमशः स्थापित करे और गुरु उनको यह कहकर सम्बोधित करे कि "ॐ पूर्णे ! महाविद्ये। सर्वसंदोह लक्षणे ! अङ्गिरा की पुत्री ! यहाँ तुम समस्त वस्तुओं को परिपूर्ण करो ! ॐ नन्दे ! तुम पुरुषों को आनन्द देने वाली हो। तुम्हें मैं यहाँ स्थापित कर रहा हूँ। तुम इस महल में तब तक आनन्द से रहो, जब तक सूर्य और

१ ब्रह्माणं..........महेश्वरम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ख. ग. °येदसुराध्वानं°। ३ घ. °देषु चाऽऽधानं। ४ च. °नं योगप्रा°। ५ क. ङ. च. °सः समुद्र°। ६ क. ख. ग. ङ. च. °लशोऽर्घं°। ७ घ. मध्यमा°।

चन्द्रमा रहेंगे। नन्दे! वशिष्ठ की पुत्री! तुम प्राणियों को आयु, भोग तथा श्री प्रदान करो। तुम सदा ध्यानपूर्वक इस महल की रक्षा किया करो। ॐ भद्रे! कश्यप की पुत्री! तुम सदा लोगों का कल्याण किया करो।६-१३।

आयुर्दा कामदा देवि श्रीप्रदा च सदा भव।
ॐ जयेऽत्र[1] सर्वदा देवि श्रीदाऽऽयुर्दा सदा भव॥१४
ॐ जयेऽत्र सर्वदा देवि तिष्ठ त्वं स्थापिता मम।
नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनो भव भार्गवि॥१५
ॐ रिक्तेऽतिरिक्तदोषघ्ने सिद्धिमुक्तिप्रदे शुभे।
सर्वदा सर्वदेशस्थे तिष्ठास्मिन्नीशरूपिणि[2]॥१६
गगनायतनं ध्यात्वा तत्र तत्त्वत्रयं न्यसेत्।
प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा विधिना विसृजेन्मखम्[3]॥१७

हे देवि! तुम लोगों को सदा आयु भोग और ऐश्वर्य प्रदान किया करो। ॐ जये! देवि! तुम यहाँ सदा आयु और ऐश्वर्य प्रदान किया करो। ॐ जये! देवि! तुम मुझसे स्थापित होकर यहाँ सर्वदा निवास करो। अयि भृगुपुत्रि! तुम अपने स्वामी की नित्य विजय और विभूति की वृद्धि करती रहो। ॐरिक्ते! अतिरिक्त दोषों का निवारण करने वाली! सिद्धि तथा मुक्ति देने वाली! सब देशों में निवास करने वाली! ईश्वररूपिणि! शुभे! तुम इस महल में सदा निवास करो।" तत्पश्चात् गुरु आकाश-ग्रह का ध्यान करके उसमें तत्त्वों का न्यास करे और तब विधिपूर्वक प्रायश्चित्तीय होम करके यज्ञ का विसर्जन करे।१४-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिलाविन्यासविधिकथनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः।९४

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकालसामग्र्यादिविधिः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्येलिङ्गप्रतिष्ठां च प्रासादे भुक्तिमुक्तिदाम्।
तां चरेत्सर्वदा मुक्तौ भुक्तौ देवदिने सति॥१

१ ख. ग. °त्रं त्व° सदा। २ घ. °स्मिन्विश्वरू°। ३ ख. °जेन्मुख°।

विना चैत्रेण माघादौ प्रतिष्ठामासपञ्चके ।
गुरुशुक्रोदये कार्या प्रथमे करणत्रये ॥२
शुक्लपक्षे विशेषेण कृष्णेऽप्यापञ्चमं दिनम् ।
चतुर्थीं नवमीं षष्ठीं वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥३
शोभनास्तिथयः शेषाः क्रूरवारविवर्जिताः ।
शतभिषा धनिष्ठाऽऽर्द्रा अनुराधोत्तरात्रयम् ॥४
रोहिणी श्रवणश्चेति स्थिरारम्भे महोदयाः ।
लग्नं च कुम्भसिंहालितुलास्त्रीवृषधन्विनाम् ॥५
शस्तो जीवो नवर्क्षेषु सप्तस्थानेषु सर्वदा ।
बुधः षडष्टदिक्सप्ततुर्येषु विनर्तुं सितः ॥६
सप्तर्तुत्रिदशादिस्थः शशाङ्को वलदः सदा ।
रविर्दशत्रिषट्संस्थो राहुस्त्रिदशषड्गतः ॥७

महेश्वर बोले—अब मैं मन्दिर में शिव-लिङ्ग (या अन्य देवता) की प्रतिष्ठा बतलाऊँगा, जो भुक्ति-मुक्ति को देने वाली है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह प्रतिष्ठा सर्वदा करनी चाहिए ; परन्तु भोग के लिए देवताओं के दिन में ही करनी चाहिए अर्थात् उत्तरायण में यह कर्म किया जाता है। चैत्र मास को छोड़कर माघ आदि पांच मासों में, प्रथम तीन करणों (बव, वालव, कौलव) में तथा वृहस्पति और शुक्र के उदय होने पर उस देवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। विशेषकर शुक्ल-पक्ष में, अथवा कृष्ण पक्ष में भी पाँच दिनों तक प्रतिष्ठा की जा सकती है। चतुर्थी, षष्ठी, नवमी तथा चतुर्दशी को छोड़कर शेष तिथियाँ प्रतिष्ठा-कार्य के लिये उत्तम हैं। इसमें क्रूर संज्ञक (शनि, रवि, मंगल) दिनों का भी परित्याग कर देना चाहिये। शतभिषा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अनुराधा, उत्तरात्रय (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद), रोहिणी तथा श्रवण—ये नक्षत्र तथा कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष और धन—ये लग्न प्रतिष्ठारम्भ में शुभदायक हैं। इस कार्य के लिये लग्न से सातवें, नवें तथा बारहवें स्थानों में बृहस्पति, चौथे, छठें, सातवें और आठवें स्थान में बुध तथा चौथे, सातवें और आठवें स्थान में शुक्र सदा शुभ माने गये हैं। पहले, तीसरे, छठें, सातवें और दशवें स्थान में चन्द्रमा बलदायक है। तीसरे, छठे, तथा दशवें स्थान में राहु उत्तम है।१-७।

षट्त्रिस्थानगताः शस्ता मन्दाङ्गारककेतवः[1] ।
शुभाः क्रूराश्च पापाश्च सर्वे एकादशस्थिताः ॥८
एषां दृष्टिर्मुनौ पूर्णा त्वार्धिकी ग्रहभूतयोः ।
पादिकी रामदिक्स्थाने[2] चतुरष्टौ पादवर्जिता ॥९
पादन्यूनचतुर्नाडीभोगः स्यान्मीनमेषयोः ।
वृषकुम्भौ च भुञ्जाते चतस्रः पादवर्जिताः ॥१०
मकारो मिथुनं पञ्च चापालिहरिकर्कटाः ।
पादोनाः षट्तुलाकन्ये घटिकाः सार्धपञ्च च ॥११

तीसरे और छठें स्थान में शनि, मङ्गल और केतु सुन्दर हैं । ग्यारहवें स्थान में शुभ या अशुभ ग्रह भी उत्तम ही होते हैं । इन ग्रहों की दृष्टि मुनि के ऊपर पूरी पड़ती है और ग्रहों तथा भूतों के ऊपर आधी । तीसरे और चौथे स्थान में इनकी दृष्टि चतुर्थांश पड़ती है, जबकि चौथे और आठवें स्थान में इनकी तीन-चौथाई दृष्टि पड़ती है । मीन और मेष राशि पर ये एक पाद कम चार घड़ी भोग करते हैं । वृष और कुम्भ राशि पर पादवर्णित चार घड़ी इनका भोग रहता है, मकर तथा मिथुन राशि पर पाँच घड़ी और धनु, मकर, सिंह और कर्क राशि पर एक पाद कम छः घड़ी इनका भोग होता है । तुला और कन्या राशि पर ये साढ़े पाँच घड़ी भोग करते हैं । ८-११।

केसरीवृषभः कुम्भः स्थिराः स्युः सिद्धिदायकाः ।
चरा धनुस्तुलामेषा द्विस्वभावास्तृतीयकाः ॥१२
कर्कटो[3] मकरोऽलिश्च प्रव्रज्याकार्यनाशकाः ।
शुभः शुभग्रहैर्दृष्टः शस्तो लग्नः शुभाश्रितः ॥१३
गुरुशुक्रबुधैर्युक्तो[4] लग्नो दद्याद्बलायुषी ।
राज्यं शौर्यं बलं पुत्रान्यशो धर्मादिकं बहु ॥१४
प्रथमः सप्तमस्तुर्यो दशमः केन्द्र उच्यते ।
गुरुशुक्रबुधास्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकाः[5] ॥१५

---

१ घ. °ङ्गारार्कके° । २ क. ङ. च. °ने वसुद्वौ पा° । ख. ग. °ने रमुष्टौ पा° । ३ कर्कटो...........कार्यनाशकाः घ. पुस्तके नास्ति । ४. ख. ग. °र्डैर्मुक्तो । ५ क. ङ. च. °काः । एका° । ख. ग. °काः । द्वयेका° ।

त्र्येकादशचतुर्थस्था लग्नात्पापग्रहाः शुभाः ।
[1]अतोऽन्येऽमी[2] च कर्मार्थं योज्यास्तिथ्यादयो बुधैः[3] ॥१६

सिंह, वृष, कुम्भ—ये सिद्धिदायक स्थिर लग्न कहलाते हैं। धनु, तुला, मेष—ये दूसरे और तीसरे स्वभाव वाले चर लग्न कहलाते हैं। कर्क, मकर, वृश्चिक—ये कर्मनाशक प्रव्रज्य लग्न कहलाते हैं। शुभ ग्रहों की दृष्टि में रहने वाला लग्न शुभदायक माना गया है। गुरु, शुक्र तथा बुध से युक्त लग्न बल, आयु, राज्य, पराक्रम, पुत्र, यश और धर्म आदि प्रचुर मात्रा में प्रदान करता है। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम लग्न केन्द्र कहलाता है। उसमें पड़े हुए गुरु, शुक्र तथा बुध सकलसिद्धियाँ प्रदान करते हैं। लग्न से तीसरे, चौथे और ग्यारहवें स्थान में स्थित पापग्रह शुभ माने जाते हैं। इसलिये ये तथा अन्य ग्रह और तिथि आदि यज्ञादि कर्म में विद्वानों द्वारा व्यवहार करने योग्य हैं। १२-१६।

धाम्नः पञ्चगुणां भूमिं त्यक्त्वा वा[4] धामसंमिताम् ।
[5]हस्ताद्द्वादशसोपानात्कुर्यान्मण्डपमग्रतः ॥१७
चतुरस्रं चतुर्द्वारं स्नानार्थं[6] तु तदर्धतः ।
एकास्यं[7] चतुरास्यं वा रौद्र्यां प्राच्युत्तरेऽथे[8] वा ॥१८
हास्तिको दशहस्तो वै मण्डपोऽर्ककरोऽथ वा ।
द्विहस्तोत्तरया वृद्ध्या शेषं स्यान्मण्डपाष्टकम् ॥१९
वेदी[9] चतुस्करा मध्ये कोणस्तम्भेन[10] संयुता ।
वेदी पादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नवपञ्च वा ॥२०
एकं वा शिवकाष्ठायां प्राच्यां वा तद्गुरोः परम् ।
मुष्टिमात्रं शतार्धे स्याच्छते चारत्निमात्रकम् ॥२१
हस्तं सहस्रहोमे स्यान्नियुते तु द्विहास्तिकम् ।
लक्षे चतुष्करं कुण्डं कोटिहोमेऽष्टहस्तकम् ॥२२

---

१ घ. °तोऽप्यनीचक° । २ क. ङ. च. °न्ये नैष (व) क° । ३ क. ख. ग. ङ. च. धैः । आयुष्पञ्च° । ४ क. ङ. च. वा धेनुसं° । ५ क. ङ च. °स्तान्वाद° । ६ क ख. ग. ङ. च. स्थानार्थं । ७ एकास्यं........ प्राच्युत्ता रेऽथ वा क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ८ ख. ग. त्तरे तथा । हा° । ९ वेदी.........संयुता क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति १० ख. ग. म्भेषु सं° ।

मन्दिर की पचगुनी या मन्दिर के बरावर की भूमि छोड़कर मन्दिर के सामने एक-एक हाथ की बारह सीढ़ियों और चार द्वारों वाला चौकोर मण्डप बनाये परन्तु स्नान के लिये जो गृह बनेगा, वह इसका आधा होना चाहिये। मण्डप चाहे एक द्वार का हो या चार द्वारों का, उसे ईशान कोण में या पूर्वोत्तर दिशा में बनाना चाहिये। मण्डप का माप एक हाथ या दश हाथ या बारह हाथ होना चाहिये और शेष आठ मण्डपों क माप में उत्तरोत्तर दो हाथ की वृद्धि करनी चाहिये। मध्य में चौकोर वेदी का निर्माण करना चाहिये, जो कोने में जुड़े हुए स्तम्भ से सुशोभित हो। वेदी के चतुर्थांश का अन्तर बीच की दूरी छोड़कर चौदह कुण्ड खोदने चाहिये, जिसमें गुरु के लिये एक कुण्ड ईशान कोण में या पूर्व दिशा में खोदना चाहिये और अतिरिक्त अपनी इच्छानुसार खोदना चाहिये। यदि पचास बार हवन करना हो तो कुण्ड एक मुट्ठी का बनाना चाहिये। सौ बार हवन करना हो तो एक अरत्नि (कनिष्ठिका अंगुली को फैलाकर मुट्ठी बाँधा हुआ हाथ) का, हजार बार हवन करना हो तो एक हाथ का, दश हजार आहुति के लिये दो हाथ का, लाख बार हवन करना हो तो चार हाथ का और करोड़ बार करना हो तो आठ हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये।१७-२२।

भगाभमग्नौ खण्डेन्दु दक्षे त्र्यस्र[1] च नैर्ऋते।
षडस्रं वायवे पद्मं सौम्ये चाष्टास्रकं शिवे ॥२३
तिर्यक्पातसमं[2] खातमूर्ध्वं मेखलया सह।
तद्बहिर्मेखलास्तिस्रो वेदवह्नियमाङ्गुलैः ॥२४
अंगुलैः षड्भिरेका वा कुण्डाकारास्तु मेखलाः।
तासामुपरि योनिः स्यान्मध्येऽश्वत्थदलाकृतिः ॥२५
उच्छ्रायेणाङ्गुलं तस्माद्विस्तारेणाङ्गुलाष्टकम्।
दैर्घ्यं कुण्डार्धमानेन कुण्डकण्ठसमोऽधरः ॥२६
पूर्वाग्नियाम्यकुण्डानां योनिः स्यादुत्तरानना।
पूर्वानना तु [3]शेषाणामैशान्येऽन्यतरा[4] तयोः ॥२७
कुण्डानां यश्चतुर्विंशे भागः सोऽङ्गुल इत्यतः।
प्लक्षोदुम्बरकाश्वत्थवटजास्तोरणाः क्रमात् ॥२८

---

१ क. ङ च. कुम्भं°। २ घ. °तशिवं खा°। ३ क. ङ. च. °न्यत्र वा त°। ४ ख. ग. °तराऽनयोः।

शान्तिभूतिबलारोग्यपूर्वाद्या नामतः क्रमात् ।
पञ्चषट्सप्तहस्तानि हस्तखातस्थितानि च ॥२९
तदर्धविस्तराणि स्युर्युतान्याम्रदलादिभिः ।
इन्द्रायुधोपमा रक्ता कृष्णा धूम्रा शशिप्रभा ॥३०
शुकाभा[1] हेमवर्णा च पताका स्फाटिकोपमा ।
[2]पूर्वादितोऽब्जजे[3] रक्ता[4] नीलाऽनन्तस्य नैर्ऋते ॥३१
पञ्चहस्तास्तदर्धाश्च ध्वजा दीर्घाश्च विस्तराः ।
हस्तप्रदेशिता[5] दण्डा ध्वजानां पञ्चहस्तकाः ॥३२

अग्निकोण में जो कुण्ड खोदा जाय, उसकी आकृति भाग के आकार की होनी चाहिये । दक्षिण दिशा में खोदा जाने वाला कुण्ड अर्धचन्द्र की तरह, नैर्ऋत्य कोण का कुण्ड त्रिकोण, वायव्य कोण का कुण्ड षट्कोण, उत्तर दिशा का कुण्ड पद्माकार और ईशानकोण का कुण्ड अष्टकोण होना चाहिये । कुण्ड की खाँई तिर्यक्पात होनी चाहिये । उसके ऊपर का भाग मेखला (होमकुण्ड के ऊपर मिट्टी का बना हुआ घेरा) से युक्त होना चाहिये । उसके बाहर भी क्रमशः चार, तीन और दो अंगुल चौड़ी तोन मेखलायें होनी चाहिये, अथवा छः अंगुल की एक ही मेखला होनी चाहिये । मेखलाओं की आकृति कुण्ड जैसी होनी चाहिये । उन मेखलाओं का आकार योनि-सा तथा मध्य में पीपल के पत्ते के समान होना चाहिये । उसकी ऊँचाई एक अंगुल, चौड़ाई आठ अंगुल, लम्बाई आधे कुण्ड के समान और तल कुण्ड के कण्ठ के बराबर होना चाहिये । पूर्व दिशा, अग्निकोण तथा नैर्ऋत्यकोण के कुण्डों की योनि पूर्वाभिमुख और ईशानकोण में कुण्ड की योनि उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख होनी चाहिये । कुण्डों का जो चौबीसवाँ भाग है, उसे अंगुल कहते हैं । यज्ञ-मण्डप के चार बन्दनवार क्रमशः पाकर, गूलर, पीपल, बरगद के होने चाहिए । मण्डप की लम्बाई अट्ठारह हाथ, चौड़ाई नौ हाथ और नींव एक हाथ लम्बी होनी चाहिये । उनको आम के पत्तों से सजा देना चाहिये । उनके ऊपर फहराई जाने वाली पताका इन्द्र धनुषी रंग में लाल, काली, घूसर रंग में, सुनहरी और स्फटिक के समान रङ्ग की होनी चाहिये । पूर्व दिशा में ब्रह्मा की पताका लाल और नैर्ऋत कोण में अनन्त भगवान् की पताका नीली होनी चाहिये । पताका की लम्बाई पाँच

---

१ घ. शुक्लाभा । २ पूर्वादितो ······· नैऋते क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ३ ख. ग. °ते ध्वजे ॥ ४ ग. °क्ता तिलाऽ° । ५ क. ङ. च. हस्ताग्रदे° ।

हाथ और चौड़ाई ढाई हाथ होनी चाहिये और उसके डण्डे पाँच हाथ के होने चाहिये। २३-३२।

वल्मीकाद्दन्तिदन्ताग्रात्तथा वृषभशृङ्गतः।
पद्मखण्डाद्वराहाच्च गोष्ठादपि चतुष्पथात् ॥३३
मृत्तिका द्वादश ग्राह्या वैकुण्ठेऽष्टौ पिनाकिनी।
न्यग्रोधोदुम्वराश्वत्थचूतजम्बूत्वगुद्भवम् ॥३४
कषायपञ्चकं ग्राह्यमार्तवं च फलाष्टकम्[१]।
तीर्थाम्भांसि सुगन्धीनि तथा सर्वौषधीजलम् ॥३५
शस्तं[२] पुष्पफलं वक्ष्ये रत्नगोशृङ्गवारि च।
स्नानायापहरेत्पञ्च पञ्चगव्यामृतं तथा ॥३६
पिष्टनिर्मितवस्त्रादि[३] द्रव्यं[४] निर्मञ्जनाय च।
सहस्रसुषिरं कुम्भं मण्डलाय च रोचना ॥३७
शतमोषधिमूलानां[५] विजया [६]लक्ष्मणा वला[७]।
गुडूच्यतिवला[८] पाठा सहदेवा शतावरी ॥३८
ऋद्धिः सुवर्चला[९] वृद्धिः स्नाने[१०] प्रोक्ता पृथक्पृथक् ॥३८½

विष्णुमूर्ति की प्रतिष्ठा में वल्मीक की मिट्टी, हाथी के दाँत पर लगी मिट्टी, बैल की सींग पर लगी मिट्टी, कमल की जड़ की मिट्टी, सुअर की खोदी हुई मिट्टी, गोष्ठ (गोशाला) की मिट्टी, चौराहे पर की मिट्टी आदि बारह प्रकार की मिट्टियों का और शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा में आठ प्रकार की मिट्टियों का संग्रह करना चाहिए। उसी तरह वट, गूलर, पीपल, आम और जामुन की छाल—ये पाँच कषाय, सुगन्धित-जल, सर्वौषधियों का जल तथा प्रशस्त फल-फूल संगृहीत करे। स्नान के लिए रत्न, गोशृङ्ग से स्पर्श किया हुआ जल, पञ्चगव्यामृत, आटे के बने हुए वस्त्र आदि द्रव्य, सहस्र छिद्रो वाला घड़ा तथा गोरोचन का संग्रह करना चाहिए। शतौषधि की जड़ में विजया, लक्ष्मणा, वला, गुरुच, अतिवला, पाठा, सहदेवा, शतावरी, ऋद्धि,

---

१ ख. ग. कलाष्टकम्। २ एतत्प्रभृत्यर्धचतुष्टयं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ख. ग. °वक्त्रादि। ४ ख. ग. द्रव्यनि°। ५ ख. ग. °लायां वि°। ६ क. ख. ग. ङ. च. लक्षणा। ७ क. ङ. च. °ला। अवल्गुही चाति°। ८ क. ङ. च. °ला स°। ९ घ. सुवर्चसा। १० क. ख. ग. ङ. च. स्थाने।

सुवर्चला तथा वृद्धि—इन ओषधियों से (युक्त जल से) पृथक्-पृथक् स्नान कराना चाहिए ।३३-३८½।

रक्षायै[1] तिलदर्भाद्यं[2] भस्मस्नानं तु केवलम् ।।३९
यवगोधूमबिल्वानां चूर्णानि च विचक्षणः ।
विलेपनं सकर्पूरं स्नानार्थं कुम्भगण्डकान् ।।४०
खट्वां च तूलिकायुग्मं सोपधानं सवस्त्रकम् ।
कुर्याद्वित्तानुसारेण शयने लक्ष्यकल्पने ।।४१
घृतक्षौद्रयुतं पात्रं कुर्यात्स्वर्णशलाकिकाम् ।
वर्धनीं शिवकुम्भं च लोकपालघटानपि ।।४२
एकं निद्राकृते कुम्भं शान्त्यर्थं कुण्डसंख्यया ।
द्वारपालादिधर्मादिप्रशान्तादिघटानपि ।।४३
वास्तुलक्ष्मीगणेशानां कलशानपरानपि ।
धान्यपुञ्जकृताधारान्सवस्त्रान्स्रग्विभूषितान् ।।४४
सहिरण्यान्समालब्धान्गन्धपानीय पूरितान् ।।

रक्षा के लिए तिल और कुश के जल से तथा केवल भस्म के जल से भी स्नान किया जा सकता है । विद्वान् साधक उन घड़ों के ऊपर, जिनके जल से स्नान करना है, यव, गेहूँ, बेल तथा कपूर के चूर्ण का लेप करे । साधक अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार मण्डप-स्थित शयन-कक्ष को सजाए । वहाँ पलंग, रुई से भरे दो गद्दे, तकिया, चादर, घी और मधु से युक्त पात्र, स्वर्णशलाका, झाड़ू, शिवकलश, लोकपालों के कलश, निद्रा के निमित्त एक कलश, शान्त्यर्थ कुण्डों की संख्या के सदृश कलश, द्वारपाल, धर्मपाल और प्रशान्त आदि के कलश और वास्तु लक्ष्मी तथा गणेश आदि के कलश आदि सामग्री को विधिपूर्वक रखना चाहिए । कलशों को धान्यराशि के ऊपर वस्त्रों तथा मालाओं से विभूषित करे और उनमें सोना डालकर सुगन्धित जल से भर दे ।३९-४४½।

पूर्णपात्रफलाधारान्पल्लवाढ्यान्सलक्षणान्[3] ।।४५
वस्त्रैराच्छादयेत्कुम्भानाहरेद्गौरसर्षपान् ।
विकिरार्थं तथा लाजाञ्ज्ञानखड्गं च पूर्ववत् ।।४६

---

१ रक्षायै........केवलम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । २ घ. °दर्भोद्योभ° । ३ ख. ग. °त्रकलाहारा° ।

सापिधानां चरुस्थालीं दर्वीं च ताम्रनिर्मिताम् ।
घृतक्षौद्रान्वितं पात्रं पादाभ्यङ्गकृते तथा ॥४७
विष्टरांस्त्रि (स्त्रिं) शता दर्भदलैर्बाहुप्रमाणकान् ।
चतुरश्चतुरस्तद्वत्पालाशान्परिधीनपि ॥४८
तिलपात्रं हविष्पात्रमर्घपात्रं पवित्रकम् ।
पलविंशतिमानानि[1] घण्टाधूपप्रदानकम्[2] ॥४९
स्रुक्स्रुवौ पिटकं पीठं व्यजनं शुष्कमिन्धनम् ।
पुष्पं पत्रं गुग्गुलं च घृतैर्दीपांश्च धूपकम् ॥५०
अक्षतानि[3] (?) त्रिसूत्रीं च गव्यमाज्यं यवांस्तिलान् ।
कुशाः शान्त्यै[4] त्रिमधुरं समिधो दशपर्विकाः ॥५१
बाहुमात्रं स्रुवं हस्तमर्कादिग्रहशान्तये ।
समिधोऽर्कपलाशोत्थाः खादिरामार्गपिप्पलाः (?) ॥५२
उदुम्बरशमीदूर्वाः कुशोत्थाः शतमष्ट च ॥५२½

उनके ऊपर ऐसे पूर्णपात्र रखे, जो शुभ-पल्लवों और फलों से युक्त हों। तत्पश्चात् कलशों को वस्त्रों से आच्छादित करके उनके चारों ओर सफेद सरसों और लावा बिखेर दे। तत्पश्चात् आचार्य की पूजा के लिए धन की कृपणता त्याग कर पहले की भाँति ज्ञान-खड्ग, ढक्कन सहित चरुस्थाली, ताँबे की करछुल, घी और मधु से भरे पात्र, पाँव में लगाने का उबटन, कुशा के तीस दलों से बने हुए दो-दो हाथ लम्बे आसन, चार-चार गूलर तथा पलाश के दण्ड, तिल पात्र, हविष्पात्र, अर्घपात्र, पवित्री, बीस प्रकार के फल, घण्टा, धूपदान, स्रुक्, स्रुव, पिटारी, पीढ़ा, पङ्खा, सूखा ईंधन, पुष्प, पत्र, गुग्गुल, घी से जलाया हुआ दीपक, धूप, अक्षत, त्रिसूत्र, गाय का घी, यव, तिल, कुश, शान्ति के लिए त्रिमधुर (चीनी, मधु, घी) तथा दश पोर वाली समिधा, बाहु मात्र का स्रुव—इन वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए। सूर्य आदि ग्रहों की शान्ति के लिए आक, पलाश, खैर, चिरचिरा, गूलर, शमी तथा पीपल की समिधायें होनी चाहिए। एक सौ आठ कुश तथा दूब भी पूजन में अपेक्षित है।४५-५२½।

तदभावे यवतिला[5] गृहोपकरणं तथा ॥५३
स्थालीदर्वीपिधानादि देवादिभ्योंऽशुकद्वयम् ।
मुद्रामुकुटवासांसि हारकुण्डलकङ्कणान् ॥५४

१ घ. °विंशाष्टामा° । २ घ. घंटीवू° । ३ क. ङ: च. अक्षता° । ४ क. ख. ग. ङ. च. शान्तौ । ५ ख. ग. °लान्गृहो° ।

कुर्यादाचार्यपूजार्थं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
तत्पादपादहीना च[1] मूर्तिभृदस्त्रजापिनाम्[2] ॥५५
पूजा स्याज्जापिभिस्तुल्या विप्रदैवज्ञशिल्पिनाम् ।
वज्रार्कशान्तौ[3] नीलातिनीलमुक्ताफलानि[4] च ॥५६
पुष्पपद्मादिरागं च वैडू (दू) र्यं रत्नमष्टमम् ।
उशीरमाधवक्रान्ता[5] रक्तचन्दनकागुरु[6] ॥५७
श्रीखण्डं सारिकं कुष्ठं शङ्खिनी ह्योषधीगणः ।
हेमताम्रमयो[7] रङ्गं[8] राजतं च सकांस्यकम् ॥५८
सीसकं चेति लोहानि हरितालं मनःशिला ।
गैरिकं हेममाक्षीकं पारदो वह्निगैरिकम् ॥५९
गन्धकाभ्रकमित्यष्टौ धातवो व्रीहयस्तथा ।
गोधूमान्सतिलान्माषान्मुद्गानप्याहरेद्यवान् ॥६०
नीवाराञ्श्यामकानेवं व्रीहयोऽप्यष्ट कीर्तिताः ॥६१

यदि ये न मिलें तो यव और तिल ही ले लें। अन्य गृह-सामग्रियों में—थाली, करछुल, तकिया, देव आदि के निमित्त एक जोड़ा वस्त्र, मुद्रा, मुकुट, वस्त्र, हार, कुण्डल तथा कंगन भी आचार्य की पूजा के लिए संगृहीत करे। आचार्य की भांति देवता (पुजारी), अस्त्र-मन्त्र का जप करने वाले, ज्योतिषी तथा शास्त्री ब्राह्मणों की उपर्युक्त सामग्रियों के तीन चौथाई भागों से पूजा करनी चाहिए। वज्रमणि, सूर्यकान्तमणि, नीलमणि, अतिनीलमणि, मोती, पुष्पराग मणि, पद्मरागमणि तथा वैदूर्यमणि—ये आठ रत्न खस, माधवक्रान्ता, रक्तचन्दन, अगर, श्रीखण्ड, सारिक, कुष्ठ तथा शंखिनी—ये आठ ओषधियाँ, सोना, ताँबा, राँगा, चाँदी, काँसा, सीसा, लोहा और पीतल—ये आठ धातुएँ, हरिताल, मैनसिल, गेरू, स्वर्णमाक्षिक, पारा, वह्निगैरिक, गन्धक तथा अभ्रक—

---

१ ख. ग. च. पूजाऽभूद्° । २ क. ङ. च. °मृच्छस्त्र° । ३ क. ख. ङ. च. °र्ककान्तौ । ४ क. ङ. च. °लाभं नी° । ५ क. ख. ग. ङ. च. °धवीक्रा° । ६ ख. ग. घ. °रुम् । श्री° । ७ घ. °मयं रक्तं रा° । ८ क. ङ. च. °ङ्गं तालमात्रं स° । ख. ग. °ङ्गं तावमायं स° ।

ये आठ धातुएँ और व्रीहि, गेहूँ, तिल, उड़द, मूंग, यव, नीवार, साँवाँ—ये आठ धान्य भी पूजा में प्रदान करने चाहिए ।५३-६१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रतिष्ठाकालसामग्र्यादिविधि-कथनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।६५

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

प्रठिष्ठायामधिवासनविधिः

ईश्वर उवाच—

स्नात्वा नित्यद्वयं कृत्वा प्रणवार्धकरो गुरुः ।
सहायैर्मूर्तिपैर्विप्रैः सह गच्छेन्मखालयम् ।।१
शान्त्यादितोरणांस्तत्र पूर्ववत्पूजयेत्क्रमात् ।
प्रदक्षिणक्रमादेषां शाखायां द्वारपालकान् ।।२
प्राचि नन्दिमहाकालौ याम्ये[1] भृङ्गिविनायकौ ।
वारुणे वृषभस्कन्दौ देवीचण्डौ तथोत्तरौ ।।३
तच्चाखामूलदेशस्थौ प्रशान्तशिशिरौ घटौ ।
पर्जन्याशोकनामानौ भूतसंजीवनामृतौ ।।४
धनदश्रीप्रदौ द्वौ द्वौ पूजयेदनुपूर्वशः ।
स्वनामभिश्चतुर्थ्यन्तैः प्रणवादिनमोन्तकैः ।।५
लोकग्रहवसुद्वाःस्थस्त्रवन्तीनां द्वयं द्वयम् ।
भानुत्रयं युगं वेदो लक्ष्मीर्गणपतिस्तथा ।।६
इति देवा मखागारे तिष्ठन्ति प्रतितोरणम् ।
विघ्नसंघापनोदाय क्रतोः संरक्षणाय च ।।७
वज्रं शक्ति तथा दण्डं खड्गं पाशं ध्वजं गदाम् ।
त्रिशूलं चक्रमम्भोजं पताकाश्चार्चयेत्क्रमात् ।।८
ॐ[2] ह्रूं फट्ः नमः । ॐ ह्रूं फट्, हस्ते शक्तये ह्रूं फट्, नम इत्यादिमन्त्रैः ।।९
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ।
शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ।।

---

१ ख. ग. °म्ये शृङ्गि° । २ क. ङ. च. ॐ हूं फट् शक्त° ।

ध्वजाष्टदेवताः पूज्याः पूर्वादौ भूतकोटिभिः ॥१०
ॐ कौं कुमुदाय नम इत्यादिमन्त्रैः ॥११

महादेव बोले—गुरु स्नान तथा दो समय की नित्य-पूजा-विधि समाप्त करके मूर्ति-रक्षक सहायक विप्रों के साथ यज्ञ-गृह में प्रवेश करे। वहाँ शान्ति आदि नामों से प्रसिद्ध बाहरी दरवाजों का पहले की भाँति क्रमशः पूजन करके प्रदक्षिणा के क्रम से उन (यज्ञीय वृक्षों) की शाखाओं पर, जिनसे दरवाजे सजाये गये हैं, अवस्थित द्वाररक्षक देवों का पूजन करे। उनमें नन्दी तथा महाकाल नामक देवों की पूजा पूर्व दिशा में, भृङ्गी तथा विनायक देवों की पूजा दक्षिण-दिशा में, वृषभ तथा स्कन्द की पूजा पश्चिम दिशा में और देवी तथा चण्ड की पूजा उत्तर दिशा में करनी चाहिए। शाखाओं के नीचे (दरवाजों के ऊपर) रखे हुए प्रशान्त और शिशिर, पर्जन्य और अशोक, भूतसंजीवन और अमृत तथा धनद और श्रीपद नामक दो-दो घटों को क्रमशः उनके नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति तथा नमः शब्द और आदि में 'ओम्' शब्द जोड़कर बने हुए मन्त्र से पूजन करे। मन्त्र यह है—"ॐ प्रशान्त शिशिराभ्यां नमः", या "ॐ प्रशान्ताय नमः, "ॐ शिशिराय नमः" इत्यादि। विघ्न-समूह का निवारण तथा यज्ञगृह के प्रत्येक दरवाजों पर लोक, ग्रह, वसु, दो-दो स्रवन्ती, तीन सूर्य, युग, वेद, लक्ष्मी तथा गणपति ये देवगण निवास किया करते हैं। इनकी 'ॐ ह्रूं फट् नमः, 'ॐ ह्रूं फट् हस्ते शक्त शक्तये ह्रूं 'फट् नमः" इत्यादि मन्त्रों से वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल चक्र, कमल तथा पताकाओं में पूजा करनी चाहिए। "ॐ कौं कुमुदाय नमः" इत्यादि भूतकोटि मन्त्रों से कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित नामक आठ ध्वज-देवताओं की पूजा करनी चाहिए।१-११।

हेतुकं त्रिपुरघ्नं च शक्त्याख्यं[1] यमजिह्वकम्।
कालं करालिनं षष्ठमेकाङ्घ्रिं भीममष्टकम् ॥१२
तथैव पूजयेद्दिक्षु क्षेत्रपालाननुक्रमात्।
बलिभिः कुसुमैर्धूपैः सन्तुष्टान्परिभावयेत् ॥१३
[2]कम्बलास्तृतेषु[3] वर्णेषु वंशस्थूणास्वनुक्रमात्[4]।
पञ्च क्षित्यादितत्त्वानि सद्योजातादिभिर्यजेत् ॥१४

---

१ क. ङ. च. वह्न्याख्यं। २ कम्बलास्तृणेषु........स्वनुक्रमात् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ख. ग. °म्बरातृणेषु। ४ ख. वंशे स्थू°।

सदाशिवपदव्यापि मण्डपं धाम शांकरम्[1] ।
पताकाशक्तिसंयुक्तं तत्त्वदृष्ट्याऽवलोकयेत् ॥१५
दिव्यान्तरिक्षभूयिष्ठविघ्नानुत्सार्य पूर्ववत् ।
[2]प्रविशेत्पश्चिमद्वारा शेषद्वाराणि दर्शयेत् ॥१६
प्रदक्षिणक्रमाद्गत्वा निविष्टो वेददक्षिणे ।
उत्तराभिमुखः कुर्याद्भूतशुद्धिं यथा पुरा ॥१७
अन्तर्यागं विशेषार्घ्यं मन्त्रद्रव्यादिशोधनम् ।
कुर्वीत स्वात्मनः[3] पूजां पञ्चगव्यादि पूर्ववत् ॥१८
साधारं कलशं तस्मिन्विन्यसेत्तदनन्तरम् ।
विशेषाच्च[4] शिवं[5] ध्यायेत्तत्त्वत्रयमनुक्रमात् ॥१९
ललाटस्कन्धपादान्तं शिवविद्यात्मकं परम् ॥
[6]रुद्रनारायणब्रह्मदैवतं[7] निजसंच (व) रैः ॥२०
ॐ हं हाम् ॥२१

इसी प्रकार सब दिशाओं में हेतुक, त्रिपुरध्वन, शक्ति, यमजिह्वक, काल, करालिन्, एकांघ्रि तथा भीम नामक आठ क्षेत्रपालों का पूजन क्रमशः बलि, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि से करके ऐसा सोचना चाहिए कि ये देवगण सन्तुष्ट हो गये हैं। तदनन्तर पवित्र तृणों पर तथा बाँस के स्तम्भों पर 'सद्योजात' आदि मन्त्रों से पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों का क्रमशः पूजन करके गुरु को तत्त्व की दृष्टि से इस मण्डप का अवलोकन करना चाहिए, जो सदाशिव तत्त्व से व्याप्त, शंकर का धाम और पताका शक्ति (देवी) से युक्त है। तत्पश्चात् आकाश, अन्तरिक्ष और भूमि सम्बन्धी विघ्नों का पूर्ववत् निराकरण करके मण्डप में पश्चिम-द्वार से प्रवेश करे और शेष द्वारों का निरीक्षण करे। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके वेदी से दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख होकर बैठ जाए और पूर्ववत् भूतशुद्धि, अन्तर्याग (मानसिक यज्ञ) विशेष अर्घ्यदान, मन्त्र तथा द्रव्य आदि की शुद्धि और आत्मपूजा करें। पञ्चगव्य आदि का प्राशन भी पहले की ही भाँति करना चाहिए। उसके बाद उचित स्थान में आधारयुक्त कलश की स्थापना करके शिव तथा उनके तीन तत्त्वों का विशेष रूप से ध्यान करे। तदनन्तर अपने शरीर में ललाट से लेकर कन्धे तक शिव, विद्या तथा आत्मतत्त्व

---

१ क. ङ. च. °म् । पिनाकश° । २ प्रविशेत्.........पूर्ववत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ३ घ. आत्मनः । ४ घ. °षाच्छिवतत्त्वाय तत्त्व । ५ ख. ग. शिवत्वाय तत्त्व° । ६ ख. ग. रुद्रं ना° । ७ ख. ग. °यणं ब्र° ।

स्वरूप रुद्र, नारायण और ब्रह्मा देवता का अपने नाम मन्त्र "ॐ हं ह्राम्" से न्यास करे।१२-२१।

मूर्तीस्तदीश्वरांस्तत्र पूर्ववद्विनिवेशयेत्।
तद्व्यापकं शिवं साङ्गं शिवहस्तं च मूर्धनि ॥२२
ब्रह्मरन्ध्रप्रविष्टेन तेजसा बाह्यसान्तरम्।
तमःपटलमाधूय प्रद्योतितदिगन्तरम् ॥२३
आत्मानं मूर्तिपैः[1] सार्धं स्रग्वस्त्रमुकुटादिभिः[2]।
भूषयित्वा शिवोऽस्मीति ध्यात्वा बोधासिमुद्धरेत् ॥२४
चतुष्पदान्तसंस्कारैः[3] संस्कुर्यान्मखमण्डपम्।
विक्षिप्य विकिरादीनि कुशकूर्चो (र्च्यो) पसंहरेत् ॥२५
आसनीकृत्य वर्धन्या वास्त्वादीन्पूर्ववद्यजेत्।
शिवकुम्भास्त्रवर्धन्यौ पूजयेच्च स्थिरासने ॥२६
स्वदिक्षुकलशारूढाँल्लोकपालाननुक्रमात्।
वाहायुधादिसंयुक्तान्पूजयेद्विधिना यथा ॥२७
ऐरावतगजारूढं स्वर्णवर्णं किरीटिनम्।
सहस्रनयनं शक्रं वज्रपाणिं विभावयेत् ॥२८
सप्तार्चिषं च बिभ्राणमक्षमालां कमण्डलुम्।
ज्वालामालाकुलं रक्तं शक्तिहस्तमजासनम् ॥२९
महिषस्थं दण्डहस्तं यमं कालानलं स्मरेत्।
रक्तनेत्रं खरारूढं खड्गहस्तं च नैर्ऋतम् ॥३०
वरुणं मकरे श्वेतं नागपाशधरं स्मरेत्।
वायुं च हरिणे नीलं कुवेरं मेषसंस्थितम् ॥३१
त्रिशूलिनं वृषे चेशं कूर्मेऽनन्तं तु चक्रिणम्।
ब्रह्माणं हंसगं ध्यायेच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ॥३२

गुरु पहले की भाँति मूर्तियों तथा उनके देवताओं (अर्थात् देवत्व युक्त मूर्तियों) को अपने में धारण करके यह विचार करे कि साङ्गोपाङ्ग व्यापक शिव मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर अपना हाथ मेरे मस्तक पर रख रहे हैं और उनका तेज मेरे ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट होकर बाह्य और अभ्यन्तर तमो राशि को

---

१ ख. ग. °प्रतिष्ठेन। २ घ. °स्रकुसुमादि°। ३ क. ङ. च. °ष्पथातु सं°। ख. गः °ष्पथां तु सं°।

नष्ट करता हुआ दशो दिशाओं को अवलोकित कर रहा है। मूर्तिरक्षकों (पुजारी विप्रों) के साथ अपने को माला, वस्त्र और मुकुट आदि से विभूषित करके मैं "शिव हूँ"—ऐसी भावना करते हुए ज्ञानखड्ग का आकर्षण करे। तदनन्तर चतुष्पदान्त संस्कारों द्वारा यज्ञ-मण्डप का संस्कार करके वहाँ कुश आदि बिखेरकर कुश के कूर्च से फिर उन्हें समेट ले। उनका आसन बनाकर पहले की भाँति वर्धनी (टोंटी वाले पात्र) के जल से वास्तु आदि का पूजन करे। तत्पश्चात् स्थिर आसन पर शिव-कलश तथा अस्त्ररूप वर्धनी की पूजा करके सब दिशाओं में कलशों के ऊपर वाहन और आयुध आदि से युक्त लोकपालों का क्रमशः विधिपूर्वक पूजन करे। विधि यह है—ऐरावत हाथी पर आरूढ़, सोने के समान वर्णवाले, सहस्र नेत्रों वाले, मुकुट पहने तथा हाथ में वज्र लिए हुए इन्द्र का ध्यान करे। इसके वाद अक्षमाला तथा कमण्डलु धारण किये हुए, ज्वालाओं के समूह से व्याप्त, रक्तवर्ण वाले, हाथ में शक्ति-अस्त्र धारण करने वाले, अज-चर्म पर बैठने वाले अग्नि का ध्यान करे। महिष पर आरूढ़ तथा हाथ में दण्ड धारण किए हुए कालाग्नि रूप यम का स्मरण करे। तत्पश्चात् रक्त नेत्रों वाले, गर्दभ पर आरूढ़ तथा खड्गहस्त नैर्ऋत देव का, ग्राह पर आरूढ़ तथा श्वेतवर्ण एवं नागपाशधारी वरुणदेव का, हरिण पर स्थित चक्रधारी अनन्तदेवता का और हंस पर आरूढ़ चार मुख और चार भुजा वाले ब्रह्मा का ध्यान करे।२२-३२।

स्तम्भमूलेषु कुम्मेषु वेद्यां धर्मादिकान्यजेत्[१]।
दिक्षु कुम्भेष्वनन्तादीन्पूजयन्त्यपि केचन ॥३३
शिवाज्ञां श्रावयेत्कुम्भं[२] भ्रामयेदात्मपृष्ठगम्[३]।
पूर्ववत्स्थापयेदादौ कुम्भं तदनुवर्धनीम् ॥३४
शिवं स्थिरासनं कुम्भे शस्त्रार्थं च ध्रुवासनम्।
पूजयित्वा यथापूर्वं स्पृशेदुद्भवमुद्रया ॥३५
निजयागं जगन्नाथ रक्ष भक्तानुकम्पया।
एभिः संश्राव्य रक्षार्थं कुम्भे खड्गं निवेशयेत् ॥३६
दीक्षास्थापनयोः कुम्भे स्थण्डिले मण्डलेऽथ वा।
मण्डलेऽभ्यर्च्य देवेशं व्रजेद्वै [४]कुण्डसंन्निधौ[५] ॥३७

---

१ ख, ग. °कान्यसेत्। २ ख. ग. °वयन्कुम्भं। ३ क. ङ. च. °दानुपूर्वशः पू°। ४ ख. ग. °कुण्ठसं°। ५ क. ङ. च. °ण्डलादिभिः। गु°।

कुण्डनाभिं पुरस्कृत्य निविष्टा मूर्तिधारिणः ।
गुरोरादेशतः कुर्युर्निजकुण्डेषु संस्कृतिम् ॥३८
[1]जपेयुर्जापिनोऽसंख्यं[2] मन्त्रमन्ये तु संहिताम् ।
पठेयुर्ब्राह्मणाः शान्तिं स्वशाखावेदपारगाः ॥३९
श्रीसूक्तं पावमानीश्च मैत्रकं च वृषाकपिम् ।
ऋग्वेदी पूर्वदिग्भागे सर्वमेतत्समुच्चरेत् ॥४०
देवव्रतं तु भारुण्डं ज्येष्ठसाम रथंतरम् ।
पुरुषं गीतिमेतानि[3] सामवेदी तु दक्षिणे ॥४१
रुद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं विशेषतः ।
ब्राह्मणं च यजुर्वेदी पश्चिमायां समुच्चरेत् ॥४२
नीलरुद्रं तथाऽथर्वी सूक्ष्मासूक्ष्मं तथैव च ।
उत्तरेऽथर्वशीर्षं च तत्परस्तु समुद्धरेत् ॥४३
आचार्यश्चाग्निमुत्पाद्य प्रतिकुण्डं प्रदापयेत् ।
वह्नेः पूर्वादिकान्भागान्पूर्वकुण्डादितः क्रमात् ॥४४

तदनन्तर स्तम्भ-मूल में कुम्भों तथा वेदी के ऊपर धर्म आदि की पूजा करे और किसी के मतानुसार सब दिशाओं में कुम्भों के ऊपर अनन्त आदि देवताओं की पूजा की जाती है। पूजन के पश्चात् शिव की आज्ञा सुनाते हुए अपने चारों ओर कुम्भ को घुमाकर उसे यथास्थान रख दे। उसके पीछे वर्धनी, शिव, स्थिरासन, कुम्भ, शस्त्र तथा ध्रुवासन की पूर्ववत् पूजा करके उद्‌भव-मुद्रा के द्वारा सबका स्पर्श करे। 'हे जगन्नाथ ! भक्त के ऊपर अनुकम्पा करके अपने याग की रक्षा करो'—यह कहकर रक्षा के लिए खड्‌ग को कलश के पास रख दे। तत्पश्चात् दीक्षास्थान, घटस्थापन के स्थान तथा स्थण्डिल में अथवा मण्डल में देवेश की अर्चना करके कुण्ड के समीप जाना चाहिए। वहाँ समस्त होतागण कुण्डनाभि को आगे करके गुरु की आज्ञा से अपने-अपने कुण्डों का संस्कार करे, जप करने वाले लोग असंख्य-मन्त्रों का जप करे, कोई संहिता का पाठ करे और अपनी वेदशाखा में पारङ्गत ब्राह्मणों को शान्ति का पाठ करना चाहिए। ऋग्वेदपाठी ब्राह्मण पूर्व दिशा में श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मैत्रक सूक्त तथा वृषाकपि सूक्त का उच्चस्वर से पाठ करना

---

१ घ. °पिनः सं° । २ क. ङ. च. संख्यमस्त्रम° । ख. ग. संख्यमत्रम° ।
३ ख. ग. गीतमे° ।

चाहिए। दक्षिण दिशा में सामवेदी ब्राह्मणों को देवव्रत, भारुण्ड, ज्येष्ठ साम, रथन्तर तथा पुरुष नामक गीतों का गान करना चाहिए। पश्चिम दिशा में यजुर्वेदी ब्राह्मणों को रुद्राध्याय पुरुष-सूक्त, विशेषकर श्लोकाध्याय तथा ब्राह्मण-ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए। उत्तर दिशा में अथर्ववेदी ब्राह्मणों को नीलरुद्र, सूक्ष्मासूक्ष्म, अथर्वशिरस्, मन्त्रों का पाठ तत्परता से करना चाहिए। तदनन्तर आचार्य को अग्नि उत्पन्न करके उसे प्रत्येक कुण्ड में रखना चाहिए। अग्नि के पूर्व आदि भागों को पूर्व आदि कुण्ड के क्रम से रखना चाहिए।३३-४४।

धूपदीपचरूणां च ददीताग्निं समुद्धरेत् ।।
पूर्ववच्छिवमभ्यर्च्य शिवाग्नौ मन्त्रतर्पणम् ।।४५
देशकालादिसंपत्तौ दुर्निमित्तप्रशान्तये ।
होमं कृत्वा[1] तु मन्त्रज्ञः पूर्णां दत्त्वा शुभावहाम् ।।४६
पूर्ववच्चरुकं कृत्वा प्रतिकुण्डं निवेदयेत् ।
यजमानालंकृतास्तु व्रजेयुः स्नानमण्डपम् ।।४७
भद्रपीठे निधायेशं ताडयित्वाऽवगुण्ठयेत् ।
स्नापयेत्पूजयित्वा तु मृदा काषायवारिणा ।।४८
गोमूत्रैर्गोमयेनापि वारिणा चान्तराऽन्तरा ।
भस्मना गन्धतोयेन फडन्तास्त्रेण वारिणा ।।४९

अग्नि को धूप, दीप तथा चरु भी समर्पित करना चाहिए। तत्पश्चात् मन्त्र-ज्ञाता गुरु पहले की भाँति शिव की पूजा करके शिवाग्नि में मन्त्रतर्पण क्रिया करे और दुर्निमित्तों को रोकने के लिए तथा देश, काल आदि को सुन्दर बनाने के लिए हवन करके शुभदायक पूर्णाहुति डाले। तदनन्तर पूर्ववत् चरु बनाकर प्रत्येक कुण्ड में छोड़े। यजमान वस्त्र, आभूषण, आदि से सुसज्जित होकर स्नान-मण्डप में प्रवेश करे और गुरु भद्रपीठ पर शिव को स्थापित करके ताडन तथा अवगुण्ठन-क्रिया सम्पन्न करे। फिर 'फट्' शब्द से अन्त होने वाले अस्त्र-मन्त्र को पढ़कर मूर्ति को मिट्टी तथा कड़वी ओषधि मिश्रित जल, गोमूत्र, गोमय, जल, भस्म, सुगन्धित जल और पुनः सामान्य जल से क्रमशः स्नान कराए।४५-४९।

देशिकौ मूर्तिपैः सार्धं कृत्वा कारणशोधनम् ।
धर्मजप्तेन संछाद्य पीतवर्णेन वाससा ।।५०

---

१ ख. ग. कृत्वाऽथ म° ।

संपूज्य सितपुष्पैश्च नयेदुत्तरवेदिकाम् ।
तत्र दत्तासनायां च शय्यायां संनिवेश्य च ॥५१
कुंकुमालिप्तसूत्रेण विभज्य गुरुरालिखेत् ।
शलाकया सुवर्णस्य अक्षिणी शस्त्रकर्मणा ।५२

तदनन्तर गुरु पुजारियों के साथ कारण शरीर (सूक्ष्म) की शुद्धि करके मूर्ति को धर्ममन्त्र से अभिमन्त्रित पीत वस्त्र से ढँक दे और श्वेत-पुष्पों से पूजन करने के बाद उसे उत्तर वेदी के पास ले जाय। वहाँ शय्या पर आसन बिछाकर उसके ऊपर मूर्ति रखकर केसर में लिप्त सूत्र से मूर्ति के शरीर में (प्रत्येक अङ्ग का) चिह्न बनाए और नेत्र बन जाने पर सोने की शलाका से अस्त्र-मन्त्र द्वारा उनमें नेत्र अंकित करे ।४६-५२।

अञ्जयेल्लक्ष्मकृत्पश्चाच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
(कृतकर्मा[1] च शस्त्रेण लक्ष्मी(क्ष्मीं(?) शिल्पी समुत्क्षिपेत् ॥५३
त्र्यंशादर्धोऽथ पादार्धादर्धाया अर्धतोऽथ वा ।
सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं शुभं लक्ष्मावतारणम्[2] ॥५४
लिङ्गदीर्घविकारांशे त्रिभक्ते भागवर्णनात्[2] ।
विस्तारो लक्ष्मदेहस्य भवेल्लिङ्गस्य सर्वतः ॥५५
यवस्य नवभक्तस्य भागैरष्टाभिरावृता ।
हास्तिके लक्ष्मरेखा च गाम्भीर्याद्विस्तरादपि ॥५६
एवमष्टांशवृद्ध्या तु लिङ्गे सार्धकरादिके ।
भवेदष्टयवा पृथ्वी [3]गम्भीराऽत्र[4] च हास्तिके ॥५७
शांभवेषु च लिङ्गेषु पादवृद्धेषु सर्वतः ।
लक्ष्मदेहस्य विष्कम्भो भवेद्वै यववर्धनात् ॥५८
गम्भीरत्वपृथुत्वाभ्यां रेखाऽपि त्र्यंशवृद्धितः ।
सर्वेषु च भवेत्सूक्ष्मं लिङ्गमस्तकमस्तकम् ॥५६
लक्ष्मक्षेत्रेऽष्टधा भक्ते मूर्ध्नि भागद्वये शुभे ।
षड्भागपरिवर्तन मुक्त्वा भागद्वयं त्वधः ॥६०
रेखात्रयेण[5] सम्बद्धं कारयेत्पृष्ठदेशगम् ।
रत्नजे लक्षणोद्धारो यवौ हेमसमुद्भवे ॥६१

---

१ कृतकर्मा........लक्ष्मीं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । २ ग. लक्ष्म्याव° । ३ क. ङ. च. °म्भीरा नवहा° । ४ ख. °रान्न च हा° । ५ क. ङ. च खाभ्रमेण ।

स्वरूपलक्षणं तेषां प्रभा रत्नेषु निर्मला ।
नयनोन्मीलनं वक्त्रे[1] सांनिध्याय च लक्ष्म तत् ॥६२
लक्षणोद्धाररेखां[2] च घृतेन मधुना यथा ।
मृत्युञ्जयेन सम्पूज्य शिल्पिदोषनिवृत्तये ॥६३

नेत्रों का चिह्न शास्त्रोक्त रीति से शस्त्र-मन्त्र द्वारा मूर्ति की पूरी लम्बाई के तीन चौथाई भाग की प्रथम पंक्ति में अथवा द्व्यर्ध अधोभाग के लगभग अर्धपाद पर ऊपर बनाना चाहिए । इस प्रकार का चिह्न सभी कामनाओं को सिद्ध करने वाला तथा शुभ माना गया है । एक हाथ लम्बे शिवलिङ्ग में नेत्रों के गोलकों की गहराई और चौड़ाई यव का बहत्तरवाँ भाग होना चाहिए । यदि लिङ्ग की लम्बाई आधा हाथ अधिक हो तो नेत्र गोलकों की चौड़ाई और गहराई यव के अष्टांश भाग और बढ़ जाती है । लिङ्ग के ऊपर के भाग में रहने वाली रेखाओं की गहराई और चौड़ाई भी तृतीयांश बढ़ जाती है । सर्वत्र लिङ्ग का ऊपरी भाग उत्तर की ओर पतला होता जाता है । लिङ्ग के नेत्रों के भाग को आठ भागों में और लिङ्ग के शिरस्थान को दो शुभ भागों में विभक्त करना चाहिए । उपर्युक्त ढंग से विभक्त नेत्रों के नीचे के दो भागों को तीन रेखाओं के रूप में लिङ्ग की मूर्धा के पीछे मिला देना चाहिए । जहाँ पर लिङ्ग सोने अथवा मणियों का होता है, वहाँ पर ऊपर की ओर बनी हुई रेखाएँ यव परिमाण की होती है । रत्नों में निर्मल प्रभा रहती है । सान्निध्य के लिए नेत्रोन्मीलन दोषों को दूर करने के लिए मृत्युञ्जय-मन्त्र पढ़कर घी तथा मधु से मूर्ति का लक्षण बताने वाली रेखा की पूजा करे ।५३-६३।

अर्चयेच्च ततो लिङ्गं स्नापयित्वा मृदादिभिः ।
शिल्पिनं तोषयित्वा तु दद्याद्गां गुरवे ततः ॥६४
लिङ्गं धूपादिभिः प्राच्र्य गायेयुर्भर्तृगाः स्त्रियः ।
सव्येन चापसव्येन सूत्रेणाथ कुशेन वा ॥६५
स्पृष्ट्वा[3] च रोचनं दत्त्वा कुर्युर्निर्मन्थनादिकम् ।
गुडलवणधान्याकदानेन विसृजेच्च ताः ॥६६

---

१ ख. ग. व्यक्ते । २ ख. ग. °रलेखा° । ३ घ. स्मृत्वा ।

तदनन्तर मृत्तिका आदि से शिवलिङ्ग का स्नान करके प्रतिमा बनाने वाले को सन्तुष्ट करके गुरु को दक्षिणा में गो प्रदान करे। तत्पश्चात् धूप आदि से शिवलिङ्ग की पूजा करे और सधवा स्त्रियाँ शिव-लिङ्ग के समीप लोकगीत गायें। उसके बाद स्त्रियाँ को वाम तथा दक्षिण क्रम से रखे हुए सूत या कुशा से शिव लिङ्ग का स्पर्श करके उसके ऊपर रोचना आदि का उबटन लगाना चाहिए। तदनन्तर गुरु स्त्रियों को गुड़, लवण तथा धान्य समर्पण करके विदा करे।६४-६६।

गुरुमूर्तिधरैः सार्धं हृदा वा प्रणवेन वा।
मृत्स्नागोमयगोमूत्रभस्माभिः सलिलान्तरम् ॥६७
स्नापयेत्पञ्चगव्येन पञ्चामृतपुरःसरम्।
विरूक्षणं कषायैश्च सर्वौषधिजलेन वा ॥६८
शुभ्रपुष्पफलस्वर्णरत्नशृङ्गयवोदकैः[1]।
तथा धारासहस्रेण दिव्यौषधिजलेन च ॥६९
तीर्थोदकेन गाङ्गेन चन्दनेन च वारिणा।
क्षीरार्णवादिभिः कुम्भैः शिवकुम्भजलेन च ॥७०
विरूक्षणं विलेपं च सुगन्धैश्चन्दनादिभिः।७०½

तत्पश्चात् पुजारियों के साथ हृदय-मन्त्र या प्रणव-मन्त्र पढ़ते हुए मिट्टी, गोबर, भस्म से तथा बीच-बीच में जल से शिवलिङ्ग को स्नान कराए। फिर पञ्चामृत, पञ्चगव्य, कषाय-जल, सर्वौषधि-जल, श्वेत-पुष्प, फल, सुवर्ण, रत्न, शृङ्ग, यव के जल, सहस्रधारा, दिव्यौषधि-जल, तीर्थ-जल, गङ्गा-जल, चन्दन, सामान्य-जल, क्षीर आदि समुद्र के जल, शिवकुम्भ-जल, तथा अन्य कुम्भों के जल से क्रमशः स्नान कराकर सुगन्धि चन्दन आदि का लेप कराए।६७-७०½।

संपूज्य ब्रह्मभिः पुष्पैर्वर्मणा रक्तचीवरैः ॥७१
रक्तरूपेण[2] नीराज्य रक्षातिलकपूर्वकम्[3]।
गीतौघैर्जलदुग्धैश्च कुशाद्यैरर्घ्यसूचितैः ॥७२
द्रव्यैः स्तुत्यादिभिस्तुष्टमर्चयेत्पुरुषाणुना।
समाचम्य हृदा देवं ब्रूयादुत्थीयतां प्रभो ॥७३

---

१ क. ङ. च. °ङ्गवोदं°। ख. ग. °ङ्गसरोद°। २ क. ङ. च. बहुरूपेण। ३ घ. °म्। घृतौ°।

देवं ब्रह्मरथेनैव क्षिप्रं[1] द्रव्याणि तं नयेत् ।
मण्डपे पश्चिमद्वारे शय्यायां त्रिनिवेशयेत् ।।७४
शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्ते[2] विन्यसेदासने शुभे ।
पश्चिमे पिण्डिकां तस्य न्यसेद्ब्रह्मशिलां तथा ।।७५

तत्पश्चात् ब्रह्म-मन्त्रों द्वारा पुष्पों से पूजन करके कवचमन्त्र द्वारा रक्त-वस्त्र, विविध प्रकार की आरती, रक्षा-तिलक, जल, दूध, कुश-जल तथा द्रव्य समर्पण करके गीत और स्तुति आदि से शिव को सन्तुष्ट करे। तदनु पुरुष-सूक्त से पुनः उनकी पूजा करके हृदय-मन्त्र से आचमन-पूर्वक उनसे निवेदन करे कि—'हे प्रभो ! उठिये, यह कहने के बाद शिवलिङ्ग को ब्रह्म रथ पर बिठलाकर पूजन-सामग्री के साथ शीघ्र मण्डप पर ले आए। वहाँ पश्चिम-द्वार के सामने शय्या पर अवस्थित करके शक्ति (देवी) आदि की मूर्तियों को भी पवित्र आसनों पर स्थापित कर दे। मूर्तियों से पश्चिम शिवलिङ्ग की पिण्डिका तथा ब्रह्म-शिला को स्थापित करे। ७१-७५।

शस्त्रमस्त्रशतालब्धनिद्राकुम्भं[3] ध्रुवासनम् ।
प्रकल्प्य शिवकोणे च दत्त्वाऽर्घ्यं हृदयेन तु ।।७६
उत्थाप्योक्तासने लिङ्गं शिरसा पूर्वमस्तकम् ।
समारोप्य न्यसेत्तस्मिन्सृष्ट्या धर्मादिवन्दनम् ।।७७
दद्याद्धूपं[4] च संपूज्य तथा वासांसि वर्मणा ।
गृहोपकृतिनैवेद्यं हृदा दद्यात्स्वशक्तितः ।।७८
घृतक्षौद्रयुतं पात्रमभ्यङ्गाय पदान्तिके ।
देशिकश्च स्थितस्तत्र षट्त्रिंशत्तत्त्वसंचयम् ।।७९
शक्त्यादिभूमिपर्यन्तं[5] सुतत्त्वाधिपसंयुतम् ।
विन्यस्य मूर्तिमूर्तीशान्पूर्वादिक्रमतो यथा ।।८०

तत्पश्चात् सौ बार शस्त्र-मन्त्र से निद्रा-कुम्भ को स्थिरासन के रूप में अभिमन्त्रित करे और ईशान कोण में हृदय-मन्त्र से अर्घ्य देकर शय्या पर से शिवलिंग को उठा ले। पुनः शिरोमन्त्र से आसन पर शिव-लिंग को पूर्वाभिमुख करके स्थापित करके उसमें सृष्टि-मन्त्र से धर्म आदि की वन्दना का न्यास करे और धूप आदि से शिवलिङ्ग की पूजा करके कवच-मन्त्र से वस्त्र

---

१. क. ङ. च. क्षिपेद्द्रव्या॰ । ख. ग. क्षिप्तद्र॰ । २. घ. ॰दिशक्तिप॰ । ३ क. ङ. च.॰ मन्त्रशतावच्च नि॰ । ४ क. ङ. च. द्यादद्वयं च । ५ घ. ॰न्तं स्वतं॰ ।

तथा हृदय-मन्त्र से अपनी शक्ति के अनुसार गृहोपकरण और नैवेद्य शिव को समर्पित करे। शिवलिङ्ग के अभ्यञ्जन के लिए उसके चरण के समीप घी तथा मधु से भरा हुआ पात्र रखें। गुरु शिव-लिङ्ग में तत्त्वाधीशों के साथ शक्ति से लेकर भूमिपर्यन्त छत्तीस-तत्त्वों का न्यास करके पुष्पमालाओं से तीन खण्डों की रचना करे। ७६-८०।

([1]मायापदेशशक्त्यन्तं तुर्या[2] (यां) शाष्टांशवर्तुलम्।
तत्राऽऽत्मतत्त्वविद्याख्यं शिवं सृष्टिक्रमेण तु) ॥८१
एकशः प्रतिभागेषु ब्रह्मविष्णुहराधिपान्।
विन्यस्य मूर्तिमूर्तीशान्पूर्वादिक्रमतो यथा ॥८२
क्ष्मावह्नियजमानार्कजलवायुनिशाकरान्।
आकाशमूर्तिरूपांस्तान्न्यसेत्तदधिनायकान् ॥८३
स (श) र्वं पशुपतिं चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम्।
महादेवं च भीमं च मन्त्रास्तद्वाचका इमे ॥८४
लवशषचयसाश्च हकारश्च त्रिमात्रिकाः।
प्रणवो हृदयाणुर्वा मूलमन्त्रोऽथ वा क्वचित् ॥८५

ये तीन भाग माया से शक्तिपर्यन्त हैं। इनमें प्रथम भाग चतुष्कोण, द्वितीय भाग अष्टकोण तथा तृतीय वर्तुल है। प्रथम भाग में आत्मतत्त्व, द्वितीय में विद्यातत्त्व तथा तृतीय में शिवतत्त्व की स्थिति है। प्रत्येक भाग में सृष्टि-क्रम से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का न्यास करके पूर्व आदि दिशाओं को क्रम से मूर्तियों और मूर्तिपतियों का भी न्यास करे। पृथ्वी, अग्नि, यजमान, अर्क, जल, वायु, चन्द्रमा तथा आकाश—इन मूर्तियों तथा शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर, महादेव तथा भीम—इन मूर्तिपतियों, ल, व, श, ष, च, य स, ह—इन त्रिमात्रिक मन्त्रों, प्रणव, हृदय-मन्त्र तथा मूलमन्त्र का भी न्यास करना चाहिए। ८१-८५।

पञ्चकुण्डात्मके यागे मूर्तीः पञ्चाथ वा न्यसेत्।
पृथिवीजलतेजांसि वायुमाकाशमेव च ॥८६
क्रमात्तदधिपान्पञ्च ब्रह्माणं धरणीधरम्।
रुद्रमीशं सदाख्यं च सृष्टिन्यायेन मन्त्रवित् ॥८७

१ मायापदेश.........सृष्टिक्रमेण तु नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। २ ख. ग. तुर्योयाष्टांसव°।

मुमुक्षोर्वा निवृत्ताद्या अजाताद्यास्तदीश्वराः ।
त्रितत्त्वं वाऽथ सर्वत्र न्यसेद्व्याप्त्यात्मकारणम् ॥८८
शुद्धे चाऽऽत्मनि विद्येशा अशुद्धे लोकनायकाः ।
द्रष्टव्या मूर्तिपाश्चैव भोगिनो मन्त्रनायकाः ॥८९
पञ्चविंशत्तथैवाष्ट पञ्च त्रीणि यथाक्रमम् ।
एषां तत्त्वं तदीशानामिन्द्रादीनां ततो यथा ॥९०

अथवा मन्त्रवेत्ता गुरु पाँच कुण्डवाले भाग में पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश रूप पाँच मूर्तियों का न्यास करके ब्रह्मा, धरणीधर, रुद्र, ईश और सदाशिव रूप पाँच मूर्तियों का न्यास करे। मोक्षाभिलाषी व्यक्ति को निवृत्ति आदि कलाओं का तथा अजात आदि तदधिपतियों के साथ-साथ करना चाहिए। शुद्ध आत्मा में विद्यापतियों, अशुद्ध आत्मा में लोकनायकों, मूर्तिरक्षकों, सर्पों और मन्त्रनायकों का न्यास करके क्रमशः पचीस, आठ, पाँच तथा तीन तत्त्वों का और उनके इन्द्रादि अधिपतियों का भी न्यास करना चाहिए।८९-९०।

ॐ हां शक्तितत्त्वाय[1] नम इत्यादि ।
ॐ हां शक्तितत्त्वाधिपाय[2] नम इत्यादि ।
ॐ हां[3] क्ष्मामूर्तये नमः ।
ॐ हां क्ष्मामूर्त्यधिपाय[4] शिवाय नम इत्यादि ।
ॐ हां पृथिवीमूर्तये नमः ।
ॐ हां[5] पृथिवीमूर्त्यधिपाय ब्रह्मणे नम[6] इत्यादि ।
ॐ हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नम इत्यादि ॥ ९१
नाभिकन्दात्समुच्चार्य घण्टानादविसर्पणम् ।
ब्रह्मादिकारणत्यागाद्द्वादशान्तसमाश्रितम् ॥९२
मन्त्रं च मनसाऽभिन्नं प्राप्तानन्दरसोपमम् ।
द्वादशान्तात्समानीय निष्कलं व्यापकं शिवम् ॥९३
अष्ट (ष्टा) त्रिंशत्कलोपेतं सहस्रकिरणोज्ज्वलम् ।
सर्वशक्तिमयं सांगं ध्यात्वा लिङ्गे निवेशयेत् ॥९४
जीवन्यासो भवेदेवं लिङ्गे सर्वार्थसाधकः ॥९४½

---

१ ख. ग. त्त्वात्मने न॰ । २ क. ङ. च. ॰धिपतये न॰ । ३ क. ङ. च. हां पृ॰ । ४ घ. ॰र्त्यधीशाय । ५ ख. ग. घ. मू॰ । ६ क. ङ. च. नमः । ॐ ।

तदनन्तर गुरु को 'ॐ हां शक्तितत्त्वाय नमः' "ॐ हां शक्ति-तत्त्वाधिपाय नमः" "ॐ हां क्ष्मामूर्तये नमः", "ॐ हां क्ष्मामूर्त्यधिपाय शिवाय नमः," "ॐ हां पृथिवीमूर्तये नमः, "ॐ हां पृथिवीमूर्त्यधिपाय ब्रह्मणे नमः, "और "ॐ हां शिवतत्त्वाधिपाय रुद्राय नमः," इत्यादि मन्त्रों को नाभिदेश से उच्चारण करना चाहिए। इन मन्त्रों के उच्चारण की ध्वनि घण्टानाद से मिश्रित हो जाती है। मन्त्रों को हृद् देश में ले जाकर द्वादश-दल-कमल मण्डल में स्थापित शिवलिङ्ग में विलीन कर देना चाहिए। वहाँ पर अड़तीस कलाओं से युक्त, सहस्र किरणों से उज्ज्वल तथा सर्व-शक्तिमय शिव का अङ्गदेवताओं सहित ध्यान करके शिवलिङ्ग में इस रूप का न्यास करे। इस प्रकार सकल कामनाओं को सिद्ध करने वाला जीवन्यास शिवलिङ्ग में सम्पन्न होता है।६१-६४½।

पिण्डिकादिषु[1] तु न्यासः प्रोच्यते साम्प्रतं यथा ॥६५
पिण्डिकां च कृतस्नानां विलिप्तां चन्दनादिभिः।
सद्वस्त्रैश्च समाच्छाद्य रन्ध्रे च भगलक्षणे ॥६६
पञ्चरत्नादिसंयुक्तां लिङ्गस्योत्तरतः स्थिताम्।
लिङ्गवत्कृतविन्यासां विधिवत्सम्प्रपूजयेत् ॥६७
कृतस्नानादिकां तत्र लिङ्गमूले शिलां न्यसेत्।
कृतस्नानादिसंस्कारं शक्त्यन्तं[2] वृषभं तथा ॥६८
प्रणवपूर्वं हुं[3] पूं ह्रीं मध्यादन्यतयेन च।
क्रियाशक्तियुतां पिण्डीं शिलामाधाररूपिणीम् ॥६९
भस्मदर्भतिलैः कुर्यात्प्राकारत्रितयं ततः।
रक्षायै लोकपालांश्च सायुधान्योजयेद्बहिः ॥१००
ॐ हूं[4] हं क्रियाशक्तये नमः।
ॐ [5]हूं[6] ह्रां हः, महागौरी (रि) रुद्रदयिते स्वाहेति च
पिण्डिकायाम्।ॐ हामाधारशक्तये नमः।
ॐ हां वृषभाय नमः ॥१०१

---

१ ख. ग. °षु मून्या° । २ ख. शक्त्या तं वृ° । ३ क. ङ. च. हूं। ख. ग. हूं। ४ ख. ग. ॐ हूं हं क्रि° । ५. क. ङ. च. ॐ ह्रीं सः म° ॥
६ ख. हं।

अब मैं पिण्डिका (ताँबे आदि की बनी हुई पीढ़ी), जिस पर शिवलिङ्ग स्थापित किया जाता है, आदि में न्यास की विधि बतला रहा हूँ। पिण्डिका को नहलाकर उसके ऊपर चन्दन आदि का लेप करना चाहिए। फिर उसे उत्तम वस्त्र से ढँककर शिवलिङ्ग की भाँति न्यास करके विधिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिए। पिण्डिका का छिद्र भगाकार होना चाहिए। उसमें पाँच रत्न जड़े होने चाहिए तथा उसे शिवलिङ्ग से उत्तर दिशा में रखना चाहिए। इसके बाद उसे पुनः नहलाकर उसके ऊपर शिवलिङ्ग की जड़ में शिला का न्यास करे। तदनन्तर "ॐ ह्रूं ह्रां क्रियाशक्तये नमः," "ॐ ह्रूं ह्रां हः महा-गौरीरुद्रदयिते स्वाहा," "ॐ ह्रामाधरशक्तये नमः" "ह्रां वृषभाय नमः"—इन मन्त्रों से शक्ति, वृषभ, क्रिया-शक्ति से युक्त पिण्डी तथा आधाररुपिणी शिला का स्नान आदि संस्कारपूर्वक पूजन करके भस्म, कुश तथा तिल से तीन प्रकारों की रचना करे और रक्षा के लिए बाहर आयुध सहित लोकपालों को स्थापित कर दे। ९५-१०१।

धारिकादीप्तिमत्युग्रा ज्योत्स्ना चैता वलोत्कटाः।
तथा धात्री विधात्री च न्येसद्वा पञ्चनायिकाः ॥१०२
वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वेधा[1] त्रिस्रोऽथ वा न्यसेत्।
क्रिया ज्ञाना तथेच्छा च पूर्ववच्छान्तिमूर्तिषु ॥१०३
तमी मोहा क्षमी निष्ठा मृत्युर्मायाभवज्वराः।
पञ्च चाथ महामोहा घोरा[2] रात्रिभयाज्वराः ॥१०४
तिस्रोऽथ वा क्रिया ज्ञाना तथा बाधादिनायिका[3]।
आत्मादित्रिषु तत्त्वेषु तीव्रमूर्तिषु विन्यसेत् ॥१०५
अत्रापि पिण्डिका ब्रह्मशिलादिषु यथाविधि।
गौर्यादिसंवरैरेव पूर्ववत्सर्वमाचरेत् ॥१०६
एवं विधाय विन्यासं गत्वा कुण्डान्तिकं ततः।
कुण्डमध्ये महेशानं मेखलासु महेश्वरम् ॥१०७
क्रियाशक्तिं तथाऽन्यासु नादमोष्ठे च विन्यसेत्।
घटं स्थण्डिलवह्नीशैर्नाडीसंधानकं ततः ॥१०८

---

१ क. ख. ङ. ग. च. रोधा। २ घ. रा. च. त्रितयज्व०। ३ ख. ग. °धा विनायका।

पद्मतन्तुसमां शक्तिमुद्घातेन[1] समुद्यताम्।
विशन्ती[2] (न्तीं) सूर्यमार्गेण निःसरन्तीं समुद्गताम् ॥१०८
पुनश्च शून्यमार्गेण विशन्तीं स्वस्य चिन्तयेत् ॥१०९½

तत्पश्चात् धारिका, दीप्तिमती, उग्रा, ज्योत्स्ना, बलोत्कटा धात्री तथा विधात्री का अथवा वामा, ज्येष्ठा, क्रिया, ज्ञाना, वेधा इन पाँच नायिकाओं का अथवा क्रिया, ज्ञाना, इच्छा—इन तीन नायिकाओं का पूर्ववत् शान्ति-मूर्तियों में न्यास करना चाहिए इसी प्रकार तमी, मोहा, क्षयी, निष्ठा, मृत्यु, माया तथा भवज्वरा का अथवा महामोहा, घोरा रात्रिमया—इन तीन नायिकाओं का अथवा क्रिया, ज्ञाना, बाधाविनायिका–इन तीन नायिकाओं का आत्मा आदि तीन तत्त्वों में तथा तीव्र मूर्तियों में न्यास करे। यहाँ भी पिण्डिका तथा ब्रह्मशिला आदि में गौरी आदि के साथ शिव की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार का न्यास करके कुण्ड के समीप जाकर कुण्ड के मध्य में महेशान का, अन्य स्थानों पर क्रियाशक्ति का और ओष्ठ पर नाद का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर गुरु घट, स्थण्डिल, अग्नि तथा ईश के साथ नाड़ियों का सन्धान करके अपनी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करे कि पद्म तन्तु के समान स्वरूप वाली शक्ति वायुलोक तथा सूर्यलोक में प्रवेश करके पुनः वहाँ से निकलकर शून्य मार्ग से अपने स्वरूप में प्रवेश कर रही है। १०२-१०९½।

एवं सर्वत्र सन्धेयं मूर्तिपैश्च परस्परम् ॥११०
सम्पूज्य धारिकां शक्तिं कुण्डे सन्तर्प्य चक्रमात्।
तत्त्वतत्त्वेश्वरान्मूर्तिमूर्तीशांश्च घृतादिभिः ॥१११
सम्पूज्य तर्पयित्वा तु सन्निधौ संहिताणुभिः।
शतं शहस्रमर्धं वा पूर्णया सह होमयेत् ॥११२
तत्त्वतत्त्वेश्वरान्मूर्ति मूर्तीशाश्च करेणुकान्।
[3]तथा संतर्प्य सांनिध्ये जुहुयुर्मूर्तिपा अपि ॥११३
ततो ब्रह्मभिरङ्गैश्च द्रव्यकालानुरोधतः।
सन्तर्प्य[3] शान्तिकुम्भाम्मः प्रेक्षिते कुशमूलतः ॥११४
लिङ्गमूलं च संस्पृश्य जपेयुर्होमसंख्यया।
संनिधानं हृदा कुर्युर्वर्मणा चावगुण्ठनम् ॥११५

---

१ ख. °मुद्धाते°। २ क. ख. ग. ङ. च. °न्ती शून्यमा°। ३ घ. °र्प्य शक्तिं कु।

एवं संशोध्य ब्रह्मादिविष्ण्वन्तादिविशुद्धये ।
विधाय पूर्ववत्सर्वं होमसंख्याजपादिकम् ॥११६
कुशमध्याग्रयोगेन (ण) लिङ्गमध्याग्रकं स्पृशेत् ।
यथा यथा च सन्धानं तदिदानीमिहोच्यते ॥११७

इसी प्रकार मूर्तिरक्षक पुजारी भी सर्वत्र सन्धान करे। तदनन्तर गुरु कुण्ड में धारिका शक्ति का पूजन तथा तर्पण करके उसके समीप संहिता मन्त्रों द्वारा क्रमशः तत्त्व, तत्त्वेश्वर, मूर्ति और मूर्तीशों का घृत आदि से पूजा और तर्पण करे तथा एक हजार या पाँच सौ बार हवन करके पूर्णाहुति दे। गुरु की भाँति मूर्तिरक्षक इतर ब्राह्मण भी कुण्ड के समीप अपने-अपने तत्त्व, तत्त्वेश मूर्ति, मूर्तीशों का पूजन-तर्पण करके हवन करें। तदनन्तर गुरु द्रव्य, काल के अनुसार पंच ब्रह्ममन्त्रों और अङ्ग मन्त्रों से पुनः पूजन तर्पण करके शान्तिकुम्भ के जल से नहलाए शिवलिङ्ग के मूल को कुश के मूल से स्पर्श करे। तत्पश्चात् जितनी आहुतियाँ दी गयीं हों, उतनी बार मन्त्र का जाप करके हृदय-मन्त्र से शिव का) आवाहन और कवच-मन्त्र से उनकी अवगुण्ठन-क्रिया सम्पन्न करे। पुनः प्रारम्भ में ब्रह्मा और अन्त में विष्णु युक्त शिवलिङ्ग की शुद्धि के लिए पूर्ववत् हवन तथा जप आदि करके कुश के मध्य अग्रभाग से शिवलिङ्ग के मध्य तथा अग्रभाग का स्पर्श करे। उसके बाद जिस प्रकार से सन्धान करना चाहिए, उसे मैं अब बता रहा हूं। ११०-११७।

[1]ॐ हां हम्[2], ओम्[3], ओम्, ओम्, एम्, ॐ भूं[4]
भूं बाह्यमूर्तये नमः। ॐ[5] हां वाम्[6], आम्, ओम्,
आं षाम् ॐ भूं भूं वां वह्निमूर्तये नमः ॥११८
एवं च यजमानादिमूर्तिभिरभिसंधेयम् ।
पञ्चमूर्त्यात्मकेऽप्येवं सन्धानं हृदयादिभिः ॥११९
मूलेन स्वीयबीजैर्वा ज्ञेयं तत्त्वत्रयात्मके ।
शिलापिण्डी वृषेष्वेवं पूर्णाछिन्नं सुसंवरैः ॥१२०
भागाभागविशुद्ध्यर्थं होमं कुर्याच्छतादिकम् ।
न्यूनादिदोषमोक्षाय शिवेनाष्टाधिकं शतम् ॥१२१

१ क. ङ. च. ॐ हाम्, ओम्, ओम्, वाम्, ओ भू भुवो स्वम्° । २ ख. हाम् । ३ ख. ग. °म् ए° । ४ ख. ग. भूं बा° । ५ क. ङ. च. ॐ हम्, ओम्, ओम्, ओम्, वाम्, ॐ भूं । ६ ख. °भू, ओम्, ओम्, ओम्, वाम्, ॐ भूं ।

हुत्वाऽथ यत्कृतं कर्म शिवश्रोते निवेदयेत् ।
एतत्समन्वितं[1] कर्म त्वच्छक्तौ च मया प्रभो ॥१२२
ॐ नमो भगवते रुद्राय रुद्र नमोऽस्तु ते ।
विधिपूर्णमपूर्णं वा स्वशक्त्याऽऽपूर्य गृह्यताम् ॥१२३
ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा, इति पिण्डिकायाम् ॥१२४
अथ लिङ्गे न्यसेज्ज्ञानी क्रियाख्यं पीठविग्रहे ।
आधाररूपिणीं शक्तिं न्यसेद्ब्रह्मशिलोपरि ॥१२५
निवध्य सप्तरात्रं वा पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम् ।
एकरात्रमथो वाऽपि यद्वा सद्योऽधिवासनम् ॥१२६
विनाऽधिवासनं यागः कृतोऽपि न फलप्रदः ।
स्वमन्त्रैः प्रत्यहं देयमाहुतीनां शतं शतम् ॥१२७
शिवकुम्भादि पूजां च दिग्बलिं च निवेदयेत् ।
गुर्वादिसहितो वासो रात्रौ नियमपूर्वकम् ॥
अधिवासः[2] स वसतेरधेर्भावे[3] घ ईरितः ॥१२८

'ॐ हां हं, ओम्, ओम्, ओम्, एम् ओम् भूं भूं ब्रह्ममूर्तये नमः' और 'ॐ हां वां आं ॐ आं, षां ॐ मूं भूं ब्रह्ममूर्तये नमः-' इन मन्त्रों से शिव की यजमान आदि मूर्तियों के साथ शिवलिङ्ग का अभिसन्धान करना चाहिये। इसी प्रकार पाँच मूर्ति रूप शिवलिङ्ग में भी हृदय आदि मन्त्रों से सन्धान करना चाहिये। तीन तत्त्व रूप शिवलिङ्ग में मूलमन्त्र या बीजमन्त्रों से सन्धान करके इसी प्रकार शिलापिण्डिका और वृषभ में भी अपने-अपने मन्त्रों से सन्धान करना चाहिये। तदनन्तर शिवलिङ्ग के भिन्न-भिन्न भागों की शुद्धि के लिये शिव मन्त्र से एक सौ आठ बार आहुतियाँ देकर न्यूनाधिक्य दोषों का निराकरण कर देना चाहिये। हवन के पश्चात् जो कुछ कर्म किया जा चुका है, उसे शिव के कान में यह कहकर निवेदन करे कि—हे प्रभो! भगवान् रुद्र को (मेरा) नमस्कार है। हे रुद्र! आपको नमस्कार है। मैंने जो कुछ कर्म विधिपूर्वक अथवा विना विधान के किया है, उसे आप अपनी शक्ति से पूरा करके ग्रहण कर लीजिये।" इसके बाद गुरु पिण्डिका का स्पर्श करते हुए यह मन्त्र पढ़ें—'ॐ ह्रीं शांकरि पूरय स्वाहा।' तदनन्तर ज्ञानी गुरु पीठविग्रह शिव-

१ क. ङ. च. °तन्मयार्पित° । २ अधिवासः..........ईरितः क. ङ. च. नास्ति । ३ घ. °र्भावः समीरि° ।

लिङ्ग में क्रिया का न्यास करके ब्रह्मशिला के ऊपर आधाररूपिणी शक्ति का न्यास करे। इतनी क्रिया सम्पन्न कर लेने के बाद सात रात, पाँच रात या तीन रात या एक रात इस स्थान में अधिवास न करना चाहिए। क्योंकि बिना अधिवास के किया हुआ यज्ञ कार्य फलदायक नहीं होता है। प्रत्येक दिन अपने मन्त्रों से सौ-सौ बार आहुतियाँ देकर शिव कुम्भ आदि का पूजन और दिशाओं को बलिसमर्पण भी करना चाहिये। रात्रि में गुरु आदि के साथ नियमपूर्वक वास करने को अधिवास कहते हैं। यह शब्द अधि पूर्वक 'वस्' धातु से भाव में घञ् प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है।११८-१२८।

इत्यादि महापुराण आग्नेये प्रतिष्ठायामधिवासनविधिकथनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः।९६

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

शिवप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच—

प्रातर्नित्यविधिं कृत्वा द्वारपालप्रपूजनम्।
प्रविश्य प्राग्विधानेन देहशुद्ध्यादिमाचरेत्।।१
दिक्पतींश्च समभ्यर्च्य शिवकुम्भं च वर्धनीम्।
अष्टमुष्टिकया लिङ्गं वह्निं सन्तर्प्य च क्रमात्।।२
शिवाज्ञातस्ततो गच्छेत्प्रासादं शस्त्रमुच्चरन्।
तद्गतान्प्रक्षिपेद्विघ्नान्हुंफडन्तशराणुना।।३
तन्मध्ये स्थापयेल्लिङ्गं वेधदोषविशङ्कया।
तस्मान्मध्यं परित्यज्य यवार्धेन यवेन वा।।४
किञ्चिदीशानमाश्रित्य शिलामध्ये निवेशयेत्।
मूलेन तामनन्ताख्यं सर्वाधारस्वरूपिणीम्।।५
सर्वगां सृष्टियोगेन[1] विन्यसेदचलां शिलाम्।
अथवाऽनेन मन्त्रेण शिवस्याऽऽसनरूपिणीम्।।६

---

१ ख. 'ष्टिघोषेण वि'।

ॐ नमो व्यापिनि भगवति[1] स्थिरेऽचले[2] ध्रुवे।
ह्लीं[3] लं ह्लीं स्वाहा ॥७
त्वया शिवाज्ञया शक्ते स्थातव्यमिह संततम्।
इत्युक्त्वा स समभ्यर्च्य निरुध्याद्रोधमुद्रया[4] ॥८

महादेव बोले— गुरु प्रातःकालीन नित्य कर्म सम्पन्न कर द्वारपालों का पूजन तथा पूर्वोक्त रीति से मन्दिर में प्रवेश करके देहशुद्धि आदि कर्म करे। दिक्पालों तथा शिवकुम्भ और वर्धनी का पूजन करके, अष्टपुष्पिका से शिवलिङ्ग की अर्चना कर क्रमशः आहुति देकर अग्निदेव को तृप्त करे। तदनन्तर शिव की आज्ञा प्राप्त करके, शस्त्र मन्त्र का उच्चारण करते हुए मन्दिर में प्रवेश करे और वहाँ के सकल विघ्नों को 'हुं फट्' से अन्त होने वाले शर मन्त्र से दूर करके मन्दिर के मध्य में शिवलिङ्ग की स्थापना करे। किन्तु वेध-दोष न लग जाये इसलिये एक या आधे यव के बराबर मध्य भाग को छोड़कर किञ्चित् ईशानकोण की तरफ आकर शिला को प्रतिष्ठित करना चाहिये। 'अनन्ता' नामकी, सबकी आधारस्वरूपा, सर्वगामिनी तथा अचलाशिला को मूल मन्त्र से स्थापित कर लेना चाहिये। अथवा 'ॐ नमो व्यापिनि भगवति-स्थिरेऽचले ध्रुवे। ह्लीं लं ह्लीं स्वाहा'—इस मन्त्र से शिव की आसनरूप शिला को स्थापित करके 'हे शक्ते! तुम शिव की आज्ञा से यहाँ सतत स्थापित रहना' कहकर उसकी पूजा करके रोधमुद्रा से उसे रोक दे।१-८।

वज्रादीनि च रत्नानि तथोशीरादिकौषधीः।
लोहान्हेमादिकांस्यान्तान्हरितालादिकांस्तथा ॥६
धान्यप्रभृतिसस्यांश्च पूर्वमुक्ताननुक्रमात्।
प्रभारागत्वदेहत्ववीर्यशक्तिमयानिभान् ॥१०
भावयन्नेकचित्तस्तु लोकपालेशसंवरैः।
पूर्वादिषु च गर्तेषु न्यसेदेकैकशः क्रमात् ॥११
हेमजं तारजं कूर्मं वृषं वा द्वारसम्मुखम्।
सरित्तटमृदा युक्तं पर्वताग्रमृदाऽथ वा ॥१२
प्रक्षिपेन्मध्यगर्तादौ[5] यद्वा मेरुं सुवर्णजम्।
मधूकाक्षतसंयुक्तमञ्जनेन समन्वितम् ॥१३

---

१ क. ङ. च. °ति स्वा°। २ ख. °रे ध्रु°। ३ घ. ह्रूं। ४ क. ङ. च. ध्यात्क्रोध°। घ. ध्याद्रौद्रमु°। ५ क. ङ. च. °र्तायीं य°। ख. ग. र्तानां °य°।

पृथिवीं राजतीं यद्वा यद्वा हेमसमुद्भवाम् ।
सर्वबीजसुवर्णाभ्यां समायुक्तां विनिक्षिपेत् ।।१४
स्वर्णजं राजतं वाऽपि सर्वलोहसमुद्भवम् ।
सुवर्णं कृशरायुक्तं पद्मनालं[1] ततो न्यसेत् ।।१५
देवदेवस्य शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्तमासनम् ।
प्रकल्प्य पायसेनाथ लिप्त्वा गुग्गुलुनाऽथ वा ।।१६
श्वभ्रमाच्छाद्य वस्त्रेण तनुत्रेणास्त्ररक्षितम् ।।१६½

तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर लोकपाल तथा शिव के मन्त्रों को पढ़कर पूर्वोक्त वज्र आदि रत्नों, उशीर आदि वनस्पतियों, लोहा, सोना, काँसा आदि धातुओं, हरिताल आदि खनिजों और धान्य आदि सस्यों तथा अन्य वस्तुओं में क्रमशः प्रभा, रागत्व, देहत्व तथा वीर्य शक्ति की भावना करके लोकपालों के मन्त्रों से मन्दिर की पूर्व आदि दिशाओं में खोदे हुए गड्ढों में एक-एक करके सभी वस्तुओं को डाल दे। द्वार की ओर मुँह करके सोने या चाँदी के बने हुए कछुए या बैल को स्थापित करके बीच के गड्ढे में महुआ, अक्षत, अञ्जन तथा नदी के किनारे की मिट्टी या पर्वत के शिखर की मिट्टी से युक्त सोने का बना हुआ मेरु डाल दे। तत्पश्चात् सर्वबीज और सुवर्ण से युक्त सोने या चाँदी की बनी पृथिवी और सोने या चाँदी का या सब प्रकार के लोहों से बना पद्मनाल सोने तथा खिचड़ी के साथ डाल दे। उसके बाद शिव तथा शक्ति आदि की मूर्तियों के लिये आसनों की रचना करके गड्ढे को खीर या गुग्गुल से लीप दे और फिर अस्त्र-मन्त्र से उसकी रक्षा करके कवच-मन्त्र पढ़ते हुए वस्त्र से उसे ढँक दे।९-१६½।

दिक्पतिभ्यो वलिं दत्त्वा समाचान्तोऽथ देशिकः ।।१७
शिवेन वा शिलाश्वभ्रसङ्गदोषनिवृत्तये ।
शस्त्रेण वा शतं सम्यग्जुहुयात्पूर्णया सह ।।१८
एकैकाहुतिदानेन संतर्प्य वास्तुदेवताः ।
समुत्थाप्य हृदा देवमासनं मङ्गलादिभिः ।।१९
गुरुर्देवाग्रतो गच्छेन्मूर्तिपैश्च दिशि स्थितैः ।
चतुर्भिः[2] सह कर्ता[3] च देवयानस्य[4] पृष्ठतः ।।२०
प्रासादादि परिभ्रम्य भद्राख्यद्वारसंमुखम् ।

१ क. ख. ग. ङ. च. °द्मवालं । २ क. ङ. च. बन्धुभिः । ३ घ. कर्तव्या देवयज्ञस्य । ४ क. ङ. च. °वपालस्यं ।

लिङ्गं संस्थाप्य दत्त्वाऽर्घ्यं प्रासादं संनिवेशयेत् ॥ २१
द्वारेण द्वारबन्धेन द्वारदेशेन तद्विच्छि[1] (तच्छि(?) ला: ।
द्वारबन्धे शिखाशून्ये तदर्धेनाथ[2] तदृते (?) ॥ २२
वर्जयन्द्वारसंस्पर्शं द्वारेणैव महेश्वरम् ।
देवगृहसमारम्भे कोणेनापि प्रवेशयेत् ॥ २३

तत्पश्चात् दिक्पालों को बलि समर्पण कर, आचमन करके गुरु को शिला तथा गड्ढे का सङ्गदोष दूर करने के लिये शिवमन्त्र या अस्त्रमन्त्र से पूर्णाहुति के साथ सौ बार हवन करना चाहिये। तदनन्तर एक-एक आहुति देकर वास्तु-देवताओं को तृप्त करे तथा माङ्गलिक पदार्थों के साथ हृदय मन्त्र से देवता और आसन को उठाकर गुरु को शिवलिङ्ग के आगे जाना चाहिये; जहाँ चारों दिशाओं में चार मूर्ति-पूजक ब्राह्मण पहले से उपस्थित रहते हैं। तब मन्दिर की परिक्रमा करके भद्रद्वार के सामने शिवलिङ्ग को रखकर अर्घ्य प्रदान करके मन्दिर में प्रवेश कराना चाहिये, किन्तु उसे द्वार का स्पर्श न होने पावे। देव-मन्दिर के समारम्भ में कोने से भी प्रवेश करा सकते हैं।१७-२३।

अयमेव विधिर्ज्ञेयोऽव्यक्तलिङ्गेऽपि सर्वतः ।
गृहे प्रवेशनं द्वारे लोकैरपि समीरिता (त) म् ॥२४
अपद्वारप्रवेशेन विदुर्गोत्रक्षयं गृहम् ।
अथ पीठे च संस्थाप्य लिङ्गं द्वारस्य सम्मुखम् ॥२५
तूर्यमङ्गलनिर्घोषैर्दूर्वाक्षतसमन्वितम्[3] ।
समुत्तिष्ठ हृदेत्युक्त्वा महापाशुपतं पठेत् ॥२६
अपनीय घटं श्वभ्राद्देशिको मूर्तिपैः सह ।
मन्त्रं संधारयित्वा[3] तु विलिप्तं कुङ्कुमादिभिः ॥२७
शक्तिशक्तिमतोरैक्यं ध्यात्वा चैव तु रक्षितम् ।
([4]लयान्तं मूलमुच्चार्य स्पष्ट्वा श्वभ्रे निवेशयेत् ॥२८

व्यक्त लिङ्ग की स्थापना में यही विधि समझनी चाहिये। जनश्रुति भी यही है कि गृह-प्रवेश मुख्य द्वार से ही करना चाहिये। अपद्वार से प्रवेश करने

---

१ क. ख. ग. ङ. च. तद्विना । द्वा॰ । २ क. ङ. च. ॰थ घातयेत् । तक्षय॰ । ३ ल्यबभाव आर्षः । ४ ल्यान्तं.........निवेशयेत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु ।

से वंश का नाश हो जाता है। उपर्युक्त विधि से ढोलक तथा अन्य माङ्गलिक वाद्य-ध्वनियों के साथ दूर्वा और अक्षत से द्वार के सम्मुख शिव-लिङ्ग को पीठ पर स्थापित करके हृदय-मन्त्र से 'उठिये' कहकर महापाशुपत स्तोत्र का पाठ करे। तदनन्तर गुरु को मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ घट को गड्ढे से निकाल-कर शिवलिङ्ग को अभिमन्त्रित करके उस पर केसर आदि का लेप करना चाहिये। फिर शक्ति और शक्तिमान् (शिव) की एकता तथा रक्षा का ध्यान करते हुए अन्त तक मूलमन्त्र का उच्चारण करके उसे गड्ढे में रख दे। २४-२८।

अंशेन ब्रह्मभागस्य यद्वा अंशद्वयेन च।
अर्धेन वाऽष्टमांशेन सर्वस्याथ प्रवेशनम्॥ २९
पिधाय सीसकं नाभिर्दीर्घाभिः सुसमाहितः।
श्वभ्रं[1] वालुकयाऽऽपूर्य ब्रूयात्स्थिरीभवेति च)॥ ३०
ततो लिङ्गे स्थिरीभूते ध्यात्वा सकलरूपिणम्।
मूलमुच्चार्य शक्त्यन्तं स्पृष्ट्या[2] च निष्कलं न्यसेत्॥ ३१
स्थाप्यमानं[3] यदा लिङ्गं यामीं दिशमथाऽऽश्रयेत्।
तत्तद्दिगीशमन्त्रेण पूर्णान्तं दक्षिणान्वितम्॥ ३२
सव्यस्थाने च वक्रे च चलिते स्फुटितेऽथ[4] वा।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण बहुरूपेण वा शतम्॥ ३३
किं चान्येष्वपि दोषेषु शिवशान्तिं समाश्रयेत्[5]।
उक्तन्यासविधिं लिङ्गे कुर्यादेवं न दोषभाक्॥ ३४

ब्रह्मभाग नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग का एक भाग या दो भाग या आधा भाग या अष्टमांश गड्ढे के अन्दर रहना चाहिये। अत्यन्त सावधानी से लिङ्ग को कटिपर्यन्त गहरी भूमि में गड़े हुए सीसे के फलक पर स्थापित करके गड्ढे के रिक्त भाग को बालू से भर देना चाहिये। उस समय शिव-लिङ्ग से यह भी निवेदन करना चाहिये कि 'स्थिर हो जाइये'। तदनन्तर शिवलिङ्ग के स्थिर हो जाने पर ऐसा ध्यान करे कि वह 'सकल' रूप है। फिर उच्च स्वर से मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिवलिङ्ग का स्पर्श करके 'निष्कल' का न्यास करे। यदि स्थापना-काल में शिवलिङ्ग दक्षिण की ओर झुक जाय तो दिक्पाल

---

१ ख. ग. अथ। २ ख. स्पृष्ट्वा। ३ ख. यथा। ४ घ. °तेऽपि वा। ५ घ. °त्। युक्तन्यासादिभिर्लिङ्गं कुर्वन्नेव°।

के मन्त्र से हवन करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिये। यदि शिवलिङ्ग वाम भाग की ओर झुक जाय या टेढ़ा हो जाय या विचलित हो जाय या टूट जाय तो मूलमन्त्र से बहुरूप मन्त्र से सौ बार हवन करना चाहिये तथा अन्य प्रकार की दोष-निवृत्ति के लिये भी शिवशान्ति-मन्त्र का पाठ करना चाहिये। शिवलिङ्ग में उक्त न्यास की विधि करने वाला व्यक्ति दोषों से मुक्त हो जाता है।२९-३४।

पीठवन्धमतः कृत्वा लक्षणस्यांशलक्षणम्।
गौरीमन्त्रं लयं नीत्वा सृष्ट्या पिण्डीं च विन्यसेत्॥ ३५
संपूर्य पार्श्वसन्धिं[1] च बालुकावज्रलेपतः[2]।
ततो मूर्तिधरैः सार्धं गुरुः [3]शान्तिपटोर्ध्वतः[4]॥३६
[5]संस्नाप्य कलशैरन्यैस्तद्वत्पञ्चामृतादिभिः।
विलिप्य चन्दनाद्यैश्च सम्पूज्य जगदीश्वरम्॥ ३७
उमामहेशमन्त्राभ्यां तौ स्पृशेल्लिङ्गमुद्रया।
ततस्त्रितत्त्वविन्यासं षडर्घादिपुरःसरम्[6]॥ ३८
कृत्वा मूर्ति तदीशानामङ्गानां ब्रह्मणामथ।
ज्ञानलिङ्गे क्रियापीठे[7] विन्यस्य स्नापयेत्ततः॥ ३९

इसके बाद लिङ्ग के अंशरूप पीठ-बन्ध-न्यास करके शिवलिङ्ग में गौरीमन्त्र का लय करके तथा सृष्टि-मन्त्र का लय करके सृष्टि-मन्त्र से पिण्डी का न्यास करे। शिवलिङ्ग की पार्श्व-सन्धि को बालू तथा वज्र लेप से भरकर मूर्ति-पूजक ब्राह्मणों के साथ गुरु को शिवलिङ्ग के ऊपर शान्ति वस्त्र रखकर कलशों के जल से तथा पञ्चामृत (दूध, दही, घी, मधु, शक्कर) आदि से भी स्नान कराना चाहिये। अनन्तर उमा और महेश के मन्त्रों को पढ़कर चन्दन आदि से जगदीश्वर (शिव) की पूजा करके लिङ्ग-मुद्रा से शिवलिङ्ग के दोनों पार्श्वों का स्पर्श करे। तत्पश्चात् छः प्रकार के अर्घ्य देकर तीन तत्त्वों (आत्म-विद्या और शिव) का न्यास करे। फिर अङ्ग देवता के सहित शिव की मूर्ति को क्रियापीठ पर स्थापित करके उसे स्नान कराये।३५-३९।

---

१ घ. °र्श्वसंसिद्धि वा°। २ ख. ग. घ. °पनम्। त°। ३ घ. शान्तिं घटो°। ४ ख. ग. °न्तिघटो°। ५ ग. संस्थाप्य। ६ घ. °डर्चादि°। ७ घ. ज्ञानी लि°।

गन्धैर्विलिप्य संधूप्य व्यापित्वेन शिवे न्यसेत् ।
स्रग्धूपदीपनैवेद्यैर्हृदयेन फलानि च ॥४०
विनिवेद्य यथाशक्ति समाचम्य महेश्वरम् ।
दत्त्वाऽर्घ्यं च जपं कृत्वा निवेद्य वरदे करे ॥ ४१
चन्द्रार्कतारकं यावन्मन्त्रेण शैवमूर्तिपैः ।
स्वेच्छयैव त्वया नाथ स्थातव्यमिह मन्दिरे ॥ ४२
प्रणम्यैवं वहिर्गत्वा हृदा वा प्रणवेन वा ।
संस्थाप्य वृषभं पश्चात्पूर्ववद्बलिमाचरेत् ॥ ४३
न्यूनादिदोषमोक्षाय ततो मृत्युजिता शतम् ।
शिवेन सशिवो हुत्वा शान्त्यर्थं पायसेन च ॥ ४४
ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च तत्पूरय महाविभो ।
हिरण्यपशुभूम्यादिगीतवाद्यादिहेतवे ॥ ४५
अम्बिकेशाय तद्भक्त्या शक्त्या सर्वं निवेदयेत् ॥४५½

तदनन्तर चन्दन आदि का लेप तथा धूपदान करके उसमें व्यापक शिवतत्त्व का न्यास करे और उसके बाद हृदय-मन्त्र से यथाशक्ति पुष्पमाला, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पण करके स्वयं आचमन करे। महेश्वर को अर्घ्य देकर मन्त्र-जप करके मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ मिलकर शिव से प्रार्थना करे कि 'हे नाथ! जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तब तक आप अपनी इच्छा से ही इस मन्दिर में निवास कीजिये।' इस प्रकार प्रणाम करके बाहर जाकर हृदय-मन्त्र से या प्रणव-मन्त्र से वृषभ की मूर्ति को मन्दिर के द्वार के समक्ष स्थापित करे और न्यूनादिक दोषों को दूर करने के लिये मृत्युञ्जय-मन्त्र से पहिले की भाँति सौ वार बलि चढ़ाकर शान्ति के लिये खीर से सौ आहुतियाँ दे। तदन्तर यह कहते हुए कि 'हे महाविभो! मैंने ज्ञान या अज्ञान से जो कुछ किया है, उसे पूर्ण कीजिये—सुवर्ण, पशु, भूमि, गीत, वाद्य आदि के कारण अम्बिका-पति शिव को भक्तिपूर्वक सब कुछ समर्पित कर दे।४०-४५½।

दातं महोत्सवं पश्चात्कुर्याद्दिनचतुष्टयम् ॥४६
त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं मन्त्री होमयेन्मूर्तिपैः सह ।
चतुर्थेऽहनि पूर्णां च चरुकं बहुरूपिणा ॥४७
निवेद्य सर्वकुण्डेषु सम्पाताहुतिशोधितम् ।
दिनचतुटयं यावन्न[1] निर्माल्यं तदूर्ध्वतः ॥४८

१ घ. °वत्तन्निर्मा° ।

निर्माल्यापनयं कृत्वा स्नापयित्वा तु पूजयेत् ।
पूजा सामान्यलिङ्गेषु कार्या साधारणाणुभिः ॥ ४९
विहाय लिङ्गचैतन्यं कुर्यात्स्थाणुविसर्जनम् ।
असाधारणलिङ्गेषु क्षमस्वेति विसजनम् ॥ ५०

तत्पश्चात् चार दिनों तक दान तथा महोत्सव करता रहे। तीन दिनों तक तीनों सन्ध्याओं में मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के साथ हवन करके, चौथे दिन बहुरूप मन्त्र से चरु से पूर्णाहुति दे। इस प्रकार समस्त कुण्डों को सम्पात नामक आहुतियों से शुद्ध करके चार दिनों तक निर्माल्य सुरक्षित रखे। तत्पश्चात् निर्माल्य फेंककर स्नान कराके पूजा करे। लिङ्ग-चैतन्य को छोड़कर साधारण शिवलिङ्ग के पूजन में सामान्य मन्त्रों का व्यवहार करना चाहिये। तदनन्तर शिवलिङ्ग का विसर्जन करना चाहिये, परन्तु असाधारण शिवलिङ्ग के विसर्जन में 'क्षमा कीजिये' ऐसा कहना चाहिए।४६-५०।

आवाहनमभिव्यक्तिर्विसर्गः शक्तिरूपता ।
प्रतिष्ठान्ते क्वचित्प्रोक्तं स्थिराद्याहुतिसप्तकम् ॥५१
स्थिरस्तथाऽप्रमेयश्चानादिबोधस्तथैव च ।
नित्योऽथ सर्वगश्चैवाविनाशी दृष्ट[1] एव च ॥ ५२
एते गुणा महेशस्य संनिधानाय कीर्तिताः ।
ॐ नमः शिवाय स्थिरो भवेत्याहुतीनां क्रमः ॥ ५३
एवमेतच्च सम्पाद्य विधाय शिवकुम्भवत् ।
कुम्भद्वयं च तन्मध्यादेककुम्भाम्भसा भवम् ॥ ५४
संस्नाप्य तद्द्वितीयं च कर्तृस्नानाय धारयेत् ।
दत्त्वा बलिं समाचम्य बहिर्गच्छेच्छिवाज्ञया[2] ॥ ५५

कहीं तो ऐसा कहा गया है कि प्रतिष्ठा के अन्त में स्थिर, अप्रमेय, अनादिबोध, नित्य, सर्वगामी, अविनाशी तथा दृष्ट इन—सात नाम की आहुतियाँ और आवाहन, अभिव्यक्ति, विसर्जन और शक्ति के अनुकूल कर्म करना चाहिये। उपर्युक्त सात गुण महेश का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये कहे गये हैं। 'ॐ नमः शिवाय स्थिरो भव'—इस प्रकार कहकर आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर जल से परिपूर्ण दो कलशों में से एक यज्ञकर्ता के स्नान के

---

१ ख. ग. तृप्त। २ क. ङ. च. बहिः कुम्भे शिवा ।

लिए रख देना चाहिये और दूसरे शिव को नहलाकर बलि देकर आचमन करके शिव की आज्ञा से बाहर जाय ।५१-५५।

जगती वाह्यतश्चण्डमैशान्यां दिशि मन्दिरे ।
धामगर्भप्रमाणे च सुपीठे कल्पितासने ।। ५६
पूर्ववन्न्यासहोमादि विधाय ध्यानपूर्वकम् ।
संस्थाप्य विधिवत्तत्र ब्रह्माङ्गैः पूजयेत्ततः ।। ५७
अङ्गानि पूर्वमुक्तानि [1] ब्रह्माणि [2] त्वणुना यथा [3] ।। ५८
ए (ॐ) वं सद्योजाताय ह्रूँ फट् नमः । ॐ[4] विं वामदेवाय ह्रूँ फट् नमः । ॐ[5] वुम्, अघोराय ह्रूँ फट्, नमः[6] । ओम् एवं (एवम्, ॐ) चें (वें) तत्पुरुषाय.[7] वोमीशानाय च ह्रूँ फट्[8] नमः ।। ५९
जपं निवेद्य सन्तर्प्य विज्ञाप्य नतिपूर्वकम् ।
देवः सन्निहितो यावत्तावत्त्वं संनिधो भव ।। ६०
न्यूनाधिकं च यत्किञ्चित्कृतमज्ञानतो मया ।
त्वत्प्रसादेन चण्डेश तत्सर्वं परिपूरय ।। ६१
बाणलिङ्गे बाणरोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ।। ६२

तत्पश्चात् यज्ञ-कुण्ड के घेरे से बाहर मन्दिर के ईशान कोण में एक सुन्दर आसन पर चण्डदेव की स्थापना करके पहले की भाँति न्यास, होम, ध्यान आदि करके 'ए (ॐ) वं सद्योजाताय ह्रूं फट् नमः', 'ॐ विं वामदेवाय ह्रूं फट् नमः' 'ॐ वुं अघोराय ह्रूं फट् नमः' 'ॐ एवं (एवम् ओं) चें (वें) तत्पुरुषाय, वोमीशानाय च ह्रूं फट् नमः—इन मन्त्रों से अङ्गदेवताओं के साथ उनकी पूजा तथा जप और तर्पण करके नम्रतापूर्वक उनसे निवेदन करे कि "हे चण्ड ! जब तक शिव यहाँ रहेंगे, तब तक आप भी रहिए । मैंने अज्ञान से जो कुछ न्यूनाधिक कर्म किया है, उसे आप कृपा करके परिपूर्ण कर दीजिए" । वाण-

---

१ क. ङ. च. °नि ब्राह्मणत्वर्चना । २ ङ. °ह्माणी त्वर्चना । ३ क. ङ. च. °था । ॐ स° । ४ क. ङ. च. ॐ वा° । ५ क. ङ. च. ॐ अ° । ६ क. ङ. घ. °मः । एवं चें । घ. °मः । ॐ त° । ७ ख. ग. °य नमः । ओमी° । ८ क. घ. ङ. च. °ट् । ज° ।

लिङ्ग, चललोहसुवर्णादि लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग तथा अन्य प्रतिमाओं की स्थापना में चण्डदेव का आवाहन नहीं करना चाहिए ।५६-६२ ।

अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशविधावपि ।
अभ्यर्च्य चण्डं ससुतं यजमानं हि भार्यया ।।६३
पूर्वस्थापितकुम्भेन स्नापयेत्स्नापकः स्वयम् ।
स्थापकं[1] यजमानोऽपि सम्पूज्य च महेशवत् ।।६४
वित्तशाठ्यं विना दद्याद्भूहिरण्यादिदक्षिणाम् ।
मूर्तिपान्विधिवत्पश्चाज्जापकान्ब्राह्मणांस्तथा ।।६५
दैवज्ञं शिल्पिनं प्राच्यं दीनानाथादि भोजयेत् ।
यदत्र सम्मुखीभावे खेदितो भगवन्मया ।।६६
क्षमस्व नाथ तत्सर्वं कारुण्याम्बुनिधे मम ।
इति विज्ञप्तियुक्ताय यजमानाय सद्गुरुः ।।६७
प्रतिष्ठापुण्यसद्भावं स्फुरत्तारकसप्रभम् ।
कुशपुष्पाक्षतोपेतं स्वकरेण समर्पयेत् ।।६८

अद्वैत की भावना से युक्त स्थण्डिलेश की स्थापना में भी चण्ड का आवाहन निषिद्ध है। तदनन्तर स्त्री-पुत्र के साथ यजमान को पूर्व स्थापित कलश के जल से स्नान कराए। यजमान भी स्नान कराने वाले का महेश की पूजा की भाँति, पूजन करके उदारता से उसे भूमि और सुवर्ण आदि दक्षिणा प्रदान करे। पश्चात् विधिवत् मूर्तिपूजक ब्राह्मणों, जप करने वालों, ज्योतिषी और शिल्पी की पूजा कर दीनों और अनाथों को भोजन कराए। तदनन्तर गुरु से प्रार्थना करे कि "हे करुणासागर! भगवन्! नाथ! मैंने इस कार्य में आपको जो कष्ट दिया है, उसे क्षमा कीजिए।" इसके बाद गुरु अपने हाथ से शिवलिङ्ग-स्थापना के पुण्य से युक्त और तारा के समान चमकती हुई कान्ति वाले कुश, पुष्प तथा अक्षत यजमान को प्रदान करे। ६३-६८।

ततः पाशुपतं[2] जप्त्वा प्रणम्य परमेश्वरम् ।
ततोऽपि बलिभिर्भूतान्संनिधाय निवोधयेत् ।।६९
स्थातव्यं भवता[3] तावद्यावत्संनिहितो हरः ।
([4]गुरुर्वस्त्रादिसंयुक्तं गृह्णीयाद्यागमण्डपम् ।।७०

१ ख. स्नापकं। २ घ. °पतोपेतं प्र°। ३ ख. भावतां। ४ गुरुर्वस्त्रादि... ....मण्डपम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

सर्वोपकरणं शिल्पी तथा[1] स्नापनमण्डपम्)॥७०
अन्ये देवादय: स्थाप्या मन्त्रैरागमसंभवै: ॥७१
आदिवर्णस्य[2] भेदाद्वा सुतत्त्वव्याप्तिभाविता: ।
साध्यप्रमुखदेवाश्च सरिदोषधयस्तथा ॥७२
क्षेत्रपा: किन्नराद्याश्च पृथिवीतत्त्वमाश्रिता: ।
[3]स्थानं[4] सरस्वती लक्ष्मीनदीनामम्भसि क्वचित् ॥७३
भुवनाधिपतीनां च स्थानं[5] यत्र व्यवस्थिति: ।
अण्डवृद्धिप्रधानान्तं त्रितत्त्वं ब्रह्मण: पदम् ॥७४
तन्मात्रादिप्रधानान्तं पदमेतत्त्रिकं[6] हरे: ।
नाट्येशगणमातृणां यक्षेशशरजन्मनाम् ॥७५
अण्डजा: शुद्धविद्यान्तं पदं गणपतेस्तथा ।
मायांशदेशशक्त्यन्तं शिवाशिवोत्परोचिषाम् ॥७६
पदमीश्वरपर्यन्तं व्यक्तार्चासु च कीर्तितम् ।
कूर्माद्यं कीर्तितं यच्च यच्च रत्नादिपञ्चकम् ॥७७
प्रक्षिपेत्पीठगर्तायां पञ्चब्रह्मशिलां विना ॥७७½

तदनन्तर पशुपत-मन्त्र का जप करते हुए परमेश्वर को प्रणाम करके भूतों को बलि देते हुए निवेदन करे कि 'जब तक शिव रहेंगे तब तक आप भी रहिए । वस्त्र आदि सहित यज्ञमण्डप गुरु को मिलना चाहिए और समस्त उपकरणों के साथ स्नान-मण्डप कारीगर को प्रदान करना चाहिए । अन्य देवताओं की स्थापना आगम-मन्त्रों से या देवताओं के नामों के प्रथम अक्षर के भेद से करनी चाहिए (अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रों में ही देवनामों के प्रथम अक्षर जोड़कर काम चलाना चाहिए ।) अन्य देवता जैसे—पृथ्वी तत्त्व के आश्रित साध्यगण, सरिताएँ, ओषधियाँ, क्षेत्रपाल और किन्नर आदि; जल तत्त्व के आश्रित सरस्वती, लक्ष्मी और नदियां; ब्रह्म के आश्रित भुवनपति, अण्डकटाह तथा प्रधान; हरि के आश्रित तन्मात्राएँ तथा प्रधान; गणपति के आश्रित नाट्येश, गण, मातृकाएँ, यक्षेश, कार्तिकेय, अण्डज तथा शुद्धविद्या और ईश्वर के आश्रित माया, अंश, देश, शक्ति, शिवा, शिव तथा सूर्य—इन देवताओं की स्थापना में व्यक्त पूजा करनी चाहिए । पूर्व की भाँति कछुए आदि की मूर्तियाँ तथा पाँच रत्न आदि वस्तुएँ बिना पाँच ब्रह्मशिलाओं के पीठ के गड्ढे में डाल देनी चाहिए । ६८-७७½ ।

षड्भिर्विभाजिते गर्ते त्यक्त्वा भागं च पृष्ठत: ॥७८
स्थापनं पञ्चमांशे च यदि वा वसुभाजिते ।

---

१ ख. °था स्थाप° । २ क. ङ. च. °स्य शेषत्वात्स्वत° । ३ स्थानं क्वचित् क, ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति ।४ घ. स्नानं । ५ ख. ग. °नं अयव्य° । ६ ख. ग. मेक° त्रिकं ।

स्थापनं सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहम् ।।७६
धारणाभिर्विशुद्धिः स्यात्स्थापने लेपचित्रयोः ।
स्नानादि मानसं तत्र शिलारत्नादिवेशनम् ।।८०
नेत्रोद्घाटनमन्त्रेष्टमासनादिप्रकल्पनम् ।
पूजा निरम्बुभिः पुष्पैर्यथा चित्रं न दुष्यति ।।८१

यदि गड्ढा छह भागों में विभक्त कर दिया जाय तो पृष्ठ भाग को छोड़कर पाँचवें भाग में मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए, जो कि प्रतिमा के लिए सुखावह माना गया है। जहाँ देवता का चित्र स्थापित करना हो, वहाँ धारणा-ध्यान के द्वारा शुद्धि मानस-स्नान तथा शिला-रत्न आदि का निवेश करना चाहिए। मन्त्र द्वारा (चित्र का) नेत्रोद्घाटन और आसन आदि की रचना करके जल के बिना ही पुष्पों से पूजन करे, जिससे चित्र को कोई हानि न पहुँचे। ७८-८१।

विधिस्तु चललिङ्गेषु सम्प्रत्येव निगद्यते ।
पञ्चभिर्वा त्रिभिर्वाऽपि[1] पृथक्कुर्याद्विभाजते ।।८२
([2]भागत्रयेण भागांशो भवेद्भागद्वयेन वा[3])।
स्वपीठेष्वपि तद्वत्स्याल्लिगेषु तत्त्वभेदतः ।।८३
सृष्टिमन्त्रेण संस्कारो विधिवत्स्फाटिकादिषु ।
किं च ब्रह्मशिलारत्नप्रभूतेश्चानिवेदनम् ।।८४
योजनं पिण्डिकायाश्च मनसा परिकल्पयेत् ।
स्वयंभूबाणलिङ्गादौ संस्कृतौ नियमो न हि ।।८५
स्नापनं संहितामन्त्रैर्न्यासं होमं च कारयेत् ।
नदीसमुद्ररोहाणां स्थापनं पूर्ववन्मतम् ।।८६
ऐहिकं मृन्मयं लिङ्गं पिष्टिकादि च तत्क्षणात् ।
कृत्वा सम्पूजयेच्छुद्धं दीक्षणादिविधानतः ।।८७
समादाय ततो मन्त्रानात्मानं संनिधाय च ।
तज्जले प्रक्षिपेल्लिगं वत्सरात्कामदं भवेत् ।।८८
विष्ण्वादिस्थापनं चैव पृथङ्मन्त्रैः समाचरेत् ।।८९

---

१ ख. पृथुक्षीक्षीणविभा°। २ भागत्रयेण.........द्वयेन वा नास्ति क. ङ-च. पुस्तकेषु। ३ ख. ग. वा। सुपीठे स्वपिते तद्वल्लि°।

अब मैं चल-मूर्तियों की स्थापना का विधान बता रहा हूँ। चल-मूर्ति के पीठ को तीन या पाँच भागों में विभक्त करके तीन या दो भागों में मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए। स्फटिक आदि की बनी मूर्तियों का संस्कार सृष्टि-मन्त्र से विधि-पूर्वक करना चाहिए। इन मूर्तियों को ब्रह्मशिला तथा रत्न आदि का समर्पण नहीं करना चाहिए। पिण्डिका की योजना मन में करनी चाहिए। स्वयंभू तथा बाणलिङ्ग आदि को संस्कार करने का नियम नहीं है। चलमूर्ति का स्नान संहिता-मन्त्रों से कराना चाहिए तथा नदियों, समुद्रों और पर्वतों का आवाहन भी करना चाहिए। मिट्टी आदि और पीठ के शिव-लिङ्ग को तत्काल बनाकर दीक्षाविधि के अनुसार पूजन आदि करके उसे ले जाकर जल में फेंक दे। तदनन्तर गुरु को पूर्वोक्त पूजन-मन्त्रों के साथ अपने को लीन कर लेना चाहिए। इस प्रकार का पूजन एक वर्ष में अभीष्ट को सिद्ध करता है। विष्णु आदि देवों की स्थापना इनसे भिन्न मन्त्रों से करनी चाहिए। ८२-८६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

गौरीप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्ये गौरीप्रतिष्ठां च पूजया सहितां शृणु ।
मण्डपाद्यं पुरो यच्च संस्थाप्य चाधिरोपयेत् ॥१
शय्यायां[1] तांश्च विन्यस्य मन्त्रान्मूर्त्यादिकान्गुह ।
आत्मविद्याशिवान्तं च कुर्यादीशनिवेशनम्[2] ॥२
शक्तिं परां[3] ततो न्यस्य हुत्वा जप्त्वा च पूर्ववत् ।
संधाय च तथा पिण्डीं क्रियाशक्तिस्वरूपिणीम् ॥३
सदेशव्यापिकां ध्यात्वा न्यस्तरत्नादिकां तथा ।
एवं संस्थाप्य तां पश्चाद्देवीं तस्यां नियोजयेत् ॥४

---

१ ख. ग. तां च वि॰ । २ ख. ग. ॰ दीशे नि॰ । ३ ख. ग. परापरां न्य॰ ।

परशक्तिस्वरूपां तां स्वाणुना शक्तियोगतः ।
ततो न्यसेत् क्रियाशक्तिं पीठे ज्ञानं च विग्रहे ॥५
ततोऽपि व्यापिनीं शक्तिं समावाह्य नियोजयेत् ।
अम्बिकां[1] शिवनाम्नीं च समालभ्य प्रपूजयेत्[2] ॥६

महेश्वर बोले—हे स्कन्द ! अब मैं पार्वती की मूर्ति की प्रतिष्ठा तथा पूजा का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो । पूर्व की भाँति मण्डप आदि की रचना करके शय्या के ऊपर गौरी की मूर्ति रखकर वहाँ पर मूर्ति आदि का न्यास करके, आत्मविद्या और शिवतत्त्व पर्यन्त न्यास-विधि करे । पश्चात् पराशक्ति का न्यास करके पूर्ववत् हवन-जप करके पिण्डिका का ध्यान इस प्रकार करे कि वह क्रियाशक्ति-स्वरूपिणी है, सब देशों में व्याप्त है तथा रत्न आदि से परिपूर्ण है । अनन्तर उसकी स्थापना कर उस पर पराशक्ति रूप उमा देवी को अपने मन्त्र से शक्ति योग के द्वारा प्रतिष्ठित करे । तदनन्तर पीठ पर क्रियाशक्ति और शरीर में ज्ञान का न्यास करके वहीं व्यापिनी शक्ति को नियुक्त करे । फिर अम्बिका तथा शिवा का आवाहन करके निम्नलिखित मन्त्रों से उनकी पूजा करना प्रारम्भ करे । १-६ ।

ओम्, आधारशक्तये[3] नमः[4] । ॐ कूर्माय नमः ।
ॐ स्कन्दाय च तथा नमः । ॐ ह्रीं [5] नारायणाय नमः ।
ओम् ऐश्वर्याय नमः । ओम्[6] अधश्छदनाय नमः ॥७
ॐ पद्मासनाय नमोऽथ सम्पूज्याः केशवांस्तथा ॥८
ॐ ह्रीं[7] कर्णिकायै नमः । ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्य
इहार्चयेत् ॥९
ॐ हां पुष्ट्यै[8] ह्रीं च ज्ञानायै ह्रूं क्रियायै ततो नमः ॥१०
ॐ नालाय नमः[9] । ॐ रुं[10] धर्माय नमः[11] ।
रुं ज्ञानाय वै नमः । ॐ वैराग्याय नमः[12] ।
ॐ वै,[13] अधर्माय नमः । ॐ रुम् अज्ञानाय वै नमः ।
ओम्, अवैराग्याय वै नमः ।

---

१ ख. ग. अमुके शिविना° । २ ख. ग. °त् । आ° । ३ ख. ग. °ये च न° । ४ ख. ग. °मः ।स्क° । ५ ख. ग. हुं । ६ ख. ओम्, अम्, अधष्टदलच्छ° । ७ ख. ग. हं । ८ ख. °ष्ट्यै, ॐ नाला° । ९ घ. °मः । हं । १० ख. ॐ घ° । ११ ख. °मः । ज्ञा° । ग °मः । संज्ञा° । १२ ग. °मः । ह्रूं वा° । १३ ख. ॐ ह्रूं वा° ।

अम्, अनैश्वर्याय नमः ह्रूं[1] वाचे ह्रूं[2] च रागिण्यै ह्रूं[3]
ज्वालिन्यै ततो नमः । ॐ ह्रीं शमायै च नमो ह्रूं[4]
ज्येष्ठायै ततो नमः ॐ ह्रौं[5]
रौं क्रौं नवशक्त्यै[6] गौं च गौर्यासनाय च ।
गौ गौरीमूर्तये नमो गौर्या मूलमथोच्यते ॥११-१३
ॐ ह्रीं सः, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः[7] ॥१४
ॐ गां ह्रूं[8] ह्रीं शिवो गू स्याच्छिखायै कवचाय च ।
गों नेत्राय च गोम्,[9] अस्त्राय ॐ गों[10] विज्ञानशक्तये ॥१५
ॐ[11] गूं क्रियाशक्तये नमः पूर्वादौ शक्रादिकान् ।१५½

'ॐ आधारशक्तये नमः,' 'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ स्कन्दाय नमः', 'ॐ ह्रीं नारायण नमः', 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', 'ॐ अधच्छदनाय नमः' और 'ॐ पद्मासनाय नमः', 'ॐ ऊर्ध्वच्छदनाय नमः,' 'पद्मासनाय नमः',। इसके बाद केशव आदि देवों की पूजा इन मन्त्रों से करनी चाहिए—,ॐ ह्रीं कर्णिकायै नमः', 'ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्यो नमः', 'ॐ ह्रां पुष्ट्यै नमः', 'ॐ ह्रीं ज्ञानायै नमः,'ॐ ह्रूं क्रियायै नमः', 'ॐ नालाय नमः', 'ॐ रुं धर्माय नमः', 'ॐ रुं ज्ञानाय वै नमः', 'ॐ वैराग्याय नमः, 'ॐ वै अधर्माय नमः', 'ॐ रुं अज्ञानाय वै नमः' ॐ अवैराग्याय वै नमः,' 'ॐअनैश्वर्याय नमः', 'ॐ ह्रूं ज्वालिन्यै नमः,' 'ॐ ह्रीं शमायै नमः', 'ॐ ह्रूं ज्येष्ठायै नमः, ॐ ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै नमः,' 'ॐ गौं गौर्यासनाय नमः', 'ॐ गौं गौरीमूर्तये नमः', । गौरी के मूल मन्त्र हैं—'ॐ ह्रीं सः', महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः', 'ॐ गां ह्रूं ह्रीं शिवाय नमः' 'ॐ गूं शिखायै नमः', 'ॐ गूं कवचाय नमः', 'ॐ गों नेत्राय नमः', 'ॐ गों अस्त्राय नमः', 'ॐ गों विज्ञानशक्तये नमः', 'ॐ गूं क्रियाशक्तये नमः', इत्यादि । इसके बाद पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्र आदि देवताओं का पूजन करना चाहिए ।७-१५½।

ॐ सुं[12] सुभगायै नमो[13] ह्रीं वीजललिता ततः ॥१६
ॐ ह्रीं कामिन्यै च नम ॐ ह्रूं स्यात्कामशालिनी ।
मन्त्रैर्गौरीं प्रतिष्ठाप्य प्राच्यं जप्त्वाऽथ सर्वभाक् ॥१७

---

१ घ. हुं । २ घ. हुं । ३ घ. क्रँ । ४ घ ह्रूं । ५ ख. ग. ह्रूँ रौं रौ द्रौ न° ६ ख. ग. शक्ताश्च गौं । ७ घ. °मः । गां । ८ ख. ग. ह्रूं गीं शिवां गूं । ९ ख. ग. गोस्त्रा° । १० ख. ग. गीं । ११ ख. ग. ॐ भूक्रि° । १२ ख. खं । १३ ख. ग. नमः; ॐ ह्रीं बीजालताय नमः । ॐ ।

'ॐ सुं सुभगायै नमः', 'ॐ ह्रीं बीजललितायै नमः', 'ॐ ह्रीं कामिन्यै नमः', 'ॐ ह्लूं कामशालिन्यै नमः।' उपर्युक्त मन्त्रों से गौरी की स्थापना और पूजा करने से तथा उक्त मन्त्रों का जप करने से मनुष्य की समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गौरीप्रतिष्ठाविधिकथनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः।९८

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

सूर्यप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्ये सूर्यप्रतिष्ठां च पूर्ववन्मण्डपादिकम्।
स्नानादिकं च सम्पाद्य पूर्वोक्तविधिना ततः ॥१
विद्यामासनशय्यायां[1] साङ्गं विन्यस्य भास्करम्।
त्रितत्त्वं विन्यसेत्तत्र सं (स) स्वरं खादिपञ्चकम् ॥२
शुद्ध्यादि पूर्ववत्कृत्वा पिण्डीं संशोध्य पूर्ववत्।
सदेशपदपर्यन्तं[2] विन्यस्य तत्त्वपञ्चकम् ॥३
शक्त्या च सर्वतोमुख्या संस्थाप्य विधिवत्ततः।
स्वाणुना विधिवत्सूर्यं शक्त्यन्तं स्थापयेद्गुरुः ॥४
स्वाम्यन्तमथ वाऽऽदित्यं[3] पादान्तं नाम धारयेत्।
सूर्यमन्त्रास्तु पूर्वोक्ता द्रष्टव्याः स्थापनेऽपि च ॥५

शङ्कर बोले—अब मैं सूर्यदेव की स्थापना का विधान बतला रहा हूँ। पूर्व की भाँति मण्डप आदि की रचना कर पूर्वोक्त विधि से स्नान आदि सम्पन्न करके विद्यान्त आसन रूप शय्या पर अङ्गदेवता सहित सूर्यदेव को रखकर तीन तत्त्वों (आत्म, विद्या और शिव) तथा स्वर सहित आकाश आदि पाँच महाभूतों का न्यास करे। अनन्तर पूर्व की भाँति शुद्धि आदि करके पिण्डी को पवित्र

---

१ ख. ग. °द्यादास°। २ ख. °शपाद°। ३ ख. ग. °त्य यदा तन्नाम्।

करे। फिर सदाशिव पर्यन्त पञ्च तत्त्व का न्यास करके उसके ऊपर गुरु उपयुक्त मन्त्र से विधिपूर्वक सूर्य की स्थापना करे। नाम के अन्त में 'स्वामी' शब्द अथवा ६–आदित्य शब्द जोड़कर उसे धारण करना चाहिए। पहले बताए हुए सूर्य के मन्त्रों का व्यवहार स्थापन–काल में भी करना चाहिए।१-५।

इत्याग्नेयेमहापुराण सूर्यप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः।९९

अथ शततमोऽध्यायः

द्वारप्रतिष्ठाविधिः

ईश्वर उवाच—

द्वाराश्रितप्रतिष्ठाया[1] वक्ष्यामि विधिमप्यथ।
द्वाराङ्गाणि कषायाद्यैः संस्कृत्य शयने न्यसेत्॥१
मूलमध्याग्रभागेषु त्रयमात्मादिसेश्वरम्।
विन्यस्य संनिवेस्याथ हुत्वा जप्त्वाऽत्र रूपतः॥२
द्वारादथो यजेद्वास्तुं तत्रैवानन्तमन्त्रतः[2]।
रत्नादि पञ्चकं न्यस्य शान्तिहोमं विधाय च॥३
यवसिद्धार्थकाक्रान्ता[3] ऋद्धिवृद्धिमहातिलाः[4]।
गोमृत्सर्षपरागेन्द्रमोहनीलक्ष्मणामृताः॥४
रोचनारुग्वचो[5] दूर्वा प्रासादाधश्च[6]पोटलीम्[7]।
प्रकृत्योदुम्बरे बद्ध्वा रक्षार्थं प्रणवेन तु॥५

महेश्वर बोले—अब मैं द्वार से सम्बन्ध रखने वाली प्रतिष्ठा की विधि बतलाऊँगा। द्वार के अवयवों को कषाय आदि ओषधियों से परिष्कृत करके शय्या पर रख दे। उसके मूल, मध्य तथा अग्रभाग में आत्म, विद्या और शिव इन तत्त्वों का ईश्वर के साथ न्यास करके हवन और जप करे। द्वार से थोड़ी दूर पर अनन्त मन्त्र से वासुदेव की अर्चना करके उसके नीचे पाँच रत्नों

---

१ ख. ग. °ष्ठायां व°। २ ख. ग. °तः। चन्द्रादि°। ३ ख. ग. °द्धात्मका°। ४ ख. ग. °द्धिसहा°। ५ ख. °नामसुरा दू°। ग. °नारसदूर्वा प्रापासा°। ६ ख. पोच्छुलीम्। ग. पाच्छुलीम्।७ ख. ग. °म्। कृतौ° द्वौदु।

को गाड़कर शान्ति होम करे। तदनन्तर यव, उजली, सरसों, आक्रान्ता, ऋद्धि, वृद्धि, महातिल, गोमृत्तिका, सरसों, रागेन्द्र, मोहिनी, लक्ष्मणा, अमृता, रोचना, अरुक्, बच और दूब— इन पदार्थों को एक पोटली में बाँधकर मन्दिर के नीचे अपने आप उत्पन्न गूलर के वृक्ष पर रक्षा के लिए प्रणव-मन्त्र से लटका दे।१-५।

द्वारमुत्तरतः किञ्चिदाश्रितं संनिवेशयेत्।
आत्मतत्त्वमधो न्यस्य विद्यातत्त्वं च शाखयोः ॥६
शिवमाकाशदेशे च व्यापकं सर्वमण्डले।
ततो महेशनाथं च विन्यमेन्मूलमन्त्रतः ॥७
द्वाराश्रितांश्च तल्पादीन्कृतयुक्तैः स्वनामभिः।
जुहुयाच्छतमर्धं वा द्विगुणं शक्तितोऽथ वा ॥८
न्यूनादिदोषमोक्षार्थं हेतितो जुहुयाच्छतम्।
दिग्बलिं पूर्ववद्दत्त्वा[1] प्रदद्याद्दक्षिणादिकम् ॥९

तत्पश्चात् मन्दिर के नीचे द्वार से थोड़ा उत्तर आत्मतत्त्व, दोनों पदार्थों में विद्यातत्त्व, आकाशदेश में शिवतत्त्व और सम्पूर्ण मण्डल में व्यापकतत्त्व का न्यास करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्र से महेशनाथ का न्यास करके द्वाराश्रित शय्या आदि को उनके नामों से अथवा शक्ति-मन्त्र के द्वारा पचास या सौ बार आहुतियाँ दे। फिर न्यूनादि दोषों के निवारण के लिए 'हेति' मन्त्र से सौ बार हवन करके पहले की भाँति दिग्बलि समर्पण करके दक्षिणा आदि प्रदान करे।६-९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वारप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम शततमोऽध्यायः।१००

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादप्रतिष्ठा

ईश्वर उवाच—

प्रासादस्थापनं वक्ष्ये तच्चैतन्यसुयोगतः[2]।
शुकनाशासमाप्तौ[3] तु[4] पर्ववेद्याश्च मध्यतः ॥१

---

१ घ. °वद्धुत्वा प्र° । २ घ. °तन्यं स्वयो° । ३ च. °नासास° । ३ क. ङ. च. तु पू° ।

आधारशक्तितः पद्मे विन्यस्ते[1] प्रणवेन च ।
स्वर्णाद्येकतमोद्भूतं पञ्चगव्येन संयुतम् ॥२
मधुक्षीरयुतं कुम्भं न्यस्तरत्नादिपञ्चकम् ।
सवस्त्रं गन्धलिप्तं च गन्धवत्पुष्पधूपितम्[2] ॥३
चूतादिपल्लवानां च[3] कृती कृत्यं च विन्यसेत् ।
पूरकेण समादाय सकलीकृतविग्रहः[4] ॥४
सर्वात्माभिन्नमात्मानं[5] स्वाणुना स्वान्तमारुतः ।
आज्ञायाऽऽरोध्रयेच्छंभौ[6] रेचकेन ततो गुरुः ॥५

महेश्वर बोले—अब मैं मन्दिर स्थापना और उसमें चैतन्य के आधान की विधि बतलाऊँगा। जहाँ मन्दिर के गुम्बज की समाप्ति होती है, वहाँ पूर्ववेदी के मध्य भाग में आधार-शक्ति का चिन्तन करके प्रणव-मन्त्र से पद्म-मण्डल का न्यास करके सुवर्ण आदि धातुओं में से किसी एक का बना हुआ कलश पञ्च-गव्य, मधु और दूध से भरकर स्थापित करे। उसमें पाँच प्रकार के रत्नों को डालकर चन्दन का लेप लगाकर गले में वस्त्र बाँध दे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, आम्रपल्लव आदि से उसे सुसज्जित करके कार्य प्रारम्भ करे। पहले शरीर के द्वारा सकलीकरण क्रिया सम्पादन करके पूरक प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु को ऊपर खींचे, पुनः अपने मन्त्र से परमात्मा से आत्मा की अभिन्नता का ध्यान करते हुए कुम्भक प्राणायाम के द्वारा वायु को शम्भु की आज्ञा से रोक दे।१-५।

द्वादशान्तात्समादाय स्फुरवह्निकणोपमम् ।
निक्षिपेत् कुम्भगर्भे च न्यस्ततन्त्रातिव्राहिकम् ॥६
विग्रहं तद्गुणानां च वोधकं च कलादिकम् ।
क्षान्तं वागीश्वरं[7] तत्तु त्रातं[8] तत्र निवेशयेत् ॥७
दशनाडीर्दश प्राणानिन्द्रियाणि त्रयोदश ।
तदधिपांश्च संयोज्य प्रणवाद्यैः स्वनामभिः ॥८

---

१ ख. ग. °न्यसेत्प्रण° । ङ. °न्यस्य प्र° । २ घ. °म् । स्रग्वस्त्रम्° । ३ क. ङ. च. चक्रीकृत्य युवस्पृशेत् । ङ. च. वकीकृत्यमुपस्पृशेत् । ४ क. ख. ग. ङ. च. °कृत्यवि° । ५ घ. र्वात्मभि° । ६ क. ङ. च. आज्ञामारोपयेद्धस्तौ रे° । घ. आज्ञया वोध° । ७ ख. ग. वामेश्वरं । ८ घ. व्रातं ।

स्वकार्यकारणत्वेन मायाकाशनियामिकाः[1] ।
विद्येशान्प्रेरकाञ्शंभुं व्यापिनं च सुसंवरैः ।।९
अङ्गानि च विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्रोधमुद्रया ।
सुवर्णाद्युद्भवं यद्वा पुरुषं पुरुषानुगम् ।।१०
पञ्चगव्यकषायाद्यैः पूर्ववत्संस्कृतं ततः ।
शय्यायां कुम्भमारोप्य ध्यात्वा रुद्रमुमापतिम् ।।११
तस्मिंश्च शिवमन्त्रेण व्यापकत्वेन विन्यसेत् ।।११/३

तत्पश्चात् रेचक प्राणायाम के द्वारा मस्तक-स्थित द्वादश-दल कमल से अग्निकोण के समान चमकती हुई वायु को उस घड़े में छोड़े और उसमें आतिवाहिक शरीर का न्यास करे। तदनन्तर उस विग्रह में उसके गुणों को उसके बोधक कला आदि के तथा पृथ्वी से लेकर ईश्वरपर्यन्त तत्त्व समूह को, दश नाडियों, दश प्राणों, तेरह इन्द्रियों तथा उनके अधिदेवों का प्रणव आदि मन्त्रों से प्रत्येक का नाम लेकर उनका न्यास करना चाहिए। उसके बाद कार्य और कारणभाव से सम्बद्ध माया, कला, नियति, विद्यापति, प्रेरक, व्यापक शिव तथा अङ्ग-देवताओं का संवर-मन्त्रों से न्यास कर रोधमुद्रा से उन्हें वहीं रोक दे। सोने आदि का पुरुष की आकृति पुतला बनाकर उसे पुरुष-तत्त्व से युक्त कर देना चाहिए। फिर पञ्चगव्य तथा कषाय आदि से पहले की भाँति उसका संस्कार करके आसन पर रखकर उमापति रुद्र का ध्यान करते हुए उसमें शिव-मन्त्र से व्यापक रूप से ध्यान करे।९-११३।

संनिधानाय होमं च प्रोक्षणं स्पर्शनं जपम् ।।१२
सान्निध्यबोधनं[2] सर्वं भागत्रयविभागतः ।
विधायैवं प्रकृत्यन्ते कुम्भे तं विनिवेशयेत् ।।१३

तत्पश्चात् देवता का सामीप्य प्राप्त करने के लिए हवन, शरीर-शुद्धि, स्पर्श तथा जप करे। फिर आवाहन और जागरण आदि कर्मों को तीन भागों में विभक्त करके प्रकृति पर्यन्त न्यास का सारा विधान पूर्णकर उस पुरुष को पूर्वोक्त-कलश में स्थापित कर दे।१२-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रासादप्रतिष्ठावर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।११०

---

१ ख. ग. ॰यामकाः। २ क. घ. ङ. च. ॰निध्यावो॰ ।

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणम्

ईश्वर उवाच

चूलके ध्वजदण्डे च ध्वजे देवकुले तथा ।
प्रतिष्ठा च यथोद्दिष्टा तथा स्कन्द वदामि ते[1] ।।१
(कू) कभागार्धप्रवेशाद्वा यद्वा सर्वार्धवेशनात् ।
ऐष्टके दारुजः शूलः शैलजे धाम्नि शैलजः ।।२
वैष्णवादौ च चक्राढ्यः[3] कुम्भः स्यान्मूर्तिमानतः ।
स च त्रिशूलयुक्तस्तु अग्रचूलाभिधो मतः ।।३
ईशशूलः समाख्यातो मूर्ध्नि लिङ्गसमन्वितः ।
वीजपूरकयुक्तो वा शिवशास्त्रेषु तद्विधः ।।४
चित्रो ध्वजश्च जङ्घातो[4] यथा जङ्घार्धतो भवेत् ।
भवेद्वा दण्डमानस्तु यदि वा तद्यदृच्छया ।।५

महेश्वर बोले—हे स्कन्द ! अब मैं तुमसे चूलक, ध्वजदण्ड, ध्वज और देवकुल की प्रतिष्ठा जिस प्रकार से बताई है, उसे बतलाऊँगा । शिखर के आधे भाग में शूल का प्रवेश हो अथवा सम्पूर्ण शूल के आधे भाग का शिखर में प्रवेश कराकर प्रतिष्ठा करनी चाहिए । जहाँ पर देवालय ईट का वना हुआ हो उसके ऊपर लकड़ी का वना हुआ शूल होना चाहिए, किन्तु पत्थर से बने हुए देवालय के ऊपर पत्थर का ही शूल होना चाहिए । वैष्णव इत्यादि के मन्दिर में जो कलश रखा जाता है वह चक्र से सुशोभित होता है क्योंकि वह विष्णु का अपना चिह्न है । जिस मन्दिर में शिवलिङ्ग की स्थापना रहती है वह अग्रचूर नामक त्रिशूल से युक्त होता है । शिवशास्त्रों में बीज-पूरकयुक्त कलश का भी विधान है । चित्रध्वज को मन्दिर के जङ्घा के बराबर अथवा उसके आधे के बराबर होना चाहिए । उसकी लम्बाई दण्ड के परिमाण के वराबर अथवा इच्छानुसार भी हो सकती है ।१-५।

---

१ घ. ते । तडागा॰ । २ कभागार्धप्रवेशाद्वा......शैलजः ३ क. ङ.चक्रादौ । ख. ग. चक्राद्यः । ४ चैत्राद्यः । क. जङ्घाता । ख. ग. संगाता । नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु ।

महाध्वजः समाख्यातो यस्तु पीठस्य वेष्टकः ।
शक्रैर्ग्रहै रसैर्वाऽपि हस्तैर्दण्डस्तु संमितः ॥६
उत्तमादिक्रमेणैव विज्ञेयः सूरिभिस्ततः ।
वंशजः[1] शालजादिर्वा स दण्डः सर्वकामदः ॥७
अयमारोप्यमाणस्तु भङ्गमायाति वै यदि ।
राज्ञोऽनिष्टं विजानीयाद्यजमानस्य वा तथा ॥८
मन्त्रेण बहुरूपेण पूर्ववच्छान्तिमाचरेत् ।
द्वारपालादिपूजां च मन्त्राणां तर्पणं तथा ॥९
विधाय चूलकं[2] दण्डं स्नापयेदस्त्रमन्त्रतः ।
अनेनैवोक्तमन्त्रेण ध्वजं संप्रोक्ष्य देशिकः ॥१०

मन्दिर के पीठ को आवेष्टित करने वाला ध्वज महाध्वज कहलाता है और वह जिस दण्ड में लगाया जाता है उसकी लम्बाई चौदह, नौ अथवा छह हाथ हुआ करती है। विद्वानों के द्वारा यह दण्ड अपनी लम्बाई के अनुसार क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम माना जाता है। बाँस या साखू आदि का बना हुआ दण्ड सभी कामनाओं को देने वाला हुआ करता है। यदि दण्ड का आरोपण करने के बाद वह टूट जाय तो राजा अथवा यजमान का अनिष्ट हुआ करता है। इसकी शान्ति के लिए पहले के समान बहुरूपमन्त्र का पाठ करना चाहिए और द्वारपालादि का पूजन तथा मन्त्रों का तर्पण भी करना चाहिए। ध्वज के दण्ड में चूलक बनाकर गुरु को अस्त्र-मन्त्र से प्रेक्षित करे। इसी मन्त्र से आचार्य को ध्वज-दण्ड का भी प्रोक्षण करना चाहिए।९-१०।

मृत्कषायादिभिःस्नान प्रासादं कारयेत्ततः ।
विलिप्य[3] रसमाच्छाद्य शय्यायां न्यस्य पूर्ववत् ॥११
चूलके[4] लिङ्गवन्न्यासो न[5] च ज्ञानं न च क्रिया ।
विशेषार्था चतुर्थी च न[6] च कुण्डस्य[7] कल्पना ॥१२
दण्डे तथाऽर्थतत्त्वं[8] च विद्यातत्त्वं द्वितीयकम् ।
सद्योजातादिवक्त्राणि[9] शिवतत्त्वं पुनर्ध्वजे ॥१३

---

१ ख. °जः साल°। २ क. ङ. च. चूलकं। ख. घूलकं। ३ क. ङ. च. °व्य च समासाद्य। ४ घ. चूडके। ५ ख. ग. न चाज्ञानं च सत्क्रिया। ६ क. ङ च. नवचण्ड°। ७ ग. कुम्भस्य। ८ क. ङ. च. तथाऽऽत्मत°। घ. तयाऽर्थं°। ९ ख. ग. °तानि चक्राणि घ.° तानि वक्राणि।

निष्कलं च शिवं तत्र न्यस्याङ्गनि प्रपूजयेत् ।
चूलके[1] च ततो मन्त्री सांनिध्ये[2] संहिताणुभिः ॥१४
होमयेत्प्रतिभागं च ध्वजे तैस्तु फडन्तकैः ।
अन्यथाऽपि कृतं यच्च ध्वजसंस्कारणं क्वचित् ॥
अस्त्रयागविधावेवं[3] तत्सर्वमुपदर्शितम् ॥१५½

इसके वाद मिट्टी तथा कसैले पदार्थों से मिले जल से मन्दिर को स्नान करावे। तदुपरान्त चूलक में गन्धादि का लेप करके उसे वस्त्र से आच्छादित करे। फिर पूर्ववत् उसे शय्या पर रखकर उसमें लिङ्ग की भाँति न्यास करना चाहिए, किन्तु यहाँ पर ज्ञान और क्रियाशक्ति का न्यास नहीं होता। यहाँ विशेषार्थ बोधिता चतुर्थी का भी विधान नहीं होता यहाँ विशेषार्थ-बोधिका चतुर्थी का भी विधान नहीं है और न उसके लिए कुण्ड की रचना ही करनी पड़ती है। दण्ड में आत्म-तत्त्व का, विद्यातत्व का 'सद्योजात' आदि पाँच मुखों का न्यास करे। ध्वज में शिवतत्त्व का न्यास करे। वहाँ निष्कल शिव का न्यास कर हृदय आदि अङ्गों का पूजन करे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ गुरुध्वज तथा ध्वजाग्रभाग में सन्निधीकरण के लिए फडन्त संहिता मन्त्रों से प्रत्येक भाग में होम करे। ध्वज-संस्कार की इससे भिन्न भी विधि है, उसको अस्त्रयाग-विधि में वताया जा चुका है ।१०-१५½।

प्रासादे कारितस्थाने[4] स्रग्वस्त्रादिविभूषिते ॥१६
जङ्घा वेदी तदूर्ध्वे तु त्रितत्त्वादि निवेश्य च ।
होमादिकं विधायाथ शिवं सम्पूज्य पूर्ववत् ॥१७
सर्वतत्त्वमयं ध्यात्वा शिवं च व्यापकं न्यसेत् ।
अनन्तं कालरुद्रं च विभाव्य च पदाम्बुजे ॥१८
कूष्माण्डहाटकौ पीठे पातालनरकैः सह ।
भुवनैर्लोकपालैश्च शतरुद्रादिभिर्वृतम् ॥१९
ब्रह्माण्डकमिदं ध्यात्वा जङ्घायां च विभावयेत् ।
वारितेजोऽनिलव्योमपञ्चाष्टकसमन्वितम् ॥२०

---

१ क. ङ. च. चूतके। घ. चूडके। २ क. °निध्येऽङ्गदितात्मभिः। ङ. च.° निध्योङ्गहितात्मभिः। ३ ख. ग. °यागं विधायैवं।४ घ.° रिते स्था°।

सर्वावरणसंज्ञं च[1] बुद्धियोन्यष्टकान्वितम् ।
योगाष्टकसमायुक्तं नाशावधि गुणत्रयम् ॥२१
पटस्थं[2] पुरुषं सिंहं वामं[3] च परिभावयेत् ॥२१½

मन्दिर को नहलाकर पुष्पहार और वस्त्र आदि से अलङ्कृत कर जङ्घा वेदी के ऊपरी भाग में त्रितत्त्व आदि का न्यास, होम आदि का विधान कर शिव का पूर्ववत् पूजन करे। मन्दिर के सभी देवताओं के तत्त्व से व्याप्त समझना चाहिए और उसमें सर्वव्यापक शिव का न्यास करना चाहिए। मन्दिर के पाद (अथवा आधार) में अनन्त और काल-रुद्र की भावना करनी चाहिए। पीठ में कूष्माण्ड हाटक तथा पाताल, नरक, भुवन और लोकपाल तथा शत-रुद्रादि से युक्त ब्रह्माण्ड की भावना मन्दिर की जङ्घा में करनी चाहिए। यहीं पर जल, तेज, वायु, आकाश, पञ्चाष्टक सर्वावरण संज्ञक, बुद्धियोन्यष्टक, योगाष्टक, प्रलयपर्यन्त रहने वाले त्रिगुण, पटस्थ पुरुष और वाम सिंह आदि की भावना करे ।१६-२१½।

मञ्जरी वेदिकायां च विद्यादिकचतुष्टयम् ॥२२
कण्ठे मायां[4] सरुद्रां च विद्याश्चामलसारके
कलशे चेश्वरं बिन्दुं विद्येश्वरसमन्वितम् ॥२३
जटाजूटं च तं विद्याच्छूलं चन्द्रार्धरूपकम् ।
शक्तित्रयं च तत्रैव दण्डे नादं विभाव्य च ॥२४
ध्वजे च कुण्डलीशक्तिमिति धाम्नि विभावयेत् ।
जगत्यां[5] वाऽथ संधाय लिङ्गं[6] पिण्डिकयाऽथ वा ॥२५
समुत्थाप्य[7] सुमन्त्रैश्च विन्यस्ते[8] शक्तिपङ्कजे ।
न्यस्तरत्नादिके तत्र स्वाधारे विनिवेशयेत् ॥२६
यजमानो ध्वजे लग्ने[9] बन्धुमित्रादिभिः सह ।
धामं[10] प्रदक्षिणीकृत्य लभते फलमीहितम् ॥२७
गुरुः[11]: पाशुपतं ध्यायन्स्थिरमन्त्राधिपैर्युतम्[12] ।
अधिपाञ्शस्त्रयुक्तांश्च रक्षणाय निबोधयेत् ॥२८

---

१ ग. च. वृद्धि यो° । घ. च. वृद्धयो° । २ ङ. च. पुटस्थं । ३ क. ङ. च. रागं । ४ क. ङ. च. मायाधवक्रं च । ५ ख. °त्या चाथ । ६ क. ङ. च. लिङ्गपि° । ७ ख. ग. समुत्थाय । ८ ख. ग. ° न्यसेच्छक्तिति° । ९ क. ख. ग. ङ. च. लग्नौ । १० क. ङ. च. वाम । ख. ग. वामे । ११ ख. ग. गुरुं । १२ ख.° न्त्रादिभिर्यू° ।

मञ्जरी वेदिका के ऊपर विद्या आदि चार तत्त्वों का, कण्ठ में रुद्र के सहित माया की और अमलसारक के ऊपर विद्याओं की भावना करनी चाहिए। कलश के ऊपर विन्दु, जटाजूट, त्रिशूल और चन्द्रार्ध की कल्पना करनी चाहिए और दण्ड में नाद की कल्पना करनी चाहिए। ध्वज में कुण्डली शक्ति की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार मन्दिर के विभिन्न भागों तथा देवप्रतिमा को उपर्युक्त देवताओं से व्याप्त समझना चाहिए। मन्दिर के नीचे अथवा पीठिका की मिट्टी से लिङ्ग का निर्माण करना चाहिए। इस समय सुमन्त्रों के द्वारा रत्नादिकों से पूरित शक्तिपङ्कज में लिङ्ग का विनिवेश करना चाहिए। ध्वज के लग जाने पर यजमान बन्धु और मित्रादि के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा करके अभीष्ट फल की प्राप्ति कर लेता है। गुरु को मन्त्रादिकों से युक्त पशुपत-मन्त्र का ध्यान करते हुए अपनी रक्षा के लिए शस्त्र युक्त लोकपालों को सम्बोधित करना चाहिए।२२-२८।

ऊनादिदोषशान्त्यर्थं हुत्वा दत्त्वा च दिग्बलिम्।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्यजमानो दिवं व्रजेत्॥२९
प्रतिमालिङ्गवेदीनां यावन्तः परमाणवः।
तावद्युगसहस्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलम्॥३०

इस कार्य में न्यूनत्व आदि दोषों के परिहार के लिए आहुति और दिशाओं में वलि देकर गुरु को दक्षिणा देने वाला यजमान स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसका अनुष्ठान करने वाला हजारों युगों तक उतने ही फलों को प्राप्त करता है जितने की प्रतिमा लिङ्ग अथवा वेदी में परमाणु हुआ करते है।२९-३०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ध्वजारोपणादिविधिकथनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।१०२

अथ त्र्यधिकशतमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधिः

ईश्वर उवाच—

जीर्णादीनां च लिङ्गानामुद्धारं विधिना वदे।
लक्ष्मोज्झितं च भग्नं च स्थूलं वज्रहतं तथा॥१

सम्पुटं सम्पुटितं व्यङ्गं लिङ्गमित्येवमादिकम् ।
इत्यादिदुष्टलिङ्गानां त्याज्या[1] पिण्डी तथा वृषः ॥२
चालितं चलितं[2] निम्नमत्यर्थं विषमस्थितम् ।
दिङ्मूढं पातितं लिङ्गं मध्यस्थं पतितं तथा ॥३
एवं विधं च संस्थाप्य निर्व्रणं च भवेद्यदि[3] ।
नादेयेन प्रवाहेण तदपाक्रियते यदि ॥४
ततोऽन्यत्रापि संस्थाप्य विधिदृष्टेन कर्मणा ।
सुस्थितं[4] चास्थितं वाऽपि शिवलिङ्गं न चालयेत् ॥५

शिव बोले—अब मैं जीर्ण आदि शिवलिङ्गों के उद्धार करने की विधि बतला रहा हूँ। जो शिवलिङ्ग (शास्त्रोचित) लक्षणों से रहित हो जाय या टूट जाय या मोटा हो जाय या वज्रहत हो जाय, सम्पुटित हो जाय या विकृताङ्ग हो जाय तो उसे त्याग देना चाहिए और ऐसी स्थिति में उसकी पिण्डिका तथा नान्दी को भी हटा देना चाहिए। यदि शिवलिङ्ग विचलित कर दिया गया हो या स्वयं विचलित हो गया हो या अत्यन्त झुक गया हो या विषम प्रकार से स्थित हो गया हो या प्रतिकूल दिशा में हो गया हो या गिरा दिया गया हो या स्वयं गिर पड़ा हो या मध्यस्थित हो गया हो तो उसे पुनः ठीक से स्थापित कर देना चाहिए। यदि शिवलिंग में उपर्युक्त कोई दोष नहीं हो, नदी की धारा से मन्दिर के कट जाने की सम्भावना दिखाई पड़ती हो तो उसे शास्त्रोक्त विधि से अन्यत्र स्थापित कर देना चाहिये। सुस्थित तथा दुःस्थित शिवलिङ्ग को चलायमान नहीं करना चाहिए। १-५।

शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्रेण तु चालनम् ।
पूजादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितम् ॥६
याम्ये मण्डपमीशे च[5] प्रत्यग्द्वारैकतोरणम् ।
विधाय द्वारपूजादि स्थण्डिले[6] मन्त्रपूजनम् ॥७
दिग्वलिं च च बहिर्गत्वा समाचम्य स्वयं गुरुः ।
ब्रह्मणान्भोजयित्वा तु शंभुं विज्ञापयेत्ततः ॥८
दुष्टं लिङ्गमिदं शम्भो शान्तिरुद्धरणस्य चेत् ।
रुचिस्तवास्ति[7] विधिना अधितिष्ठ[8] च मां शिव ॥९
एवं विज्ञाप्य देवेशं शान्तिहोमं समाचरेत् ।
मध्वाज्यक्षीरदूर्वाभिर्मूलेनाष्टाधिकं शतम् ॥१०

---

१ घ. योज्या। २ घ.तं लिङ्गम°। ङ. °तं चैवम°। ३ घ.° दि। नद्यादिक प्र°। ४ क. च.° °तं घटितं। घ.° °तं दुःस्थितं। ङ. °तं दूषितं। ५ घ. वा। ६ क. च.°लेयं प्रपू°। ख. ग. °लेशप्रपू°। ङ. ले यन्त्र°। ७ घ. °वादिवि°। ८ घ. °ष्ठस्व मां।

सौ बार हवन करके शिवलिंग की स्थापना करनी चाहिए और हजार बार हवन करके उसे (पूर्वोक्त स्थिति में स्थानान्तरित करने के लिए) उखाड़ना चाहिए। जीर्ण लिंग की भी यदि पूजा होती रहती है तो वह 'सुस्थित' है। यदि पूजा नहीं होती है तो नया भी 'दुःस्थित' है। गुरु दक्षिण-दिशा में मण्डप बनावे। ईशान कोण में पश्चिम द्वार वाला एक फाटक लगा दे। द्वारपूजा आदि करके स्थण्डिल में मन्त्रपूजन तर्पण करके वास्तु-देवता की पूर्ववत् पूजा करे तथा बाहर जाकर दिशाओं को बलि समर्पित कर दे। तदनन्तर आचमन करके ब्राह्मणों को भोजन खिलाकर शिव से निवेदन करे कि—"हे शम्भो ! यह शिवलिंग दूषित हो गया है इसलिए इसका उद्धार तथा इसकी शान्ति करने में यदि आपकी रुचि हो तो आप (कुछ देर के लिए) मुझमें विराजिये—" इस प्रकार निवेदन कर मधु, घी, दूध, तथा दूब से मूल-मन्त्र के द्वारा एक सौ आठ बार शान्ति होम करे। ६-१०।

ततो लिङ्गं च संस्थाप्य पूजयेत्स्थण्डिले तथा।
[1]ॐ व्यापकेश्वरायेति[2] तत्त्वेनात्यन्तवादिना ॥११
ॐ व्यापकेश्वराय[3] हृदयाय: नम:। ॐ व्यापकेश्वराय
शिरसे नम:। इत्याद्याङ्गमन्त्रा:[4] ॥१२
ततस्तत्राऽऽश्रितं[5] तत्त्वं [6]श्रापयेदस्त्रमन्त्रत:[7]।
सत्त्व: कोऽपीह य:[8] कश्चिल्लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥
लिङ्गं त्यक्त्वा शिवाज्ञाभिर्यत्रेष्टं तत्र गच्छतु।
विद्याविद्येश्वरैर्युक्त:[9] शम्भुरत्र भविष्यति ॥१४

तदनन्तर शिवलिङ्ग को स्थापित करके स्थण्डिल पर 'ॐ व्यापकेश्वराय शिवाय नम:' इस मन्त्र का उच्चारण करे। अङ्गपूजा और अङ्गन्यास के मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ व्यापकेश्वराय हृदयाय नम:', 'ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा' इत्यादि। तत्पश्चात् लिङ्गाश्रित तत्त्व को अस्त्र-मन्त्र के द्वारा यह सुनाए कि—'जो कोई जीव इस लिङ्ग के आश्रय में रहता हो, वह शिव की आज्ञा से उसे छोड़कर जहाँ इच्छा हो चला जाय, क्योंकि विद्या और विद्येश्वरों के साथ शिव यहाँ वास करेंगे'।११-१४।

---

१ ॐ व्यापकेश्वरायेति.........वादिना क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ घ. °ति नात्यन्तं शिववा°। ३ घ. °पकं हृदयेश्वराय न°। ४ ख. ग. इत्यभ्यङ्ग°। ५ ख. ग. °तं मन्त्रं धारये°। ६ घ. °मस्तत:। ७ ख. ग.° त:। मत्त: कोऽ°। ८ क. ग. ङ. च. य: कोऽपि लिङ्ग°। ९ ख. घ. ङ. च. °क्त: स भवोऽत्र।

सहस्रं प्रतिभागे (गं) च ततः पाशुपताणना ।
हुत्वा शान्त्यम्बुना प्रोक्ष्य स्पृष्ट्वा कुशैर्जपेत्ततः ॥१५
दत्त्वार्घं (र्घ्यं) च विलोमेन तत्त्वतत्त्वाधिपांस्ततः[1] ।
[2]अष्टमूर्तीश्वराल्लिङ्गपिण्डिकासंस्थितान्गुरुः ॥१६
विसृज्य स्वर्णपाशेन वृषस्कन्धस्थया तथा ।
रज्ज्वा वद्ध्वा तया नीत्वा शिवमन्त्रं गृणञ्जनैः ॥१७
तज्जले निक्षिपेन्मन्त्री पुष्ट्यर्थं जुहुयाच्छतम् ।
तृप्तये दिक्पतीनां च वास्तुशुद्ध्यै[3] शतं शतम् ॥१८
रक्षां विधाय तद्धाम्नि[4] महापाशुपतास्त्रतः ।
लिङ्गमन्यत्ततस्तत्र विधिवत्स्थापयेद्गुरुः ॥१९
असुरैर्मुनिभिर्गोत्रैस्तन्त्रविद्भिः[5] प्रतिष्ठितम् ।
जीर्णं वाऽप्यथ वा भग्नं विधिनाऽपि न चालयेत् ॥२०

तदनन्तर प्रत्येक भाग में पशुपत-मन्त्र से एक-एक सहस्र बार हवन करके उसके ऊपर शान्ति जल छिड़ककर कुशों से उसका स्पर्श करे। तत्पश्चात् तत्त्वों और तत्त्वाधिपों को विलोम भाव से अर्घ्य देकर लिङ्ग पिण्डिका पर अवस्थित अष्टमूर्तीश्वरों का विसर्जन करके स्वर्णपाश तथा नान्दी के कन्धे पर रखी हुई रस्सी से उन्हें बाँधकर कतिपय व्यक्तियों के साथ शिवमन्त्रों का उच्चारण करते हुए जल में फेंक दे। उसके बाद यजमान की पुष्टि, दिक्पतियों की तृप्ति और वास्तु की शुद्धि के लिए सौ-सौ बार हवन करने के बाद महापाशुपत मन्त्र से मन्दिर की रक्षा करके दूसरे शिवलिङ्ग को विधिवत् स्थापित कर दे। किन्तु असुरों, मुनियों और महान् तांत्रिकों के द्वारा स्थापित किया हुआ शिवलिङ्ग चाहे वह जीर्ण हो या भग्न, उसे विचलित नहीं करना चाहिए।१५-२०।

एष एव विधिः कार्यो जीर्णधामसमुद्धृतौ ।
खड्गे[6] मन्त्रगणं[7] न्यस्य[8] कारयेन्मन्दिरान्तरम् ॥२१
संकोचे मरणं प्रोक्तं विस्तारे तु धनक्षयः ।
तद्द्रव्यं श्रेष्ठव्यं वा तत्कार्यं तत्प्रमाणकम् ॥२२

---

१ ख. ग. ° तः । मूर्तिम्° । २ ख. ग. ° लिङ्गे पि० । ३ घ. ०शुद्धौ श° । ४ ख. ग. तन्नाम्नि । ५ ख. ग.० भिर्देवैस्तत्त्ववि° । ६ क. ङ. च. खड्गम० । ७ ख. ग. मन्त्रागतं न्य० । ८ क. ङ. च. व्याप्य ।

यही विधि जीर्ण मन्दिर के उद्धार में भी समझनी चाहिए। खड्ग में मन्त्र समूह का न्यास करके दूसरे मन्दिर की रचना करनी चाहिए। परन्तु पूर्व मन्दिर की अपेक्षा नया मन्दिर संकीर्ण या विस्तृत नहीं होना चाहिए, क्योंकि संकीर्ण करने से जीर्णोद्धार करने वाले की मृत्यु होगी तथा विस्तार करने से उसके धन का नाश होगा। अतः प्राचीन मन्दिर के द्रव्य को लेकर अथवा और कोई श्रेष्ठ द्रव्य लेकर पहले के मन्दिर के बराबर ही उस स्थान पर नवीन मन्दिर का निर्माण करना चाहिए ।२१-२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये जीर्णोद्धार विधिकथनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०३।

———

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादलक्षणम्

ईश्वर उवाच—

वक्ष्ये प्रासादसामान्यलक्षणं[1] ते शिखिध्वज ।
चतुर्भागीकृते क्षेत्रे भित्तेर्भागेन विस्तरात् ।।१
अद्रिभागेने[2] (ण) गर्भः स्यात् पिण्डिका पादविस्तरात् ।
पञ्चभागीकृते[3] चापि मध्यभागे तु पिण्डिका ।।२
शुषिरं भागविस्तीर्णं भित्तयो भागविस्तरात् ।
भागौ द्वौ मध्यमे[4] गर्भे ज्येष्ठे भागद्वयेन तु ।।३
त्रिभिस्तु [5]कन्यासो[6] (?) गर्भः शेषभित्तिरिति क्वचित् ।
षोढा भक्तेऽथ वा क्षेत्रे भित्तिर्भागैकविस्तरात् ।।४
गर्भो भागेन विस्तीर्णो भागद्वयेन पिण्डिका ।
विस्ताराद्द्विगुणो वाऽपि सपादद्विगुणोऽपि वा ।।५
अर्धार्धद्विगुणो[7] वाऽपि त्रिगुणः क्वचिदुच्छ्रयः ।
जगती विस्तरार्धेन त्रिभागेन (ण) क्वचिद्भवेत्[8] ।।६

---

१ ख. ग. °दनानस्य ल° । २ अद्रिभागेन•••पादविस्तरात् ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति । ३ घ. °ते क्षेत्रेऽन्तर्भाग । ४ क. ङ. च. °ध्ययो गर्भोह्येष भा° । ख. ग. °ध्यमो गर्भोज्ये° । ५ घ. कंन्यसा ग° । ६ क. ङ. च. ०.न्यासा ग° । ७ क. ङ. च. अध्यर्ध° । ८ ख. ग. °चित्क्वचित् ।

नेभिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः ।
परिधिस्त्र्यंशको मध्यो रथकांस्तत्र कारयेत् ॥७
चामुण्डभैरवं तेषु नाट्येशं च निवेशयेत् ।
प्रासादार्धेन देवानामष्टौ वा चतुरोऽपि वा ॥८

महादेव बोले—हे शिखिध्वज (मयूरचिह्नित पताका वाले स्कन्द !) अब मैं तुमसे प्रासाद का सामान्य लक्षण बतलाऊँगा । सर्वप्रथम एक वर्गाकार भूभाग को चार आयताकार भागों में विभक्त कर लेना चाहिए । दीवारों की चौड़ाई इस प्रकार के वर्ग के क्षेत्रफल के चतुर्थांश के बराबर होनी चाहिए और उसमें गर्भ होना चाहिए, उसके आठवें भाग के बराबर, जबकि पिण्डिका का विस्तार केवल एक पाद होना चाहिए । पिण्डिका का आकार सम्पूर्ण वर्ग के पञ्चमांश के बराबर ही हो सकता है । दीवारों का विस्तार भी इतना ही होना चाहिए जिसमें छिद्रों का होना भी आवश्यक है । सम्पूर्ण आयताकार भू–खण्ड के दो भागों को गर्भ के बीच में होना चाहिए । गर्भ के ऊपर बनी हुयी छत के द्वारा सम्पूर्ण भू–भाग के तीन चौथाई भागों को आच्छादित होना चाहिए और शेष भाग को दीवारों के द्वारा आवेष्टित रहना चाहिये । जहाँ पर मन्दिर का निर्माण-स्थल छह समान आयताकार खण्डों में विभक्त हो वहाँ पर दीवारों की चौड़ाई एक खण्ड के बराबर होनी चाहिए और उतना ही चौड़ा गर्भ भी होना चाहिए । पीठिका की चौड़ाई ऐसे-ऐसे दो खण्डों के बराबर होनी चाहिए । मन्दिर की ऊँचाई पीठिका की चौड़ाई से दुगुनी, उससे भी अधिक अथवा उससे तीन गुनी हो सकती है । कहीं-कहीं पर मन्दिरों की ऊँचाई उसकी चौड़ाई के सवा दो गुनी भी होती है अथवा वह प्रासाद अपने निर्माण–स्थल के क्षेत्रफल के आधे अथवा तिहाई ऊँचा भी हो सकता है । मन्दिर की अन्तरिक्ष परिधि भूमाग के विस्तार से चतुर्थांश कम होती है और वाह्य परिधि सम्पूर्ण क्षेत्रफल के तृतीयांश के बराबर होती है जिसमें द्वार बने हुए रहते हैं । मन्दिर के मध्य में भैरव, चामुण्ड, नटराज तथा चार अथवा आठ अन्य देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं ।१-८।

प्रदक्षिणावहाः[1] कु (हान्कु) यत्प्रासादादिषु[2]
वानराः[3] (न्) ।
आदित्याः पूर्ववत्स्थाप्याः स्कन्दोऽग्निर्वायुगोचरे ॥९

---

१ ख. ग. घ.° क्षिणां बहिः कु° । २ ख.° दिक्षु वा° । ३ घं. वा न बा । आ° ।

एवं यमादयो न्यस्याः स्वस्यां दिशि स्थिताः ।
चतुर्धा शिखरं कृत्वा शुकनासा द्विभागिका: ।।१०
तृतीये वेदिका[1] त्वग्ने सकण्ठोऽमलसारकः[2] ।
वैराजः पुष्पकश्चान्यः कैलासो मणिकस्तया ।।११
त्रिविष्टपञ्च[3] पञ्चैव मेरूमूर्धनि संश्थितः ।
चतुरस्रश्तु तत्राऽऽद्यो द्वितीयोऽपि तदायतः ।। १२
वृत्तो वृत्तायतश्चान्यो ह्यष्टास्रश्चापि पञ्चमः ।
पुकैको नवधा भेदैश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।।१३

मन्दिर के चारों ओर एक प्रदक्षिणा-मार्ग का भी निर्माण होना चाहिए। मन्दिर के पूर्व की ओर आदित्यों, पश्चिमोत्तर की ओर स्कन्द और अग्नि तथा यमराज और अन्य देवताओं की स्थापना तत्तद् देवताओं की दिशा में करनी चाहिए। शिखर के चार भाग करके और शुकनास के दो भाग करके उपर्युक्त देवताओं की स्थापना तृतीय भाग में करनी चाहिये । वेदी अग्नि देवता से सम्बद्ध होती है जिसके ऊपर कण्ठ से युक्त अमलसारक की स्थापना होनी चाहिए। पाँच प्रकार के मन्दिर होते हैं—वैराज, पुष्पक, कैलाश, मणिक तथा त्रिविष्टिप। इनमें से पहले प्रकार का मन्दिर चौकोर और दूसरे प्रकार का भी वैसे ही होता है, तीसरे प्रकार का मन्दिर गोलाकार, चौथे प्रकार का मन्दिर वृत्ताकार तथा पाँचवें प्रकार का मन्दिर अष्टभुजाकार होता है। उपर्युक्त पाँचों प्रकार के मन्दिरों के प्रकार की कुल संख्या पैंतालीस हो जाती है।९-१३।

प्रासादः प्रथमो मेरुर्द्वितीयो मन्दरस्तथा ।
विमानं च तथा भद्रः सर्वतोभद्र एव च ।।१४
चरुको नन्दको[4] नन्दिवर्धमानस्तथाऽपरः ।
श्रीवत्सश्चेति वैराजान्ववाये च समुत्थिताः[5] ।।१५
वलभी गृहराजश्च शालागृहं च मन्दिरम् ।
विशालश्चमसो[6] ब्रह्ममन्दिरं भुवनं तथा ।।१६

१ क. ङ. च °विप्रे स° । ख. ग. का त्वग्रे स° । २ ख °मरसा° । ३ क. घ. ङ. च. ष्टपं च प° । ४ ख. ग. नन्दनो । घ. नन्दिको । ५ ख° ताः । बलभीगृह° । ६ घ. ङ.° °श्चसमो व्र° ।

प्रभवः शिबिका वेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः ।
वलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मक एव च[1] ॥१७
वर्धनी वान्य उष्णीषः शङ्खश्च कलशस्तथा ।
खवृक्षश्च तथाऽप्येते वृत्ताः कैलाशसंभवाः ॥१८
गजोऽथ वृषभो हंसो गरुत्मानृक्षनायकः ॥
भूषणो भूधरश्चान्यः श्रीजयः पृथिवीधराः ॥१९

वैराज वर्ग के नव मन्दिरों को मरु, मन्दर, विमानभद्र, सर्वतोभद्र, चरुक, नन्दिक, नन्दि, वर्धमान और श्रीवत्स कहा जाता है। पुष्पक वर्ग के मन्दिरों में जितनी गणना होती है। उनके नाम हैं—वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विशाल, ब्रह्म-मन्दिर, भुवन, प्रभव और शिविकावेश आदि। वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, वर्धिनी, उष्णीष. शङ्ख, कलश और खवृक्ष कैलाश वर्ग के वृत्ताकार नौ मन्दिर हैं। मणिक वर्ग के मन्दिरों के भेद हैं—गज, वृषभ, हंस, गरुत्मान्, वृक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय, तथा पृथ्वीधर इत्यादि। ये वृत्तायत वर्ग आकार वाले होते हैं।१४-१९।

वृत्तायतात्समुद्भूता नवैते मणिकाह्वयात् ।
वज्रं चक्रं तथा चान्यत्स्वस्तिकं [2]वज्रस्वस्तिकम्[3] ॥२०
चित्रं[4] स्वस्तिकखड्गं च गदा श्रीकण्ठ एव च ।
विजयो नामतश्चैते त्रिविष्टपसमुद्भवाः ॥२१
नगराणामिमाः संज्ञा लाटादीनामिमास्तथा ।
ग्रीवार्धेनोन्नतं चूलं[5] पृथुलं[6] स्वत्रिभागतः ॥२२
दशधा वेदिकां कृत्वा पञ्चभिः स्कन्द विस्तरः ।
त्रिभिः कण्ठं तु कर्त्तव्यं चतुर्भिस्तु प्रचण्डकम्[7] ॥२३
दिक्षु द्वाराणि कार्याणि न विदिक्षु कदाचन ।
पिण्डिका कोणविस्तीर्णा मध्यमान्ता ह्युदाहृता ॥२४
क्वचित्पञ्चमभागेन महतां[8] गर्भपादतः ।
उच्छ्रायो[9] द्विगुणस्तेषामन्यथा वा निगद्यते ॥२५

---

१ क. ङ. च. च. । पक्वाली वान्यदुष्टाश्चः खड्गाश्च क° । ख. ग. च । सकुली बाल्यवक्रोशः शृंगाक्षः क° । २ ख. ग.° °ज्रहस्तक° । ३ ख. ग. °म् । चक्रस्व° । ४ चित्रं......एव च नास्ति क. ङ. च पुस्तकेषु । ५ क. ङ. च. चूर्णं । ६ क. च. °लं च त्रि° । घ. °लं च विमा° । ७ ख. ग. तदण्डकम् । ८ ख. महती । ९ घ. उच्छ्राया ।

त्रिविष्टप वर्ग से उत्पन्न होने वाले नव प्रकार के मन्दिरों के नाम हैं—वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रस्वस्तिक, चित्र, स्वस्तिकखड्ग, गदा, श्रीकण्ठ, विजय। इसी प्रकार लाट इत्यादि नगरों के नाम भी हुआ करते हैं। मन्दिर के चूल को उसकी ग्रीवा की आधी ऊँचाई के बराबर ऊँचा और उसके तिहाई मोटा होना चाहिए। ऊपर की वेदिका को दश भागों में विभक्त कर, उनके तीन भागों के बराबर कण्ठ और चार भागों के बराबर प्रचण्डक का निर्माण करना चाहिए। द्वारों का निर्माण दिशाओं की ओर ही होना चाहिए, विदिशाओं की ओर नहीं। पिण्डिका को कोणों तक विस्तीर्ण तथा गर्भान्त तक होना चाहिए। कुछ पिण्डिकायें ऐसी भी बनाई जाती हैं जो कोण से गर्भ के पञ्चम भाग तक विस्तृत होती हैं और उनकी ऊँचाई उनकी लम्बाई की दूनी होती है।२०-२५।

षष्ट्याऽधिकात्समारभ्य अङ्गुलानां शतादिह।
उत्तमान्यपि चत्वारि द्वाराणि दशहानितः॥२६
त्रीण्येव मध्यमानि स्युस्त्रीण्येव कन्यसान्यधः[1]।
उच्छ्रयार्धेन विस्तारो ह्युच्छ्रायो[2] ह्यधिकस्त्रिधा[3]॥२७
चतुर्भिरष्टभिर्वाऽपि दशभिर्वाऽङ्गुलैः[4] शुभः।
उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णाः[5] शाखास्तद्वदुदुम्बरौ (रे)[6]॥२८
विस्तारार्धेन वाहुल्यं सर्वेषामेव कीर्तितम्[7]।
त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्टदम्[8]॥२९
अधः शाखाचतुर्थांशे प्रतीहारौ निवेशयेत्।
मिथुनैः पादवर्णाभिः शाखाशेषं विभूषयेत्॥३०

पिण्डिका की लम्बाई एक सौ छह अंगुल होनी चाहिये। उसके चारों ओर उत्तमादि द्वारों के निर्माण के लिए दश-दश अंगुल छोड़ देना चाहिए। मध्यम और लघु वर्ग के द्वारों की संख्या तीन-तीन होती है। पिण्डिका की चौड़ाई उसकी ऊँचाई की आधी होती है या उसकी ऊँचाई के तृतीय भाग से अधिक होनी चाहिए। द्वार के ऊपर बनी हुई सुन्दर आकृतियाँ

---

१ क. ङ. च. कलशान्य°। ख. ग. कलशान्य°। २ घ. °च्छ्रायोऽम्यधि। ३ ख. ग.° कस्तथा। च°। ४ क. ङ. च.° ङ्गुलैस्ततः। उ°। ५ घ. °स्तीर्णा विशा°। ६ घ. °स्तदुदुम्बरे। वि°। ७ घ. भ°। द्विप° ८ क. ङ. च. °ष्टहम्।

चार, आठ, बारह अंगुल की होनी चाहिए। उनकी ऊँचाई द्वारों की चौड़ाई के बराबर ही होनी चाहिए। इस प्रकार के दो, पाँच, सात, अथवा नव शाखाओं से द्वार को विभूषित करना चाहिए। द्वारों के ऊपर उनके नीचे की ओर चतुर्थांश में द्वारपालों का चित्रण होना चाहिए और द्वार पर बनी हुई शाखाओं के अन्त में दो प्रतीहारियों को चित्रित करना चाहिए। २६-३०।

स्तम्भविद्धे भृत्यता स्याद्वृक्षविद्धे त्वभूतिता।
कूपविद्धे भयं द्वारे क्षेत्रविद्धे धनक्षयः ॥३१
प्रासादगृहशालादिमार्गविद्धेषु[1] बन्धनम्।
सभाविद्धेन[2] दारिद्र्यं[3] वर्णविद्धे निराकृतिः ॥३२
उलूखलेन दारिद्र्यं शिलाविद्धेन[4] शत्रुता।
छायाविद्धेन दारिद्र्यं वेधदोषो न जायते ३३
छेदादुत्पाटनाद्वाऽपि तथा प्राकारलक्षणात्।
सीमाया द्विगुणत्यागाद्वेधदोषो न जायते ॥३४

जिस मन्दिर के स्तम्भ में वेध उत्पन्न हो जाता है, उसका निर्माता सदा दास बना रहता है। जो स्तम्भ भूमि से वृक्ष की उत्पत्ति में बाधा पहुँचाता है, वह निर्धनता को उत्पन्न करने वाला होता है। जो मन्दिर कुएँ का अवरोध करता है वह भय को उत्पन्न कराता है जबकि अपने क्षेत्र का अवरोध करने वाला मन्दिर धन का नाश करने वाला होता है। प्रासाद तथा गृह आदि के भागों का अवरोध होने से उसका निर्माता बन्धन में पड़ता है और सभा में अवरोध उत्पन्न होने पर दारिद्र्य की प्राप्ति होती है। किसी शिला अथवा उलूखल से अवरुद्ध मन्दिर अथवा वह जो किसी दूसरे मन्दिर की छाया में आता हो वह शत्रुता, दारिद्र्य, अपमान को लाने वाला होता है। वेध का दोष कभी नष्ट नहीं होता है और वृक्ष को काटकर अथवा शिला को गिराकर भी उसको दूर नहीं किया जा सकता है और मन्दिर की सीमा के दुगुने क्षेत्र का दान देने से भी वेध-दोष दूर नहीं होता है। ३१-३४।

इत्यादिमहापुराणआग्नेये सामान्यप्रासादलक्षणकथनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।१०४।

---

१ ख. ग.° गंवेवैश्च ब° । २ ख. ग. °भावेवेन। ३ ख. ग. द्र्यं चुल्लीवि°। ४ क. ङ. च. °विद्धेऽश्ममूत्रता। ख. °विद्धेऽन्यमूत्रता।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

गृहादिवास्तुकथनम्

ईश्वर उवाच—

नगरग्रामदुर्गादौ[1] गृहप्रासादवृद्धये ।
एकाशीतिपदै[2] र्वास्तुं[3] पूजयेत्सिद्धये ध्रुवम् ॥१
प्रागास्या दशधा नाड्यस्तासां नामानि च ब्रुवे ।
शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी ॥२
सती वसुमती नन्दा सुभद्राऽथ मनोरमा ।
उत्तरास्या[4] दशान्याश्च एकाशीत्यङ्घ्रिकारिका[5] ॥३
हरिणी सुप्रभा लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया।
जया ज्वाला विशोका च स्मृतास्ताः[6] सूत्रपाततः ॥४

महेश्वर बोले—नगर, ग्राम तथा दुर्ग आदि में ग्रह तथा महल की वृद्धि के निमित्त इक्यासी प्रकोष्ठों से युक्त वास्तुदेव की आकृति का पूजन करना चाहिए। उस वास्तुदेव की दशपूर्वाभिमुखी नाडियों के नाम मैं बताता हूँ जो ये हैं—शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, वसुमती, नन्दा, सुभद्रा और मनोरमा। इसके अतिरिक्त दश अन्य नाडियाँ भी हैं जो, इक्यासी प्रकोष्ठों से युक्त तथा उत्तराभिमुखी हैं। इनके नाम हैं—हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, ज्वाला, विशोका और स्मृता।१-४।

ईशाद्यष्टकं दिक्षु यजेदीशं धनञ्जयम् ।
शक्रमर्कं तथा सत्यं भृत्यं[7] व्योम च पूर्वतः ॥५
हव्यवाहं च पूषाणं वितथं भौममेव च ।
कृतान्तमथ गन्धर्वं भृशं मृगं च दक्षिणे ॥६
पितरं द्वारपालं च सुग्रीवं पुष्पदन्तकम् ।
वरुणं दैत्यशेषौ च यक्ष्माणं पश्चिमे सदा ॥७

---

१. घ. ङ. च. °र्गाद्या गृ° । २ घ. °दैर्वस्तु । ३ क. ङ. च. °र्वास्तु पू° । ४ क. घ. ङ. च.° ग द्वाद° । ५ क. ङ. च. °शीत्यक्षिकाऽधिका । ६ घ. °तास्तत्सूत्र° । ७ घ. मृशं ।

रोगाहिमुख्यो भल्लाटः सौभाग्यमदितिर्दितिः ।
'नवान्तः[2] पदगो ब्रह्मा पूज्योऽर्धे च षडङ्घ्रिगाः ॥८
ब्रह्मेशान्तरकोष्ठस्थमायाख्यं[3] तु पदद्वये ।
तदधश्चापवत्साख्यं केन्द्रान्तरेषु षट्पदे ॥९
मरीचिकाऽग्निमध्ये तु सविता द्विपदस्थितः ।
सावित्री तदधो द्व्यंशे विवस्वान्षट्पदे त्वधः ॥१०
पितृब्रह्मान्तरे विष्णुमिन्दुमिन्द्रं त्वधो जयम् ।
वरुणब्रह्मणोर्मध्ये मित्राख्यं षट्पदे यजेत् ॥११
रोगब्रह्मान्तरे नित्यं[4] विष्णुं च रुद्रदासकम् ।
तदधो द्व्यङ्घ्रिगं यक्ष्म[5] षट्सौम्येषु धराधरम्[6] ॥१२
चरकीं[7] स्कन्दविकटं विदारीं पूतनां क्रमात् ।
जम्भं[8] पापं पिलिपिच्छं यजेदीशादिवाह्यतः ॥१३

ईश आदि आठ-आठ देवताओं का सब दिशाओं में पूजन करना चाहिए । ईश, धनञ्जय, शक्र, अर्क, सत्य, भृश तथा व्योम की पूजा पूर्व दिशा में करनी चाहिए । हव्यवाह, पूषा, वितथ, भौम, कृतान्त, गन्धर्व, भृङ्ग तथा मृग की पूजा दक्षिण दिशा में करनी चाहिए । रोग, अहि (नाग), मुख्य, भल्लाट, सोम, शैल (ऋषि), अदिति तथा दिति की उत्तर दिशा के पदों में पूजा होनी चाहिए और बीच के नव प्रकोष्ठों में ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए । शेष अड़तालीस पदों में से आधे में अर्थात् चौबीस पदों में वे देवता पूजनीय हैं, अकेले छह पदो में अधिकार रखते है । (प्रासाद के चारों ओर एक-एक करके चार देवता षट्पदगामी हैं—जैसे पूर्व में मरीचि (या अर्यमा), दक्षिण में विवस्वान्, पश्चिम में मित्र तथा उत्तर में पृथ्वीधर ।) ब्रह्मा जी तथा ईश के मध्यवर्ती दो पदों में 'आप' की तथा उससे नीचे वाले दो पदों में 'आपवत्स' की पूजा करनी चाहिए । अग्नि तथा मरीचि के बीच दो कोष्ठों में सावित्री देवी और उससे भी नीचे छह कोष्ठों में सूर्य की पूजा करनी चाहिए । पितर और ब्रह्मा के बीच में विष्णु, चन्द्रमा तथा इन्द्र की, उससे नीचे जय की पूजा करनी चाहिए । वरुण और ब्रह्मा के मध्य में छह प्रकोष्ठों में मित्र नामक देव की पूजा करनी-

---

१ क. ङ. च. °वान्तप° । २ ख. ग. °न्तः पाद° । ३ घ.° याख्यां तु । ४ क. घ. ङ. च. °त्यं द्रिपञ्च रू° । ५ क. ङ. च. यस्मात्षट्° । ६ क. ङ. च चराचरम् । ७ चरकीं....क्रमात् नास्ति क ङ च पुस्तकेषु । ८ ख जृम्भं ।

चाहिए। रोग और ब्रह्मा के बीच विष्णु तथा रुद्रदास की पूजा करनी चाहिए। उसके नीचे दो कोष्ठों में यक्ष्मा और छह कोष्ठों में धराधर की पूजा करनी चाहिए। हे स्कन्द ! तदनन्तर ईश आदि के कोष्ठों से बाहर चरकी, स्कन्द, विकट, विदारी, पूतना जम्भ, पापदेव तथा पिलिपिच्छ की पूजा करनी चाहिए।५-१३।

एकाशीतिपदं वेश्म मण्डपश्च शताङ्घ्रिकः।
पूर्ववद्देवताः पूज्या ब्रह्मा[1] तु षोडशांशके ॥१४
मरीचिश्च विवश्वांश्च मित्रं पृथ्वीधरस्तथा।
दशकोष्ठस्थिता दिक्षु त्वन्ये चेशादिकोणगाः ॥१५
दैत्यमाता[2] तथेशाग्नी मृगाख्यौ पितरौ तथा।
[3]पापयक्ष्मानिलौ देवाः सर्वे सार्धाङ्घ्रिके[4] स्थिताः[5] ॥१६

सामान्य गृह के निर्माण वास्तुदेव की आकृति इक्यासी कोष्ठों से युक्त होनी चाहिए और मण्डप में सौ कोष्ठ होने चाहिए। वहाँ पहले की भाँति देवताओं की पूजा करनी चाहिए। सोलह कोष्ठों में ब्रह्मा की पूजा और ईशान आदि कोणों में स्थित दश कोष्ठों में मरीचि, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधर की पूजा करनी चाहिए। दैत्यमाता, ईश, अग्नि, मृग नामक दो पितर, पाप, यक्ष्मा तथा वायु के देवताओं की पूजा डेढ़-डेढ़ कोष्ठ में करनी चाहिए।१४-१६।

य[6] (प ?) त्याद्योकः[7] प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण क्रमाद्गृह[8]।
सदिग्विंशत्करैर्दैर्घ्यादष्टाविंशतिविस्तरात् ॥१७
[9]शिवाश्रयः[10] शिवाख्यश्च[11] रुद्रहीनः सदोभयोः।
रुद्रद्विगुणितानाहाः पृथूष्णोभिर्विना (?) त्रिभिः ॥१८
स्याद्गृहद्विगुणं दैर्घ्यात्तिथिभिश्चैव[12] विस्तरात्।
सावित्र्यः सालयः कुड्या अन्येषां पृथक्त्रिशांशतः ॥१९

---

१ ख ग °ह्यान्ताः षो°। २ क ङ च °ता हरेखाश्रीमृ°। ख ग °ता हरों खड्गी मृ०। ३ पापयक्ष्मा...स्थिताः क ङ च पुस्तकेषु नास्ति। ४ घ सार्धांशके। ५ क ङ च °ताः। प्रत्यार्धकः। ६ ग यत्पाद्याकः। घ यत्पाद्यो°। ७ ख °त्याद्याकः। ८ क ङ च °ह। दिग्विंशत्कुरवो दैर्घ्या°। ९ घ शिशिराश्रयः। १० क ङ. च. °श्रमः शि°। ११ क. ङ च ०ख्यस्य रुद्रद्विगुणभावहाः। स्याद्गृ°। ख. ग °ख्यस्य रू°। १२ क. ङ च° र्घ्या नृषिभिश्चैव विस्तरात्। कुड्यसू°।

कुड्यपृथूपंजङ्घोच्चात्कुड्यं[1] तु त्रिगुणोच्छ्रयम् ।
कुड्यसूत्रसमा पृथ्वी[2] वीथीभेदादनेकधा ॥२०
भद्रे तुल्यं च वीथीभिर्द्वारवीथी विनाऽग्रस्तः ।
श्रीजयं पृष्ठतो हीनं भद्रोऽयं पार्श्वयोर्विना ॥२१
गर्भपृथुसमा वीथी तदर्धार्धेन वा क्वचित् ।
वीथ्यर्धेनोपयीथ्याद्यमेकद्वित्रिपुरान्वितम् ।
वीथ्यर्धेनोपवीथ्याद्यमेकद्वित्रिपुरान्वितम् ॥२२

अये स्कन्द ! अब मैं संक्षेप में यति आदि के गृहों का वर्णन करूँगा। घर की लम्बाई चौबीस हाथ और चौड़ाई अट्ठाइस हाथ होनी चाहिए। इसकी सम्पूर्ण परिधि बाईस हाथ और दीवार की चौड़ाई नौ हाथ होनी चाहिए। इस प्रकार का माप, शिवाश्रय शिवाख्य, रुद्रहीन और सदोभय नामक मण्डपों के लिए अच्छा होगा। सविता के मण्डप की लम्बाई अट्ठारह हाथ और चौड़ाई पन्द्रह हाथ होनी चाहिए। दीवार की चौड़ाई आठ हाथ होनी चाहिए। ऊँचाई चौड़ाई से दुगुनी होती है। कुड्य सूत्रों के समान पृथ्वी वीथिकाओं के भेद से अनेक भेद वाली हो जाती है। भद्र श्रेणी के मन्दिर में अग्रभाग को छोड़कर तीन ओर मार्ग बनाना चाहिए। श्रीजय श्रेणी के मन्दिर में पृष्ठभाग छोड़कर मार्ग बनाना चाहिए, किन्तु भद्रश्रेणी के मन्दिर के दोनों पार्श्वों में भी मार्ग नहीं बनाना चाहिए। मार्ग उतना चौड़ा होना चाहिए, जितना बड़ा भू-गर्भ हो या भू-गर्भ का आधा होना चाहिए। वहाँ एक, दो या तीन कमरे भी होने चाहिए।१७-२२।

सामान्यान्यगृहं[3] वक्ष्ये सर्वेषां सर्वकामदम् ।
एकंद्वित्रिचतुःशालमष्टशालं यथाक्रमम् ॥२३
एकं याम्ये च सौमास्यं द्वे चेत्पश्चात्पुरोमुखम् ।
चतुःशालं तु सांमुख्यात्तयोरिन्द्रेन्द्रमुक्तयोः[4] ॥२४
शिवास्यमम्बुपास्यैष (?) इन्द्रास्ये यमसूर्यकम् ।
प्राक्सौम्यस्थे च दण्डाख्यं प्राग्याम्ये[5] वातसंज्ञकम् ॥२५

---

१ ख ग °ड्यपिष्टप । २ क ङ च वीथी । ३ घ°न्यानाथगृ° ४ क ङ च° योः ! सिद्धार्थसंख्याम्येव इन्द्राप्येषसमूहकम् । ख ग °योः । सिद्धार्थमभ्युपासे च इन्द्रा° । ५ ख ग यम्योर्वात° । इदमर्धं नास्ति क ङ ।

आप्येन्दौ[1] गृहवल्याख्यं त्रिशूलं तद्विनाधिकृत्[2] ।
पूर्वशालाविहीनं स्यात्सुक्षेत्रं वृद्धिदायकम् ।।२६

अब मैं सामान्य तथा विशेष गृह (मन्दिर आदि) के विषय में कहूँगा, जो सबके लिए वांछित फल को देने वाला है। घर में एक, दो, तीन, चार या आठ कमरे होने चाहिए। चार कमरे वाले घर में एक दक्षिण की ओर, एक उत्तर की ओर, दो पूरब-पश्चिम की ओर मुख वाले कमरे होने चाहिए। वरुण देवता के लिए बनाया जाने वाला मन्दिर उत्तर पूर्व की ओर और सूर्य तथा यम के निमित्त बनाये जाने, वाले मन्दिर पूर्वाभिमुख होने चाहिए। क्षेत्र के उत्तरी तथा पूर्वी भाग में बनाया हुआ मन्दिर 'दण्ड' कहलाता है। पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में बनाये गये मन्दिर को 'वात' कहते हैं। पश्चिम और पश्चिमोत्तर भागों में बनाया गया मन्दिर 'गृहबली' कहलाता है। पश्चिमी भाग में कमरे से रहित मन्दिर को 'त्रिशूल' कहते हैं, जो बनाने वाले के लिए सम्पत्तिदायक होता है। जो मन्दिर पूर्वभाग में कमरे से विहीन हो, उसे सुक्षेत्र कहते हैं और वह वृद्धि करने वाला होता है।२३-२६।

याम्ये हीनं भवेच्छूली[3] त्रिशालं[4] वित्तकृत्परम् ।
पक्षघ्नं[5] जलहीनौकः सुतघ्नं वहुशत्रुकृत् ।।२७
इन्द्रादिक्रमतो वच्मि ध्वजाद्यष्टौ गृहाण्यहम्[6] ।
[7]प्रक्षालानुस्रगावासमग्नौ[8] तस्य महानसम् ।।२८
याम्ये रसक्रिया शय्या धनुः शस्त्राणि रक्षसि ।
धनभुक्त्यम्बुपेशाख्ये[9] सम्यगन्धौ [?] च मारुते ।।२९
सौम्ये धनपशू कुर्यादीशे दोक्षावरालयम्[10] ।
स्वामिहस्तमितं वेश्म विस्तारायामिपिण्डिकम् ।।३०
त्रिगुणं हस्तसंयुक्तं कृत्वाऽष्टांशैर्हृतं तथा ।
तच्छेषोऽयं स्थितस्तेन वायसान्तं ध्वजादिकम् ।।३१
त्रयः पक्षाग्निवेदेषु रसर्षिवसुतो भवेत् ।
सर्वनाशकरं वेश्म मध्ये चान्ते च संस्थितम् ।।३२

---

१ ख ग आदौ च मूलं च वृन्दाख्यं । २ ख तद्वन° । ३ क ङ च वेच्चुल्ली त्रि° । ख° वेच्छन्दी त्रि° । ४ क ङ च °लंक्षति कृ° । घ °लं वृद्धिक° । ५ घ यक्षघ्नं । ६ ख °म् । प्राक्षा° । ७ ख °गा-वास° । ८ ख ° ग्नौ भस्मस्य मक्षये । या° । ९ ख ° शाख्यं सं° । १० ख ग दीर्घाम्वरा° ।

तस्माच्च नवमे भागे शुभकृन्निलयो मतः ।
तन्मध्ये मण्डपः शस्तः समो वा द्विगुणायतः[1] ।।३३

उत्तरी भाग में कमरे से शून्य मन्दिर 'शूली' कहलाता है, उससे धन की वृद्धि होती है। पश्चिमी भाग में कमरे से रहित मन्दिर 'त्रिशाल' कहलाता है। उससे पक्ष का नाश, पुत्र की मृत्यु और बहुत से शत्रुओं की वृद्धि होती है। अब मैं क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में बनाए जाने वाले 'ध्वज' आदि नामों से प्रख्यात आठ प्रकार के गृह-कक्षों का वर्णन करूँगा, जिनका उपयोग कपड़ा धोने, सुवासित करने तथा भोजन बनाने आदि कार्यों में किया जाता है। पाठशाला घर के दक्षिण पूर्व कोने में होनी चाहिए। शयनकक्ष तथा अस्त्रागर भी दक्षिण दिशा में बनाने चाहिए। उत्तम धन अम्बुपेश नामक देवता के नाम से प्रसिद्ध कक्ष में रखना चाहिए। सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्पमाला आदि चीजें पश्चिम कोने में बनाये हुए कमरे में रखनी चाहिए। पशुओं को रहने के लिए उत्तर दिशा में कमरा होना चाहिए। दीक्षा ग्रहण करने का कमरा पूर्व दिशा में होना चाहिए। घर की चौड़ाई तथा लम्बाई का नाप गृहपति के अपने हाथ से होना चाहिए। जितने हाथ नापे, उसको तिगुना करके आठ भागों में बाँट दे, जो शेष बचे, वही माप ध्वज आदि कमरों का समझना चाहिए। वे कमरे चौदह हाथ तक बढ़ाये जा सकते हैं। मैदान के दूसरे, तीसरे, चौथे, छठें, आठवें भाग में या मध्य तथा अन्त में बनाया हुआ घर सर्वनाश का कारण होता है। इसीलिए मैदान के नवम में घर बनाना चाहिए, जो शुभ माना गया है। उसके बीच में मण्डप बनाना चाहिए, जिसकी चौड़ाई घर की चौड़ाई से दूनी या उसके बराबर होती है।२७-३३।

प्रत्यमाप्ये[2] चेन्दुयमे[3] हट्र[4] एव गृहावली ।
एकैकभुवनाख्यानि दिक्ष्वाष्टाक संख्यया[5] ।।३४
ईशाद्यदितिकान्तानि फलान्येषां यथाक्रमम् ।
भयं नारीचलत्वं च जयो वृद्धिः प्रतापकः[6] ।।३५
धर्मः कलिश्च नैस्व्यं च प्राग्द्वारेष्वष्टसु ध्रुवम् ।
दाहोऽसुखं सुहृन्नाशो धननाशो मृतिर्धनम् ।।३६

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °त। प्रागां।२ क. ङ च. °प्ये चन्द्रयामे वा हृद ए°। ३ ख. ग. °न्दुयमि वा हृद ए°। ४ क. ङ. च. हस्त। ५ ख. ग. दिश्यष्टा°। ६ क. ङ. च. प्रजायकः। ख. प्रपातकः।

शिल्पित्वं तनयः स्याच्च याम्यद्वारफलाष्टकम् ।
आयुष्प्राव्राज्यसस्यानि धनशान्त्यर्थसंक्षयः ॥३७
शोषं (ष) भोगं चापत्यं च जलद्वारफलानि च
रोगो मदार्तिमुख्यत्वं चार्थायु[1]: कृशता मतिः ॥३८
मानश्च द्वारतः पूर्वं उत्तरस्यां दिशि क्रमात् ॥३९

उसकी पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी सीमा पर पंक्तिबद्ध कमरे इस प्रकार बनाने चाहिए, जिस प्रकार बाजार में दुकानों की पंक्ति होती है। घर की चारों दिशाओं में ईश से लेकर अदिति तक आठ-आठ भुवन नामक द्वारों के शुभाशुभ फल इस प्रकार होते हैं—पूर्व के आठ द्वारों के फल हैं—भय, नारी का अपहरण, विजय, वृद्धि, प्रताप,धर्म, नास्तिकता और दरिद्रता। दक्षिण के आठ द्वारों के फल हैं—दाह, दुःख, बन्धुनाश, धननाश, मृत्यु, धन, शिल्प, तथा पुत्र की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशावर्ती आठ द्वारो के फल हैं—आयु, अच्छी फसल, धन, शान्ति, अर्थनाश, शोषण, भोग और सन्तान की प्राप्ति। उत्तर दिशा के आठ दरवाजों के फल हैं—रोग, पद, मुख्यता, अर्थ, आयु, कृशता, मति और मान की प्राप्ति।३४-३९।

इत्याग्नेये महापुराणे नगरगृहादिवास्तुप्रतिष्ठाविधिकथनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

नगरादिकवास्तुकथनम्

ईश्वर उवाच—

नगरादिकवास्तुं[2] च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये ।
योजनं योजनार्धं वा तदर्थं स्नानमाश्रयेत् ॥१
अभ्यर्च्य वास्तुनगरं प्राकाराढ्यं तु कारयेत् ।
ईशादि त्रिंशत्पदके पूर्वद्वारं च सूर्यके ॥२
गन्धर्वाभ्यां[3] दक्षिणे[4] स्याद्वारुण्ये पश्चिमे तथा ।
सौम्यद्वारं सौम्यपदे कार्या हट्टास्तु विस्ताराः[5] ॥३

---

१ ख. चाऽऽत्मयु°। २ क. च. °वास्तव्यं व°। ३ क. ङ. च. °न्धर्वौ द°।
४ क. ङ. च. °णे पश्चाद्वा। ५ क. ङ. च. °राः। पतितापिमुखं।

येनेभादिसुखं गच्छेत्कुर्याद्द्वारं तु षट्करम् ।
[1]छिन्नकर्णं विभिन्नं च चन्द्रार्धाभं पुरं न हि ॥४
वज्रसूचीमुखं नेष्टं सकृद्द्वित्रिसमागमम् ।
चापाभं वज्रनागाभं पुरारम्भे हि शान्तिकृत् ॥५

महेश्वर बोले—अब मैं राज्य आदि की वृद्धि के लिए नगर आदि की वास्तु-विधि बतलाऊँगा । नगर बसाने के लिए चार कोस, दो कोस या एक कोस तक का स्थान चुनना चाहिए । वहाँ नगर वास्तुदेव की पूजा करके परकोटा खिचवा देना चाहिए । पूर्व दिशा का फाटक, जिसके साथ ईशादि देवताओं के तीस पद रहेंगे सूर्य पद के सम्मुख रहना चाहिए । दक्षिण दिशा का फाटक गन्धर्व पद में, पश्चिम दिशा का फाटक वरुण पद में और उत्तर दिशा का फाटक सोम पद में रहना चाहिए । (नगर में) बड़े बड़े बाजार होने चाहिए । नगर में छह हाथ चौड़े तथा इतने बड़े बड़े फाटक बनवाने चाहिए कि जिसमें से हाथी आदि भी सरलता से प्रवेश कर जायें । नगर को तितर-बितर नहीं बसाना चाहिए और उसका आकार अर्धचन्द्र जैसा भी नहीं होना चाहिए । ऐसा नगर जिसका मुख्य द्वार वज्रसूची के समान हो और जिसमें दो तीन मार्गों से आवागमन हो सके, अशुभ माना जाता है । जिस नगर का अग्रभाग धनुष् या वज्रनाग के समान हो, वह शान्तिकारक हुआ करता है ।१-५।

प्राच्यं विष्णुहरार्कादीन्नत्वा[2] दद्याद्बलिं बली ।
आग्नेये स्वर्णकर्मारान्पुरस्य विनिवेशयेत् ॥६
दक्षिणे नृत्यवृत्तीनां वेश्यास्त्रीणां गृहाणि च ।
नटानां चक्रिकादीनां[3] कैवर्तादेश्च नैर्ऋते ॥७
रथानामायुधानां च कृपाणानां च वारुणे ।
शौण्डिकाः कर्माधिकृता वायव्ये परिकर्मिणः ॥८
ब्राह्मणा यतयः सिद्धाः पुण्यवन्तश्च[4] चोत्तरे ।
फलाद्यादिविक्रयिण ईशाने च वणिग्जनाः ॥९
पूर्वतश्च बलाध्यक्षा आग्नेये विविधं बलम् ।
स्त्रीणामादेशिनो दक्षे काण्डारान्नैर्ऋते न्यसेत् ॥१०

---

१ छिन्नकर्णं......नहि क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ क. ङ. च. °दीन्हुत्वा ।
३ क. ङ च. ब (बा) ह्लीकादीनां । ४ क. ङ. च. °वणस्तियोत्त° ।

(नगर-निर्माण के पूर्व) उस क्षेत्र में विष्णु, शंकर तथा सूर्य का पूजन तथा नमस्कार करके वलि चढ़ानी चाहिए। नगर के दक्षिण, पूर्व प्रदेश में स्वर्णकारों और लोहारों को बसाना चाहिए। (नगर के) दक्षिण ओर वेश्या आदि नर्तकियों के घर बनवाने चाहिए। दक्षिण-पश्चिम की ओर नट, भाँट, मल्लाह आदि को, रथ आयुध तथा तलवार चलाने वालों को पश्चिम दिशा में, कलवारों, (राज्य के) कार्याधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों को पश्चिमोत्तर की ओर और ब्राह्मणों, यतियों, सिद्धों तथा तपस्वियों को (नगर के) उत्तर की ओर बसाना चाहिए। फल तथा अन्य खाद्य-पदार्थ बेंचने वालों को (नगर के) पूर्वोत्तर में, सेनापतियों को पूर्व दिशा में तथा विविध प्रकार की सेना को दक्षिणपूर्व की ओर बसाना चाहिए। अन्तःपुर के अध्यक्षों को दक्षिण दिशा में और काण्डार नामक (राजकीय कैम्प लगाने वाली) जाति को दक्षिण पश्चिम की ओर बसाना चाहिए।६-१०।

पश्चिमे च महामात्यान्कोषपालांश्च[1] कारुकान्[2]।
उत्तरे दण्डनाथांश्च नायकद्विजसंकुलान्[3] ॥११
पूर्वतः क्षत्रियान्दक्षे वैश्याञ्छूद्रांश्च पश्चिमे।
दिक्षु वैद्यान्वाजिनश्च बलानि च चतुर्दिशम् ॥१२
पूर्वेण चरलिङ्ग्यादीञ्श्मशानादीनि[4] दक्षिणे।
[5]पश्चिमे गोधनाद्यं च कृषिकर्तृस्तथोत्तरे ॥१३
न्यसेन्म्लेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु तथा स्थितिम्[6]।
श्रियं वैश्रवणं द्वारि पूर्वे तौ पश्यतां श्रियम् ॥१४
देवादीनां पश्चिमतः ([7]पूर्वास्यानि गृहाणि हि।
पूर्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननाम्[8] (?) ॥१५
नाकेशविष्ण्वादिधामानि रक्षार्थं नगरस्य च)।
निर्दैवतं तु नगरग्रामदुर्गगृहादिकम् ॥१६
भुज्यते तत्पिशाचाद्यै रोगाद्यैः परिभूयते।
नगरादि सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१७

---

१ क. ङ. च. °हाभागान्को°। २ क. ङ. च. कारका°। ३ क. ङ. च. °जसङ्कुणान्। ४ क. ङ. चः °लिङ्गादी°। ५ पश्चिमे.......तथोत्तरे नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ६ क. ङ. च. स्थितम्। ७ पूर्वास्यानि........नगरस्य च. क. ङ. च. पुस्तकेषु त्रुटितम्। ८ ग. °त्तरेण वा। ना°।

प्रधान सचिवों, कोश-रक्षकों तथा शिल्पियों को पश्चिम दिशा में, दण्डाध्यक्षों, सरदारों तथा ब्राह्मणों को उत्तर दिशा में, क्षत्रियों को पूर्व दिशा में, वैश्यों को दक्षिण दिशा में और शूद्रों को पश्चिम दिशा में बसाना चाहिए। वैद्यों, घुड़सवारों तथा (अन्य) सिपाहियों को (नगर) के चारों तरफ बसाना चाहिए। गुप्तचरों को पूर्व दिशा में तथा श्मशान और गोशाला का निर्माण क्रमशः दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में करना चाहिए। किसानों को उत्तर दिशा में और म्लेच्छों को (चारों) कोने में बसाना चाहिये। यही स्थिति गाँवों के निर्माण में भी रहती है। नगर के पूर्वी फाटक के दोनों ओर लक्ष्मी तथा कुबेर की मूर्तियों को आमने-सामने स्थापित करना चाहिये। नगर की रक्षा के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की मूर्तियों की (भी) स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि जिस नगर या गाँव या किले या घर में देवताओं की मूर्तियाँ नहीं रहती हैं वहाँ पिशाच आदि निवास करने लगते हैं और वहाँ पर रोग आदि का आक्रमण होता रहता है। इसके विपरीत जो नगर आदि देवताओं (की प्रतिमाओं) से युक्त होते हैं, वे विजय, भोगविलास और मोक्षदायक हुआ करते हैं।११-१७।

पूर्वायां (र्वस्यां) श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां वै महानसम्।
शयनं दक्षिणस्यां तु नैर्ऋत्यामायुधाश्रयम् ।।१८
भोजनं पश्चिमायां तु वायव्यां धान्यसंग्रहः।
उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ।।१९
चतुःशालं त्रिशालं वा द्विशालं चैकशालकम्।
चतुःशालगृहाणां तु शालालिन्दकभेदतः[1] ।।२०
शतद्वयं तु जायन्ते पञ्चाशत्पञ्च तेष्वपि।
त्रिशालानि तु चत्वारि द्विशालानि तु पञ्चधा ।।२१
एकशालानि चत्वारि एकालिन्दानि वच्मि च।
अष्टाविंशदलिन्दानि गृहाणि नगराणि च ।।२२
चतुर्भिः सप्तभिश्चैव पञ्चपञ्चाशदेव तु।
षडलिन्दानि विंशैव अष्टाभिर्विंश (?) एव हि ।।२३
अष्टालिन्दं भवेदेवं नगरादौ गृहाणि हि ।।२४

राजमहल में पूर्व की ओर कोशागार, दक्षिण पूर्व की ओर पाकशाला, दक्षिण की ओर शयनकक्ष, दक्षिण-पश्चिम की ओर अस्त्रागार, पश्चिम की

१ क. ङ. च. °लानिनवभे°।

ओर भोजनालय पश्चिमोत्तर की ओर धान्यागार, उत्तर की ओर द्रव्यागार, तथा पूर्वोत्तर की ओर देवालय का निर्माण करना चाहिए। राजमहल को चतुःशाल, (एक-दूसरे के सामने स्थित चार घरों वाला महल) त्रिशाल, द्विशाल या एक शाल बनाना चाहिए। शाला तथा अलिन्दक (बरामदा) आदि के भेद से चतुः-शाल भवन दो सौ प्रकार के हो जाते हैं और उनमें से प्रत्येक के पचपन-पचपन भेद बतलाये गये हैं। त्रिशाल भवन के चार भेद, द्विशाल के पाँच भेद और एकशाल के चार भेद होते हैं। गृह तथा नगर में अलिन्दों (बरामदा) की संख्या में अट्ठाईस, चार, सात, पचपन, छः, बीस, या आठ हो सकती है।१८-२४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नगरादि वास्तुकथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६

———

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

स्वायंभुवसर्गकथनम्

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये भुवनकोषं च पृथ्वीद्वीपादिलक्षणम्।
अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥१
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च।
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ॥२
प्रियव्रतसुताः ख्याताः सप्तद्वीपान्ददौ पिता।
जम्बूद्वीपमथाग्नीध्रे प्लक्षं मेधातिथेर्ददौ ॥३

अग्निदेव बोले—अब मैं भुवनकोश तथा पृथ्वी के द्वीप आदि का लक्षण बतलाऊँगा। महाराज प्रियव्रत के दस पुत्र थे—अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन, ज्योतिष्मान् और सत्य। इनमें से पिता ने सात को सात द्वीप दे दिया। अग्नीध्र को जम्बूद्वीप और मेधातिथि को प्लक्षद्वीप दिया गया।१-३।

वपुष्मते शाल्मलं च ज्योतिष्मते कुशाह्वयम् ।
क्रौञ्चद्वीपं द्युतिमते शाकं भव्याय दत्तवान् ॥४
पुष्करं सवनायादादग्नीध्रोऽदात्सुते[1] शतम् ।
जम्बूद्वीपं पिता लक्षं नाभेर्दत्तं[2] हिमाह्वयम् ॥५
हेमकूटं किंपुरुषे हरिवर्षाय नैषधम् ।
इलावृते मेरुमध्यं रम्ये नीलाचलाश्रितम् ॥६
[3]हिरण्वते श्वेतवर्षं कुरूंस्तु कुरवे ददौ ।
भद्राश्वाय च भद्राश्वं केतुमालाय पश्चिमम् ॥७
मेरोः प्रियव्रतः पुत्रानभिषिच्य ययौ वनम् ।
शालग्रामे[4] तपस्तप्त्वा ययौ विष्ण्वालयं[5] नृपः ॥८

वपुष्मान् को शाल्मल, ज्योतिष्मान् कुशाह्वय, द्युतिमान् को क्रौञ्च, भव्य को शाक और सवन को पुष्कर द्वीप दिये गए। तत्पश्चात् अग्नीध्र ने अपने पुत्रों में द्वीपों का विभाजन इस प्रकार से किया। पिता ने लक्ष नामक पुत्र को जम्बूद्वीप, नाभि को हिमाह्वय, किंपुरुष को हेमकूट, हरिवर्ष को नैषध, इलावृत को मेरुमध्य, रम्य को नीलाचल, हिरण्वान् को श्वेतवर्ष, कुरु को कुरुदेश, रद्राष्व को भद्राश्व और केतुमाल को मेरु का पश्चिम प्रदेश दे दिया। महाराज प्रियव्रत पुत्रों का राज्याभिषेक करके बन को चले गये। महाराज प्रियव्रत शालिग्राम (नामक वन) में तपस्या करके स्वर्गलोक को चले गये।४-८।

यानि किं पुरुषाद्यानि ह्यष्ट वर्षाणि सत्तम ।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥६
छरामृत्युभयं नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम् ।
नाधमं मध्यमं तुल्या हिमाद्देशात्त नाभितः ॥१२
ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।
ऋषभो दत्तश्रीः पुत्रे शालग्रामे हरिं गतः ।११
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत् ।
भरतो दत्तलक्ष्मीकः शालग्रामे हरिं गतः ॥१२

---

१ ख. °ग्नीध्रेऽदा° । २ क. ङ. च. नाभिदत्तं । ३ हिरण्वते ददौ । नास्ति ....क. ङ. च. पुस्तकेषु । ४ क. ङ. च. शालाग्रामे । ५ ख. ग. घ. विष्णोर्लयं ।

अये पुरुषश्रेष्ठ! किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष (देश) बताये गये हैं, उनमें यह स्वाभाविक सिद्धि है कि वहाँ बिना प्रयत्न के हीं सुख प्राप्त हो जाता है। वहाँ न तो वृद्धावस्था का भय है न मृत्यु का भय है, और वहाँ न तो धर्म अधर्म है और न युग इत्यादि ही। वहाँ न तो कोई अधर्म कोटि का है और न कोई मध्यम कोटि का हैं, अपितु सभी तुल्य हैं। महाराज नाभि ने मेरुदेवी से ऋषभ नामक पुत्र प्राप्त किया। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई। (राज्य का) ऐश्वर्य अपने पुत्र (भरत) को सौंपकर ऋषभ ने शालग्राम वन में तपस्या करके विष्णुलोक को प्राप्त कर लिया। भरत के नाम पर (इस देश का नाम) भारतवर्ष प्रचलित हुआ है। (कालान्तर) में भरत से सुमति नामक पुत्र का का जन्म हुआ। भरत ने (भी) पुत्र को राज्यलक्ष्मी देकर शालग्राम वन में तपस्या करके भगवान् विष्णु को प्राप्त कर लिया।९-१२।

स योगी [1]योगप्रस्थाने[2] वक्ष्ये तच्चरितं पुनः।
सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ॥१३
परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः।
([3]प्रतीहारात्प्रतीहर्ता प्रतिहर्त्तुर्भुवस्ततः ॥१४
उद्गीतोऽथ च प्रस्तारो विभुः प्रस्तारतः सुतः।)
पृथुश्चैव ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः[4] सुतः ॥१५
[5]नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ॥१६

सुमति योगी था। उसके चरित्र का वर्णन मैं योग-प्रस्थान के प्रसंग में पुनः करूँगा। सुमति से तेजस् और तेजस् से इन्द्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई। इन्द्रद्युम्न से परमेष्ठी और परमेष्ठी से प्रतीहार का जन्म हुआ जिससे वंश-परम्परा चल पड़ी। प्रतीहार से प्रतीहर्ता, प्रतीहर्ता से भुव, भुव से उद्गीथ, उद्गीथ से प्रस्तार और प्रस्तार से विभु का जन्म हुआ। विभु से पृथु, पृथु से नक्त और नक्त से गय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। गय का पुत्र हुआ नर और नर का पुत्र विराट् हुआ। विराट् का पुत्र महावीर्य और उसका पुत्र धीमान् हुआ।१३-१६।

---

१ क. ङ. च. °ग विस्तारे व°। २ घ. °प्रस्तावे व°। ३ प्रतीहारात्.......... सुतः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ४ ङ. यशः। च. शयः। ५ ङ. नगो। च. नवो।

महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्यस्तस्य[1] चाऽऽत्मजः ।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रज (जा) स्तस्याप्यभूत्सुतः ।१७
सत्यजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने ।
विश्वज्योतिः प्रधानास्ते भारतं तैर्विवर्धितम् ।।१८
कृतत्रेतादिसर्गेण सर्गः स्यायम्भुवः स्मृतः ।।१९

धीमान् का पुत्र महान्त और महान्त से मनस्य नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। मनस्य से त्वष्टा, त्वष्टा से विरजस्, विरजस् से रजस् और उससे सत्यजित् की उत्पत्ति हुई। अये मुनिराज ! सत्यजित् के सौ पुत्र थे जिनमें ज्येष्ठपुत्र था विश्वज्योति। इन्हीं सब भाइयों से सतयुग, त्रेता आदि युगों में भारतवर्ष की वृद्धि होती रही। उनकी इस सृष्टि को ही स्वायम्भुव सृष्टि कहते हैं ।१७-१९।

इत्यादि महापुराण आग्नेये स्वायम्भुवसर्गकथनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।१०७

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशकथनम्

अग्निरुवाच—

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो महान् ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ।।१
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम् ।।२
जम्बूद्वीपो द्वीपमध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ।
चतुरशीतिसाहस्रो भूयिष्ठः षोडशाद्रिराट् ।।३
द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तारात्षोडशाधः सहस्रवान् ।
भूयस्तस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ।।४
हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ।।५
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथाऽपरे ।
सहस्रद्वितयोच्छ्रास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।।६

---

1. क. ङ. च. न्मनः °प्राप्तस्य ।

अग्निदेवबोले—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सातों महाद्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। ये सातों सागर—लवण, ईख, मद्य, घी, दही, दूध और जल के सागर हैं। जम्बूद्वीप इन सब द्वीपों के बीच में पड़ता है। उसके मध्य में चौरासी हजार योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है जो सोलह पर्वतों का राजा है। उसका शिखर बत्तीस हजार योजन चौड़ा है और उसकी नींव एक हजार योजन गहराई में है। वह पर्वत कर्णिका के आकार में स्थित है। उसके दक्षिण की ओर हिमवान्, हेमकूट, तथा निषध पर्वत स्थित हैं और उत्तर की ओर नील, श्वेत, तथा श्रृंगी पर्वत हैं। इन पर्वतों को वर्ष पर्वत कहते हैं। उनमें दो पर्वत बीच में एक-एक लाख लम्बे हैं और अन्य पर्वत उनसे दस-दस हजार योजन कम हैं। उनकी ऊँचाई दो हजार योजन है और चौड़ाई भी उतनी ही है।१-६।

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किं पुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं[1] तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥७
([2]रम्यकं चोत्तरे वर्षं तथैवान्यद्धिरण्मयम्।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥८
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां मुनिसत्तम।
इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ॥९
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतम्।
इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः ॥१०
विष्कम्भा[3] रचिता मेरोर्योजनायुतविस्तृताः ॥१०½

अये ब्राह्मण! वर्षों में पहला भारतवर्ष है, दूसरा किंपुरुष और तीसरा हरिवर्ष। इसी तरह अन्य वर्षों को भी समझना चाहिए। ये वर्ष मेरु पर्वत से दक्षिण की ओर रम्यक, हिरण्य तथा उत्तर कुरुवर्ष स्थित हैं। अये मुनिश्रेष्ठ! इनमें प्रत्येक का प्रमाण (माप) नौ-नौ हजार योजन है। इलावृत वर्ष सबके बीच में है जो अत्यन्त ऊँचे स्वर्ण निर्मित मेरु पर्वत के चारों ओर नौ हजार योजन में फैला हुआ है। अये महात्मन्! वहाँ दश-दश हजार योजन में फैले हुए चार पर्वत और हैं जो मेरु पर्वत की अर्गला के रूप में फैले हुए हैं।७-१०½।

---

१. क. ङ. च. °-मनः प्राप्तस्य । २ रम्यकं.........पर्वतावुभौ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ ख. ग. पुस्तकयोरिदमर्धमत्र नास्ति किं चोत्तर-श्लोक पूर्वार्धोत्तरं विद्यते।

पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ॥११
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ॥१२
एकादशशतायामाः पादपाः गिरिकेतवः ।
जम्बूद्वीपेति संज्ञास्यात् फलं जम्ब्वा गजोपमम् ॥१३
जम्बूनदी रसेनास्यास्त्विदं जाम्बूनदं परम् ।
भद्राश्वः[1] पूर्वतो मेरोः केतुमालस्तु पश्चिमे ॥१४

सुमेरु पर्वत के पूर्व की ओर मन्दराचल, दक्षिण की ओर गन्धमादन, पश्चिम की ओर विपुल और उत्तर की ओर सुपार्श्व पर्वत विद्यमान हैं। उन पर्वतों के ऊपर कदम्ब, जामुन, पीपल तथा वट से वृक्ष ग्यारह-ग्यारह सौ योजन लम्बे होने के कारण (सुमेरु) पर्वत की पताका से प्रतीत होते रहते है। उसी जामुन के वृक्ष से ही इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ गया है। उस जामुन का फल हाथी के बराबर होता है। उस (फल) के रस से निकलकर बहने वाली नदी जम्बूनदी कहलाती है और जम्बूनदी से उत्पन्न होने के कारण ही इसे (सोने को) जाम्बूनद कहा जाता है। मेरु से पूर्व की ओर भद्राश्व और पश्चिम की ओर केतुमाल नामक पर्वत हैं।११-१४।

वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः ।
वैभ्राजं पश्चिमे सौम्ये नन्दनं च सरांस्यथ ॥१५
अरुणोदं महाभद्रं[2] शीतोदं मानसं तथा ।
सिताम्भश्चक्रमुञ्जाद्याः पूर्वतः केशराचलाः[3] ॥१६
दक्षिणेऽद्रेस्त्रिकूटाद्याः [4]शिखिवास-[5]मुखा[6] जले ।
शङ्खकूटदयः सौम्ये मेरौ च ब्रह्मणः पुरी ॥
चतुर्दश सहस्राणि योजनानां च दिक्षु च ।
इन्द्रादिलोकपालानां समन्ताद्ब्रह्मणः पुरः ॥१८
विष्णुपादात्प्लावयित्वा चन्द्रं स्वर्गात्पतत्यपि[7] ।
पूर्वेण शीता भद्राश्वाच्छैलाच्छैलाद्गताऽर्णवम्[8] ॥१९

---

१ सुपार्श्वैरिति पाठान्तरम्। २ घ. °द्रं संशितोदं समानसम्। शिता° ।
३ ख. शिशिराचलाः। ४ क. ङ. घ. शिशिवा°। ५ ग°। बासुमु°। ६ ग. °खानले। ७ घ.° तन्त्यपि। ८ ग. °द्राश्वं शैला°।

तथैवालकनन्दाऽपि दक्षिणेनैव भारतम् ।
प्रयाति सागरं कृत्वा सप्तभेदाऽथ पश्चिमम् ॥२०
अब्धिं च चक्षुः सौम्याऽब्धिं भद्रोत्तरकुरूनपि ।
आनीलनिषधा यामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥२१

मेरु के पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन वन है । वहाँ पर बहुत से सरोवर भी हैं, जिनके नाम हैं— अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मानस और सिताम्भ । मेरु पर्वत के पूर्व की ओर चक्र और मुञ्ज आदि केशराचल, दक्षिण की ओर त्रिकूट आदि, पश्चिम की ओर शिखिवास आदि और उत्तर की ओर शंखकूट आदि पर्वत विद्यमान हैं । मेरु के ऊपर की नगरी तथा उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों का निवास है, जो सभी दिशाओं में चौदह हजार योजन में फैले हुए हैं । (आकाश गंगा की चौथी धारा) विष्णु के चरण से निकली है । वह स्वर्ग से गिरकर चन्द्रलोक को जलप्लावित करती हुई मेरु के पूर्व भद्राश्व नामक पर्वत से दूसरे पर्वत पर होती हुई सागर में गिर जाती है । उसी तरह अलकनन्दा भी मेरु के दक्षिण से भारत में आकर और सात धाराओं में विभक्त होकर समुद्र में मिल जाती है । पश्चिम में वह अब्धि, चक्षुष्, सौम्याब्धि, भद्र, उत्तरकुरु, आनील तथा निषद देशों से होकर जाती है । माल्यवान् तथा गन्धमादन पर्वत क्रमशः आनील तथा निषध देश के बराबर फैले हुए हैं ।१५-२१।

तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ॥२२
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलवाह्यतः ।
जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥२३
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
गन्धमादनकैलासौ[1] पूर्ववच्चाऽऽयतावुभौ ॥२४
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।
निषधः पारियात्रश्च[2] मर्यादापर्वतावुभौ ॥२५
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ ।
त्रिशृङ्गो[3] रुधिरश्चैव उत्तरौ वर्षपर्वतौ ॥२६

---

१. ग. °र्वपश्चाय° । २ ख. ग. °रिभद्रश्च । ३ त्रिशृङ्गो........वर्षपर्वतौ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु ।

उन दोनों के बीच में मेरु पर्वत कर्णिका के ही समान खड़ा हुआ है। मेरु रूपी कर्णिका से युक्त यह लोक ही पद्म है। इसके पत्र हैं—भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा उत्तरकुरुदेश। मर्यादा पर्वतों के बाहर तक उसकी सीमा है। मर्यादा पर्वत दो हैं—जठर तथा देवकूट। ये दोनों पर्वत दक्षिण से उत्तर की ओर आनील तथा निषध देशों को पार कर गये हैं। गन्धमादन तथा कैलास पर्वत का विस्तार भी इन्हीं के बराबर है। एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैले हुए निषध तथा पारियात्र नामक दो पर्वत अस्सी योजन तक फैले हुए हैं। मेरु को पश्चिम से पूर्व तक त्रिशृङ्ग और रुधिर नामक दो पर्वत खड़े हुए हैं।२२-२६।

पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ[1]।
जाठराद्याश्च मर्यादाशैलामेरोश्चतुर्दिशम् ॥२७
केशरादिषु[2] याः श्रेण्यस्तासु सन्ति पुराणि हि।
लक्ष्मीविष्ण्वाग्निसूर्यादिदेवानां मुनिसत्तम ॥२८
भौमानां स्वर्गधर्माणां[3] न पापास्तत्र यान्ति च।
भद्राश्वेऽस्ति हयग्रीवो वराहः केतुमालके ॥२९
भारते कूर्मरूपी च मत्स्यरूपः कुरुष्वपि।
विश्वरूपेण सर्वत्र पूज्यते भगवान्हरिः[4] ॥३०
([5]किं पुरुषाद्यष्टसु क्षुद्भीतिशोकादिकं[6] न च।
चतुर्विंशति साहस्रं प्रजा जीवन्त्यनामयाः) ॥३१
कृतादिकल्पना नास्ति भौमान्यम्भांसि नाम्बुदाः।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥३२
नद्यश्च शतशस्तेभ्यस्तीर्थभूताः प्रजज्ञिरे।
भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वच्मि ते ॥३३

उनसे उत्तर की ओर दो वर्ष पर्वत (और) हैं, जो पूर्वीय और पश्चिमीय सागरों के बीच फैले हुए हैं। मेरु पर्वत के चारों ओर जाठर आदि मर्यादा-पर्वत फैले हुए हैं। अये मुनिश्रेष्ठ! केशर आदि पर्वतों के शिखरों पर लक्ष्मी,

---

१ ग. च. °तौ। जठ°। २ घ. °षु या द्रोण्य°। ३ क. ङ. घ. मुद्गधर्माणां। ४ ख. ग. °रिः। भूषु किं° पुरुषाद्य सु क्षु°। ५ किं पुरुषा......... जीवन्त्यनामयाः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ६ ख. ग. °द्धीशो°।

विष्णु, अग्नि तथा सूर्य आदि देवता निवास करते हैं। पृथ्वी पर स्वर्ग के धर्म का आचरण करने वाले निवासियों में जो पापकर्म करने वाले हैं, वह यहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं। भगवान् हरि की पूजा हयग्रीव के रूप में होती है। केतुमाल देश में वराह रूप में, भारत देश में कूर्म रूप में, कुरु देश में मत्स्य-रूप में तथा अन्य सब देशों में विष्णु की अर्चना विश्वरूप में की जाती है। किन्नर आदि आठ देशों में भूख, भय तथा शोक आदि (का अनुभव) नहीं हुआ करता है। वहाँ चौबीस हजार प्रजायें आरोग्यपूर्ण जीवन बिता रही हैं। वहाँ कृतयुग आदि के रूप में युगों की कल्पना नहीं हुआ करती है। वहाँ जल, भूमि से ही उत्पन्न हो जाता है, (केवल) मेघ ही जल प्रदान करने वाले नहीं हैं। उपर्युक्त वर्षों में (महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारि-यात्र नाम के) सात-सात कुल पर्वत हैं। उनसे सैकड़ों नदियाँ निकली हैं जो पवित्रता के कारण) तीर्थों के समान हैं। अब मैं तुमसे उन तीर्थों का वर्णन करूँगा जो भारतवर्ष में (विद्यमान) हैं।२७-३३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भुवनकोशकथनं नाम अष्टाधिकशततमोऽध्यायः।१०८

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थमाहात्म्यम्

[1]अग्निरुवाच—

माहात्म्यं सर्वतीर्थानां वक्ष्ये यद्भुक्तिमुक्तिदम्।
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।।१
विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।
प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।।२
निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत्।
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यभिगम्य च।।३
अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते।
तीर्थाभिगमने तत्स्याद्यद्यज्ञेनाऽऽप्यते फलम्।।४

---

१ नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

अग्निदेव बोले—(अब) मैं सभी तीर्थों के उस माहात्म्य को बतलाऊँगा जो (इस लोक में) भोग और (परलोक) में मोक्ष प्रदान करने वाला है। तीर्थों का फल उसी को प्राप्त होता है जिसके हाथ, पांव तथा मन (आदि इन्द्रियाँ) सुसंयत हैं और जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् है। वह तीर्थयात्री सभी यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है, जो दान आदि नहीं लेता है और स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा निष्पाप हुआ करता है। जिसने कभी तीन रात उपवास नहीं किया, तीर्थयात्रा नहीं की तथा सुवर्ण और गायों का दान नहीं किया वह निश्चय ही (दूसरे जन्म में) दरिद्र होता है। (यही नहीं) तीर्थयात्रा से वही फल प्राप्त होता है, जो साधारणतया यज्ञों से प्राप्त होता है।१-४।

पुष्करं परमं तीर्थं सांनिध्यं हि त्रिसंध्यकम्।
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे ॥५
ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छवः।
देवाः प्राप्ताः सिद्धिमत्र स्नाताः पितृसुरार्चकाः ॥६
अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते।
कार्तिक्यामन्नदानाच्च निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् ॥७
पुष्करे दुष्करं गन्तुं पुष्करे दुष्करं तपः।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम् ॥८

अये ब्राह्मण देव ! पुष्कर तीर्थ सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है। (कम से कम) तीन सन्ध्याओं तक उसका सान्निध्य प्राप्त करना चाहिए; क्योंकि पुष्करतीर्थ में दश करोड़ सहस्र तीर्थ रहा करते हैं। वहाँ सभी देवताओं के साथ ब्रह्मा तो रहते ही हैं, सभी प्रकार की इच्छा करने वाले मुनिजन भी वहाँ निवास करते हैं। पुष्कर तीर्थ में स्नान करके पितरों और देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं ने सिद्धि प्राप्त की थी। इसमें स्नान करने वाले (प्राणी) अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करके ब्रह्मलोक में पहुँच जाते हैं। वहाँ कार्तिक के महीने में अन्नदान करने वाला व्यक्ति भी पवित्र होकर ब्रह्मलोक का अधिकारी हो जाता है। पुष्कर की यात्रा तो कठिन है ही, वहाँ तपस्या करना, दान देना तथा निवास करना और भी कठिन है।५-८।

तत्र वासाज्जपाच्छ्राद्धात्कुलानां शतमुद्धरेत् ।
जम्बूमार्गं च तत्रैव तीर्थं[1] तण्डुलिकाश्रमम् ॥९
कण्वाश्रमं[2] कोटितीर्थं नर्मदा चार्बुदं परम् ।
तीर्थं चर्मण्वती सिन्धुः सोमनाथः प्रभासकम् ॥१०
सरस्वत्यब्धिसङ्गश्च सागरं तीर्थमुत्तमम् ।
पिण्डारकं द्वारका च गोमती सर्वसिद्धिदा ॥११
भूमितीर्थं[3] ब्रह्मतुङ्गं तीर्थं पञ्चनदं परम् ।
भीमतीर्थं गिरीन्द्रश्च[4] देविका पापनाशिनी ॥१२
तीर्थं विनशनं[5] पुण्यं नागोद्भेदमघार्दनम् ।
तीर्थं कुमारकोटिश्च सर्वदानीरितानि च ॥१३

वहाँ पर निवास करने से, जप करने से और श्राद्ध करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। वहीं जम्बूमार्ग नामक तीर्थ है। वहाँ ये तीर्थ भी हैं—तण्डुलिकाश्रम, कण्वाश्रम, कोटितीर्थ, नर्मदातीर्थ, श्रेष्ठ अर्बुद तीर्थ, चर्मण्वती, सिन्धु, सोमनाथ, प्रभास, सरस्वती और समुद्र का संगम, सागर तीर्थ, पिण्डारक, द्वारका, सकलसिद्धिदायिनी गोमती, भूमितीर्थ, ब्रह्मतुङ्ग, श्रेष्ठ पञ्चनद तीर्थ, भीमतीर्थ, गिरीन्द्र, पापनाशिनी देविका, पवित्र विनशन तीर्थ, पापों का नाश करने वाला नागोद्भेद तीर्थ और कुमार कोटि। ये सभी तीर्थ (उत्तर फलों का) दान करने वाले हैं।९-१३।

कुरुक्षेत्रे[6] गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
य एवं सततं ब्रूयात्सोऽमलः प्राप्नुयाद्दिवम् ॥१४
तत्र विष्णवादयो देवास्तत्र वासाद्धरिं व्रजेत् ।
सरस्वत्यां संनिहित्यां स्नानकृद्ब्रह्मलोकभाक् ॥१५
पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे[7] नयन्ति परमां गतिम् ।
धर्मतीर्थं सुवर्णाख्यं गङ्गाद्वारमनुत्तमम् ॥१६
तीर्थं कनखलं पुण्यं भद्रकर्णह्रदं तथा ।
गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्तमघार्दनम् ॥१७

---

१ ख. ग. °र्थं मण्डलि° । २ ख. ग. कण्ठाश्रमं । घ. कर्णाश्रमं । ३ ख. ग. कृमितीर्थं । ४ घ. °रीन्द्रं च दे° । ५ ग. विनाश° । ६ ग. °क्षेत्रे ग° ।
७ ख. ग. °त्रे ते यान्ति ।

भृगुतुङ्गं च कुब्जाभ्रं गङ्गोद्भेदमघान्तकम् ।
वाराणसी वरं तीर्थमविमुक्तमनुत्तमम् ।।१८
कपालमोचनं तीर्थं तीर्थराजं प्रयागकम् ।
गोमतीगङ्गयोः सङ्गं गङ्गा सर्वत्र नाकदा ।।१९

जो निरन्तर यह कहता रहता है कि 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा', मैं कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा'—वह पवित्र होकर स्वर्ग चला जाता है। कुरुक्षेत्र में विष्णु आदि देवता रहते हैं अतः वहाँ निवास करने वाला विष्णु के पास पहुँच जाता है। जो मनुष्य सरस्वती तीर्थ में जाकर स्नान करता है, वह ब्रह्मलोक का भागी होता है। कुरुक्षेत्र के धूलिकण भी मनुष्य को सद्गति प्राप्त करा दिया करते हैं। इसी तरह धर्मतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, परमोत्तम गङ्गाद्वार (हरिद्वार), कनखलतीर्थ, पवित्र भद्रकर्ण सरोवर, गंगा-सरस्वती का सङ्गम, ब्रह्मावर्त अघार्दन, भृगुतुङ्ग, कुब्जाभ्र, गङ्गोद्भेद, अघान्तक, वाराणसी, सर्वश्रेष्ठ अविमुक्त तीर्थ, कपालमोचन तीर्थ, तीर्थराज प्रयाग, गोमती-गङ्गा का सङ्गम तथा गङ्गा सर्वत्र स्वर्ग प्रदान करने वाली हैं।१४-१९।

तीर्थं[१] राजगृहं पुण्यं शालग्राममघान्तकम् ।
वटेशं वामनं तीर्थं कालिकासङ्गमुत्तमम् ।।२२
लौहित्यं करतोयाख्यं शोणं चाथर्षभं परम् ।
श्रीपर्वतं [२]कोल्लगिरिः[३] सह्याद्रिर्मलयो गिरिः ।।२१
गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी ,वरदा नदी ।
तापी पयोष्णी रेवा च दण्डकारण्यमुत्तमम् ।।२२
कालंजरं मुञ्जवटं तीर्थं सूर्पारकं परम् ।
मन्दाकिनी चित्रकूटं शृङ्गवेरपुरं परम् ।।२३
अवन्ती परमं तीर्थमयोध्या पापनाशिनी ।
नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्) ।।२४

पवित्र राजगृह तीर्थ, पापनाशक शालग्राम तीर्थ, वटेश तीर्थ, वामन तीर्थ, उत्तम कालिका संग तीर्थ, लौहित्य तीर्थ, करतोया, शोण, उत्कृष्ट ऋषभ तीर्थ, श्रीपर्वत, कोल्लगिरि, सह्यपर्वत, मलयगिरि, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी, वरदा नदी, तापी, पयोष्णी, रेवा, उत्कृष्ट दण्डकारण्य, कालंजर, मुञ्जवट

---

१ ख. तीर्थं रा°। २ घ. कोल्वगिरि°। ३ क. ङ. च. °रिः सिंहाद्रि°।

तीर्थ, श्रेष्ठ सूर्पारक तीर्थ, मन्दाकिनी, चित्रकूट, शृंगवेरपुर, अवन्तिकानगरी, पापनाशिनी अयोध्या और नैमिषारण्य—ये सभी तीर्थ (इस लोक में) भोग और (परलोक में) मोक्ष प्रदान करने वाले हैं।२०-२४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः।१०९

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच—

गङ्गामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा।
येषां मध्ये याति गङ्गा ते देशाः पावना वराः ॥१
गतिर्गङ्गा तु भूतानां गतिमन्वेषतां[1] सदा।
गङ्गा तारयते[2] चोभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ॥२
चान्द्रायणसहस्राच्च गङ्गाम्भः पानमुत्तमम्।
गङ्गां मासं तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं[3] लभेत् ॥३
सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी।
यावदस्थि च गङ्गायां तावत्स्वर्गे स तिष्ठति ॥४
अन्धादयस्तु तां सेव्य देवैर्गच्छन्ति तुल्यताम्।
गङ्गातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽघहाऽर्कवत् ॥५
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेतिकीर्तनात्।
पुनाति पुण्यपुरुषाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥६

अग्निदेव ने कहा—अब मैं गङ्गा-माहात्म्य का वर्णन करूँगा। भोग और मोक्ष को देने वाली गङ्गाजी (सदैव) सेवनीय हैं। जिन-जिन देशों से होकर गंगाजी बहती हैं, वे देश पवित्र और श्रेष्ठ हैं। (सद्) गति चाहने वाले प्राणियों को गङ्गाजी सद्गति प्रदान किया करती हैं। नित्य सेवन करने से

---

१ क. ङ. च. °तिर्गतिमतां°। २ क. ङ. च. पावयते। ३ क. ङ. च. °वंशस्य फ°।

गङ्गा जो दोनों कुलों (मातृकुल तथा पितृकुल) को तार देती हैं। गङ्गाजल पीना सहस्रों चान्द्रायण व्रतों से उत्तम हैं। एक मास तक गङ्गाजी की सेवा करने से सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है। वह देवी (गङ्गा) समस्त पापों का नाश करने वाली तथा स्वर्गलोक को देने वाली है। जब तक मनुष्य की अस्थि (मात्र) गङ्गा में रहती है, तब तक वह स्वर्ग में निवास करता रहता है। अन्धे आदि (विकलांग) भी गङ्गा का सेवन करने से देवताओं की समता प्राप्त कर लेते हैं। जो व्यक्ति गङ्गातीर्थ से मिट्टी खोदकर ले जाता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और वह सूर्य के समान (तेजस्वी) हो जाता है। गङ्गा के दर्शन, स्पर्श, पान तथा नाम के संकीर्तन से मनुष्य सैंकड़ो-हजारों पूर्वजों को पवित्र कर देता है। १-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम
दशाधिकशततमोऽध्यायः। ११०

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयाग-माहात्म्यम्

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम्।
प्रयागे ब्रह्मविष्ण्वाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः ॥१
सरितः सागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी ॥२
वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता।
तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥३
'गङ्गायमुनयोर्मध्यं' पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः ॥४
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतररावुभौ।
तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ॥५

१ क. ङ. च. °र्मध्ये पृ°।

अग्निदेव बोले— अब मैं उस प्रयागराज का माहात्म्य बतलाऊँगा जो भोग और मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाला है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा श्रेष्ठमुनि जन प्रयाग में ही निवास करते हैं। वहाँ (सभी) नदियाँ, समुद्र, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरायें, तथा तीन अग्निकुण्ड हैं, जिनके बीच में जह्नु-कन्या (गंगाजी) बहती रहती हैं। वे अत्यन्त वेगवती हैं तथा सभी तीर्थों के आगे रहने वाली हैं। वहाँ तीनों लोकों में प्रसिद्ध सूर्यपुत्री यमुना भी हैं। गङ्गा और यमुना का मध्य भाग पृथ्वी देवी की जंघा है तथा इन दोनों नदियों के बीच में स्थित प्रयाग योनि है—ऐसा ऋषियों ने माना है। प्रयाग के साथ (मिला हुआ) है प्रतिष्ठानपुर (आधुनिक झूसी)। प्रयाग में कम्बल तथा अश्वतर नामक दो तीर्थ और हैं। वहाँ भोगवती नामक तीर्थ है, जो ब्रह्मा की वेदी कहलाता है।१-५।

तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके[1]।
स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ॥६
मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते।
प्रयागे सङ्गमे दानं श्राद्धं[2] जप्यादि चाक्षयम् ॥७
न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति ॥८
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः।
तेषां सांनिध्यमत्रैव प्रयागं परमं ततः ॥९
वासुकेर्भोगवत्यत्र[3] हंसप्रपतनं परम्।
गवां कोटिप्रदानाद्यत्त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ॥१०

प्रयाग में (सभी) वेद तथा यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं। प्रयाग की स्तुति करने से, उसका नाम-संकीर्तन करने से तथा वहाँ की मिट्टी लेने मात्र से ही (प्राणी) सभी पापों से मुक्त हो जाता है। प्रयाग में संगम पर किये हुए दान, श्राद्ध तथा जप आदि का अक्षय फल मिलता है। अये ब्राह्मणराज ! प्रयाग में मरने का विचार न तो वेद वचनों से ही छोड़ा जा सकता है और न लोकवचनों से ही। केवल दशहजार ही क्या, साठ करोड़ तीर्थों का सान्निध्य (भी) प्रयागराज को प्राप्त है। इसलिए प्रयाग तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ

---

१ क. ङ. च. °के। श्रवणाद°। २ क. ङ. च. श्राद्धवर्ज्यादि। ३ क. ङ. °के भोग°।

है। यहाँ नागराज वासुकि का भोगवतीतीर्थ तथा हंसप्रपतन तीर्थ भी है। इनमें तीन दिन स्नान करने का उतना ही फल होता है जितना कि करोड़ों गायों का दान करने से होता है। ६-१०।

प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः।
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥११
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
अत्र दानाद्दिवं यान्ति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ॥१२
वटमूले सङ्गमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत्।
उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं सन्ध्यावटस्तथा ॥१३
कोटितीर्थं चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमम्।
मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं[1] परम् ॥१४

विद्वानों का मत तो यह है कि माघ मास में प्रयाग में स्नान करने से भी यही फल प्राप्त होता है। गङ्गा सब स्थानों पर सुलभ हैं, किन्तु तीन स्थानों की गङ्गा जी दुर्लभ हैं। वे स्थान हैं—गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग तथा गङ्गा सागर-सङ्गम। यहाँ पर दान करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है तथा (दूसरे जन्म में) राजाधिराज होता है। प्रयाग स्थित वटवृक्ष के नीचे तथा संगम आदि स्थानों में मृत्यु होने से विष्णुधाम की प्राप्ति होती है। प्रयाग में जो अन्य तीर्थ हैं उनके नाम हैं—उर्वशीपुलिन, सन्ध्यावट, कोटि-तीर्थ, अश्वमेघ, गङ्गायमुन, निर्मल मानसतीर्थ और श्रेष्ठ वासरक तीर्थ।११-१४।

इत्याग्निमहापुराण आग्नेये प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशाधिक-शततमोऽध्यायः।१११

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्

अग्निरुवाच—

वाराणसी परं तीर्थं गौर्यै प्राह महेश्वरः।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिम् ॥१

१ क. ङ. च. वानर°।

अग्निदेव बोले—शिव ने पार्वती जी को बतलाया कि वाराणसी तीर्थ श्रेष्ठ तीर्थ है। जो लोग वहाँ पर निवास करते हुए विष्णु नाम का संकीर्तन करते हैं उनके लिए यह श्रेष्ठ तीर्थ भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला हुआ करता है ।१

रुद्र उवाच—

गौरि क्षेत्रं[1] न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
जप्तं तप्तं हुतं दत्तमवियुक्ते किलाक्षयम् ।।२
अश्मना चरणौ हत्वा[2] वसेत्काशीं नहि त्यजेत् ।
हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् ।।३
जप्येश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा ।
महालयं परं गुह्यं भूमिचण्डेश्वरं तथा ।।४
केदारं परमं गुह्यमष्टौ सन्त्यविमुक्तके ।
गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तं परं मम ।।५
द्वियोजनं तु पूर्वं स्याद्योजनार्धं तदन्यथा ।
वरणा च नदी नासी[3] मध्ये वाराणसी तयोः ।।६
अत्र स्नानं जपो होमो मरणं देवपूजनम् ।
श्राद्धं दानं निवासश्च यद्यत्स्याद्भुक्तिमुक्तिदम्[4] ।।७

रुद्र ने कहा—अयि गौरि ! वाराणसी क्षेत्र अविमुक्त कहलाता है क्योंकि मैं उसे कभी छोड़ता नहीं हूं ! अविमुक्त क्षेत्र में किये हुए हवन, जप, तप तथा दान का फल अक्षय हुआ करता है। (वाराणसी के घाटों की सीढ़ियों से) पैरों को तोड़कर भी काशी को छोड़ नहीं देना चाहिए (अपितु वहीं पर निवास करते रहना चाहिए)। काशी में हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जप्येश्वर, श्रीपर्वत, महालय, भूमि, चण्डेश्वर और केदार—ये आठों तीर्थ अत्यन्त गुह्य (गोपनीय) तीर्थ हैं। परन्तु मेरा अविमुक्त क्षेत्र तो सबसे अधिक गुप्त है। यह क्षेत्र पूर्व की ओर दो योजन तक और उसकी विपरीत (पश्चिम) दिशा में आधे योजन तक फैला हुआ है । वरणा और नासी (असी) नामक दो नदियों के बीच में बसी होने के कारण इस नगरी को वाराणसी कहते हैं।

---

१ क. च. क्षेत्रेण मु° । २ क. ग. हुत्वा । ३ क. ख. ग. ङ. च. °सी तयो-र्मध्ये वाराणसी । अ° । ४ क. ङ. च. यज्ञः स्याद्भुक्तिमुक्तिदः । इ° ।

यहाँ स्नान, जप, होम, मरण, देवपूजन, श्राद्ध, दान और निवास आदि जो-जो किया जायेगा, वह सब भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाला ही होगा।३-७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वाराणसीमाहात्म्यकथनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११२

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच—

नर्मदादिकमाहात्म्यं वक्ष्येऽहं नर्मदां पराम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनाद्वारि नार्मदम् ॥१
विस्तराद्योजनशतं योजनद्वयमायतम् ।
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः ॥२
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके ।
कावेरीसङ्गमं पुण्यं श्रीपर्वतमतः शृणु ॥३
गौरी श्रीरूपिणी तेपे तपस्तामब्रवीद्धरिः[1] ।
अवाप्स्यसि त्वमध्यात्म नाम्ना[2] श्रीपर्वतस्तव ॥४
समन्ताद्योजनशतं महापुण्यं भविष्यति ।
अत्र दानं ततो जप्यं श्राद्धं सर्वमथाक्षयम् ॥५

अग्निदेव बोले—अब मैं नर्मदा नदी का माहात्म्य बतलाऊँगा । नर्मदा अत्यन्त उत्कृष्ट नदी है। गंगाजल (स्पर्श से) ही सद्यः पवित्र कर देता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शनमात्र से (ही) पवित्र कर दिया करता है। नर्मदा तटवर्ती पर्वत के चारों ओर दो भागों में विभक्त साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ हैं। ये सौ योजनों में फैले हुए तथा दो योजन चौड़े हैं। अमरकण्टक में नर्मदा तथा कावेरी का पवित्र सङ्गम होता है। इसके बाद श्रीपर्वत के सम्बन्ध में सुनो। (एक बार) पार्वती लक्ष्मी का रूप धारण करके वहाँ तपस्या कर रही थीं। उस समय भगवान् विष्णु ने उनसे कहा था—'(यहाँ तपस्या करने से) तुम्हें अध्यात्म ज्ञान प्राप्त हो सकेगा और यह पर्वत तुम्हारे ही नाम

---

१ क. ङ. च. ०द्धरः । अ० । २ क. ङ. च. राज्ञा ।

पर श्रीपर्वत कहलायेगा। इसके चारों ओर सौ योजन तक फैला हुआ स्थान महान् पुण्य देने वाला होगा। यहाँ पर दान, तप, तथा श्राद्ध आदि जो कुछ भी किया जायेगा, उसका फल अक्षय होगा। १-५।

मरणं शिवलोकाय सर्वदं तीर्थमुत्तमम्।
हरोऽत्र क्रीडते देव्या हिरण्यकशिपुस्तथा ॥६
तपस्तप्त्वा वली चाभून्मुनयः सिद्धिमाप्नुवन् ॥७

यहाँ पर होने वाली मृत्यु शिवलोक को देने वाली होगी। यह तीर्थ परम पवित्र तथा सब कुछ देने वाला होगा। यहाँ गौरी के साथ भगवान् शंकर क्रीडा किया करते हैं। यहीं तपस्या करके हिरण्यकशिपु बलवान् हो गया था और (यहीं तपस्या करके) मुनियों ने सिद्धि प्राप्त कर ली थी। ६-७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नर्मदामाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः। ११३

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

अग्निरुवाच—

गयामाहात्म्यमाख्यास्ये गया तीर्थोत्तमोत्तमम्।
गयासुरस्तपस्तेपे तत्तपस्तापिभिः[1] सुरैः ॥१
उक्तः क्षीराब्धिगो विष्णुः पालयास्मान्गयासुरात्।
तथेत्युक्त्वा हरिर्दैत्यं वरं ब्रूहीति चाब्रवीत् ॥२
दैत्योऽब्रवीत्पवित्रोऽहं भवेयं सर्वतीर्थतः।
तथेत्युक्त्वा गतो विष्णुर्दैत्यं दृष्ट्वा नरा[2] हरिम् ॥३
गताः शून्या मही स्वर्गे देवा ब्रह्मादयः सुराः[3]।
गता ऊचुर्हरिं देव[4] शून्या भूस्त्रिदिवं हरे ॥४
दैत्यस्य दर्शनादेव ब्रह्माणं चाब्रवीद्धरिः।
यागार्थं दैत्यदेहं त्वं प्रार्थय त्रिदशैः सह ॥५

---

१ क. ङ. च. °पितैः सु°। २ घ. नवा। ३ क. ङ. च. पुनः। ४ घ. देवाः।

अग्निदेव बोले—अब मैं गया का माहात्म्य बतलाऊँगा। गया में गय नामक राक्षस तप किया करता था। उसके तप से व्यथित होकर देवता, क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रार्थना करने लगे। (अये भगवन्) हम लोगों को गयासुर से बचाइये। भगवान् विष्णु ने कहा—'ऐसा ही होगा'। तदनन्तर उन्होंने जाकर दैत्य से कहा—'मुझसे वर माँग लो'। दैत्य ने कहा—मैं समस्त तीर्थों के जल से पवित्र हो जाऊँ (यही वर दीजिये)। विष्णु ने कहा—'ऐसा ही होगा' और यह कहकर वह चले गये। तदनन्तर दैत्य को देखकर (उसके डर के कारण) सभी मनुष्य भगवान् विष्णु की शरण में गये। इससे पृथ्वी खाली हो गयी। ब्रह्मा आदि देवता स्वर्ग में विष्णु के समीप जाकर कहने लगे—'अये भगवन् विष्णु! उस दैत्य के दर्शन मात्र से पृथ्वी और स्वर्ग शून्य हो गये हैं।' यह सुनकर विष्णु ने ब्रह्मा से कहा—तुम देवताओं के साथ जाकर यज्ञ के लिए उसके शरीर की याचना करो।१-५।

तच्छ्रुत्वा ससुरो ब्रह्मा गयासुरमथाब्रवीत्।
अतिथिः प्रार्थयामि त्वां देहं यागाय पावनम्॥६
गयासुरस्तथेत्युक्त्वाऽपतत्तस्य शिरस्यथ।
यागं चकार चलिते देहे[1] पूर्णाहुतिं विभुः[2]॥७
पुनर्ब्रह्माऽब्रवीद्विष्णुं [3]पूर्णाकालेऽसुरोऽचलत्[4]॥८
विष्णुधर्ममथाऽऽहूय प्राह देवमयीं शिलाम्॥
धारयस्व[5] सुराः सर्वे[6] तस्यामुपरि सन्तु ते।
गदाधरो मदीयाऽथ मूर्तिः स्थास्यति[7] साऽमरैः॥९

यह सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं के साथ जाकर गयासुर के निकट पहुँच कर कहा—'मैं अतिथि होकर तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ कि यज्ञ के लिए तुम अपना पवित्र शरीर दे दो। गयासुर ने कहा—'ऐसा ही होगा' और इतना कहकर वह गिर पड़ा। उसके शिर के ऊपर ब्रह्मा ने यज्ञ किया किन्तु पूर्णाहुति के समय उसका शरीर चञ्चल हो गया। (यह देखकर ब्रह्मा ने पुनः विष्णु

---

१ क. घ. ङ. च. देहि। २ क. ङ. च. भुवि। ३ पूर्णका°। ४ ग. °रोज्ज्वल°। ५ घ. धारयध्वं। ६ घ. °वैयस्या°। ७ क. च. °ति संवरैः। ग. °ति सा सुरैः।

से कहा—'उसका शरीर तो पूर्णाहुति के पहले ही चल पड़ा। तदनन्तर विष्णु ने धर्मराज को बुलाकर कहा—'तुम यहाँ देवमयी शिला को पकड़ लो जिसके ऊपर सभी देवता लोग खड़े होंगे और देवताओं के साथ मेरी गदाधर मूर्ति भी रहेगी' ।६-६।

धर्मः शिलां देवमयीं तच्छ्रुत्वाऽधारयत्पराम् ।
या धर्माद् धर्मवत्यां च जाता धर्मव्रता सुता ॥१०
मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तामुवाह तपोन्विताम् ।
यथा हरिः श्रिया रेमे गौर्यां शम्भुस्तथा तया ॥११
कुशपुष्पाद्यरण्याच्च आनीयातिश्रमान्वितः ।
भुक्त्वा धर्मव्रता प्राह पादसंवाहनं कुरु ॥१२
विश्रान्तस्य मुनेः पादौ तथेत्युक्त्वा प्रियाऽकरोत् ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनौ सुप्ते[1] समागतः ॥१३
धर्मव्रताऽचिन्तयच्च किं ब्रह्माणं समर्चये ।
पादसंवाहनं कुर्वे ब्रह्मा पूज्यो गुरोर्गुरुः ॥१४
विचिन्त्य पूजयामास ब्रह्माणं चार्हणादिभिः ।
मरीचिस्तामपश्यन्स[2] शशापोक्तिव्यतिक्रमात् ॥१५
शिला भविष्यसि क्रोधाद्धर्मव्रताऽब्रवीच्च तम् ।
पादाभ्यङ्गं परित्यज्य त्वद्गुरुः पूजितो मया ॥१६
अदोषाऽहं यतस्त्वं हि शापं प्राप्स्यसि शंकरात् ॥१६३

यह सुनकर धर्मराज ने उस देवमयी शिला को उठा लिया। वही शिला धर्म और धर्मवती से धर्मव्रता कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। ब्रह्मा के एक पुत्र थे मरीचि। उन्होंने इस तपस्विनी कन्या से विवाह कर लिया। जैसे भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ और भगवान् शंकर पार्वती के साथ रमण करते हैं, उसी प्रकार मरीचि उस (धर्मव्रता) के साथ रमण करते रहे। (एक दिन) वन से कुश, पुष्प, आदि लाने के कारण अत्यन्त थके हुए मरीचि ने भोजन करके धर्मव्रता से कहा—'अयि' मेरे पैर दबा दो।' पत्नी (धर्मव्रता) 'अच्छा' कहकर थके हुए मुनि के पैर दबाने लगी। इसी बीच मुनि के सो जाने पर ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। धर्मव्रता सोचने लगी—'क्या मैं ब्रह्मा का आतिथ्य करूँ या पति के पैरों को ही दबाती रहूँ? ब्रह्मा तो मेरे (गुरु) पति के भी गुरु और पूज्य

---

१ ख. ग. घ. ०प्ते तथाऽऽग० । २ घ. ०श्यत्स सशा० ।

हैं' ऐसा सोचकर वह अर्घ्य आदि से ब्रह्मा की पूजा करने में लग गयी। इधर मरीचि ने उसे न देखकर आज्ञोल्लंघन के अपराध से उसे शाप दे दिया कि—'तू पत्थर हो जा।' इस पर धर्मव्रता ने क्रोध में आकर मुनि से कहा—'मैंने तुम्हारे पैरों की मालिस करना छोड़कर उनकी पूजा की है जो आपके भी पूज्य हैं। इसलिए मैं निर्दोष हूँ। (मुझे शाप देने के कारण) तुम्हें भी शंकर का शाप मिलेगा'।१०-१६१/२।

धर्मव्रता पृथक्शापं धारयित्वाऽग्निमध्यगात्।
तपश्चचार वर्षाणां सहस्राण्ययुतानि च।
ततो विष्ण्वादयो देवा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन्।
धर्मव्रताऽब्रवीद्देवान्शापं निर्वर्तयन्तु मे ॥१८

तदनन्तर धर्मव्रता ने शाप को अङ्गीकार करके अग्नि के बीच में बैठकर दश हजार वर्षों तक तपस्या की। (यह देखकर) विष्णु आदि देवताओं ने उससे वर माँगने को कहा। धर्मव्रता ने देवताओं से प्रार्थना की कि 'मेरा शाप शान्त हो जाय'।१७-१८।

देवा ऊचुः—

दत्तो मरीचिना शापो भविष्यति न चान्यथा।
शिला पवित्रा देवाङ्घ्रिलक्षिता त्वं भविष्यसि ॥१९
देवव्रता देवशिला सर्वदेवादिरूपिणी।
सर्वदेवमयी[1] पुण्या निश्चला (नैश्चल्या)यासुरस्य हि ॥२०

मरीचि का दिया हुआ शाप व्यर्थ नहीं हो सकता है, इसलिए तुम देवताओं के चरणों से चिह्नित एक पवित्र शिला बन जाओगी। वह देवशिला समस्त देवताओं की आदिरूप सर्वदेवमयी, पुण्यदायिनी तथा गयासुर को निश्चल रखने वाली होगी।१९-२०।

देवव्रतोवाच—

यदि तुष्टाःस्थ मे सर्वे मयि तिष्ठन्तु सर्वदा।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राद्या गौरी लक्ष्मीमुखाः सुराः ॥२१

---

१ क. ङ. च. °वंतीर्थम°।

देवव्रतोवाच—

यदि तुष्टाः स्थ मे सर्वे मयि तिष्ठन्तु सर्वदा ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राद्या गौरीलक्ष्मीमुखाः सुराः ॥२१

'यदि आप लोग मुझसे सन्तुष्ट हैं तो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, गौरी तथा लक्ष्मी आदि देवगण सदा मेरे ऊपर निवास करते रहें ।२१

अग्निरुवाच—

देवव्रतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा दिनं गताः ।
सा धर्मेणासुरस्यास्य धृता देवमयी शिला ॥२२
सशिलश्चलितो दैत्यः स्थिता रुद्रादयस्ततः ।
सदेवश्चलितो दैत्यस्ततो देवैः प्रसादितः ॥२३
क्षीराब्धिगो हरिः प्रादात्स्वमूर्तिं श्रीगदाधरम् ।
[1]गच्छन्तु भोः स्वयं यास्ये मूर्त्या वै देवगम्यया ॥२४
स्थितो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तोभयात्मकः ।
निश्चला (नैश्चल्या) र्थं स्वयं देवः स्थित आदिगदाधरः॥२५

देवव्रता की बात सुनकर देवता लोग 'ऐसा ही हो' कहकर स्वर्ग को लौट गये। धर्मराज ने उसी देवमयी शिला को असुर को रोकने के लिए उठाया था। जब वह दैत्य शिला सहित चलने लगा नब रुद्र आदि देवता उस पर चढ़ गये; किन्तु जब देवताओं को लेकर भी वह दैत्य चलता ही रहा तब देवताओं ने क्षीरसागर में रहने वाले भगवान् विष्णु की आराधना की। भगवान् विष्णु ने (देवताओं को) अपनी गदाधर मूर्ति प्रदान की और कहा—'आप लोग जाइये' इस देवगम्या मूर्ति के साथ मैं स्वयं चला आऊँगा। तभी से भगवान् आदि गदाधर व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों में उस असुर को स्थिर करने के लिए उसके ऊपर बैठे हुए हैं ।२२-२५।

गदो नामासुरो रौद्रः[2] स हतो विष्णुना पुरा ।
तदस्थिनिर्मिता[3] चाऽऽद्या गदा या विश्वकर्मणा ॥२६
आद्यया गदया हेतिप्रमुखा राक्षसा हताः ।

---

१ गच्छन्तु......नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । २ घ. दैत्यः । ३ क. ङ. च. °दङ्गान्निर्मि° ।

[1]गदाधरेण देवेन तस्मादादि गदाधरः ॥२७
देवमय्यां शिलायां च स्थिते चाऽऽदिगदाधरे।
गयासुरे निश्चलेऽथ ब्रह्मा पूर्णाहुतिं ददौ ॥२८
गयासुरोऽब्रवीद्देवान्किमर्थं वञ्चितो ह्यहम्।
विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ॥२९
आक्रान्तो यद्यहं देवा दातुमर्हत मे वरम् ॥३०

प्राचीन काल में गद नाम का एक भयंकर असुर था। उसे भगवान् विष्णु ने मार डाला था। विश्वकर्मा ने उसकी हड्डियों से पहले पहल जिस गदा का निर्माण किया उससे गदाधर देव (भगवान् विष्णु) ने हेति आदि राक्षसों का वध किया था। इसलिए वे (भगवान् विष्णु) आदि गदाधर कहलाते हैं। इधर, जब देवमयी शिला के ऊपर आदि गदाधर (भगवान् विष्णु) बैठ गये और जब गयासुर अचल हो गया तब ब्रह्मा ने पूर्णाहुति दी। गयासुर ने देवताओं से पूछा—'आप लोगों ने मेरे साथ छल क्यों किया? क्या मैं विष्णु के कह देने भर से ही निश्चल नहीं हो सकता था? अये देवताओ! आप लोगों ने मेरे ऊपर आक्रमण किया है, इसलिए आप मुझे वरदान दीजिए।२६-३०।

देवा ऊचुः—

तीर्थस्य करणे यत्त्वमस्माभिर्निश्चलीकृतः।
विष्णोः शम्भोर्ब्रह्मणश्च क्षेत्रं तव भविष्यति ॥३१
प्रसिद्धं सर्वतीर्थेभ्यः पित्रादेर्ब्रह्मलोकदम्।
इत्युक्त्वा ते स्थिता देवा देव्यस्तीर्थादयः स्थिताः ॥३२
यागं कृत्वा ददौ ब्रह्मा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणास्तदा।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं पञ्चाशत्पञ्च चार्पये(चाऽर्पय)त्॥३३॥
ग्रामान्स्वर्णगिरीन्कृत्वा नदीर्दुग्धमधुस्रवाः।
सरोवराणि दध्याज्यैर्बहूनन्नादिपर्वतान् ॥३४
कामधेनुं कल्पतरुं स्वर्णरूप्यगृहाणि च।
न याचयन्तु विप्रेन्द्रा अल्पानुक्त्वा ददौ प्रभुः ॥३५

---

१ घ. °ण विधिवत्तस्मा°।

देवतागण बोले—'हम लोगों ने तीर्थ निर्माण करने के लिए ही तुम्हें स्थिर कर दिया है। अतः तुम्हारा शरीर विष्णु, शिव और ब्रह्मा का क्षेत्र होगा। वह क्षेत्र समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ तथा पितरों को ब्रह्मलोक तक पहुँचाने वाला होगा।' इतना कहकर सभी देव, देवियाँ तथा तीर्थ वहीं पर बैठ गये। तदनन्तर ब्रह्मा ने यज्ञानुष्ठान करके ऋत्विजों को दक्षिणा दी। जिसमें पाँच कोश गया क्षेत्र, पचपन गाँव, सोने के पहाड़, दूध तथा मधु को प्रवाहित करने वाली नदियाँ, दही और घी के सरोवर, प्रचुर अन्न आदि के पर्वत, कामधेनु, कल्पवृक्ष, सोना और चाँदी तथा घर थे। तदनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों को सम्बोधित करके कहा—'अये ब्राह्मणो! इसके बाद कहीं अन्यत्र याचना मत करना।३१-३५।

धर्मयागे प्रलोभस्तु प्रतिगृह्य धनादिकम्।
स्थिता यदा गयायां ते शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा ॥३६
विद्या विवर्जिता यूयं तृष्णायुक्ता भविष्यथ।
दुग्धादिवर्जिता नद्यः शैलाः पाषाणरूपिणः ॥३७

(एक बार) लोभ वश जब वे ही ब्राह्मण (अन्यत्र) धर्मयाग में दान लेकर गया में पहुँचे तब ब्रह्मा ने उन्हें शाप दे दिया कि 'तुम लोग विद्याविहीन और तृष्णा से युक्त रहोगे। यह नदियाँ दुग्ध आदि से शून्य हो जायेंगी और पर्वत पत्थर होकर रह जायेंगे।३६-३७।

ब्रह्माणं ब्राह्मणाश्चोचुर्नष्टं शापेन चाखिलम्।
जीवनाय प्रसादं नः कुरु विप्रांश्च सोऽब्रवीत् ॥३८
तीर्थोपजीविका यूयं सचन्द्रार्कं भविष्यथ।
ते युष्मान्पूजयिष्यन्ति गयायामागता नराः ॥३९
हव्यकव्यैर्धनैः श्राद्धैस्तेषां कुलशतं व्रजेत्[1]।
नरकात्स्वर्गलोकाय स्वर्गलोकात्परां गतिम् ॥४०
गयोऽपि चाकरोद्यागं बह्वन्नं बहुदक्षिणम्।
गयापुरी तेन नाम्ना पाण्डवा ईजिरे हरिम् ॥४१

(ब्रह्मा का शाप सुनकर) ब्राह्मणों ने ब्रह्मा से कहा—'आपके शाप से हमारा सर्वस्व ही नष्ट हो गया है। अब जीविका के लिए हमारे ऊपर कृपा

---

१ क. ङ. च. महत्।

कीजिए।' ब्रह्मा ने ब्राह्मणों से कहा—'जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे तब तक तुम लोगों की जीविका तीर्थों से ही चलेगी। गया में आये हुए मनुष्य तुम्हारा पूजन करेंगे और यहाँ हव्य (देवताओं के निमित्त अन्न), कव्य (पितरों के निमित्त अन्न), तथा धन आदि से श्राद्ध करने से उन यजमानों के सौ कुल नरक से स्वर्ग चले जायेंगे और यदि स्वर्ग में होंगे तो परम गति को प्राप्त कर लेंगे। गय ने भी बहुत सा अन्न तथा बहुत सी दक्षिणा से युक्त यज्ञ किया। उस (गय) के नाम पर ही यह नगरी गया के नाम से प्रसिद्ध हो गयी है। यहीं पर पाण्डवों ने भगवान् विष्णु की आराधना की थी।३८-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयामाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः।११४

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः

अग्निरुवाच--

उद्यतश्चेद्गयां यातुं[1] श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
विधाय कार्पटीवेशं (षं) ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम्॥१
कृत्वा प्रतिदिनं गच्छेत्संयतश्चाप्रतिग्रही।
गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमनं प्रति॥२
स्वर्गारोहणसोपानं पितृणां तु पदे पदे।
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम्॥३
किं कुरुक्षेत्रवासेन यदा पुत्रो गयां व्रजेत्।
गयां प्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत्[2]॥४

अग्निदेव बोले—गया यात्रा के लिए उद्यत व्यक्ति को विधिपूर्वक श्राद्ध करके काषाय वस्त्र धारण करना चाहिए। फिर उसे गांव की प्रदक्षिणा करके प्रत्येक दिन चलते रहना चाहिए, और इस बीच उसे कहीं दान नहीं लेना

---

१ क. ङ. च. गन्तु°। २ क. ङ. च. °त्। पुत्रे मयि ज°।

चाहिए। उसे संयम से रहना चाहिए। जिस समय से मनुष्य गया-यात्रा के लिए घर से निकल पड़ता है तब से उसके एक-एक पद पर पितरों को स्वर्गा-रोहण का सोपान प्राप्त होता रहता है। जिसका पुत्र गया यात्रा कर ले उसके लिए ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता ही क्या ? उसे गौ के घर में भी मरने से क्या लाभ ? अथवा कुरुक्षेत्र में निवास करने से ही क्या प्रयोजन ? (क्योंकि वह व्यक्ति तो पुत्र की गया यात्रा से ही मुक्त हो जाता है।) इसी-लिए पुत्र की गया-यात्रा को देखकर पितृगण उल्लास मनाने लगते हैं।१-४।

पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किन दास्यति।
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ॥५
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा।
काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रं नरकाद्भयभीरवः ॥६
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति।
मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ॥७
न कालादि गयातीर्थे दद्यात्पिण्डांश्च नित्यशः।
पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥८
[1]अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां मृतवासरे।
अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥९

(वे सोचने लगते हैं) 'क्या यह अपने पैरों से भी छूकर हमें जल नहीं देगा ? मोक्ष चार प्रकार से होता है—ब्रह्मज्ञान से, गयाश्राद्ध से, गौ के घर में मरण से तथा कुरुक्षेत्र में निवास करने से। नरक के भय से भयभीत होने के कारण पितृगण पुत्र की कामना करते हैं। वे सोचते हैं कि (नरक से) हमारी रक्षा वही 'पुत्र कर सकेगा जो गया यात्रा करेगा। सभी तीर्थों में (जाकर वहाँ) मुण्डन तथा उपवास करने का नियम है, किन्तु गया तीर्थ के लिए काल (विशेष) आदि का कोई नियम नहीं है। वहाँ तो नित्य पिण्डदान करना चाहिए। वहां पर तीन पक्ष तक निवास करने वाला अपने सात कुलों को पवित्र कर देता है। पिता आदि नौ देवता वाले तथा बारह देवता वाले अष्टकाश्राद्ध (सप्तमी आदि तीन दिनों में किया जाने वाला श्राद्ध), नान्दी श्राद्ध (पुत्र आदि के शुभ संस्कार के दिन किया जाने वाला श्राद्ध), गया श्राद्ध और मृत्यु दिवसीय श्राद्ध में माता का श्राद्ध उसके पति (अर्थात् अपने

---

१ क. ङ. च. अन्वष्टकासु वृ ।

पिता) से पृथक् करना चाहिए। अन्यत्र पति के साथ ही श्राद्ध कर लेना चाहिए। ५-९।

पित्रादिनवदैवत्यं[1] तथा द्वादशदैवतम्।
प्रथमे दिवसे स्नायात्तीर्थे ह्युत्तरमानसे ॥१०
उत्तरे मानसे पुण्य आयुरारोग्यवृद्धये।
सर्वाघौघविघाताय स्नानं कुर्याद्विमुक्तये ॥११

गया में पिता आदि के क्रम 'नवदेवताक' अथवा 'द्वादशदेवताक' श्राद्ध करना आवश्यक है। गया यात्री को पहले दिन वहां के उत्तर मानस तीर्थ में स्नान करना चाहिए। पवित्र उत्तर मानस तीर्थ में स्नान इसलिए करना चाहिए जिससे आयु तथा आरोग्य की वृद्धि हो, सम्पूर्ण पापों का विनाश हो, और मोक्ष की प्राप्ति हो। १०-११।

सन्तर्प्य देवपित्रादीञ्श्राद्धकृत्पिण्डदो भवेत्।
दिव्यान्तरिक्षभौमस्था[2](भूमिष्ठा)न्देवान्संतर्पयाम्यहम् ॥१२
दिव्यान्तरिक्षभौमादि पितृमात्रादि तर्पयेत्।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥१३
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही।
मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातामहः ॥१४
तेभ्योऽन्येभ्य[3] इमान्पिण्डानुद्धाराय ददाम्यहम्।
ॐ नमः सूर्यदेवाय सोम भौमज्ञरूपिणे ॥१५
जीवशुक्रशनैश्चारि राहुकेतुस्वरूपिणे।
उत्तरे मानसे स्नात उद्धरेत्सकलं कुलम् ॥१६

(स्नानान्तर) देवताओं और पितरों को तर्पण करके ही श्राद्ध और पिण्डदान का अधिकार प्राप्त होता है। तर्पण करते समय यह कहना चाहिए कि मैं स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर स्थित देवों के लिए तर्पण कर चुकने के बाद पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह तथा अन्य सम्बन्धियों के लिए तर्पण कर रहा हूं। तदनन्तर मैं (अपने पितरों का) उद्धार करने के लिए पिण्डदान कर

---

१ क. ङ. च. 'दिमेकदै'। २ दिव्यान्तरिक्षभौमस्था.........सन्तर्पयाम्यहम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु। ३ क. ङ. च. तेभ्यस्तेभ्य।

रहा हूँ'—ऐसा कहकर उन सबको पिण्डदान देना चाहिए। तदनन्तर ,चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, बुध, राहु और केतु रूपी सूर्य को नमस्कार है।" ऐसा कहना चाहिए। उत्तर—मानस में स्नान करने वाला अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है। १२-१६।

सूर्यं नत्वा व्रजेन्मौनी नरो[1] दक्षिणमानसम्।
दक्षिणे मानसे स्नानं करोमि [2]पितृतृप्तये ॥१७
गयायामागतः स्वर्गं यान्तु मे पितरोऽखिलाः।
श्राद्धं पिण्डं ततः कृत्वा सूर्यं नत्वा वदेदिदम् ॥१८
ॐ नमो भानवे भर्त्रे भवाय भव मे विभो।
भुक्तिमुक्तिप्रदः सर्वपितृणां भव भावितः ॥१९
[3]कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः पितृदेवताः ॥२०
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह।
मदीयाः पितरो ये च मातृमातामहादयः ॥२१
तेषां [4]पिण्डप्रदाताऽहमागतोऽस्मि गयामिमाम् ॥२१½

सूर्य नमस्कार कर लेने के बाद मौन धारण करके दक्षिण मानस की ओर जाना चाहिए। (इस समय उसे यह सोचना चाहिए कि) 'मैं पितरों की तृप्ति के लिए ही दक्षिण मानस में स्नान करता हूँ। उसे यह भी सोचते रहना चाहिए कि 'मैं गया में आया हूँ, इसलिए मेरे सभी पितृगण स्वर्ग में पहुँच जायें।' तदनन्तर श्राद्ध पिण्डदान और सूर्य नमस्कार करके—यह कहना चाहिए—'भरण-पोषण करने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है। अये विभो! मेरी रक्षा कीजिए और मेरे पितरों के ऊपर कृपा करके उन्हें भुक्ति मुक्ति प्रदान कीजिए। कव्यवाड, अनल, सोम यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद तथा (अन्य) आज्य भक्षण करने वाले पितृदेवताओ! अये महाभाग! आप लोग आइये। आप लोगों ने मेरे जिन माता, मातामह आदि पितरों की रक्षा (अभी तक) की है, मैं उन्हीं को पिण्डदान देने के लिए गया में आया हूँ।१७-२१½।

---

१ क. ङ. च. ततो। २ क. ङ. च. तृदैवते। ग°। ३ घ. °वाहान°। ४ क. ङ. च. °ण्डयुतानां° च आग°।

उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणपूजितम्[1] ॥२२
नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानां च भयङ्करैः ॥२३
लेलिहानैर्महानागै रक्ष्यते चैव नित्यशः ।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति क्रीडन्ते (न्ति) भुवि मानवाः ॥२४

गया में मुण्डपृष्ठ से उत्तर की ओर कनखल नामक एक तीर्थ है। देवता और ऋषि लोग उसकी पूजा किया करते हैं । वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उसकी रक्षा प्रतिदिन जिह्वा को लपलपाते हुए वे सर्प करते हैं जो सिद्ध जनों के लिए आनन्द प्रदान करने वाले किन्तु पापियों के लिए भयङ्कर हैं। उसमें स्नान करने वाले मनुष्य स्वर्ग को चले जाते हैं और (इस लोक में आने पर) पृथ्वी पर आनन्द से क्रीडा किया करते हैं। २२-२४।

फल्गुतीर्थं ततो गच्छेन्महानद्यां स्थितं परम् ।
नागाज्जनार्दनात्कूपाद्दूराच्चोत्तरमानसात् ॥२५
एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ।
मुण्डपृष्ठं[2] नगा द्यौश्च सारात्सारमथान्तरम् ॥२६
यस्मिन्फलति श्रीगौर्वा कामधेनुर्जलं मही ।
[3]दृष्टिरम्यादिकं यस्मात्फल्गुतीर्थं न फल्गुवत् ॥२७
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ।
एतेन किं न पर्याप्तं नृणां सुकृतकारिणाम् ॥२८
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रात्सरांसि च ।
फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिनेदिने ॥२९
फल्गुतीर्थे तीर्थराजे करोति स्नानमादृतः ।
पितृणां ब्रह्मलोकाप्त्या आत्मनो भुक्तिमुक्तये ॥३०
स्नात्वा श्राद्धी पिण्डदोऽथ नमेद्देवं पितामहम् ।
कलौ माहेश्वरा लोका अत्र देवो गदाधरः ॥३१
पितामहो लिङ्गरूपी तं नमामि महेश्वरम् ।

---

१ क. ङ. च. °वतागणसेवित° । २ ख. ग. घ. °पृष्ठनगाद्याश्च ।
३ दृष्टिरम्यादिकं ....फल्गुवत् नास्ति क. ङ. च पुस्तकेषु ।

गदाधरं वलं काममनिरुद्धं नरायणम् ।।३२
ब्रह्मविष्णुनृसिंहाख्यं वराहादीन्नमाम्यहम् ।
ततो गदाधरं दृष्ट्वा कुलानां शतमुद्धरेत् ।।३३

कनखल तीर्थ के बाद तीर्थयात्री को नागजनार्दन कूप, वट, उत्तरमानस सभी तीर्थों में होते हुए फल्गुतीर्थ में जाना चाहिए—जो महानदी में स्थित हैं। यह जो फल्गुतीर्थ है, वह गयासुर का शिर कहा गया है। इसी प्रकार मुण्डपृष्ठ, नग और द्यौ—एक से बढ़कर एक उत्तम तीर्थ हैं। फल्गुतीर्थ जल और उसकी भूमि लक्ष्मी और कामधेनु का फल देने वाली है। यह देखने में भी रमणीय है अतः फल्गुतीर्थ का फल किसी प्रकार भी फल्गु (तुच्छ) नहीं है। फल्गु तीर्थ में स्नान करके भगवान् गदाधर (विष्णु) देव का दर्शन कर लेने वाले पुण्यात्मा मनुष्यों के लिए करना ही क्या रह जाता है? समुद्र से लेकर सरोवर तक इस पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे प्रतिदिन एक बार फल्गु-तीर्थ में अवश्य जाते हैं। तीर्थराज फल्गुतीर्थ में श्रद्धापूर्वक स्नान करने वाला व्यक्ति पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचाकर स्वयं भोग और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। गया यात्री को उसमें स्नान करके, पितरों के लिए श्राद्ध और पिण्ड-दान करते हुए यह कहते हुए भगव न् ब्रह्मा को नमस्कार करना चाहिए—'कलियुग में लोग महेश्वर के भक्त हुआ करते हैं किन्तु यहां, तो केवल गदाधर (भगवान् विष्णु ही एक मात्र) देवता हैं और पितामह लिङ्गरूपी हैं। इसलिए महेश्वर को नमस्कार करता हूँ। मैं गदाधर (भगवान् विष्णु), बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नृसिंह तथा वराह आदि को (भी) नमस्कार करता हूँ। तदनन्तर गयायात्री को गदाधर (भगवान् विष्णु) का दर्शन करके अपने सौ कुलों का उद्धार करना चाहिए। २५-३३।

धर्मारण्यं द्वितीयेऽह्नि मतङ्गस्याऽऽश्रमे वरे ।
मतङ्गवाप्यां संस्नाप्य श्राद्धकृत्पिण्डदो भवेत् ।।३४
मतङ्गेशं सुसिद्धेशं नत्वा चेदमुदीरयेत् ।
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ।।३५
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितृणां निष्कृतिः कृता ।
स्नानतर्पणश्राद्धादि ब्राह्मतीर्थेऽथ कूपके ।।३६
तत्कूपयूपयोर्मध्ये[1] श्राद्धं कुलशतोद्धृतौ ।
महाबोधितरुं नत्वा धर्मवान्स्वर्गलोकभाक् ।।३७

१ क. ङ. च. °पपृष्ठयो° ।

दूसरे दिन गया-यात्री मतङ्ग के श्रेष्ठ आश्रम में स्थित धर्मारण्य तीर्थ में जाये। वहां मतङ्ग-वापी में स्नान करके ही उसे श्राद्ध और पिण्डदान करना चाहिए। तदनन्तर सिद्धेश्वर मतङ्गेश को नमस्कार करते हुए यह कहना चाहिए—'समस्त देवता प्रमाण हैं और ये लोकपाल साक्षी हैं कि मैंने इस मतङ्ग-तीर्थ में आकर पितरों का उद्धार कर दिया है। तत्पश्चात् ब्राह्मतीर्थ में एक छोटे से कुएँ के समीप स्नान, तर्पण तथा श्राद्ध आदि कर्म करें। उस कुएँ तथा वहाँ पर स्थित यूप के बीच में श्राद्ध करने से (श्राद्ध करने वाले के) सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। गया में महाबोधि वृक्ष को नमस्कार करके धर्मात्मा व्यक्ति स्वर्ग का भागी बन जाता है। ३४-३७।

तृतीये ब्रह्मसरसि स्नानं कुर्याद्यतव्रतः[1] ।
स्नानं ब्रह्मसरस्तीर्थे करोमि ब्रह्मभूतये ॥३८
पितृणां ब्रह्मलोकाय ब्रह्मर्षिगणसेविते ।
तर्पणं श्राद्धकृत्पिण्डं प्रदद्यात्तु प्रसेचनम् ॥
कुर्याच्च वाजपेयार्थी ब्रह्मयूपप्रदक्षिणम् ॥३९
एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददाति ।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी-
प्रसिद्धा ॥४०

तीसरे दिन गया-यात्री नियमपूर्वक ब्रह्मसर में स्नान करे और स्नान करते हुए यह ध्यान करता रहे—'मैं ब्रह्मा तथा ऋषियों से सेवित इस ब्रह्म सरोवर नामक तीर्थ में स्नान करता हूँ; जिससे मुझे ब्रह्मविभूति की प्राप्ति हो जाये, और मेरे पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाये।' तदनन्तर तर्पण, श्राद्ध और पिण्डदान करना चाहिए। वाजपेय यज्ञ करने के इच्छुक को ब्रह्मयूप की प्रदक्षिणा तथा उसके ऊपर जल का सिञ्चन करना चाहिए। 'मुनि अपने हाथ में जल से भरा हुआ घड़ा और कुशा लेकर आम्र वृक्ष की जड़ में पानी डाल रहा है। इससे आम्रवृक्ष भी सींचे जा रहे हैं और पितर भी तृप्त हो रहे हैं। इसलिए यह प्रसिद्ध है कि एक कर्म दो फलों को देने वाला भी हुआ करता है। ३८-४०।

---

१ क. ङः च. °र्याच्च सद्व्रतः ।

ब्रह्माणं च नमस्कृत्य[1] कुलानां शतमुद्धरेत् ।
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम् ॥४१
कृत्वा श्राद्धं सपिण्डं च गयाशिरसि कारयेत् ।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥४२
तत्र पिण्डप्रदानेन कुलानां शतमुद्धरेत् ।
पुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ॥४३
मुण्डपृष्ठे शिरः साक्षाद्गयाशिर उदाहृतम् ।
साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रमं[2] कृतम् ॥४४
अमृतं तत्र वहति पितृणां दत्तमक्षयम् ।
स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्टवा देवं पितामहम् ॥४५
रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा नेह भूयोऽभिजायते ॥४५½

वहाँ पर भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार करके मनुष्य सौ कुलों का उद्धार कर देता है। चौथे दिन गयायात्री फल्गुतीर्थ में स्नान तथा देवताओं आदि का तर्पण करके गयाशिर नामक स्थान में पिण्डदान के साथ श्राद्धकर्म कराये। गयाक्षेत्र पाँच कोस तक और गयाशिर एक कोस तक (फैला हुआ) है। वहाँ (गयाशिर में) पिण्डदान करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। मुण्डपृष्ठ में बुद्धिमान् भगवान् शङ्कर ने अपना पैर रखा था और वहीं पर गयासुर का शिर भी रखा गया था। इसलिए उस स्थान को गयाशिर कहते हैं। वहीं पर फल्गुतीर्थ-आश्रम भी बना हुआ है। वहाँ अमृत (के समान जल) बहता रहता है, जिसमें तर्पण करने से पितरों को अक्षय जल प्राप्त होता है। तदनन्तर दशाश्वमेध में स्नान करके, भगवान् ब्रह्मा का दर्शन करके और भगवान् शंकर के चरणों का स्पर्श करके मनुष्य बार-बार यहाँ जन्म नहीं लिया करता है। ४१-४५½ ।

शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं[3] दत्त्वा गयाशिरे ॥४६
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ।
पायसेनाथ पिष्टेन सक्तुना चरुणा तथा ॥४७
पिण्डदानं तण्डुलैश्च गोधूमैस्तिलमिश्रितैः ।
पिण्डं दत्त्वा रुद्रपते कुलानां शतमुद्धरेत् ॥४८

---

१ क. ख. ग. घ. पुरस्कृत्य। २ क. ङ. च. 'श्रयं कृ.°। ३ क. ङ. च. शिला°।

गयाशिर में शमीपत्र के बराबर पिण्डदान देने से नरक में रहने वाले पितर स्वर्ग चले जाते हैं और स्वर्ग में निवास करने वाले पितरों को मोक्ष प्राप्त हो जाता है। खीर, पिसान, सत्तू, चरु, तण्डुल तथा तिलमिश्रित गेहूँ का पिण्ड (बनाकर उसका) दान करना चाहिए। भगवान् रुद्र के चरणों में इस प्रकार से बनाये गये पिण्ड का दान करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है। ४६-४८।

तथा विष्णुपदे श्राद्धपिण्डदो ह्यृणमुक्तिकृत्।
पित्रादीनां शतकुलं स्वात्मानं[1] तारयेन्नरः ॥४९
तथा ब्रह्मपदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्॥
दक्षिणाग्निपदे तद्वद्गार्हपत्यपदे तथा ॥५०
पदे[2] चाऽऽहवनीयस्य श्राद्धी यज्ञफलं लभेत्।
आवसथ्यस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य च गणस्य च ॥५१
अगस्त्यकार्तिकेयस्य[3] श्राद्धी तारयते कुलम्।
आदित्यस्य रथं नत्वा कर्णादित्यं नमेन्नरः ॥५२
कनकेशपदं[4] नत्वा गया केदारकं नमेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पितॄनब्रह्मपुरं नयेत् ॥५३

उसी प्रकार भगवान् विष्णु के चरणों में पिण्ड अर्पित करने से (पितृ, देव और ऋषि) ऋणों से छुटकारा पाकर मनुष्य अपने पिता आदि के सौ कुलों का उद्धार तो कर ही देता है, अपना भी निस्तार कर लेता है। भगवान् ब्रह्मा के चरणों में श्राद्ध करने वाला मनुष्य पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचा देता है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति (सभी) यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है। आवसथ्याग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, गणपति, अगस्त्य तथा कार्तिकेय के निमित्त श्राद्ध करने वाला मनुष्य अपने कुल का उद्धार कर देता है। गयायात्री पहले सूर्य के रथ को नमस्कार करके बाद में कर्णादित्य को नमस्कार करे। तदनन्तर उसे कनकेश्वर तथा गया-केदार नामक तीर्थों का नमस्कार करना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति सभी पापों से छुटकारा पाकर पितरों को ब्रह्मपुर में पहुँचा देता है। ४९-५३।

---

१ क. ङ. च. स्वात्मनोत्तार° । २ ख. ग. घ. °दे वाऽऽह° । ३ क. ङ. च. श्राद्धं । ४ क, ङ. च. °पदान्यच्च ग° । ख. ग. °पदान्यत्र ग° ।

विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ।
विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान् ॥५४
कथं पुत्रादयः स्युर्मे द्विजा ऊचुर्विशालकम् ।
गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥५५

गया में पिण्डदान करने से विशाल नामक (विदिशा के) राजा ने भी पुत्र प्राप्त कर लिया था (उसकी कथा इस प्रकार है—) विशाला नामक नगरी में एक राजकुमार था—विशाल। (एक बार) उसने ब्राह्मणों से पूछा 'मुझे पुत्रादि की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—'गया में पिण्डदान करने से तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो सकेगा' ।५४-५५।

विशालोऽपि गयाशीर्षे पितृपिण्डान्ददौ ततः[1] ।
दृष्टवाऽऽकाशे सितं रक्तं पुरुषांस्तांश्च पृष्टवान् ॥५६
के यूयं तेषु चैवैकः सितां प्रोचे विशालकम् ।
अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकं गतः शुभात् ॥५७
मम रक्तः पिता पुत्र[2] कृष्णश्चैव पितामहः[3] ।
अब्रवीन्नरकं प्राप्तास्त्वया[4] मुक्तीकृता[5] वयम् ॥५८
पिण्डदानाद्ब्रह्मलोकं व्रजाम इति ते गताः ।
विशालः प्राप्तपुत्रादी राज्यं कृत्वा हरिं ययौ ॥५९

तदनन्तर विशाल ने गया में (जाकर) पिण्डदान किया। उसने आकाश में श्वेत और रक्त (आदि) वर्ण वाले पुरुषों को देखकर उनसे प्रश्न किया कि, 'तुम लोग कौन हो' ? उनमें से एक पुरुष, जो श्वेत था, विशाल से बोला—'मैं श्वेतवर्ण वाला तुम्हारा पिता हूँ। मैंने शुभ कर्मों से इन्द्रलोक को प्राप्त कर लिया है। अये पुत्र ! ये रक्तवर्ण वाले मेरे पितामह है। हम सब नरक में पड़े हुए थे। तुमने हम लोगों का उद्धार कर दिया है। तुम्हारे पिण्डदान से हम लोग ब्रह्मलोक को जा रहे हैं—'इतना कहकर वे लोग चले गये। महाराज विशाल ने पुत्र आदि को प्राप्त करके राज्य का भोग करते हुए (अन्त में) विष्णु (धाम) को प्राप्त कर लिया। ५६-५९।

प्रेतराजः स्वमुक्त्यै च वणिजं चेदमब्रवीत् ।
प्रेतैः सर्वैः सहाऽऽर्तः सन्सुकृतं भुज्यते फलम् ॥६०

---

१ क. ङ. च. गतः। २ क. ङ. च. °त्र हृष्टश्चै°। ३ ख. ग. °हः। अवीचिनं °र°। ४ क. ङ. चः प्राप्तौ त्वया। ५ ख. ग. मुक्ताः कृ°।

श्रवणाद्वादशीयोगे कुम्भः सान्नश्च सोदकः ।
दत्तः[1] पुरा स मध्याह्ने जीवनायोपतिष्ठते ।।६१

धनं गृहीत्वा मे गच्छ गयायां पिण्डदो भव ।
वणिग्धनं गृहीत्वा तु गयायां पिण्डदोऽभवत् ।।६२
प्रेतराजः सह प्रेतैर्मुक्तो नीतो हरेः पुरम् ।
गयाशीर्षे पिण्डदानादात्मानं स्वपितृंस्तथा ।।६३

एक समय प्रेतराज ने अपनी मुक्ति के लिए एक वणिक् से कहा—'मैं दुःखी होकर सभी प्रेतों के साथ अपना कर्मफल भोग रहा हूँ। पूर्व काल में मैंने श्रवणद्वादशी योग में अन्न और जल से भरा हुआ एक घड़ा दान दिया था। वही मध्याह्न में मेरी जीविका का साधन बन जाता है। तुम मेरा धन लेकर गया में जाकर पिण्डदान कर दो।' बनिये ने धन लेकर गया में जाकर पिण्डदान कर दिया। इससे वह प्रेतराज मुक्त होकर समस्त प्रेतों के साथ वैकुण्ठ चला गया। इसलिए जो व्यक्ति गया में पिण्डदान करता है, वह अपने पितरों को तथा स्वयं अपने आपको मुक्त कर देता है।६०-६३।

पितृवंशे मृता ये चा मातृवंशे तथैव च ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ।।६४
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ।।६५
विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।।६६
ये केचित्प्रेतरूपेण तिष्ठन्ति पितरो मम ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ।।६७
पिण्डो देयस्तु सर्वेभ्यः सर्वैर्वै कुलतारकैः ।
आत्मनस्तु तथा देयो ह्यक्षयं लोकमिच्छता ।।६८

(गया में पिण्डदान करते समय यह ध्यान करते रहना चाहिये) 'मेरा दिया हुआ महापिण्ड उन लोगों को अक्षय रूप से प्राप्त होता रहे जो मेरे पितृ तथा मातृकुल में मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, जो मेरे श्वशुर, बन्धु तथा गन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, स्त्री-पुत्र से हीन होने के कारण मेरे

---

१ क. ङ. च. मोदः ।

कुल के जो लोग पिण्डों के अधिकारी नहीं रह गये हैं, जो (यज्ञादि) क्रियाओं से भ्रष्ट हो चुके हैं तथा जो पितृगण जन्मान्ध, पंगु, विरूप, गर्भभ्रष्ट, ज्ञात तथा अज्ञात रूप से मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। प्रेतयोनि में रहने वाले मेरे पितृगण भी मेरे पिण्डदान से सदा तृप्त होते रहें। कुल का उद्धार करने वाले (अपने) सभी (पितरों) को पिण्डदान देना चाहिए। जो अक्षय लोक की कामना करते हों उन्हें स्वयं अपने लिए (जीवन काल में ही) पिण्डदान करना चाहिए।६४-६८।

पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नायान्मन्त्रेण बुद्धिमान् ।
गदाप्रक्षालने तीर्थे गदालोलेऽतिपावने ॥६९
स्नानं करोमि संसारगदशान्त्यै जनार्दन ।
नमोऽक्षयवटायैव[1] अक्षय्यस्वर्गदायिने[2] ॥७०
पित्रादीनामक्षयाय सर्वपापक्षयाय च ।
श्राद्धं वटतले कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥७१

पाँचवे दिन गयायात्री गदालोल नामक तीर्थ में इस मन्त्र को पढ़ते हुए स्नान करे—'अये जनार्दन ! सांसारिक ताप की शान्ति के लिए मैं अत्यन्त पवित्र उस गदालोल नामक तीर्थ में स्नान करता हूँ जहाँ गदा धोई गयी थी। उस अक्षयवट को नमस्कार है जो अक्षय स्वर्ग को देने वाला है। वही पितरों को अक्षय (लोक प्रदान) करने वाला और पापों का सर्वनाश करने वाला है।' तत्पश्चात् वट वृक्ष के नीचे श्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।६९-७१।

एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।
किं पुनर्बहुभिर्भुक्तैः पितृणां दत्तमक्षयम् ॥७२
गयायामन्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः ।
वटं वटेश्वरं नत्वा पूजयेत्प्रपितामहम् ॥७३
अक्षयाल्लँभते लोकान्कुलानां शतमुद्धरेत् ।
क्रमातोऽक्रमतो बाऽपि गयायात्रा महाफला ।७४

---

१. क. ङ. च. °व सर्वपापक्षयाय च । पि° । २ घ. °क्षयस्व° ।

वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है। यदि वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से पितरों को अक्षय लोक की प्राप्ति हो जाती है तो (अन्यत्र) बहुत से ब्राह्मणों को भोजन कराने की आवश्यकता ही क्या ? वही पिता पुत्रवान् है जिसका पुत्र गया में अन्नदान किया करता है। गया में वट तथा वटेश्वर लिङ्ग को नमस्कार और भगवान् ब्रह्मा की पूजा करने वाला (स्वयं तो) अक्षय लोक में चला ही जाता है, अपने सौ कुलों का उद्धार भी कर देता है। गया यात्रा चाहे विधान पूर्वक की जाये या बिना विधान के ही हो, बड़े-बड़े फलों को देने वाली हुआ करती है।७२-७४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गयायात्राविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।१०७

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः

अग्निरुवाच—

गायत्र्यैव महानद्यां स्नातः[१] सन्ध्यां समाचरेत् ।
गायत्र्यां[२] अग्रतः प्रातः श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् ।।१
मध्याह्ने चोद्यति[३] स्नात्वा गीतवाद्यैर्ह्युपाश्य[४] च ।
सावित्रीं[५] पुरतः सन्ध्यां पिण्डदानं च तत्तटे ।२
अगस्त्यस्य पदे कुर्याद्योनिद्वारं प्रविश्य च ।
निर्गतो न पुनर्योनिं प्रविशेन्मुच्यते भवात् ।।३

अग्निदेव बोले—गायत्री-मन्त्र से महानदी में स्नान करके सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। प्रातःकाल गायत्री-मन्त्र से ही आगे की ओर श्राद्ध तथा पिण्ड-दान करना चाहिए। दोपहर के समय स्नान करके महानदी के तट पर सन्ध्यो-

---

१ क. ङ. च. प्रातः। २ क. ङ. च. °त्र्यामुग्र°। ३ क. ङ. च. वेद्यति। ४ क. ङ.च.° द्यैर्ह्युयास्य। ५ क. ङ. च.° वित्रीप्लवतः। घ. छ. °वित्रीपु°।

पासन के बाद गीतवाद्यों के साथ सावित्री मन्त्र से अर्चना करके पूर्व की ओर पिण्डदान करना चाहिए। फिर (महामुनि) अगस्त्य के चरणों में पिण्डदान करके योनिद्वार (नामक स्नान-स्थान) में प्रवेश करके निकल जाना चाहिए। ऐसा करने से गर्भ में पुनः नहीं जाना पड़ता है और संसार से मुक्ति मिल जाती है।१-३।

बलिं काकशिलायां च कुमारं च नमेत्ततः।
स्वर्गद्वार्यां सोमकुण्डे वायुतीर्थेऽथ पिण्डदः ॥४
भवेदाकाशगङ्गायां कपिलायां च पिण्डदः।
कपिलेशशिवं नत्वा रुक्मिकुण्डे[1] च पिण्डदः ॥५
कोटितीर्थे च कोटीशं नत्वाऽमोघपदे नरः।
गदालोले[2] वानरके गोप्रचारे च पिण्डदः ॥६
नत्वा गावं[3] (गां वै) वैतरण्यामेकविंशकुलोद्धृतिः ॥६½

तदनन्तर काकशिला में बलि चढ़ाकर कुमार (कार्तिकेय) को नमस्कार करना चाहिए। तत्पश्चात् स्वर्गद्वार, सोमकुण्ड तथा वायुतीर्थ में पिण्डदान करके आकाशगंगा और कपिला में पिण्डदान करना चाहिए। उसके बाद कपिलेश शिव को नमस्कार करके रुक्मिकुण्ड में पिण्डदान करना चाहिए। इसके बाद कोटितीर्थ में कोटीश को नमस्कार कर अमोघपद, गदालोल, वानरक तथा गोप्रचार तीर्थों में पिण्ड देना चाहिए। तदनन्तर गौ को प्रणाम करके वैतरणी में श्राद्ध और पिण्डदान करने से इक्कीस कुलों का उद्धार हो जाता है।४-६½।

श्राद्धपिण्डप्रदाता स्यात्क्रौञ्चपादे च पिण्डद ॥७
तृतीयायां विशालायां[4] निश्चिरायां च पिण्डदः।
ऋणमोक्षे पापमोक्षे भस्मकुण्डेऽथ भस्मना ॥८
स्नानकृन्मुच्यते पापान्नमेद्देवं जनार्दनम्।
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥९
परलोकगते[5] मह्यमक्षय्यमुपतिष्ठताम्।
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥१०

---

१ क. ङ. च. रुक्मदण्डे। २ ङ. च. °ले च नं°। ३ ख. गावो। ४ क. ङ. च. °थां ग्रीवायां च स पि°। ५ परलोकगते..........जनार्दनः नास्ति क. ङ. च. ग्रन्थेषु।

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् ।
मार्कण्डेयेश्वरं नत्वा नमेद्गृध्रेश्वरं नरः ॥११

तत्पश्चात् क्रौञ्चपाद, तृतीया, विशाला, निश्चरा, ऋणमोक्ष तथा पापमोक्ष तीर्थों में पिण्डदान करना चाहिए। भस्मकुण्ड तीर्थ में भस्म से स्नान करने पर मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है। उसके बाद जनार्दन (भगवान् विष्णु) को यह कहते हुए प्रणाम करना चाहिए—"हे जनार्दन ! यह पिण्ड मैं आपके हाथ में दे रहा हूँ। परलोक जाने पर यही पिण्ड मुझे अक्षय रूप से प्राप्त हो जाये।" गया में स्वयं जनार्दन (भगवान् विष्णु) ही पितृरूप में निवास करते हैं। उन पुण्डरीकाक्ष के दर्शन करने से मनुष्य तीन (पितृ, ऋषि और देव) ऋणों से मुक्त हो जाता है। तदनन्तर मार्कण्डेयेश्वर तथा गृध्रेश्वर को नमस्कार करना चाहिए।७-११।

मूलक्षेत्रे महेशस्य धारायां पिण्डदो भवेत् ।
गृध्रकूटे गृध्रवटे धौतपादे च पिण्डदः ॥१२
पुष्करिण्यां कर्दमाले [1]रामतीर्थे च पिण्डदः ।
प्रभासेशं नमेत्प्रेतशिलायां पिण्डदो भवेत् ॥१३
दिव्यान्तरिक्षभूमिष्ठाः पितरो वान्धवादयः ।
प्रेतादिरूपा मुक्ताः स्युः पिण्डैर्दत्तैर्मयाऽखिलाः ॥१४

महेश के मूलक्षेत्र में और धाराक्षेत्र में पिण्डदान करना चाहिए। उसके बाद गृध्रकूट, गृध्रवट, धौतपाद, पुष्करिणी, कर्दमाल और रामतीर्थ में पिण्ड-दान करना चाहिए। तत्पश्चात् प्रभासेश को नमस्कार करके प्रेतशिला में पिण्डदान करते हुए यह कहना चाहिए—'जो मेरे पितृगण तथा बान्धव प्रेतरूप में आकाश, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर निवास करते हैं वे सभी मेरे दिये हुए पिण्डों को पाकर मुक्त हो जायेंगे'।१२-१४।

स्थानत्रये प्रेतशिला गयाशिरसि पावनी ।
प्रभासे प्रेतकुण्डे च पिण्डदस्तारयेत्कुलम् ॥१५

प्रेतशिला, गयाशिर तथा प्रभास स्थित प्रेतकुण्ड—इन तीनों स्थानों में पिण्डदान करने वाला अपने कुल का उद्धार कर देता है।१५

---

१ क. ङ. च. नामतीर्थे ।

वसिष्ठेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत् ।
([1]गयानाभौ सुषुम्नायां महाकोष्ठ्यां च पिण्डदः ॥१६
गदाधराग्रतो मुण्डपृष्ठे देव्याश्च संनिधौ ।
मुण्डपृष्ठं नमेदादौ क्षेत्रपालादिसंयुतम् ॥१७
पूजयित्वा भयं न स्याद्विषरोगादिनाशनम् ।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत्कुलम् ॥१८
सुभद्रां बलभद्रं च प्रपूज्य पुरुषोत्तमम् ।)
सर्वकामसमायुक्तः कुलमुद्धृत्य नाकभाक्[2] ॥१९

तदनन्तर वसिष्ठेश को नमस्कार करके उनके सामने पिण्डदान करना चाहिए । बाद में गयानाभि, सुषुम्ना, महाकोष्ठी तथा गदाधर के सामने और मुण्डपृष्ठ में देवी के निकट पिण्डदान करना चाहिए । पहले क्षेत्रपाल आदि के साथ मुण्डपृष्ठ को नमस्कार और उनकी पूजा कर लेनी चाहिए । इससे विष, रोग आदि का नाश और अभय की प्राप्ति होती है । भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार करने से पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । सुभद्रा तथा पुरुषोत्तम (भगवान् विष्णु) की पूजा करने से मनुष्य अपने कुल का उद्धार करके सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा कर स्वर्गलोक का अधिकारी बन जाता है ।१६-१९।

[3]हृषीकेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत् ।
[4]माधवं पूजयित्वा च देवो वैमानिको भवेत् ॥२०
महालक्ष्मीं प्रार्च्य गौरीं[5] मङ्गलां[6] च सरस्वतीम् ।
पितॄनुद्धृत्य स्वर्गस्थो भुक्तभोगोऽत्र शास्त्रधीः ॥२१
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य वह्निं रेवन्तमिन्द्रकम्[7] ।
रोगादिमुक्तः[8] स्वर्गी स्याच्छ्रीकपर्दिविनायकम् ॥२२
प्रपूज्य कार्तिकेयं च निर्विघ्नः सिद्धिमाप्नुयात् ॥२२½

तत्पश्चात् भगवान् हृषीकेश को नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान करना चाहिए । (यहाँ) माधव (भगवान् कृष्ण) की पूजा करने से मनुष्य

---

१ गयानाभौ.........पुरुषोत्तमम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । २ क. ङ. च. लोकभाक् । ३ हृषीकेशं.......पिण्डदो भवेत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ४ क. ङ. च. साधनं । ५ ङ. °रीं देवीं च मुकुलां तथा । पि° । ६ क. ङ. च.मुकुलां । ७ क. ङ. च. °मिन्दुकं । ८ रोगादि मुक्तः.........विनायकम् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु ।

विमान विहारी बन जाता है। तदनन्तर महालक्ष्मी, गौरी, मङ्गला तथा सरस्वती का पूजन करने से मनुष्य पितरों का उद्धार करके स्वर्ग प्राप्त कर लेता है और वहाँ का भोग भोग चुकने के बाद इस लोक में (आकर) शास्त्रों में प्रबुद्ध हो जाता है। उसके बाद द्वादशादित्य, अग्नि, रेवन् तथा इन्द्र की पूजा करने से मनुष्य रोग आदि से मुक्त होकर स्वर्ग को चला जाता है। भगवान् श्रीकपर्दिविनायक तथा कार्तिकेय की पूजा करने से मनुष्य निर्विघ्न रूप से सिद्धि प्राप्त कर लेता है।२०-२२½।

सोमनाथं च कालेशं केदारं प्रपितामहम् ।।२३
सिद्धेश्वरं च रुद्रेशं रामेशं ब्रह्मकेश्वरम् ।
अष्टलिङ्गानि गुह्यानि पूजयित्वा तु सर्वभाक् ।।२४

सोमनाथ, कालेश, केदार, प्रपितामह, सिद्धेश्वर, रुद्रेश, रामेश तथा ब्रह्म केश्वर नामक आठ गुह्य-लिङ्गों की पूजा करने से मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है।२३-२४।

नारायणं वराहं च [1]नारसिंहं नमेच्छ्रिये ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं[2] त्रिपुरघ्नमशेषदम् ।।२५
सीतारामं च गरुडं वामनं सम्प्रपूज्य च ।
सर्वकामानवाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।२६

उसके बाद श्रीप्राप्ति के लिए (भगवान्) नारायण, बराह तथा नृसिंहदेव को नमस्कार करना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सर्वदायक त्रिपुरघ्न, सीता, राम, गरुड़ तथा वामन की सम्यक्‌रूप से पूजा करने से मनुष्य की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और वह अपने पितरों को ब्रह्मलोक में ले जाता है।२५-२६।

देवैः सार्धं सम्प्रपूज्य देवमादिगदाधरम् ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तस्तारयेत्सकलं कुलम् ।।२७
देवरूपा शिला पुण्या [3]तस्माद्देवमयी शिला ।
गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ।।२८

---

१ क. ङ. च. नरसिंहं । २ क. ङ. च °ख्यं त्रैपुरुषमथौषधम् । ३ क. ङ. घ. तस्यां देव° ।

सभी देवताओं तथा भगवान् आदि गदाधर देव की पूजा करने से मनुष्य (पितृ, देव, ऋषि) तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त होकर सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है। गया-स्थित देवमयी शिला देवताओं से युक्त होने के कारण अत्यन्त पवित्र है। गया में तो ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ (कोई न कोई) तीर्थ न हो।२७-२८।

यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्[1]।
फल्वीशं फल्गुचण्डीं च प्रणम्याङ्गारकेश्वरम् ॥२९
मतङ्गस्य पदे श्राद्धी भरताश्रमके भवेत्।
हंसतीर्थे कोटितीर्थे यत्र पाण्डुशिलानदः[2] ॥३०
तत्र स्यादग्निधारायां [3]मधुश्रवसि पिण्डदः।
इन्द्रेशं[4] किलिकिलेशं नमेद्वृद्धिविनायकम् ॥३१
पिण्डदो धेनुकारण्ये पदे धेनोर्नमेच्च गाम्।
सर्वान्पितृंस्तारयेच्च सरस्वत्यां च पिण्डदः ॥३२
सन्ध्यामुपास्य सायाह्ने नमेद्देवीं सरस्वतीम्।
त्रिसन्ध्याकृद्भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥३३

वहाँ पर जिसके नाम से पिण्ड दिया जाता है, उसे शाश्वत ब्रह्म के समीप पहुँचा दिया जाता है। उसके बाद फल्वीश, फल्गुचण्डी तथा अङ्गारकेश्वर को प्रणाम कर मतङ्ग पद में श्राद्ध करना चाहिए। तदनन्तर भरताश्रम, हंसतीर्थ, कोटितीर्थ, पाण्डुशिलानद, अग्निधारा तथा मधुश्रव में पिण्डदान करना चाहिए। तत्पश्चात् इन्द्रेश, किलिकिलेश तथा बुद्धिविनायक को नमस्कार कर धेनुकारण्य में पिण्डदान और धेनुपद में गौ को प्रणाम करना चाहिए। सरस्वती तीर्थ में पिण्डदान करने वाला अपने सभी पितरों का उद्धार कर लेता है। वहाँ सन्ध्योपासन करके सायंकाल सरस्वती देवी को नमस्कार करना चाहिए। यहाँ पर त्रिकाल सन्ध्यावन्दन करने वाला ब्राह्मण वेद, वेदाङ्ग में पारङ्गत हो जाता है।२९-३३।

गयां प्रदक्षिणीकृत्य गयाविप्रान्प्रपूज्य च।
अन्नदानादिकं सर्वं[4] कृतं तत्राक्षयं भवेत् ॥३४

---

१ क. च. °म्। कर्णीशं कर्णचण्डीं। २ ख. ग. घ. छ. °लान्नादः। ३ क. ङ. च. मध्ये श्र°। ४ घ. छ. रुद्रेशं।

स्तुत्वा सम्प्रार्थयेदेवमादिदेवं[1] गदाधरम् ।
गदाधरं गयावासं पित्रादीनां गतिप्रदम् ॥३५
धर्मार्थकाममोक्षार्थं योगदं प्रणमाम्यहम् ।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम्[2] ॥३६
[3]नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यं[4] ब्रह्म नमाम्यहम् ।
आनन्दमद्वयं देवं देवदानववन्दितम् ॥३७
देवदेवीवृन्दयुक्तं सर्वदा प्रणमाम्यहम् ।
कलिकल्मषकालार्तिदमनं वनमालिनम् ॥३८
पालिताखिललोकेशं कुलोद्धरणमानसम् ।
[5]व्यक्ताव्यक्तविभक्तात्माविभक्तात्मानमात्मनि ॥३९
[6]स्थितं स्थिरतरं सारं वन्दे घोराघमर्दनम् ॥३९½

अन्त में गया की प्रदक्षिणा करके और गया में रहने वाले ब्राह्मणों की पूजा करके जो कुछ भी अन्नदान किया जाता है, अक्षय (फल वाला) हो जाता है। तदनन्तर आदिदेव गदाधर की स्तुति करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए कि—'मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए गया में निवास करने वाले और पितरों को (सद्) गति प्रदान करने वाले योगीश्वर भगवान् गदाधर देव को प्रणाम करता हूँ। मैं उस ब्रह्म को (भी) नमस्कार करता हूँ जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार से रहित, नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और सत्य स्वरूप है। मैं उस ब्रह्म को नकस्कार करता हूँ जो आनन्द रूप अद्वैत, देव-दानवों से वन्दित और देवताओं तथा देवियों से युक्त है। मैं उस ब्रह्म (स्वरूप) भगवान् विष्णु को नमस्कार कर रहा हूँ जो कलिकाल के पापों को शान्त करने वाले, काल की पीड़ा का दमन करने वाले, वनमाला को धारण करने वाले, सम्पूर्ण लोकों का पालन करने वाले और (पिण्डदान करने वालों के) कुल के उद्धार में दत्तचित्त है। मैं उस ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ, जो व्यक्त और अव्यक्त, विभक्तात्मा और अविभक्तात्मा, आत्मा में स्थित, स्थिततर, साररूप तथा घोर पापों का विनाश करने वाला है।३४-३९½।

---

१ क. ङ. च 'येद्देव' । २ क.ङ. च 'द्धिमनोहं' । ३ घ. छ. 'शुद्ध'' बुद्धियुक्त स' ४ ख. ग. 'बुद्धिमु' । ५ अस्य श्लोकस्यार्धभागं नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ६ क. ङ. च. स्थिरं ।

आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर ॥४०
त्वं मे साक्षी भवाद्येह अनृणोऽहमृणत्रयात् ।
साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥४१
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता ।
गयामाहात्म्यपठनाच्छ्राद्धादौ ब्रह्मलोकभाक् ॥४२
पितॄणामक्षयं श्राद्धमक्षयं ब्रह्मलोकदम् ॥४३

भगवान् गदाधर ! मैं पितृकर्म करने के लिए गया आया हूँ । आप मेरे साक्षी हैं, आज से मैं यहाँ तीनों प्रकार के (देव, ऋषि, पितृ) ऋणों से उऋण हो गया हूँ । ब्रह्मा, महेश, अनादि (विष्णु) आदि देवता मेरे साक्षी हों; मैंने गया में आकर पितरों का उद्धार कर दिया है। श्राद्ध के आदि में 'गया-माहात्म्य' पाठ करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और (गया में किया हुआ श्राद्ध) अविनश्वर ब्रह्मलोक को प्रदान करने वाला होता है ।४०-४३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेगयायात्राविधिकथनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

अग्निरुवाच—

कात्यायनो मुनीनाह यथा श्राद्धं तथा वदे ।
गयादौ श्राद्धं कुर्वीत संक्रान्त्यादौ विशेषतः ॥ १
काले[1] चापरपक्षे च चतुर्थ्यामूर्ध्वमेव वा ।
सम्पाद्य[2] च पदर्क्षे च पूर्वेद्युश्च निमन्त्रयेत् ॥ २
यतीन्गृहस्थसाधून्वा स्नातकाञ्श्रोत्रियान्द्विजान् ।
अनवद्यान्कर्मनिष्ठाञ्छिष्टानाचारसंयुतान् ॥ ३

अग्निदेव बोले—जिस प्रकार कात्यायन ने मुनियों को श्राद्ध के सम्बन्ध में बतलाया था, उसी प्रकार मैं आप लोगों से बतलाता हूँ । गया आदि में

१ ख. ग. घ. छ. °ले वाऽप° । २ क. ङ. च. संपद्ये च यदाज्ञा च ।

वैसे तो श्राद्ध करना ही चाहिए, किन्तु सङ्क्रान्ति आदि में उसे विशेष रूप से करना चाहिए। शुक्लपक्ष की चतुर्थी या पंचमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध से पहिले दिन यतियों, गृहस्थों, साधुओं, स्नातकों, अनिन्द्य कर्म करने वालों, कर्मनिष्ठों, शिष्यों तथा आचारवान् श्रोत्रिय ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए। १-३।

वर्जयेच्छ्वित्रिकुष्ठा (ष्ठ्या) दीन्न गृह्णीयान्निमन्त्रितान्।
[1]स्नाताञ्शुचींस्तथाऽऽचान्तान्प्राङ्मुखान्देवकर्मणि ॥ ४
उपवेशयेत्त्रीन्पित्र्यानेकैकमुभयत्र[2] वा।
एवं मातामहादेश्च शाकैरपि च कारयेत् ॥ ५

श्वेत तथा अन्य प्रकार के कुष्टरोग के रोगियों को तथा ऐसे लोगों को जो कहीं निमन्त्रित हो चुके हैं, छोड़ देना चाहिये। देवकर्म में स्नान तथा आचमन से पवित्र ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख करके बिठाना चाहिए। पितृकर्म में तीन ब्राह्मणों को या दोनों कर्मों में एक-एक ब्राह्मण को ही निमन्त्रित करना चाहिए। मातामह आदि के श्राद्ध के लिये कुछ न हो तो शाक आदि से ही उसे सम्पन्न कर देना चाहिए। ४-५।

तदह्नि ब्रह्मचारी स्यादकोपोऽत्वरितो मृदुः।
सत्योऽप्रमत्तोऽनध्वन्यो ह्यस्वाध्यायश्च वाग्यतः ॥ ६
सर्वांश्च पंक्तिमूर्धन्यान्पृच्छेत्प्रश्ने तथाऽऽसने।
दर्भानास्तीर्य द्विगुणान्पित्र्ये दैवादिकं चरेत् ॥ ७
विश्वान्देवानावाहयिष्ये पृच्छेदावाहयेति च।
विश्वे देवास आवाह्य विकीर्याथ यवाञ्जपेत् ॥ ८

श्राद्ध के दिन श्राद्ध करने वाले को क्रोध, शीघ्रता, असावधानी, यात्रा तथा स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, अपितु उसे वाक्संयमी, मृदु, सत्यभाषी, तथा ब्रह्मचारी रहना चाहिए। पंक्तिपावन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को कुशासन पर बैठाकर उनका कुशलक्षेम पूछना चाहिए। पितरों के लिए ब्राह्मणों से दूने कुशासनों को बिछाना चाहिए। देवकर्म से श्राद्ध प्रारम्भ करना चाहिए। श्राद्ध करने वाला—"मैं सभी देवताओं का आवाहन करूँगा" इस प्रकार (पुरो-

---

१ ख. ग. घ. छ. 'स्तथा दान्ता'। २ क. ङ. च. 'न्पित्र्य एकै'। घ. छ 'न्पित्र्यादीने'।

हित से) पूछे और उसके द्वारा 'बुलाइये' इस प्रकार अनुमति प्राप्त करके सभी देवताओं का आवाहन करना चाहिए। इस समय यव को भी बिखेरना चाहिए। ६-८।

विश्वेदेवाः श्रृणुतेमं [1]पितृनावाहयिष्येति[2]।
पृच्छेदावाहयेत्युक्त उशन्तस्त्वा समाह्वयेत् ॥ ९
तिलान्विकीर्याथ जपेदापस्त्वित्यादि[3] पात्रके।
सपवित्रे[4] निषिञ्चेद्वा शं नो [5]देवीरिति[6] तृ(ह्यृ) चा ॥१०

'विश्वेदेवाः श्रृणुतेमं··········बर्हिषि मादयध्वम्' इस मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् पितृकर्म में नियुक्त ब्राह्मणों से पूछे—'मैं पितरों का आवाहन करूँगा'। ब्राह्मण कहें—'आवाहन करो'। तब 'उशन्तस्त्वा०' इस मन्त्र का पाठ करते हुए आवाहन करे। फिर 'अपहता असुरा०' इस मन्त्र से तिल बिखेरकर 'आयान्तु नः' इत्यादि मन्त्र का जाप करे। इसके बाद पवित्रक सहित अर्घ्य-पात्र में 'शं नो देवी०' इस मन्त्र से जल डाले। ९-१०।

यवोऽसीति यवान्दत्त्वा पित्रे सर्वत्र वै तिलान्।
तिलोऽसि[7] सोमदेवत्यो गोसवे[8] देवनिर्मितः ॥ ११
प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितृ (निमा) ल्लोकाँन्प्रीणया
हि नः स्वधेति।
श्रीश्चतेति ददेत्पुष्पं पात्रे हैमेऽथ राजते ॥ १२

उसके बाद 'यवोऽसि०' इस मन्त्र से सभी देवताओं को यव प्रदान करे। पितरों को 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो०' इस मन्त्र का पाठ करते हुए सर्वत्र तिल ही दान करना चाहिए। 'श्रीश्चते०' इस मन्त्र से सोने या चाँदी के पात्र में फूलों को चढ़ाना चाहिए। ११-१२।

औदुम्बरे वा खड्गे वा पूर्णपात्रे प्रदक्षिणम्।
देवानामपसव्यं तु पितृणां सव्यमाचरेत् ॥
([9]एकैकस्य एकैकेन सपवित्रकरेषु च ॥ १३

---

१ क. ङ. च. °यिष्यति। २ घ. छ. °ष्ये च। पृ°। ३ ख. ग. °दाहन्वित्या°। घ. छ. °दायान्त्वित्यादि पित्र°। ४ क. ङ. च. समयेऽथ नि°। ५ घ. छ. °वीरभितृ°। ६ क. °तिद्वृचा। ७ क. ङ. च. °सि पितृ दे°। ८ क. ङ. च. गासवो। ९ एकैकस्य··········संस्रवान्प्रथमे चरेत् नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु।

या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्षा (क्ष्या) उत पार्थिवीर्याः ।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः[1] श ँ स्योना भवन्तु ॥१४
विश्वेदेवा एव वोऽर्घः स्वाहा च पितरेष ते ।
स्वधैवं पितामहादेः संस्रवान्प्रथमे चरेत् ॥ १५

तदनन्तर गूलर की लकड़ी के पात्र में या तलवार में या पत्तों के बने हुए दोने में पितरों का ध्यान करके उस पात्र की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। देव-कर्म में यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर रखना चाहिए। तत्पश्चात् पवित्री पहने हुए हाथ पर एक-एक पात्र (दोना) में जल रखकर 'या दिव्या आपः०' मन्त्र से सभी देवताओं को अर्घ्य प्रदान करे। (इसी मन्त्र में) 'पितरेष ते स्वधा' जोड़कर पितरों को भी अर्घ्य देना चाहिए। १३-१५।

पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ।
अत्र[2] गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनदानकम् ॥ १६
घृताक्तमन्नमुद्धृत्य पृच्छत्यग्नौ करिष्येति ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयात्साग्निकोऽनले ॥ १७
अनग्निकः पितृहस्ते सपवित्रे तु मन्त्रतः ।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाऽऽहुतिः ॥ १८

उसके बाद 'पितृभ्यः स्थानमसि०' कहकर पात्र को टेढ़ा करके नीचे रख देना चाहिए। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा वस्त्र का दान करना चाहिए। तत्पश्चात् घृत मिश्रित अन्न उठाकर पुरोहित से पूछना चाहिए—'क्या मैं इससे हवन करूँ?' 'पुरोहित के द्वारा 'करो' इस अनुज्ञा को प्राप्त कर लेने पर यदि श्राद्धकर्ता साग्निक (अग्निहोत्री) हो तो उसे हवन करना चाहिए। यदि निरग्नि (अनग्निहोत्री) हो तो पितर के पवित्रीयुक्त हाथ में (अर्थात् पितृ-पात्र में) मन्त्रपूर्वक उस (घृतमिश्रित अन्न को)छोड़ देना चाहिए। 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्र से पहली आहुति देनी चाहिए। १६-१८।

सोमाय पितृमतेऽथ यमायाङ्गिरसेऽपरे ।
हुतशेषं[3] चान्नं पात्रे दत्त्वा पात्रे समालभेत् ॥ १९

---

१ घ. छ. °पः शिवाः संश्योना सुहवा भ° । २ क. ङ. च. अन्नं ग° ।
३ क. ङ. च. °शेषमथो ह्यन्नं कर्ता सर्वं स° ।

पृथिवी ते पात्रं[1] द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्यमुखेऽमृतेऽमृतं-
जुहोमि स्वाहेति ।।
जप्त्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ।। २०
अपहतेति तिलान्विकीर्याह्नं प्रदापयेत् ।
जुषध्वमिति चोक्त्वाऽथ गायत्र्यादि ततो जपेत् ।। २१

'सोमाय पितृमते स्वाहा' इससे दूसरी आहुति और 'यमाय अङ्गिरसे स्वाहा' इससे तीसरी आहुति देनी चाहिए। हवन से अवशिष्ट अन्न को पात्र में रखकर उसका स्पर्श करना चाहिए। तदनन्तर 'पृथ्वी ते पात्रं०' मन्त्र पढ़कर 'इदं विष्णुः०' कहते हुए अन्न के ऊपर ब्राह्मण का अंगूठा रखवाना चाहिए। फिर 'अपहता०' इस मन्त्र से तिल बिखेर कर अन्न दिलवाना चाहिए। तत्पश्चात् 'जुषध्वम्' कहकर गायत्री आदि का जप करना चाहिए ।१९-२१।

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमः स्वाहायै[2] स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ।। २२
[3]तृप्ताञ्ज्ञात्वाऽन्नं[4] विकिरेदपो दद्यात्सकृत्सकृत् ।
गायत्रीं पूर्ववज्जप्त्वा मधु[5] वातेति वै जपेत् ।। २३
तृप्ताः स्थ इति सम्पृच्छेत्तृप्ताः स्म इति वै वदेत् ।
शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमथैकतः ।। २४
उद्धृत्योच्छिष्ट पार्श्वे तु कृत्वा चैवावनेजनम् ।
दद्यात्कुशेषु त्रीन्पिण्डानाचान्तेषु परे जगुः ।। २५

उसके बाद 'देवताभ्यः०' मन्त्र का पाठ करना चाहिए। पितरों को तृप्त समझकर अन्न बिखेरते हुए बारी-बारी से (सबको)जल प्रदान करना चाहिए। फिर पूर्ववत् गायत्री का जप करके 'मधुवाता०' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए और पूछना चाहिए—'आप तृप्त तो हो गये हैं ? और स्वयं यह उत्तर भी देना चाहिए—'हाँ, हम तृप्त हो गये हैं।' तत्पश्चात् शेष अन्न भी दे करके सब अन्न को एक जगह उठाकर रख देना चाहिए और उस स्थान में अवनेजन

---

१ घ. छ. °त्रं द्यौः पि° । २ छ. °मः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते । तृ° । ३ ख. ग.° त्वाऽथविकिरे दर्भे द° । ४ घ. ङ. च. °न्नं प्रकि° । ५ ख. ग. घ. छ. °धुमध्विति ।

(पहले से पिण्डिका के समीप एक पात्र में रखा हुआ सुरक्षित जल) छिड़क देना चाहिए। दूसरे आचार्यों का मत है कि पहले कुशों के ऊपर तीन पिण्डों को रखकर तब आचमन करना चाहिए। २२-२५।

आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानि प्रदापयेत्।
अक्षय्योदकमेवाथ आशिषः प्रार्थयेन्नरः[1] ॥ २६
अघोराः पितरः सन्तु गोत्रं नो वर्धतां सदा।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥ २७
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्‌वहुदेयं च नोऽस्त्विति।
अन्नं च नो वहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥ २८
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन।२८½॥

आचमन के बाद जल, पुष्प, अक्षत तथा अक्षय्य उदक प्रदान करके पितरों से आशीर्वाद के लिए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए—'हमारे पितर सौम्य हों, हमारा गोत्र सदा बढ़ता रहे, हमारे वंश में दानियों, वेदों तथा सन्तान की (सदैव) वृद्धि होती रहे। हमारी श्रद्धा कभी नष्ट न हो, हमारे पास प्रचुर मात्रा में देय वस्तुयें हों, हमारे पास धन भी बहुत हो जिससे हम अतिथियों को प्राप्त करते रहें। हमसे याचना करने वाले बहुत हों, किन्तु हम किसी से कुछ भी याचना न करें। २६-२८½।

स्वधावाचनीयान्कुशानास्तीर्य सपवित्रकान् ॥ २९
स्वधां वाचयिष्ये पृच्छेदनुज्ञातश्च वाच्यताम्।
पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहमुख्यके ॥ ३०
स्वधोच्यतामस्तु स्वधा[2] उच्यमानस्तथैव च।
अपो निषिञ्चेदुत्तानं पात्रं कृत्वाऽथ दक्षिणाम् ॥ ३१
यथाशक्ति प्रदद्याच्च दैवे[3] पित्रेऽ (त्र्येऽ) थ वाचयेत्।
विश्वेदेवाः प्रीयन्तां च वाजे वाजे विसर्जयेत् ॥ ३२
आ मा वाजस्येत्यनुव्रज्य कृत्वा विप्रान्प्रदक्षिणम्।
गृहे[4] विशेदमावास्यां मासि मासि चरेत्तथा ॥ ३३

तदनन्तर जिनके ऊपर 'स्वधा' पाठ किया जायेगा, ऐसे कुशों को पवित्री के साथ बिछाकर यह कहना चाहिए कि 'मैं स्वधा का पाठ करूँगा।' 'पाठ

---

१ क. ङ. च. येत्ततः। अ॰। २ ख. ग. ॰धा तस्य चानन्तरेषु च। अ॰। च ॰धा स्तव्यमा॰। ३ क. ख. ॰वे विप्रेऽथ। च. ॰वे पित्रे तथाऽर्चये॰। ४ क. ङ. च. गृहं।

करो'—इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करके 'पितृभ्यः स्वाहा, पितामहेभ्यः स्वाहा, प्रपितामहेभ्यः स्वाहा' इस प्रकार पाठ करना चाहिए। तदनन्तर जल छिड़क कर पात्र को उलटा करके यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। देवकर्म और पितृकर्म में प्रत्येक श्राद्ध में 'विश्वेदेव प्रसन्न हों' यह कहकर उनका विसर्जन करना चाहिए। तदनन्तर 'आ मा वाजस्य०' इस मन्त्र से ब्राह्मणों के पीछे-पीछे चलकर उनकी परिक्रमा करके घर में प्रवेश करना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक मास की अमावस्या तिथि में श्राद्ध करना चाहिए। २९-३३।

एकोद्दिष्टं प्रवक्ष्यामि श्राद्धं पूर्ववदाचरेत्।
एकं पवित्रमेकार्घमेकं पिण्डं प्रदापयेत्॥ ३४
नावाहनाग्नौकरणं विश्वेदेवा न चात्र हि।
तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति वदेत्सुस्वदितं द्विजः॥ ३५
उपतिष्ठतामित्यक्षय्ये विसर्गे चाभिरम्यताम्।
अभिरताः स्म इत्यपरे शेषं पूर्ववदाचरेत्॥ ३६

अब मैं (मृत प्राणिविशेष के लिए अनुष्ठित) एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध की विधि बतलाऊँगा। यह श्राद्ध पहले ही की तरह करना चाहिए। इसमें एक पवित्री, एक अर्घ तथा एक ही पिण्ड दिलाना चाहिए। किन्तु इसमें आवाहन, अग्न्याहुति तथा विश्वेदेव का पूजन नहीं करना चाहिए और तृप्ति के प्रश्न में ब्राह्मण को 'स्वदितम्' तथा 'सुस्वदितम्' कहना चाहिए। अक्षय्य जल आदि प्रदान करते समय 'उपतिष्ठताम्' और विसर्जन के समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिए। अन्य आचार्यों के अनुसार इसमें 'अभिरताः स्म' कहना चाहिए। शेष कर्म पहले के समान ही करना चाहिए। ३४-३६।

सपिण्डीकरणं वक्ष्ये अब्दान्ते मध्यतोऽपि वा।
पितृणां त्रीणि पात्राणि एकं प्रेतस्य पात्रकम्॥ ३७
सपवित्राणि चत्वारि तिलपुष्पयुतानि च।
गन्धोदकेन युक्तानि पूरयित्वाऽभिषिञ्चति॥ ३८
प्रेतपात्रं पितृपात्रे ये सम (मा) ना इतिद्वयात्।
पूर्ववत् पिण्डदानादि प्रेतानां पितृता भवेत्॥ ३९

अब मैं सपिण्डीकरण श्राद्ध बतलाऊँगा। यह श्राद्ध वर्ष के अन्त में या वर्ष के बीच में ही करना चाहिए। इसमें तीन पात्र पितरों के लिए और एक छोटा-सा पात्र प्रेत के लिए हुआ करता है। तिल, पुष्प और पवित्री से युक्त

चारों पात्रों को गन्ध तथा जल से भरकर 'ये समाना०' इत्यादि मन्त्र से प्रेतपात्र तथा पितृपात्र का अभिषेक करके पहले की तरह पिण्डदान आदि करना चाहिए। इससे प्रेत पितृवत् हो जाते हैं। ३७-३६।

अथाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं वक्ष्ये सर्वं तु पूर्ववत्।
जपेत्पितृमन्त्रवर्जं[1] पूर्वाह्णे तत्प्रदक्षिणम्॥ ४०
उपचारा ऋजुकुशास्तिलार्थैश्च यवैरिह।
तृप्तिप्रश्नस्तु सम्पन्नं सुसम्पन्नं वदेद्द्विजः॥ ४१
दध्यक्षतवदराद्याः पिण्डा नान्दीमुखान्पितृन्।
आवाहयिष्ये पृच्छेच्च प्रीयतामिति चाक्षये॥ ४२
नान्दीमुखाश्च पितरो वाचयिष्येऽथ पृच्छति।
नान्दीमुखान्पितृगणान्प्रीयन्तामित्यथो वदेत्॥ ४३
नान्दीमुखाश्च पितरस्तत्पिता प्रपितामहः।
मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातृकामहः॥ ४४
स्वधाकारान्न[2] युञ्जीत युग्मान्विप्रांश्च भोजयेत्॥ ४४½

अब मैं आभ्युदयिक-श्राद्ध की विधि बतलाऊँगा। इसमें सब कुछ पहले की तरह ही होता है। किन्तु (इसमें) पितृमन्त्र को छोड़कर (अन्य) मन्त्रों का जप करना चाहिए। पूर्वाह्ण में पितरों की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। अन्य क्रियाओं को सीधे कुशों, तिल तथा यव से करना चाहिए और तृप्तिप्रश्न के लिए ब्राह्मण को 'सम्पन्न' तथा 'सुसम्पन्न' शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। नान्दीमुख पितरों को दही, अक्षत, तथा बेर आदि के पिण्ड देने चाहिए। 'मैं आवाहन करूँगा'—ऐसा प्रश्न पूछना चाहिये तथा अक्षय वस्तु समर्पण करते समय 'तृप्त होइये'—ऐसा कहना चाहिये। फिर 'नान्दीमुख पितरों से निवेदन करूँगा'—यह पूछना चाहिए और 'नान्दीमुख पितर, उनके पिता, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह तृप्त हों' यह कहना चाहिये। इस श्राद्ध में 'स्वधा' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये और युग्म (जैसे दो चार आदि) ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ४०-४४½।

तृप्तिं वक्ष्ये पितृणां च ग्राम्यैरोषधिभिस्तथा॥ ४५
मासं तृप्तिस्तथाऽऽरण्यैः कन्दमूलफलादिभिः।
मत्स्यैर्मासद्वयं [3]मार्गैस्त्रयं वै शाकुनेन च॥ ४६

---

१ च. °जं कृतद°। २ च °कारं नियु°। ३ क. ङ. च. मासत्रयं।

चतुरो रौरवेणाथ पञ्च षट्छागलेन तु ।
कूर्मेण सप्त चाष्टौ च वाराहेण नवैव तु ॥ ४७
मेषमांसेन दश च माहिषैः [1]पार्षतैः शिवैः ।
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ॥ ४८

अब मैं पितरों को तृप्ति देने वाली ग्राम्यवस्तुओं तथा औषधियों का वर्णन करूँगा । जंगली कन्द, मूल तथा फल आदि प्रदान करने से पितरों की तृप्ति एक मास तक होती है । मछली से दो मास, हरिण के मांस से तीन मास, पक्षियों के मांस से चार मास, रुरु (मृग) के मांस से पांच मास, बकरे के मांस से छह मास, कछुए के मांस से सात मास, सुअर के मांस से नौ मास और भैंसे, भेंड़े तथा सियार के मांस से श्राद्ध करने से दस मास तक के लिए तृप्ति हो जाती है । गाय के दूध या खीर से श्राद्ध करने पर एक वर्ष तक तृप्ति होती है । ४५-४८ ।

[2]वाध्रीनसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादश वार्षिकी ।
खड्गमांसं कालशाकं लोहितच्छागलो मधु ॥ ४९
महाशल्काश्च वर्षासु मघाश्राद्धमथाक्षयम् ।
मन्त्राध्याय्यग्निहोत्री च शाखाध्यायी षडङ्गवित् ॥ ५०
तृणाचिकेतस्त्रिमधुर्धर्मद्रोणस्य[3] पाठकः ।
त्रिषु (सु) पर्णज्येष्ठ सामज्ञानी स्युः पङ्क्तिपावनाः ॥ ५१

वाध्रीनस (परिपक्व बकरे) के मांस से बारह वर्षों तक तृप्ति होती है । वर्षा ऋतु और मघा नक्षत्र में गेंडे के मांस, कालशाक (श्राद्ध के लिये प्रसिद्ध एक साग) लाल रंग के बकरे, मधु और महाशल्क (बड़ी मछली—बोआर, रोहू आदि) से किया जाने वाला श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करने वाला हुआ करता है । मन्त्रों का अध्ययन करने वाला अग्निहोत्री, वेद की शाखाओं का अध्ययन करने वाला, ऋग्वेद की 'मधुवाता०' आदि तीन ऋचाओं का ज्ञाता, धर्मद्रोण का पाठक, त्रिसुपर्ण और ज्येष्ठ मास का ज्ञाता ये ब्राह्मण पंक्तिपावन ब्राह्मण कहे जाते हैं । ४९-५१ ।

काम्यानां कल्पमाख्यास्ये प्रतिपत्सु धनं बहु ।
स्त्रियः परा द्वितीयायां चतुर्थ्यां [4]धर्मकामदः ॥ ५२

---

१ च. पार्वतैः । २ घ. छ. वार्ध्रीनसस्य । ३ क. च. ध्रुर्वलद्रो० । ४ क. कर्मकादयः ।

पञ्चम्यां पुत्रकामस्तु षष्ठ्यां च श्रैष्ठ्यभागपि ।
कृषिभागी च सप्तम्यामष्टम्यामथलाभकः ॥ ५३
नवम्यां च एकसफा दशम्यां गोगणो भवेत् ।
एकादश्यां परीवारो द्वादश्यां धनधान्यकम् ॥ ५४
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां च शस्त्रतः ।
मृतानां श्राद्धं सर्वाप्तममावस्यां समीरितम् ॥ ५५

अब मैं काम्यकल्प का (अर्थात् जिस-जिस दिन श्राद्ध करने से जो-जो कामनायें पूरी होती हैं उनका) वर्णन करूँगा । प्रतिपदा को श्राद्ध करने से बहुत धन मिलता है। द्वितीया को श्राद्ध करने से सुन्दरी स्त्रियाँ मिलती हैं। चतुर्थी तिथि के दिन श्राद्ध करने से धर्म और काम की प्राप्ति होती है। पुत्र की कामना करने वाला पंचमी को, श्रेष्ठता चाहने वाला षष्ठी को, खेती में उन्नति चाहने वाला सप्तमी को और अर्थ चाहने वाले व्यक्ति को अष्टमी के दिन श्राद्ध करना चाहिये। नवमी को श्राद्ध करने से एक खुर वाले (घोड़े आदि) पशुओं की प्राप्ति होती है तथा दशमी को श्राद्ध करने से गायों की वृद्धि होती है। एकादशी को श्राद्ध करने से परिवार की वृद्धि होती है और द्वादशी को श्राद्ध करने से घनधान्य की वृद्धि होती है। त्रयोदशी को श्राद्ध करने से बन्धुओं में श्रेष्ठता आती है और चतुर्दशी को श्राद्ध करने से शस्त्रों से रक्षा होती है। अमावस्या का श्राद्ध मृतकों को सब कुछ दिलाने वाला कहा गया है। ५२-५५ ।

सप्तव्याधा [1]दशारण्ये मृगाः कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ ५६ ॥
तेऽपि[2] जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥ ५७
श्राद्धादौ पठिते श्राद्धं पूर्णं स्याद्ब्रह्मलोकदम् ।
श्राद्धं कुर्याच्च पुत्रादिः पितुर्जीवति तत्पितुः ॥ ५८
तत्पितुस्तत्पितुः कुर्याज्जीवति प्रपितामहे ।
पितुः पितामहस्याथ परस्य प्रपितामहात् ॥ ५९
एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके ।
श्राद्धकल्पं पठेद्यस्तु स लभेच्छाद्धकृत्फलम् ॥ ६०

---

१ घ. छ, दशार्णेषु । २ घ. छ. तेऽभजा ।

'दशारण्य के रहने वाले सात व्याध, कालंजर पर्वत के रहने वाले मृग, शरद्वीप के रहने वाले हंसों ने कुरुक्षेत्र में वेदों में पारङ्गत ब्राह्मणों के रूप में जन्म प्राप्त किया। वे बहुत लम्बे मार्ग पर चलते रहे। आप लोग भी उनके साथ चलते रहें'—श्राद्ध के प्रारम्भ में इन वाक्यों का पाठ करने से श्राद्ध पूर्ण तथा ब्रह्मलोक को प्रदान करने वाला होता है। पिता के जीवन-काल में पुत्र को अपने पितामह का श्राद्ध करना चाहिए। पितामह के जीवित-रहते हुए प्रपितामह का श्राद्ध करना चाहिए, प्रपितामह के जीवनकाल में उसके पिता का श्राद्ध करना चाहिए। इसी प्रकार मातामह आदि का श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध-कल्प का पाठ करने वाले को भी श्राद्ध-करने का (ही) फल प्राप्त होगा। ५६-६०।

तीर्थे युगादौ मन्वादौ श्राद्धं दत्तमथाक्षयम्।
अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा॥ ६१
तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च।
फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा॥ ६२
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी।
श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा॥ ६३
कार्तिकी फाल्गुनी तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी [1]सिता।
स्वायंभुवाद्या मनवस्तेषामाद्याः किलाक्षयः॥ ६४
गया प्रयागो गङ्गा च कुरुक्षेत्रं च नर्मदा।
श्रीपर्वतः प्रभासश्च शालग्रामो वाराणसी॥ ६५
गोदावरी तेषु श्राद्धं श्रीपुरुषोत्तमादिषु॥ ६६

तीर्थ स्थान में, युगादि और मन्वादि में किया हुआ श्राद्ध अक्षय फल देने वाला हुआ करता है। आश्विन शुक्ल की नवमी, कार्तिक की द्वादशी, माघ तथा भाद्रपद की तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक तथा फाल्गुन की पूर्णिमा, ज्येष्ठ की पञ्चदशी और स्वायम्भुव आदि मनु अक्षय फल को प्रदान करने वाले श्राद्ध के लिए उपयुक्त माने गये हैं। गया, गंगा, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, श्रीपर्वत, प्रभास, शालग्राम, काशी, गोदावरी और पुरी आदि स्थानों में श्राद्ध करने का बड़ा महत्त्व माना गया है। ६१-६६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्राद्धकल्पवर्णनं नाम सप्तदशाधिक-शततमोऽध्यायः। ११७

---

१ च. तथा।

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भारतवर्षवर्णनम्

अग्निरुवाच—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम नवसाहस्रविस्तृतम् ॥१
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः सुक्तिमान्हे (न्हि ?) मपर्वतः ॥२
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥३
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥४
योजनानां सहस्राणि द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ।
नव भेदा भारतस्य मध्यभेदेऽथ पूर्वतः ॥५

अग्निदेव बोले—समुद्र से उत्तर तथा हिमालय से दक्षिण की ओर जो वर्ष है, उसी का नाम भारत है । वह नौ सहस्र योजन में फैला हुआ है । स्वर्ग तथा मोक्ष पाने वालों के लिए यह भारतवर्ष (कर्मभूमि) है । यहाँ सात कुल पर्वत हैं; जिनके नाम हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, हिमालय, विन्ध्य और पारियात्र । इन्द्र, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गान्धर्व और वारुण द्वीपों में ही नवम द्वीप भारत है, जो समुद्रों से घिरा हुआ है । दक्षिण से उत्तर तक यह द्वीप हजारों योजन फैला हुआ है । भारत के नौ विभाग हैं । १-५ ।

किराता यवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यतः ।
वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवास्तथा ॥६
विन्ध्याच्च नर्मदाद्याः स्युः सह्यात्तापी पयोष्णिका ।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणादिकास्तथा ॥७

मलयात्कृतमालाद्यास्त्रिसामाद्या महेन्द्रजाः ।
कुमाराद्याः शुक्तिमतो हिमाद्रेश्चन्द्रभागका ।।
पश्चिमे कुरुपाञ्चालमध्यदेशादयः स्थिताः ।।८

मध्य विभाग में पूर्व की ओर किरात, यवन तथा श्रौत और स्मार्त ब्राह्मण निवास करते हैं। यहाँ पारियात्र पर्वत से निकलने वाली (कई) नदियाँ हैं। विन्ध्याचल से नर्मदा आदि, सह्यपर्वत से तापी पयोष्णिका, गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा और वेणी, मलय पर्वत से कृतमाला आदि, महेन्द्र पर्वत से त्रिसामा आदि, शुक्तिमान् से कुमारा आदि और हिमालय से चन्द्रभागा आदि नदियाँ निकली हुई हैं। पश्चिम में कुरु, पाञ्चाल तथा मध्यदेश आदि स्थित हैं।६-८

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भारतवर्षवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११८

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाद्वीपादिवर्णनम्

अग्निरुवाच—
लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं समावृतम् ।
लक्षयोजनमानेन [1]क्षारोदेन समन्ततः ।।१
संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ।
सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरास्तथा ।।२
स्याच्छान्तभयः शिशिरः सुखोदय इतः परः ।
आनन्दश्च शिवः क्षेमो ध्रुवस्तन्नाम वर्षकम् ।।३
मर्यादाशैलो गोमेधश्चन्द्रो[2] नारददुन्दुभी ।
सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजास्तज्जनाः शुभाः ।।४
नद्यः प्रधानाः सप्तात्र प्लक्षाकान्तिकेषु च ।
जीवनं पञ्चसाहस्रं धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ।।५
आर्यकाः कुरवश्चैव विविंशा[3] भाविनश्च[4] ते ।
विप्राद्यास्तैश्च सोमोऽर्च्यो द्विलक्षश्चैव[5] प्लक्षकः ।।६
मानेनेक्षुरसोदेन वृतो द्विगुणशाल्मलः ।।६३

---

१ घ. छ. क्षीरोदेन । २ क. ग. °मेरुश्च° । ३. क निर्विशा । च. विदिशो ।
४ च. मापिनिश्चिते । ५. घ. छ. क्षश्चाब्धिलक्ष° ।

अग्निदेव बोले—जम्बू द्वीप एक लाख योजन विस्तृत है। वह चारों ओर से उतने ही योजन लम्बे खारे सागर से घिरा हुआ है। (उसी तरह) क्षार समुद्र को घेर कर प्लक्ष द्वीप स्थित है। मेधातिथि के सात पुत्र थे—शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेम तथा ध्रुव। यही प्लक्ष द्वीप के स्वामी हैं। उन्हीं के नाम पर वर्षों के नाम हैं। गोमेध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमनस, वैभ्राज, तर्जन—ये प्लक्ष-द्वीप के सीमा पर्वत हैं। प्लक्ष द्वीप में सात प्रधान नदियाँ हैं। वहाँ जीवनकाल पांच हजार वर्षों का होता है और वर्णाश्रम धर्म का पालन किया जाता है। वहाँ की आर्यक, कुरु, विविंश तथा भाविन् नामक ब्राह्मण इत्यादि जातियाँ चन्द्रमा की उपासना करती हैं। प्लक्षद्वीप का क्षेत्रफल दो लाख योजन है। वह उतने ही विस्तार वाले गन्ने के रस के समुद्र से घिरा हुआ है। प्लक्ष-द्वीप से दुगुना बड़ा शाल्मल द्वीप है।१-६½।

वपुष्मतः सप्त पुत्राः शाल्मलेशास्तथाऽभवन् ॥७
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो लोहितः क्रमात् ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभो नाम वर्षकः ॥८
द्विगुणो द्विगुणेनैव सुरोदेन समावृतः ।
कुमुदश्चानलश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः ॥९
द्रोणः कङ्कोऽथ महिषः ककुद्मान्सप्तनिम्नगाः ।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः ॥१०
वायुरूपं यजन्तिस्म[1] सुरोदेनायमावृतः[2] ॥१०½

वपुष्मान् के सात पुत्र थे—श्वेत, हरित, जीमूत, लोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ। यही शाल्मल द्वीप के स्वामी हैं। वहाँ के वर्षों के नाम इन्हीं के नामों पर पड़े हैं। वह द्वीप अपने से दुगुने विस्तार वाले सुरा के समुद्र से घिरा हुआ है। वहाँ पर सात पर्वत हैं—कुमुद, अनल, बलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष और ककुद्मान्। वहाँ पर कपिला, अरुणा, पीता और कृष्णा आदि सात नदियाँ हैं। वहाँ ब्राह्मण आदि जातियाँ वायु-देवता की उपासना करती हैं। (जैसे कि पहले कहा जा चुका है) यह चारों ओर से सुरासागर से घिरा हुआ है। ७-१०½।

---

१ च. भजन्ति। २. च. °देन समा°।

ज्योतिष्मतः कुशेशाः स्युरुद्भिदो[1] वेणुमान्सुतः ॥११
[2]द्वैरथी लम्बनी धैर्यः कपिलश्च प्रभाकरः ।
विप्राद्या दमिमुख्यास्तु[3] ब्रह्मरूपं यजन्ति ते ॥१२
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा ।
कुशेशशयो हरिः शैलो वर्षार्थं मन्दराचलः ॥१३
वेष्टितोऽयं घृतोदेन क्रौञ्चद्वीपेन सोऽप्यथ ।
क्रौञ्चेश्वरा द्युतिमतः पुत्रास्तन्नामवर्षकाः ॥१४
([4]कुशलो[5] मनोनुगश्चोष्णः[6] प्रधानोऽथान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिः सप्त सप्त शैलाश्च निम्नगाः) ॥१५
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
देवावृत्पुण्डरीकश्च दुन्दुभिर्द्विगुणो[7] मिथः ॥१६
द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा ।
पुष्कराः पुष्कलः[8] धन्याः[9] तिर्थ्या[10] विप्रादयो हरिम् ॥१७

ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हैं--उद्भिद, वेणुमान्, द्वैरथी, लम्बनी, धैर्य, कपिल और प्रभाकर। ये सभी कुशद्वीप के स्वामी हैं। वहाँ धर्म आदि ब्राह्मण जातियाँ ब्रह्मा की उपासक हैं। कुश-द्वीप में विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवत्, कुशेशय, हरिशैल और मन्दराचल—ये सात पर्वत हैं। वह द्वीप घी के समुद्र से घिरा हुआ है और उस समुद्र को घेरे हुए है क्रौञ्चद्वीप। क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हैं। उन्हीं के नामों से वहाँ के वर्ष प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम हैं—कुशल, मनोनुग, उष्ण, प्रधान, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि। वहाँ क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवावृत्, पुण्डरीक, दुन्दुभि और द्विगुण नामक सात पर्वत और सात नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त और भी द्वीप हैं, जिनमें द्वीपों के अनुसार पर्वत भी हैं। इन द्वीपों में बहुत से श्रेष्ठ तालाब भी हैं। वहाँ ब्राह्मण आदि जातियाँ भगवान् विष्णु की उपासना किया करती हैं। ११-१७।

---

१ घ. छ. °रुद्गिजो धेनुमा°। २ क. द्वैरथो। ३ घ. छ. दधिमु°। ४ कुशलो ....निम्नगाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ५ ख. ग. 'लो मुन्नटश्चो°। च. °लोमानु°। ६ ख. ग. च. 'ष्णः पीवरोऽप्यन्ध°। ७ क. ङ. °गुणामि°। ८ क. ङ. ष्करावश्यां तिर्थ्यां। च. °ष्करावत्यां तिर्थ्यां। ९ घ. छ. °न्यास्तीर्था वि°। १० ख. ग. °स्तिथ्या वि°।

यजन्ति क्रौञ्चद्वीपस्तु दधिमण्डोदकावृतः ।
संवृतः शाकद्वीपेन[1] भव्याच्छाकेश्वराः सुताः ॥१८
जलदश्च[2] कुमारश्च सुकुमारो [3]मणीचकः ।
कुशोत्तरथो[4] (रोऽथ) मोदाकी द्रुमस्तन्नामवर्षकाः ॥१९
उदयाख्यो जलधरो रैवतः [5]श्यामकोद्रकौ[6] ।
आम्बिकेयस्तथा रम्यः केशरी सप्तनिम्नगाः ॥२०
मगा मगधमानस्यामन्दगाश्च द्विजातयः ।
यजन्ति सूर्यरूपं तु शाकः क्षीराब्धिनाऽऽवृतः ॥२१

क्रौञ्चद्वीप तक्र के समुद्र से घिरा हुआ है और वह समुद्र भी शाकद्वीप से आवेष्टित है । भव्य के पुत्र थे—जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुशोत्तर, मोदाकी और द्रुम । यही इस शाकद्वीप के स्वामी हैं । उन्हीं के नामों पर वहाँ के वर्षों के नाम पड़े हैं । उस द्वीप में उदय, जलधर, रैवत, श्याम, कोद्रक, आम्बिकेय तथा केशरी नामक सात पर्वत हैं और मगा, मगधमानस्या तथा मन्दगा आदि नामों वाली सात नदियाँ हैं । वहाँ की द्विजातियाँ सूर्य की उपासना करती हैं । शाकद्वीप दूध के समुद्र से घिरा हुआ है । १८-२१ ।

पुष्करेणाऽऽवृतः सोऽपि द्वौ पुत्रौ सवनस्य च ।
महावीतो धातकिश्च वर्षे द्वे नामचिह्निते ॥२२
एकोऽद्रिर्मानसाख्योऽत्र मध्यतो वलयाकृतिः ।
योजनानां सहस्राणि विस्तारोच्छ्रायतः समः ॥२३
जीवनं दशसाहस्रं सुरैर्ब्रह्माऽत्र पूज्यते ।
स्वादूदकेनोदधिना वेष्टितो द्वीपमानतः ॥२४
ऊनातिरिक्तता चापां समुद्रेषु न जायते ।
उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥२५
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि वै ।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ॥२६

---

१ घ. छ. °न हव्या° । २ च. °लजश्च । ३ घ. छ. °णीवकः । ४ क. ङ. कुसुमोत्तरः ससोदाकिर्द्रुम° । ख. ग. कुसुमोत्तरः समोदाकिर्द्रुम° । ५ क. °मकेदकौ । ६ ख. ग. °कोद्रकौ ।

स्वादूदकात्तु[1] द्विगुणा[2] भूर्हैमी जन्तुवर्जिता ।
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ॥२७
लोकालोकस्तु तमसाऽऽवृतोऽथाण्डकटाहतः ।
भूमिः साऽण्डकटाहेन पञ्चाशत्कोटिविस्तरा ॥२८

वह समुद्र पुष्करद्वीप से आवेष्टित है। पुष्कर द्वीप के स्वामी सवन के दो पुत्र हैं—महावीत और धातकि। उनके नामों से चिह्नित दो वर्ष हैं। वहाँ मानस नामक एक पर्वत भी है, जिसका मध्यभाग वलय (कड़ा) के समान है। वह हजारों योजन लम्बा और उतना ही ऊँचा है। वहाँ के निवासियों की आयु दश हजार वर्षो की होती है। वहाँ पर देवता लोग ब्रह्मा की पूजा किया करते हैं। वह द्वीप स्वादिष्ठ जल के समुद्र से घिरा हुआ है। उस समुद्र का जल घटता बढ़ता नहीं है। अये मुनिराज ! जिस प्रकार शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण-पक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त होने पर दूसरे समुद्रों का जल पचास अङ्गुलियों के बराबर बढ़ता घटता रहता है, उसी प्रकार इस समुद्र का जल बढ़ता घटता नहीं है। उस समुद्र के बाद उससे दुगुनी सोने की भूमि है, जिस पर कोई जन्तु नहीं रहता है। उसके बाद दश हजार योजन विस्तृत लोकालोक पर्वत है जो ब्रह्माण्ड तक अन्धकार से आच्छन्न है। वहाँ की पचास करोड़ योजन में विस्तृत भूमि ब्रह्माण्ड से घिरी हुई है।२२-२८।

इत्याग्नेये महापुराणे महाद्वीपादिवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।११९

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

अग्निरुवाच—

विस्तारस्तु स्मृतो[3] भूमेः सहस्राणि च सप्ततिः ।
उच्छ्रायो दशसाहस्रं पाताल चैकमेककम् ॥१
अतलं वितलं चैव नितलं च गभस्तिमत् ।
महाग्र्यं सुतलं चाग्र्यं पातालं चापि सप्तमम् ॥२

---

१ घ. छ. °दका बहुगु° । २ ख. ग. त्रिगुणा । ३ क. ङ. च. श्रुतो ।

कृष्णपीतारुणाः शुक्लशर्कराः शैलकाञ्चनाः ।
भूमयस्तेषु रम्येषु सन्ति दैत्यादयः सुखम् ॥३
पातालानामधश्चाऽऽस्ते शेषो विष्णुश्च तामसः ॥३½

अग्निदेव बोले—भूमि का विस्तार सत्तर हजार योजन और उसकी ऊँचाई दश हजार योजन मानी जाती है। उसके नीचे एक के बाद एक करके सात पाताल हैं, जिनके नाम अतल, वितल, नितल गभस्तिमान्, महाग्रच, सुतल और अग्र्य। उन पातालों की भूमि काली, पीली तथा लाल है। वहाँ के कङ्कण शुभ्र और पर्वत सुवर्णमय होते हैं। उन रमणीय भूमियों पर दैत्य लोग सुखपूर्वक निवास करते हैं। समस्त पातालों के नीचे शेषनाग के रूप में तमोगुण से युक्त भगवान् विष्णु निवास करते हैं। १-३½।

गुणानन्त्यात्स चानन्तः शिरसा धारयन्महीम् ॥४
भुवोऽधो[1] नरका नैके न पतेत्तत्र वैष्णवः ।
रविणा भासिता पृथ्वी यावत्तावन्नभो मतम् ॥५
भूमेर्योजनलक्षं तु वशिष्ठरविमण्डलम् ।
रवेर्लक्षेण चन्द्रश्च लक्षान्नाक्षत्रमिन्दुतः ॥६

उनमें अनन्त गुण होने के कारण ही वे अनन्त कहलाते हैं। वह अपने शिर पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। पृथ्वी के नीचे अनेक नरक हैं जिनमें भगवान् विष्णु के भक्तों को गिरना नहीं पड़ता है। हे वशिष्ठ ! आकाश को नभ इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह सूर्य की किरणों से भासमान् रहा करता है। सूर्य का मण्डल पृथ्वी से एक लाख योजन की दूरी पर स्थित है। सूर्य से एक लाख योजन की दूरी पर चन्द्रमा और चन्द्रमा से भी एक लाख योजन की दूरी पर नक्षत्र-मण्डल है। ४-६।

द्विलक्षाद्भाद्बुधश्चाऽऽस्ते बुधाच्छुक्रो द्विलक्षतः ।
द्विलक्षेण कुजः शुक्राद्भौमाद्द्विलक्षतो गुरुः ॥७
गुरोर्द्विलक्षतः सौरिर्लक्षात्सप्तर्षयः शनेः ।
लक्षाद्ध्रुवो ह्यृषिभ्यस्तु त्रैलोक्यं[2] चोच्छ्रयेण च ॥८
ध्रुवात्कोट्या महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
जनो द्विकोटितस्तस्माद्यत्राऽऽसन्सनकादयः ॥९

---

१ अस्य श्लोकस्यार्धभागं नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः । २ घ. छ. °लोक्याच्चोच्छ्° ।

जनात्तपश्चाष्टकोट्या वैराजा यत्र देवताः ।
षण्णवत्या तु कोटीनां तपसः सत्यलोककः ।।१०

नक्षत्र से दो लाख योजन की दूरी पर शुक्र, शुक्र से दो लाख योजन की दूरी पर मंगल, मंगल से दो लाख योजन की दूरी पर वृहस्पति, वृहस्पति से दो लाख योजन की दूरी पर शनि की स्थिति है। शनि से एक लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षि और सप्तर्षि से एक लाख योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित हैं, जो ऊँचाई में त्रैलोक्य का स्थान ग्रहण करता है। ध्रुव से एक करोड़ योजन की दूरी पर महर्लोक स्थित है, जहाँ एक कल्प तक निवास करने वाले प्राणी रहते हैं। महर्लोक से दो करोड़ योजन की दूरी पर जन-लोक की स्थिति है, जिसमें शनक आदि निवास करते हैं। जनलोक से आठ करोड़ योजन की दूरी पर तपोलोक स्थित है, जिसमें वैराज नामक देवता निवास करते। तपोलोक से छियानबे करोड़ योजन की दूरी पर सत्यलोक है।७-१०।

अपुनर्मारिका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः ।
पादगम्यस्तु भूर्लोको भुवः सूर्यान्तरः स्मृतः ।।११
स्वर्गलोको ध्रुवान्तस्तु नियतानि[1] चतुर्दश ।
एतदण्डकटाहेन वृतो ब्रह्माण्डविस्तरः ।।१२
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना वहिः ।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ।।१३
दशोत्तराणि शेषाणि एकैकस्मान्महामुने ।
महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ।।१४

ब्रह्मलोक उसे कहते हैं, जहाँ पर लोगों की मृत्यु ही नहीं होती है। भूर्लोक एक पादगम्य है अर्थात् उसका परिमाण सम्पूर्ण सूर्यमण्डल का चतुर्थांश है। भुवर्लोक सूर्यमण्डल के अन्दर ही स्थित है। स्वर्गलोक ध्रुव की सीमा तक फैला हुआ है और उसका परिमाण एक लाख चालीस हजार योजन है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड से सम्पूर्ण जगत घिरा हुआ है। वह ब्रह्माण्ड अपने से दशगुने महाभूतों—जल, अग्नि, वायु और आकाश से घिरा हुआ है। अये मुनिराज ! वे महाभूत, जो क्रमशः एक-दूसरे से दशगुने बड़े हैं, परस्पर एक-दूसरे से घिरे हुए हैं। अन्तिम महाभूत (आकाश) महत् (तत्त्व) से घिरा हुआ है और महत् को घेर कर प्रधान (प्रकृति) अवस्थित है। ११-१४।

---

१ च. अयुतानि ।

अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं[1] नापि विद्यते ।
हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने ॥१५
असंख्यातानि चाण्डानि तत्र जातानि चेदृशाम्[2] ।
दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत्पुमानिति ॥१६
प्रधाने च स्थितो व्यापी[3] चेतनात्माऽऽत्मवेदनः[4] ।
प्रधानं च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूतया ॥१७
विष्णुशक्त्या महाप्राज्ञ वृतौ संश्रयधर्मिणौ ।
तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च ॥१८
क्षोभकारणभूतश्च सर्गकाले महामुने ।
यथा शैत्यं जले वातो बिभर्ति कणिकागतम् ॥१९
जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानप्रतिपादिकाम्[5] ।
विष्णु शक्तिं समासाद्य देवाद्याः सम्भवन्ति हि ॥२०
स च विष्णुः स्वयं ब्रह्म[6] यतः सर्वमिदं जगत् ।
योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव ॥२१

हे मुनिराज ! उस अनन्त (आकाश) का न अन्त है और न उसकी संख्या ही की जा सकती है। वह सबका हेतु (कारण) है और उसे परा प्रकृति कहते हैं। यह असंख्य ब्रह्माण्ड उसी से उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे लकड़ी में आग और तिल में तेल व्याप्त रहता है वैसे ही प्रकृति में (चेतनात्मा) पुरुष व्याप्त रहता है। अये महाबुद्धिमन् ! सकलभूतो के आत्मरूप विष्णु शक्ति के द्वारा आश्रम धर्म वाले प्रधान और पुरुष से आवृत हैं अर्थात् उन दोनों की एकता विष्णुशक्ति से स्थापित है। उन दोनों के मिलने तथा पृथक् होने में भी वही शक्ति कारण है। महामुने ! सृष्टिकाल में (सत्त्वादि गुणों में) क्षोभ उत्पन्न होने का कारण भी वही शक्ति है। जैसे जल-बिन्दु की शीतलता को वायु धारण करती है उसी प्रकार जगत् को विष्णुशक्ति धारण किए रहती है। उसी प्रधान प्रतिपादिका विष्णु शक्ति का आश्रय लेकर देवता आदि उत्पन्न होते हैं। वे विष्णु ही स्वयं ब्रह्म है, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। अये मुनिदेव ! सूर्यदेव के रथ का परिमाण नौ हजार योजन है। १५-२१।

१ क. ङ. च. °न नैव वि° । २ क. ङ. च. °दृशाः । दा° । ३ °पी तन्नामाक सुप्रवे° । ४ ख. ग. °नान्नाऽऽत्म° । ५ क. ख. ग. ङ. च. °पादकम् । ६ क. ङ. च. ब्रह्मा ।

ईशादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम ।
सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै ॥२२
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ।
त्रिनाभिमतिपञ्चारं (१) षण्णेमि[1] द्व्यायनात्मकम् ॥२३
संवत्सरमयं कृत्स्नं[2] कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षो विवस्वतः ॥२४
पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य महामते ।
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्धयोः । ॥२५
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्धं च ध्रुवाधारं रथस्य वै ॥२५½

अये मुनिश्रेष्ठ ! उस रथ का ईशादण्ड (हरीश) उससे दूना है। उसकी धुरी का परिमाण एक करोड़ पचास लाख सत्तर हजार योजन है। उस रथ में एक चक्र है जिसमें तीन नाभि, पाँच अरे और छह नेमियाँ (जिस पर हल चढ़ाई जाती है) हैं। (उत्तरायण और दक्षिणायन भेद से) उसके दो मार्ग हैं। यह कालचक्र समस्त संवत्सर से युक्त है। अये महामते ! विवस्वान् (सूर्य) के रथ की दूसरी धुरी चालीस हजार और साढ़े पाँच (योजन) है। उन दोनों युगों के अर्ध भाग का परिमाण भी धुरी के बराबर ही है। उस रथ की धुरी का आधार तथा छोटी धुरी का परिमाण युगार्ध के बराबर होता है।२२-२५½।

हयाश्च सप्त च्छन्दांसि गायत्र्यादीनि सुव्रत ॥२६
उदयास्तमनं ज्ञेयं दर्शनादर्शनं रवेः ।
यावन्मात्रप्रदेशे तु वशिष्ठावस्थितो[3] ध्रुवः ॥२७
स्वयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसंप्लवम्[4] ।
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ॥२८
एतद् विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ।
निर्धूतदोषपङ्कानां (णां) यतीनां स्थानमुत्तमम् ॥२९
ततो गङ्गा प्रभवति[5] स्मरणात्पापनाशिनी ।
दिवि रूपं हरेर्ज्ञेयं शिशुमाराकृति[6] प्रभो ॥३०

---

१ क. ङ. °मिन्यक्षयार्थके । सं० । ख. ग. °मिथ्यक्षयात्मके । सं० ।
२ क. ङ. च. °तो बुधः । क्षय° । ३ ख. ग. घ. छ. °प्लवे । ज° । ४ च. °ति सर्वपापप्रणाश° । ५ ख. ग. घ. छ. प्रभो ।

उत्तमव्रतधारिन् ! गायत्री आदि सात छन्द ही उस रथ के घोड़े हैं। सूर्य का उदय और अस्त ही उसके दिखाई देने और न दिखाई देने का कारण है। जितने प्रदेश में वसिष्ठ के साथ ध्रुव अवस्थित रहते हैं उतने प्रदेश में प्रलय होता है। सप्तर्षियों से ऊपर उत्तर की ओर जहाँ पर ध्रुव की स्थिति है, वह आकाश में तीसरा तेजोमय दिव्यलोक है। निर्दोष और निष्पाप यतियों का वही उत्तम स्थान है। वहाँ से गङ्गा निकलती हैं, जो स्मरण मात्र से ही पापों का सर्वनाश कर दिया करती हैं। वहाँ भगवान् विष्णु मगर के रूप में विद्यमान रहते हैं। २६-३०।

स्थितः पुच्छे ध्रुवस्तत्र भ्रमन्भ्रामयति ग्रहान्।
([1]स रथोऽधिष्ठितो[2] देवैरादित्यैर्ऋषिभिर्वरैः[3] ॥३१
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः।)
हिमोष्णवारिवर्षाणां कारणं भगवान्रविः[3]॥३२
ऋग्वेदादिमयो विष्णुः स शुभाशुभकारणम्।
रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ॥३३
वाम दक्षिणतो युक्ता दश युतेन चरत्यसौ।
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ॥३४
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवा; पिबन्ति क्षणदाकरम्[4]।
एकां कलां च पितर एकामारश्मिसंस्थिताः ॥३५

उस मगर की पूँछ पर स्थित होकर ध्रुव स्वयं घूमता है और अन्य ग्रहों को भी घुमाता रहता है। वहाँ देवता, आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, नाग तथा राक्षस रथ पर आरूढ़ रहा करते हैं। सर्दी, गर्मी तथा वर्षा (आदि ऋतुओं) का कारण भगवान् सूर्य ही हैं। भगवान् विष्णु ऋग्वेदादि के स्वरूप हैं और वही शुभाशुभ (कर्मों) के कारण हैं। चन्द्रमा के रथ में तीन पहिये हैं। उसमें कुन्द-पुष्प के समान शुभ्र दश घोड़े बायीं और दाहिनी ओर जुते हुए हैं। यह चन्द्रमा उसी रथ से सञ्चरण करता है। तैंतीस हजार तैंतीस सौ तैंतीस देवता चन्द्रकला का पान किया करते हैं। उसकी एक कला का पान वे पितृगण किया करते हैं जो उसकी रश्मि तक पहुँच चुके हैं। ३१-३५।

---

१ स रथोऽधिष्ठितो.........सर्पराक्षसैः नास्ति क. ङ. च पुस्तकेषु।
२ च. °तो दैत्यैरा°। ३ च. °भिर्मटैः। ग°। ४ घ. °दाचर°।

वाय्वग्निद्रव्यसंभूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च ।
अष्टाभिस्तुरगैर्युक्तो बुधस्तेन चरत्यपि ॥ ३६
शुक्रस्यापि रथोऽष्टाश्वो भौमस्यपि रथस्तथा ।
बृहस्पते रथोऽष्टाश्वः शनेश्चाष्टाश्वको रथः ॥ ३७
स्वर्भानोश्च रथोऽष्टाश्वः केतोश्चाष्टाश्वको रथः[१] ।
यदद्य वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा ॥ ३८
पद्माकारा समुद्भूता पर्वताद्यादि संयुता ।
ज्योतिर्भुवननद्यद्रिसमुद्रवनकं हरिः ॥ ३९
यदस्ति नास्ति तद्विष्णुर्विष्णुज्ञानविजृम्भितम् ।
न विज्ञानमृते किंचिज्ज्ञानं विष्णुः परं पदम् ॥ ४०
तत् कुर्याद्येन विष्णुः स्यात्सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।
पठेत्भुवनकोशं हि यः सोऽवाप्तसुखात्मभाक् ॥ ४१
ज्योतिः शास्त्रादिविद्याश्च [२]शुभाशुभाधिपो हरिः ॥ ४२

बुध का रथ वायु और अग्नि तत्त्वों से बना हुआ है । उसमें आठ घोड़े जुते हुए हैं । उसी प्रकार बृहस्पति, शनि, राहु और केतु के रथों में भी आठ-आठ घोड़े जुतते हैं । हे ब्राह्मणदेव ! पर्वत आदि से संयुक्त और पद्म के आकार वाली यह पृथिवी भगवान् विष्णु के शरीर से ही उत्पन्न हुई है। ज्योति, भुवन, नदी, पर्वत, समुद्र तथा वन विष्णु से ही उत्पन्न हुये हैं । (इस संसार में) जो कुछ है और जो नहीं है, वह सब विष्णु (मय) ही है और विष्णु के ज्ञान से ही विकसित हुआ है । (विष्णु के) विशिष्ट ज्ञान के बिना कोई ज्ञान ही नहीं होता है । विष्णु उत्कृष्टतम स्थान (परमपद) हैं । इसलिए वही कार्य करना चाहिए, जिससे विष्णु की सत्य, ज्ञान और अनन्त रूप सत्ता बनी रहे । जो व्यक्ति भुवनकोश और ज्योतिःशास्त्र आदि विद्याओं को पढ़ेगा, उसे आत्म-सुख की प्राप्ति होगी । (समस्त) शुभाशुभ कर्मों के स्वामी भगवान् विष्णु ही हैं । ३६-४२ ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भुवनकोशवर्णनं नाम विंशत्यधिक-शततमोऽध्यायः ।१२०

---

१ ख. ग. °थः । एतद्धि °° । २ ख. °शुभधियां ह° ।

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ज्योतिःशास्त्रकथनम्

अग्निरुवाच—

ज्योतिःशास्त्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदम् ।
चातुर्लक्षस्य सारं यत्तज्ज्ञात्वा सर्वविद्भवेत् ।। १

अग्निदेव बोले—अब मैं शुभ और अशुभ बातों को बताने वाले ज्योतिः-शास्त्र का वर्णन करूँगा । चार लाख श्लोकों में निबद्ध ज्योतिःशास्त्र का सार जान लेने से सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है । १

षट्काष्टके[1] विवाहो न नच द्विर्द्वादशे स्त्रियाः ।
न त्रिकोणे ह्यथ प्रीतिः शेषे च समसप्तके ।। २

स्त्री के विवाह के सम्बन्ध में षडष्टक, द्विर्द्वादश एवं त्रिकोण नवपञ्चम दोष में विवाह नहीं करना चाहिए । शेष में विवाह शुभ होता है । कन्या की राशि से वर की राशि छह या आठ या वर की राशि से कन्या की छह या आठ हो तो षडष्टक दोष होता है । इसी वर या कन्या की राशि से दो या बारह हो तो द्विर्द्वादश दोष होता है एवं वर या कन्या की राशि से एक की नव या पाँच हो तो त्रिकोण नवपञ्चक दोष होता है । अतः इनमें विवाह नहीं करना चाहिए । शेष में दश, ग्यारह, चार, दश तथा समसप्तक में विवाह होने से दम्पति में प्रेम रहता है । २

द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च मैत्री क्षेत्रपयोर्यदि ।
भवेदेकाधिपत्यं च ताराप्रीतिरथापि वा ।। ३
तथाऽपि कार्यः संयोगो न तु षट्काष्टके पुनः ।
जीवे भृगौ चास्तमिते म्रियते च पुमान्स्त्रियाः[2] ।।४

यदि वर और वधू के राशिस्वामियों में परस्पर मित्रता हो या दोनों के राशिपति एक ही हो या तारा-मैत्री हो तो द्विर्द्वादश और त्रिकोण स्थान में भी विवाह-सम्बन्ध करना चाहिए । क्योंकि ऐसे सम्बन्ध का प्रभाव अच्छा

---

१ घ. छ. षडष्टके । २ घ. छ. °न्स्त्रिया । गु° ।

होता है, चाहे ग्रहों में परस्पर मित्रता ही क्यों न हो। जहाँ पर वर-वधू के षडष्टकदोष हों वहाँ सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। बृहस्पति तथा शुक्र के अस्त होने पर विवाह-सम्बन्ध करने से स्त्री-पुरुष दोनों की मृत्यु हो जाती है। ३-४।

गुरुक्षेत्रगते सूर्ये सूर्यक्षेत्रगते गुरौ।
विवाहं न प्रशंसन्ति कन्यावैधव्यकृद्भवेत् ॥ ५

बृहस्पति के क्षेत्र में सूर्य और सूर्य के क्षेत्र में बृहस्पति के जाने पर विवाह करना अशुभ है, क्योंकि ऐसा विवाह कन्या के लिए वैधव्यकारक है। ५

अतिचारे त्रिपक्षं स्माद्वक्रे मासचतुष्टयम्।
व्रतोद्वाहौ न कुर्वीत गुरोर्वक्रा (वक्रया) तिचारयोः ॥६

अतिचार होने पर तीन पक्षों तक और वक्र होने पर चार महीनों तक विवाह स्थगित कर देना चाहिए। बृहस्पति के वक्र और अतिचारी होने पर व्रत (उपनयन) तथा विवाह नहीं करना चाहिए। ६

चैत्रे पौषे न[1] रिक्तासु[2] हरौ सुप्ते कुजे रवौ।
चन्द्रक्षये चाशुभं स्यात्सन्ध्याकालः शुभावहः ॥७

चैत्र तथा पौष के महीनों में रिक्ता (चतुर्थी, चतुर्दशी, नवमी) तथा अमावस्या तिथियों में मङ्गल तथा सूर्यवारों में और विष्णु के सो जाने पर (आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त) विवाह करना अशुभ है। विवाह के लिए सन्ध्याकाल का समय शुभकारक है।७

रोहिणी चोत्तरा मूलं स्वाती हस्तोऽथ रेवती।
तुले च [3]मिथुने शस्तो विवाहः परिकीर्तितः ॥ ८

रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, स्वाती, हस्त, तथा रेवती नक्षत्रों में तथा तुला और मिथुन लग्न में विवाह करना उत्तम है। ८

विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुंसवने तथा।
प्राशने चाऽऽद्यचूडायां विद्धर्क्षं[4] च विवर्जयेत् ॥ ९

विवाह, कर्णवेध, पुँसवन, अन्नप्राशन तथा प्रथम चूड़ाकरण संस्कार में वेधयुक्त नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिए। ९

---

१ ख. ग. तु। २ घ. छ, रक्तासु। ३ ख. ग. तु। घ. छ. न। ४ क. ङ. च. °द्धमृक्षं विव°।

श्रवणे मूलपुष्ये च सूर्यमङ्गलजीवके ।
कुम्भे सिंहे च मिथुने कर्म पुंसवनं स्मृतम् ।। १०

श्रवण, मूल, पुष्य, रविवार, मङ्गल तथा बृहस्पति एवं कुम्भ, सिंह और मिथुन में पुंसवन कर्म करना चाहिए । १०

हस्ते मूले मृगे पौष्णे बुधे शुक्रे च निष्कृतिः ।
अर्केन्दुजीवभृगुजे मूले ताम्बूलभक्षणम् ।। ११

हस्त, मूल, मृगशिर, रेवती, बुध और शुक्र को निष्कासन करना चाहिए । रविवार, सोमवार, बृहस्पतिवार एवं शुक्रवार को मूलनक्षत्र में ताम्बूल-भक्षण करना चाहिए । ११

अन्नस्य प्राशनं शुक्रे जीवे मृगे च मीनके ।
हस्तादिपञ्चके पुष्ये कृत्तिकादित्रये तथा ।। १२

शुक्र तथा बृहस्पतिवारों में मकर और मीन लग्न में हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, कृत्तिका, पुष्य तथा रोहिणी, मृगशिर, नक्षत्रों में शिशु का अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए । १२

अश्विन्यामथ रेवत्यां नवान्नफलभक्षणम् ।
पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा रोहिणी श्रवणाश्विनी ।। १३

अश्विनी, रेवती, पुष्य, हस्त तथा ज्येष्ठा, रोहिणी तथा श्रवण नक्षत्रों में नया अन्न तथा नवीन फल खाना चाहिए । १३

स्वातिसौम्ये च भैषज्यं कुर्यादन्यत्र वर्जयेत् ।
पूर्वात्रयं मघा याम्यं पावनं श्रवणत्रयम् ।।१४
भौमादित्यशनेर्वारे स्नातव्यं [1]रोगमुक्तितः ।।१४½

स्वाती तथा मृगशिर नक्षत्र में ओषधि सेवन करना चाहिए । पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, मघा, भरणी, श्रवण, स्वाती, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में तथा शनि, रवि, मङ्गल वारों में रोगविमुक्त व्यक्ति को स्नान करना चाहिये । ।१४-१४½।

पार्थिवे चाष्टह्रींकारं मध्ये नाम च दिक्षु च ।। १५
[2]ह्रीपुटं पार्थिवे दिक्षु ह्रीं विदिक्षु लिखेद्वसून् ।
गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे वस्त्रे गले धृतम् ।।१६

---

१ क. ङ. च. °क्तिदः । पा° । २ क. ङ. च. °पुटे पा° ।

मङ्गल के दिन मिट्टी के चौकोर पट्ट पर या भोजपत्र पर गोरोचन तथा कुंकुम से दिशाओं में आठ 'ह्रीं' (मन्त्र) लिखकर मध्य में शत्रु का नाम लिखकर उस यन्त्र को वस्त्र में लपेटकर गले में धारण करना चाहिए। १५-१६।

शत्रवो वशमायान्ति मन्त्रेणानेन निश्चितम्।
श्रीं ह्रीं सम्पुटं नाम श्रीं ह्रीं (च) पत्राष्टके क्रमात्॥१७
गोरोचनाकुङ्कुमेन [1]भूर्जेऽथ[2] सुभगावृते।
गोमध्यवागमः[3] पत्रे हरिद्राया रसेन च[4]॥ १८
शिलापट्टेऽरीन्स्तम्भयति भूमावधोमुखी कृतम्[5]।
ॐ हूँ [6]सः सम्पुटं [7]नाम ओं हूं[8] सः पत्राष्टके क्रमात्॥१९
गोरोचनाकुङ्कुमेन) भूर्जे मृत्युनिवारणम्।
एकपञ्चनवप्रीत्यै द्विषड्द्वादश योगकाः[9]॥ २०
त्रिसप्तैकादशे लाभो वेदाष्टद्वादशे रिपुः।२०½

ऐसा करने से शत्रु निःसन्देह वशीभूत हो जाता है। श्रीं ह्रीं मन्त्र से सम्पुटित नाम को आठ भोजपत्र पर लिखकर गाड़ दे तो विदेश गया हुआ व्यक्ति आ जाता है। इसी यन्त्र को हल्दी के रस से पत्थर पर लिखकर उलटा करके भूमि पर रख दे तो शत्रु का स्तम्भन होता है। 'ॐ हूँ सः' इस मन्त्र से सम्पुटित नाम को भोजपत्र पर गोरोचन और कुङ्कुम से आठ पत्रों पर लिखकर धारण करने से मृत्यु का निवारण होता है। इसी यन्त्र को एक पाँच या नव बार लिखने से परस्पर प्रेम होता है। दो, छह, या बारह बार लिखने से बिछुड़े हुए का मेल होता है। तीन, सात या ग्यारह बार लिखने से लाभ होता है और चार, आठ या बारह बार लिखने से शत्रुता होती है। १७-२०½।

---

१ भूर्जेऽथ··· ·········गोरोचनाकुङ्कुमेन नास्ति च. पुस्तके। २ क. ङ. °र्जेऽथाक्षतगोघृते। ३ क. ङ. °ध्यरामगः प°। ४ क. ङ. च.। ॐ। ५ क. °म्। ओमों शः सं। ६ ख. ग. ॐ भूं सः। ७ क. °म श्रीम्, ॐ सं जुसः। ङ °म श्रीम्, ॐ जुसः। ८ ख. ग. भूः। ९ क. योक्यकाः। ङ. योस्वकाः। च. दोषकः।

तनुर्धनं च सहजः सुहृत्सुतौ रिपुस्तथा ॥ २१
जायानिधनधर्मौं च कर्माऽऽयव्ययकं क्रमात् ।
स्फुटं मेषादिलग्नेषु नवताराबलं वदेत् ॥ २२
जन्म सम्पद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधकः क्रमात् ।
निधनं मित्रपरममित्रं ताराबलं विदुः ॥ २३
वारे ज्ञगुरुशुक्राणां सूर्यचन्द्रमसोस्तथा ।
माघादिमासषट्के तु क्षौरमाद्यं प्रशस्यते ॥ २४

मेषादि लग्नों में द्वादश भावों के नाम तनु, धन, सहज, सुहृद्, पुत्र, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय होते हैं। नवताराओं के नाम जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, निधन, मित्र और परममित्र हैं। रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र इन पाँच वारों में तथा माघ से प्रारम्भ करके छह मासों में बालक का प्रथम क्षौरकर्म करना उत्तम है। २१-२४।

कर्णवेधो बुधे जीवे पुष्ये श्रवणचित्रयोः ।
पञ्चमेऽब्दे[१] चाध्ययनं षष्ठीप्रतिपदं त्यजेत् ॥ २५
रिक्तां पञ्चदशीं भौमं प्राच्यं वाणीं हरिं श्रियम् ।
माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं शुभम् ॥ २६

बुध तथा बृहस्पति वारों में और पुष्य, श्रवण तथा चित्रा नक्षत्रों में कर्ण-वेध संस्कार करना चाहिये। पाँचवें वर्ष शिशु को सरस्वती, विष्णु तथा लक्ष्मी के पूजन-पूर्वक अक्षरारम्भ करना चाहिये। षष्ठी, प्रतिपदा, तथा रिक्ता (चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी) और पञ्चदशी तिथियाँ तथा मङ्गल दिन विद्यारम्भ के लिये वर्जित हैं। माघ आदि छह मासों में मेखला बन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार करना शुभ है। २५-२६।

[२]चूडाकरणमाद्यं च श्रावणादौ न शस्यते ।
अस्तं याते गुरौ शुक्रे क्षीणे च शशलाञ्छने ॥ २७
उपनीतस्य विप्रस्य मृत्युं जाड्यं विनिर्दिशेत् ।
क्षौरर्क्षे शुभवारे च समावर्तनमिष्यते ॥ २८

---

१ क. °ब्दे मावप (फ) लं ष°। ङ. °ब्दे माव्यफलं ष°। २ क. घ. छ. °णकाद्य°।

श्रावण आदि महीनों के प्रथम चूडाकरण होने पर और चन्द्रमा के क्षीण होने पर यदि ब्राह्मण का उपनयन किया जाये तो उसकी मृत्यु या जडता होती है। क्षौरकर्म के नक्षत्र में तथा शुभ दिन में समावर्तन-संस्कार करना चाहिये। २७-२८।

शुभक्षेत्रे विलग्नेषु शुभयुक्तेक्षितेषु च।
अश्विनीमघाचित्रासु स्वातीयाम्योत्तरासु च॥ २९
पुनर्वसौ च पुष्ये च धनुर्वेदः प्रशस्यते।
भरण्यार्द्रा मघाऽश्लेषा वह्निभगर्क्षयोस्तथा॥ ३०
जिजीविषुर्न कुर्वीत वस्त्रप्रावरणं नरः।
गुरौ शुक्रे बुधे वस्त्रं विवाहादौ न भादिकम्॥ ३१

शुभग्रह की लग्न हो, लग्न में शुभ ग्रह बैठे हों या देखते हों तथा अश्विनी, भरणी, मघा, चित्रा, स्वाती, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफाल्गुनी, पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्रों में धनुर्वेद प्रारम्भ करना शुभ होता है। जीवन की इच्छा होने पर भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिका और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में वस्त्र धारण नहीं करना चाहिये। गुरु, शुक्र, और बुध वारों में वस्त्र धारण करना शुभ है। किन्तु विवाहादि विशेष अवसर पर नक्षत्र तथा दिन का विचार करना आवश्यक नहीं है। २९-३१।

रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिषु च पञ्चसु।
शङ्खविद्रुमरत्नानां परिधानं प्रशस्यते॥ ३२

रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों में शङ्ख, मूंगा तथा रत्न धारण करना उत्तम है। ३२

याम्यसार्प [1]धनिष्ठासु त्रिषु [2]पूर्वेषु [3]वानने (चानले)।
क्रीतं हानिकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत्॥ ३३

भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और कृत्तिका, नक्षत्रों में वस्तुओं के खरीदने से घाटा और बिक्री से लाभ होता है।३३

---

१ क. ङ. च. °र्पं विशाखासु। २ क. ख. ग. ङ. च. पूर्वासु। ३ घ. छ. वारुणे।

अश्विनीस्वातिचित्रासु रेवत्यां वारुणे हरौ ।
क्रीतं लाभकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत् ॥ ३४

अश्विनी, स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा तथा श्रवण नक्षत्रों में वस्तुओं के खरीदने से लाभ और विक्री से घाटा होता है । ३४

भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषामघानिलाः ।
वह्निज्येष्ठाविशाखासु स्वामिनो नोपतिष्ठते[1] ॥ ३५
द्रव्यं दत्तां प्रयुक्तं वा यत्र निक्षिप्यते धनम्[2] ।
उत्तराश्रवणे शाक्रे कुर्याद्राजाभिषेचनम् ॥ ३६

भरणी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, स्वाती, कृत्तिका, ज्येष्ठा और विशाखा नक्षत्रों में (किसी काम के लिये) स्वामी (या अधिकारी आदि) से नहीं मिलना चाहिये । इन्हीं नक्षत्रों में द्रव्य देना, कालान्तर में द्रव्य देना थाती या धरोहर के रूप में रखना नहीं चाहिए । तीनों उत्तरा, श्रवण और ज्येष्ठा नक्षत्र में राज्याभिषेक करना चाहिए । ३५-३६ ।

चैत्रं ज्येष्ठं तथा भाद्रमाश्विनं पौषमेव च ।
माघं चैव परित्यज्य शेषमासे गृहं शुभम् ॥ ३७

चैत्र, ज्येष्ठ, भाद्रपद, आश्विन, पौष तथा माघ को छोड़कर अन्य मासों में गृहारम्भ करना शुभ है । ३७

अश्विनी रोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ ३८

अश्विनी, रोहिणी, मूल, उत्तराषाढ़, उत्तरफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, मृगशिर, स्वाती, हस्त तथा अनुराधा ये नक्षत्र गृहारम्भ के लिए शुभ माने गये हैं । ३८

आदित्यभौमवर्जं तु वापीप्रासादके तथा ।
सिंहराशिगते[3] जीवे गुर्वादित्ये मलिम्लुचे ॥ ३९
बाले बृद्धेऽस्तगे शुक्रे गृहकर्मविवर्जयेत् ॥ ३९१/२

बावली खोदवाने तथा मकान बनवाने में रविवार और मङ्गलवार वर्जित हैं । सिंह राशि पर गुरु होने पर, धेनु और मीन राशि पर सूर्य, मलमास

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °ष्ठति । द्र° । २ च. फलम् । ३ च. °ते चैव गु° ।

में और शुक्र के बाल, वृद्ध तथा अस्त होने पर गृह-कार्य नहीं करना चाहिए। ३६-३६½

अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा धनक्षतिः ॥ ४०
संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते श्रवणपञ्चके।
गृहप्रवेशनं कुर्याद्धनिष्ठोत्तरवारुणे ॥ ४१

श्रवणपञ्चक (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तर-भाद्रपद, रेवती) नक्षत्रों में घास तथा लकड़ियों का संग्रह करने से अग्निदाह, भय, रोग, राज-पीड़ा तथा धनक्षति होती है। धनिष्ठा, तीनों उत्तरा तथा शतभिषा नक्षत्रों में गृह-प्रवेश करना चाहिये। ४०-४१।

नौकाया घटने द्वित्रिपञ्चसप्तत्रयोदशी।
नृपदर्शो धनिष्ठासु [1]हस्तपौष्णाश्विनीषु च ॥४२

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी तिथियों में नौका बनवानी चाहिये। राजदर्शन के लिए धनिष्ठा, हस्त, रेवती तथा अश्विनी नक्षत्र उत्तम होते हैं। ४२

पूर्वात्रयं धनिष्ठाऽऽर्द्रा वह्निः सौम्यविशाखयोः।
आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रासिद्धिस्तु[2] सम्पदा ॥ ४३

पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, कृत्तिका, मृगशिरा, विशाखा, श्लेषा तथा अश्विनी नक्षत्रों में युद्ध-यात्रा सिद्धि देने वाली होती है। ४३

त्रिषूत्तरेषु[3] रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी।
श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चैवाष्टमी तथा ॥ ४४
गोषु[4] यात्रां न कुर्वीत प्रवेशं नैव कारयेत् ॥४४½।

उत्तरफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद और उत्तराषाढ़, रोहिणी, श्रवण, हस्त तथा चित्रा नक्षत्रों में और अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी तिथियों में गोयात्रा तथा गोगृह-प्रवेश नहीं करना चाहिए। ४४-४४½।

---

१ ग. घ. च. छ. हस्तापौ॰। २ ख. ॰द्धिस्चतुष्पदे। त्रि॰। ३ क. ख. ग. ङ. च. ॰त्तरासु रो॰। ४ घ. छ. गोष्ठया॰।

अनिलोत्तररोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसौ ।। ४५
पुष्यश्रवणहस्तेषु कृषिकर्मसमाचरेत् ।
पुनर्वसूत्तरास्वातीभगमूलेन्द्रवारुणे ।। ४६
गुरोः शुक्रस्य वारे वा वारे[1] च सोमभास्वतोः ।
वृषलग्ने च[2] कर्तव्यं कन्यायां मिथुने तथा[3] ।। ४७
द्विपञ्चदशमी सप्ततृतीया च त्रयोदशी ।। ४७½

स्वाती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण और हस्त नक्षत्र में कृषिकार्य करना चाहिए । पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, ज्येष्ठा और शतभिष नक्षत्रों में द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, सप्तमी तृतीया और त्रयोदशी तिथि में बृहस्पति, शुक्र, सोम तथा रविवारों में वृष, कन्या, तथा मिथुन लग्नों में खेती का काम आरम्भ करना चाहिए । ४५-४७½।

रेवती [4]रोहिणीन्द्राग्निहस्तमैत्रोत्तरेषु च[5] ।। ४८
मन्दारवर्जं बीजानि वापयेत्सम्पदर्थ्यपि ।
रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भगमैत्रयोः ।। ४९
पितृदैवे तथा सौम्ये धान्यच्छेदं मृगोदये ।
हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये ।। ५०
स्थिरे लग्ने गुरोर्वारेऽथ[6] वा भार्गवसौम्ययोः ।
याम्यादितिमघाज्येष्ठासूत्तरेषु प्रवेशयेत् ।। ५१
ॐ[7] धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा ।
ॐ नवे हर्षे,[8] इलादेवि लोकसंवर्धिनि कामरूपिणि[9]
देहि मे धनं स्वाहा ।। ५२
पत्रस्थं[10] लिखितं धान्यराशिस्थं धान्यवर्धनम् ।
त्रिपूर्वासु विशाखायां धनिष्ठावारुणेऽपि च ।।५३
एतेषु षट्सु विज्ञेयं धान्यनिष्क्रमणं बुधैः ।।५३½

सम्पत्ति का अभिलाषी व्यक्ति द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमी, तृतीया, त्रयोदशी तिथिओं में तथा रेवती, रोहिणी, ज्येष्ठा, कृत्तिका, हस्त, अनुराधा,

---

१ चः °रे सोमसुतस्य च । वृ° २ च. न । ३ च. °था । त्रिप° । ४. च °न्द्राश्विह° । ५. ख. ङ. च. । मैत्रं च व° । ६ ख. ग. घ. छ. °वरि अथ भा° । ७ च. ॐ श्रीध° । ८ घ. छ. वर्षे । ९ क. ङ. कामरूपिणो । १० क. ख. ग. ङ. यत्रस्थं । च . यन्त्रस्थं ।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में केवल शनिवार को छोड़कर सब प्रकार का बीज बोना चाहिए। रेवती, हस्त, मूल, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, भरणी, तथा मृगशिरा नक्षत्रों में धान्य (अनाज) काटना चाहिए। हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, भरणी, मघा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़, उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में, स्थिर लग्न में और बृहस्पति, शुक्र तथा सोमवारों में (बखार) में धान्य एकत्र करना चाहिये। पत्ते पर 'ॐ धनदाय सर्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा', 'ॐ नवे हर्षे इलादेवि लोक-संवर्धिनि कामरूपिणि देहि मे धनं स्वाहा' इन दोनों मन्त्रों को लिखकर धान्यराशि के ऊपर रख देने से धान्य की वृद्धि होती है। पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में (बखार) से धान्य निकालना चाहिये। ४९-५३½।

देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ॥ ५४
मिथुनस्थे रवौ दर्शाद्यदि स्याद्द्वादशी तिथिः।
सदा तत्रैव कर्तव्यं शयनं चक्रपाणिनः (?) ॥ ५५
सिंहंतौलिगते चार्के दर्शाद्यद्द्वादशीद्वयम्।
आदाविन्द्रसमुत्थानं प्रबोधश्च हरेः क्रमात् ॥ ५६

देवता, बगीचा और बावली आदि की प्रतिष्ठा सूर्य के उत्तरायण होने पर करनी चाहिये। सूर्य के मिथुन राशि पर जाने पर शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में हरिशयन कराना चाहिए। सिंह और तुला राशिस्थ सूर्य होने पर शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में क्रम से सिंह के सूर्य में पार्श्वपरिवर्तन (करवट लेना) तथा तुला के सूर्य में प्रबोधोत्सव (जगाना) चाहिए। ५४-५६।

तथा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी।
त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भौमादित्यशनैश्चारी[1] (?) विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम्।
सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः[2] ॥५८

सूर्य के कन्या राशि में जाने पर (शुक्लपक्ष की) अष्टमी तिथि में दुर्गा को जगाना चाहिये। त्रिपाद नक्षत्र में कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पुनर्वसु,

---

१ घ. छ. °श्चारिवि°। २ च. °न्द्रसूर्ययोः।

उत्तराषाढ़ और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रों में मङ्गल, रवि तथा शनिवारों में भद्रा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) तिथि पड़ने पर त्रिपुष्कर योग होता है, रवि, चन्द्रमा और नक्षत्र की शुद्धि (शुभस्थान में होना) सब कर्मों में उपादेय है। ५७-५८।

जन्माश्रितस्त्रिषष्ठश्च सप्तमी दशमस्तथा।
एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभं वदेत्।। ५९
शुक्लपक्षे द्वितीयश्च पञ्चमो नवमः शुभः।
मित्रातिमित्रसाधकसंपत्क्षेमादितारकाः।। ६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम्।
प्रत्यरौ मरणं विद्यान्निधने याति पञ्चताम्।। ६१

जिसकी जन्म-राशि से तीसरे, छठें, सातवें, दशवें और ग्यारहवें चन्द्रमा हों उसे शुभ कहना चाहिए। शुक्ल पक्ष में दूसरा, पाँचवाँ तथा नवम चन्द्रमा भी शुभ होता है। मित्र, अतिमित्र, आदि तारा कही गई हैं। इनमें जन्म-तारा में मृत्यु, विपत् नामक तारा में धन का नाश और प्रत्यरि तथा निधन नामक तारा से मृत्यु होती है। ५९-६१।

कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमी दिनम्।
तावत्कालं शशी क्षीणः पूर्णस्तत्रोपरि स्मृतः।। ६२
वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रेन्द्रदैवते।
पौर्णमासीगुरोर्वारे महाज्यैष्ठी[1] प्रकीर्तिता।।६३
ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा।
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य [2]महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता।। ६४

कृष्णपक्ष की अष्टमी से लेकर शुक्लपक्ष की अष्टमी तक चन्द्रमा क्षीण रहता है और उसके बाद बढ़ता है, पूर्ण चन्द्र होता है। वृष या मिथुन राशि पर सूर्य के होने पर मृगशिर या ज्येष्ठा नक्षत्र में गुरु हों तो बृहस्पतिवार को जो पूर्णिमा पड़ती है, उसे महाज्येष्ठी पूर्णिमा कहते हैं। ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त गुरु और चन्द्र हों, रोहिणी नक्षत्र पर सूर्य हों, ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा हो तो ज्येष्ठी पूर्णिमा कहलाती है। ६२-६४।

---

१ ख. ग. च. महाज्येष्ठी। २ ख. ग. च. महाज्येष्ठी।

स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे[1] शुक्रस्योत्थापयेद्ध्वजम् ।
हर्यृक्षपादे[2] चाश्विन्यां सप्ताहान्ते विसर्जयेत् ॥ ६५

स्वाती नक्षत्र के पूर्व नक्षत्र में यन्त्र पर इन्द्रदेव की पूजा करके इन्द्र की ध्वजा का उत्थापन करना चाहिए और उससे एक सप्ताह के बाद या श्रवण या अश्विनी नक्षत्र में उसका विसर्जन कर देना चाहिए । ६५

सर्वं हेमसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः ।
सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ६६

सूर्य के राहु ग्रस्त होने पर (अर्थात् ग्रहण लगने पर) सब प्रकार का दान सुवर्ण-दान के समान, सब द्विज ब्राह्मण (ब्रह्म) के समान और सब जल गङ्गाजल के समान हो जाता है । ६६

ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी[3] तिला ।
राक्षसी च क्रमेणार्कात्सङ्क्रान्तिर्नामभिः स्मृता ॥ ६७

सूर्य की सङ्क्रान्ति क्रमशः रवि आदि वारों में ध्वाङ्क्षी, महोदरी, घोरा, मन्दा, मन्दाकिनी, तिला एवं राक्षसी नामों से पुकारी जाती हैं ।६७

बालवे कौलवे नागे तैतिले करणे यदि ।
उत्तिष्ठन्सङ्क्रमत्यर्कस्तदा लोकः सखी भवेत् ॥ ६८
[4]गरे बवे वणिग्विष्टी किंस्तुघ्ने शकुनौ व्रजेत् ।
राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते[5] सम्पदा समम् ॥ ६९

जब सूर्य बालव, कौलव, नाग और तैतिल नामक करणों में सङ्क्रमण करते हैं तब लोग सुखी होते हैं । जब गर, बव, वणिक्, विष्टि, किंस्तुघ्न तथा शकुनि नामक करणों में सूर्य जाते हैं तब राजा के दोष से लोक में धन-जन का नाश होता है । ६८-६९ ।

चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः सङ्क्रमेद्रविः ।
दुर्भिक्षं राजसङ्ग्रामो दम्पत्योः संशयो भवेत् ॥ ७०
कृत्तिकायां नवदिनं[6] त्रिरात्रं रोहिणीषु च ।
मृगशिरः पञ्चरात्रमार्द्रासु प्राणनाशनम् ॥ ७१

---

१ क. ङ.° निर्धि पश्चादुत्था° । क. ङ. च. हर्यश्वपादे । ख. ग. हर्याद्यपादे । ३ घ. छ. °नीद्विजाः । रा° । ४ अस्य श्लोकस्यार्धभागो नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ५ क. ख. ग. ङ. च. °वे सपदा समः च. । ६ च° द्विरात्रं ।

पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते।
नवरात्रं तथाऽश्लेषा श्मशानान्तं मघासु च ॥ ७२
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम्।
हस्ते तु दृश्यते चित्रास्वर्धमासं[1] तु पीडनम् ॥ ७३
मासद्वयं तथा स्वातिविशाखा[2] विंशतिर्दिनम् (?)।
मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठास्वेवार्धमासकम् ॥७४

चतुष्पाद, विष्टि एवं नागकरण में सूर्यसंक्रमण करे तो दुर्भिक्ष, राजाओं में संग्राम, पतिपत्नी में भी कलह-वृद्धि होती है। अब कृत्तिकादि नक्षत्रों में रोग होने पर जिसका जितने दिनों तक जो कष्ट होता है, वह बताया जा रहा है—कृत्तिका नक्षत्र में रोग होने से तीन रात, मृगशिर नक्षत्र में रोग होने से पाँच रात्रि, आर्द्रा नक्षत्र में रोग होने से मृत्यु, पुनर्वसु तथा पुष्य, नक्षत्र में रोग होने से सात रात्रि कष्ट होता है। आश्लेषा नक्षत्र में नौ रात, मघा नक्षत्र में मृत्यु तक, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में दो मास और उत्तराफाल्गुनी में रोग होने से पन्द्रह दिनों तक कष्ट रहता है। हस्त तथा चित्रा नक्षत्रों में पन्द्रह दिन, स्वाती नक्षत्र में दो मास, विशाखा नक्षत्र में बीस दिन, अनुराधा नक्षत्र में दश दिन और ज्येष्ठा नक्षत्र में रोग होने से पन्द्रह दिनों तक कष्ट होता है। ७०-७४।

मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढा त्रिपञ्चकम्।
उत्तरा दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन[3] च ॥ ७५
धनिष्ठा चार्धमासं च वारुणे च दशाहकम्।
नव[4] भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ ७६
रेवती दशरात्रं च अहोरात्रं तथाऽश्विनी।
भरण्यां प्राणहानिः स्याद्गायत्री होमतः शुभम् ॥ ७७
पञ्चधान्यतिलाज्याद्यैर्धेनुदानं[5] द्विजे[6] शमम्।
दशा सूर्यस्य[7] चाष्टाब्दा इन्दोः पञ्चदशैव तु ॥ ७८
अष्टौ वर्षाणि भौमस्य दशसप्त दशा बुधे।
दशाब्दानि दशा पङ्गोरूनविंशद्गुरोर्दशा ॥
राहोर्द्वादशवर्षाणि भार्गवस्यैकविंशतिः ॥ ७९

१ घ. छ. °त्रा अर्धं° । २ घ. छ. °तिर्विशा° । ३ च. श्रवणस्य । ४ घ. ङ. छ. न च भा° । ५ क. ङ. च. °नं निजैः सम° । ६ ख. ग. °जेशयः प° द° । ७ घ. छ. °स्य षष्ठाब्दा ।

मूल नक्षत्र में रोग होने से दुःख से छुटकारा मिलता है। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में पन्द्रह दिन, उत्तराशाढ़ में बीस दिन, श्रवण नक्षत्र में दो मास, धनिष्ठा में आधे मास और शतभिषा नक्षत्र में रोग होने से दश दिनों तक कष्ट होता है। पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में रोग होने से मुक्ति नहीं मिलती है। रेवती नक्षत्र में दश रात, अश्विनी नक्षत्र में एक रात और एक दिन का कष्ट होता है। भरणी नक्षत्र में रोग होने से प्राणनाश होता है। इन अशुभों का शमन करना हो तो गायत्री मन्त्र पढ़कर पञ्चधान्य, तिल, घी, आदि के हवन करना चाहिए और ब्राह्मण को गो-दान करना चाहिए। सूर्य की दशा आठ वर्ष, चन्द्रमा की दशा पन्द्रह वर्ष, मङ्गल की दशा आठ वर्ष, बुध की दशा सत्रह वर्ष, केतु की दशा दश वर्ष, बृहस्पति की दशा उन्नीस वर्ष, राहु की दशा बारह वर्ष तथा शुक्र की दशा इक्कीस वर्ष तक रहती है। यह अष्टोत्तरी दशा है। ७५-७६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ज्योतिःशास्त्रकथनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२१

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालगणनम्

अग्निरुवाच—

कालः समागणो वक्ष्ये गणितं [1]कालबुद्धये।
कालः समागणोऽर्कघ्नो [2]मासैश्चैत्रादिभिर्युतः ॥१
द्विघ्नो द्विष्ठः सवेदः स्यात्पञ्चाङ्गाष्टयुतो[3] गणः।
त्रिष्ठो[4] मध्यो वसुगणः पुनर्वेदगणश्च सः ॥२
अष्टरन्ध्राग्निहीनः स्यादधः सैकरसाष्टकैः।
मध्यो हीनः षष्टिहतो[5] लब्धयुक्तस्तथोपरि ॥३

१ क. ङ. कालयुद्धये। ख. ग. कालवृद्धये। च. कालसिद्धये। २ ख. ङ. मासश्चैं°। ३ क. ङ. च° ङ्गाप्तयु°। ४ क. ङ. त्रिष्वे म°। ५ क. च. °ष्टिकृतो।

न्यूनः सप्तकृतो वारस्तदधस्तिथिनाडयः[1]।
सगुणो [2]द्विगुणश्चोर्ध्वं[3] त्रिभिरूनो गुणः पुनः ॥४
अधः खरामसंयुक्तो[4] रसार्काष्टपलैर्युतः ।
[5]अष्टाविंशच्छेषपिण्डस्तिथिनाड्या[6] अधः स्थितः[7] ॥५
गुणस्तिसृभिरूनोऽर्ध[8] द्वाभ्यां च[9] गुणयेत्पुनः ।
मध्ये रुद्रगुणः[10] कार्यो ह्यधः सैको नवाग्निभिः[11] ॥६
लब्धहीनो भवेन्मध्यो[12] द्वाविंशतिविवर्जितः ।
षष्टिशेष[13] ऋणं ज्ञेयं लब्धमूर्ध[14](र्ध्वं(?))विनिक्षिपेत् ॥७

अग्निदेव बोले—अब मैं काल-गणना के सम्बन्ध में बतलाऊँगा और इस काल-ज्ञान के लिए गणित का भी वर्णन करूँगा। वर्ष, शक समुदाय की संख्या को बारह से गुणा करना चाहिए और इस प्रकार से आई हुई संख्या में चैत्रादि मासों को जोड़ देना चाहिए। उसे दो से गुणा करके दो स्थानों में रखना चाहिए। पहले स्थान में चार और दूसरे स्थान में आठ सौ पैंसठ (८६५) मिलाये। इस प्रकार से प्राप्त संख्या को सगुण कहा जाता है। इन संख्या को तीन स्थानों में रखकर बीच की संख्या को आठ से गुणा करके उसे पुनः चार से गुणा करना चाहिए। इस प्रकार मध्य संख्या का संस्कार करके क्रम से रखी हुई तीन संख्याओं को यथास्थान समन्वित कर देना चाहिए। इस प्रकार उनमें प्रथम, बीच के और तृतीय स्थानों का नाम क्रमशः ऊर्ध्व, मध्य और अधः रखा जाता है। अधः स्थान में रहने वाली संख्या में तीन सौ अट्ठासी (३८८) और मध्यस्थानीय संख्या से सत्तासी (८७) घठाना चाहिए। तदनन्तर उसे साठ (६०) से विभाजित करना चाहिए। इस प्रकार तीन स्थानों में रखे हुए अङ्कों में से प्रथम स्थान में रखे हुए अङ्क को सात (७) से विभक्त करने पर शेष की संख्या के अनुसार रविवार इत्यादि दिन निकलते

---

१ क. ङ. °थिवाहनः। स°। २ च. °गुणैः सार्धं त्रिभिर्गुणकगणः। ३ क. ङ. °णश्चार्घं त्रि°। ४ क. °क्तो वसर्कोऽष्ट°। ५ क. ङ. °विशःशेष° ६ क. ङ. °नाथादधः। ७ क. ख. ग. ङ. °तः। गण°। ८ क. ङ. गुणः श्रेष्ठस्त्रिरूर्ध्वेऽथ द्वा°। ९ क. ख. ग. ङ. च. गण°। १० क. ख. ग. ङ. रुद्रगणः। ११ ख. ग. नराग्नि°। १२ क. ङ. °न्मध्ये द्वा° १३ क. ङ. °शेषो त्वृणं। १४ क. ङ. लब्धः पूर्वं वि°।

हैं। शेष दो स्थानों का अङ्क तिथि का ध्रुव होता है। सगुण को दो (२) से गुणा करके उसमें तीन (३) घटाकर और उसके नीचे सगुण को लिखकर उसमें तीस (३०) पुनः जोड़ देना चाहिए। तदनन्तर छह, बारह और आठ पलों को भी तीनों स्थानों में सम्मिलित कर देना चाहिए। उस संख्या को साठ से विभाजित करके प्रथम स्थान में अट्ठाईस (२८) से भाग देकर शेष के नीचे उपर्युक्त तिथि ध्रुवा को लिखने से ध्रुवा बन जाता है। पहली वाली सगुण संख्या के आधे से तीन घटाकर बची हुई संख्या को दो में गुणा करना चाहिए। बीच की संख्या को ग्यारह (११) से गुणा करके नीचे की संख्या में जोड़ देना चाहिए। दूसरे स्थान की संख्या को उनतालीस (३९) से भाग देकर भजनफल को प्रथम स्थान में घटाने से 'मध्य' बन जाता है। मध्य में बाईस (२२) घटा कर और बची हुई संख्या को ६० से भाग देने पर जो शेष बचता है वह नक्षत्र तथा योग का ध्रुवा हो जाता है।१-७।

सप्तविंशतिशेषस्तु ध्रुवो नक्षत्रयोगयोः।
मासि मासि क्षिपेद्वारं द्वात्रिंशद्घटिकास्तिथौ ॥८
द्वे पिण्डे द्वे नक्षत्रे नाड्य एकादश ह्यृणे।
वारस्थाने तिथिं दद्यात्सप्तभिर्भागमाहरेत् ॥९
शेषवाराश्च सूर्याद्या घटिकासु च पातयेत्।
पिण्डकेषु तिथिं [1]दद्याद्धरेच्चैव[2] चतुर्दश[3] ॥१०
[4]ऋणं धनं धनमृणं क्रमाज्ज्ञेयं चतुर्दश[5]।
प्रथमे त्रयोदशे पञ्च द्वितीयद्वादशे दश ॥११
पञ्चदश तृतीये च तथा चैकादशे स्मृतम्।
चतुर्थे दशमे चैव भवेदेकोनविंशतिः ॥१२
पञ्चमे नवमे चैव द्वाविंशतिरुदाहृताः[6]।
षष्ठाष्टमे[7] त्वखण्डाः स्युश्चतुर्विंशतिरेव च ॥१३
सप्तमे पञ्च विंशः स्यात्खण्डशः[8] पिण्डकाद्भवेत्।
कर्कटादौ हरेद्राशिमृतुवेदत्रयैः क्रमात् ॥१४
तुलादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात्।
मकरादौ दीयते (न्ते) (?) च रसवेदत्रयः क्रमात् ॥१५

---

१ ख. °द्याद्वारे दैव। २ क. ङ. °द्धरश्चैव। ३ ख. °श। धनमृणं घ° ॥ ४ अस्यश्लोकस्यार्धभागः क. ग. ङ. पुस्तके नास्ति। ५ घ. छ. °दंशे। प्र०। ६ क. ख. ग. ङ. च. द्वात्रिंश°। ७ अस्यार्धभागः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ८ क. ङ. °स्यात्यषण्डकः पि°।

मेषादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात् ।
खेषवः[1] खयुगा मैत्रं मेषादौ विकला धनम् ॥१६

कर्कटे प्रातिलोम्यं स्यादृणमेतत्तुलादिके ।
चतुर्गुणा तिथिर्ज्ञेया विकलाश्चेह सर्वदा ॥१७

अब तिथि तथा नक्षत्र की मासिक ध्रुवा के सम्बन्ध में बताया जा रहा है। तिथि ध्रुवा और नक्षत्र ध्रुवा को प्रत्येक मास में जोड़कर वार स्थान में सात से भाग देने पर जो शेष बचता है वही तिथि का दण्ड-पल समझा जाता है। नक्षत्र-ज्ञान के लिए सत्ताईस से भाग देकर अश्विनी से शेष संख्या के नक्षत्र का दण्ड आदि जाना जाता है।

चतुर्दशी आदि तिथियों में कही हुई घड़ियों को क्रमशः जोड़ना, घटाना तथा घटाना जोड़ना चाहिए। यथा चतुर्दशी में शून्य घड़ी तथा त्रयोदशी और प्रतिपदा में पाँच घड़ियों को क्रमशः जोड़ना तथा घटाना चाहिए, इसी प्रकार द्वादशी और द्वितीया में दश घड़ियों में जोड़ना घटाना चाहिए। तृतीया तथा एकादशी में पन्द्रह घड़ियाँ, चतुर्थी तथा दशमी में उन्नीस घटी, पञ्चमी और नवमी में बाईस घड़ियों तथा सप्तमी में पच्चीस घड़ियों को जोड़ना घटाना चाहिए। यह अंशात्मक फल चतुर्दशी आदि तिथियों में किया जाता है। कर्क आदि तीन राशियों में छः, चार, तीन तथा तुला इत्यादि तीन राशियों में इसके विपरीत तीन, चार, छह संस्कार करने पर अखण्ड कहलाता है। पचास, चालीस और बारह को मेष आदि तीन राशियों में जोड़ना चाहिए। इसके विपरीत कर्क इत्यादि राशियों में बारह, चालीस और पचास का योग करना चाहिए। किन्तु तुला इत्यादि छह राशियों में इन संख्याओं को घटा देना चाहिए। चौगुनी तिथि में विकलात्मक संस्कार हुआ करता है।८-१७।

[2]हन्याल्लिप्ता गतागामिपिण्डसंख्याफलान्तरैः ।
षष्ट्याऽऽप्तं[3] प्रथमोच्चार्ये[4] हानौ देयं धने धनम् ॥१८

द्वितीयोच्चरिते वर्गे[5] वैपरीत्यमिति स्थितिः ।
तिथिर्द्विगुणिता कार्या षड्भागपरिवर्जिताः[6] ॥१६

---

१ ख. मेखतः । २ घ. च.छ. °प्ता मता । ३ ख. ग. °ष्ट्यात्सप्रथमोच्चार्यं हा° । ४ क. °थमे द्वार्ये (हार्ये) हा० । ५ क. वह्लेपॅप° । ६ च. °ता । पारिक°

पहले गत तथा ऐष्य खण्डाओं के अन्तर से कला को गुणा करके तदनन्तर उसे (६०) साठ से भाग देना चाहिए और भजनफल को प्रथमोच्चार में ऋण फल रहने पर धन और धनफल रहने पर भी धन ही करना चाहिए किन्तु द्वितीयोच्चारित में इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिए। पहले तिथि को दुगुना करके योगफल से घटा देना चाहिए।१८-१९।

रविकर्मविपरीता तिथिनाडी समायुता।
ऋणे शुद्धे तु नाड्यः स्युर्ऋणं शुध्येत नो यदा॥२०
सषष्टिकं प्रदेयं तत्षष्ट्याधिक्ये च तत्त्यजेत्।
नक्षत्रं तिथिमिश्रं स्याच्चतुर्भिर्गुणिता तिथिः॥२१
तिथिस्त्रिभागं संयुक्ता ऋणेन च तथान्विता॥२१½

सूर्यसंस्कार के विपरीत तिथिदण्ड को मिलाना चाहिए। ऋणफल को घटाने पर स्पष्ट रूप से तिथि का दण्ड इत्यादि मान होता है। यदि ऋणफल न घटे तो उसमें साठ (६०) का योग कर देना चाहिए। यदि फल ही साठ से अधिक हो तो उसमें साठ घटाकर शेष का संस्कार करना चाहिए। इससे तिथि के साथ-साथ नक्षत्र का भी मान निकल आयेगा। उसके बाद चौगुनी तिथि में तिथि का त्रिभाग मिलाकर उसमें ऋणफल निकाल देना चाहिए।२०-२१½।

[1]तिथिरत्र[2] चिता कार्या[3] तद्वेदाद्योगशोधनम्[4]।२२
रविचन्द्रौ समौ कृत्वा योगो भवति निश्चलः।
एकोना तिथिर्द्विगुणा सप्तभिन्नाकृतिर्द्विधा[5]॥२३
तिथिश्च द्विगुणैकोना कृताङ्गैः करणं निशि।
कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणीह चतुष्पदम्।
प्रथमे तिथ्यर्धतो हि किंस्तुघ्नं प्रतिपन्मुखे॥२४

तिथि का मान तो स्पष्ट ही है। सूर्य और चन्द्रमा को योग करके भी योग का मान निकल आता है। तिथि की संख्या से एक घटाकर उसे दूना करके फिर गुणनफल से एक घटाने पर चर इत्यादि करण बन जाते हैं। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध से शकुनि, चतुष्पद, किंस्तुघ्न और नाग नामक स्थिर

---

१ क. ङ. °थिवद्रजिता। ख. °थिवद्रुटिता। २ ग. °रत्रोचि°। ३ क. ङ. °र्या भवेदा। ४ ख. तच्छेदा°। ५ क. ङ. च. °प्तच्छिन्ना°।

करण बनते हैं। इस प्रकार शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में किंस्तुघ्न करण होता है।२२-२४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कालगणनं नाम द्वाविंशत्यधिकशत-तमोऽध्यायः ।१२२

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवोयनानायोगाभिधानम्

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये जयशुभाद्यर्थं सारं युद्धजयार्णवे ।
अ इ उ ए [1]ओ स्वराः स्युः क्रमान्नन्दादिका तिथिः ।।१

अग्निदेव बोले—अब मैं स्वरोदय चक्र का वर्णन करूँगा, जिसकी सहायता से युद्ध में विजय और शुभ आदि का ज्ञान किया जा सकता है। अलग-अलग कोष्ठकों में अ, इ, उ, ए, ओ-स्वरों को लिखकर नीचे क्रमशः नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी) आदि तिथियाँ लिखनी चाहिए।

कादिहान्ता[2] भौमरवी ज्ञसोमौ गुरुभार्गवौ[3] ।
शनिर्दक्षिणनाड्यां तु [4]भौमार्कशनयः [5]परे ।।२
स्वार्णवः खरसैर्गुण्यो रुद्रैर्भागं समाहरेत्[6] ।
रसाहतं[7] तु तत्कृत्वा पूर्वभागेन (ण) भाजयेत् ।।३
वह्निभिश्चाऽऽहतं कृत्वा रूपं तत्रैव निक्षिपेत् ।
स्पन्दनं नाड्याः पलानि सप्राणस्पन्दनं पुनः ।।४
अनेनैव तु मानेन उदयन्ति दिने दिने ।
स्फुरणैस्त्रिभिरुच्छ्वास उच्छ्वासैस्तु पलं स्मृतम् ।।५
षष्टिभिश्च पलैर्लिप्ता लिप्ताषष्टिस्त्वहर्निशम् ।
पञ्चमार्धोदये बालकुमारयुववृद्धकाः ।।६

---

१ क. ङ. ए तु स्व° । ख. ग. ए ओ मो °स्व° । च. ए उ उ स्व° । २ क. ङ. दि तास्ता भौ° । ३ ख. °भास्करौ । श° । ४ क. ङ. °र्कमनयोः प° । ५ क. च. °रे । खतुरः षरसौम्येन रु° । ६ क. ङ. °त् । जप ॐ र° । ख. ग. त् । जयद ओन र° । ७ क. सायनं° तु ।

[1]मृत्युर्येनोदयस्तेन[2] चास्तमेकादशांशकैः।
कुलागमे भवेद्भङ्गः समृत्युः पञ्चमोऽपि वा ॥७

फिर क से ह तक व्यञ्जनवर्णों को लिखकर उनके नीचे मङ्गल, रवि, बुध, सोम, गुरु, शुक्र तथा शनि लिखना चाहिए, किन्तु शनि, मङ्गल तथा सूर्य को चक्र के दाहिनी ओर रखना चाहिए। चालीस को साठ से गुणा करके ग्यारह से भाग दे, लब्धि छह से गुणा करके पुनः ग्यारह से भाग दे, लब्धि को तीन से गुणा करके एक जोड़ दे तो उतने ही वार नाड़ी के स्फुरण पल होता है। इसी प्रकार नाड़ी का स्फुरण होता रहता है। तीन स्फुरणों से उच्छ्वास होता है, छह उच्छ्वासों के पल कहे जाते हैं। साठ पलों से लिप्त दण्ड और साठ दण्डों से रात-दिन होते हैं। अ, इ, आदि पाचों स्वरों की क्रम से बाल, कुमार, युवा, वृद्ध एवं मृत्यु संज्ञायें होती हैं। एक स्वर के उदय के बाद दूसरे स्वर का उदय पाँचवें स्वर पर होता है, जो स्वर उदय काल में रहता है, वही स्वर अस्त काल में भी रहता है। उदय और अस्त काल एकादशांश के तुल्य होता है, जब मृत्यु स्वर का उदय हो तो उस समय युद्ध-यात्रा करने से मृत्यु होती है। तीन स्फुरण का एक उच्छ्वास होता है, छह उच्छ्वास का एक पल होता है, साठ पल का एक दण्ड (घटी) होता है। (६०) साठ दण्ड का एक अहोरात्र होता है। अर्धयाम बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु-संज्ञक होते हैं। जिनका उदय होता है उसी का अस्त होता है। स्वरों का मान एकादशांश के तुल्य होता है, कुल आगम में यात्रा करने से पराजित होना पड़ता है और मृत्यु स्वर के उदय में युद्ध करने पर मृत्यु के साथ पराजय होती है।२-७।

स्वरोदयचक्रम्

शनिचक्रे चार्धमासं ग्रहाणामुदयः क्रमात्।
त्रिभागैः पञ्चदशभिः शनिभागस्तु मृत्युदः ॥८

शनिचक्र में ग्रहों का उदय क्रमशः पन्द्रह भागों में विभक्त होकर आधे मास होता है। इनमें शनि का भाग मृत्युदायक कहा जाता है।८

१ च. °दयास्ते°। २ क. ङ. °स्तेषां वास्तुमे°।

शनिचक्रम्

दशकोटिसहस्राणि [1]अर्बुदं न्यर्बुदं हरेत्[2] ।
त्रयोदश[3] च लक्षाणि प्रमाणं कूर्मरूपिणः ॥
मघादौ कृत्तिकाद्यन्तस्तद्देशान्तः शनिस्थितौ ॥९

कूर्मरूप का प्रमाण है दश करोड़, हजार, अरब, खरब और तेरह लाख। मघा नक्षत्र के आदि चरण से कृत्तिका नत्रक्ष तक, उस देश में शनि की स्थिति होती है। मघा से कृत्तिका तक शनिक्षेत्र है।९

कूर्मचक्रम्

राहुचक्रे च सप्तोर्ध्वमधः सप्त च संलिखेत् ।
वाय्वग्न्योश्चैव नैर्ऋत्ये पूर्णिमाऽऽग्नेय भागतः ॥१०
अमावास्यां वायवे च राहुर्वैतिथिरूपकः ।
रकारं[4] दक्षभागे तु हकारं वायवे लिखेत् ॥११
प्रतिपदादौ ककारादीन्सकारं नैर्ऋते पुनः ।
राहोर्मुखे तु भङ्गः स्यादिति[5] राहुरुदाहृतः ॥१२

राहु-चक्र के लिए सात खड़ी रेखा एवं सात पड़ी रेखा बनानी चाहिए। उसमें वायुकोण से नैर्ऋत्य को लिये हुए अग्निकोण तक शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों को लिखना चाहिए एवं अग्निकोण से ईशान को लिए हुए वायुकोण तक कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावश्या तक की तिथियों को लिखना चाहिए। इस तरह तिथिरूप राहु का न्यास होता है। रकार को दक्षिण दिशा में लिखे और 'ह' कार को वायुकोण में लिखे। प्रतिपदादि तिथियों के सहारे 'क' कारादि अक्षरों को भी लिखे। नैर्ऋत्य कोण में 'सकार' लिखे। इस तरह राहु-चक्र तैयार हो जाता है। राहु-मुख में यात्रा करने से यात्रा-भङ्ग होता है।१०-१२।

विष्टिरग्नौ पौर्णमास्यां करालीन्द्रे[6] तृतीयकम्[7] ।
घोरा याम्यां तु सप्तम्यां दशम्यां रौद्रसौम्यगा ॥१३

---

१ ख. ग. घ, छ. °र्बुदान्य° । २ च. क्रमात् । ३ ख. ग. छ. °दशे च । ४ क. पकारं । ख. ग. दकारं । च. एकारं । ५ क. स्यात्तिथीनां तु उदा° । ६ ख. ग. छ. °राणीन्द्रे । ७ क. ङ. च. °यकाः । घो° ।

चतुर्दश्यां तु वायव्ये चतुर्थ्यां वरुणाश्रये[1] ।
शुक्लाष्टम्यां दक्षिणे च एकादश्यां भृशं त्यजेत् ॥१४

अग्निकोण में 'विष्टि' नाम की तथा पौर्णमासी की पूर्व दिशा में, 'कराली' नाम की तृतीया, दक्षिण दिशा में 'घोरा' नाम की सप्तमी तथा दशमी, ईशानकोण में दशमी को, वायव्यकोण में चतुर्दशी को, पश्चिम दिशा में चतुर्थी को, और दक्षिण दिशा में शुक्लपक्ष की अष्टमी तथा एकादशी को (भद्रा) रहती है। इसका प्रत्येक शुभ कार्यों में सर्वथा त्याग करना चाहिए। १३-१४।

रौद्रश्चैव तथा श्वेतो मैत्रः सारभटस्तथा ।
सावित्रो[2] विरोचनश्च जयदेवोऽभिजित्तथा ॥१५
रावणो[3] विजयश्चैव नन्दी वरुण एव च ।
यमसौम्यौ भवश्चान्ते दश पञ्च मुहूर्तकाः ॥१६
रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत श्वेते स्नानादिकं चरेत् ।
मैत्रे कन्याविवाहादि शुभं सारभटे चरेत् ॥१७

रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, विरोचन, जयदेव, अभिजित्, रावण, विजय, नन्दी, वरुण, यम, सौम्य, भव, ये पन्द्रह मुहूर्त लिखना चाहिए। मैत्र में कन्या-विवाह आदि कार्य और सारभट में (साधारण) शुभ कार्य करना चाहिए।१५-१७।

सावित्रे स्थापनाद्यं वा विरोचने नृपक्रिया ।
जयदेवे जयं कुर्याद्रावणे[4] रणकर्म च ॥१८

सावित्र्य में स्थापनादि कार्य और विरोचन में राजकार्य करना चाहिए। जयदेव में विजय सम्बन्धी कार्य और रावण में युद्धकार्य करना चाहिए।१८

विजये कृषिवाणिज्यं पटबन्धं च नन्दिनि ।
वरुणे च तडागादि नाशकर्म यमे चरेत् ॥१९
सौम्ये सौम्यादि कुर्वीत भवेल्लग्नमहर्दिवा ।
योगा नाम्नाऽविरुद्धाः स्युर्योगा नाम्नैव शोभनाः ॥२०

---

१ च. श्रवणात्रये। २ च. सरितो। ३ ङ. च. वारुणो। ४ च. °र्याद्वारणे।

विजय में खेती-व्यापार, नन्दी में वस्त्र-गृह-निर्माण, वरुण में तालाब आदि खोदने का कार्य, यम में नाशकार्य और सौम्य में सौम्यकार्य करना चाहिए। क्योंकि इन मुहूर्तों में लग्न रात-दिन रहता है। योग नाम से अविरुद्ध होते हैं और नाम से ही वे सुन्दर होते हैं।१९-२०।

राहुरिन्द्रात्समीरं च वायोर्दक्षं यमाच्छिवम्।
शिवादाप्यं जलादग्निरग्नेः सौम्यं ततस्त्रयम् ।।२१
ततश्च संक्रमं हन्ति चतस्रो घटिका भ्रमन् ।।२२

राहु इन्द्र दिशा से वायु दिशा में, वायु दिशा से यम दिशा में, यम दिशा से शिवदिशा में, शिवदिशा से जलदिशा में, जलदिशा से अग्निदिशा में, अग्नि-दिशा से सौम्य दिशा में तीन-तीन दिशा करके चार घटिकाओं का भ्रमण करके सङ्क्रम का नाश करता है।२१-२२।

राहुचक्रम्

चण्डीन्द्राणी [1]वाराही च मुशली गिरिकर्णिका।
बला चातिवला [2]क्षीरी मल्लिकाजातियूथिकाः ।।२३
यथालाभं धारयेत्ताः श्वेतार्कश्च शतावरी।
गुडूची वागुरी दिव्या ओषध्यो धारिता [3]जये ।।२४

चण्डी, इन्द्राणी, वाराही (विलाई कन्द), मुशली, गिरिकर्णिका (विष्णु-क्रान्ता), बला (वरिआरा), अतिबला, क्षीरी, मल्लिका, यूथिका, जाती, श्वेत अर्क, शतावरी, गुडूची, वागुरी—इन दिव्य ओषधियों को धारण क के संग्राम में जाने से विजय प्राप्त होती है।२३-२४।

ॐ नमो भैरवाय [4]खड्गपरशुहस्ताय ॐ [5]ह्रूं विघ्नविनाशाय ॐ ह्रूं[6] फट् ।।२५

अनेनैव तु मन्त्रेण शिखाबन्धादिकृज्जये[7]।
[8]तिलकं चाञ्जनं चैव धूपलेपनमेव च ।।२६
स्नानपानानि तैलानि योगधूलिमतः शृणु ।।२६½

---

१ च. वाराही। २ च. क्षीरा। ३ ख. च. जपेत्। ४ घ. छ. खण्डप°। ५ क. ङ. च. हूँ। ६ क. ङ. च. हूँ। ७ क. ङ. च. °ज्जपेत्। ति°। ८ क° कं वा जलं चै°। ९ क. °गवृत्तिम°।

"ॐ नमो भैरवाय खड्ग परशुहस्ताय", "ॐ हूँ विघ्नविनाशाय ओं हूँ फट्" इस मन्त्र से शिखा बाँध कर संग्राम करे तो विजय प्राप्त होती है। अब तिलक, अञ्जन, धूपलेपन, स्नान-पान, तेल और योगधूलि का विवरण सुनो। २५-२६½।

सुभगा मनः शिला तालं लाक्षारससमन्वितम् ॥२७
तरुणीक्षीरसंयुक्तो ललाटे तिलको वशे।
विष्णुक्रान्ता च सर्पाक्षी सहदेवी[1] च रोचना ॥२८
अजादुग्धेन[2] संपिष्टं तिलको वश्यकारकः ॥२८½

सुभगा (नीलदूर्वा), मनःशिला, कैवर्ती, मोथा तथा हरिताल को लाक्षारस और युवती स्त्री के दूध के साथ पीसकर ललाट पर तिलक लगाने से वशीकरण होता है। विष्णुक्रान्ता, सर्पाक्षी (महिषकन्द), सहदेवी तथा गोरोचन को बकरी के दूध के साथ पीसकर तैयार किया हुआ तिलक वशीकरण करने वाला होता है।२७-२८½।

प्रियंगुकुङ्कुमं कुष्ठं मोहनी तगरं घृतम् ॥२९
तिलको वश्यकृच्चैव रोचना रक्तचन्दनम्।
निशा मनःशिला तालं प्रियंगुः सर्षपास्तथा ॥३०
मोहनी हरिता कान्ता सहदेवी शिखा तथा।
मातुलुङ्गरसैः [3]पिष्टं ललाटे तिलको वशे ॥३१
सेन्द्राः सुरा वशं यान्ति किं पुनः क्षुद्रमानुषाः ॥३१½

प्रियंगु, कुङ्कुम, कुष्ठ (कूट), मोहनी, तगर तथा घी से तैयार किए हुए तिलक में वशीकरण की शक्ति रहती है। गोरोचन, रक्तचन्दन, निशा(हरिद्रा) मनःशिला, हरिताल, प्रियंगु, सरसों, मोहनी, हरिता, कान्ता, सहदेवी और शिखा को बिजौरा नीबू के रस में पीसकर ललाट पर तिलक लगाने से इन्द्र आदि देवता भी वशीभूत हो जाते हैं, क्षुद्र मनुष्यों का तो कहना ही क्या? ।२९-३१½।

---

१ क. ङ. च. महादेवी। घ. छ. सहदेव°। २ क. ङ. च. अजलिङ्गरसैः पि°। ३ ख. ग. च. पिण्ड°।

मञ्जिष्ठा चन्दनं रक्तं कटुकन्दा विलासिनी ।।३२
पुनर्नवासमायुक्तो लेपोऽयं [1]भास्करो वशे ।
चन्दनं नागपुष्पं च मञ्जिष्ठा तगरं [2]वचा ।।३३
लोध्रं प्रियंगुरजनी मांसीतैलं वशंकरम् ।।३४

मजीठ, रक्तचन्दन, कटुकन्दा, विलासिनी और पुनर्नवा को पीसकर लेप करने से सूर्य भी वश में होते हैं। चन्दन, नागपुष्प, मजीठ, तगर, बच, लोध, प्रियंगु, रजनी तथा जटामासी का तेल, वशीकरण के लिए उपयुक्त होता है। ३२-३४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयनानायोगाभिधानं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२३

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसारः

अग्निरुवाच—
ज्योतिःशास्त्रादिसारं च वक्ष्ये युद्धजयार्णवे[1] ।
वेलामन्त्रौषधाद्यं च यथोमामीश्वरोऽब्रवीत्[2] ।।१

अग्निदेव बोले —अब मैं तुमसे युद्धजयोत्सव सम्बन्धीज्योतिःशास्त्र का तत्त्व, समय, मन्त्र तथा ओषधि का विवरण बताऊँगा, जैसा कि शिव ने पार्वती से बताया था ।१

देव्युवाच—

देवैर्जिता दानवाश्च येनोपायेन तद्वद ।
शुभाशुभविवेकाद्यं [3]ज्ञानं[4] युद्धजयार्णवम् ।।२

देवी बोलीं—जिस उपाय से देवताओं ने दानवों पर विजय प्राप्त की थी वह उपाय तथा शुभाशुभ का विवेक उत्पन्न करने वाली युद्धजयार्णवीय विद्या मुझे बताइये ।२

---

१ घ. छ. °वे। विना म°। २ क. ङ. च. °त्। उमोवा°। ३ क. ङ. च. ज्ञानयुद्धं ज°। ४ ख. ग. °नं सुदुर्जयं तु वै। ई°।

ईश्वर उवाच–

मूलदेवेच्छया जाता शक्तिः पञ्चदशाक्षरा ।
चराचरं ततो जातं यामाराध्याखिलार्थवित् ।।३
मन्त्रपीठं प्रवक्ष्यामि पञ्चमन्त्रसमुद्भुवम् ।
ते मन्त्राः सर्वमन्त्राणां जीविते मरणे स्थिताः ।।४
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यवेदमन्त्राः क्रमेण ते ।
सद्योजातादयो मन्त्रा [1]ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रकः ।।५
ईशः सप्तशिखा देवाः [2]शब्दाद्याः पञ्च च स्वराः ।
अ इ उ ए ओं [3]कलाश्च मूलं ब्रह्मेतिकीर्तितम् ।।६

ईश्वर बोले—आदि देव (ब्रह्मा) की इच्छा से पन्द्रह अक्षरों वाली एक शक्ति उत्पन्न हुई, जिससे चराचर जगत् की सृष्टि हुई और जिसकी आराधना कर मैं सर्वज्ञ हुआ हूँ। मैं तुमको मन्त्रपीठ का विवरण दे रहा हूँ, जिसकी उत्पत्ति पाँच मन्त्रों से हुई है और वे मन्त्र क्रमशः ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्व नाम के वेद मन्त्र हैं। सद्योजात आदि मन्त्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सप्तशिखा, देव शब्द आदि पञ्चतन्मात्रायें अ, इ, उ, ए, ओं—स्वर और कलाएँ इन सबका मूल ब्रह्म है।३-६।

काष्ठमध्ये यथा वह्निरप्रवृद्धो[4] न दृश्यते ।
विद्यमाना तथा देहे शिवशक्तिर्न[5] दृश्यते ।।७

जैसे लकड़ी के भीतर स्थित सूक्ष्म अग्नि बिना जले दृष्टिगोचर नहीं होती है, वैसे ही देह में विद्यमान शिवशक्ति दिखाई नहीं पड़ती है।७

आदौ शक्तिः समुत्पन्ना ओंकारस्वरभूषिता ।
ततो बिन्दुर्महादेवि एकारेण व्यवस्थितः ।।८

अयि, महादेवि! पहले ओंकार शब्द से भूषित शक्ति उत्पन्न हुई फिर एकार से युक्त बिन्दु की उत्पत्ति हुई।८

जातो नाद उकारस्तु नदते हृदि संस्थितः ।
अर्धचन्द्र इकारस्तु मोक्षमार्गस्य बोधकः ।९

---

१ क. ङ. ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ई° । २ घ. छ. शक्राद्याः । ३ घ. छ. ओ ।
३ क. ङ. ह्रिदुग्धमध्ये यथावृतम् । वि° । ५ क. ङ. शिवे भक्ति° ।

तत्पश्चात् नाद से उकार उत्पन्न हुआ, जो हृदय में स्थित होकर शब्द करता है। तदनन्तर अर्वचन्द्राकार इकार की उत्पत्ति हुयी, जो मोक्षमार्ग का बोधक है।९

अकारोऽव्यक्त उत्पन्नो भोगमोक्षप्रदः परः।
अकार ऐश्वरे भूमिर्निवृत्तिश्च कला स्मृता ॥१०

तदनन्तर भोग-मोक्ष-दायक अव्यक्त अकार उत्पन्न हुआ। वह अकार ब्रह्म का ऐश्वर्य और निवृत्ति कला है।१०

गन्धो[1] न वीजः प्राणाख्य इडा शक्तिः स्थिरा स्मृता।
इकारश्च प्रतिष्ठाख्यो रसोयानश्च[2] पिङ्गला[3] ॥११

गन्ध रूप में अकार की इडा शक्ति स्थिर शक्ति है। वह अकार प्राण-स्वर बीज मन्त्र है। इकार की संज्ञा प्रतिष्ठा है। वह क्रूर शक्ति पिङ्गला तथा अपान वायु का आश्रय है, रस रूप में उसका बीजमन्त्र इकार है।११

क्रूरा [4]शक्तिरीवीजः [5]स्याद्धरवीजोऽग्निरूपवान्।
विद्यासमाना गान्धारी शक्तिश्च[6] दहनी स्मृता॥ १२
ए शान्तिर्वार्युपस्पर्शो यश्चोदानश्चला क्रिया।
ओंकारः शान्त्यतीताख्यः[7] खशब्दयूथपालिनः[8] ॥ १३

शिव का बीजमन्त्र अग्नि स्वरूप है। इसकी शक्तियों के नाम विद्या, समाना, गान्धारी तथा दहनी हैं। एकार को शान्ति जल का आचमन और यकार को उदान वायु तथा चलन क्रिया समझना चाहिए। ओंकार ब्रह्म का स्वरूप शान्ति अतीत नामक है।१२-१३।

[9]पञ्च वर्गाः [10]स्वरा [11]जातः कुजज्ञगुरुभार्गवाः।
शनिः क्रमादकाराद्याः ककाराद्यास्त्वधः स्थिताः। १४
एतन्मूलमतः सर्वं ज्ञायते सचराचरम् ॥१४½

---

१ ख. °न्धो वीचजः प्रा°। २ क. ङ. रम्येपालश्च। घ. छ. रसोपालश्च। ३ ख. °ला। कुर्याच्छिक्तिर्हि बी°। ४ क. ङ. शक्तोऽथ बी°। ५ क. ङ. स्याधर°। ६ क, ङ. शक्तीश्वरमही स्मृ°। ७ क. ख. ङ. °स्व्यः स्वंश°। ग. °स्व्यः सश°। ८ घ. छ. °पाणिनः। ९ क. ङ. °स्वरक्षाः स्व°। १० क. ङ. °राज्जाताः। ११ ख. ग. ज्ञाताः।

जिन स्वरवर्ण के स्वामी पाँच श्रेणियों में विभक्त हैं जो क्रमशः मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि के लाक्षणिक रूप हैं। ककार आदि वर्ण अधोवर्ती हैं। यह शब्दब्रह्म सबका मूल है। इसी से सम्पूर्ण चराचर जगत् का ज्ञान होता है।१४-१४½।

विद्यापीठं प्रवक्ष्यामि प्रणवः [1]शिव ईरितः ।। १५
उमा सोमः स्वयं शक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रौद्र्यपि ।
ब्रह्मा विष्णुः क्रमाद्रुद्रो [2]गुणाः सर्गादयस्त्रयः ।। १६
रत्ननाडीत्रयं चैव स्थूलः सूक्ष्मः परोऽपरः ।। १६½

अब मैं विद्यापीठ का वर्णन करूँगा। शिव द्वारा प्रतिपादित प्रणव में उमा, सोम, शक्ति, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों गुण सत्त्व, रज और तम, तीनों प्रमुख नाड़ियाँ, इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना और स्थूल, सूक्ष्म पर तथा अपर रूप विद्यमान है।१५-१६½।

चिन्तयेच्छ्वेतवर्णं[3] तं मुञ्चमानं परामृतम्[4] ।।१७
प्लाव्यमानं यथाऽऽत्मानं चिन्तयेत्तं दिवानिशम् ।
अजरत्वं भवेद्देवि[5] शिवत्वमुपगच्छति[6] ।। १८

अयि देवि ! प्रणव का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उसका वर्ण श्वेत है, उससे अमृत टपक रहा है और उस अमृत में मैं बह रहा हूँ। दिन-रात ऐसा ध्यान करने से मनुष्य अजर होकर शिवत्व को प्राप्त कर लेता है। १७-१८।

अंगुष्ठादौ न्यसेदङ्गान्नेत्रमध्येऽथ[7] देहके ।
मृत्युञ्जयं ततः प्राच्र्य रणादौ विजयी भवेत् ।। १९

नेत्र के भीतर मृत्युञ्जय (शिव) का ध्यान करके अङ्गुष्ठ आदि में अङ्ग-न्यास करने से मनुष्य सङ्ग्राम आदि में विजयी होता है।१९

शून्यो निरालयः शब्दः [8]स्पर्शस्तिर्यङ्नतं[9] स्पृशेत् ।
रूपस्योर्ध्वगतिः प्रोक्ता जलस्याधः समाश्रिता ।। २०
सर्वस्थानविनिर्मुक्तो[10] गन्धो मध्ये च मूलकम् ।

१ क. ङ. सित । च. स्थिर । २ क. ख. ङ, च. °णाः स्वर्गा° । ३ घ. °येच्छुभव° । ४ ङ. °म् । पृच्छ्यमानं यदाऽऽत्मा° । च. °म् । प्राच्र्यमानं तथाऽऽ° । ५ च.° वेद्वाऽपि शि° । ६ च. °त्वमधिग° । ७ ख. ग. घ. छ. °न्नेत्रं म° । ८ ख. घ. स्पर्शं तिर्य° । ९ ख. ग. च. °र्यग्गतं । १० क. ङ.° र्वकालवि° । च. °र्वज्ञानं ।

नाभिमूले स्थितं कन्दं[1] शिवरूपं तु मण्डितम् ।
शक्तिव्यूहेन सोमोऽर्को हरिस्तत्र व्यवस्थितः ॥ २१½

पञ्चतन्मात्राओं में शब्द की गति शून्य और निरालय होती है। स्पर्श की गति तिरछी और झुकी हुई होती है। रूप की गति ऊर्ध्व, जल की गति निम्न और गन्ध की गति सब स्थानों से मुक्त होती है। नाभिमूल में स्थित कन्द शिवरूप है और वहाँ शक्तिव्यूह के साथ सूर्य, चन्द्र तथा हरि अवस्थित रहते हैं। २०-२१½ ।

दशवायुसमोपेतं पञ्चतन्मात्रमण्डितम् ॥ २२
कालानलसमाकारं प्रस्फुरन्तं शिवात्मकम् ।
तज्जीवं जीवलोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥
तस्मिन्नष्टे मृतं मन्ये मन्त्रपीठेऽनिलात्मकम् ॥ २३

उनके मध्य में दश प्रकार की वायुओं से युक्त, पञ्चतन्मात्राओं से विभूषित और कालाग्नि के समान जाज्वल्यमान शिवरूप प्रणव की अवस्थिति रहती है। वह जीवलोक का जीव है तथा चराचर जगत् का आधार है। मन्त्रपीठ से उसके हट जाने पर वायुरूप जीव नष्ट हो जाता है।२२-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसार-वर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२४

———

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानाचक्राणि

[2]ईश्वर उवाच—
ॐ [3]ह्रीं [4]कर्णमोटनि[5] बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूं फट्, ॐ हः,
ॐ ग्रस ग्रस कृन्त कृन्त च्छक च्छक हूं फट्, नमः ॥ १
पठ्यमानो ह्ययं मन्त्रः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
मारणे पातने वाऽपि मोहनोच्चाटने भवेत् ॥
कर्णमोटी महाविद्या सर्ववर्णेषु रक्षिका ॥ २

---

१ क. ङ. गन्धं । २ च. अग्निरुवाच । ३ च. हूं । ४ ख. ग. °र्णघाटैनवेदरूपे दंष्ट्रे हूं फट्, अहः, असकृत्कृतच्छकतहूं फट्, नमः । ५ क. °मोटे लङ्के क्रूररूपे दंष्ट्रे हुंफट्, फट्, हां हां ग्र° ।

महेश्वर बोले—'ॐ ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हूं फट्, ॐ, हः, ॐ ग्रस ग्रस कृन्त कृन्त च्छक-च्छक हूं फट् नमः'—आँखें लालकर क्रोधपूर्वक इस मन्त्र का जप करने से मारण-मोहन-उच्चाटन तथा पातन (पदच्युति) क्रियाएँ सिद्ध होती हैं। यह सर्ववर्णरक्षिका, कर्णमोटी, महाविद्या का मन्त्र है।१-२।

(इति) नानाविद्या (द्याः)

नाना प्रकार की विद्यायें समाप्त हुईं।

पञ्चोदयं प्रवक्ष्यामि स्वरोदय समाश्रितम्।
नाभिहृदन्तरं[1] यावत्तावच्चरति मारुतः॥ ३

अब मैं स्वरोदय सहित पञ्चोदय का वर्णन करूँगा। नाभि से हृदय तक जितना स्थान है, उतने स्थान में वायु का सञ्चरण होता है।३

उच्चाटयेद्रणादौ तु कर्णाक्षीणि प्रभेदयेत्।
करोति साधकः क्रुद्धो जपहोमपरायणः॥ ४
हृदयात्पायुकं कण्ठं ज्वरदाहारिमारणे।
कण्ठोद्भवो रसो वायुः शान्तिकं पौष्टिकं रसम्[3] ॥५

कुछ साधक को जप और होम करते हुए रण के आदि में उच्चाटन और कान तथा आँखों का भेदन करना चाहिये। जिस समय वायु का सञ्चार हृदय से कण्ठ की ओर हो रहा हो, उस समय शत्रु के ज्वर, दाह और मारण का प्रयत्न करना चाहिए। जिस समय साधक की वायु कण्ठ से उत्पन्न हो रही हो, उस समय शान्तिक और पौष्टिक कर्मों को करना चाहिए।४-५।

दिव्यं स्तम्भं समाकर्षं गन्धो [4]नासान्तिको [5]भ्रुवः।
गन्धलीनं मनः कृत्वा स्तम्भयेन्नात्र संशयः॥ ६
स्तम्भनं कीलनाद्यं च करोत्येव हि साधकः।
चण्डघण्टा कराली च सुमुखी दुर्मुखी तथा॥ ७
रेवती प्रथमा घोरा वायुचक्रे[6] तु ता यजेत्।
उच्चाटकारिका देव्यः स्थितास्तेजसि संस्थिताः॥ ८

---

१ क. ङ. °हृद्यन्त° । घ. छ. °हृदान्त° । २ ख. ग. °त्पादुकं । ३ क. ङ. रसः । ख. वशम् । ४ ख. नाशान्ति° । ५ क. ङ. भवः । ख. च. ध्रुवः । ६ ख. घ. छ. °क्रेषु ता ।

सौम्या च भीषणी देवी जया च विजया तथा ।
अजिता चापराजिता महाकोटी च रौद्रया ॥ ९
शुष्ककाया प्राणहरा रसचक्रे स्थिता अमूः ।
विरूपाक्षी परा दिव्यास्तथा चाऽऽकाशमातरः ॥ १०
[1]संहारी जातहारी च [2]दंष्ट्राला [3]शुष्करेवती ।
[4]पिपीलिका [5]पुष्टिहरा महापुष्टिप्रवर्धना ॥११
भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका ।
[6]स्थिरा च निष्ठुरा दिव्या निष्कम्पा गदिनी तथा ॥१२

गन्ध का स्थान नासिका के अन्त में भ्रू तक हो तो साधक को स्तम्भन तथा आकर्षण करते समय मन को गन्ध में ही लगा देना चाहिये । इस प्रकार से किया गया स्तम्भन अवश्य ही अभीष्ट फल देने वाला हुआ करता है, इसमें कोई संशय नहीं है । इसी प्रकार साधक को स्तम्भन और कीलन आदि का अनुष्ठान करना चाहिए । चण्डघण्टा, कराली, सुमुखी, दुर्मुखी, रेवती, प्रथमा, घोरा— इन देवियों की पूजा वायुचक्र में करनी चाहिए । उच्चाटन करने वाली देवियों का तेजश्चक्र निवास-स्थान हैं और उनके नाम हैं— विरूपाक्षी, परा, दिव्या, आकाशमाता, संहारी, जातहारी, दंष्ट्राला, शुष्करेवती, पिपीलिका, पुष्टिहरा, महापुष्टिप्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा, सुभद्रिका, स्थिरा, निष्ठुरा, निष्कम्पा तथा गदिनी । ९-१२।

द्वात्रिंशन्मातरश्चक्रे अष्टाष्टक्रमशः स्थिताः ।
एक एव रविश्चन्द्र [7]एकश्चैकैकशक्तिका ॥ १३
भूतभेदेन [8]तीर्थानि यथा तोयं महीतले ।
प्राण एको मण्डलैश्च भिद्यते [9]भूतपञ्जरे ॥ १४
वामदक्षिणयोगेन दशधा सम्प्रवर्तते ।
[10]वि (वि) न्दुमुण्डविचित्रं च तत्त्ववस्त्रेण वेष्टितम् ॥ १५
ब्रह्माण्डेन कपालेन [11]पिबेत परमामृतम् ॥ १५½

१ क. ङ. °हारा जिनहा° । २ क. ख. ग. ङ. दंष्ट्राणी । ३ क. ख. ग. ङ. शुकरे° । ४ क. ङ. पिलि° । ५ क. °ष्टिहारा च म° । ६ स्थिरा······ गदिनी तथा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ७ क. ख. ङ. °श्चैके सशक्तिकाः । भू° । ८ क. ङ. भिन्नानि । ९ क. ङ. °पञ्च च । वा° । १० क. ङ. विष्णुमण्डविचित्रं च तत्त्वै व° । ११ क.ङ. °वेत्परमयाऽम् ।

ये बत्तीस देवियाँ आठ-आठ करके निवास करती हैं, उनमें से सूर्य-चन्द्र एक ही शक्ति है। उनकी शक्तियाँ भूतभेद से एक ही है । जैसे भूतल पर नदी के जलों के स्थान-भेद से तीर्थ संज्ञा होती है; उसी प्रकार प्राण एक ही होते हुए कई मण्डलों में विभक्त हो जाता है। वह वाम, दक्षिण के योग से दश प्रकार का होता है । ये देवियाँ पञ्चमहाभूतरूपी वस्त्र से वेष्टित विन्दु रूपी मुण्ड से टपकते हुए परमामृत को ब्रह्माण्डरूपी कपाल में रख करके पान करती हैं। १३-१५½।

पञ्चवर्गवलाद्युद्धे जपो भवति तच्छृणु ।।१६
अआकचटतपयाः श आद्यो वर्ग ईरितः ।
इईखछठथफराः षो वर्गश्च द्वितीयकः ।। १७
उऊगझडदवलाः सो वर्गश्च तृतीयकः ।
एऐघझढधभवा हो वर्गश्च चतुर्थकः ।। १८
ओ औ अं अः, ङञणना मो वर्गः पञ्चमो भवेत् ।
वर्णाश्चाभ्युदये नृणां चत्वारिंशच्च पञ्च च ।। १९
बालः कुमारो युवा स्याद् वृद्धो मृत्युश्च नामतः ।
आत्मपीडाशोषकः स्यादुदासीनश्च कालकः ।। २०

पञ्चवर्ग के बल से युद्ध में जिस प्रकार विजय प्राप्त होती है, वह सुनो। अ, आ, क, च, ट, त, प, य और श--यह पहला वर्ग है। इ, ई, ख, छ, ठ, थ फ, र और ष—यह दूसरा वर्ग है। उ, ऊ, ग, ज, ड, द, ब, ल, और स—यह तीसरा वर्ग है। ए, ऐ, घ, झ, ढ, ध, भ, व और ह यह चौथा वर्ग है। ओ, औ, अं, अः, ङ, ञ, ण, न, और म—यह पाँचवाँ वर्ग है। ये पैंतालीस अक्षर मनुष्यों के लिए कल्याणकारक होते हैं। इनके अनुसार मनुष्य, बालक, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु ये पाँच नाम हैं। आत्मपीडा, शोषक तथा उदासीन ये तीन काल हैं। १९।२०।

[1]कृत्तिका प्रतिपद्भौम[2] आत्मनो लाभदः स्मृतः ।
षष्ठी भौमो मघा पीडा आर्द्रा चैकादशी कुजः ।। २१

कृत्तिका नक्षत्र, प्रतिपदा तिथि और मङ्गलवार का योग लाभकारक होता है। मघा नक्षत्र, षष्ठी तिथि और मङ्गलवार का योग पीडाकारक होता है। मङ्गलवार, एकादशी तिथि, आर्द्रा नक्षत्र मृत्युकारक होता है।२१

---

१ क. ङ. कार्तिकी। २ क. ङ. °म अश्वारोहादयः स्मृताः। ष°।

मृत्युर्मघा द्वितीया ज्ञो[1] लाभश्चाऽऽर्द्रा च सप्तमी ।
[2]बुधोऽहनि भरणीज्ञः श्रवणं काल ईदृशः ॥ २२
जीवो लाभाय च भवेत्तृतीया पूर्वफाल्गुनी ।
जीवोऽष्टमी धनिष्ठाऽऽर्द्रा जीवोऽश्लेषा त्रयोदशी ॥ २३
मृत्यौ शुक्रश्चतुर्थी स्यात् पूर्वभाद्रपदा[3] श्रिये ।
पूर्वाषाढा च नवमी शुक्रः पीडाकरो भवेत् ॥ २४
भरणी [4] भूतजा शुक्रो यमदण्डो हि [5]हानिकृत् ।
कृत्तिका पञ्चमी मन्दो लाभाय तिथिरीरिता ॥ २५
आ (अ) श्लेषा दशमी मन्दो[6] योगः पीडाकरो भवेत् ।
मघा शनिः पूर्णिमा च योगो मृत्युकरः स्मृतः ॥ २६

मघा नक्षत्र, द्वितीया तिथि और बुधवार का योग, आर्द्रा नक्षत्र, सप्तमी तिथि, बुधवार का योग लाभकारक होता है । भरणी नक्षत्र बुधवार को हानिकारक होता है, श्रवण नक्षत्र बुधवार योग कालसंज्ञक होता है । पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र, तृतीया तिथि और बृहस्पतिवार का योग लाभकारक होता है । गुरुवार को धनिष्ठा और आर्द्रा नक्षत्र, अष्टमी तिथि, आश्लेषा नक्षत्र, त्रयोदशी तिथि और बृहस्पतिवार का योग मृत्युकारक होता है । पूर्वभाद्रपद नक्षत्र, चतुर्थी तिथि और शुक्रवार का योग श्रीवर्धक होता है । पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, नवमी तिथि और शुक्रवार का योग पीडाकारक होता है । भरणी नक्षत्र, चतुर्दशी तिथि और शुक्रवार का योग यम से दण्ड दिलाने वाला तथा हानिकारक होता है । कृत्तिका नक्षत्र, पञ्चमी तिथि तथा शनिवार का योग लाभकारक होता है । आश्लेषा नक्षत्र, दशमी तिथि और शनिवार का योग पीडाकारक होता है । मघा नक्षत्र, पूर्णिमा तिथि तथा शनिवार का योग मृत्युकारक होता है । २२-२६।

इति तिथियोगः (गाः)

[7]पूर्वोत्तराग्निनैर्ऋत्यदक्षिणानिलचन्द्रगाः[8] ।
[9]ब्रह्माद्याः [10]स्युर्दृष्टयः स्युः प्रतिपन्नवमीमुखाः ॥२७

---

१ क. ङ. °ज्ञो भवार्द्रातिथिस° । २ घ. छ. बुधे हानिर्भं° । ३ क. ङ. °दाश्व ये । ४ क. ङ. मृतजा । ५ घ. छ. हानिकम् । ६ क. ङ. मन्त्रो । ७ क. ङ. °र्ऋत्ये द° । ८ क. घ. छ. °न्द्रमाः । व्र । ९ ख. °ह्मा (द्या) स्त्रिषु पृष्ठे स्युः । १० क. ङ. °स्युस्त्रिदण्डी स्युः ।

राशिभिः सहिता दृष्टा ग्रहाद्याः सिद्धये स्मृताः ।
मेषाद्याश्चतुरः कुम्भा[1] जयः[2] पूर्णेऽन्यथा मृतिः ॥ २८

पूर्वदिशा, उत्तर दिशा, अग्निकोण, नैर्ऋत्यकोण, दक्षिण दिशा, वायव्य, पश्चिम दिशा और ईशान कोण की ओर हो और सभी ग्रह राशियों के साथ देखे जायँ, तो वे सिद्धि प्रदान करने वाले कहे गये हैं । मेष, वृष, मिथुन, कर्क तथा कुम्भ राशि यदि पूर्णातिथि(पंचमी, दशमी, अमावस्या) के साथ रहें, तो विजय प्रदान कराने वाली होती है, अन्यथा मृत्यु होती है । २७-२८।

सूर्यादि रिक्ता पूर्णा च क्रमादेवं प्रदापयेत् ।
रणे सूर्ये [3]फलं नास्ति सोमे भङ्गः प्रशाम्यति ॥२९
कुजेन कलहं विद्याद्बुधः कामाय वै गुरुः ।
जयाय [4]मनसे शुक्रो मन्दे भङ्गो रणे भवेत् ॥ ३०

इसी प्रकार रविवार को रिक्ता (नवमी, चतुर्थी, चतुर्दशी) तथा पूर्णातिथि पड़ जाने से विजय होती है । युद्ध में सूर्य कोई फल नहीं देता है, चन्द्रमा अशुभ फल का शमन करता है । मङ्गल कलह को बढ़ाता है, बुध अभीष्ट सिद्ध करता है, बृहस्पति विजय दिलाता है तथा शुक्र उत्साह और शनि पराजय उत्पन्न करता है । २९-३०।

देयानि पिङ्गलाचक्रं सूर्यगानि (णि) च भानि हि ।
मुखे नेत्रे ललाटेऽथ शिरोहस्तोरुपादके ॥३१
[5]पादे मृतिस्त्रिऋक्षे स्यात्त्रीणि पक्षेऽर्थनाशनम् ।
मुखस्थे च भवेत्पीडा शिरःस्थे कार्यनाशनम् ॥३२
कुक्षिस्थिते फलं स्याच्च राहुचक्रं वदाम्यहम् ॥३२½

(पिङ्गला (पक्षि) चक्र से शुभाशुभ कहते हैं—) एक पक्षी का आकार लिखकर उसके मुख, नेत्र, ललाट, सिर, हस्त, कुक्षि, चरण तथा पंख में सूर्य के नक्षत्र से तीन-तीन नक्षत्र लिखे । पैरवाले तीन नक्षत्रों में रण करने से मृत्यु होती है तथा पंख वाले तीन नक्षत्रों में धन का नाश होता है । मुखवाले तीन नक्षत्रों में पीड़ा होती है और शिर वाले तीन नक्षत्रों में कार्य का नाश

---

१ क. ङ. म्भा यजेत्पूर्णोऽन्य० । २ ख. जयपू० । ३ क ङ. लं भाति सो॰ । ४ क. ङ. शनये । ५ पादे……पक्षेऽर्थनाशनम् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः ।

होता है। कुक्षि वाले तीन नक्षत्रों में रण करने से उत्तम फल होता है। ३१-३२½।

इन्द्राच्च नैर्ऋतं गच्छेन्नैर्ऋतात्सोममेव च ॥३३
सोमाद्धुताशनं वह्नेरप्यामाप्याच्छिवालयम्।
रुद्राद्यमं यमाद्वायुं वायोश्चन्द्रं व्रजेत्पुनः ॥३४
[1]भुङ्क्ते चतस्रो नाड्य (डी) स्तु[2] राहुः[3]पृष्ठे जयो रणे।
[4]अग्रतो मृत्युमाप्नोति तिथिराहुं वदामि ते ॥३५

अब मैं राहु-चक्र का वर्णन कर रहा हूं। राहु पूर्व दिशा से नैर्ऋतकोण, नैर्ऋतकोण से उत्तर दिशा, उत्तर दिशा से अग्निकोण, अग्निकोण से पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा से ईशानकोण, ईशानकोण से दक्षिण दिशा, दक्षिण दिशा से वायुकोण और वायुकोण से पुनः उत्तर दिशा में आ जाता है, परन्तु वह प्रत्येक दिशा में चार घड़ी तक ही ठहरता है। यदि राहु की स्थिति रण-यात्री की पृष्ठदिशा में हो, तो उसे विजय-लाभ होता है और यदि वह रणयात्री के सामने की ओर हो, तो उसकी मृत्यु होती है। अब मैं तिथियों के साथ राहु के सम्पर्क के विषय में बता रहा हूँ।३३-३५।

[5]आग्नेयादि शिवान्तं च पूर्णिमाम्पदितः प्रिये।
पूर्वे कृष्णाष्टमीं यावद्राहुदृष्टौ[6] [7]जयो भवेत् ॥३६
ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्ये फणिराहुकः।
मेषाद्या दिशि पूर्वादौ यत्राऽऽदित्योऽग्रतो[8] मृतिः ॥३७

हे प्रिये! अग्निकोण से प्रारम्भ करके और पूर्वोत्तर कोणों तक जितने भी दिक्भाग हैं, उन्हें पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से राहु के समान अशुभ समझना चाहिए। इसलिए उस दिन इन दिशाओं की ओर की गई यात्रा अजय-प्रद होती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन पूर्व दिशा राहु-युक्त मानी जाती है। उस दिन पूर्वोत्तर, दक्षिण-पूर्व, पश्चिमोत्तर और दक्षिण-पश्चिम में केतु राहु के समान कार्य करता है। मेष राशि में पूर्व की ओर की गई यात्रा अत्यन्त अशुभ मानी गयी है। ३६-३७।

---

१ ख. भुजे। २ ख. राहु पृं। ३ ख. ॰पृष्ठे ज॰। ४ अग्रतो......वदामि ते नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ५ क. ङः ०ग्नेय्यां दिशि वाऽन्ते च। ६ क. ङ. ॰हु पुष्टे ज॰। ७ ख. ग. घ. छ. मयो। ८ ख. ग. ॰त्यो गतो।

तृतीया कृष्णपक्षे तु सप्तमी दशमी तथा ।
चतुर्दशी तथा शुक्ले चतुर्थ्येकादशी तिथिः ॥३८
पञ्चदशी विष्टयः स्युः पूर्णिमाऽऽग्नेयवायवे ।
अकचटतपयशा वर्गाः सूर्योदयोग्रहाः ॥३९
गृध्रोलूकश्येनकाश्च पिङ्गलः कौशिकः क्रमात् ।
सारसश्च मयूरश्च [1]गोवत्सः पक्षिणः स्मृताः ॥४०
आदौ साध्यो[2]हुतो मन्त्र उच्चाटे पल्लवः स्मृतः ।
वश्ये ज्वरे तथाऽऽकर्षे प्रयोगः सिद्धिकारकः ॥४१
शान्तौ प्रीतौ नमस्कारो वौषट्पुष्टौ[3] वशादिषु ।
हुं[4]मृत्यौ प्रीतिसंनाशे विद्वेषोच्चाटने च फट् ॥४२
[5]वषट्सुते च [6]दीप्त्यादौ मन्त्राणां जातयश्च षट् ॥४२½

कृष्ण पक्ष की तृतीया, सप्तमी और दशमी चतुर्दशी तिथियाँ, शुक्ल-पक्ष की चतुर्थी और एकादशी, पूर्णिमा और अष्टमी तिथियाँ भद्रासंज्ञक अशुभ मानी गई हैं। जो दक्षिण-पूर्व और पश्चिमोत्तर दिशाओं को प्रभावित करती हैं। अ, क, च, ट, त, प, य और श वर्ग सूर्यादि ग्रहों के हैं। इन चक्रों में जो पक्षी कहे गये हैं, वे हैं गृध्र, उलूक, श्येन, पिङ्गल, कौशिक, सारस, मयूर और गोवत्स। पहले होम के बाद सिद्ध करना चाहिए। मन्त्र शान्ति, वशी-करण ज्वर और आकर्षण में नमः सिद्धिकारक माना गया है किन्तु पल्लव-युत मन्त्र उच्चाटन करने में, शान्ति और प्रीतिकर्मों में नमस्कार मन्त्र, पुष्टि और वशीकरण आदि में वौषट् मन्त्र, मृत्यु और प्रीति नाश में 'हुँ' मन्त्र, विद्वेष और उच्चाटन में फट् मन्त्र तथा दीप्ति आदि में वषट् मन्त्र प्रयुक्त होता है। इस प्रकार मन्त्रों की छह जातियाँ हैं।३९-४२½।

ओषधीः सम्प्रवक्ष्यामि महारक्षाविधायिनीः ॥४३
महाकाली तथा चण्डी[7] वाराही चेश्वरी तथा ।
सुदर्शना तथेन्द्राणी गात्रस्था रक्षयन्ति तम् ॥४४
बला चातिबला भीरुर्मुसली[8] सहदेव्यपि ।
जाती च मल्लिका यूथी गारुडी भृङ्गराजकः ॥४५

१ घ. छ. गोरङ्कुः । २ क. ङ. मृतो । ३ क. ङ. °षडष्टौ । ४ ख. हूरू । ५ क. ङ. °षट्, लाभे च ग्रीष्मादौ । ६ ख. दिष्टयादौ । ७ क. ङ. च. दण्डी । ८ क. ङ. °र्मुशली ।

चक्ररूपा महौषध्यो धारिता विजयादिदाः ।
ग्रहणे च महादेवि उद्धृताः शुभदायिकाः ।। ४६

अब मैं अत्यन्त रक्षा करने वाली ओषधियों का वर्णन कर रहा हूँ । महाकाली, चण्डी, वाराही, ईश्वरी, सुदर्शना तथा इन्द्राणी को शरीर में धारण करने से शरीर की रक्षा होती है । अयि महादेवि ! बला (वरिअण) अतिबला, भीरु (शतावरि), मुशली, सहदेवी, जाती, मल्लिका, यूथी, गारुडी, भृङ्गराज और चक्ररूपा— इन ओषधियों को ग्रहण के दिन उखाड़कर धारण करने से विजय आदि का लाभ होता है ।

मृदा च कुञ्जरं कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम् ।
[1]तस्य पादतले कृत्वा स्तम्भयेच्छत्रुमात्मनः ।।४७
[2]नासाग्रे चैकवृक्षे च वज्राहतप्रदेशके ।
वल्मीकमृदमाहृत्य मातरौ योजयेत्ततः ।।४८

समस्त लक्षणों से युक्त मिट्टी का हाथी बनाकर उसके पैर के नीचे शत्रु की मूर्ति को दबा देने से शत्रु का स्तम्भन होता है । पर्वत के ऊपर अथवा एक वृक्ष वाले स्थान में या बिजली से आहत प्रदेश में वल्मीक से मिट्टी लेकर दो माताओं का आवाहन करे ।४७-४८।

ॐ नमो महाभैरवाय[3] विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय [4]पिङ्गलाक्षाय
त्रिशूलखड्गधराय वौषट् ।।४९
पूजयेत्कदमां [5]देवीं स्तम्भयेच्छस्त्रजालकम् ।।४९½

तदनन्तर "ॐ नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय, पिङ्गलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय वौषट्"—इस मन्त्र का जप करके कर्दमा देवी की पूजा करने से शत्रु के अस्त्रों का स्तम्भन होता है ।४९-४९½।

अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि रणादौ जयवर्धनम् ।।५०
श्मशाने निशि काष्ठाग्नौ नग्नो मुक्तशिखो नरः ।
दक्षिणास्यस्तु जुहुयान्नृमांसं रुधिरं विषम् ।।
[6]तुषास्थिखण्डमिश्रं तु शत्रुनाम्ना शताष्टकम् ।।५१

---

१ क. ङ. भस्म । २ क. ङ. नागाग्रे । ३ क. ङ. च. भैरवाय । ४ क. ङ. च. पिङ्गाक्षाय । ५ क. ङ. च. °य खड्गखट्वाङ्गबन्धाय । ६ ख. ग. घ. छ. °र्दमं देवि स्त° ।

ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल[1] लालय लालय घण्टादेवि, अमुकं[2] मारय मारय सहसा नमोऽस्तु ते[3] भगवति विद्ये[4] स्वाहा ।।५२
अनया विद्यया [5]होमान्धत्वं[6] जायते रिपोः ।।५३

अब मैं उस अग्नि का कार्य बताऊँगा, जिससे युद्ध आदि में जय की वृद्धि होती है। रात्रि में श्मशान में जाकर नग्न होकर चोटी खोलकर दक्षिण की ओर उन्मुख बैठकर लकड़ी की अग्नि में मनुष्य के मांस, शोणित, अस्थि, विष तथा भूसी से शत्रु के नाम पर एक सौ आठ बार 'ॐ नमो भगवति कौमारि लल लल.......भगवति विद्ये स्वाहा' इस मन्त्र से हवन करना चाहिए। ऐसा करने से शत्रु अन्धा हो जाता है ।५०-५३।

ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल पिङ्गल करालवदनोर्ध्वकेश महाबल रक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कह[7] [8]करालिन् [9]महादृढप्रहार[10] लङ्केश्वर[11]सेतुबन्ध[12] शैलप्रवाह गगनचर, एह्येहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो ज्ञापयति, एह्येहि महारौद्र दीर्घलाङ्गूलेन, अमुकं वेष्टय[13] वेष्टय[14] जम्भय जम्भय[15] खन खन वैते हूं फट् ।।५४
अष्ट (ष्टा) त्रिंशच्छतं देवि हनुमान्सर्वकर्मकृत्[15] ।
[16]पठेह (द्ध) नुमत्संदेशाद्भङ्गमायान्ति[17] शत्रवः ।।५५

'ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड........वैते हूं फट्'—इस मन्त्र का अड़तीस सौ बार जप करने से निखिलकर्मकर्ता हनुमान् के प्रभाव से शत्रुओं का नाश हो जाता है ।५४-५५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयनानाचक्रप्रतिपादनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२५

---

१ क. °ल प्रेतुक प्रेतुक ला° । २ क. ङ. °कं तारय तारय स । ३ क. ङ. भवति । ४ क. ङ. वेवे । ५ क. ङ. होमोद्दत्तत्व । ६ ख. ग. °दधत्व° । ७ ख. ग. °हृत्करा° । ८ क. ङ. कहकरा° । ९ क. ख. ग. ङ. °लिनि महा° । १० क. ङ. °हादंष्ट्रप्र° । ११ ख. ग. °प्रकार । १२ ख. ग. केतुबन्ध । १३ क. ङ. °तुरथर्शं° । १४ घ. छ. °य ज° । १५ क. ङ. °य षड्गय षड्गय रोम हूं हूं फ° । १६ क. ङ. °त् । फट्, ह° । १७ घ. छ. पटे हनुमत्संदर्श-नादभ° । १८ ख. ग. °त्संदर्शनादभ° ।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रनिर्णयः

ईश्वर उवाच—

वक्ष्याम्यृक्षात्मकं पिण्डं शुभाशुभविवृद्धये ।
यस्मिन्नृक्षे भवेत्सूर्यस्तदादौ त्रीणि मूर्धनि ॥१
एकं मुखे द्वयं नेत्रे हस्तपादे चतुष्टयम् ।
हृदि पञ्च[1] सुते जानौ[2] आयुर्वृद्धि विचिन्तयेत् ॥२
शिरःस्थे तु भवेद्राज्यं पिण्डतो वक्त्रयोगतः ।
नेत्रयोः कान्तिसौभाग्यं हृदये द्रव्यसंग्रहः ॥३
हस्ते धृतं तस्करत्वं गतासुरध्वगः[3] पदे ।
कुम्भाष्टके भानि लिख्य[4] सूर्यकुम्भस्तु रिक्तकः ॥४
अशुभः [5]सूर्यकुम्भः स्याच्छुभः पूर्वादिसंस्थितः ।
[6]फणिराहुं प्रवक्ष्यामि जयाजयविवेकदम् ॥५

महादेव बोले—अब मैं शुभ और अशुभ की वृद्धि के लिए नक्षत्रों के पिण्ड का वर्णन करूँगा। जिस नक्षत्र में सूर्य की स्थिति हो, उससे प्रारम्भ करके तीन नक्षत्रों तक (मनुष्याकार) नक्षत्र पिण्ड के मस्तक, उत्तरोत्तर एक नक्षत्र मुख, दो नक्षत्र नेत्र, चार नक्षत्र हाथ पैर और पाँच नक्षत्र हृदय, भुजा तथा घुटना समझना चाहिए। अब यदि यात्रोत्सुक मनुष्य का जन्म नक्षत्र उस पिण्ड के मस्तक स्थान में पड़े तो उसे राज्य-लाभ समझना चाहिए, मुख तथा नेत्र के स्थान में जन्म-नक्षत्र पड़ने से कांति तथा सौभाग्य की वृद्धि होती है। हृदय-स्थान में पड़ने से द्रव्य-संग्रह होता है। हस्त-स्थान में पड़ने से चोरी करने की सम्भावना होती है और चरण-स्थान में पड़ने से मार्ग में प्राण जाने का भय समझना चाहिए। जिस नक्षत्र में सूर्य स्थित हो, उससे प्रारम्भ करके आठ नक्षत्रों को सूर्य आदि ग्रहों से नाम से रखे हुये आठ घड़ों के ऊपर लिखकर

---

१ क. ङ. °ञ्चयुते भानौ ह्यायु°। २ ख. ग. च. जातौ। ३ क. ङ. °तायुर°। ४ क. ङ. °ख्य पूर्वकु°। ५ क. ङ. पूर्वकुम्भः। ६ क. ङ. पाणिनास्तं। ख. ग. फलिराहुं।

पूर्व आदि दिशाओं में स्थापित कर देना चाहिए। उनमें सूर्यकुम्भ का नाम 'रिक्तक' है। यात्रा-काल में वह जिसके जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़ेगा उसके लिए अशुभ होगा किन्तु दूसरे कुम्भ शुभदायक होंगे। अब मैं जय और पराजय का विवेक उत्पन्न करने वाले फणिराहु का वर्णन करूँगा।१-५।

अष्टाविंशल्लिखे (?) द्विन्दून्पुनर्भाज्यास्त्रिभिस्त्रिभिः।
अथ ऋक्षाणि चत्वारि रेखास्तत्रैव दापयेत् ॥६
यस्मिन्नृक्षे स्थितो राहुस्तदृक्षं फणिमूर्धनि।
[1]तदादि विन्यसेद्भानि सप्तविंशत्क्रमेण (?) तु[2] ॥७

अट्ठाईस विन्दुओं को बनाकर उसे तीन से विभक्त कर देना चाहिए। फिर चार नक्षत्र बनाकर चार रेखाएँ खींचनी चाहिए। जिस नक्षत्र में राहु स्थित हो, उसे सर्प का मस्तक समझना चाहिए। उस नक्षत्र से प्रारम्भ करके पुनः क्रमशः सत्ताईसवें नक्षत्रों का नाम लिखना चाहिए।६-७।

वक्त्रे सप्तगत ऋक्षे म्रियते सर्व आह्वे।
स्कन्धे भङ्गं [3]वियानीयात्सप्तभेषु[4] च मध्यतः ॥८
[5]उदरस्थेन पूजा च जयश्चैवाऽऽत्मनस्तथा।
कटिदेशे स्थिते योध आहवे हरते परान् ॥९

यदि मुख्य स्थानीय सात नक्षत्रों में से कोई भी नक्षत्र किसी युद्ध-यात्री के जन्म नक्षत्र के अनुसार पड़े तो संग्राम में उसकी मृत्यु समझनी चाहिए। स्कन्धस्थानीय सात नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो भङ्ग-पराजय समझनी चाहिए। उदर स्थानीय नक्षत्र यदि जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो सम्मान तथा विजय समझना चाहिए। कटिस्थानीय नक्षत्र यदि जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो वह युद्ध में दूसरों का प्राण-हरण करने वाला होता है।८-९।

[6]पुच्छस्थितेन कीर्तिः स्याद्राहुदृष्टे च भे मृतिः।
पुनरन्यं प्र (त्यग्र) वक्ष्यामि रविराहुबलं तव ॥१०

---

१ तदादि.........सप्तविंशत्क्रमेण तु नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २ क. ङ. तु। चक्रे सप्तगते राहुः क्रिय°। ३ क. ङ. °स्सप्ताहेषु। ४ ख. प्तमेषु। ग. °प्तमेषु च मध्यमः। उ°। ५ क. ङ. °दयस्थे°। ६ क. ङ. प्रत्यु-त्थितेन।

यदि पुच्छस्थानीय नक्षत्र जन्म-नक्षत्र के अनुसार पड़े तो कीर्ति बढ़ती है और उस नक्षत्र पर राहु की दृष्टि पड़ जाने से वह मृत्युकारक बन जाता है। अब मैं तुम्हें सूर्य और राहु का बल बताऊँगा।१०

रविः शुक्रो बुधश्चैव सोमः सौरिर्गुरुस्तथा।
लोहितः सैंहिकश्चैव एते यामार्धभागिनः ॥११
सौरिं रविं च राहुं च कृत्वा यत्नेन पृष्ठतः।
स जयेत्सैन्यसंघातं द्यूतमध्वानमाहवम् ॥१२
रोहिणी चोत्तरास्तिस्रो मृगः पञ्चस्थिराणि हि।
अश्विनी रेवती स्वाती धनिष्ठा शततारका ॥१३
क्षिप्राणि पञ्च भान्येव यात्रार्थी चैव योजयेत्।
अनुराधा हस्तमूलं मृगः पुष्यं पुनर्वसुः ॥१४
सर्वकार्येषु चैतानि ज्येष्ठा चित्रा विशाखया।
[1]पूर्वास्तिस्रोऽग्निर्भरणी मघार्द्राश्लेषा दारुणाः ॥१५

रवि, शुक्र, बुध, सोम, शनि, बृहस्पति, मङ्गल और राहु को यत्नपूर्वक पृष्ठ भाग में करके जो यात्रा करता है, वह सैन्य-समूह को जीत लेता है। इन ग्रहों को पृष्ठ भाग में करके यात्रा करने से द्यूत, मार्ग तथा संग्राम में सफलता मिलती है। रोहिणी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा—ये पाँच नक्षत्र स्थिरसंज्ञक हैं। अश्विनी, रेवती, स्वाती, धनिष्ठा और शततारका ये पाँच नक्षत्र 'क्षिप्र' संज्ञक हैं। यात्री को इनका लाभ उठाना चाहिए। अनुराधा हस्त, मूल, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, चित्रा और विशाखा—ये नक्षत्र सभी कार्यों के लिए शुभ माने गये हैं। पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद कृत्तिका, भरणी, मघा, आर्द्रा, अश्लेषा ये नक्षत्र 'दारुण' कहलाते हैं।११-१५

स्थावरेषु स्थिरं ह्यृक्षं यात्रायां क्षिप्रमुत्तमम्।
[2]सौभाग्यार्थे मृदून्येव उग्रेषूग्रं तु कारयेत् ॥१६
दारुणे दारुणं कुर्याद्भक्ष्ये चाधोमुखादिकम्।
कृत्तिका भरण्या(ण्य) श्लेषा विशाखा[3] पितृनैर्ऋतम् ॥१७

स्थिरता सम्बन्धी कार्य में स्थिर संज्ञक नक्षत्र और यात्रा में क्षिप्रसंज्ञक

---

१ पूर्वास्तिस्रो.........दारुणाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। १ सौभाग्यार्थे.......कारयेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. शाखाऽपि च नै°।

नक्षत्र उत्तम होते हैं। सौभाग्य के कार्य में मृदुसंज्ञक नक्षत्र उग्रता के कार्य में उग्रसंज्ञक नक्षत्र और भयङ्कर कार्यों में दारुण संज्ञक नक्षत्र उत्तम होते हैं।१६-१७।

पूर्वात्रयमधोवक्त्रं कर्म चाधोमुखं चरेत् ।
एषुकूपतडागादि विद्याकर्म भिषक्क्रिया ॥१८
स्थापनं नौकाकूपादि विधानं खननं तथा ।
रेवती चाश्विनी चित्रा हस्तः स्वा (स्तस्वा)ती पुनर्वसुः॥१९
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नव वै पार्श्वतोमुखाः ।
एषु राज्याभिषेकं च पबट्टन्धं गजाश्वयोः ॥२०
आरामगृहप्रासादं प्राकारं क्षेत्रतोरणम् ।
ध्वजचिह्नपताकाश्च सर्वानितांश्च कारयेत् ॥२१

अब मैं उन कार्यों को बताऊँगा जो अधोमुख नक्षत्र हैं। कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, भरणी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, ये नक्षत्र अधोमुख संज्ञक नक्षत्रों में कुआँ, तालाब आदि की प्रतिष्ठा, शिक्षारम्भ, चिकित्सारम्भ, स्थापनाकार्य, नौका और कूपादि का निर्माण तथा खोदाई का कार्य करना चाहिए। अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिरा रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती और पुनर्वसु इन नौ नक्षत्रों में पार्श्वमुख कहे जाते हैं (तिर्यक् कार्य करना चाहिए। इनमें राज्याभिषेक, हाथी, घोड़े का पट्टबन्धन, बगीचा, गृह, प्रासाद, (महल), चहारदीवारी, खेत की मेड़ और ध्वजा पताकादि वस्तुओं का निर्माण करना चाहिए।१८-२१।

द्वादशी सूर्यदग्धा तु चन्द्रेणैकादशी तथा ।
भौमेन दशमी दग्धा[1] तृतीया वै बुधेन च ॥२२
षष्ठी च गुरुणा दग्धा द्वितीया भृगुणा तथा ।
सप्तमी सूर्यपुत्रेण त्रिपुष्करमथो वदे ॥२३
द्वितीया[2] द्वादशी चैव सप्तमी वै तृतीयया ।
रविभौमस्तथा सौरिः षडेतास्तु (ते तु) त्रिपुष्कराः ॥२४

रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को दशमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को द्वितीया और शनिवार

१ क. ङ. प्रोक्ता। २ क. ङ. तृतीया।

को सप्तमी तिथियाँ दग्धतिथियाँ मानी जाती हैं। द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, रविवार, मङ्गलवार तथा शनिवार इनको मिलाकर त्रिपुष्कर योग होता है।२२-२४।

विशाखा कृत्तिका चैव उत्तरे द्वे पुनर्वसुः।
पूर्वभाद्रपदा चैव षडेते तु त्रिपुष्कराः ॥२५
लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च।
नष्टं भ्रष्टं[1] विनष्टं वा तत्सर्वं त्रिगुणं भवेत् ॥२६

विशाखा, कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, पूर्वभाद्रपद— ये छहों नक्षत्र त्रिपुष्कर संज्ञक कहलाते है। पूर्वोक्त तिथिवार नक्षत्र के योग से त्रिपुष्कर योग होता है। इस योग में लाभ,हानि, वृद्धि,पुत्र-जन्म, नाश विनाश तथा भ्रष्टता ये सभी तिगुनी हो जाती है।२५-२६।

अश्विनी भरणी चैव अश्लेषा पुष्यमेव च।
स्वातिश्चैव विशाखा च श्रवणं सप्तमं पुनः ॥२७
एतानि दृढचक्षूंषि पश्यन्ति च दिशो दश।
यात्रासु दूरगस्यापि आगमः पुण्यगोचरे[2] ॥२८

अश्विनी, भरणी, अश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा, और श्रवण—ये सात नक्षत्र दृढ़ नेत्र वाले है, जो दशों दिशाओं को देखते है। इन नक्षत्रों में खोया हुआ तथा यात्रा करने वाला बड़े पुण्य से ही लौटता है।२७-२८।

[3]आषाढे रेवती चित्रा केकराणि पुनर्वसुः
एषु पञ्चसु ऋक्षेषु निर्गतस्याऽऽगमो भवेत् ॥२९
कृत्तिका रोहिणी सौम्यं फल्गुनी च मघा तथा।
मूलं ज्येष्ठाऽनुराधा च धनिष्ठा शततारकाः ॥३०
पूर्वभाद्रपदा चैव चिपिटानि च तानि हि।
अध्वानं व्रजमानस्य पुनरेवाऽऽगमो भवेत् ॥३१

दोनों आषाढ़ नक्षत्र, रेवती, चित्रा, पुनर्वसु ये पाँच नक्षत्र 'केकर' है, अर्थात् 'मध्याक्ष' है। इनमें गई हुई वस्तु विलम्ब से मिलती है। कृत्तिका,

---

१ क. ङ. दृष्टं। २ क. ङ. °ण्यचोत्तरे। ३ क. ङ. आषाढ़ा।

रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा—ये नक्षत्र 'चिपिटाक्ष' अर्थात् 'मन्दाक्ष' है। इनमें गई हुई वस्तु तथा मार्ग चलने वाला व्यक्ति कुछ ही विलम्ब में लौट आता है।२९-३१।

हस्त उत्तरभाद्रश्च आर्द्राऽऽषाढा तथैव च।
नष्टार्थाश्चैव दृश्यन्ते सङ्ग्रामो नैव विद्यते ॥३२
पुनर्वक्ष्यामि गण्डान्तमृक्षमध्ये यथा स्थितम्।
रेवत्यन्ते (न्तं) चतुष्कं[1] तु अश्विन्यादि चतुष्टयम् ॥३३
उभयोर्यामिमात्रं[2] तु वर्जयेत्तत्प्रयत्नतः।
अश्लेषान्ते मघादौ तु घटिकानां चतुष्टयम् ॥३४
द्वितीयं गण्डमाख्यातं तृतीयं भैरवि शृणु।
ज्येष्ठामूलभयोर्मध्य[3] उग्ररूपं तु यामकम् ॥३५
न कुर्याच्छुभकर्माणि यदीच्छेदात्मजीवितम्।
दारके जातकाले च म्रियेते पितृमातरौ ॥३६

हस्त, उत्तरभाद्रपद, आर्द्रा, तथा आषाढ़ा नक्षत्रों में यात्रा करने से अभीष्ट सिद्धि नहीं होती है तथा इनमें प्रारम्भ किया हुआ संग्राम भी टिकता नहीं है। अब मैं गण्डान्त-दोष के विषय में कहूँगा जो नक्षत्रों के बीच में पड़ता है। रेवती नक्षत्र में अन्त के दो दण्ड का समय और अश्विनी नक्षत्र में आदि के दो दण्ड के समय का यत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए (यह प्रथम गण्डान्त-दोष है)। आश्लेषा नक्षत्र में अन्त के दो दण्डों का समय और मघा नक्षत्र में आदि के दो दण्डों का समय दूसरा गण्डान्त दोष कहलाता है। अयि भैरवि! तीसरा गण्डान्त-दोष सुनो, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में मध्य के दो दण्डों का समय उग्र रूप धारण करता है अर्थात् गण्डान्त-दोष कहलाता है। इसलिए यदि जीवन की अभिलाषा हो तो इस गण्डान्त योग में शुभकर्म नहीं करना चाहिए। इस योग में जिस शिशु का जन्म होता है उसके माता-पिता मर जाते है।३२-३६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रनिर्णयप्रतिपादनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२६

---

१ घ. छ. °तुर्नाडो अ°। २ क. ङ. °र्यानिमा°। ३ घ. छ. °ष्ठाभमूलयो°
४ मध्यम पदलोपी समासः।

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानावलानि

ईश्वर उवाच—

विष्कम्भे घटिकास्तिस्रः शूले पञ्च विवर्जयेत् ।
[1]षट्षड्गण्डेऽतिगण्डे च नव व्याघातवज्रयोः ॥१
परिघे च व्यतीपात उभयोरपि [2]तद्दिनम् ।
वैधृते (तौ) तद्दिनं चैव यात्रायुद्धादिकं त्यजेत् ॥२

महेश्वर बोले—विष्कम्भ योग में तीन घड़ी, शूल योग में पाँच घटी, गण्ड योग में छह घट, अतिगण्ड योग में छही घटी, व्याघात और वज्र योग में नव घटी, वैधृत, व्याघात, वज्र, परिघ और व्यतीपात योग में उस (एक) दिन तक यात्रा तथा युद्ध आदि कार्य नहीं करना चाहिए ।१-२ ।

ग्रहैः शुभाशुभं वक्ष्ये देवि मेषादिराशितः ।
चन्द्रशुक्रौ च जन्मस्थौ वर्जितौ शुभदायकौ ॥३
द्वितीयो मङ्गलोऽथार्कः सौरिश्चैव तु सैंहिकः ।
द्रव्यनाशमलाभं च आहवे भङ्गमादिशेत् ॥४

अयि देवि ! अब मैं मेष आदि राशियों के अनुसार ग्रहों द्वारा मिलने वाले शुभाशुभ कर्मों का वर्णन करूँगा । जन्मराशि में स्थित चन्द्रमा और शुक्र शुभदायक होते हैं । मङ्गल, रवि, शनि, तथा राहु के दूसरे स्थान में पड़ने से द्रव्य का नाश अथवा अलाभ होता है और रण में पराजय होती है ।३-४।

सोमो बुधो [3]भृगुर्जीवो द्वितीयस्थाःशुभावहाः ।
तृतीयस्थो यदा भानुः शनिभौमो भृगुस्तथा ॥५
बुधश्चैवेन्दू [4]राहुश्च सर्वे ते फलदा ग्रहाः ।
बुधशुक्रौ चतुर्थौ च शेषाश्चैव भयावहाः ॥६

---

१ क. ङ. षट् च गण्डातिगण्डेति न° । २ क. ङ. °तत्क्षणम् । ३ च.° वो भानुश्चैव शनिस्तथा । द्वितीयस्थो यदा राहुः सर्वे । ४ क. ङ. °श्च ग्रहादेव स्वराशितः । बु° ।

सोम, बुध, वृहस्पति तथा शुक्र के दूसरे स्थान में रहने से शुभ फल मिलता है। यदि सूर्य, शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, सोम तथा राहु की स्थिति तृतीय स्थान में हो तो वे शुभ फल देने वाले होते हैं। चौथे स्थान में बुध और शुक्र सुन्दर फल देते हैं और शेष ग्रह भयानक फल देते हैं।५-६।

पञ्चमस्थो यदा जीवः शुक्रः सौम्यश्च चन्द्रमाः।
ददेत चेप्सितं लाभं षष्ठे स्थाने [1]शुभो रविः ।।७

पाचवें स्थान में वृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। छठे स्थान में सूर्य शुभ होता है।७

चन्द्रः सौरिर्मङ्गलश्च ग्रहा देवि स्वराशितः।
बुधश्च शुभदः षष्ठे त्यजेत्षष्ठं[2] गुरुं भृगुम् ।।८

अयि देवि ! यात्रा करने वाले मनुष्य की राशि से छठे स्थान में यदि चन्द्रमा, शनि, मङ्गल तथा बुध ग्रह पड़े तो शुभ फल होता है। छठे स्थान में गुरु तथा शुक्र वर्जनीय है।८

सप्तमोऽर्कः शनिर्भौमो राहुर्हान्यै सुखाय च।
जीवो भृगुश्च सौम्यश्च ज्ञशुक्रौ चाष्टमौ शुभौ ।।९
[3]शेषा ग्रहास्तथा हान्यै ज्ञभृगू नवमौ शुभौ।
शेषा हान्यै च लाभाय दशमौ भृगुभास्करौ[4]।।१०
शनिर्भौमश्च राहुश्च चन्द्रः सौम्यः शुभावहः।
शुभाश्चैकादशे सर्वे वर्जयेद्दशमं[5] गुरुम् ।।११
बुधशुक्रौ द्वादशस्थौ[6] शेषान्द्वादशगांस्त्यजेत् ।।११½

सातवें स्थान में शनि, मङ्गल तथा राहु हानिकारक होते हैं, जबकि इसी स्थान में गुरु, शुक्र तथा बुध का आना सुखदायक होता है। आठवें स्थान में बुध तथा शुक्र शुभदायक होते हैं और शेष ग्रहों का फल अनिष्ट होता है। नवम स्थान में बुध तथा शुक्र शुभकारक होते हैं और शेष ग्रह हानि-कारक होते हैं। दशम स्थान में शुक्र तथा सूर्य लाभदायक होते हैं और शनि, मङ्गल, राहु, चन्द्रमा तथा बुध शुभ फल देने वाले होते हैं। दशम स्थान में

---

१ क. ङ. शुभे। २ क. ङ. °जेयुश्च गु°। ३ शेषा…………शुभौ नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ४ क. ङ. °रौ। गतिर्भौ°। ५ घ. छ. °शमे गु°। ६ क. ङ. °दशोऽग्नौ शे°।

बृहस्पति त्याज्य है। एकादश स्थान में सभी ग्रह शुभ होते हैं। बारहवें स्थान में बुध और शुक्र ग्राह्य तथा अन्य ग्रह वर्जनीय हैं।९-११½।

अहोरात्रे द्वादश स्यू राशयस्तान्वदाम्यहम् ॥१२

अहोरात्र में बारह राशियाँ होती हैं। अब मैं उन्हें बताऊँगा।१२

मीनो मेषोऽथ मिथुनं चतस्रो नाडयो (?) वृषः ।
[1]षट्कषट्कर्कसिंहकन्याश्च तुलापञ्च च वृश्चिकः ॥१३
धनुर्नक्रो घटश्चैव सूर्यगो [2]राशिराद्यकः ।
चरस्थिरद्विस्वभावा मेषाद्याः स्युर्यथाक्रमम् ॥१४

मीन, मेष, मिथुन इन लग्नों का मान चार घटी, वृष, कर्क, सिंह, कन्या और तुला इन लग्नों का मान छह-छह घटी तथा वृश्चिक, धनु-मकर और कुम्भ लग्न का मान पाँच-पाँच घटी है। सूर्य से मेषादि राशियाँ है। मेषादि राशियों का स्वभाव चल, अचल तथा चलाचल होते हैं। १३-१४।

कुलीरो मकरश्चैव तुलामेषादयश्चराः ।
चरकार्यं जयं काममाचरेच्च शुभाशुभम् ॥१५
स्थिरो वृषो हरिः कुम्भो वृश्चिकः स्थिरकार्यके ।
शीघ्रः[3] समागमो नास्ति रोगार्तो नैव मुच्यते ॥१६

इनमें कर्क, मकर, तुला तथा मेष राशियाँ चर स्वभाव की होती हैं। अतः इनमें चरकार्य, विजय तथा शुभाशुभ कर्म करना चाहिए। वृष, सिंह, कुम्भ, तथा वृश्चिक अचल स्थिर स्वभाव की होती हैं। अतः इनमें स्थिर कार्य करना चाहिए। इनमें यात्रा करने से शीघ्र समागम नहीं होता है और चिकित्सा प्रारम्भ करने से रोग से मुक्ति नहीं मिलती है।१५-१६।

मिथुनं कन्यका मीनो धनुश्च द्विस्वभावकः ।
द्विस्वभावाः शुभाश्चैते सर्वकार्येषु नित्यशः ॥१७
यात्रा वाणिज्य सङ्ग्रामे विवाहे राजदर्शने ।
वृद्धिं जयं तथा लाभं युद्धे जयमवाप्नुयात् ॥१८

मिथुन, कन्या, मीन तथा धनु राशियाँ दोनों स्वभाव वाली होती हैं। इनमें किये जाने वाले सभी कामों में सफलता मिल जाती है। द्विस्वभाव

---

१ "षट्षट्कर्कसिंहकन्यास्तुला" इति पाठो युक्तः।२ क. ङ. रात्रिराद्यकम्। च°। ३ क. ङ. शीघ्रागमो यमो।

वाली राशियों में यात्रा, व्यापार, सङ्ग्राम, विवाह तथा राज-दर्शन करने में सफलता, लाभ, वृद्धि, तथा जय आदि की प्राप्ति होती है। १७-१८।

अश्विनी[1] त्रिशत्ताराश्च (रा च) तुरगस्याऽऽकृतिर्यथा।
यदत्र कुरुते वृष्टिमेकरात्रं[2] प्रवर्षति॥
यमभे तु यदा वृष्टिः पक्षमेकं तु वर्षति॥१९

अश्विनी नक्षत्र तीस ताराओं से संवलित है। इसकी आकृति घोड़े के समान होती है। इसमें प्रारम्भ होने वाली वर्षा एक पक्ष तक बरसती है।१९

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाबलवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।१२७

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कोटचक्रम्

ईश्वर उवाच—

कोटचक्रं प्रवक्ष्यामि चतुरस्रं पुरं लिखेत्।
चतुरस्रं पुनर्मध्ये तन्मध्ये चतुरस्रकम्॥१

महेश्वर बोले—अब मैं कोटचक्र का वर्णन करूँगा। सर्वप्रथम एक चौकोर चित्र बनाना चाहिए। इसके बीच में एक और चौकोर चित्र बनाकर उसके अन्दर तक एक और चौकोर चित्र बना लेना चाहिए।१

नाडीत्रितयचिह्नाढ्यं मेषाद्याः पूर्वदिङ्मुखाः।
कृत्तिका पूर्वभागे तु अश्लेषाऽऽग्नेयगोचरे॥२
भरणी दक्षिणे देया विशाखां नैर्ऋते न्यसेत्।
अनुराधां पश्चिमे च श्रवणं वायुगोचरे॥३

उसे तीन नाड़ियों के चिह्नों से चिह्नित करके पूर्ण दिशा की ओर मेषादि का चित्रण करना चाहिए। पूर्व की ओर कृत्तिका और आग्नेय कोण की ओर

---

१ ख. ग. घ. छ. °नी विंशतारा। २ क. ङ. वृष्टिः पक्ष°।

अश्लेषा का चित्रण करना चाहिए। दक्षिण की ओर भरणी और नैर्ऋत्य कोण में विशाखा का सन्निवेश करना चाहिए। पश्चिम की ओर अनुराधा और वायव्य कोण में श्रवण नक्षत्र का अङ्कन करना चाहिए। २-३।

धनिष्ठां चोत्तरे न्यस्य ऐशान्यां रेवती तथा।
वाह्यनाड्यां स्थितान्येव अष्टौ ह्यृक्षाणि [1]यत्नतः ॥४
रोहिणी पुष्यफल्गुन्यः स्वाती ज्येष्ठा क्रमेण तु।
अभिजिच्छततारा तु अश्विनी मध्यनाडिका ॥५

उत्तर की ओर धनिष्ठा और ईशान कोण में रेवती को चित्रित कर देना चाहिए। इस प्रकार बाह्यनाडी में यत्नपूर्वक आठ नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए, जिनके नाम हैं—रोहिणी, पुष्य, फल्गुनी, स्वाती, ज्येष्ठा, अभिजित् और शततारा। मध्यवर्ग में अश्विनी का चित्रण करना चाहिए।४-५।

कोटमध्ये तु या नाडी कथयामि प्रयत्नतः[2]।
मृगश्चाभ्यन्तरे पूर्वं तस्याऽऽग्नेये पुनर्वसुः ॥६
उत्तराफल्गुनी याम्ये चित्रानैर्ऋतसंस्थिता।
मूलं तु पश्चिमे [3]न्यस्योत्तराषाढां तु वायवे ॥७

अब मैं यत्नपूर्वक उस नाडी का वर्णन करूँगा जो कोट के बीच में होती हैं। उसके बीच में मृगशिरा और आग्नेय कोण में पुनर्वसु नक्षत्र रहते हैं। दक्षिण दिशा की ओर उत्तराफाल्गुनी और नैर्ऋत कोण में चित्रा नक्षत्र रहता है। पश्चिम की ओर मूल नक्षत्र का न्यास करके वायव्य कोण में उत्तराषाढ़ नक्षत्र का अङ्कन करना चाहिए।६-७।

पूर्वभाद्रपदा सौम्ये रेवती ईश गोचरे।
कोटस्याभ्यन्तरे नाडी ह्यृक्षाष्टकसमन्विता ॥८
आर्द्राहस्तस्तथाऽऽषाढ़ा[4] चतुष्कं चोत्तरात्रिकम्।
([5]मध्येस्तम्भचतुष्कं तु दद्यात्कोटस्य कोटरे।९
एवं दुर्गस्य विन्यासं [6]बाह्ये स्थानं [7]दिशाधिपात्।)

---

१ क. ङ. पादतः। २ क. ङ. °तः। मूलाश्चा°। ३ क. ख. ग. ङ. च. न्यस्य उत्तराषाढां वा°। ४ क. ङ. °ढा मूलाद्यं चोत्तरान्तिक°। ५ मध्ये...... दिशाधिपात् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ६ ख. ग. बाह्याटालदि°। ७ ख. ग. °पान्। आ°।

आगन्तुको यदा योद्धा ऋक्षवान्स्यात्फलान्वितः ॥१०
कोटमध्ये ग्रहाः सौम्या यदा ऋक्षान्विताः पुनः ।
जयं मध्येस्थितानां तु भङ्गमागामिनो विदुः ॥११

उत्तर दिशा की ओर पूर्वाभाद्रपद और ईशान कोण में रेवती का चित्रण करना चाहिए। कोट के आभ्यन्तर की नाडी भी आठ नक्षत्रों से युक्त होती है, जिनके नाम हैं—आर्द्रा, हस्त, आषाढ़ और तीन प्रकार के उत्तरा नक्षत्र। इस प्रकार से दुर्ग का निर्माण करना चाहिए। नक्षत्र-विशेष के नाम के दिन में आने वाला विजयार्थी यदि कोट के मध्य में आकर उस नक्षत्र से चिह्नित दिशा से आक्रमण करता है तो वह निश्चय ही विजय को प्राप्त करता है। ज्योतिर्विद् व्यूहादि के मध्य में पड़े हुए उन वीरों की भी विजय को निश्चित बतलाते हैं, जबकि आक्रमणकारी शत्रु की स्थिति और उनके आगमन की दिशा शुभ नक्षत्रों से सम्बद्ध रहा करती है।८-११।

प्रवेशभे प्रवेष्टव्यं निर्गमभे च निर्गमे (च्छे) त् ।
भृगुः सौम्यस्तथा भौम ऋक्षान्तं सकलं यदा ॥१२
तदा भङ्गं विजानीयाज्जयमागन्तुकस्य च ।
प्रवेशर्क्षचतुष्के तु संग्रामं[1] चाऽऽरभेद्यदा ॥
तदा सिध्यति तद्दुर्गं न कुर्यात्तत्र विस्मयम् ॥१३

जब कोई अच्छा नक्षत्र अपने ग्रह में प्रवेश करता है उस समय दुर्ग में प्रवेश करना चाहिए और जिस समय वह अपने ग्रह से निर्गमन करता है उस समय दुर्ग से निर्गमन करना चाहिए। जिस समय बृहस्पति, सोम तथा मङ्गल अपने ग्रह में प्रवेश करते हैं उस समय आक्रमण करने से आगन्तुक योद्धा की विजय निश्चित है। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए शुभ माने जाने वाले नक्षत्रों के समय में युद्ध का आरम्भ करने पर दुर्ग में सफलता निश्चित है, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए।१२-१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कोटचक्रवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८

---

१ क. ङ. 'मं कारयेद्य' ।

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्घकाण्डम्

ईश्वर उवाच—

([1]अर्घमानं प्रवक्ष्यामि उल्कापातोऽथ भूश्चला[2]) ।
निर्घातो ग्रहणं वेशो[3] दिशां दाहो भवेद्यदा ॥१
लक्षयेन्मासि मास्येवं यद्येते स्युश्च चैत्रके ।
अलंकारादि संगृह्य षड्भिर्मासैश्चतुर्गुणम् ॥२
वैशाखे चाष्टमे मासि षड्गुणम् सर्वसङ्ग्रहम् ।
ज्येष्ठे मासि तथाऽऽषाढ़े यवगोधूमधान्यकैः ॥३
श्रावणे घृततैलाद्यैराश्विने वस्त्रधान्यकैः ।
कार्तिके धान्यकैः क्रीतैर्मासे स्यान्मार्गशीर्षके ॥४
पुष्ये (पौषे) कुङ्कुमगन्धाद्यैर्लाभो धान्यैश्च माघके।
गन्धाद्यैः फाल्गुने क्रीतैरर्घकाण्डमुदाहृतम् ॥५

महेश्वर बोले—अब मैं अर्घमान (वस्तुओं के भाव) के सम्बन्ध में बताऊँगा। जिस मास में उल्कापात, भूकम्प, तूफान, ग्रहण, वेश (सूर्य चन्द्रमा के मण्डल) तथा दिग्दाह होता है, उस मास में वस्तुओं के भाव में वृद्धि समझनी चाहिए। चैत्र के महीने में इन उत्पातों के होने पर चैत्र से लेकर छह मासों तक आभूषण आदि के भाव में चतुर्गुण वृद्धि होती है। वैशाख में इन उत्पातों के होने पर आठ महीनों तक सब वस्तुओं का भाव छह गुना बढ़ जाता है। ज्येष्ठ तथा आषाढ़ में इन उपद्रवों के होने पर यव, गेहूँ तथा धान्य के भाव में वृद्धि होती है। श्रावण में घी, तेल का भाव और आश्विन में वस्त्र-धान्य का भाव उपरिवर्णित उपद्रवों से बढ़ जाता है। कार्तिक और अग्रहायण में इन उपद्रवों के होने पर धान्यों का भाव बढ़ता है। पौष में इन उपद्रवों के होने पर कुकुङ्म और गन्ध आदि का तथा माघ में अन्न मात्र का भाव बढ़ जाता है। फाल्गुन में इन उपद्रवों के होने पर गन्ध आदि के भाव में वृद्धि होती है। यही अर्घ (मूल्य) काण्ड का निरूपण है।१-५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽर्घकाण्डप्रतिपादनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१२६।

---

१ अर्घमानं ......भूश्चला नास्ति ख. पुस्तके। २ क. ङ. भूतलम्। नि° ।
३ क. ङ. वेगो।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मण्डलादिकथनम्

ईश्वर उवाच—

मण्डलानि[1] प्रवक्ष्यामि चतुर्धा विजयाय हि ।
कृत्तिका च मघा पुष्यं पूर्वा चैव तु फल्गुनी ॥१
विशाखा भरणी चैव पूर्वभाद्रपदा तथा ।
आग्नेयं मण्डलं भद्रे तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२

महेश्वर बोले—अब मैं विजय प्राप्त कराने वाले चार प्रकार के मण्डलों का वर्णन करूँगा । कृत्तिका, मघा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, भरणी तथा पूर्वभाद्रपदा—इतने नक्षत्रों को मिलाकर आग्नेय-मण्डल बनता है। अयि भद्रे ! मैं उस मण्डल का लक्षण बता रहा हूँ ।१-२।

यद्यत्र चलते वायुर्वेष्टनं शशिसूर्ययोः ।
[2]भूमिकम्पोऽथ निर्घातो ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥३
धूमज्वाला दिशां दाहः केतोश्चैव प्रदर्शनम् ।
रक्तवृष्टिश्चोपतापः पाषाणपतनं तथा ॥४
नेत्ररोगोऽतिसारश्च अग्निश्च प्रबलो भवेत् ।
स्वल्पक्षीरास्तथा गावः स्वल्पपुष्यफला द्रुमाः ॥५
विनाशश्चैव शस्यानां स्वल्पवृष्टिं विनिर्दिशेत् ।
[3]चतुर्विधाः प्रपीड्यन्ते क्षुधार्ता अखिला नराः ॥६

इस मण्डल में प्रचण्ड वायु चलने पर, सूर्य-चन्द्र के ऊपर मण्डल बन जाने पर, भूकम्प आने पर, तूफान आने पर, चन्द्र-सूर्यग्रहण होने पर, तारा टूटने पर व दिग्दाह होने पर, केतु ग्रह दिखाई पड़ने पर यह समझना चाहिए कि रक्त की वृष्टि होगी, सूखा पड़ेगा, पत्थर गिरेगा, नेत्र-रोग तथा आँव की बीमारी बढ़ेगी, अग्नि का उत्पात होगा, गायें थोड़ा दूध देंगी, वृक्षों में थोड़े फल लगेंगे । अनाज का विनाश होगा, वृष्टि कम होगी और चारों वर्णों के लोग भुखमरी से पीड़ित होंगे ।३-६।

---

१ च. नक्षत्राणि । २ भूमिकम्पोऽथ..........चन्द्रसूर्ययोः नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु । ३ ख. ग. घ. छ. चातुर्वर्णाः ।

सैन्धवा यामुनाश्चैव गुर्जरा भोजबाह्लिकाः ।
जालंधरं च काश्मीरं सप्तमं चोत्तरापथम् ॥७
देशाश्चैते विनश्यन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने ।७½

उस प्रकार के उत्पात दिखाई देने पर सिन्ध, यामुन, गुर्जर (गुजरात), भोज, बाह्लिक (आधुनिक बलख), जालंधर, काश्मीर और उत्तरापथ—इन देशों को क्षति पहुँचेगी ।७½

हस्तचित्रामघास्वाती मृगो वाऽथ पुनर्वसुः ॥८
उत्तराफल्गुनी चैव अश्विनी च तथैव च ।
[1]यदाऽत्र भवते किंचिद्वायव्यं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ॥९
[2]नष्टभूताः प्रजाः सर्वा हाहाभूता विचेतसः ।
([3]डाहलः[4] कामरूपं च (पश्च)कलिङ्गः कोशलस्तथा[5]॥१०
अयोध्या च अवन्ती च नश्यन्ते (न्ति) कोङ्कणान्ध्रकाः ।)

हस्त, चित्रा, मघा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरफाल्गुनी और अश्विनी नक्षत्र को मिलाकर वायव्य मण्डल बनता है। इस मण्डल में भी यदि उपर्युक्त घटनायें घटित होती हैं तो प्रजाओं में हाहाकार मच जाता है और डाहल, कामरूप, कलिङ्ग, कोशल, अयोध्या, अवन्ती, कोङ्कण तथा आन्ध्र देशों और नगरों को भारी क्षति पहुँचती है। ८-१०½।

अश्लेषा चैव मूलं तु पूर्वाषाढा तथैव च ॥११
रेवती वारुणं[6] ह्यृक्षं तथा भाद्रपदोत्तरा ।
यदाऽत्र चलते किंचिद्वारुणं[7] तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ॥१२
बहुक्षीरघृता गावो बहुपुष्पफला द्रुमाः ।
आरोग्यं तत्र जायेत बहुशस्या च मेदिनी ॥१३
धान्यानि च समर्घाणि सुभिक्षं पार्थिवं भवेत् ।
परस्परं नरेन्द्राणां सङ्ग्रामो दारुणो भवेत् ॥१४

---

१ क. ङ. यद्यत्र । २ ख. ग. घ. छ. नष्टधर्माः । ३ डाहलः.........कोङ्कणान्ध्रकाः नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः । ४ ख. इहालं । ग. डाहालं । ५ च. कोकणं तथा । ६ क. ङ. °णं स्कन्द त° । ७ क. ङ. °चिच्चारू (रु) शत (तं) वि° ।

अश्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़, रेवती, शतभिषा, और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों को मिलाकर वारुण-मण्डल बनता है। इस मण्डल में उपर्युक्त घटनायें घटित होने पर गौएँ बहुत अधिक दूध देती हैं, वृक्ष खूब फलते-फूलते हैं, मनुष्य नीरोग रहते हैं पृथ्वी धन-धान्य से सम्पन्न होती हैं, देश में सुभिक्ष रहता है, किन्तु राजाओं में परस्पर महासङ्ग्राम होता है।११-१४।

ज्येष्ठा च रोहिणी चैव अनुराधा च वैष्णवम् ।
धनिष्ठा चोत्तराषाढ़ा अभिजित् सप्तमं तथा ॥१५
यदात्र चलते किंचिन्माहेन्द्रं तं वि (तद्वि) निर्दिशेत् ।
प्रजाः समुदितास्तस्मिन्सर्वरोगविवर्जिताः ॥१६
सन्धिं कुर्वन्ति राजानः सुभिक्षं पार्थिवं शुभम् ॥१६½

ज्येष्ठा, रोहिणी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़, तथा अभिजित् नक्षत्र मिलाकर माहेन्द्र-मण्डल बनता है । इस मण्डल में उपर्युक्त घटनायें घटित होने पर सम्पूर्ण प्रजायें रोगों से मुक्त होती हैं, राजा लोग आपस में सन्धि करते हैं और देश में सुभिक्ष होता है।१५-१६½।

ग्रासस्तु विविधो[1] ज्ञेयो मुखपुच्छकरो महान् ॥१७
चन्द्रो राहुस्तथाऽऽदित्य एकराशौ यदि स्थितः ।
मुखग्रासस्तु[2] विज्ञेयो जामित्रे पुच्छ उच्यते ॥१८
भानोः पञ्चदशे ह्यृक्षे यदा चरति चन्द्रमाः ।
तिथिच्छेदे[3] तु सम्प्राप्ते सोमग्रासं[4] विनिर्दिशेत् ॥१९

ग्रास (ग्रहण) विविध प्रकार के होते हैं जिनमें मुखग्रास और पुच्छग्रास महान् होते हैं। जब चन्द्रमा, राहु तथा सूर्य एक राशि पर स्थित होते हैं तब मुखग्रास होता है किन्तु जब वे राहु से सातवें होते हैं तब पुच्छग्रास होता है। जब चन्द्रमा सूर्य आक्रान्त नक्षत्र से पन्द्रहवें नक्षत्र पर सञ्चरण करता है और तिथि पूर्णिमा प्राप्त रहती है, तब सोमग्रास (चन्द्रग्रहण) होता है। १७-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मण्डलादिकथनं नाम त्रिंशद-धिकशततमोऽध्यायः।१३०

---

१ घ. छ. द्विविधो । २ घ. छ. °ग्रामस्तु । ३ क. ङ. °थिभेदे । ४ घ. छ. °ग्रामं वि° ।

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

(घातचक्रादि)

ईश्वर उवाच—

प्रदक्षिणमकारादीन्स्वरान्पूर्वादितो लिखेत् ।
चैत्राद्यं भ्रमणाच्चक्रं प्रतिपत्पूर्णिमातिथिः ॥१
त्रयोदशी चतुर्दशी अष्टम्येका च सप्तमी ।
प्रतिपत्त्रयोदश्यन्तास्तिथयो द्वादश स्मृताः ॥२

महेश्वर बोले—इस (घात) चक्र के ऊपर चारों ओर पूर्व आदि दिशा से प्रारम्भ करके अकार इत्यादि स्वरों को लिखना चाहिए। इसमें चैत्र प्रतिपदा, पूर्णिमा, त्रयोदशी, चतुर्दशी तिथियों तथा शुक्लपक्ष की सप्तमी, अष्टमी का चक्र में, उल्लेख करना चाहिए। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा आरम्भ करके त्रयोदशी तक अष्टमी रहित तिथियाँ लिखनी चाहिए।१-२।

चैत्रचक्रे तु संस्पर्शाज्जयलाभादिकं विदुः ।
विषमे तु शुभं ज्ञेयं समे चाशुभमीरितम् ॥३

चैत्रचक्र का स्पर्श करके (रण में) जय, लाभ इत्यादि जाना जा सकता है। युद्धकाल में जिसका नाम पुकारा जाता है, उसमें यदि विषम दिशा होती है तो शुभ और यदि सम दिशा होती है तो अशुभ माना जाता है।३

युद्धकाले[1] समुत्पन्ने यस्य नाम ह्युदाहृतम् ।
मात्रारूढं तु यन्नाम आदित्यो गुरुरेव च ॥४
जयस्तस्य[2] सदाकालं सङ्ग्रामे चैव भीषणे[3] ।
ह्रस्वनाम[4] (मा) यदा योधो म्रियते ह्यनिवारितः[5] ॥५
प्रथमो दीर्घ आदिस्थो द्वितीयो मध्ये[6] अन्तकः । (?)
द्वौ मध्ये न प्रथमान्तौ जायेते[7] (?) नात्र संशयः ॥६

---

१ क. ङ. गन्धर्वाणि । २ क. ङ. °स्य तदा° । ३ क. ङ. भाषणे । ४ क. ङ. क्रुध्यमानो । ५ क. ङ. ह्यविचारतः । ६ क. ख. ग. ङ. च. मध्य अ° । ७ क. ग. ङ. जायते । ख. जयते ।

पुनश्चान्ते यदा चाऽऽदौ स्वरारूढं तु दृश्यते ।
ह्रस्वस्य मरणं विद्याद्दीर्घस्यैव जयो भवेत् ॥७

जिस व्यक्ति का नाम दीर्घ अक्षर से प्रारम्भ होता है, वह विजय को प्राप्त करता है किन्तु जिसके नाम के पूर्व में ह्रस्व अक्षर होता है, उसकी पराजय होती है । जिस नाम के आदि में दीर्घस्वर होता है वह उत्तम, जिसके बीच में मध्यम स्वर रहता है वह मध्यम और जिसके अन्त में दीर्घ रहता है वह भाग्य की दृष्टि से अधम माना जाता है । जिस योद्धा का नाम दीर्घस्वर से प्रारम्भ होकर दीर्घस्वर से ही समाप्त होता है, वह विजय को तथा जिसके नाम के आदि और अन्त में ह्रस्व स्वर होते हैं वह निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त करता है ।४-७।

नरचक्रं प्रवक्ष्यामि ह्यृक्षपिण्डात्मकं यथा ।
प्रतिमामालिखेत्पूर्वं पश्चादृक्षाणि विन्यसेत् ॥८

अब मैं नरचक्र के विषय में बतलाऊँगा । यह नक्षत्रों से युक्त होता है । पहले मनुष्य की प्रतिमा का चित्रण करके तदनन्तर उसमें नक्षत्रों का न्यास करना चाहिए ।८

शीर्षे त्रीणि मुखे चैकं द्वे ऋक्षे नेत्रयोर्न्यसेत् ।
वेदसंख्यानि हस्ताभ्यां कर्णऋक्षद्वयं पुनः ॥९
हृदये भूतसंख्यानि षड्ऋक्षाणि तु पादयोः ।
नामऋक्षं[1] स्फुटं कृत्वा चक्रमध्ये तु विन्यसेत् ॥१०
नेत्रे शिरोदक्षकर्णे याम्यहस्ते च पादयोः ।
हृद्ग्रीवावामहस्ते तु पुनर्गुह्ये तु पादयोः ॥११
यस्मिन्नृक्षे स्थितः सूर्यः सौरिभौमस्तु सैंहिकः ।
तस्मिन्स्थाने स्थिते[2] विद्याद्घातमेव न संशयः ॥१२

नरचक्र के शीर्ष में तीन, मुख में एक, नेत्रों में दो, हाथों में चार, कानों में दो, हृदय में पाँच और पैरों में छह नक्षत्रों का न्यास करना चाहिए । नक्षत्रों की स्फुट गणना करके उन्हें नरचक्र के ऊपर इस प्रकार से रखना चाहिए जिससे वह नेत्रों, शिर, दाहिने कान, दाहिने हाथ, चरण, ग्रीवा, बाहें हाथ, भुजाओं और पैरों को आच्छादित कर लें। घात उन स्थानों पर

१ घ. छ. ०म ह्यृक्षं । २ क. ङ. हृतं ।

होता है, जहाँ पर सूर्य, शनि, मङ्गल अथवा राहु नक्षत्र चित्रित रहते हैं।९-१२।

जयचक्रं[1] प्रवक्ष्यामि आदिहान्तांश्च वै लिखेत्।
रेखास्त्रयोदशाऽऽलिख्य[2] षड्रेखास्तिर्यगालिखेत् ॥१३

अब मैं जयचक्र के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो किसी कार्य की सफलता को सूचित करने वाला हुआ करता है। पहले धरातल पर तेरह रेखाओं को खींचकर उनको काटती हुई छह तिरछी रेखाओं को खींचनी चाहिए।१३

दिग्ग्रहा मुनयः सूर्या ऋत्विग्रुद्रस्तिथिः[3] क्रमात्।
मूर्छनास्मृतिवेदर्क्षजिना अकऽमा[4] ह्यधः ॥१४
आदित्याद्याःसप्तकृते[5]नामान्ते बलिनो ग्रहाः।
आदित्यसौरिभौमाख्या जये सौम्याश्च संधये ॥१५
रेखा द्वादश चोद्धृत्य षट् च याम्यास्तथोत्तराः।
मनुश्चैव[6] तु ऋक्षाणि नेत्रे च रविमण्डलम् ॥१६
तिथयश्च रसा वेदा अग्निः सप्तदशाथ वा।
वसुरन्ध्राः समाख्याता अकटपानधो[7] न्यसेत् ॥१७
एकैकमक्षरं न्यस्त्वा (स्य) शेषाण्येवं क्रमान्न्यसेत्।
नामाक्षरकृतं पिण्डं वसुभिर्भाजयेत्ततः ॥१८
वायसान्मण्डलोऽत्युग्रो मण्डलाद्रासभो वरः।
रासभाद्वृषभः श्रेष्ठो वृषभात्कुञ्जरो वरः ॥१९
कुञ्जराच्च पुनः सिंहः [8]सिंहाच्चैव खरुर्वरः[9]।
खरोश्चैव बली धूम्र एवमादि बलाबलम् ॥२०

इस प्रकार की बनी रेखाओं के कोष्ठकों में दश, नव, सात, बारह, चार, ग्यारह, पन्द्रह, चौबीस, अठारह, चार, सत्ताईस, नव, चौबीस इन अङ्कों को लिखे। इसके बाद अ, क, ट, प आदि अक्षरों को लिखे। शत्रु के नामाक्षर व्यञ्जन और अङ्क को जोड़कर सात से भाग देने पर सूर्य आदि सात वार

---

१ क. ङ. उपचक्रं। २ छ. षड्लेखा। ३ क. ङ. °स्तिथिक्र°। ४ क. ङ. °कहमाज्यवः। आ°। ५ घ. छ. °प्तहृते। ६ क. ङ. मन्त्रश्च वसतुर्ऋणि। ख. ग. मरुतश्चैव ऋ°। ७ क. ङ. °करयान°। ८ क. ख. ग. ङ. °वतर°। च. °व रुरु°। ९ क. ख. ग. ङ. च. °रः। तरो°।

बन जाते हैं। यदि सूर्य, शनि, मङ्गल ग्रह में पड़े तो विजय, बुध, गुरु, शुक्र और सोम में पड़े तो सन्धि होगी। पूर्व से पश्चिम तक बारह रेखाएँ खींचकर छह रेखाएँ दक्षिणोत्तर लिखें, उसमें प्रथम ऊपर वाले कोष्ठ में १४, २७, २, १२, १५, ६, ४, ३, १७, ८, और ८ अङ्कों को लिखें। अ से ह तक के अक्षरों को नीचे के कोष्ठ में लिखे, नाम से बने हुए अक्षरों के द्वारा बने हुए पिण्ड में आठ से भाग देकर एक आदि शेष के अनुसार वायस, रासभ, वृषभ, कुन्जर सिंह, खर, धूम्र, आठ मण्डल होते हैं इसमें वायस-मण्डल से प्रवल रासभ होता है। इसमें उत्तरोत्तर मण्डल बलवान् होते हैं। १४-२०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये घातचक्रादि वर्णनं नामैकत्रिंशद-धिकशततमोऽध्यायः। १३१

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सेवाचक्रादि

ईश्वर उवाच—

सेवाचक्रं प्रवक्ष्यामि लाभालाभार्थसूचकम्।
पिता माता तथा भ्राता दम्पती च विशेषतः[1] ॥१
तस्मिंश्चक्रे तु विज्ञेयं यो यस्माल्लभते फलम्।
षडूर्ध्वाः स्थापयेद्रेखा भिन्नाश्चाष्टौ तु तिर्यगाः (ग्गाः)॥२

महेश्वर बोले—अब मैं लाभालाभ सूचक सेवा-चक्र के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। इस चक्र के द्वारा पिता, माता, भाई और दम्पती को एक-दूसरे से प्राप्त होने वाली सेवा का ज्ञान हो सकता है। पहले छह ऊर्ध्व रेखाओं को खींचकर उसके बाद उन्हें काटने वाली आठ तिर्यक् रेखाओं को खींचना चाहिए।१-२।

कोष्ठकाः पञ्चत्रिंशच्च तेषु[2] वर्णान्समालिखेत्।
स्वरान्पञ्च समुद्धृत्य स्पर्शान्पश्चात्समालिखेत्॥३

---

१ क. ङ. °तः। यस्मिं°। २ क. ङ. तेष्वव°।

ककारादिहकारान्तान्हीनाङ्कांस्त्रीन्विवर्जयेत्[१] ।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च अरिर्मृत्युश्च नामतः ॥४
अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥४½

इस प्रकार पैंतीस कोष्ठक बन जाते हैं । इन कोष्ठकों में पाँच स्वरों, स्पर्शवर्णों को लिख देना चाहिए । यह स्पर्शवर्ण क से लेकर ह तक होते हैं । किन्तु इनमें तीन अङ्कों को वर्जित कर देना चाहिए । इन अक्षरों को सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, शत्रु और मृत्युवर्णों में निबद्ध कर लेना चाहिए । अरि और मृत्यु इन दोनों वर्णों को सभी कर्मों में वर्जित कर देना चाहिए।३-४½।

(एषां[२] मध्ये यदा नाम लक्षयेत्तु प्रयत्नतः ॥५
आत्मपक्षे स्थिताः सत्त्वाः सर्वे ते शुभदायकाः ।
द्वितीयः पोषकश्चैव तृतीयश्चार्थदायकः ॥६

इनके बीच में यत्नपूर्वक नाम का लक्षण करना चाहिए । अपने पक्ष में रहने वाले सभी सत्त्व शुभ फल प्रदान करने वाले होते हैं । उससे दूसरे और तीसरे सत्त्व पोषक और अर्थदायक होते हैं ।५-६।

आत्मनाशश्चतुर्थस्तु पञ्चमो मृत्युदायकः ।
स्थानमेवार्थलाभाय मित्रभृत्यादिबान्धवाः ॥७

चौथा सत्त्व आत्म-नाशक और पाँचवाँ मृत्युदायक होता है । मित्र, भृत्य और बान्धव, अक्षरों से युक्त कोष्ठक धन प्रदान करने वाले होते हैं ।७

सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च सर्वे ते फलदायकाः ।
अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत्सर्वकमसु ॥)८

सिद्ध, साध्य और सुसिद्ध कोष्ठकों में रहने वाले अक्षर फलदायक होते हैं । सभी कर्मों में अरि और मृत्यु कोष्ठकों को वर्जित करना चाहिए ।८

अकारान्तं यथा प्रोक्तम् इ उ ए[३] विदुस्तथा[४] ।
पुनश्चैवांशकान्वक्ष्ये[५] वर्गाष्टकसुसंस्कृतान् ॥९

इस सन्दर्भ में अकारान्त अक्षरों के अन्तर्गत इ, उ और ए को भी समझना चाहिए । अब मैं उन विभिन्न अंशों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जिनके लिए अक्षरों के विभिन्न वर्गों का प्रयोग होता है ।९

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °स्त्रीणि व° । २ एषां……वर्जयेत्सर्वकर्मसु नास्ति ख. पुस्तके । ३ क. ङ. ए. ओ० वि° । ४ ख. ग. ए ऐ वि° वि° । ५ ख ग. °दुत्तमाः । पु° ।

देवाः अकारवर्गे तु दैत्याः कवर्गमाश्रिताः ।
नागाश्चैव चवर्गाः (र्गे) स्युगन्धर्वाश्च टवर्गजाः ॥१०
तवर्गे ऋषयः प्रोक्ता पवर्गे राक्षसाः स्मृताः ।
पिशाचाश्च यवर्गे च शवर्गे मानुषाः स्मृताः ११

अकार वर्ण से देवता, कवर्ग से दैत्य, चवर्ग से नाग, टवर्ग से गन्धर्व, तवर्ग से ऋषि, पवर्ग से राक्षस, यवर्ग से पिशाच और शवर्ग से मनुष्य समझे जाते हैं। १०-११।

देवेभ्यो बलिनो दैत्या दैत्येभ्यः पन्नगास्तथा
पन्नगेभ्यश्च गन्धर्वा गन्धर्वादृषयो वराः ॥१२
ऋषिभ्यो राक्षसाः शूरा राक्षसेम्यः पिशाचकाः ।
पिशाचेभ्यो मानुषाः स्युर्दुर्बलं वर्जयेद्बली ॥१३

देवताओं से बलवान् दैत्य हैं, दैत्यों से बलवान् सर्प, सर्पों से गन्धर्व और गन्धर्वों से श्रेष्ठ ऋषि होते हैं। इसी प्रकार ऋषियों से राक्षस, राक्षसों से पिशाच और पिशाचों से बलवान् मनुष्य होते हैं। बलवान् के द्वारा दुर्बल को वर्जित होना चाहिए।१२-१३।

पुनर्मैत्रविभागं[1] तु ताराचक्रं क्रमाच्छृणु ।
नामाद्यक्षरमृक्षं तु स्फुटं कृत्वा तु पूर्वतः[2] ॥१४
ऋक्षे तु संस्थितास्तारा नवत्रिका यथाक्रमात् ।
जन्मसम्पद्विपत्क्षेमं नामाक्षात्तारका इमाः ॥१५
प्रत्यरा धनदा[3] षष्ठी नैधनामैत्रके परे ।
परमै [त्रि] त्राऽन्तिमा तारा जन्मतारा[4] तु शोभना ॥१६
सम्पत्तारा महाश्रेष्ठा विपत्तारा तु निष्फला ।
क्षेमतारा सर्वकार्ये प्रत्यरा अर्थनाशिनी ॥१७

अब मुझसे क्रमशः मित्र-विभाग और ताराचक्र के विषय में सुनिये। नक्षत्र के नाम के आदि अक्षर को पूर्ववत् स्पष्ट करके इन नक्षत्रों को तारा कहते

---

१ क. ख. ग. घ. छ. °र्नमित्र° । २ क. ङ. °तः । स्वर्गेषु सं° । ३ क. ङ. बलदा । ४ घ. छ. °रा त्वशो° ।

हैं जो, नौ, नौ नौ, करके तीन बार त्रिकों में रहा करते हैं। इन त्रिकों के नाम हैं—जन्म, सम्पत्, विपत् क्षेम, प्रत्यर, घनद, नैधन, मित्र और परमित्र। मनुष्यों को सभी कार्यों में जन्म-तारा शुभ, सम्पत् तारा महाश्रेष्ठ और विपत् तारा निष्फल माना गया है। क्षेमतारा सभी कार्यों में शुभ और प्रत्यर अर्थ-नाशक कहा गया है।१४-१७।

धनदा राज्यलाभादि [य] नैधना[1] कार्यनाशिनी।
मैत्रतारा च मित्राय परमित्रा हितावहा ॥१८

इसी प्रकार धनद तारा राज्य लाभ कराने वाला, नैधन तारा कार्य-नाशक, मैत्रतारा मित्रों के लिए शुभ और परमित्र तारा हितकारी कहा गया है।१८

ताराचक्रम्

[2]मात्रा[3] वै[4] स्वरसंज्ञा स्यान्नाममध्ये क्षिपेत्प्रिये।
विंशत्या च हरेद्भागं यच्छेषं तत्फलं भवेत्[5] ॥१९
उभयोर्नाममध्ये तु लक्षयेच्च धनं ह्यृणम्।
हीनमात्रा ह्यृणं ज्ञेयं धनं मात्रादिकं पुनः ॥२०

अयि प्रिये! किसी प्रकार से सम्बद्ध दो व्यक्तियों के नामों में रहने वाले स्वरों की संख्या के बराबर मात्राओं की संख्या की गणना करके उसे बीस की संख्या से भाग देना चाहिए। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले भजनफल से ऋण अथवा धन की गणना करनी चाहिए। कम मात्राओं से ऋण और अधिक मात्राओं से धन समझना चाहिए।१९-२०।

धनेन मित्रता नृणामृणेनैव ह्युदास (सि) ता।
सेवाचक्रमिदं प्रोक्तं लाभालाभादिदर्शकम् ॥२१
मेषमिथुनयोः प्रीतिर्मैत्री मिथुनसिंहयोः।
तुलासिंहो महामैत्री एवं धनुर्घटे पुनः ॥२२

धन से मनुष्यों में मित्रता और ऋण से उदासीनता होती है। इसी को लाभालाभसूचक सेवाचक्र कहा गया है। मेष, मिथुन राशि वाले पुरुषों में

---

१ ख. ग. निधना। २ एतदध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नास्ति च. पुस्तके। ३ क. ङ. त्रा चेश्वर°। ४ ख. ग. वै सुर°। ५ क. ङ. लभेत्।

प्रीति होती है, मिथुन और सिंह राशि वालों में मैत्री तथा तुला और सिंह राशि वालों में घन तथा कुम्भ राशि वाले पुरुषों में महामैत्री होती है ।२१-२२।

[१]मित्रसेवां न कुर्वीत मित्रौ (त्रे) मीनवृषौ मतौ ।
वृषकर्कटयोर्मैत्री कुलीरघटयोस्तथा ॥२३
कन्यावृश्चिकयोरेवं तथा मकरकीटयोः ।
मीनमकरयोर्मैत्रो तृतीयैकादशे स्थिता ॥२४
तुलामेषौ महामैत्री विद्विष्टौ वृषवृश्चिकौ ।
मिथुनधनुषोः प्रीतिः ([२]कर्कटमकरयोस्तथा ॥
मृगकुम्भकयोः प्रीतिः) कन्यामीनौ तथैव च ॥२५

(इन सब बातों के ज्ञान के बिना) मित्रता नहीं करनी चाहिए । मीन और वृष राशि वालों में भी मित्रता मानी गई है । इसी प्रकार वृष और कर्क राशि वालों, कन्या और वृश्चिक राशि वालों, मकर और कर्क राशि वालों तथा मीन और मकर राशि वाले पुरुषों में मैत्री रहती है । तुला और मेष राशि वालों में महामैत्री होती है, किन्तु वृष और वृश्चिक राशि वालों में द्वेष रहा करता है । इसी प्रकार मिथुन और धनु राशि वालों, कर्क और मकर राशि वालों, मृग और कुम्भ राशि वालों तथा कन्या और मीन राशि वालों में प्रीति रहा करती है ।२३-२५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सेवाचक्रादिवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३२

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नाना बलानि

ईश्वर उवाच—

गर्भजातस्य वक्ष्यामि क्षेत्राधिपस्वरूपकम् ।
नातिदीर्घः कृशः स्थूलः समाङ्गो गौरपैत्तिकः ॥१
रक्ताक्षो गुणवाञ्शूरो गृहे सूर्यस्य जायते ।
सौभाग्यो (सुभगो) मृदुसारश्च जातश्चन्द्रगृहोदये ॥२

---

१ क. ङ. मित्राशिवां । २ कर्कटमकरयोः..........प्रीतिः नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः ।

महेश्वर बोले—अब मैं गर्भ से सद्यः प्रसूत शिशु के क्षेत्राधिप-ग्रहों के स्वामियों के (कुण्डली में स्थित राशि के अनुकूल ग्रहों के स्वामी) के स्वरूप को बतलाऊँगा। जिसके घर में (अर्थात् कुण्डली स्थित लग्न में) सूर्य का क्षेत्र सिंह लग्न हो तो वह बालक न तो बहुत लम्बा, न बहुत पतला और न बहुत मोटा होता है बल्कि उसके सब अङ्ग समान (सुडौल) होते हैं। उसका वर्ण कुछ-कुछ पीतिमा लिए हुए गौर होता है। उसकी आँखें लाल होती हैं। वह गुणी तथा शूरवीर हुआ करता है। जिसकी कुण्डली में ग्रहपति चन्द्रमा होता है वह सौभाग्यशाली तथा कोमल (हृदय) हुआ करता है।१-२।

[1]वाताधिकोऽतिलुब्धादिर्जातो भूमिभुवो गृहे।
बुद्धिमान्सुभगो मानी जातः सौम्यगृहोदये ॥३
बृहत्क्रोधश्च सुभगो जातो गुरुगृहे नरः।
त्यागी भोगी च सुभगो जातो भृगुगृहोदये ॥४
बुद्धिमान्सुभगो मानी जातश्चाऽर्किगृहे नरः।
सौम्यलग्ने तु सौम्यः स्यात्क्रूरः स्यात्क्रूरलग्नके ॥५

जिसकी (कुण्डली) में गृह स्वामी मङ्गल होता है, वह अत्यन्त लोभी तथा अधिक वायु (प्रकृति) वाला होता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली का गृह-पति बुध होता है, वह बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी हुआ करता है। जिसका गृह-पति बृहस्पति होता है वह महाक्रोधी और सुन्दर होता है, जिसके गृहपति शुक्र होते हैं, वह त्यागी, भोगी व भाग्यवान् होता है। जिसके घर का स्वामी शनि होता है वह बुद्धिमान् सुन्दर तथा मानी हुआ करता है। जिस मनुष्य के लग्न में (सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र) ये सौम्यग्रह पड़ते हैं वह सौम्य स्वभाव का होता है और जिसके लग्न में (मंगल, शनि, राहु और केतु आदि) क्रूरग्रह पड़ते हैं, वह क्रूर स्वभाव वाला हुआ करता है।३-५।

दशाफलं गौरि वक्ष्ये नामराशौ तु संस्थितम्।
गजाश्वधनधान्यानि राज्यश्रीर्विपुला भवेत् ॥६

अयि गौरि ! अब मैं मनुष्यों की नाम राशियों के अनुसार ग्रह दशाओं का फल बताऊँगा। सूर्य ग्रह की दशा आने पर मनुष्य को हाथी, घोड़े, धन-धान्य, विपुल राज्यश्री तथा बार-बार धन की प्राप्ति होती रहती है।६

---

१ एतदाद्यध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नास्ति च. पुस्तके।

पुनर्धनागमश्चापि दशायां भास्करस्य तु[1] ।
द्रव्यस्त्रीदा चन्द्रदशा भूमिलाभः सुखं कुजे ॥७

चन्द्रमा की दशा में (नाना प्रकार के) द्रव्य तथा स्त्री की प्राप्ति होती है। मंगल की दशा सुख और भूमिलाभ कराने वाली हुआ करती है।७

भूमिर्धान्यं धनं बौधे गजाश्वादिधनं गुरौ[2] ।
खाद्यपानधनं शुक्रे शनौ व्याध्यादि संयुतः[3] ॥८

बुध की दशा में धन-धान्य और बृहस्पति की दशा में हाथी, घोड़े आदि धन की प्राप्ति होती है। शुक्र की दशा में खाने-पीने की वस्तुओं और धन का लाभ होता है। शनि की दशा रोग आदि के साथ आती है।८

स्थानसेवा दिवाध्यानं वाणिज्यं राहुदर्शने ।
वामनाडीप्रवाहे स्यान्नाम चेद्विषमाक्षरम् ॥९
तदा जयति संग्रामे शनिभौमस (सु ?) सैंहिकाः ॥९½

राहु की दशा आने पर स्थान-सेवा (नौकरी आदि), दिवा-ध्यान (धर्म-कर्म) तथा वाणिज्य का लाभ होता है। जिस व्यक्ति के नाम में अक्षरों की संख्या विषम होती है और वाम नाडी (स्वर) में यात्रा हो वह संग्राम में विजयी होता है और वह समय शनि, मंगल तथा राहु ग्रह का है।९-९½।

दक्षनाडीप्रवाहेऽर्के वाणिज्ये (ज्यं) चैव निष्फलम्[4] ॥१०
संग्रामे जयमाप्नोति समनामा नरो ध्रुवम् ।
अधश्चारे जयं विद्यादूर्ध्वचारे रणे मृतिम् ॥११

जिस व्यक्ति के दाहिनी नाडी दाहिना स्वर चले वह समय सूर्य का है, इस समय व्यापारादि निष्फल होता है। किन्तु जिस व्यक्ति के नाम में यदि अक्षरों की संख्या सम होती है तो वह व्यक्ति संग्राम में निश्चय ही विजयी हुआ करता है। पैदल यात्री की मृत्यु एवं सवारी वाले रणयात्री की मृत्यु होती है।१०-११।

---

१ घ. छ. तु। दिव्य°। २ ख. ग. °रौ। स्थानयानं घ°। ३ घ. छ. °तः। स्नानसेवादिनाघ्या°। ४ क. घ. ङ. छ. °ष्फला। स°।

ॐ[1] हूम्[2], ॐ ह्लम्, ॐ स्फेम्, अस्त्रं[3] मोटय, ॐ चूर्णय[4]
चूर्णय,ॐ सर्वशत्रुं मर्दय मर्दय,[5] ॐ ह्रूम्, ॐ ह्रः फट् ॥१२
सप्तवारं न्यसेन्मन्त्रं ध्यात्वाऽऽत्मानं तु भैरवम् ।
चतुर्भुजं दशभुजं विंशद्बाह्वात्मकं[6] शुभम् ॥१३
शूलखट्वाङ्गहस्तं तु खड्गकट्टारिकोद्यतम् ।
भक्षणं (कं) परसैन्यानामात्मसैन्यपराङ्मुखम् ॥१४
सम्मुखं शत्रुसैन्यस्य शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
[7]जपाड्डमरुकाच्छब्दाच्छस्त्रं त्यक्त्वा पलायते ॥१५

'ॐ हूम्, ॐ ह्लम्, ॐ स्फेम् अस्त्रं मोटय, ॐ चूर्णय चूर्णय ॐ सर्वशत्रुं मर्दय मर्दय, ॐ ह्लूम, ॐ ह्रः फट्' इस मन्त्र का पाठ करके सात बार हृदय का स्पर्श करना चाहिए। तदनन्तर भैरव रूप में अपनी कल्पना करते हुए यह सोचना चाहिए कि 'मेरे चार भुजाएँ, दश भुजाएँ या बीस भुजायें हैं, मेरे हाथों में त्रिशूल, खट्वाङ्ग (अस्थिपञ्जर), तलवार तथा कटार विद्यमान है। मैं शत्रु की सेना का भक्षण करने वाला तथा अपनी सेना की रक्षा करने वाला हूँ।' तदनन्तर शत्रु-सेना के सामने इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके डमरू बजाना चाहिए, ऐसा करने से शत्रु शस्त्र छोड़कर भाग जाता है।१२-१५।

परसैन्यं (न्ये) शृणु भङ्गं प्रयोगेण पुनर्वदे ।
श्मशानाङ्गारमादाय विष्ठां चोलूककाकयोः ॥१६
कर्पटे प्रतिमां लिख्य[8] साध्यस्यैवाक्षरं यथा ।
नामाथ नवधाऽऽलिख्य रिपोश्चैव यथाक्रमम् ॥१७
मूर्ध्नि वक्त्रे ललाटे च हृदये गुह्यपादयोः ।
पृष्ठे तु बाहुमध्ये तु नाम वै नवधा लिखेत् ॥१८

अब मैं शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न करने के लिए एक प्रयोग बतला रहा हूँ, उसे सुनो ! श्मशान के कोयले और उल्लू तथा कौए की बीट को लाकर उनसे

---

१ ख. ग. ॐ ह्रूम्, ॐ ह्रूम्, ॐ स्फे० । २ क. ङ. च. ०म्, स्फे० । ३ क. ङ. च. ०स्त्रं कोटय चू० । ४ क. ङ. च. ०य स० । ५ क. ङ. ॐ ह्रूः फ० । ख. ग. च. ॐ हः फ० । ६ क. ख. ग. ङ. च. ०द्बाहूथवा शतम् । ७ क. ङ. जप्त्वा डमरुकास्नातशस्त्रं । ८ क. ङ. ०ख्य रि० ।

एक चीथड़े के ऊपर शत्रु का चित्र बनाये। चित्र के शिर, मुख, ललाट, हृदय, गुप्ताङ्ग, पैर, पीठ तथा बाहुमध्य में नौ बार शत्रु का नाम लिखे।१६-१८।

[1]मोटयेद्युद्धकाले तु उच्चरित्वा (समुच्चार्य) तु विद्यया।
तार्क्ष्यचक्रं प्रवक्ष्यामि जयंर्थं त्रिमुखाक्षरम् ॥१९
क्षिप ॐ स्वाहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत्[2]।
दुष्टभूतग्रहार्तस्य व्याधितस्याऽऽतुरस्य च ॥२०
करोति यादृशं कर्म तादृशं सिध्यते खगात्।
स्थावरं जङ्गमं चैव लूताश्च कृत्रिमं विषम् ॥२१
तत्सर्वं नाशमायाति साधकस्यावलोकनात्।
पुनर्ध्यायेन्महातार्क्ष्यं द्विपक्षं मानुषाकृतिम् ।२२
द्विभुजं वक्रचञ्चुं[3] च [4]गजकूर्मधरं प्रभुम्।
असंख्योरगपादस्थमागच्छन्तं खमध्यतः ॥२३
ग्रसन्तं चैव खादन्तं तुदन्तं चाऽऽहवे रिपून्।
चञ्च्वा हताश्च द्रष्टव्याः केचित्पादैश्च चूर्णिताः ॥२४
पक्षपातैश्चूर्णिताश्च केचिन्नष्टा दिशो दश।
तार्क्ष्यध्यानान्वितो यश्च त्रैलोक्ये ह्यजयो भवेत् ॥२५

तदनन्तर युद्ध-काल में उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर मोड़कर रख ले। अब मैं युद्ध में विजय के लिए गरुड़-चक्र का वर्णन करूँगा। 'क्षिप ॐ स्वाहातार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत्' यह त्रिमुखाक्षर मन्त्र है। यह गरुड़ का आत्मस्वरूप और शत्रु, रोग और विषाद का विनाश करने वाला है। इस मन्त्र का जप करने से दुष्ट भूतों और ग्रहों से पीड़ित, व्याधिग्रस्त या रोगी व्यक्ति की पीड़ा दूर हो जाती है। साधक जैसा कर्म करता है, उसे गरुड़ से वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। सब प्रकार का विष, चाहे वह स्थावर हो चाहे जङ्गम से उत्पन्न हो या कृत्रिम हो, गरुड़-मन्त्र के साधक को देखते ही नष्ट हो जाता है। तदनन्तर महागरुड़ का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उनके दो पंख हैं, उनकी आकृति मनुष्य जैसी है, उनके दो भुजायें हैं, उनकी चोंच टेढ़ी है, उन्होंने हाथी और कछुए को धारण कर रखा है। वे शक्तिमान् हैं। वे असंख्य सर्पों को

---

१ क. ख. ङ. च. मोचयें। २ क. ङ. °दिकृत्। ३ क. ङ. वज्रचक्रं। ४ क. ङ. वज्रचर्मवहं।

अपने चरणों में दबाये हुए आकाश के बीच से आ रहे हैं। संग्राम में शत्रुओं को क्षत-विक्षत करते हुए निगल रहे हैं, उन्हें खा रहे हैं तथा उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दे रहे हैं। कुछ शत्रु उनकी चोंच से हताहत दिखाई पड़ रहे हैं, तो कोई उनके चरणों में चूर्ण-चूर्ण किये जा चुके हैं। कुछ उनके पक्षों के आघात से चूर-चूर और नष्टभ्रष्ट होकर दशों दिशाओं में भाग रहे हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार गरुड़ का ध्यान करता है, वह त्रैलोक्य-विजयी होता है।१९-२५।

पिच्छिकां तु प्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनजां क्रियाम् ॥२६
ॐ हूरुं पक्षिन्क्षिप, ओँ हूं सः, महाबलपराक्रम सर्वसैन्यं भक्षय भक्षय, ॐ मर्दय मर्दय, ॐ चूर्णय चूर्णय, ॐ विद्रावय विद्रावय, ॐ हूं खः, ॐ भैरवो ज्ञापयति स्वाहा ॥२७
अमुं (स्य) चन्द्रग्रहणे तु जपं कृत्वा तु पिच्छिकाम्।
मन्त्रयेद्भ्रामयेत्सैन्यं सम्मुखं गजसिंहयोः ॥२८
ध्यानाद्द्रवान्मर्दयेच्च सिंहारूढो मृगाविकान्[1]।
शब्दाद्भङ्गं प्रवक्ष्यामि दूरं[2] मन्त्रेण बोधयेत् ॥२९

अब मैं मन्त्र की साधना से उत्पन्न पिच्छिका-क्रिया (मोर की पूँछ से की जाने वाली क्रिया) का वर्णन करूँगा। चन्द्र-ग्रहण के समय 'ॐ हूं पक्षिन्क्षिप .... भैरवो ज्ञापयति स्वाहा' इस मन्त्र से मोर की पूँछ को अभिमन्त्रित करके हाथी-घोड़े के सम्मुख सेना के ऊपर घुमा देना चाहिए। फिर मन्त्र का ध्यान करते हुए वह शीघ्र ही सेना का संहार उसी प्रकार से कर डालता है, जिस प्रकार सिंह हिरनों और भेंड़ों का (सर्वनाश) कर देता है। अब मैं इस मन्त्र का प्रयोग बतलाऊँगा जिसके शब्दों को दूर ही से सुनाने पर शत्रु तितर-बितर हो जाते हैं।२६-२९।

मातृणां चरकं दद्यात्कालरात्र्या विशेषतः।
श्मशानभस्मसंयुक्तं मालती चामरी तथा ॥
कार्पास°मूलमात्रं° तु तेन दूरं तु बोधयेत् ॥३०
ओम्, अहे हे महेन्द्रि, अहे महेन्द्रि भञ्ज हि।
ॐ जहि मसानं हि खाहि खाहि किलि किलि,
ॐ हुं फट् ॥३१

---

१ ख. °गादिका°। २ ङ. नूनं। ख. ग. हर। ३ क. ङ. °सस्य मू°।

[1]अरेर्नाशं दूरशब्दाज्जप्तया भङ्गविद्यया।
अपराजिता च धत्तूरस्ताभ्यां तु तिलकेन हि ॥३२

मातृकादेवियों को और विशेषतया कालरात्रि देवी को श्मशान की भस्म, मालतीपुष्प, चामर तथा कपास की जड़ के साथ चरु देकर दूर से ही 'ओम्, अहे हे महेन्द्रि.........ॐ हुं फट्' इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए। इस मन्त्र को भङ्गविद्या कहते हैं। अपराजिता पुष्प और धत्तूरे का तिलक लगाकर उच्चस्वर से इसका पाठ करने से शत्रु का नाश हो जाता है।३०-३२।

ॐ किलि[2] किलि विकिलि, इच्छाकिलि भूतहनि शङ्खिनि, उमे दण्डहस्ते रौद्रि माहेश्वरि, उल्कामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णे शुष्कजङ्घेऽलम्बुषे हर हर सर्वदुष्टान्खन[3] खन, ॐ यन्मांनिरीक्षयेद्देवि तांस्तान्मोहय, ॐ रुद्रस्य हृदये स्थिता रौद्रि सौम्येन भावेनाऽऽत्मरक्षां ततः कुरु स्वाहा ॥३३

बाह्यतो मातृः संलिख्य सकलाकृतिवेष्टिताः।
नागपत्रे[4] लिखेद्विद्यां सर्वकामार्थसाधिनीम् ॥३४

'ॐ किलि किलि.........ततः कुरु स्वाहा' नागपत्र (पान) के ऊपर सब प्रकार की आकृतियों से युक्त मातृदेवियों के साथ इस विद्या (मन्त्र) को लिखकर पहनने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।३३-३४।

हस्ताद्यैर्धारिता पूर्वं ब्रह्मरुद्रेन्द्रविष्णुभिः[5]।
गुरुसंग्रामकाले तु विद्यया रक्षिताः सुराः ॥३५
रक्षया नारसिंह्या[6] च भैरव्या शक्तिरूपया।
सर्वे (र्वं) त्रैलोक्यमोहिन्या गौर्या देवासुरे रणे[7] ॥३६

प्राचीन काल में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा विष्णु ने इस मन्त्र को भुजा इत्यादि अङ्गों पर धारण किया था, जिससे उन्होंने देवताओं को घोर संग्राम से

१ क. ङ. अनन्ता शब्द न शब्दाजप्तपा दञ्चवि°। २ ग. ङ. किणि किणि इच्छाकिणि भू°। ३ ख. ङ. °ष्टान्खादय खादय, ॐ। ४ क. ङ. °गयन्त्रे लि°। ५ क. ङ. °भिः। शुना संग्रामकाले तु विश्वधाराक्षि°। ६ क. ङ. °सिंहाश्चोद्भेरुव्या श°। ७ क. ङ. °णे। कार्णिका पुटिकं ना°।

बचा लिया था। देवासुर संग्राम में (इस मन्त्र के प्रभाव से) रक्षा, नारसिंही, भैरवी, शक्तिरूपा, त्रैलोक्यमोहिनी तथा गौरी ने देवताओं की रक्षा की थी।३५-३६।

बीजसम्पुटितं नाम कर्णिकायां दलेषु च।
पूजाक्रमेण चाङ्गानि रक्षायन्त्रं स्मृतं शुभे॥३७

अयि सुन्दरि ! रक्षा यन्त्र धारण करने का विधान यह है कि कमल-पत्र और कर्णिका के ऊपर बीज-मन्त्र के साथ अपना नाम लिखकर गौण देवताओं के साथ देवी की पूजा करके उसे पहन लेना चाहिए।३७

मृत्युञ्जयं प्रवक्ष्यामि नामसंस्कारमध्यगम्।
[1]कलाभिवेष्टितं पश्चात्सकारेण निबोधितम्॥३८
जकारं बिन्दुसंयुक्तमोंकारेण समन्वितम्।
धकारोदरमध्यस्थं वकारेण निबोधितम्[2]॥३९
चन्द्रसम्पुटमध्यस्थं सर्वदुष्टविमर्दकम्[3]।
अथवा कर्णिकायां च लिखेन्नाम च कारणम्॥४०

अब मैं मृत्युञ्जय-यन्त्र का निरूपण करूँगा। (कमलपत्र के ऊपर) कला मन्त्र से आवेष्टित नाम को संस्कारों के बीच (अर्थात् संस्कार युक्त) करके उसके पश्चात् 'स' अक्षर लिखना चाहिए। फिर बिन्दु संयुक्त जकार तथा ॐकार लिखकर बीच में धकार एवं चन्द्र बिन्दु सम्पुटित वकार लिखना चाहिए। इस प्रकार बनाया हुआ मृत्युञ्जय यन्त्र समस्त दुष्टों का विनाश करने वाला हुआ करता है। अथवा कमल की कर्णिका के ऊपर यन्त्र धारण करने वाले का नाम तथा (धारण करने का) प्रयोजन लिख देना चाहिए। ।३८-४०।

पूर्वे दले तथोंकारं स्वदक्षे[4] चोत्तरे लिखेत्।
आग्नेयादौ च[5] हूंकारदले षोडशके स्वरान्॥४१
चतुस्त्रिंशद्दले काद्यान्बाह्ये[6] मन्त्रं च मृत्युजित्।
लिखेद्वै भूर्जपत्रे तु रोचनाकुङ्कुमेन च॥४२

---

१ कलाभिवेष्टितं........निबोधितम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ च. °म्। मन्त्रसं°। ३ क. ङ. °दुःखवि°। ४ क. संदले। ख. संदक्षे। च. सदक्षे। ५ ख. ग. च. हरूं का। ६ च. °द्यान्वक्ष्ये म°।

[1]कर्पूरचन्दनाभ्यां च श्वेतसूत्रेण वेष्टयेत् ।
[2]सिक्थकेन परिच्छाद्य कलशोपरि पूजयेत् ॥४३
यन्त्रस्य धारणाद्रोगाः शाम्यन्ति रिपवो मृतिः ॥४३½

फिर अपनी दाहिनी तथा बायीं तरफ पूर्व दिशा में कमल-पत्र बनाकर उसके ऊपर ओंकार, दक्षिणपूर्व आदि कोणों में बनाये दलों के ऊपर हूंकार, सोलह दलों के ऊपर स्वर वर्ण, चौंतीस दलों के ऊपर 'क' आदि व्यञ्जक वर्ण और बाह्यपत्र पर मृत्युञ्जय मन्त्र लिखना चाहिए। इस मन्त्र में गोरोचना, कुँकुम, कपूर तथा चन्दन से भोजपत्र पर लिखकर उसे सफेद तागे से लपेट देना चाहिए। तदनन्तर उसके ऊपर मोम चढ़ाकर उसे कलश के ऊपर रखकर उसको पूजा करनी चाहिए। इस यन्त्र को पहनने से रोग शान्त होते हैं तथा शत्रुओं की मृत्यु होती है।४१-४३½।

विद्यां तु भेलखीं[3] वक्ष्ये[4] विप्रयोगमृतेर्हरी (रा) म् ॥४४
आं (ॐ) बातले वितले विडालमुखि, इन्द्रपुत्रि, उद्‌भवो
वायुदेवेन खोलि, आः, जी हाजा मयि वाह,
इत्यादि[5] दुःखनित्यकण्ठोच्चैर्मुहूर्तान्विया, अह मां
यस्महमुपाडि, ॐ भेलखि, ॐ स्वाहा[6] ॥४५
नवदुर्गासप्तजप्तान्मुखस्तम्भो मुखस्थितात् ॥४६
ॐ चण्डि, ॐ हूं फट् स्वाहा ॥४७
गृहीत्वा सप्तजप्तं तु खड्गयुद्धेऽपराजितः ॥४८

अब मैं भेलखी विद्या (मन्त्र) का निरूपण करूँगा, जो वियोग तथा असामयिक मृत्यु का नाश करने वाली है—मन्त्र यह है ॐ बातले-बातले ....ॐ भेलखि, ॐ स्वाहा इस नव दुर्गा मन्त्र को सात बार अपने मुख में ही जपने से शत्रु का मुँह बन्द हो जाता है। 'ॐ चण्डि, ॐ हूँ फट् स्वाहा' इस मन्त्र को सात बार जपने से मनुष्य खड्गयुद्ध में पराजित नहीं हुआ करता है।४४-४८।

इत्यादिमहापुराणआग्नेये युद्धजयार्णवे नानाबलवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३

---

१ कर्पूरचन्दनाभ्यां..........वेष्टयेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ क. ङ. शिक्यकेन । घ. सिण्ठके° । ३ क. ङ. भैरवी° । ४ क. °क्ष्ये रिपुरोग° । ५ घ. इहादि । ६ क. ङ. °हा । वनमुक्तान्सप्त ।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यविजयविद्या

ईश्वर उवाच—

त्रैलोक्यविजयां[1] वक्ष्ये सर्वयन्त्रविमर्दिनीम्[2] ॥१

ॐ हूं क्षूं ह्रूं, ॐ नमो भगवति दंष्ट्रिणि भीमवक्त्रे महोग्ररूपे हिलि हिलि रक्तनेत्रे किलि किलि महानिस्वने कुलु, ओं निर्मांसे कट कट गोनसाभरणे चिलि चिलि शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महारौद्रि सार्द्रचर्मकृताच्छदे विजृम्भ, ॐ नृत्यासिलताधारिणि भृकुटीकृतापाङ्गे विषमनेत्रकृतानने वसामेदो विलिप्तगात्रे कह कह, ॐ हस हस क्रुद्ध, क्रुद्ध, ॐ नीलजीमूतवर्णेऽभ्रमालाकृताभरणे विस्फुर, ॐ घण्टारवावकीर्णदेहे, ॐ सिंसिस्थेऽरुणवर्णे, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं रौद्ररूपे ह्रूं ह्रीं क्लीम्, ॐ, ह्रीं ह्रूमोमाकर्ष, ॐ धून धून, ॐ हे हः खः, वज्रिणि[3] भिन्द, ॐ महाकाये छिन्द ॐ करालिनि किटि किटि महाभूतमातः सर्वदुष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये ॐ त्रैलोक्य विजये हूं फट् स्वाहा ॥२

नीलवर्णां प्रेतसंस्थां विंशहस्तां यजेज्जये ।
न्यासं कृत्वा तु पञ्चाङ्गं रक्तपुष्पाणि होमयेत् ।
सङ्ग्रामे सैन्यभङ्गः स्यात्त्रैलोक्यविजयापठात्[4] ॥३

महेश्वर बोले—अब मैं सम्पूर्ण यन्त्रों को नष्ट करने वाली विद्या का वर्णन करूँगा। 'ॐ हूं क्षूं ह्रूम्'........ॐ त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा' जय प्राप्ति के लिए इस मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करके नीलवर्ण वाली, प्रेत पर आरूढ़ और बीस भुजाओं वाली देवी की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर लाल-फूलों से हवन करना चाहिए। उपर्युक्त त्रैलोक्य विजय विद्या का पाठ करने से सङ्ग्राम में शत्रु-सेना तितर-बितर हो जाती है।१-३।

---

१ क. ङ. जयं व°। २ क. ङ. °मर्दनम्। ३ घ. °णि ह्रूं क्षूं क्षां क्षोभरूपिणि प्रज्ज्वल प्रज्ज्वल, ॐ भीमभीषणे भि°। ४ ख. ग. °पदात्।

ॐ बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय, ॐ मोहय, ॐ सर्वशत्रू-
न्द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वर-
माकर्षय, ओमिन्द्रं टालय, ॐ पर्वतांश्चालय, ॐ सप्त-
सागराञ्शोषय, ॐ छिन्द च्छिन्द बहुरूपाय नमः ॥४
भुजंगं नाममृन्मूर्तिसंस्थं विद्यादरिं ततः ॥५

'ॐ बहुरूपाय स्तम्भय......छिन्द च्छिन्द बहुरूपाय नमः' इस मन्त्र का जप करते हुए मिट्टी की बनी शत्रु की मूर्ति के ऊपर बैठे हुए साँप का ध्यान करना चाहिए।४-५।

इत्यादित्यमहापराण आग्नेये युद्धजयार्णवीयत्रैलोक्यविजयविद्या-वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३४

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयविद्या

ईश्वर उवाच—

सङ्ग्रामविजयां विद्यां पदमालां[1] वदाम्यहम् ॥१

महेश्वर बोले—अब मैं पदसमूह रूप संग्राम विजया नामक विद्या का वर्णन करता हूँ ।१

ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि खट्वाङ्गकपालहस्ते महा-
प्रेतसमारूढे महाविमानसमाकुले कालरात्रि महागणपरिवृते
महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणि (हस्ते), अट्टाट्टहासे
किलि किलि, ॐ हूं फट्, दंष्ट्राघोरान्धकारिणि नादशब्द-
बहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे मांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे
महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टाट्टहासे स्फुरद्विद्युत्प्रभे
चल चल, ॐ चकोरनेत्रे चिलि चिलि, ॐ ललज्जिह्वे, ॐ
भीं भृकुटिमुखि हुंकारभयत्रासनि कपालमालावेष्टित-
जटामुकुटशशाङ्कधारिणि, अट्टाट्टहासे किलि किलि, ॐ ह्रूं
दंष्ट्राघोरान्धकारिणि सर्वविघ्नविनाशिनि, इदं कर्म साधय

---

१ क. ङः पट्टमा° ।

साधय, ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट्, ओमङ्कुशेन शमय प्रवेशय, ॐ रङ्ग रङ्ग कम्पय कम्पय, ॐ चालय, ॐ रुधिर-मांसमद्यप्रिये हन हन, ॐ कुट्ट, ॐ छिन्द, ॐ मारय, ओम-नुक्रमय, ॐ वज्रशरीरं पातय, ॐ त्रैलोक्यगतं दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वाऽऽवेशय, ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोट-राक्ष्यूर्ध्वकेश्युलूकवदने करङ्किणि[1] दह, ॐ पच पच, ॐगृह्ण, ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येनर्षिसत्येनाऽऽवेशय, ॐ किलि किलि ॐ खिलि खिलि विलि विलि, ॐ विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशनि प्रलम्बौष्ठिनि भ्रूभङ्गलग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज, ॐ ज्वालामुखि स्वन[2], ॐ पातय, ॐ रक्ताक्षि घूर्णय भूमिं पातय, ॐ शिरो गृह्ण चक्षुर्मीलय, हस्तपादौ गृह्ण मुद्रां स्फोटय, ॐ फट्, ॐ विदारय, ॐ त्रिशूलेन च्छेदय, ॐ वज्रेण हन, ॐ दण्डेन ताडय ताडय, ॐ चक्रेण च्छेदय च्छेदय, ॐ शक्त्या भेदय दंष्ट्रया कीलय, ॐ कर्णिकया[3] पाटय, ओमङ्कुशेन गृह्ण, ॐ [4]शिरोक्षिज्वरमैकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्दग्रहान्मुञ्च मुञ्च, ॐ पच, ओमुत्सादय, ॐ भूमिं पातय, ॐ गृह्ण,ॐ [5]ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्येहि(ॐ) कौमार्येहि, ॐ वैष्णव्येहि, ॐ वाराह्येहि, ओमैन्द्र्येहि, ॐ चामुण्ड एहि ॐ रेवत्येहि, ओमाकाशरे-वत्येहि, ॐ हिमवच्चारिण्येहि,[6] ॐ रुरुमर्दिन्यसुर क्षयंकर्या-काशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्कुशेन कट कट समयं तिष्ठ, ॐ मण्डलं प्रवेशय, ॐ गृह्ण मुखं बन्ध, ॐ चक्षुर्बन्ध हस्तपादौ च बन्ध दुष्टग्रहान्सर्वान्विन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो वन्ध, अध्स्ताद्वन्ध, ॐ सर्वं बन्ध, ॐ भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्वा सर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चामुण्डे किलि किलि, ॐ [7]विच्चे हुं फट् स्वाहा ।२

---

१ ख, घ. °णि, ॐ करङ्कमालाधारिणि द° । २ क. ख. ग. खल । ३ क. ख ग. च. कर्तृक° । ४ क. ख. ग. शिरार्तिज्व°। ५ क. ङ. ॐ सूतकब्र° । ६ क. छ. °वन्तधारि° । ७ क. ङ. च विद्येहु ।

पदमाला जयाख्येयं सर्वकर्मप्रसाधिका ।
सर्वदा होमजप्याद्यैः पाठाद्यैश्च रणे जयः ॥३

'ॐ ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि ...... विच्चे हुं फट् स्वाहा' यह जया नाम की पदमाला सम्पूर्णकामनाओं की सिद्धि करने वाली है । इसके सदैव हवन, जप तथा पाठ आदि करने से रण में विजय होती है।२-३।

अष्टाविंशभुजा ध्येया असिखेटकषट्करौ ।
गदादण्डयुतौ चान्यौ शरचापधरौ परौ ॥४
मुष्टिमुगदरयुक्तौ च शङ्खखड्गयुतौ परौ ।
ध्वजवज्रधरौ चान्यौ सचक्रपरशू परौ ॥५
डमरुदर्पणाढ्यौ च शक्तिकुन्तधरौ परौ ।
हलेन मुसलेनाऽऽढ्यौ पाशतोमरसंयुतौ ॥६
ढक्कापणव संयुक्तावभयौ मुष्टिकान्वितौ ।
तर्जयन्ती च महिषं घातनी होमतोऽरिजित् ॥
त्रिमध्वाक्ततिलैर्होमो न देया यस्य कस्यचित् ॥७

उपर्युक्त मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उनके अट्ठाइस भुजायें हैं, जिनके दो-दो हाथों में क्रमशः तलवार तथा खेटक अस्त्र, गदा तथा दण्ड, वाण तथा धनुष, मुष्टिक अस्त्र तथा मुद्गर, शङ्ख तथा खड्ग, ध्वज तथा वज्र, चक्र तथा परशु, डमरू तथा दर्पण, शक्ति तथा माला, हल तथा मुशल, पाश तथा तोमर, ढक्वा तथा पणव और अभय अस्त्र तथा मुष्टिक अस्त्र विद्यमान हैं। वे महिषासुर का ताड़न कर रही हैं तथा (उसका) हनन करने वाली हैं। उनके मन्त्र से हवन करने से मनुष्य शत्रु-विजयी हो जाता है। हवन त्रिमधु (घी, चीनी और मधु) से सने हुए तिल से करना चाहिए। यह मन्त्र जिस किसी को ही नहीं देना चाहिए।४-७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजायर्णवे सङ्ग्रामविजयविद्यावर्णनं नामो पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३५

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रचक्रम्

ईश्वर उवाच—

अथ चक्रं प्रवक्ष्यामि यात्रादौ च फलप्रदम् ।
अश्विन्यादौ लिखेच्चक्रं त्रिनाडीपरिभूषितम् ॥१
अश्विन्यार्द्रादिभिः पूर्वा ततश्चोत्तरफाल्गुनी ।
[1]हस्ता (स्तो) ज्येष्ठा तथा मूलं वारुणं[2] चाप्यजैकपात् ॥२
नाडीयं प्रथमा चान्या याम्यं मृगशिरस्तथा ।
पुष्यं भाग्यं तथा चित्रा मैत्रं चाऽऽप्यं[3] च वासवम् ॥३
अहिर्बुध्नं[4] तृतीयाऽथ कृत्तिका रोहिणी ह्यहिः ।
चित्रा[5] स्वाती विशाखा च[6] श्रवणा रेवती च भम् ॥४

महेश्वर बोले—अब मैं यात्रा आदि काल में फल प्रदान करने वाले चक्र का वर्णन करूँगा। तीन नाडियों (रेखाओं) का एक चक्र बनाकर उसके भीतर अश्विनी आदि नक्षत्रों के प्रथम अक्षर लिखने चाहिए। पहली रेखा के अन्दर अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा तथा पूर्वभाद्रपद नक्षत्रों को लिखना चाहिए। दूसरी रेखा के अन्दर भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, ज्येष्ठा तथा उत्तर-भाद्रपद नक्षत्रों का नाम लिखना चाहिए। तीसरी रेखा के अन्दर कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, स्वाती, विशाखा, श्रवण तथा रेवती नक्षत्रों का नाम लिखना चाहिए।१-४।

नाडीत्रितयसंजुष्टग्रहाज्ज्ञेयं[7] शुभाशुभम् ।
चक्रं फणीश्वरं[8] तत्तु त्रिनाडीपरिभूषितम्[9] ॥५

---

१ क. ख. ग. ङ. हस्तज्ये॰ । २ क. ख. ग. ङ. °णं वाऽप्य । ३ क. ङ. चाग्यं सवा° ४ क. °बुंध्नतृ° । ५ ग. मित्रः । ६ क. ङ. च श्रवणं रेवती तु च । ना° । ७ क. ङ. °संदुष्टग्रहैर्ज्ञेयं । ८ क. ङ. °रं तद्वत्त्रिना° । ९ क. ङ. °रिदूषि° ।

[1]रविभौमार्कराहुस्थमशुभं[2] स्याच्छुभं परम् ।
देशग्रामयुता[3] भ्रातृभार्याद्या [4]एकशः शुभाः ॥६
अ भ कृ रो मृ आ पु पु आ म पू उ ह चि स्वा वि अनु
ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे ॥७
अत्रसप्तविंशति नक्षत्राणि ज्ञेयानि ॥८

तीन रेखाओं का एक फणीश्वर चक्र होता है, जिसके ग्रहों द्वारा शुभाशुभ का ज्ञान होता है । इस चक्र में सूर्य, मङ्गल, शनि तथा राहु द्वारा किया जाने वाला अशुभवाद में शुभ हो जाता है । इससे देश, ग्राम, भ्रातृ-स्नेह तथा पत्नी-प्रेम का लाभ हुआ करता है । फणीश्वर-चक्र के सत्ताइसों नक्षत्र इस प्रकार समझना चाहिए—अ भ कृ रो मृ आ पु पु आ म पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र घ श पू उ रे । ५-८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रचक्रवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिक-शततमोऽध्यायः ।१३६

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महामारीविद्याकथनम्

ईश्वर उवाच—

महामारीं प्रवक्ष्यामि विद्यां शत्रुविमर्दिनीम् ॥१

महेश्वर बोले—अब मैं शत्रु को कुचलने वाली महामारी विद्या (मन्त्र) का वर्णन करूँगा ।१

ॐ ह्रीं[5] महामारि[6]रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याऽऽज्ञाक (का) रिणि सर्वभूतसंहारकारिणि, अमुकं हन हन, ॐ दह दह, ॐ पच पच, ॐ छिन्द च्छिन्द, ॐ मारय मारय, ओमुत्सादयोत्सादय, ॐ सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहेति ॥२

---

१ रविभौमार्क……परम् ग. पुस्तके नास्ति । २ क. ङ. °हुस्था अशुभस्था शुभावहा । दे° । ३ क. ङ. °मसुता । ४ क. ङ. एकगाः । ५ ख. ग. क्लीं । ६ ख. ग. °हाविर° ।

ॐ मारि हृदयाय नमः ॐ महामारी शिरसे स्वाहा । ॐ कालरात्रि शिखायै वौषट् । ॐ कृष्णवर्णे खः कवचाय हुम् । ॐ तारकाक्षि विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयङ्करि रक्ष रक्ष सर्वकार्येषु[1] हं त्रिनेत्राय वषट् । ॐ महामारि सर्वभूतदमनि महाकालि, अस्त्राय हुं फट् ॥३
एष न्यासो महादेवि कर्तव्यः साधकेन तु[2] ॥३½

'ॐ ह्रीं महामारि.........हुँ फट् स्वाहेति' यह महामारी मन्त्र है। अयि महादेवि ! साधक को 'ॐ मारि हृदयाय नमः......अस्त्राय हुं फट्' इन मन्त्रों को पढ़कर (विभिन्न अङ्गों का) स्पर्श करना चाहिए ।१-३½।

शवादि वस्त्रमादाय चतुरस्रं त्रिहस्तकम् ॥४
कृष्णवर्णां त्रिवक्त्रां[3] च चतुर्बाहुं समालिखेत् ।
पटे विचित्रवर्णैश्च धनुः शूलश्च कर्तृकाम्[4] ॥५
खट्वाङ्गं धारयन्ती च कृष्णाभं पूर्वमाननम् ।
तस्य दृष्टिनिपातेन भक्षयेदग्रतो नरम् ॥६

तदनन्तर शव आदि का वस्त्र लेकर उसे तीन हाथ लम्बा और चौकोर बनाकर उसके ऊपर (देवी का) एक चित्र बनाना चाहिए। उस चित्र का वर्ण काला हो, तीन मुख हों और चार भुजायें हों। उस वस्त्र के ऊपर विभिन्न रगों में धनुष, शूल, कर्तृका आदि अस्त्र तथा अस्थिपञ्जर को लिये हुए देवी का चित्रण करना चाहिए। उसका एक मुख काला तथा पूर्व दिशा की ओर झुका हुआ होना चाहिए। उस (मुख) में सामने के मनुष्य को देखते ही चट कर जाने का-सा भाव अङ्कित होना चाहिए ।४-६।

द्वितीय याम्यभागे तु रक्तजिह्वं भयानकम् ।
[5]लेलिहानं करालं च दंष्ट्रोत्कटभयानकम् ॥७
[6]तस्य दृष्टिनिपातेन भक्ष्यमाणं हयादिकम् ।
तृतीयं च मुखं देव्याः[7]श्वेतवर्णं गजादिनुत् ॥८

---

१ क. ग. ॐ. २ क. ग. ङ. तु । सर्वादि । ३ ख. ग. त्रिरक्तां च ।
४ क. ग. ङ. कर्तिका । ५ लेलिहानं......भयानकं च. पुस्तके नास्ति ।
६ तस्य......हयादिकम् ग. पुस्तके नास्ति । ७क. ङ. शुभदन्तं ।

दूसरा मुख दक्षिण-दिशा की ओर झुका, भयानक, लाल और लपलपाती जिह्वा से युक्त तथा उत्कट दंष्ट्राओं के कारण देखने में भयंकर होना चाहिए। उसमें इस प्रकार का भाव अंकित होना चाहिए कि वह घोड़े आदि को देखते-देखते ही निगल जायेगा। देवी का तीसरा मुख उज्ज्वल तथा (शत्रु के) हाथी आदि को नष्ट कर देने वाला होना चाहिए।७-८।

गन्धपुष्पादिमध्वाज्यैः पश्चिमाभिमुखं यजेत्[1]।
मन्त्रस्मृतेरक्षिरोगः शिरोरोगादि नश्यति ॥९
वश्याः स्युर्यक्षरक्षाश्च (क्षांशि) नाशमायान्ति शत्रवः।
समिधो निम्बवृक्षस्य ह्यजारक्तविमिश्रिताः ॥१०
[2]मारयेत्क्रोधसंयुक्तो होमादेव न संशयः।
परसैन्यमुखोभूत्वा सप्ताहं जुहुयाद्यदि ॥११
व्याधिभिगृह्यते[3] सैन्यं भङ्गो भवति वैरिणः ॥११½

साधक पश्चिमाभिमुख होकर गन्ध, पुष्प, मधु, घी आदि से देवी की पूजा करके उपर्युक्त मन्त्र का जप करे। ऐसा करने से नेत्र-रोग और शिरो-रोग आदि नष्ट हो जाते हैं। (इसका जप करने से) यक्ष तथा राक्षसगण वशीभूत हो जाते हैं और शत्रुओं का सर्वनाश हो जाता है। नीम की लक-ड़ियों में बकरे का रक्त मिलाकर उपर्युक्त मन्त्र से क्रोध पूर्वक हवन करने से निःसन्देह शत्रु की मृत्यु हो जाती है। शत्रुसेना के अभिमुख होकर एक सप्ताह तक इस प्रकार का हवन करने से शत्रु सेना व्याधियों से ग्रस्त हो जाती है तथा शत्रु का विनाश हो जाता है।९-११½।

समिधोऽष्टसहस्रं तु यस्य नाम्ना तु होमयेत् ॥१२
अचिरान्म्रियते सोऽपि ब्रह्मणा यदि रक्षितः।
उन्मत्तसमिधो रक्तविषयुक्त सहस्रकम् ॥१३
दिनत्रयं ससैन्यश्च नाशमायाति वै रिपुः।
राजिकालवणैर्होमाद्भङ्गोऽरेः स्याद्दिनत्रयम् ॥१४

नीम की ही आठ हजार समिधाओं से जिस किसी का नाम लेकर हवन किया जाता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, फिर चाहे उसकी रक्षा करने वाले स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हों। धतूरे की समिधाओं में रक्त और

१ ख. ग. त्यजेत्। २ ङ. °रयन्क्रोध°। ३ क. ङ. °धिभिः पूर्यते।

विष मिलाकर तीन दिन तक एक-एक हजार आहुतियाँ डालने से सेना सहित शत्रु का नाश हो जाता है। राजसरसों तथा लवण से तीन दिन तक हवन करने से शत्रु का सर्वनाश हो जाता है।१२-१४।

खररक्तसमायुक्तहोमादुच्चाटयेद्रिपुम्।
[1]काकरक्तसमायोगाद्धोमादुत्सादनं ह्यरेः ॥१५
वधाय कुरुते सर्वं यत्किंचिन्मनसेप्सितम्।१५½

गधे का रक्त मिलाकर हवन करने से शत्रु का (उच्छेद) नाश होता है। उक्त मन्त्र से शत्रु वध के निमित्त जो कुछ भी किया जायेगा, उसी में सफलता प्राप्त होगी।१५-१५-½।

अथ सङ्ग्रामसमये गजारूढस्तु साधकः ॥१६
कुमारीद्वयसंयुक्तो मन्त्रसंनद्धविग्रहः।
दूरशङ्खादिवाद्यानि विद्यया ह्यभिमन्त्रयेत् ॥१७
महामायापटं[2] गृह्य[3] उच्छेत्तव्यं रणाजिरे।
परसैन्यमुखो भूत्वा दर्शयेत्तं महापटम् ॥१८
कुमारीर्भोजयेत्तत्र पश्चात्पिण्डीं[4] च भ्रामयेत्।
[5]साधकश्चिन्तयेत्सैन्यं पाषाणमिव निश्चलम् ॥१९
निरुत्साहं विभग्नं च मुह्यमानं च [6]भावयेत् ॥१९½

युद्ध-काल में साधक उक्त-मन्त्र से अपने शरीर की रक्षा करके दो कुमारियों के साथ हाथी पर चढ़कर उसी मन्त्र को उच्च-स्वर से पढ़ता हुआ शङ्ख आदि वाद्यों का आमन्त्रण करे। फिर महामाया भगवती का वस्त्र लेकर उसे रणाङ्गण में छोड़ देना चाहिए। तदनन्तर उस महापट को शत्रु सेना की ओर मुख करके दिखाना चाहिये और वहीं कुमारियों को खिलाकर चक्र घुमाना चाहिए। उस समय साधक अपने मन में यह विचार करता रहे कि शत्रु-सेना पाषाणवत् निश्चल, निरुत्साह, विमुग्ध और नष्ट हो चुकी है। १६-१९½।

---

१ काकरक्त...... ह्यरेः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. °पद° गृ°। ३ अस्मिन् श्लोके गृह्येति पदमार्षम्। ४ क. ङ. °त्पिच्छीं च° ५ साधकश्चिन्तयेत्...... ......निश्चलम् क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति। ६ ख. भीषयेत्।

एष स्तम्भो मया प्रोक्तो न देयो यस्य कस्यचित् ॥२०
त्रैलोक्यविजया माया दुर्गेवं भैरवी तथा।
[1]कुब्जिका भैरवी रुद्रो नारसिंह (?) पटादिना ॥२१

मैंने जिस (शत्रु) स्तम्भन (मन्त्र) को बताया है, उसे हर किसी को नहीं बताना चाहिए। उपर्युक्त महापट के ऊपर त्रैलोक्य विजया, माया, दुर्गा, भैरवी कुब्जिका, रुद्र तथा नरसिंह—इन नामों को भी लिख देना चाहिए।२०-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महामारीविद्यावर्णनं नाम सप्तत्रिंश-दधिकशततमोऽध्यायः।१३७

अथाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्कर्माणि

ईश्वर उवाच—
षट्कर्माणि प्रवक्ष्यामि सर्वमन्त्रेषु तच्छृणु।
आदौ साध्यं लिखेत्पूर्वं चान्ते मन्त्रसमन्वितम् ॥१

महेश्वर बोले—अब मैं सब मन्त्रों से किये जाने वाले मारण, मोहन आदि षट्कर्मों का वर्णन करूँगा, उसे सुनो। पहले आदि में साध्य (सिद्ध करने योग्य लक्ष्य) को लिखकर अन्त में मन्त्र लिखना चाहिए।१

पल्लवः स तु विज्ञेयो महोच्चाटकरः परः।
आदौ मन्त्रस्ततः साध्यो मध्ये साध्यः पुनर्मनुः ॥२

इस (विधि) को पल्लव कहते हैं। इससे महान् उच्चाटन होता है। आदि में मन्त्र, उसके बाद साध्य, फिर मध्य में साध्य और पुनः अन्त में मन्त्र लिखना चाहिये।२

योगाख्यः सम्प्रदायोऽयं कुलोत्सादेषु योजयेत्।
आदौ मन्त्रपदं दद्यान्मध्ये साध्यं नियोजयेत् ॥३
पुनश्चान्ते लिखेन्मन्त्रं साध्यं मन्त्रपदं पुनः[2]।
रोधकः सम्प्रदायस्तु स्तम्भनादिषु योजयेत् ॥४

इसे योग नामक सम्प्रदाय कहते हैं। इसका प्रयोग कुल का नाश करने में करना चाहिए। आदि में मन्त्र, मध्य में साध्य, अन्त में पुनः मन्त्र, फिर

---

१ क. ङ. कुम्भिका। २ ख. ग. च. ०नः। बोध°।

साध्य और पुनः मन्त्र लिखना चाहिए। इसको रोधक सम्प्रदाय कहते हैं। इसका प्रयोग स्तम्भन आदि कार्यों में करना चाहिए।३-४।

[1]अधोऽर्ध्वं याम्यवामे तु मध्ये साध्यं तु योजयेत्।
[2](संपुटः स तु विज्ञेयो वश्याकर्षेषु योजयेत् ॥५

साध्य को मध्य में रखकर उसके नीचे-ऊपर तथा दायें बाँयें भाग में मन्त्र लिखना चाहिए। इसको सम्पुट विधि कहते हैं। इसका प्रयोग वशीकरण तथा आकर्षण में करना चाहिए।५

मन्त्राक्षरं यदा साध्यं प्रथितं चाक्षराक्षरम्।
प्रथमः) सम्प्रदायः स्यादाकृष्टिवशकारकः[3] ॥६
मन्त्राक्षरद्वयं लिख्य एकं साध्याक्षरं पुनः।
विदर्भः सतु विज्ञेयो[4] वश्याकर्षेषु योजयेत् ॥७

जहाँ पर मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के साथ-साथ साध्य(लक्ष्य)का एक एक अक्षर लिखा जाता है,उसे प्रथम सम्प्रदाय कहते हैं। यह प्रयोग आकर्षण और वशीकरण के लिए किया जाता है। इसी प्रकार जहाँ मन्त्र के दो-दो अक्षरों को लिखकर साध्य का एक-एक अक्षर लिखा जाता है, उसे विदर्भ कहते हैं। इसका भी प्रयोग वशीकरण और आकर्षण में किया जाता है।६-७।

आकर्षणादि यत्कर्म वसन्ते चैव कारयेत्।
तापज्वरे तथा [5]वश्ये स्वाहा चाऽऽकर्षणे शुभम् ॥८
नमस्कारपदं[6] चैव शान्तिवृद्धौ प्रयोजयेत्।
पौष्टिकेषु वषट्कारमाकर्षे वशकर्मणि ॥९
विद्वेषोच्चाटने मृत्यौ फट्स्यात्खण्डी कृतोऽशुभे।
लाभादौ मन्त्रदीक्षादौ वषट्कारस्तु सिद्धिदः ॥१०

आकर्षण आदि कर्मों का प्रयोग वसन्त ऋतु में ही करना चाहिए। तापज्वर की शान्ति, वशीकरण तथा आकर्षण कार्य में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शान्ति और वृद्धि के कार्य में 'नमस्कार' शब्द का प्रयोग करना

---

१ अधोऽर्ध्वं.........योजयेत् ग. च.पुस्तकयोर्नास्ति। २ संपुट......प्रथमः ग. पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. ष्टिरसका° ।४ च. °यो रष्टावर्षे° ५ क. ङ. वक्ष्ये। ६ क. ङ., परं चै°।

चाहिए । पौष्टिक (श्रेयस्कर) कार्यों में वषट्कार का प्रयोग और आकर्षक, वशीकरण, विद्वेष, उच्चाटन तथा मारण सम्बन्धी अशुभ कार्यों में 'फट्' का प्रयोग करना चाहिए । लाभ तथा मन्त्र-दीक्षा आदि कार्यों में 'वषट्कार' शब्द सिद्धिदायक हुआ करता है । ८-१० ।

यमोऽसि यमराजोऽसि कालरूपोऽसि धर्मराट् ।
मयादत्तमिमं शत्रुमचिरेण निपातय ॥११
निपातयामि यत्नेन निवृत्तो भव साधक ।
संहृष्टमनसा ब्रूयाद्देशिको[1]ऽरिप्रसूदनः[2] ॥१२

साधक को कहना चाहिए-'तुम यम हो, यमराज हो, कालरूप हो और धर्मराज हो । मेरे दिये हुए इस शत्रु को शीघ्र गिरा दो ।' तदनन्तर शत्रुनाशक गुरु को प्रसन्नचित्त से कहना चाहिए—'अये साधक ! तुम आराम करो । मै यत्नपूर्वक (इसे) गिरा रहा हूँ ।' ११-१२

पद्मे शुक्ले यमं प्राच्र्य होमादेतत्प्रसिध्यति ।
आत्मानं भैरवं ध्यात्वा ततो मध्ये कुलेश्वरीम् ॥१३
रात्रौ वार्तां विजानाति आत्मनश्च परस्य च ।
दुर्गे दुर्गरक्षणीति दुर्गां प्राच्र्यारिहा भवेत् ॥
जप्त्वा हसक्षमलवरयुं भैरवीं घातयेदरिम् ॥१४

इस प्रकार श्वेतकमल पर यम की पूजा करके हवन करने से इस कार्य की सिद्धि होती है । रात्रि में अपने को भैरव के रूप में तथा मध्य में कुलेश्वरी का ध्यान करने से अपना तथा दूसरों का समाचार ज्ञात हो जाता है । 'दुर्गे दुर्ग-रक्षिणि' इस मन्त्र से दुर्गा की पूजा करने से मनुष्य शत्रु का संहार करने वाला हो जाता है । 'ह स क्ष म ल व र यु' इन अक्षरों से भैरवी मन्त्र का जप करने से मनुष्य अपने शत्रु को नष्ट कर डालता है ।१३-१४ ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षट्कर्मकथनं नामाष्टात्रिंशदधिक-शततमोऽध्यायः ।१३८

---

१ च. °को रिपुसूदनम् । अग्निस्वर्णमयं प्रा° । २ क. ङ. °नः । अग्नि स्वर्णमयं प्रा° ।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

षष्टिः संवत्सराः

ईश्वर उवाच—

षष्ट्यब्दानां प्रवक्ष्यामि शुभाशुभमतः शृणु।
प्रभवे यज्ञकर्माणि विभवे सुखिनो जनाः ॥१

महेश्वर बोले-अब मैं साठ वर्षों का शुभाशुभ फल बताऊँगा। उसे सुनो। प्रभव नामक संवत्सर में यज्ञ-कर्म अधिक होते हैं। विभव नामक संवत्सर में प्रजा सुखी रहती है। १

शुक्ले तु सर्वसस्यानि प्रमोदेन प्रमोदिताः।
प्रजापतौ प्रवृद्धिः स्यादङ्गिरा भोगवर्धनः ॥२
श्रीमुखे वर्धते लोको भावे भावः प्रवर्धते[1]।
युना च प्लवते शक्रो धाता सर्वौषधीकरः ॥३

शुक्ल नामक संवत्सर में सस्यों की वृद्धि होती है। प्रमोद नामक वर्ष में प्रजायें आनन्दित रहती हैं। प्रजापति नामक संवत्सर में प्रजा की वृद्धि होती है। अङ्गिरा नामक वर्ष में भोगों की वृद्धि होती है। श्रीमुख वर्ष में प्रजाओं की वृद्धि होती है। भाव-संवत्सर में भावुकता बढ़ती है। युवा नामक संवत्सर में इन्द्र प्रसन्न होते हैं तथा 'धाता' संवत्सर में सभी औषधियाँ फलती फूलती हैं। २-३

ईश्वरे क्षेममारोग्यं बहुधान्यः सुभिक्षदः।
प्रमाथी मध्यवर्षस्तु विक्रमे सस्यसम्पदः ॥४
वृषो वृष्यति सर्वांश्च चित्रभानुश्च चित्रताम्।
सुभानुः (नौ) क्षेममारोग्यं तारणे जलदाः शुभाः ॥५
पार्थिवे सस्यसम्पत्तिरतिवृष्टिस्तथा व्यये।
सर्वजित्युत्तमा वृष्टिः सर्वधारी सुभिक्षदः ॥६

ईश्वर-संवत्सर में क्षेम तथा आरोग्य की वृद्धि होती है। बहुधान्य-संवत्सर सुभिक्ष उत्पन्न करता है। मध्यवर्ष पीठाकार होता है। विक्रम-संवत्सर सस्य-

---

१ घ.° ते। पूरणो पूरणो श°। २ क. ख. ङ.° वर्षं तु वि°।

सम्पत्तिवर्धक होता है। वृष-संवत्सर सब वस्तुओं की वर्षा करता है। चित्र-भानु संवत्सर विचित्रता उत्पन्न करता है। सुभानु-संवत्सर क्षेम तथा आरोग्य बढ़ाता है। तारण संवत्सर में बादल अच्छे होते है। पार्थिव संवत्सर में सस्य-सम्पत्ति बढ़ती है। व्यय संवत्सर में अतिवृष्टि होती है। सर्वजित् संवत्सर में उत्तम वृष्टि होती है। सर्वधारी संवत्सर में सुभिक्ष उत्पन्न होता है।४-६।

विरोधी जलदान्हन्ति विकृतिश्च भयङ्करः।
खरे भवेत्पुमान्वीरो नन्दने नन्दते [ति] प्रजा।।७

विरोधी-सवत्सर बादलों को नष्ट करता है विकृति-संवत्सर भयानक होता है। खर-संवत्सर में पुरुष वीर हुआ करते हैं। नन्दन वर्ष में प्रजा आनन्दित होती है।७

[1]विजयः शत्रुहन्ता च शत्रु [ज्यो] रोगादि मर्दयेत्।
ज्वरार्त्तो मन्मथे लोको दुष्करे दुष्कराः प्रजाः [?]।।८

विजय-वर्ष शत्रु और रोग आदि का नाश किया करता है। मन्मथ वर्ष में लोग ज्वर पीड़ित होते हैं। दुष्कर वर्ष में प्रजा को कठिनाइयाँ होती हैं।८

दुर्मखे दुर्मुखो लोको हेमलम्बेन सम्पदः।
[2]संवत्सरो महादेवि विलम्बस्तु सुभिक्षदः।।९
विकारी शत्रुकोपाय विजये [शार्वरी] सर्वदा क्वचित्।
प्लवे प्लवन्ति तोयानि शोभने शुभकृत्प्र (शुभकृच्छोभने-प्र) जा।।१०

दुर्मुख वर्ष में प्रजायें कटुवादिनी होती हैं। हेमलम्ब वर्ष में सम्पत्तियाँ बढ़ती हैं। अयि महादेवि! विलम्ब नामक संवत्सर सुभिक्ष उत्पन्न करता है। विकारी वर्ष शत्रु को कुपित करता है। शार्वरी वर्ष कभी-कभी ही विजय दिलाता है। प्लव संवत्सर में वृष्टि अधिक होती है। शोभन वर्ष में प्रजा शुभ कर्म करने वाली हुआ करती है।९-१०।

---

१ ख. ग. विषयः। २ क. ख. ङ. 'त्सरेम'।

[1]राक्षसे निष्ठुरो लोको विविधं धान्यमानने [ले]।
सुवृष्टिः पिङ्गले क्वापि काले ह्युक्तो [लयुक्ते]
धनक्षयः ॥११
सिद्धार्थे सिध्यते [ति] सर्वं रौद्रे रौद्रं प्रवर्तते।
दुर्मतौ मध्यमा वृष्टिर्दुन्दुभिः क्षेमधान्यकृत् ॥१२

राक्षस वर्ष में लोग निष्ठुर होते हैं। आनन वर्ष में विविध प्रकार का धान्य होता है। पिङ्गल वर्ष में सुवृष्टि और काल-वर्ष में धनक्षय होता है। सिद्धार्थ वर्ष में सभी कार्य सिद्ध होते हैं। रौद्र वर्ष में क्रोध बढ़ता है। दुर्मति वर्ष में वृष्टि मध्यम होती है और दुन्दुभि वर्ष में धान्य और कल्याण की वृष्टि होती है।११-१२।

स्रवन्ते (ति) रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः [क्षे] क्रोधनो
[ने] जयः।
क्षये क्षीणधनो लोकः षष्टिसंवत्सराणि तु ॥१३

स्रवन्त वर्ष में रक्तपात तथा क्रोधन-वर्ष में विजय होती है। क्षय वर्ष में प्रजाओं के धन का क्षय होता है। यही साठ संवत्सर और उनके फल हैं।१३

इत्यादिमहापुराण आग्नेये युद्धजयार्णवे षष्टिसंवत्सरवर्णनं नामैकोन-चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१३९

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वश्यादियोगाः

ईश्वर उवाच—
वश्यादियोगान्वक्ष्यामि लिखेद्द्वयष्टपदे त्विमान।
भृङ्गराजः सहदेवी मयूरस्य शिखा तथा ॥१
पुत्रं जीवकृतं[2] जाली ह्यधःपुष्पा रुदन्तिका।
कुमारी रुद्रजटा स्याद्विष्णुक्रान्ता शि [सि] तोऽर्कक: ॥२

---

१ क्रोध्याद्यानन्दान्तैकादशसंवत्सरफलप्रतिपादकाः श्लोकास्त्रुटिताः। २ ग. °कृता जा°।

लज्जालुका मोहलता कृष्णधत्तूरसंज्ञिता[1] ।
गोरक्षः कर्कटी चैव मेषशृङ्गी स्नुही तथा ॥३
ऋत्विजो वह्नयो नागाः पक्षौ मुनिमनू शिवः ।
वसवो दिग्रसा वेदा ग्रहर्तुरविचन्द्रमाः ॥४
तिथयश्च क्रमाद्भागा ओषधीनां प्रदक्षिणम् ।
प्रथमेन चतुष्केण[2] धूपश्चोद्वर्तनं परम् ॥५

ईश्वर बोले—अब मैं वशीकरण आदि के प्रयोगों का वर्णन करूँगा। इन योगों को सोलह कोष्ठों (खानों) में लिखना चाहिए। फिर भृङ्गराज, सहदेवी, मयूरशिखा, पुत्रक, जीवकृत जाली; अधः पुष्पा, रुदन्तिका, कुमारी, रुद्रजटा, विष्णुक्रान्ता, श्वेतअर्क, लाजवन्ती, मोहलता, काला धतूरा, गोरक्ष, कर्कटी, मेषशृङ्गी तथा स्नुही नामक औषधियों के नाम लिखकर उनके चारों ओर ४, ३. ८. २. ७. १४. ११. ८. ४. ६. ४, ९. ६. ११. १५—इतनी संख्या लिखनी चाहिए। तदनन्तर तिथियों और ओषधियों के भागों को लिखकर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए । पहले की चार ओषधियों का धूप तथा उबटन बनाकर सेवन करना चाहिए।१-५।

तृतीयेनाञ्जनं कुर्यात्स्नानं कुर्याच्चतुष्कतः ।
भृङ्गराजानुलोमाच्च चतुर्धा लेपनं स्मृतम् ॥६
मुनयो दक्षिणे पार्श्वे युगाद्याश्चोत्तराः स्मृताः ।
भुजगाः पादसंस्थाश्च ईश्वरा मूर्ध्नि संस्थिताः ॥७

तीसरी ओषधि (मयूरशिखा) का अञ्जन बनाना चाहिए और चौथी ओषधि पुत्रक से स्नान करना चाहिए। भृङ्गराज से लेकर चार ओषधियों (भृङ्गराज, सहदेवी, मयूरशिखा, पुत्रक) का लेप करना चाहिए । सातवीं संख्या वाली ओषधि (अधः पुष्पा) को दाहिनी ओर चौथी आदि संख्या वाली (पुत्रक आदि) ओषधियों को बाईं ओर तथा पहली संख्या वाली (भृङ्गराज) ओषधियों को भुजा, पैर और शिर पर धारण करना चाहिए।६-७।

मध्येन सार्कशशिभिर्धूपः स्यात् सर्वकार्यके ।
एतैर्विलिप्तदेहस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते ॥८

---

१ ग. घ. ङ. °ष्णधूस्तुर° । २ क. ङ. °ण वृषश्चो° ।

मध्य-स्थित एक-एक संख्या वाली ओषधियों के धूप का सेवन सभी कार्यों में करना चाहिए। शरीर में उपर्युक्त ओषधियों का लेप लगाने वाला व्यक्ति देवताओं से भी सम्मानित हुआ करता है।८

[1]धूपस्तु षोडशाद्यस्तु[2] गृहाद्युद्वर्तने स्मृतः।
युगाद्याश्चाञ्जने प्रोक्ता[3] बाणाद्याः स्नानकर्मणि ॥९

सोलहवीं संख्या वाली ओषधि का धूप तथा उबटन बनाना चाहिए। चौथी आदि संख्या वाली ओषधियों का अञ्जन बनाना चाहिए। पाँचवीं आदि संख्या वाली ओषधियों का प्रयोग स्नान कर्म में करना चाहिए।९

रुद्राद्या भक्षणे प्रोक्ताः पक्षाद्याः पानके[4] स्मृताः।
ऋत्विग्वेदर्तुनयनैस्तिलकं लोकमोहनम् ॥१०

ग्यारहवीं आदि संख्या वाली ओषधियों का उपयोग भोजन में और दूसरी आदि संख्या वाली ओषधियों का उपयोग पीने में करना चाहिए। चौथी, छठीं तथा दूसरी संख्या वाली ओषधियों का तिलक लोगों को मोहित कर लिया करता है।१०

सूर्यत्रिदशपक्षैश्च शैलैः स्त्री लेपतो वशा।
चन्द्रेन्द्रफणिरुद्रैश्च योनिलेपाद्वशाः स्त्रियः ॥११

बारहवीं, तीसरी, दसवीं, दूसरी तथा सातवीं संख्या वाली ओषधियों का प्रयोग करने से स्त्री वशीभूत होती है। योनि के ऊपर पहली, आठवीं तथा ग्यारहवीं संख्या वाली ओषधि का लेप करने से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं।११

तिथिदिग्युगबाणैश्च गुटिका तु वशंकरी।
भक्ष्ये भोज्ये तथा पाने दातव्या गुटिका वशे ॥१२

पन्द्रहवीं, चौथी, दूसरी तथा पाँचवीं संख्या वाली ओषधियों की गोली (सभी को) वश में करने वाली हुआ करती है। खाने-पीने की सामग्री के साथ इस गोली को देने से वशीकरण होता है।१२

ऋत्विग्ग्रहाक्षिशैलैश्च शस्त्रस्तम्भे मुखे धृता[5]।
शैलेन्द्रवेदरन्ध्रैश्च अङ्गलेपाज्जले वसेत् ॥१३

---

१ धूपस्तु.......स्मृतः च. पुस्तके नास्ति। २ ख. ग. °शापास्तु। ३ क. ख. ग. °क्त रणाद्याः स्थान°। ४ क ङ. पारके। ५ क. ङ. च. धृतम्।

चौथी, नौवीं, दूसरी तथा सातवीं संख्या वाली ओषधियों की गोली मुँह में रखने से शत्रुओं के शस्त्रों का स्तम्भन होता है। सातवीं, पहली, चौथी तथा नवीं संख्या वाली ओषधियों का लेप लगाकर कोई जल में निवास कर सकता है।१३

वाणाक्षिमनुरुद्रैश्च गुटिका क्षुत्तुषादिनुत्।
त्रिषोडशदिशाबाणैर्लेपात्स्त्री दुर्भगा शुभा ॥१४

पाँचवीं, दूसरी, चौदहवीं तथा ग्यारहवीं संख्या वाली ओषधियों की गुटिका भूख, प्यास आदि को नष्ट कर देती है। तीसरी, सोलहवीं, चौथी तथा पाँचवीं संख्या वाली ओषधियों का लेप लगाने से असुन्दरी स्त्री भी सुन्दरी हो जाती है।१४

त्रिदशाक्षि[1] दिशानेत्रैर्लेपात्क्रीडेच्च पन्नगैः।
त्रिदशाक्षेशभुजगैर्लेपात्स्त्री सूयते सुखम् ॥१५

तीसरी, दशवीं, दूसरी तथा चौथी संख्या वाली ओषधियों का लेप लगाने से मनुष्य साँपों के साथ खेल सकता है। तीसरी, दशवीं, दूसरी, ग्यारहवीं तथा आठवीं संख्या वाली ओषधियों का लेप लगाने से स्त्री सुख से प्रसव करती है।१५

([2]सप्तदिङ्मुनिरन्ध्रै श्च[3] द्यूतजिद्वस्त्रलेपतः।
त्रिदशाक्ष्यब्धिमुनिभिर्ध्वजलेपाद्रतौ सुतः ॥)१६
[4]ग्रहाब्धिसर्प्यत्रिदशैर्गुटिका स्याद्वशंकरी।
ऋत्विग्पदस्थितौ लष [तौष] ध्याः प्रभावः प्रतिपादितः॥१७

सातवीं, चौथी नवीं संख्या वाली ओषधियों का लेप लगाकर सम्भोग करने से पुत्रोत्पत्ति होती है। नवीं, चौथी, आठवीं, तीसरी तथा दसवीं संख्या वाली ओषधियों की गोली से वशीकरण होता है। चौथी तथा दूसरी संख्या वाली ओषधियों का प्रभाव तो [पहले] ही बताया जा चुका है।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वश्यादियोगवर्णनं नाम
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४०

---

१ क. ङ. °शाहिदशनेत्रैस्तेयात्पीडावप °। २ सप्तदिङ्......सुतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ ग. °श्चद्युतजिद्वस्तलेपनः। त्रि° । ४ ख° ग. हाब्नि र्यत्रि°।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्त्रिंशत्पदज्ञानम्

ईश्वर उवाच–

षट्त्रिंशत्पदसंस्थानामोषधीनां वदे फलम् ।
अमरीकरणं नृणां ब्रह्मरुद्रेन्द्रसेवितम् ॥१

ईश्वर बोले—अब मैं छत्तीस कोष्ठों में स्थित ओषधियों का फल बतला रहा हूँ। ये ओषधियाँ मनुष्यों को अमर बनाने वाली हैं, इसीलिये ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्र ने (भी) इनका सेवन किया है।१

हरीतक्यक्ष्य (क्ष) धात्र्यश्च मरीचं पिप्पली शिफा[1] ।
वह्निः शुण्ठी पिप्पली च गुडूची[2] वचनिम्बकाः ॥२
वासकः शतमूली च सैन्धवं सिन्धुवारकम् ।
कण्टकारी मो (गो) क्षुरका[3] विल्वं पौनर्नवं वला ॥३
एरण्डमुण्डीरुचको भृङ्गः क्षारोऽथ पर्पटः ।
धन्याको जीरकश्चैव शतपुष्पी ज[4] (य)वाणि (नि) का ॥४
विडङ्गः खदिरश्चैव कृतमालो हरिद्रया ।
वचा सिद्धार्थ एतानि षट्त्रिंशत्पदगानि हि ॥५

हरीतकी (हर्रे), बहेड़ा, आँवला, मरीच, पिप्पली, शिफा (बरगद आदि का लटकने वाला मूल), वह्नि (चित्रक वृक्ष), सोंठ, गुरुच, बच, नीम, वासक (रुसा), शतमूली, सैन्धव सिन्धुतारक (म्योड़ी), कण्टकारि (भटकैया), गोक्षुरका, (गोखरू) बिल्व, पुनर्नवा, बला (बरिआरा), रेंड़ी, मुण्डी, रुचक (विजौरा नीबू), भृङ्गराज, क्षार, पर्पट, धनिया, जीरा, सौंफ, अजवायन, बायविडङ्ग, खदिर (खैर) कृतमाल, (अमलतास), हल्दी, सफेद सरसों—ये छत्तीस कोष्ठों वाली ओषधियाँ हैं।२-५।

---

१ क. ङ. शफाः। २ क. ख. ङ. °ची चव्यनि°। ३ क. ङ. °काविडङ्गो नर्तकं व°। ४ क. ङ. समानिका।

क्रमादेकादिसंज्ञानि ह्योषधानि महान्ति हि ।
[1]सर्वरोगहराणि स्युरमरीकरणानि च ॥
वलीपलितभेत्तृणि सर्वकोष्ठगतानि तु ।
एषां चूर्णं च वटिका रसेन परिभाविता ॥७
अवलेहः कषायो वा मोदको गुडखण्डकः ।
[2]मधुतो [3]घृततो वाऽपि घृतं तैलमथापि वा ॥८
सर्वात्मनोपयुक्तं[4] हि मृतसंजीवनं भवेत् ।
कर्षार्धं कर्षमेकं वा पलार्धं पलमेककम् ॥९
[5]यथेष्टाचारनिरतो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।
मृतसंजीवनीकल्पे[6] योगो नास्मात्परोऽस्ति हि ॥१०

इनकी संख्या क्रमशः एक दो आदि हैं। ये महती ओषधियाँ समस्त रोगों का हरण करने वाली तथा (मनुष्य को) अमर बनाने वाली हैं। इनमें से प्रत्येक कोष्ठ की ओषधि बालों की सफेदी तथा अंगों की झुर्रियाँ दूर करने में समर्थ हैं। इनका चूर्ण, रस में भिगोई हुई इनकी वटी, अवलेह (चटनी), काढ़ा, लड्डू, गुड़, शक्कर, मधु-घी, या घी-तेल के साथ सेवन करने से मुर्दे में भी जान आ जाती है। इन ओषधियों का आधे, एक-दो या चार तोले की नाप से नित्य सेवन करने वाला मनुष्य यथेच्छ आहार-विहार करने पर भी तीन सौ वर्षों तक जीवित रह सकता है। मृतसंजीवनी ओषधियों की कोटि में इनसे बढ़कर कोई ओषधि ही नहीं है।९-१०।

प्रथमान्नवकाद्योगात्सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
द्वितीयाच्च तृतीयाच्च चतुर्थान्मुच्यते रुजः ॥११

प्रथम तथा नवम संख्या की ओषधियाँ रोगों को दूर करने वाली हैं। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं तथा छठी संख्या की ओषधियों से भी रोगों का निवारण होता है।११

एवं षट्काच्च प्रथमाद्द्वितीयाच्च तृतीयतः ।
चतुर्थात्पञ्चमात्षष्ठास्तथा नव चतुष्कतः ॥१२

---

१ सर्वरोग.........करणानि च क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ क. सयुतो ३ क. °तोयाम्भोघृ° । ४ क. ङ. °नोययुक्तं । ५ क. ङ. °ष्टा वाचिनि । ६ क. ङ. °नी कोन्यो यो° ।

एकद्वित्रिचतुष्पञ्चषट्सप्ताष्टमतोऽनिलात् ।
अग्निभास्करषड्विंशसप्तविंशैश्च पित्ततः ॥१३

पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं तथा आठवीं संख्या की ओषधियाँ वायु रोग को दूर करती हैं। तीसरी, बारहवीं, छब्बीसवीं और सत्ताईसवीं संख्या वाली ओषधियाँ पित्त-विकार को दूर करती हैं।१२-१३।

बाणर्तुशैलव[1] सुभिस्तिथिभिर्मुच्यते कफात् ।
वेदाग्निभिर्बाणगुणैः षड्गुणैः स्याद्वशे धृते ॥१४
ग्रहादिग्रहणान्तैश्च[2] सर्वैरेव विमुच्यते ।
[3]एकद्वित्रिरसैः शैलैर्वसुग्रहशिवैः क्रमात् ॥१५
द्वात्रिंशत्तिथिसूर्यैश्च नात्र कार्या विचारणा ।
षट्त्रिंशत्पदकज्ञानं[4] न देयं यस्य कस्यचित् ॥१६

पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं तथा पन्द्रहवीं संख्या की ओषधियाँ कफ के विकार को दूर करती हैं। चौथी, तीसरी, पाँचवीं तथा छठी संख्या की ओषधियों का सेवन करने से वशीकरण की सिद्धि होती है। एक, दो, तीन, छह, सात, आठ, नौ, ग्यारह, बत्तीस, पन्द्रह तथा बारह संख्या वाली ओषधियों का सेवन करने से ग्रह से लेकर ग्रहण तक सभी दोषों से छुटकारा मिल जाता है, इसमें कुछ संशय नहीं है। इन छत्तीस ओषधियों का ज्ञान हर किसी को ही नहीं कराना चाहिए।१४-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षट्त्रिंशत्पदकज्ञानाख्यानं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१

———

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्त्रौषधादि

ईश्वर उवाच—

मन्त्रौषधानि चक्राणि वक्ष्ये सर्वप्रदानि च ।
चौरनाम्नो वर्णगुणो[5] विघ्नो मात्राश्चतुर्गुणाः ॥१

---

१ क. ङ. °शैववसुतिस्ति° । २ क. ङ. °श्च कुष्ठे रे° । ग. °श्च कुष्ठं रे° । ३ क. ङ. °रथैः शैलैर्घनुग्रहशिरैः क्र° । ४ ग. °श प्रकटज्ञा° । ५ क. ङ. °गुणाद्विधामा° ।

[1]नाम्ना [2]हृते भवेच्छेषश्चौरोऽथ जातकं वदे ।
प्रश्ने ये विषमा वर्णास्ते गर्भे पुत्रजन्मदाः ॥२

ईश्वर बोले—अब मैं मन्त्र और औषध आदि चक्रों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो सभी फलों के देने वाले होते हैं। चोर के नाम के वर्णों का द्विगुणित करके उन्हें उसमें रहने वाली चौगुनी मात्राओं के साथ जोड़ देना चाहिए। इस प्रकार जो योग प्राप्त होता है उसे सम्भावित चोर के नाम के अक्षरों से विभक्त कर देना चाहिए। इस प्रकार जो शेष बचता है, उससे चोर का पता लगाना चाहिए।१-२।

नामवर्णैः समैः काणो वामेऽक्ष्णि विषमैः पुनः ।
दक्षिणाक्षि भवेत्काणं[3] स्त्रीपुंनामाक्षरस्य च ॥३
मात्रावर्णाश्चतुर्निघ्ना[4] वर्णपिण्डे गुणे कृते ।
समे स्त्री विषमे ना [5]स्याद्विशेषे च मृतिः स्त्रियाः[6] ॥४
प्रथमं रूपशून्येऽथ प्रथमं म्रियते पुमान् ।
[7]प्रश्नं सूक्ष्माक्षरैर्गृह्य द्रव्यैर्भोगेऽखिले मतम् ॥५

अब मैं जातकर्म के सम्बन्ध में बतला रहा हूँ। सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न में यदि अक्षरों की संख्या विषम होती है, तो पुत्र की प्राप्ति होती है। नाम के अक्षरों में समान अक्षर होने पर जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह बायीं आँख से कानी होती है। विषम संख्या होने से काणत्व दोष दाहिनी आँख में रहता है। स्त्री और पुरुष के नामों के अक्षरों को उसमें रहने वाली मात्राओं से गुणा करके गुणनफल को चार से विभाजित कर देना चाहिए। यदि भजनफल सम होगा तो पुत्र अन्यथा पुत्री उत्पन्न होगी। उपर्युक्त रीति से भाग करने पर जहाँ भजनफल तो विषम ही होता है, किन्तु कुछ शेष भी बच रहता है, वहाँ स्त्री की मृत्यु पति के पूर्व हो जाती है किन्तु जहाँ इस प्रकार से किये गये भाग में भजनफल सम होता है और कुछ शेष भी बचा रहता है, वहाँ पति की मृत्यु पहले होती है। सूक्ष्म अक्षरों से प्रश्न करने पर अखिल भोग की प्राप्ति होती है।३-५।

---

१ नाम्ना... ...वदे क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ ख. कृते। ३ क. ग. °वेत्कोणः स्त्री° । ४ क. ख. ङ. °तुर्विघ्नावर्णपिण्डैर्गुणैर्हृते । ५ क. ख. ङ. °शेषै (षेऽ)थ मृ° । ६ क. ख. ङ. स्त्रियाम् । ७ प्रश्नं......... मतम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

शनिचक्रं प्रवक्ष्यामि तस्य दृष्टिं परित्यजेत् ।
राशिस्थः सप्तमे दृष्टिश्चतुर्दशशतेऽधिका ॥६
एकद्वयष्टद्वादशमः पाददृष्टिश्च[1] तत्त्यजेत् ।
दिनाधिपः प्रहरभाक्शेषा[2] यामार्धभागिनः ॥७
शनिभागं त्यजेद्युद्धे दिनराहुं वदामि ते ।
रवौ पूर्वेऽनिले मन्दे गुरौ याम्येऽनले भृगौ ॥८
अग्नौ कुजे[3] भवेत्सौम्ये स्थिते राहुर्बुधे[4] सदा[5] ।
फणिराहुस्तु प्रहरमैशे वह्नौ च राक्षसे ॥९
[6]वायौ संवेष्टयित्वा च शत्रुं हन्तीशसम्मुखम् ॥९½

अब मैं शनि-चक्र का वर्णन करूँगा । उसकी दृष्टि का सर्वत्र त्याग करना है । किसी मास में किसी राशि में रहने वाला शनि दिन के दूसरे, सातवें आठवें और दसवें भाग के ऊपर अपनी दृष्टि डालता है तथा उसके चौथे और ग्यारहवें भागों के ऊपर आधी दृष्टि डालता है । शनि की वक्र-दृष्टि को यत्नपूर्वक बचाते रहना चाहिए । दिनाधिप नक्षत्र उस दिन के तीन घण्टों को प्रभावित करता है और शेष नक्षत्र दिन के आधे-आधे याम में अपना प्रभाव डालते हैं । युद्ध में शनि से प्रभावित दिनांश को बचा देना चाहिए । अब मैं आपसे सप्ताह के विभिन्न दिनों में परिवर्तित होने वाली राहु की दशा का भी वर्णन करूँगा । रविवार को राहु की दृष्टि पूर्व की ओर, शनिवार को वायव्य की ओर, बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर; शुक्र और मंगल को अग्निकोण की ओर तथा बुधवार को उत्तर की ओर रहती है । जबकि फणि राहु की दृष्टि ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायव्य-कोण में एक-एक प्रहर रहते हैं और अपने सामने खड़े हुए शत्रु को आवेष्टित करके मार डालते हैं ।६-९½।

तिथिराहुं प्रवक्ष्यामि पूर्णिमाऽऽग्नेयगोचरे ॥१०
अमावास्यां वायवे च राहुः सम्मुखशत्रुहा[7] ।
काद्या जान्ताः सम्मुखे[8] स्युर्झाद्या दान्ताश्च दक्षिणे ॥११

---

१ क. ख. ङ. °श्च तं त्यजे° । २ क. ङ. भाङ्मेषाया° । ३ ख. ग. कुण्डे क. ङ. ध्वजे । ४ क. ङ. श्रिये । ५ ख. ग. °दा । यातिरा° । ६ ख. ग. वायौ स वेष्टयित्वाङ्ग शत्रुं हस्ती सं° । ७ च. °हा । व्याघाताद्याः पञ्चमेस्युः सीघादा° । ८ क. ङ. पश्चिमे ।

[1]शुक्ले त्यजेत्कुज[2] गुणान्धाद्या मान्ताश्च पूर्वतः ।
याद्या हान्ता उत्तरे स्युस्तिथिदृष्टं विवर्जयेत् ॥१२

अब मैं भिन्न-भिन्न तिथियों में राहु की स्थिति का वर्णन करूँगा। पूर्णिमा और अमावस्या के दिन राहु की दृष्टि क्रमशः दक्षिण-पूर्व और पश्चिमोत्तर रहती है। उस समय अपनी ओर यात्रा करने वाले शत्रु को राहु निश्चय ही नाश कर देता है। पश्चिम से पूर्व की ओर तीन खड़ी रेखायें खींचे और फिर इन मूलभूत रेखाओं का भेदन करते हुए दक्षिण से उत्तर की ओर तीन पड़ी रेखायें खींचे। इस तरह प्रत्येक दिशा में तीन-तीन रेखाग्र होंगे। सूर्य जिस राशि पर स्थित हों, उसे सामने वाली दिशा में लिखकर क्रमशः बारहों राशियों को प्रदक्षिण-क्रम से उन रेखाग्रों पर लिखें। तत्पश्चात् 'क' से लेकर 'ज' तक के अक्षरों को सामने की दिशा में लिखे। 'झ' से लेकर 'द' तक के अक्षर दक्षिण-दिशा में स्थित रहें, 'ध' से लेकर 'म' तक के अक्षर पूर्व दिशा में लिखे जायँ। 'य' से लेकर 'ह' तक के अक्षर उत्तर दिशा में अङ्कित हों। ये राहु के गुण या चिह्न हैं। शुक्लपक्ष में इनका त्याग करे तथा तिथि-राहु की सम्मुख दृष्टि का भी त्याग करे।१०-१२।

पूर्वाश्च दक्षिणास्तिस्रो रेखा वै मूलभेदके ।
सूर्यराश्यादि संलिख्य दृष्टौ हानिर्जयोऽन्यथा ॥१३
[3]विष्टिराहुं प्रवक्ष्यामि अष्टौ रेखास्तु पातयेत् ।
शिवाद्यमं यमाद्वायुं वायोरिन्द्रं ततोऽम्बुपम् ॥१४
नैर्ऋताच्च नयेच्चन्द्रं चन्द्रादग्निं ततो जले ।
जलादीशे चरेद्राहुर्विष्ट्या[4] सह महाबलः ॥१५
ऐशान्यां च तृतीयादौ सप्तम्यादौ च [5]याम्यके ।
एवं [6]कृष्णे सिते पक्षे वायौ राहुश्च हन्त्यरीन् ॥१६
इन्द्रादीन्भैरवादींश्च ब्रह्माण्यादीन्ग्रहादिकान् ।
अष्टाष्टकं च पूर्वादौ याम्यादौ वातयोगिनीम् ॥१७
यां दिशं वहते वायुस्तत्रस्थो घातयेदरीन् ॥१७½

---

१ शुक्ले.........पूर्वतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ ख. ग. °जेद्ध्वज° । ३ क. ख. ङ. दृष्टिराहुं । ४ क. ङ. °विध्या स° । ५ क. ङ. °यामके । ६ क. ङ. कृष्णशते ज्याप्ये वा° ।

अब मैं विष्टि राहु का वर्णन करूँगा। आठ रेखाओं को खींचकर राहु की स्थिति का ज्ञान इस प्रकार करना चाहिए। विष्टि राहु पूर्वोत्तर से दक्षिण की ओर, दक्षिण से पश्चिमोत्तर की ओर, पश्चिमोत्तर से पूर्व की ओर, पूर्व से दक्षिण-पश्चिम होता हुआ उत्तर की ओर जाता है। उत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर और वहाँ से पश्चिम की ओर होता हुआ पूर्वोत्तर की ओर जाता है। महाबली राहु विष्टि के साथ उपर्युक्त रीति से तृतीया के दिन पूर्वोत्तर दिशा में स्थित हो जाता है। सप्तमी को दक्षिण-दिशा में चला जाता है। इस प्रकार शुक्ल और कृष्ण पक्षों में राहु वायव्य कोण में अपने शत्रुओं का वध करता है। इन्द्रादि, भैरवादि, ब्रह्म आदि और ग्रहादि को पूर्व इत्यादि दिशाओं में तथा वातयोगिनी को दक्षिण आदि दिशाओं में और जिस दिशा में वायु चलती है, उधर यह शत्रुओं का वध करता है।१३-१७½।

दृढ़ीकरणमाख्यास्ये [1]कण्ठे बाह्वादिधारिता ॥१८
पुष्पोद्धता काण्डलक्ष्यं[2] वारयेच्छरपुङ्खिका।
तथाऽपराजितापाठाद्द्वाभ्यां खड्गं निवारयेत् ॥१९
ॐ नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ओम् [3]अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध, दक्षिणां दिशि बन्ध बन्ध, ओमुत्तरां दिशि बन्ध बन्ध, पश्चिमां दिशि बन्ध बन्ध [4](नागान्बन्ध बन्ध नागपत्नीर्बन्ध बन्ध, ओमसुरान्बन्ध बन्ध, ॐ) यक्ष-राक्षसपिशाचान्बन्ध बन्ध,ॐप्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ओमूर्ध्वं रक्ष रक्ष, अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले घटि घटि, ॐ मोटि मोटि सटावलिवज्राग्निवज्रप्राकारे हुं फट्, ह्रीं ह्रूं श्रीं फट्, ह्रीं हः, फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीमशेषेभ्यो रक्ष रक्ष ॥२०
ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥२१

---

१ क. ङ. कण्ठवाह्वादिवारिवा। पु॰। २ क. ङ. लक्षधारयेच्छरपुंषिका त॰। ३ ग. च. अहे। ४ 'नागान्बन्ध .... ओमसुरान्बन्ध बन्ध ॐ' क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

अब मैं दृढ़ीकरण का वर्णन करूँगा। इस यन्त्र को कण्ठ अथवा बाहु के ऊपर धारण करना चाहिए। पुष्य नक्षत्र में कण्डूलाक्ष्य को कुचलकर अपराजिता मन्त्र पढ़ने से खड्ग की शक्ति क्षीण हो जाती है। अपराजिता मन्त्र यह है :—'ॐ नमो भगवति वज्र-शृंखले.........ह्रीमशेषेभ्यो रक्ष रक्ष' इस मन्त्र का विनियोग ग्रहज्वरादि सभी कर्मों में करना चाहिए।१८-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्त्रौषधादिवर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१४२

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा

ईश्वर उवाच—

कुब्जिकाक्रमपूजां च वक्ष्ये सर्वार्थसाधनीम्।
ययाऽसुरा जिता देवैः शस्त्राद्यै राज्यसंयुतैः।।१

ईश्वर बोले—अब मैं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली कन्या की क्रम-पूजा का वर्णन करूँगा, जिसके प्रभाव से देवताओं ने आज्य लगे हुए शस्त्रास्त्रों द्वारा असुरों को जीत लिया था।१

मायावीजं च गुह्याङ्गे षट्कमस्त्रं करे न्यसेत्।
काली [1]कालीति हृदयं दुष्टचाण्डालिका शिरः।।२
ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः शिखा।
भेलखी कवचं दूतीनेत्राख्या रक्तचण्डिका।।३
ततो गुह्यकुब्जिकास्त्रं मण्डले स्थानके यजेत्।
[2]अग्नौ कूर्चशिरो रुद्रे नैर्ऋत्येऽथ शिखाऽनिले।।४
कवचं मध्यतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु च मण्डले।
[3]द्वात्रिंशता कर्णिकायां स्त्रों हसक्षमलनववषट्सचात्म-
मन्त्रवीजकम्।।५

---

१ ख. ग. 'ति क्रुद्भूतीदु°। २ क. ङ. °ग्नौ कृत्वा शि°। ३ क. ख. ग. ङ. °त्रिशार्णकि°।

साधक को माया-बीज मन्त्र से गुप्ताङ्गों का न्यास, छह अस्त्रमन्त्रों से करन्यास, 'काली-काली' शब्दोच्चारण से हृदयन्यास, 'दुष्टचाण्डालिका' शब्दोच्चारण से मस्तकन्यास करना चाहिए। 'ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः'—इस मन्त्र से शिखा का न्यास करना चाहिए। भेलखी देवी को कवच समझना चाहिए। रक्तचण्डिका तथा दूती देवी का ध्यान आँख की पुतली के ऊपर करना चाहिए। तदनन्तर गुह्यकुब्जिकास्त्र नामक मन्त्र से मण्डल स्थल में पूजा करनी चाहिए। फिर दक्षिण-पूर्व, पूर्वोत्तर तथा दक्षिण पश्चिम कोण में कूर्चशिर मन्त्र का और पश्चिमोत्तर कोण में शिखा मन्त्र का पूजन करना चाहिए। मण्डल के बीच में कवच मन्त्र और दिशाओं में नेत्रास्त्र मन्त्र से पूजन करना चाहिए। बत्तीस पत्तों से युक्त कमल के ऊपर ह स क्ष म ल न व वषट् स च अक्षरों से युक्त आत्मबीज मन्त्र की पूजा करनी चाहिए।२-५।

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डिकेन्द्रकात् ॥६
[1]यजेद्रवलकसहाञ्शिवेन्द्राग्नियमेऽग्निपे।
जले तु कुसुममालामद्रिकाणां च पञ्चकम् ॥७
जालंधरं पूर्णगिरिं कामरूपं क्रमाद्यजेत् ॥७½

तत्पश्चात् पूर्व दिशा में ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका की पूजा करके पूर्वोत्तर कोण, पूर्व दिशा, दक्षिणपूर्व कोण तथा दक्षिण-दिशा में कुसुममाला देवी तथा जालंधर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि पाँच पर्वतों की पूजा करनी चाहिए।६-७½।

[2](मरुदीशाग्निनैर्ऋत्ये मध्ये वै वज्रकुब्जिकाम् ॥८
अनादि विमलः पूज्यः[3] सर्वज्ञविमलस्ततः।
[4]प्रसिद्धविमलश्चाथ संयोगविमलस्ततः ॥९
समयाख्योऽथ विमल एतद्विमलपञ्चकम्।९½

तदनन्तर पश्चिमोत्तर कोण, पूर्वोत्तर कोण, दक्षिणपूर्व कोण, दक्षिण पश्चिम कोण तथा मध्य में वज्रकुब्जिका की पूजा करके अनादिविमल, सर्वज्ञ-

१ यजेद्रवल······पञ्चकम् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। २ मरुदीशान······गणपं यजेत् ङ. पुस्तके नास्ति। ३ ख. ग. पृष्टः। ४ प्रसिद्ध······ततः क. च. पुस्तकयोर्नास्ति।

विमल, प्रसिद्धविमल, संयोगविमल और समयविमल इन पाँच विमलों की पूजा करनी चाहिए।८-९३।

मरुदीशाननैर्ऋत्ये वह्नौ चोत्तरशृङ्गके ॥१०
कुब्जार्थं खिङ्खिनी षष्ठी[1] सोपन्ना सुस्थिरा तथा।
रत्नसुन्दरी चैशाने शृङ्गे चाऽऽष्टादिनाथकाः॥११

तत्पश्चात् पश्चिमोत्तर कोण, पूर्वोत्तरकोण, दक्षिण पश्चिम कोण, दक्षिण-पूर्व कोण तथा मण्डल के उत्तरीय भाग में कुब्जा, खिङ्खिनी, षष्ठी, सोपन्ना, सुस्थिरा, रत्न-सुन्दरी की पूजा करके पूर्वोत्तर कोण में आठ आदिनाथों की पूजा करनी चाहिए।१०-११।

मित्र[2] औडीशषष्ठ्याख्यौ वर्षा अग्न्यम्बुपेऽनिले।
भवेद्गगनरत्नं स्याच्चाऽऽप्ये कवचरत्नकम् ॥१२
[3]ब्रुं मर्त्यः पञ्चनामाख्यो मरुदीशानवह्निगः[4]।
याम्याग्नेये पञ्चरत्नं ज्येष्ठा रौद्री तथाऽन्तिका॥१३
तिस्रो ह्यासां महावृद्धाः पञ्चप्रणवतोऽखिलाः।
सप्तविंशत्यष्टाविंशभेदात्संपूजनं द्विधा॥१४
ॐ एं गूं [5]क्रमगणपतिं प्रणवं बटुकं यजेत्।
चतुरस्रे मण्डले च दक्षिणे गणपं यजेत्॥)१५

तदनन्तर दक्षिण-पूर्व कोण, पश्चिमोत्तर कोण और पश्चिम दिशा में मित्र, औडीश, षष्ठी तथा वर्षा की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर पश्चिम दिशा में गगनरत्न तथा कवचरत्न की पूजा करनी चाहिए। उसके बाद मनुष्य को पश्चिमोत्तर, पूर्वोत्तर और दक्षिण-पूर्व कोणों में 'ब्रुं' अक्षर तथा पञ्चजन की पूजा करके दक्षिण-दिशा और दक्षिणपूर्व कोण में पञ्चरत्न, ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका की पूजा करनी चाहिए। इन देवियों के साथ प्रणवसहित पाँच महावृद्धों की भी पूजा करनी चाहिए। सत्ताईस और अट्ठाईस के भेद से पूजन दो प्रकार का होता है। 'ॐ एं गूं' इस मन्त्र से गणपति, प्रणव तथा बटुक की पूजा करनी चाहिए। फिर दक्षिण दिशा में चोकोर मण्डर के ऊपर गणेश की पूजा करनी चाहिए।१२-१५।

---

१ ख. ग. घ. पृष्ठा। २ ग. °त्रतुद्रीश°। ३ ख. ग. त्रूं। ४ ख. ग. °ह्निगम्। °या°। ५ च. हूं।

वामे च बटुकं कोणे गुरून् षोडशनाथकान् ।
वायव्यादौ चाष्ट (ष्टा) दश [1]प्रतिषट्कोणके ततः ।।१६
ब्रह्माद्याश्चाष्ट परितस्तन्मध्ये च नवात्मकः ।
कुब्जिका कुलटा[2] चैव क्रमपूजा तु सर्वदा ।।१७

वाम भाग में बटुक और कोण में गुरु तथा सोलह नाथों की पूजा करनी चाहिए । तत्पश्चात् पश्चिमोत्तर आदि दिशाओं में प्रत्येक छठे कोण में अठारह गुरुओं की पूजा करके मण्डल के बाहरी आठ कोष्ठों में ब्रह्मा आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिए । कुब्जिका तथा कुलटा देवी की पूजा सदैव कर लेनी चाहिए ।१६-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुब्जिकापूजाकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४३

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा

ईश्वर उवाच—

श्रीमतीं कुब्जिकां वक्ष्ये धर्मार्थादिजयप्रदाम् ।
पूजयेन्मूलमन्त्रेण परिवारयुतेन वा ।।१
ओम्, ऐं ह्रौं श्रीं खैं ह्रें हसक्षमलचवयं भगवति, अम्बिके ह्रां ह्रीं क्षीं क्षौं क्ष्रूं क्रीं कुब्जिके ह्राम, ॐ ङञ न ण मेऽघोरमुखि व्रां छ्रां छीं किलि किलि क्षौं विच्चे ख्यों श्रीं क्रोम्, ओं ह्रोम् ऐं वज्रकुब्जिनि स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणि [3]ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि, ऐं ह्रीं क्षौम्, ऐं ह्रीं श्रीं फें क्षौं नमो भगवति क्ष्रौं कुब्जिके ह्रों ह्रों क्रैं ङञ णनमेऽघोरमुखि छ्रां छां विच्चे, ॐ किलि किलि ।।२

ईश्वर बोले—अब मैं धर्म, अर्थ तथा विजय प्रदान करने वाली श्रीसम्पन्न कुब्जिका देवी की पूजा का वर्णन करूँगा । पूजा मूल-मन्त्र से या (उसके) परिवार के मन्त्रों से करनी चाहिए । "ओम् ऐं ह्रौं श्रीं खैं ह्रें ....ॐ किलि किलि" यह (मूल) मन्त्र है ।१-२।

---

१ क. ङ. °तिपक्षोंऽशके । २ क. ङ. कुटिलास्फोकं क्र° । ३ क. ङ. °क्यहर्षि° ।

कृत्वा कराङ्गन्यासं च सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री सन्ध्यात्रयमनुक्रमात् ॥३
कुलवागीशि विद्महे । महाकालीति धीमहि ।
तन्नः कौली प्रचोदयात् ॥४

करन्यास तथा अङ्गन्यास करके क्रमशः वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री नामक तीन प्रकार की सन्ध्योपासना करनी चाहिए। इस सन्ध्या का गायत्री मन्त्र इस प्रकार है :—

कुलवागीशि विद्महे, महाकालीति धीमहि । तन्नः कौली प्रचोदयात् ।३-४।

मन्त्राः पञ्च प्रणवाद्याः पादुकां पूजयामि च ।
मध्ये नाम चतुर्थ्यन्तं द्विनवात्मकबीजकाः ॥५
नमोन्ता [1]वाऽथ षष्ट्या तु सर्वे ज्ञेया वदामि तान् ।
कौलीशनाथः सुकला जन्मतः कुब्जिका ततः ॥६
श्रीकण्ठनाथः कौलेशो गगनानन्दनाथकः ।
चटुला देवी मैत्रीशी कराली[2] तूर्णनाथकः ॥७
[3]अतलदेवी श्रीचन्द्रा देवीत्यन्तास्ततस्त्विमे[4] ।
[5]भगात्मपुंगणदेवमोहिनीं पादुकां यजेत् ॥८
अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां यजेत् ।
ब्रह्मज्ञानाऽथ कमला परमा विद्यया सह ॥९

प्रस्तुत पूजा में प्रणव आदि मन्त्रों की संख्या पाँच है। 'मैं पादुका की पूजा करूँगा' यह कहकर आदरपूर्वक पूजा का उपक्रम करे। पादुकाओं की पूजा पीठ के मध्य में करनी चाहिए। उनके नामों के अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में 'नमस्' शब्द से युक्त ग्यारह बीजमन्त्रों से सबकी पूजा करनी चाहिए। पादुकाओं के नाम ये हैं—कौलीशनाथ, सुकला, कुब्जिका, श्रीकण्ठनाथ, कौलेश, गगनानन्दनाथक, चटुला, देवी, मैत्रीशी, कराली, तूर्णनाथक, अतलदेवी, श्रीचन्द्रा, अत्यन्ता, भगा, आत्मपुंगण, देवमोहिनी, अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्या, ब्रह्मज्ञाना, कमला और परम विद्या ।५-९।

---

१ क. ङ. °वाक्कायवान्ता स° । २ क. ङ. दुष्टनाथकः । ३ ख. अतुलादेवि-श्रीचन्द्रे दे° । ४ ख. ग. °मे । गर्ताच्चायुक्करणं दे° । ५ क. ङ. °गार्था मुकपांदेवग्रहणी पा° ।

विद्या[1] देवी गुरुशुद्धिस्त्रिशुद्धिं प्रवदामि ते ।
गगनश्चटुली चाऽऽत्मा पद्मानन्दो मणिः कला॥१०
[2]कमलो माणिक्यकण्ठो गगनः कुमुदस्ततः ।
श्रीपद्मो भैरवानन्दो देवः कमल इत्यतः ॥११
शिवो भवोऽथ कृष्णश्च नवसिद्धाश्च षोडश ।
[3]चन्द्रपूरोऽथ गुल्मश्च शुभः कामोऽतिमुक्तकः[4] ॥१२
[5]कण्ठो वीरः प्रयोगोऽथ [6]कुशलो देवभोगकः ।
विश्वदेवः [7]खड्गदेवो रुद्रो धाताऽसिरेव च ॥१३
मुद्रास्फोटो वंशपूरो भोजः षोडश सिद्धकाः ।
[8]समयान्यस्तु देहस्तु षोढान्यासेन यन्त्रितः ॥१४
प्रक्षिप्य मण्डले पुष्पं मण्डलान्यथ पूजयेत् ।
अनन्तं च [9]महान्तं च सर्वदा शिवपादुकाम् ॥१५
महाव्याप्तिं च शून्यं च पञ्चतत्त्वात्ममण्डलम् ॥१५½

अब मैं तीन प्रकार की शुद्धियों—विद्याशुद्धि, देवीशुद्धि, गुरुशुद्धि—का वर्णन करता हूँ । छह प्रकार के न्यास के द्वारा साधक अपने हृदय में गगन, चटुली, आत्मा, पद्मानन्द, मणिकला, कमल, माणिक्यकण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद्म, भैरवानन्द, देव, कमल, शिव, भव तथा कृष्ण नामक देवताओं और चन्द्रपूर, गुल्म, शुभ, काम, अतिमुक्तक, कण्ठ, वीर, प्रयोग, कुशल, देवभोगक, विश्वदेव, खड्गदेव, रुद्र, धाता, असि, मुद्रा-स्फोट, वंशपूर, भोज और समयान्य नामक सिद्धों की स्थापना करे । तदनन्तर मण्डल के ऊपर पुष्पों को चढ़ाकर उसकी पूजा कर लेने के पश्चात् अनन्त तथा महान् नामक शिवपादुका, महाव्याप्ति, शून्य और पञ्चतत्त्व नामक आत्ममण्डल की पूजा करनी चाहिए ।१०-१५½।

श्रीकण्ठनाथपादुकां शंकरानन्तकौ[10] यजेत् ॥१६
सदाशिवः पिङ्गलश्च भृग्वानन्दश्च नाथकः ।
लाङ्गूलानन्दसंवर्तौ [11]मण्डलस्थानके यजेत् ॥१७

१ क. ङ. गुरुं सिद्धि॰ । २ क. ङ. ॰मलो माणिक्यकण्ठा गगनं कुमुदेस्त॰ । ३ क. ङ. ॰न्द्र प्रभोऽथ । ४ क. ख. ग. ङ. ॰मोऽथ मु॰ । ५ क. ख. ग. ङ. वटो । ६ क. ङ. भोगदायकः । ७ ख. ग. ॰ड्गदो वा रु॰ । ८ क ङ. ॰मजात्यस्तु । ९ क. ङ. महोत्साऽथ सर्वथा शिवपादुकाः । म॰ । १० क. ख. ग. ङ. ॰न्तको य॰ । ११ क. ख. ङ. च. ॰ण्डले स्था॰ ।

नैर्ऋत्ये श्रीमहाकालः पिनाकी च महेन्द्रकः ।
खड्गो भुजङ्गो बाणश्च अघासिः शब्दको वशः ॥१८
आज्ञारूपो नन्दरूपो वलिं दत्त्वा क्रमं यजेत् ॥१९
ह्रीं खं खं हूं सौं वटुकाय, अरु अरु, अर्घं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं वलिं पूजां गृह्ण गृह्ण नमस्तुभ्यम्[1] ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं क्षें क्षेत्रपालायावतरावतर महाकपिलजटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख, एह्येहि गन्धपुष्पवलिपूजां गृह्ण गृह्ण खः खः, ॐ कः, ॐ लः, ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा ॥२०

फिर श्रीकण्ठनाथ की शंकर और अनन्त नामक पादुकाओं का पूजन करके मण्डल-स्थान में सदाशिव, पिङ्गल, भृग्वानन्द, नाथक, लाङ्गूलानन्द और संवर्त की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् दक्षिण-पश्चिम में श्री महाकाल, पिनाकी, महेन्द्रक, खड्ग, भुजङ्ग, बाण, अघासि, शब्दक, वश, आज्ञारूप तथा नन्दरूप को एक मन्त्र से वलि देकर क्रमशः उनका पूजन करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है—'ह्रीं खं खं हूं..........ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा ।१९-२०।

वलिशेषेऽथ यजेद्ध्रीं ह्रूं ह्रां श्रीं वै त्रिकूटकम् ।
वामे च दक्षिणे ह्यग्रे याम्ये निशानाथपादुकाः ॥२१
([2] दक्षे तमोरिनाथस्य[3] ह्यग्रे कालाननस्य च ।
उड्डियाणं जालंधरं पूर्णं वै कामरूपकम् ॥२२
गगनानन्ददेवं[4] च स्वर्गानन्दं सवर्गकम् ।
[5]परमानन्ददेवं च सत्यानन्दस्य पादुकाम्) ॥२३
नागानन्दं च वर्गाख्यमुक्तं ते रत्नपञ्चकम् ।
सौम्ये शिवे यजेत्षट्कं सुरनाथस्य पादुकाम् ॥२४
श्रीमत्समयकोटीशं विद्याकोटीश्वरं यजेत् ।
कोटीशं विन्दुकोटीशं सिद्धकोटीश्वरं तथा ॥२५

---

१ ख. ग. ॐ ह्रूं ह्रीं ह्रैं क्षैं क्षे°। २ दक्षे..........पादुकाम् पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. °स्य अग्ने का°। ४ क. ङ. च मर्त्यनिन्दस्य पादुकाम्। ५ परमानन्ददेवं.........पादुकाम्। क. ग. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

सिद्धचतुष्कमाग्नेय्याममरीशेश्वरं[१] यजेत् ।
[२]चक्रीशनाथं कुरङ्गेशं वृत्रेशं चन्द्रनाथकम् ।।२६

बलि समर्पण के पश्चात् 'ह्रीं ह्रूं ह्रां श्रीं वै' इस त्रिकूट मन्त्र का पूजन करके साधक अपने बांयें तथा दाहिने हाथ में, सामने और दक्षिण दिशा में निशानाथ की पादुकाओं का पूजन करे। तदनन्तर दक्षिण भाग में तमोऽरिनाथ (सूर्य) और सामने कालानल की पूजा करनी चाहिए। फिर उड्डियाण, जालंधर, पूर्ण, कामरूपक, गगनानन्ददेव, वर्गसहित, स्वर्गानन्द, परमानन्ददेव, सत्यानन्द की पादुका, नागानन्द और वर्ग नामक रत्नपञ्चक की पूजा करनी चाहिए। उत्तर दिशा तथा पूर्वोत्तरकोण में छह सुरनाथों की पादुका, श्रीमत्सकोटीश तथा विद्याकोटीश्वर की पूजा करनी चाहिए। यही चार सिद्ध कहलाते हैं। तदनन्तर सुगन्धित पदार्थ इत्यादि से चक्रीशनाथ, कुरङ्गेश, वृत्रेश तथा चन्द्रनाथ की पूजा करनी चाहिए ।२१-२६।

यजेद्गन्धादिभिश्चैतान्याम्ये विमलपञ्चकम् ।
यजेदनादिविमलं सर्वज्ञविमलं ततः ।।२७
यजेद्योगीशविमलं सिद्धाख्यं समयाख्यकम् ।
नैर्ऋत्ये[३] चतुरो[४] देवान्यजेत्कन्दर्पनाथकम् ।।२८
[५]पूर्वां शक्तीश्च सर्वांश्च कुब्जिकापादुकां यजेत् ।
नवात्मकेन मन्त्रेण पञ्चप्रणवकेन वा ।।२९
[६]सहस्राक्षमनवद्यं विष्णुं शिवं सदा यजेत् ।२९½

उसके बाद दक्षिण-दिशा में अनादि-विमल, सर्वज्ञविमल, योगीशविमल, सिद्धविमल, समय-विमल—इन पाँच विमलों की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् दक्षिण-पश्चिम कोण में कन्दर्पनाथ, पूर्वशक्ति, सर्वशक्ति तथा कुब्जिका-पादुका—इन चार देवताओं की पूजा करनी चाहिए। नवात्मक मन्त्र या पञ्च-प्रणवक मन्त्र से इन्द्र, निष्कलुष विष्णु तथा शिव की पूजा करनी चाहिए। २७-२९½।

पूर्वाच्छिवान्तं ब्रह्मादि ब्रह्माणी च महेश्वरी ।।३०
कौमारी वैष्णवी चैव वाराही शक्रशक्तिका ।

---

१ ग. शेखरं° । २ चक्रीशनाथं... चन्द्रनाथकम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।
३ क. ङ. °त्ये च यजेद्देवा° । ४ ख. °रो वेदान्य° । ५ क. पूर्वान्सिशक्तीन्सर्वा° । ६ क. ख. ग. ङ. °हक्षमलरलयं वि° ।

चामुण्डा च महालक्ष्मीः पूर्वादीशान्तमर्चयेत्[1] ॥३१
डाकिनी राकिनी पूज्या लाकिनी काकिनी तथा ।
शाकिनी याकिनी पूज्या वायव्यादुग्रषट्सु च ॥३२
यजेद्ध्यात्वा ततो देवीं द्वात्रिंशद्वर्णकात्म (त्मि) काम् ।
पञ्चप्रणवकेनापि[2] ह्लींकारेणाथ वा यजेत् ॥३३

फिर पूर्व दिशा से पूर्वोत्तर कोण तक ब्रह्मा, ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, शक्रशक्तिका, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी की पूजा करके पश्चिमोत्तर कोण से लेकर (मण्डल के) छह कोणों तक डाकिनी, राकिनी, पूज्या, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर बत्तीस वर्णों वाली देवी का ध्यान करके पञ्चप्रणव मन्त्र से या ह्लीं-कार मन्त्र से उनकी पूजा करनी चाहिए।३०-३३।

नीलोत्पलदलश्यामा षड्वक्त्रा षट्प्रकारिका[3] ।
चिच्छक्तिरष्टादशाख्या बाहुद्वादशसंयुता ॥३४
सिंहासनसुखासीना प्रेतपद्मोपरि स्थिता ।
कुलकोटिसहस्राढ्या[4] कर्कोटो मेखलास्थितः ॥३५
तक्षकेणोपरिष्टाच्च गले हारश्च वासुकिः ।
कुलिकः कर्णयोर्यस्याः कूर्मः कुण्डलमण्डलः ॥३६
[5]भ्रुवोः पद्मो महापद्मो वामे नागः कपालकः ।
अक्षसूत्रं च खट्वाङ्गं शङ्खं पुस्तं च दक्षिणे ॥३७
त्रिशूलं दर्पणं खड्गं रत्नमालाऽङ्कुशं धनुः ।
श्वेतमूर्ध्वं मुखं देव्या ऊर्ध्वश्वेतं तथाऽपरम् ॥३८
पूर्वास्यं [6]पाण्डरं क्रोधि दक्षिणं कृष्णवर्णकम् ।
हिमकुन्देन्दुभं सौम्यं ब्रह्मा पादतले स्थितः ॥३९
विष्णुस्तु जघने रुद्रो हृदि कण्ठे तथेश्वरः ।
सदाशिवो ललाटे स्याच्छिवस्तस्योर्ध्वतः स्थितः ॥४०
आघूर्णिका कुब्जिकैवं ध्येया पूजादिकर्मसु ॥४१

---

१ क. ङ. °दीशां तु अ° । २ ख. ग. °पि क्षीं का° । ३ क. ङ. °काशका । ग. °काशिका । ४ क. ङ. °स्राख्या क° । ख. ग. च. °स्राद्या क° । ५ क. ङ. तरोः । ख. ग. भ्रुवः । च. तयोः । ६ क. ङ. पाण्डुरं ।

पूजन करते समय कुब्जिका देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उनका वर्ण नीलकमल के समान श्याम है। उनके छह मुख, छह प्रकारिकायें, अट्ठारह चिच्छक्तियाँ और बारह भुजायें हैं। वे सिंहासन पर सुखपूर्वक प्रेत-पद्म लगाकर बैठी हुई हैं। वे सहस्र करोड़ कुल से सम्पन्न हैं। उनकी मेखला में कर्कोट (साँप) बँधा हुआ है, ऊपर से तक्षक पड़ा हुआ है। गले में वासुकि सर्प का हार है। कानों में कुलिक साँप हैं। कूर्म का कुण्डल बना हुआ है। भौंहों पर पद्म तथा महापद्म साँप बैठे हुए हैं। बांयें हाथ में कपालक नाग, अक्ष-सूत्र, अस्थिपञ्जर, शङ्ख तथा पुस्त (शिल्प आदि बताने वाला ग्रन्थ) और दायें हाथ में त्रिशूल, दर्पण, खड्ग, रत्नमाला, अंकुश तथा धनुष लिये हुए हैं। पूर्व दिशा का मुख श्वेत और क्रोध से युक्त है। दक्षिण दिशा का मुख काले रंग का है और उत्तर दिशा की ओर का मुख हिम, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण का है। ब्रह्मा उनके चरणों के नीचे, विष्णु जघनस्थल में, रुद्र हृदय में, ईश्वर कण्ठ में, सदाशिव मस्तक में और शिव उनके ऊपर (शिर में) रहते हैं। पूजा इत्यादि कर्मों में आघूर्णिका (घूमने वाली) कुब्जिका देवी (कन्या) का ध्यान इसी रूप में करना चाहिए।३४-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कुब्जिकापूजाकथनं नाम
चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४४

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मालिनीमन्त्राः

ईश्वर उवाच—

नानामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि षोढान्यासपुरःसरम् ।
न्यासस्त्रिधा तु षोढा स्युः शाक्तशांभवयामलाः ।।१
शांभवे शब्दराशिः षट्षोडशग्रन्थिरूपवान् ।
([1]त्रिविद्या तद्ग्रहो न्यासस्त्रितत्वात्माभिधानकः ।।२

१ त्रिविद्या.......... ..रूपवान् नास्ति ग. पुस्तके ।

ईश्वर बोले—अब मैं षोडशन्यासपूर्वक नाना प्रकार के मन्त्रों का वर्णन करूँगा। शाक्त, शाम्भव और यामल मन्त्रों का तीन प्रकार का न्यास होता है। शाम्भव षोडशन्यास में सोलह ग्रन्थियों से शब्दराशि समन्वित रहती है। तीन विद्यायें होती हैं, इसलिए उसका न्यास भी त्रितत्त्वात्मक कहा गया है।१-२।

[1]चतुर्थीं वनमालाया: श्लोक द्वादश रूपवान्)।
([2]पञ्चमो रत्नपञ्चात्मा नवात्मा षष्ठ[3] ईरित: ।।३
शाक्ते पक्षे च मालिन्यास्त्रिविद्यात्मा द्वितीयक:[4]।
अघोर्यष्टकरूपोऽन्यो द्वादशाङ्गश्चतुर्थक: ।।४
पञ्चमस्तु षडङ्ग: स्याच्छक्तिश्चान्याऽस्त्रचण्डिका।)
क्लीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रूं फट् त्रयं स्यात्तूर्याख्यं सर्वसाधकम् ।।५

वनमाला रूप चतुर्थी पूजा में बारह श्लोक होते हैं तथा पाँचवी और छठी पूजाएँ पञ्चरत्नात्मक और नवात्मक कही गई हैं। शाक्त-पूजन में न्यास त्रिविद्यात्मक होता है, किन्तु दूसरे शाम्भव पूजन में अघोर्यष्टक नामक शिव के आठ उपाधियों का न्यास हृदय, ग्रीवा, पार्श्व, कक्ष, वक्ष:स्थल और पृष्ठ पर करना चाहिए। चतुर्थन्यास द्वादशाङ्ग और पाँच वा षडङ्ग होता है। 'क्लीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रूं फट्' यह मन्त्र सर्वसाधक होता है।३-५।

मालिन्या [5]नादिफान्तं स्यान्नादिनी च शिखा स्मृता[6]।
अग्रसनी शिरसि स्याच्छिरोमालानिवृत्ति: श: ।।६
ट शान्तिश्च शिरो भूयाच्चामुण्डा च त्रिनेत्रगा।
ढ [7]प्रियदृष्टिर्द्विनेत्रे च नासागा गुह्यशक्तिनी ।।७

न से फ पर्यन्त अक्षरमालिनी मन्त्र में होते हैं। नादिनी को शिखा कहा गया है, जबकि शिर के ऊपर रहने वाली अक्षरमाला श वर्ण से समाप्त होती है। न्यास इस प्रकार करना चाहिए—शान्ति का प्रतीक 'ट' मेरे शिर पर स्थित हो और चामुण्डा मेरे तीनों नेत्रों के ऊपर, प्रिय दृष्टि 'ढ' दोनों नेत्रों में और गुह्यशक्तिनी नासिका पर निवास करे।६-७।

---

१ क. ख. ङ. च. °तुर्थो व°। २ पञ्चमो.......त्नान्याऽस्त्रचण्डिका पुस्तके नास्ति। ३ क. ङ. °ष्ठ्याऽन्वित:। ४ क. ङ. °क:। आद्याघ्याष्ट°। ५ ख. नाटिकान्तं। ६ क. ङ. °ता। षड्रत्नाशि°। ७ ख. ग. घ:।

न नारायणी द्विकर्णे च दक्षकर्णे[1] त मोहिनी ।
ज प्रज्ञा[2] वामकर्णस्था वक्त्रे च वज्रिणी स्मृता ॥८
क कराली[3] दक्षदंष्ट्रा[4] वामांसा ख कपालिनी[5] ।
ग शिवा ऊर्ध्वदंष्ट्रा स्याद् घ घोरा वामदंष्ट्रिका ॥९
उ शिखा दन्तविन्यासा[6] ई माया जिह्वया स्मृता[7] ।
अ स्यान्नागेश्वरी वाचि व कण्ठे शिखिवाहिनी ॥१०

नारायणी देवी का प्रतीक 'न' दोनों कानों में तथा मोहिनी का प्रतीक 'त' मेरे दक्षिण कर्ण में रहे । प्रज्ञा का प्रतीक 'ज' वामकर्ण में तथा वज्रिणी का प्रतीक 'च' मुख में निवास करे । कराली का प्रतीक 'क' दाहिनी दाढ़ में, घोरा का प्रतीक 'घ' बाईं दाढ़ में, शिखा का प्रतीक 'उ' दाँतों में, मात्रा का प्रतीक 'ई' जिह्वा में, नागेश्वरी का प्रतीक 'अ' वाणी में, शिखिवाहिनी का प्रतीक 'व' कण्ठ में रहता है ।८-१०।

भ भीषणी दक्षस्कन्धे वायुवेगा म वामके ।
ड नामा दक्षबाहौ तु ढ वामे च विनायका ॥११
प पूर्णिमा द्विहस्ते[8] तु ओंकाराद्यङ्गुलीयके ।
अं दर्शनी वामाङ्गुल्य (?) अः स्यात्सञ्जीवनी करे ॥१२
ट कपालिनी कपालं शूलदण्डे[9] त दीपनी ।
त्रिशूले च जयन्ती स्याद् [10]वृद्धिर्यः साधनी स्मृता ॥१३
जीवे श[11] परमाख्याद्ध प्राणे च अम्बिका स्मृता ।
दक्षस्तने छ[12] शरीरा न वामे पूतना स्तने ॥१४
अ स्तनक्षीर आ [13]मोटी लम्बोदर्युदरे च थ ।
नाभौ संहारिका क्ष स्यान्महाकाली नितम्ब[14] (?)म ॥१५

---

१ ख. °णे न मो° । २ क. ङ. °ज्ञा रासक° । ३ क. ङ. °रानी दण्डदं° । ४ क. ङ. °ष्ट्रा रामासाखादिपा° । ५ च. °नी । सशि° । ६ क. ख. ग. च. °विन्यस्या ई । ७ क. ङ. °ता । श्रास्येन्ना । ८ ख. ग. °स्ते रुंरुकारी ह्यङ्गु° । ९ °ण्डे नदी° । १० क. ङ. च. र्यः पावनी । ११ क. ङ. स । १२ क. ङ.च. छ. छ करी° । १३ ख. ग. ङ. च. मोटी । १४ च. °म्ब सः । गु° ।

भीषणी का प्रतीक 'भ' दाहिने कन्धे पर, वायुवेगा का प्रतीक 'म' बाएँ कन्धे पर, 'ड' दक्षिण बाहु पर, विनायका का प्रतीक 'ढ' बांयी भुजा पर, पूर्णिमा का प्रतीक दोनों हाथों पर, 'ॐ' अंगुलियों पर, दर्शनी का प्रतीक 'अ' बांयी अंगुली पर, संजीवनी का प्रतीक 'अः' हाथ में, कपालिनी का प्रतीक 'ट' कपाल पर, दीपिनी का प्रतीक 'हा' शूलदण्ड पर, जयन्ती का प्रतीक 'च' त्रिशूल पर और साधनी का प्रतीक 'श' जीव में, अम्बिका का प्रतीक 'ह' प्राण में, शरीरा का प्रतीक 'छ' दाहिने स्तन पर, पूतना का प्रतीक 'न' वाम स्तन पर, 'अ' स्तन के दुग्ध में और लम्बोदरी का प्रतीक 'आ' उदर में, संहारिका का प्रतीक नाभि में, महाकाली का प्रतीक नितम्ब में रहता है ।११-१५।

गुह्ये स कुसुममाला[1] ष शुक्रे शुक्रदेविका ।
उरुद्वये त तारा स्याद्द ज्ञाना दक्षजानुनि ॥१६
वामे स्यादौ क्रिया शक्तिरो गायत्री च जङ्घगा ।
ओ[2] सावित्री वामजङ्घा दक्षे दो दोहनी पदे ॥१७
फ फेत्कारी वामपादे नवात्मा मालिनी मनुः ।
अ श्रीकण्ठः शिखायां स्यादा वक्त्रे स्यादनन्तकः ॥१८
इ सूक्ष्मो दक्षनेत्रे स्यादी त्रिमूर्तिस्तु वामके ।
उ दक्षकर्णेऽमरीश ऊ कर्णेऽर्घीशकोऽपरे ॥१९

कुसुम माला का प्रतीक 'स' गुह्यस्थान में, शुक्रदेविका का प्रतीक 'त' दोनों जङ्घाओं में, ज्ञाना का प्रतीक 'द' दाहिने घुटने पर, क्रियाशक्ति का प्रतीक 'औ' बांयें घुटने पर, गायत्री का प्रतीक 'ओ' जङ्घा पर, सावित्री का प्रतीक 'ओ' बाँई जङ्घा पर, दोहनी का प्रतीक 'द' दाहिनी जंघा पर और फेत्कारी का प्रतीक 'फ' वामपाद में रहता है । अब मैं नवात्ममालिनी मन्त्रों के व्यास को बतलाऊँगा, जो इस प्रकार है—श्रीकण्ठ का प्रतीक 'अ' शिखा में, अनन्तक का प्रतीक 'आ' मुख में, सूक्ष्म 'इ' दाहिने नेत्र में, त्रिमूर्ति का प्रतीक 'ई' बांयें नेत्र में, अमरीश का प्रतीक 'उ' दाहिने कान में, अर्घीसक का प्रतीक 'ऊ' कान में रहता है ।१६-१९।

ऋ भावभूतिर्नासाग्रे वामनासा तिथीश ॠ ।
([3]ऌ स्थाणुर्दक्षगण्डे स्याद्वामगण्डे हरश्च ॡ ॥२०

---

१ क. ख. ग. ङ. °ला अ शु° । २ ख. ग. ङ. च. ओं । ३ ऌ स्थाणुर्दक्षगण्डे ....ऊर्ध्वोष्ठेऽनुग्रहीश औं क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

कटीशो दन्तपङ्क्तावे भूतीशश्चोर्ध्वदन्त ऐ।
सद्योजात ओ अधर ऊर्ध्वोष्ठेऽनुग्रहीश औ) ॥२१
अं क्रूरो [1]घाटकायां स्यादः, महासेनजिह्वया।
क क्रोधीशो दक्षस्कन्धे खश्चण्डीशश्च वाहुषु ॥२२
पञ्चान्तकः कूर्परे गो (ग) घ शिखी दक्षकङ्कणे।
ङ एकपादश्चाङ्गुल्यो[2] वामस्कन्धे च कूर्मकः ॥२३
छ एकनेत्रो वाहौ स्याच्चतुर्वक्त्रो ज कूर्परे।
([3]झ राजसः कङ्कणगो ञ[4] सर्वकामदोऽङ्गुली ॥२४

भावभूति का प्रतीक 'ऋ' नासिका के अग्र भाग पर, तिथीश 'ॠ' वाम नासिका पर, स्थाणु का प्रतीक 'लृ' दाहिने कपोल पर, हर का प्रतीक लॄ बांयें कपोल पर, कटीश 'ए' दन्तपंक्ति में, भूतीश का प्रतीक 'ऐ' 'ऊर्ध्वदन्त में, सद्यो-जात का प्रतीक 'ओ' अधर में, अनुग्रहीश का प्रतीक 'औ' ऊर्ध्व ओष्ठ में, क्रूर का प्रतीक 'अं' घटिका में, महासेन का प्रतीक 'अः' जिह्वा में, क्रोधीश 'क' दाहिने कन्धे पर, चण्डीश 'ख' बाहुओं पर, पञ्चान्तक का प्रतीक 'ग' कूर्पर में, शिखी का प्रतीक 'घ' दाहिने कन्धे पर, एक पाद 'ङ' अङ्गुलियों में, कूर्मक का प्रतीक 'च' बांये कन्धे पर, एक नेत्र का प्रतीक 'छ' बाहु में, चतुरानन का प्रतीक 'ज' कूर्पर में, राजस 'झ' कङ्कण में, सर्वकामद 'ञ' अङ्गुली में रहता है।२०-२४।

ट सोमेशो नितम्बे स्याद्दक्ष ऊरुर्ट [रौ ठ] लाङ्गली)।
ड दारुको दक्षजानौ जङ्घा ढोऽर्धजलेश्वर ॥२५
ण उमाकान्तकोऽङ्गुल्यस्त आषाढी नितम्बके।
थ दण्डी वाम ऊरौ स्याद्द भिदो वामजानु ॥२६
ध मीनो वामजङ्घायां न मेषश्चरणाङ्गुली।
प लोहितो दक्षकुक्षौ फ शिखी वामकुक्षिगः ॥२७
व गलण्डः पृष्ठवंशे भो [भ] नाभौ च द्विरण्डकः।
म महाकालो हृदये य वाणीशस्त्वविस्मृतः[5] ॥२८
र रक्ते स्याद्भुजङ्गेशो ल पिनाकी च मांसके।
व खड्गीशः स्वात्मनि स्याद्वकश्चास्थिनि शः स्मृतः ॥२९
ष श्वेतश्चैव मज्जायां स भृगुः शुक्रधातुके।

---

१ क. ङ. मुण्डिकायां। च. कण्ठिकायां। २ ख. ग. °ङ्गुले बा°। ३ झ राजसः..........लाङ्गली क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ख. ग. च. °ञ अशनं वाम°। ५ ख. ग. °स्त्वरिः स्मृ°।

प्राणे हो नकुलीशः स्यात्क्ष संवर्तश्च कोषगः ॥
रुद्रशक्तीः प्रपूज्य ह्रीं बीजेनाखिलमाप्नुयात् ॥३०

सोमेश 'ट' नितम्ब में, दक्ष का प्रतीक 'ठ' जङ्घाओं में, दारूप का प्रतीक 'ड' दाहिनी जङ्घा में, अर्वजलेश्वर 'ढ' जङ्घा में, उमाकान्तक 'ण' अङ्गुलि पर, आषाढ़ी का प्रतीक 'व' नितम्ब पर, दण्डी का प्रतीक 'थ' बांयीं ऊरू पर, भयदायक 'द' बांयें घुटने पर, मीन का प्रतीक 'ध' बांयीं जङ्घा पर, मेष का प्रतीक 'न' पैरों की अंगुलियों पर, लोहित वर्ण का 'प' दाहिनी कुक्षि पर, शिखि का प्रतीक 'फ' बांयी कुक्षि में, गलण्ड का प्रतीक 'ब' पुष्टि के ऊपर, विरन्दक का प्रतीक 'भ' नाभि में, महाकाल का प्रतीक 'म' हृदय में और 'य' वाणीश के रूप में रहता है। भुजङ्गेश का प्रतीक 'र' रक्त में, पिनाकी का प्रतीक 'ल' मांस में, खड्गीश का प्रतीक 'व' आत्मा में, वक्र का प्रतीक 'श' अस्थि में, श्वेत का प्रतीक 'ष' मज्जा में, भृगु का प्रतीक 'स' शुभ्रधातु में, नकुलीश 'ह' प्राण में और सौमवर्त का प्रतीक 'क्ष' कोष में रहा करता है। ह्रीं बीज से रुद्रशक्तियों का पूजन करके सम्पूर्ण इच्छाओं को प्राप्त किया जा सकता है।२५-३०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मालिनीमन्त्रादिन्यासविधिकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४५

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अष्टाष्टकदेव्यः

ईश्वर उवाच—
त्रिखण्डीं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरीम् ॥१

ईश्वर बोले—अब मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बद्ध त्रिखण्डी मन्त्रों का वर्णन करूँगा।१

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः। नमश्चामुण्डे नमश्चाऽऽकाश-मातृणां सर्वकामार्थसाधनीनामजरामरीणां सर्वत्राप्रतिहत-गतीनां स्वरूपरूपपरिवर्तनीनां सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनो-न्मूलनसमस्तकर्मप्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्यं हृदयं परमसिद्धं परकर्मच्छेदनं परमसिद्धिकरं मातृणां वचनं शुभम् ॥२

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः, नमश्चामुण्डे। आकाश की माताओं, सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली अजर, अमर, सर्वत्र अप्रतिहत गति वाली, सभी प्राणियों के वशीकरण का विनाश करने वाली, सभी कर्मों में प्रवृत्त मातृकाओं का सभी मातृकाओं में गुह्य, हृदयरूप परमसिद्ध दूसरे के कर्मों को नष्ट करने वाला, अत्यन्त सिद्ध को उत्पन्न करने वाला वचन शुभ माना गया है।२

ब्रह्मखण्डपदे रुद्रैरेकाविंशाधिकं शतम् ॥३
तद्यथा—ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि, [1]अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि, अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ [2]नमश्चामुण्ड ईशानि अघोरेऽमोघे वरदे विच्चे स्वाहा ॥४

ब्रह्मखण्ड पद में रूद्रों के द्वारा जपे हुए एक सौ इक्कीस अक्षर पद शुभ माने गये हैं। वे हैं—ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि..........विच्चे स्वाहा।

यथाक्षरपदानां हि विष्णुखण्डं द्वितीयकम् ॥५
[3]ॐ नमश्चामुण्ड ऊर्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे विद्युज्जिह्वे [4]तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मांसशोणितसुरासवप्रिये हस हस, ॐ नृत्य नृत्य, ॐ विजृम्भय विजृम्भय, ॐ मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्तिनीनामों बन्ध बन्ध, ॐ कुट्ट कुट्ट [5]चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि त्रासनि त्रासनि भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि क्षोभणि क्षोभणि मारणि मारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि, ॐ नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे ॥६

एकत्रिंशत्पदं शम्भोः शतमन्त्रैकसप्ततिः।
हे घौं[6] पञ्चप्रणवाद्यन्तां त्रिखण्डीं च जपेद्यजेत् ॥७

अक्षर पदों के अनुसार दूसरा विष्णु खण्ड है, जिसके मन्त्र हैं— ॐ नमश्चामुण्डे..........मातृगणाय नमो नमो विच्चे।' शम्भु के इकतीस पदों वाले एक सो इकहत्तर मन्त्र होते हैं। त्रिखण्डीमन्त्र का जाप 'हे घौं के आदि और अन्त में पाँच-पांच बार पाठ करना चाहिए।५-७।

---

१ ग. °मोघव°। २ क. ख. ग. ङ. च. ऍं। ३ क. ख. ग. च. ऍं। ४ क. ङ °काक्षः पि°। ५ क. ङ. चिरण्डि चिरण्डि हि°। ६ क. ङ. स्फ्रैं°।

हे घौं श्रीकुब्जिकाहृदयं पदसंधौ तु योजयेत् ।
अकुलादि त्रिमध्यस्थं कुलादेश्च त्रिमध्यगम् ॥८
मध्यमादि त्रिमध्यस्थं पिण्डं पादे त्रिमध्यगम्[1] ।
[2]त्रयार्धमात्रा संयुक्तं प्रणवाद्यं शिखा[3] शिवाम् ॥९
ॐक्ष्रौं शिखा भैरवाय नमः(स्खीं स्खीं स्खें स बीजत्र्यक्षरः)॥१०

इस त्रिखण्डी-मन्त्र के आदि और अन्त में 'हे घों' तथा पाँच प्रणव जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिए। 'हे घों श्रीकुब्जिकायै नमः' इस मन्त्र को त्रिखण्डी के पदों की संधियों में जोड़ना चाहिए। अकुलादि त्रिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद-त्रिमध्यग—ये चार प्रकार के मन्त्र-पिण्ड हैं। साढ़े तीन मात्राओं से युक्त प्रणव को आदि में लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा यजन करना चाहिए। तदनन्तर भैरव के शिखा-मन्त्र का जप एवं पूजन करें—ॐ क्ष्रौं शिखा भैरवाय नमः, 'स्खां स्खीं स्खें' ये तीन सबीज अक्षर हैं।८-१०।

ह्रां ह्रीं ह्रैं निर्बीजं त्र्यर्णं द्वात्रिंशद्वर्णकं परम्[1] ।
क्षादयश्च ककारान्ता अकुला च कुलक्रमात्[2] ॥११
शशिनी भानुनी चैव पावनी शिव इत्यतः ।
गान्धारी णश्च पिण्डाक्षी चपला[3] गजजिह्विका[4] ॥१२
म मृषा भयसारा स्यान्मध्यमा फोऽजराय च ।
([5]कुमारी कालरात्री न[6] संकटा द ध कालिका ॥१३
फ शिवा भव घोरा ण ट बीभत्सा त विद्युता[7] ।
उ विश्वम्भरा शंसिन्या ढ ज्वालामालया तथा) ॥१४
कराली दुर्जया[8] रङ्गी वामा ज्येष्ठा च रौद्रचपि ।
ख काली क कुलालम्बी अनुलोमा द पिण्डिनी ॥१५
आवेदिनी[9] इरुषी वै शान्तिमूर्तिः कलाकुला ।
[10](ऋ खड्गिनी[11] उ वलिता ऌ कुला ॡ तथा यदि ॥१६

---

१ क. ङ. च म् । काद° । २ च, त् । शाक्तिनी मातुनी चैव यावनी सर्वकारुतः ।
३ क.ङ. च °ला नागजि° । ४ ख. °का । मयूखमयमाख्यानमध्य° ।
५ कुमारी...ज्वालामालया तथा क ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ६ ख. च. च ।
७ ख. ग. ता । ठविशं भगशिन्याटं ढ° । ८ क. ग. नङ्गा । ९ ख. ग. च. °नी ह्रूं । १० ऋ खड्गिनी......क्षपणक्षया क. ङ पुस्तकयोर्नास्ति ।
११ ख. ° नीलवलितात्हृत्कुलानन्दयोषिते । सु° ।

सुभगा [गे] वेदनादिन्या[1] कराली, अं च मध्यमा ।
अः अपेतरयाः[2] पीठे पूज्याश्च शक्तयः क्रमात् ।।१७
स्खां[3] स्खीं स्खौं महाभैरवाय नमः ।।१८

'ह्रां ह्रीं ह्रूं' ये निर्वीज त्र्यक्षर हैं। विलोमक्रम से 'क्ष' से लेकर 'क' तक के बत्तीस अक्षरों की वर्णमाला 'अकुला' कही गयी है। अनुलोम-क्रम से गणना होने पर वह 'सकुला' कही जाती है। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिवगन्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चपला गजजिह्विका, 'म' मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ' अजरा, 'य' कुमारी 'न' कालरात्री, 'द' संकटा, 'ध' कालिका, 'फ' शिवा, 'ण' भवघोरा, 'ट' बीभत्सा, 'त' विद्युता, 'ठ' विश्वम्भरा और शंसिनी अथवा 'उ' विश्वम्भरा, 'आ' शंसिनी, 'द' ज्वालामालिनी, कराली, दुर्जया, रङ्गी, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलालम्बी, अनुलोमा, 'द' पिण्डिनी, 'आ' वेदिनी, 'इ' रूपी, 'वै' शान्तिमूर्ति एवं कलाकुला, 'ऋ' खड्गिनी, 'उ' वलिता, 'लृ' कुला, 'लृ' सुभगा, वेदनादिनी और कराली, 'अं' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया—इन शक्तियों का योगपीठ पर क्रमशः पूजन करना चाहिए। 'स्खां स्खीं स्खौं' महाभैरवाय नमः—यह भैरव के पूजन का मन्त्र है ।११-१८।

अक्षोद्या ह्यृक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणक्षया) ।
पिङ्गाक्षो चाक्षया क्षेमा ब्रह्माण्यष्टकसंस्थिताः ।।१९
इला लीलावती नीला लङ्का लङ्केश्वरी तथा ।
लालसा विमला माला माहेश्वर्यष्टके स्थिताः ।।२०
हुताशना विशालाक्षी हूंकारी वडवामुखी ।
हाहारवा तथा क्रूरा क्रोधा बाला खरानना ।।२१
कौमार्या[4] देहसम्भूताः पूजिताः सर्वसिद्धिदाः ।।२१½

(ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियों के साथ पृथक्-पृथक् आठ-आठ शक्तियाँ और हैं, जिन्हें अष्टक कहा गया है। उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है।) अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा—ये ब्रह्माणी के अष्टक-दल में स्थित होती हैं। इला, लीलावती, नीला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला और माला—ये माहेश्वरी-अष्टक में स्थित हैं। हुताशना,

---

१ ग. °दवादि° । २ ख. ग अद्यवचा पी° । ३ एतद्गद्यस्य पाठः ख. ग. च पुस्तकेषु नास्ति । ४ क. ङ. °मारीदे° ।

विशालाक्षी, ह्लूंकारी, वडवामुखी, हाहारवा, क्रूरा, क्रोधा, खरानना, बाला, ये आठ कौमारी के शरीर से प्रकट हुई हैं। इनका पूजन करने पर ये सम्पूर्ण सिद्धियाँ देने वाली हैं।१९-२१½।

सर्वज्ञा तरला[1] तारा ऋग्वेदा च हयानना ॥२२
[2]सारासारस्वयंग्राहा शाश्वती वैष्णवीकुले।
तालुजिह्वा च रक्ताक्षी विद्युज्जिह्वा करङ्किणी ॥२३
मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी कलिप्रिया।
वाराहीकुलसम्भूताः पूजनीया जयार्थिना[3] ॥२४
चम्पा चम्पावती चैव प्रचम्पा ज्वलितानना।
पिशाची पिचुवक्त्रा च लोलुपा ऐन्द्रीसम्भवाः) ॥२५
पावनी याचनी चैव वामनी दमनी तथा।
विन्दुवेला बृहत्कुक्षी विद्युता विश्वरूपिणी ॥२६
चामुण्डाकुलसम्भूता मण्डले पूजिता जये।
यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च यमान्तिका ॥२७
विडाली रेवती चैव जया च विजया तथा।
महालक्ष्मी कुले जाता अष्टाष्टकमुदाहृतम् ॥२८

सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारा, सारासारस्वयंग्राहा और शाश्वती ये वैष्णवी कुल में हैं। वाराही कुल में उत्पन्न होने वाली शक्तियाँ हैं—तालुजिह्वा, रक्ताक्षी, विद्युज्जिह्वा, करङ्किणी, मेघनाद, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी और कलिप्रिया। इनका पूजन विजयाभिलाषी के द्वारा किया जाता है। ऐन्द्री सम्भूत-शक्तियाँ हैं—चम्पा, चम्पावती, प्रचम्पा, ज्वलितानना, पिशाची, पिचुवक्त्रा और लोलुपा। चामुण्डा-कुल में सम्भूत तथा विजयकाल में मण्डल के अन्तर्गत पूज्या शक्तियाँ हैं—पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, विन्दुवेला, बृहत्कुक्षी विद्युता और विश्वरूपिणी। महालक्ष्मी के कुल में उत्पन्न शक्तियाँ हैं—यम-जिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, यमान्तिका, बिडाली, रेवती, जया और विजया। इस प्रकार शक्तियों के आठ अष्टक कहे गये हैं।२२-२८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽष्टाष्टकदेवीकथनं नाम
षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१४६

---

१ क. ङ. तबला नाभा ऋ°। २ सारासारस्वयंग्राहा.........सम्भवाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ३ ख. ज. °ना। पञ्चा पञ्चावती चैव प्रचण्डा ज्व°।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजादि

ईश्वर उवाच—

ॐगुह्यकुब्जिके हुं फट्, मम सर्वोपद्रवान्यन्त्रमन्त्रन्तन्त्रचूर्णप्रयोगादिकं[1] येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान्सर्वान्हन हन दंष्ट्राकरालिनि ह्रैं[2] ह्रीं ह्रूं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौम्, ॐ खे वों गुह्यकुब्जिकायै नमः ॥१

ईश्वर बोले—अयि दंष्ट्राकरालिनि ! जिस व्यक्ति ने मेरे लिए सभी प्रकार के उपद्रवों यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, चूर्णप्रयोगादि किया है, जिसके द्वारा करवाया गया है, जो करता है, जो करेगा या जो इन सब कर्मों को करायेगा, उन सब को मार डालिये—मार डालिए—'ॐगुह्यकुब्जिके हुं फट् ह्रैं ह्रीं ह्रूं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौम्, ॐ खें वों गुह्यकुब्जिकायै नमः ।'

ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ततः ।
ॐ खे ख्यां सर्वजनवशंकरी तथा स्याज्जनमोहिनी[3] ॥२
ॐ ख्यौं सर्वजनस्तम्भनी ऐं खं खां क्षोभणी तथा ।
ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठं कुले पञ्चाक्षरी तथा ॥३
फं श्रीं क्षीं श्रीं ह्रीं क्षें वच्छे क्षे क्षे ह्रूं फट् ह्रीं नमः ।
ॐ ह्रां क्षे वच्छे क्षे क्षो ह्रीं फट् ॥४
नवेयं त्वरिता (प्रोक्ता) पुनर्ज्ञेयार्ऽचिता जये ।
ह्रौं सिंहायेत्यासनं स्याद्ध्रीं क्षे हृदयमीरितम् ॥५

"ह्रीं सर्वजनक्षोभणी......क्षे क्षो ह्रीं फट्" ये नव (९) त्वरिता शक्तियाँ कही गयी हैं जिनका ज्ञान और अर्चन विजय-काल में होना चाहिए । 'ॐ ह्रौं सिंहाय' इस मन्त्र से आसन तथा 'ध्रीं क्षे' इत्यादि मन्त्र से हृदय का पूजन कहा गया है ।२-५।

---

१ ख. °न्त्रपूर्ण° । २ क. ङ. फे° । ३ ग. च. °मोहिनी ।

वच्छेऽथ शिरसे स्वाहा त्वरितायाः शिवः स्मृतः[१] ।
—क्षें ह्वीं शिखायै वौषट् स्याद्भवेत्क्षें कवचाय हुम् ॥६
ह्रूं नेत्रत्रयाय वौषड्ह्लींमन्तं च फडन्तकम् ।
ह्लींकारी खेचरी चण्डा छेदनी क्षोभणी क्रिया ॥७
क्षेमकारी चह्वींकारी फट्कारी नव शक्तयः ।
अथ दूतीः[२] प्रवक्ष्यामि पूज्या इन्द्रादिगाश्च ताः ८
ह्वीं नले[३] बहुतुण्डे चखगे ह्वीं खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख खे छ
च्छे शवविभीषणे च च्छे चण्डे छेदनि करालि ख खे छे खे
खरहाङ्गी ह्वीं क्षे वक्षे कपिले ह क्षे ह्रूं क्रूं तेजीवति
रौद्रि मातः ह्वीं फे बे फेफे वक्त्रे वरी फे पुटि पुटि घोरे ह्रूं
फट् ब्रह्म वेतालि मध्ये ॥९

अब मैं उन देवताओं का नाम बतला रहा हूँ जिनकी पूजा त्वरिता शक्ति के साथ मण्डल के विभिन्न कोणों पर होती है । उनके पूजन के विभिन्न मन्त्र हैं । शिखा के लिए मन्त्र है—'क्षें ह्वीं वौषट्' कवच के लिए मन्त्र हैं 'क्षे हुम्' नेत्रत्रये का मन्त्र है 'ह्रूं वौषट्' इन मन्त्रों के अन्त में 'ह्वीं और फट्' का भी प्रयोग किया जाता है । नौ शक्तियाँ हैं—ह्वींकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षोभणी, क्रिया क्षेमकारी, ह्वींकारी और फट्कारी । अब मैं त्वरिता की दूतियों का वर्णन करूँगा जो कि पूर्व इत्यादि दिशाओं में पूज्य हैं । इनके मन्त्र हैं-'ह्वीं नले वहुतुण्डे......ब्रह्मवेतालि मध्ये ।'६-९।

गुप्ताङ्गानि च तत्वानि त्वरितायाः पुनर्वदे ।
ह्वौं ह्रूं हः हृदये प्रोक्तं ह्वीं ह्वश्च शिरः स्मृतम् ॥१०
फां[४] ज्वल ज्वलेति च [४]शिखा वर्म[५] इले ह्वं हुं हुम् ।
क्रौं क्षूं श्रीं नेत्रमित्युक्तं क्षौमस्त्रं वै ततश्च फट् ।
हुं खे वच्छे क्षेः, ह्वीं क्षें हुं फट् वा ॥१२
हुं शिरश्चैवमध्ये स्यात्पूर्वादौ खे सदा शिवे ।
व ईशश्हे मनोन्मानी[५] मक्षे तार्क्षो ह्लीं च माधवः ॥
क्षें ब्रह्मा हुं तथाऽऽदित्यो दारुणं फट् स्मृताः सदा ॥१३

---

१ क. ङ. च. स्मृतम् । २ क. ङ. हन्तीः । च. आहुतीः । ख. ग. भूतिः । ३ क. ङ. ह्रीं । ४ ख. ग. धर्म । च. चर्म । ५ क. ख. ग. ङ. च. ॰नोन्मनी ।

अब मैं त्वरिता के गुह्याङ्गों और तत्त्वों का वर्णन करूँगा—'ह्रौं ह्रूं हः मन्त्र हृदय पर कहा जाता है। 'ह्रीं ह्वः' मन्त्र का प्रयोग शिर में किया जाता है। शिखा का मन्त्र है-'ह्रां ज्वल ज्वल'। कवच का मन्त्र है—'इले ह्वं हुं हुम्'। नेत्र का मन्त्र है 'क्रौं क्षूं श्रीं'। अस्त्र के मन्त्र हैं—'क्षौं फट् हुं खे वच्छे क्षेः ह्रीं क्षें हुम् फट्।' शिर और मध्य में 'हुं' पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः 'खे सदाशिवे, व ईशः, छे मनोन्मनी, मक्षे तार्क्ष्यः, ह्रीं माधवः, क्षें ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दारुणं फट्' का उल्लेख एवं पूजन करे। ये आठ दिशाओं में पूजनीय देवता बताये गये हैं।१०।१३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्वरितापूजादिविधिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१४७

———

अथाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयपूजा

ईश्वर उवाच—

([1]ॐ डे ख ख्यां सूर्याय)सङ्ग्रामविजयाय नमः। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॥१

षडङ्गानि तु सूर्यस्य सङ्ग्रामे जयदस्य हि ॥२

ॐ हं खं खशोल्काय स्वाहा।([2] स्फूं ह्रूं हुं क्रूम्, ॐ ह्रौं क्रेम् ॥३

प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।)

धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्याद्यष्टकं यजेत् ॥४

ईश्वर बोले—सङ्ग्राम में विजय प्रदान करने वाले सूर्य के छह अङ्ग हैं। उनके मन्त्र हैं—ॐ डे ख ख्यां सूर्याय सङ्ग्रामविजयाय नमः। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः। ॐ हं खं खशोल्काय स्वाहा। ॐ स्फूं ह्रूं हु क्रूम्, ॐ ह्रौं क्रेम्। प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परमसुख धर्म, ज्ञान और वैराग्य— इस ऐश्वर्याद्यष्टक का पूजन करना चाहिए।१-४।

---

१ ॐ डे ख......सूर्याय क. ख. ग. ङ च. पुस्तकेषु नास्ति। २ स्फूं ह्रूं ... ...परमं सुखम्। क. ज्ञ. पुस्तकयोर्नास्ति।

अनन्तासनं सिंहासनं पद्मासनमतः परम् ।
कर्णिका केशराण्येव सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ।।५
दीप्ता सूक्ष्मा[1] जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा ।
अमोघा विद्युता पूज्या नवमी सर्वतोमुखी ।।६
सत्त्वं रजस्तमश्चैवं प्रकृतिं पुरुषं तथा ।
आत्मानं चान्तरात्मानं परमात्मानमर्चयेत् ।।७
[2]सर्वे सिन्धुसमायुक्ता मायानिलसमन्विताः ।
उषा प्रभा च सन्ध्या च साया माया बलान्विताः ।।८
विन्दुविष्णुसमायुक्ता द्वारपालास्तथाऽष्टकम् ।
सूर्यं चण्डं प्रचण्डं च पूजयेद्गन्धकादिभि ः ।।
पूजया जपहोमाद्यैर्युद्धादौ विजयो भवेत् ।।९

इसके बाद अनन्तासन, सिंहासन पद्मासन, कर्णिका, केशर, सूर्य, सोम और अग्निमण्डल का यजन करना चाहिए । दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी शक्तियाँ भी पूज्य हैं । इसके अनन्तर सत्त्व, रजस्, तमस्, प्रकृति, पुरुष, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा का पूजन करना चाहिये । सिन्धु से युक्त सभी पदार्थ, माया और वायु से सम्बद्ध सभी पदार्थ, उषा, प्रभा, सन्ध्या, साया, माया, बलान्विता, बिन्दु और विष्णु से युक्त सभी पदार्थ, द्वारपाल, सूर्य, चण्ड और प्रचण्ड का पूजन सुगन्धित पदार्थ इत्यादि से करना चाहिए । इस प्रकार की पूजा जप, तप और होम इत्यादि से युद्धादि में विजय होती है ।५-९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सङ्ग्रामविजयपूजाकथनं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४८

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्षकोटिहोमः

ईश्वर उवाच—

होमाद्रणादौ विजयो राज्याप्तिर्विघ्ननाशनम् ।
कृच्छ्रेण शुद्धिमुत्पाद्य प्राणायामशतेन च ।।१

---

१. क. ङ. धूमा । २ क. ख. ग. घ. ङ. 'वें बिन्दु स' ।

अन्तर्जले च गायत्रीं[1] जप्त्वा[2] षोडशधाऽऽचरेत् ।
प्राणायामांश्च पूर्वाह्णे जुहुयात्पावके हविः ॥२

होम से युद्धादि में विजय, राज्य-प्राप्ति, विघ्ननाश होता है। आयास पूर्वक सौ बार प्राणायाम करके अपने आपको शुद्ध करके जल में सोलह बार गायत्री का जप करके प्राणायाम करना चाहिए और पूर्वाह्ण में अग्नि में हवि की आहुति देनी चाहिए ।१-२।

भैक्ष्ययावकभक्षी[3] च फलमूलाशनोऽपि वा ।
क्षीरश (स) क्तु घृताहार एकमाहारमाश्रयेत् ॥३
यावत्समाप्तिर्भवति लक्षहोमस्य पार्वति ।
दक्षिणा लक्षहोमान्ते गावो वस्त्राणि काञ्चनम् ॥४

इस कर्म में भिक्षा से प्राप्त जौ, फल, मूल, दुग्ध और सत्तू का एक बार भोजन करना चाहिए। अयि पार्वति ! एक लाख होमों की समाप्ति तक यही विधि होनी चाहिए। एक लाख होम के बाद गायें, वस्त्र, सोना दक्षिणा में देनी चाहिये ।३-४।

सर्वोत्पातसमुत्पत्तौ पञ्चभिर्दशभिर्द्विजैः ।
नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन[4] न शाम्यति ॥५
मङ्गल्यं परमं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते ।
कोटिहोमं तु यो राजा कारयेत्पूर्ववद्द्विजैः ॥
न तस्य शत्रवः संख्ये जातु तिष्ठन्ति कर्हिचित्[5] ।
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः ॥७
राक्षसाद्याश्च शाम्यन्ति सर्वे च रिपवो[6] रणे ॥७½

सभी उत्पातों के उत्पन्न होने पर पाँच अथवा दश ब्राह्मणों को इस प्रकार की दक्षिणा देनी चाहिए। संसार में कोई भी ऐसा उत्पात नहीं है जो इससे शान्त न हो जाता हो और न तो कोई ऐसा माङ्गल्य कर्म ही है जो इससे

---

१ अत्रेडभाव आर्षः। २ क. ङ. च. दृष्ट्या। ३ क. ङ. भैक्षयावकभैक्षी। ४ क. ङ. °नेनानुशा°। ५ 'कर्हिचित्' एतदग्रे "न तस्य मास्कोदेशे व्याधिर्वा जायते क्वचित्" इत्यधिकं क. ग. घ. ङ. च. पुस्तकेषु। ६ क. ङ. च. परितो।

बढ़कर हो। जो राजा ब्राह्मणों के द्वारा पूर्ववत् कोटिहोम कराता है उसके शत्रु सङ्ग्राम में तनिक भी स्थिर नहीं रह पाते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक्र और राक्षस इत्यादि तो शान्त ही हो जाते हैं, युद्धस्थल में शत्रु भी शान्त हो जाते हैं।५-६।

कोटिहोमे तु वरयेद्ब्राह्मणान्विंशतिस्तथा ॥८
शतं चाथ सहस्रं वा यथेष्टां[1] भूतिमाप्नुयात्।
कोटिहोमं तु यः कुर्याद्द्विजो भूपोऽथ वा च विट् ॥९
यदिच्छेत्प्राप्नुयात्तत्तत्सशरीरो दिवं व्रजेत् ॥९½

कोटि होम में यथाशक्ति बीस, सौ अथवा एक हजार ब्राह्मणों का वरण करना चाहिए। इससे कल्याण की प्राप्ति होती है। कोई भी ब्राह्मण, राजा, अथवा वैश्य को कोटिहोम करने से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है और वह सरीर स्वर्गलोक को पहुँच जाता है।८-९½।

गायत्र्या ग्रहमन्त्रैर्वा[2] कूष्माण्डैर्जातवेदसैः ॥१०
ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्याग्नेयैश्च[3] वैष्णवैः।
शाक्तेयैः शाम्भवैः सौरैर्मन्त्रैर्होमार्चनात्ततः ॥
अयुतेनाल्पसिद्धिः स्याल्लक्षहोमोऽखिलार्तिनुत्।
सर्वपीडादि (वि) नाशाय कोटिहोमोऽखिलार्थदः ॥
यवव्रीहितिलक्षीरघृतकुशप्रसातिकाः[4]।
पङ्कजोशीरबिल्वाम्रदला[5] होमे प्रकीर्तिताः ॥१३
अष्टहस्तप्रमाणेन कोटिहोमेषु खातकम्।
तस्यादर्धप्रमाणेन लक्षहोमे विधीयते ॥१४
होमोऽयुतेन लक्षेण कोट्याद्याज्यैः प्रकीर्तितः ॥१५

गायत्री, ग्रह, कूष्माण्ड, जातवेदस, ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, याम्य, आग्नेय, वैष्णव, शाक्त और सौरमन्त्रों से पूजन करने के बाद दश सहस्र होम करने से अल्प सिद्धि प्राप्त होती है और लक्ष-होम से सभी विपत्तियों का नाश होता है, कोटि होम सभी पीड़ाओं का नाशक तथा सभी सिद्धियों को देने वाला है।

---

१ क. ङ. °ष्टा°घृतिमा मा° च ष्टां भुं (भू) मिम्त। २ घ. °ष्माण्डैर्जा°। ३ क. ङ. °यव्यां याम्यान्ते याश्च वैष्णवी। शा०। ४ क. ङ. प्रकाशिकाः। ५ ख. ग. °दशहो°।

इस होम में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियाँ हैं जौ, धान, तिल, दूध, घी, कुश, पसई (चावल), कमल, खस, बिल्व और आम्रपत्र। कोटि होमों में आठ हाथ लम्बा गड्ढा खोदा जाता है और लक्ष होम में उसके आधे परिमाण का। आज्य इत्यादि से दश हजार एक लाख तथा एक करोड़ हवनों का विधान किया गया है।१०-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽयुतलक्षकोटिहोमकथनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४९

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्वन्तराणि

अग्निरुवाच—

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि आद्यः स्वायंभुवो मनुः ।
आग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुराः ॥१
और्वाद्याश्च सप्तर्षय इन्द्रश्चैव शतक्रतुः ।
पारावताः सतुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥२
[1]विपश्चित्तत्र देवेन्द्र [2]ऊर्जस्तस्मादयो द्विजाः ।
चैत्रकिंपुरुषाः पुत्रास्तृतीयश्चोत्तमो मनुः ॥३

अग्निदेव बोले—अब मैं मन्वतरों का वर्णन करूँगा। स्वायम्भुव मनु आदि मनु थे। आग्नीध्र आदि उसके पुत्र थे और उस समय के देवता यम इत्यादि थे। सप्तीर्ष थे और्व इत्यादि और इन्द्र थे शतक्रतु। स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और सतुषित देवता थे। उस समय के देवेन्द्र थे विपश्चित् और ऊर्ज इत्यादि तत्कालीन द्विज थे। चैत्र आदि किन्नर दूसरे मनु के वंशज थे। तीसरे मनु थे उत्तम।१-३।

सुशान्तिरिन्द्रो देवाश्च सुधामाद्या वशि (सि) ष्ठजाः ।
[3]सप्तर्षयोऽजाद्याः[4] पुत्राश्चतुर्थस्तामसो मनुः ॥४

---

१ विपश्चित्तत्र ...... द्विजाः च. पुस्तके नास्ति। २ ख. °र्जस्वन्ताद° । ३ सप्तर्षयो ...... मनुः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ ख. ग. °योजिद्याः पु° ।

स्वरूपाद्याः सुरगणाः शिखरि[1] (री) न्द्रः सुरेश्वरः ।
[2]ज्योतिर्होमादयो विप्राः नव ख्यातिमुखाः सुताः[3] ॥५
रैवते वितथश्चेन्द्रो अमिताभास्तथा सुराः ।
हिरण्यरोमाद्या मुनयो वलबन्धादयः सुताः ॥६

उस समय इन्द्र थे सुशान्ति और देवता थे सुधाम इत्यादि । वशिष्ठ पुत्र इत्यादि सप्तर्षि थे और इस मनु के पुत्र थे अज आदि । चौथे मनु थे तामस । उस समय के देवता थे स्वरूप इत्यादि और देवेन्द्र थे शिखरीन्द्र । ज्योतिर्होम इत्यादि नव विप्र थे और उसके पुत्र थे ख्यातिमुख इत्यादि । रैवत मनु के समय में इन्द्र थे वितथ, मनु पुत्र थे अमिताभ, हिरण्यरोम आदि मुनि थे और बलबन्ध इत्यादि पुत्र थे ।४-६।

[4]मनोजवश्चाक्षुषेऽथ[5] इन्द्रः स्वात्यादयः सुताः ।
[6]सुमेधाद्याः महर्षयः पुरुप्रभृतयः सुताः ॥७
विवस्वतः सुतो विप्रः श्राद्धदेवो मनुस्ततः ।
आदित्यवसुरुद्राद्या देवा[7] इन्द्रः पुरन्दरः ॥८
वशि (सि) ष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगोतमः ।
विश्वामित्रभरद्वाजौ मुनयः सप्त साम्प्रतम् ॥९

चाक्षुष मनु के समय मनोजव इन्द्र थे स्वाति इत्यादि पुत्र, सुमेध आदि महर्षि और पुरु इत्यादि पुत्र थे । वैवस्वत मनु उसके बाद हुए जो ब्राह्मण और श्राद्ध देवता थे । उस समय देवता थे आदित्य, वसु और रुद्र इत्यादि तथा इन्द्र थे पुरन्दर । वशिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज इस समय के सात ऋषि हैं । ७-९।

इक्ष्वाकुप्रमुखाः पुत्रा अंशेन हरिराभवत् ।
स्वायंभुवे मानसोऽभूदजितस्तदनन्तरे[8] ॥१०

---

१ क. ख. ग. ङ. च. शिखिरि° । २ क. ख. ग. ङ. च. °तिधामा° । ३ क. ङ. च. °ताः । दैवतै वि° । ४ मनोजवः..........सुताः च. पुस्तके नास्ति । ५ क. ङ. °थ पुरुप्रभृतयः । ६ सुमेधाद्या......सुताः क ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति । ७ क. ङ. देव इन्द्रः प्रवर्धनः व° । ८ क. ङ °न्तरम् । स° ।

सत्यो हरिर्देववरो वैकुण्ठो वामनः क्रमात् ।
[1]छायाजः सूर्यपुत्रस्तु भविता चाष्टमो मनुः ॥११
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिर्भविताऽष्टमः ।
सुतपाद्या देवगणा दीप्तिमद्द्रौणिकादयः ॥१२
मुनयो बलिरिन्द्रश्च विरजप्रमुखाः सुताः ।
[2]नवमो दक्षसावर्णिः पाराद्याश्च तदा सुराः ॥१३

इक्ष्वाकु इत्यादि उनके पुत्र थे जिनके अंश से विष्णु इत्यादि उत्पन्न हुए। तदनन्तर स्वायम्भुव मनु के समय मानस वंश उत्पन्न हुआ जिसके बाद अजित सत्य, हरि, देववर, वैकुण्ठ और वामन देव भी उत्पन्न हुए। सूर्य और छाया से उत्पन्न होने वाले आठवें मनु थे। यह मनु अपने पूर्वज के सवर्ण थे इसलिए उन्हें सावर्णि भी कहा गया है। उसके समय में सुतप इत्यादि देवगण तथा तेजस्वी द्रोणिक इत्यादि मुनि थे। इन्द्र थे बलि और पुत्र थे विरज इत्यादि। नवें मनु दक्ष सावर्णि थे जिनके समय में पार आदि देवता थे। ११-१३।

इन्द्रश्चैवाद्भुतस्तेषां सवनाद्या द्विजोत्तमाः ।
घृतकेत्वादयः पुत्रा ब्रह्मसावर्णिरित्यतः ॥१४
सुखादयो देवगणास्तेषां शान्तिः शतक्रतुः ।
हविष्याद्याश्च मुनयः सुक्षेत्राद्याश्च तत्सुताः ॥१५
धर्मसावर्णिकश्चाथ विहङ्गाद्यास्तदा सुराः ।
गणश्चेन्द्रो निश्चराद्या मुनयः पुत्रका मनोः ॥१६
सर्वत्र गाद्या रुद्राख्यः सावर्णिर्भविता मनुः ।
ऋतधामा सुरेन्द्रश्च हरिताद्याश्च देवताः ॥१७

इन्द्र थे अद्भुत और सवनादि ब्राह्मण तथा घृतकेतु इत्यादि पुत्र थे। उसके पश्चात् ब्रह्मसावर्णि नामक मनु हुए जिनके देवगण थे सुख इत्यादि, इन्द्र थे शान्ति, मुनि हविष्य इत्यादि और पुत्र थे सुक्षेत्र इत्यादि। तदनन्तर धर्मसावर्णिक नामक मनु हुए। उनके समय में देवता थे विहंग इत्यादि, इन्द्र थे गण, मुनि थे निश्चरादि और पुत्र थे सर्वत्रग इत्यादि। फिर रुद्र सावर्णि नामक मनु हुये जिनके समय में इन्द्र थे ऋतधामा और देवता थे हरित आदि। १४-१७।

---

१ छायाजः···· मनु क. ङ. च. पुस्केषु नास्ति। २ नवमो··········सुराः क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

'तपस्याद्याः सप्तर्षयः सुता वै देववन्मुखाः ।
मनुस्त्रयोदशो रौच्यः सूत्रामाणादयः सुराः ॥१८
इन्द्रो दिवस्पतिस्तेषां दानवादि विमर्दनः ।
निर्मोहाद्याः सप्तर्षयश्चित्रसेनादयः सुताः ॥१९
मनुश्चतुर्दशो भौत्यः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ।
चाक्षुषाद्याः सुरगणाः अग्निवाह्वादयो द्विजाः ॥२०
चतुर्दशस्य भौत्यस्य पुत्रा ऊरुमुखा मनोः ।
प्रवर्तयन्ति वेदांश्च भुवि सप्तर्षयो दिवः' ॥२१
देवा यज्ञभुजस्ते तु (स्तैस्तु) भूः (स्व) पुत्रैः परिपाल्यते ।
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ॥२२

सप्तर्षि थे तपस्या आदि और पुत्र थे देववत् इत्यादि । तेरहवें मनु थे रौच्य । उनके समय में सूत्रमाणादि देवता थे, इन्द्र थे दिवस्पति जो दानव आदि के नाशक थे । उस समय सप्तर्षि थे निर्मोह आदि और पुत्र थे चित्रसेन इत्यादि । चौदहवें मनु थे भौत्य जिनके समय में शुचि नामक इन्द्र थे । उस समय देवता थे चाक्षुष इत्यादि और द्विज थे अग्निबाह्वादि । चौदहवें मनु भौत्य के पुत्र ऊरुमुख थे जो पृथ्वी पर वेदों का प्रचार करने वाले थे । दिव इत्यादि सप्तर्षि थे । वे सभी देवता यज्ञभोगी थे और उन मनु के पुत्रों द्वारा पृथ्वी की रक्षा की जाती थी । अये ब्रह्मन् ! ब्रह्मा के दिन में चौदह मनु हुए हैं ।१८-२२।

मन्वाद्याश्च हरिर्वेदं द्वापरान्ते बिभेद सः ।
आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंमितः ॥२३
एकश्चाऽऽसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्हौत्रं तथा मुनिः ॥२४
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ।
प्रथमं व्यासशिष्यस्तु पैलो ह्यृग्वेदपारगः ॥२५

द्वापर के अन्त में विष्णु ने मनु आदि और वेद का विभाजन किया था । आदि वेद के चार पाद हैं जिसमें एक लाख मन्त्र हैं । एक वेद था यजुर्वेद, जिसके चार भेद किये गये । यजुर्वेद के मन्त्रों को आध्वर्यव, ऋग्वेद के मन्त्रों

१ क. ङ. च. 'पसाद्याः स° । २ क. ङ. च. द्विजाः ।

हौत्र, सामवेद के मन्त्रों को औद्‌गात्र और अथर्ववेद के मन्त्रों को ब्रह्म कहा जाता है। व्यास के प्रथम शिष्य पैल ऋग्वेद में पारङ्गत थे।२३-२५।

[1]इन्द्रः प्रमतये प्रादाद्बाष्कलाय च संहिताम्।
[2]बौध्यादिभ्यो ददौ सोऽपि चतुर्धा निजसंहिताम् ॥२६
यजुर्वेदतरोः शाखा सप्तविंशन्महामतिः।
वैशम्पायननामाऽसौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥२७
काण्वा वाजसनेयाद्या याज्ञवल्क्यादिभिः स्मृताः।
सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः ॥२८
सुमन्तुश्च[3] सुकर्मा च एकैकां संहितां ततः।
गृह्णते च सुकर्माख्यः सहस्रं संहितां गुरुः ॥२९
सुमन्तुश्चाथर्वतरुंव्यासशिष्यो बिभेद तम्।
शिष्यानध्यापयामास पैप्पलादीन्सहस्रशः ॥३०
पुराणसंहितां चक्रे सूतो व्यासप्रसादतः ॥३१

इन्द्र ने बुद्धिमान् वाष्कल को एक संहिता प्रदान की जिसने अपनी संहिता को चार भागों में विभक्त करके बौध्य इत्यादि को दे दिया। व्यास के शिष्य बुद्धिमान् वैशम्पायन ने यजुर्वेद वृक्ष की सत्ताईस शाखायें कर दीं। इन्हीं शाखाओं को याज्ञवल्क्य इत्यादि ऋषियों ने काण और वाजसनेयी आदि कहा है। व्यास के शिष्य जैमिनि ने सामवेद की शाखाओं का विभाजन किया था। सुमन्त और सुकर्मा ने एक-एक संहिता को लेकर उसे हजार शाखाओं में विभक्त कर दिया। व्यास-शिष्य सुमन्तु ने अथर्ववेद तरु को शाखाओं में विभक्त करके पैप्पल आदि सहस्रों शिष्यों को उनका अध्यापन करा दिया। व्यास की कृपा से सूत ने पुराण-संहिता की रचना की।२६-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मन्वन्तरवर्णनं नाम पञ्चाशद-धिकशततमोऽध्यायः।१५०

---

१ इन्द्र······संहिताम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ बौध्यादिभ्यो······निज--संहिताम् च, पुस्तके नास्ति। ३.क. ङ. सुनामा।

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वर्णेतरधर्माः

अग्निरुवाच—

मन्वादयो भुक्तिमुक्ति [क्ती] [1]धर्मांश्चीर्त्वाऽऽनुवन्ति यान्।
प्रोचे परशुरामाय वरुणोक्तं तु [क्तांस्तु] पुष्करः ॥१

अग्निदेव बोले—मनु इत्यादि भुक्ति, मुक्ति और धर्मों को कहकर जिन धर्मों को प्राप्त करते हैं उन वर्णोक्त धर्मों को पुष्कर ने परशुराम से कहा था।१

पुष्कर उवाच—
वर्णाश्रमेतराणां ते धर्मान्वक्ष्यामि[2] सर्वदान्।
मन्वादिभिर्निगदितान्वासुदेवादितुष्टिदान् ॥२
अहिंसा सत्यवचनं दया भूतेष्वनुग्रहः।
[3]तीर्थानुसरणं दानं ब्रह्मचर्यममत्सरः ॥३
देवद्विजातिशुश्रूषा गुरूणां च भृगूत्तम।
श्रवणं सर्वधर्माणां पितृणां पूजनं तथा ॥४
भक्तिश्च नृपतौ नित्यं तथा सच्छास्त्रनेत्रता।
([4]आनृशंस्यं तितिक्षा च तथा चाऽऽस्तिक्यमेव च ॥५
वणर्श्रामाणां सामान्यं धर्माधर्मं समीरितम्) ॥५½

पुष्कर बोले—मैं तुमसे वर्णाश्रम धर्मों से भिन्न उन धर्मों को कहूँगा जो सब कुछ देने वाले, मनु इत्यादि के द्वारा कहे हुए और वासुदेव इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं। अये भृगूत्तम ! ये धर्म हैं—अहिंसा, सत्य, दया, प्राणियों पर अनुग्रह, तीर्थाटन, दान, ब्रह्मचर्य, अमत्सर देवता, द्विज और गुरुजनों की सेवा, सभी धर्मों का श्रवण, पितृपूजन, राजा में निरन्तर भक्ति, अच्छे अच्छे शास्त्रों का चिन्तन, आनृशंस्य, तितिक्षा और आस्तिक्य। इस प्रकार वर्णाश्रमों के सामान्य धर्म और अधर्म को कहा गया है।२-५½।

---

१ क. ङ. °धर्माश्चान्ताष्ट्रवद्विपान्। प्रो°। २ क. ङ. च. °न्वक्ष्येऽथ स°। ३ तीर्थानुसरणं ..... मत्सरः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ आनृशंस्यं ...... समीरितम् पुस्तके नास्ति।

([1]यजनं याजनं दानं वेदाद्यध्यापनक्रिया ।।६
प्रतिग्रहं चा [हश्चा] ध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत्) ।
दानमध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ।।७
क्षत्रियस्य सवैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ।।७½

यजन, याजन, दान, वेदादि अध्ययन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये ब्राह्मणों के धर्म हैं। क्षत्रिय और वैश्य का सामान्य कर्म है दान, अध्ययन और यथा विधि यजन ।६-७½।

क्षत्रियस्य विशेषेण पालनं दुष्टनिग्रहः ।।८
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्तितम् ।
शूद्रस्य द्विजसुश्रूषा सर्वं शिल्पानि वाऽप्यथ ।।९

क्षत्रिय का विशेष धर्म है प्रजा का पालन और दुष्ट-निग्रह। वैश्य का विशेष कर्म है कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य। शूद्र का कर्म है द्विजों की सेवा अथवा सभी प्रकार के शिल्प ।८-९।

मौञ्जी वन्धनतो जन्म विप्रादेश्च द्वितीयकम् ।
अनुलोम्येन वर्णानां जातिर्मातृसमा स्मृता ।।१०
चण्डालो ब्राह्मणीपुत्रः शूद्राच्च प्रतिलोमतः[2] ।
([3]सूतस्तु क्षत्रियाज्जातो वैश्याद्वै देवलस्तथा ।।११
पुक्कसः क्षत्रियापुत्रः शूद्रात्स्यात्प्रतिलोमजः ।)
मागधः स्यात्तथा वैश्याच्छूद्रादायोगवो भवेत् ।।१२

ब्राह्मण आदि का मौञ्जी बन्धन से दूसरा जन्म होता है। अनुलोम विवाह से उत्पन्न होने पर वर्णों की जाति माता के समान होती है। शूद्र पुरुष और ब्राह्मणी पत्नी के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न होने वाला पुत्र चाण्डाल कहलाता है। क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न पुत्र 'देवल कहलाता है। शूद्र पुरुष और क्षत्रिय-जातीया स्त्री के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र पुक्कस कहलाता है। शूद्र पुरुष और वैश्यजातीय स्त्री से उत्पन्न पुत्र मागध कहलाता है ।१०-१२।

---

१ यजनं......निर्दिशेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. ङ. °तः। शूद्रस्य क्ष°। ३ सूतस्तु ....प्रतिलोमजः पुस्तके नास्ति।

[1]वैश्यायां प्रतिलोमेभ्यः प्रतिलोमाः सहस्रशः ।
विवाहः सदृशैस्तेषां नोत्तमैर्नाधमैस्तथा ॥१३
[2]चण्डालकर्म निर्दिष्टं वध्यानां घातनं तथा ।
स्त्रीजीवनं तु तद्रक्षा प्रोक्तं वैदेहकस्य च ॥१४
[3]सूतानामश्वसारथ्यं पुक्कसानां च व्याधता[4] ।
स्तुतिक्रिया मागधानां तथा चाऽऽयोगवस्य च ॥१५
रङ्गावतरणं प्रोक्तं तथा शिल्पैश्च जीवनम् ॥१५½

वैश्य जातीया स्त्री में प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हजारों प्रतिलोम सम्भव हैं इसलिए समान वर्णों में ही विवाह होना चाहिए, उत्तम तथा अधम जाति वालों में परस्पर विवाह नहीं होगा चाहिए । चाण्डाल का कर्म वध्यों का वध करना बताया गया है । वैदेहक का कर्म है स्त्रियों का जीवन और उनकी रक्षा सूतों का कर्म है । अश्वों का सारथ्य पुक्कसों का कर्म है आखेट, मागधों का कर्म है स्तुति क्रिया और आयोगव का कर्म रङ्गावतरण नथा शिल्प से जीवन यापन करता है ।१३-१५½।

वहिर्ग्राम विवासश्च मृतचेलस्य धारणम् ॥१६
न संस्पर्शस्तथैवान्यैश्चण्डालस्य विधीयते ।
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽत्र यः कृतः ॥१७
स्त्रीबालाद्युपपत्तौ वा बाह्यानां सिद्धिकारणम् ।
संकरे जातयो ज्ञेयाः पितुर्मातुश्च कर्मतः ॥१८

उन्हें गाँव के बाहर रहकर मृतकों के वस्त्रों को धारण करना चाहिए । चाण्डाल का स्पर्श दूसरों के द्वारा नहीं होना चाहिए । ब्राह्मणों के लिए अथवा गायों के लिए जो शरीर-त्याग किया जाता है अथवा जो देह त्याग स्त्री और बालक इत्यादि की रक्षा के लिए किया जाता है वह सिद्धियों का कारण होता है । माता और पिता के कर्म से वर्ण-सङ्कर जातियाँ उत्पन्न होती हैं ।१६-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वर्णेतरधर्मवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५१

---

१ क. ङ. °यां प्रति° । २ चण्डालकर्म......तथा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति
३ सूतानाम्......व्याधता क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ४ च. वध्यता ।

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

गृहस्थवृत्तिः

पुष्कर उवाच—

आजीवं तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
क्षत्रविट्शूद्रधर्मेण जीवन्नेव तु शूद्रजात् ।।१
कृषिवाणिज्यगौरक्ष्यं कुसीदं च द्विजश्चरेत् ।
गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ।।२

पुष्कर बोले—ब्राह्मण को अपनी जीविका का निर्वाह उपर्युक्त ब्राह्मणों के कर्मों के द्वारा ही करना चाहिए । अथवा उसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के धर्मों से भी निर्वाह करना चाहिए किन्तु कभी भी केवल शूद्रों का कर्म नहीं करना चाहिए । ब्राह्मण के द्वारा कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और लेन-देन तो करना चाहिए किन्तु गोरस, गुड़, लवण, लाक्षारस और मांस का परित्याग कर देना चाहिए ।१-२।

भूमिं भित्त्वौषधीश्छित्त्वा हत्वाकीटपिपीलिकान् ।
पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षका देवपूजनात् ।।३
[1]हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मघाटिनाम् ।।४
ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदाचन ।।५

भूमि को तोड़ने में, वनस्पतियों को काटने कीड़ों और चीटियों की जो हत्या होती है, उसकी पवित्रता के लिए यज्ञ कराना चाहिए । किसान देव-पूजन से ही इन पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है । हल में आठ बैलों को जोतना धर्म है, छह बैलों को जीविकोपार्जन करने वालों के द्वारा जोता जाता है । क्रूर-जनों के द्वारा चार बैलों को हल में जोता जाता है । धर्म का हनन करने वालों के द्वारा हल में केवल दो बैल ही जोते जाते हैं । ऋत और अमृत के द्वारा ही जीवित रहना चाहिए अथवा मृत, प्रमृत, सत्य और अनृत

---

१ हलमष्टगवं•••जीवितार्थिमान् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

के द्वारा भी जीविकोपार्जन किया जा सकता है किन्तु कुत्ते के समान कभी भी जीवन यापन नहीं करना चाहिए ।३-५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये गृहस्थवृत्तिवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।१२५

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्माः

पुष्कर उवाच—

धर्ममाश्रमिणां वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणामाद्यास्तिस्रस्तु गर्हिताः ।।१

पुष्कर बोले—अब मैं आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के उस धर्म को बतलाऊँगा जो भोग और मोक्ष देने वाला है, उसे सुनो ! स्त्रियों के ऋतुकाल से सोलह रात्रियाँ (गर्भाधान के लिए) शुभ मानी गई है किन्तु प्रथम तीन रात्रियाँ (सहवास के लिए) निन्दित बतायी गयी हैं ।१

व्रजेद्युग्मासु पुत्रार्थी [1]कर्माऽऽधानिकमिष्यते ।
गर्भस्य स्पष्टताज्ञाने[2] सवनं स्पन्दनात्पुरा ।।२

पुत्रकामी को युग्म रात्रियों में सहवास करना चाहिए । अब (गर्भाधान) कर्म के सम्बन्ध में बतलाया जा रहा है । गर्भ के स्पष्ट ज्ञान होने पर उसके स्पन्दन के अनुभव होने के पूर्व ही पुंसवन-संस्कार करना चाहिए ।२

षष्टेऽष्टमे वा [3]सीमन्तं पुत्रीयं नामभं शुभम् ।
अच्छिन्ननाड्यां कर्तव्यं जातकर्म विचक्षणैः ।।३

छठें तथा आठवें मास में सीमन्तोन्नयन शुभ माना गया है । विद्वानों के द्वारा जातकर्म नाल कटने के पहले ही होना चाहिए ।३

---

१ क. ङ. कर्मभावकर्मि । २ क.ङ. 'तास्थाने वमनस्यंदना' । ३ क. ङ. मन्तक्षत्रियं ।

अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ।
शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।।४
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ।।४½

अशौच के समाप्त होने पर नामकरण-संस्कार किया जाता है । ब्राह्मण के नाम के अन्त में 'शर्मा', क्षत्रिय के नाम के अन्त में 'वर्मा', तथा वैश्य और शूद्र के नामों के अन्त में क्रमशः 'गुप्त और 'दास' शब्दों का प्रयोग होता है ।४-४½।

बालं निवेदयेद्भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत ।।५
यथाकुलं तु चूड़ाकृद्ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भाष्टमोऽष्टमे वाऽब्दे गर्भादेकादशे नृपे ।।६

तदनन्तर यह 'तुम्हारा पुत्र है' ऐसा कहकर पति को पुत्र का समर्पण करना चाहिए । तदनन्तर कुलरीति के अनुसार चूड़ाकर्म होना चाहिए । ब्राह्मण का उपनयन-संस्कार गर्भाधन अथवा जन्म के आठवें वर्ष में कर देना चाहिए । क्षत्रिय का उपनयन गर्भाधान के ग्यारहवें वर्ष में होना चाहिए ।५-६।

गर्भात्तु द्वादशे वैश्ये षोडशाब्दादितो नहि ।
मुञ्जानां वल्कलानां तु क्रमान्मौञ्ज्यः प्रकीर्तिताः ।।७

वैश्य का उपनयन बारहवें वर्ष में किन्तु उसे सोहलवें वर्ष के बाद तक कभी भी स्थगित नहीं करना चाहिए । मेखलायें वर्णों के क्रम से मुञ्ज अथवा वल्कल आदि की बतायी गईं है ।७

मार्गवैयाघ्रवास्तानि चर्माणि व्रतचारिणाम् ।
पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ।।८
केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ।
अवक्राः सत्वचः सर्वे [1]नाग्निप्लुष्टास्तु दण्डकाः ।।९
वासोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ।
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ।।१०

चर्म क्रमशः मृग अथवा व्याघ्र इत्यादि के बताये गये हैं । ब्रह्मचारियों के दण्ड वर्णानुसार पर्ण, पीपल और बेल के बताये गये हैं । इन दण्डों की

---

१ ख. ग. घ. नाविप्लु ।

लम्बाई वर्णानुक्रम से केश-स्थान, ललाट अथवा मुख तक होती है। दण्डों को सीधा छाल-युक्त और अग्नि के द्वारा बिना जला हुआ होना चाहिए। वर्णानुक्रम से वस्त्र और उपवीत, कपास, रेशम और ऊन का होना चाहिए। ब्रह्मचर्यों के द्वारा भिक्षाटन में 'भवत्' शब्द का प्रयोग क्रमशः आदि, मध्य और अन्त में होना चाहिए।८।१०।

प्रथमं तत्र भिक्षेत यत्र भिक्षां ध्रुवं भवेत्र।
स्त्रीणाममन्त्रतस्तानि[1] विवाहस्तु समन्त्रत्रः॥११
उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च॥१२
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्त ऋतं भुङ्क्त उदङ्मुखः॥१३

सर्व प्रथम भिक्षा वहीं माँगनी चाहिए जहाँ उसकी प्राप्ति निश्चित हो। स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार न होने से उनका उपनयन-संस्कार नहीं होता है किन्तु उनका विवाह-संस्कार वैदिक मन्त्रों से युक्त होता है। शिष्य को उपनीत करके गुरु को उसे आरम्भ से शौच की शिक्षा देनी चाहिए, साथ ही उसे आचार, अग्निकर्म और सन्ध्योपासन की भी शिक्षा देनी चाहिए। पूर्वाभिमुख होकर यज्ञ करने से आयुष्य, दक्षिणाभिमुख यज्ञ से यश, पश्चिमाभिमुख यज्ञ से ऐश्वर्य और उत्तराभिमुख यज्ञ से ऋत की प्राप्ति होती है।११-१३।

[2]सायं प्रातश्च जुहुयान्नामेध्यं व्यस्तहस्तकम्।
मधुमांसं जनैः सार्धं गीतं नृत्यं च वै त्यजेत्॥१४
हिंसां परापवादं वा [3]अश्लीलं च विशेषतः।
दण्डादि धारयेन्नष्टमप्सु क्षिप्त्वाऽन्यधारणम्॥१५
वेदस्वीकरणं कृत्वा स्नायाद्वै दत्तदक्षिणः।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा देहान्तं निवसेद्गुरौ॥१६

ब्रह्मचारी को सायं प्रातः हवन करना चाहिए। किन्तु अग्नि में किसी अपवित्र वस्तु को नहीं डालना चाहिए। ब्रह्मचारी को मधु, मांस, गीत, नृत्य

१ च. °नि वारिहस्तस°। २ सायं......वै त्यजेत् ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।
३ क. ङ. जटिलं।

और मनुष्यों का साथ छोड़ देना चाहिए। उसे हिंसा, परापवाद और अश्लीलता का परित्याग विशेष रूप से कर देना चाहिए। यदि दण्ड किसी कारण नष्ट हो जाये तो उसे जल में फेंककर उसके स्थान पर दूसरा दण्ड धारण कर लेना चाहिए। वेदाध्ययन करने के बाद स्नान करके ब्रह्मचारी को गुरुदक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरु के शरीर त्याग पर्यन्त उसके समीप रहा करता है। १४-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये ब्रह्मचर्याद्याश्रमवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५३

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

विवाहः

पुष्कर उवाच—

विप्रश्चतस्रो विन्देत भार्यास्तिस्रस्तु भूमिपः।
द्वे च वैश्यो यथाकामं भार्यैकामपि चान्त्यजः ॥१
धर्मकार्याणि सर्वाणि न कार्याण्यसवर्णया।
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥२
वैश्या प्रतोदमादद्याद्दशां वै चान्त्यजा तथा।
सकृत्कन्या प्रदातव्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् ॥३

पुष्कर बोले—ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक स्त्री अपनी इच्छानुसार रख सकते हैं। सभी धर्मकार्य असवर्ण जाति की स्त्री के साथ नहीं हो सकते हैं। पाणिग्रहण सवर्ण स्त्रियों में ही होना चाहिए। विवाहान्तर क्षत्रिय स्त्री को बाण, वैश्य को प्रतोद (चाबुक) और शूद्र जातीया स्त्री को अपने हाथ में सूत की डोरी धारण करना चाहिए। कन्या को विवाह में एक ही बार देना चाहिए। कन्या का अपहरण करने वाला चोरी के दण्ड का भागी होता है।१-३।

अपत्यविक्रयासक्ते निष्कृतिर्न विधीयते।
कन्यादानं शचीयोगो विवाहोऽथ चतुर्थिका ॥४

विवाहमेतत्कथितं नाम कर्मचतुष्टयम् ।
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे[1] च पतिते पतौ ॥५
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ।
मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया ॥६

अपनी सन्तान का विक्रय करने वाले का कभी उद्धार नहीं होता है। सभी गृहस्थों के द्वारा चार संस्कारों का अनुष्ठान आवश्यक है। वे हैं—शची, योग, विवाह और नामकरण संस्कार। स्त्रियों को पाँच प्रकार की विपत्तियों में दूसरा पति करने का अधिकार है। पति का नाश, उसकी मृत्यु, उसका संन्यासी हो जाना, उसकी नपुंसकता और उसका पतित हो जाना। पति के मर जाने पर स्त्री के द्वारा देवर का वरण किया जाना चाहिए किन्तु देवर की अनुपस्थिति में स्त्री अपनी इच्छा से किसी को पतिरूप में वरण कर सकती है।४-६।

[2]पूर्वात्रितयमाग्नेयं वायव्यं चोत्तरात्रयम् ।
रोहिणी चेति चरणे भगणः शस्यते सदा ॥७
[3]नैकगोत्रां तु वरयेन्नैकार्षेयां च भार्गव ।
पितृतः सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तथा ॥८

जिन नक्षत्रों में विवाह सदैव शुभ माना जाता है वे नक्षत्र हैं—तीनों पूर्वा, आग्नेय, वायव्य और रोहिणी। अये भार्गव ! न तो समान गोत्रवाली स्त्री का वरण करना चाहिए और न समान ऋषि वाली स्त्री का। पिता की ओर से सात पीढ़ी और माता की ओर से पाँच पीढ़ी पूर्व से सम्बन्द्ध स्त्री और पुरुष में विवाह हो सकता है।७-८।

आहूय दानं ब्राह्मः स्यात्कुलशीलयुताय तु ।
[4]पुरुषांस्तारयेत्तज्जो नित्यं कन्याप्रदानतः ॥९
तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वार्ष उच्यते ।
प्रार्थिता दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्मकृत् ॥१०
शुल्केन चाऽऽसुरो मन्दो गान्धर्वो वरणान्मिथः ।
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥११

---

१. क. ख. ग. ङ. क्लीबेऽथ प॰। २ क. ङ. ॰र्वादित्रयमा॰। ३ नैकगोत्रां ......भार्गव क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। ४ पुरुषांस्तारये......कन्याप्रदानतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

कुलीन और शीलवान् वर को बुलाकर कन्यादान करना ब्राह्मविवाह कहा गया है। इस कन्यादान से उत्पन्न तेज नित्य पुरुषों का तारण करने वाला होता है। गायों के एक जोड़े को दान में देकर जो विवाह किया जाता है उसे आर्ष विवाह कहा जाता है। जिस विवाह में पुरुष के द्वारा याचना की जाने पर उसे कन्या दी जाती है उस विवाह को प्राजापत्य- विवाह कहते हैं। यह धार्मिक विवाह कहा जाता है। शुल्क लेकर जिस विवाह में कन्या का दान होता है उसे आसुर विवाह कहते हैं, जो मन्द कोटि का माना गया है। जहाँ पर वर और कन्या परस्पर एक-दूसरे का वरण करते हैं उसे गान्धर्व-विवाह कहते हैं। युद्ध इत्यादि के द्वारा कन्यापहरण को राक्षस विवाह कहा गया है। जिस विवाह में कन्या को छल के द्वारा प्राप्त किया जाता है, उसे पैशाच विवाह कहते हैं।९-११।

[1]वैवाहिकेऽह्नि कुर्वीत कुम्भकारमृदा शचीम्।
[2]जलाशये तु तां पूज्य वाद्याद्यैः स्त्रीं (स्त्री?) गृहं नयेत् ॥१२
प्रसुप्ते केशवे नैव विवाहः कार्य एव हि।
पौषे चैत्रे कुजदिने रिक्ताविष्टितिथौ न च ॥१३

विवाह के दिन कुम्भकार की मिट्टी से शची की प्रतिमा का निर्माण करके जलाशय के निकट उसकी पूजा करके वाद्यादि के साथ स्त्री को घर ले जाना चाहिए। केशव के शयन करने के बाद, पौष और चैत्र मासों में मङ्गल के दिन तथा रिक्ता और विष्टि तिथियों में विवाह नहीं करना चाहिए।१२-१३।

न शुक्रजीवेऽस्तमिते न शशाङ्के ग्रहार्दिते।
अर्कार्कि भौमयुक्ते भे व्यतीपातहते न हि ॥१४
सौम्यं पित्र्यं च वायव्यं सावित्रं रोहिणी तथा।
उत्तरात्रितयं मूलं मैत्रं पौष्णं विवाहभम् ॥१५
[3]मानुषाख्यस्तथा लग्नो मानुषाख्यांशकः शुभः ॥१५३

जिस समय शुक्र अथवा मङ्गल अस्त हों, चन्द्रमा ग्रहों से पीड़ित हो या सूर्य अन्य ग्रहों के संयोग में हो अथवा व्यतीपात योग हो, उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिए। विवाह में जो नक्षत्र शुभ माने गये हैं वे—सौम्य,

---

१ क. ङ. च. °केऽब्दे कु°। २ क. ङ. शयं हृतामृज्य। ३ मानुषाख्य...... शुभः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

पित्र्य, वायव्य, सावित्री, रोहिणी, उत्तरा, मूल, मैत्र और पौष्य हैं। मनुष्य तथा मनुष्य के अंश वाली लग्न विवाह के लिए शुभ मानी गयी है।१४-१५½।

तृतीये च तथा[1] षष्ठे दशमैकादशेऽष्टमे ॥१६
अर्कार्किचन्द्रतनयाः प्रशस्ता न कुजोऽष्टमः॥
सप्तान्याष्टमवर्गेषु शेषाः शस्ता ग्रहोत्तमाः ॥१७
तेषामपि तथा मध्यात्षष्ठः शुक्रो न शस्यते।
वैवाहिके भे कर्तव्या तथैव च चतुर्थिका ॥१८
न दातव्या ग्रहास्तत्र चतुराद्यास्तथैकगाः।
[2]पर्ववर्जं स्त्रियं गच्छेत्सत्या दत्ता सदा रतिः ॥१९

सूर्य, शनि, चन्द्रमा और बुध तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश और अष्टम स्थानों में शुभ माने गये हैं किन्तु अष्टम स्थान में रहने वाला मङ्गल शुभ नहीं माना गया है। शेष ग्रह सातवें, अन्तिम और आठवें वर्गों में रहने पर शुभ माने जाते हैं, उनमें भी छठें स्थान में रहने वाला शुक्र शुभ नहीं माना जाता है। वैवाहिक कर्म में चतुर्थी तिथि शुभ मानी गयी है। जिस तिथि में चार ग्रहों का एक साथ योग हो, उस दिन कन्या दान नहीं करना चाहिए। पर्व को छोड़कर स्त्री सहवास करना चाहिए—यही उत्तम-रति कही जाती है। १६-१९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये विवाहभेदकथनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।१५४

———

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आचारः

पुष्कर उवाच—
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय विष्ण्वादीन्दैवतान्स्म (दिदेवताः स्म) रेत्।
([3] उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥१

1 क. ङ. षष्ठं। च. शेषे। 2 ख. ग. च. °वर्जंस्त्रियो ग°। क. ङ. °वर्ज्जः स्त्रि°। 3 उभे मूत्रपुरीषे····सदाऽऽचरेत् पुस्तके नास्ति।

पुष्कर बोले—ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर विष्णु इत्यादि देवताओं का स्मरण करना चाहिए। दिन में मल और मूत्र का त्याग उत्तर की ओर मुँह करके करना चाहिए।१

रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा।
[1](न मार्गादौ जले वीथ्यां सतृणायां सदाऽऽचरेत्)॥२

रात्रि के समय इन कर्मों को दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिए और दोनों सन्ध्याओं में इन कर्मों को दिन के ही समान करना चाहिए। मार्ग इत्यादि में, जल में तथा गली में मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिए, किन्तु तिनकों से आच्छादित भूमि पर सदा करना चाहिए।२

शौचं कृत्वा मृदाऽऽचम्य भक्षयेद्दन्तधावनम्।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्॥३
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढास्नानं प्रकीर्तितम्।
अस्नातस्याफलं कर्म प्रातः स्नानं चरेत्ततः॥४
भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्।
ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते॥५

शौच करने के वाद मिट्टी से आचमन करके दातून करना चाहिए। उसके बाद नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मों को करना चाहिए जिससे सभी प्रकार के मलों का नाश हो जाता है। मनुष्य का छठा कर्म है नित्यस्नान जिसे क्रिया स्नान कहते हैं जो छह प्रकार का होता है। बिना स्नान के कोई कार्य फल नहीं प्रदान करता है, इसलिये प्रातःकाल स्नान करना चाहिए। भूमि को खोदकर निकाले गये जल से झरने का जल उत्तम होता है। उससे भी अच्छा जल झील का होता है और नदी का जल तो उससे भी अच्छा होता है।३-५।

[2]तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यं तु सर्वतः।
संशोधितमलः[3] पूर्वं निमग्नश्च जलाशये॥६

इससे अच्छा होता है तीर्थों का जल और गङ्गाजल तो सभी जलों से अच्छा होता है। पहले अपने शरीर के सारे मल को साफ करके जलाशय में डुबकी लगाना चाहिए।६

---

१ न मार्गादौ.......सदाऽऽचरेत् क. ङः पुस्तकयोर्नास्ति। २ तीर्थतोयं...... सर्वतः क. ङ.पुस्तकयोर्नास्ति। ३ क. ङ. च. 'मनाः पू'।

[1]उपस्पृश्य ततः कुर्यादम्भसः परिमार्जनम् ।
हिरण्यवर्णास्तिसृभिः शं नो देवीति चाप्यथ ॥७
आ पो हि ष्ठेति तिसृभिरिदमापस्तथैव च ।
ततो जलाशये मग्नः कुर्यादन्तर्जलं जपम् ॥८
तत्राऽऽघमर्षणं सूक्तं द्रुपदां वा तथा जपेत् ।
([2]युञ्जते मन इत्येवं सूक्तं वाऽप्यथ पौरुषम् ॥९

तदनन्तर आचमन करके जल से परिमार्जन करना चाहिए। उस समय 'हिरण्यवर्ण' इत्यादि तीन मन्त्र, 'शं नो देवी' 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन मन्त्र और 'इदमापः' मन्त्रों को पढ़ना चाहिए। तालाब में प्रवेश करके जल में जप करना चाहिए और अघमर्षण मन्त्र का पाठ करना चाहिए अथवा 'द्रुपद,' 'पुरुष' और 'युञ्जते मनः' इत्यादि सूक्त का भी पाठ किया जा सकता है।७-९।

गायत्रीं तु विशेषेण अघमर्षणसूक्तके ।
देवता भाववृत्तस्तु ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥१०
छन्दश्चानुष्टुभं तस्य भाववृत्तो हरिः स्मृतः ।
[3]आपीडमानः शाटीं तु देवतापितृतर्पणम्)॥११

इसके अतिरिक्त अघमर्षण सूक्त में आने वाले गायत्री मन्त्र को भी पढ़ा जा सकता है। अघमर्षण मन्त्रों के देवता हैं। भाववृत देवता भगवान् विष्णु को कहा गया है। तदनन्तर अपने वस्त्रों को निचोड़कर देवताओं और पितरों का तर्पण करना चाहिए।१०-११।

पौरुषेण तु सूक्तेन ददेच्चैवोदकाञ्जलिम् ।
ततोऽग्निहवनं कुर्याद्दानं दत्त्वा तु शक्तितः ॥१२
ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम् ।
आसनं शयनं [4]यानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ॥१३
आत्मनः (शुचिरे, चीन्ये) तानि परेषां न शुचिर्भवेत्
(चीनि वै) ।
भाराक्रान्तस्य गुर्विण्याः पन्था देयो गुरुष्वपि ॥१४

---

१ क. ङ. °पविश्य। २ युञ्जते......तर्पणम् नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः। ३ आपीडमानः......पितृतर्पणम् च. पुस्तके नास्ति। ४ क. ङ. पात्रं।

पुरुष सूक्त के द्वारा जलाञ्जलि देकर अग्नि में हवन करके यथाशक्ति दान देना चाहिए। अपने योग और क्षेम के लिए ईश्वर में लीन होना चाहिए। अपने आसन, शयन, यान, अपनी स्त्री, अपना पुत्र और अपना कमण्डलु पवित्र होता है किन्तु दूसरों की ये वस्तुयें अपवित्र होती हैं। मार्ग में आमने-सामने पड़ने पर भारवाहन करने वाले, गर्भिणी स्त्री और गुरुजनों के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए।१२-१४।

([1] न पश्येच्चार्कमुद्यन्तं नास्तं यान्तं न चाम्भसि।
नेक्षेन्नग्नां स्त्रियं कूपं[2] शूनास्थानमघौघिनम् ॥१५
कार्पासास्थि तथा भस्म नाऽऽक्रामेद्यच्च कुत्सितम्।)
अन्तःपुरं वित्तगृहं [3]परदौत्यं व्रजेन्न हि ॥१६

उदय होते हुए, अस्त होते हुए और जल में प्रतिबिम्बित होने वाले सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए और न तो नग्न-स्त्री को ही देखना चाहिए। कुयें, वध्यस्थान, चक्की, सूत्र, हड्डी, भस्म और किसी भी कुत्सित वस्तु को लाँघना नहीं चाहिए। मनुष्य को अन्तःपुर (दूसरे के) कोषागार और दौत्य कर्म में नहीं जाना चाहिए।१५-१६।

नाऽऽरोहेद्विषमां नावं न वृक्षं न च पर्वतम्।
अर्थायतनशास्त्रेषु तथैव स्यात् कुतूहली ॥१७
[4]लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति।
मुखादिवादनं नेहेद्विना दीपं न रात्रिगः ॥१८
नाद्वारेण विशेद्वेश्म न च वक्त्रं विरागयेत्।
कथाभङ्गं न कुर्वीत न च वासोविपर्ययम् ॥१९
भद्रं भद्रमिति ब्रूयान्नानिष्टं कीर्तयेत्क्वचित्।
[5]पालाशमाशनं वर्ज्यं देवादिच्छायया व्रजेत् ॥२०

ऊँची-नीची नाव के ऊपर, वृक्ष के ऊपर और पर्वत के ऊपर आरोहण नहीं करना चाहिए। अर्थोपार्जन एवं शास्त्र के प्रति सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। लोष्ठ को तोड़ने वाला, तिनके को काटने वाला, नाखून को चबाने

१ न पश्येत्……कुत्सितम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ख. °पं सूतिरथा°। ३ क. ङ. च. °रभूतं व्र°। ४ लोष्टमर्दी…रात्रिगः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

वाला शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। न तो मुखादि को ही बजाना चाहिये और न रात्रि में ही कहीं जाना चाहिये। भवन में विना द्वार के प्रवेश नहीं करना चाहिये। न किसी को मुँह मटकाना चाहिए। कथा को बीच में ही भङ्ग नहीं करना चाहिये और न तो वस्त्रों को ही उलटा धारण करना चाहिए। सदैव कल्याणकारी बातों को ही करना चाहिये और कहीं पर अनिष्ट भाषण नहीं करना चाहिए। पत्तों की शय्या का वर्जन करना चाहिये तथा देवता इत्यादि की छाया के साथ-साथ चलना भी नहीं चाहिए।१७-२०।

न मध्ये पूज्ययोर्यायान्नोच्छिष्टस्तारकादिदृक्।
नद्यां नान्यां नदीं ब्रूयान्न कण्डूयेद्वि (द्वि) हस्तकम्॥२१
असन्तर्प्य पितृन्देवान्नदीपारं च न व्रजेत्।
मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु न नग्नः स्नानमाचरेत्॥२२
[1]ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरम्।
स्रजं नाऽऽत्मनाऽपनयेत्खरादिकरजस्त्यजेत्॥२३
हीनान्नावहसेत्कृच्छ्रेन्नादेशे (?) निवसेच्च तैः।
वैद्यराजनदीहीने म्लेच्छस्त्रीवहुनायके॥२४
रजस्वलादिपतितैर्न भाषेत्केशवं स्मरेत्।
नासंवृतमुखः कुर्याद्धासं जृम्भां तथा क्षुतम्॥२५

दो पूज्य व्यक्तियों के बीच में नही चलना चाहिए और न जूठे मुँह नक्षत्र इत्यादि का दर्शन करना चाहिए। एक नदी में दूसरी नदी का नाम नहीं लेना चाहिए। और न तो दोनों हाथों से खुजलाना चाहिए। पितरों और देवताओं के तर्पण के बिना नदी के पार नहीं जाना चाहिए। न तो नदी में मल इत्यादि फेंकना चाहिए। नंगा होकर स्नान नहीं करना चाहिए। तदनन्तर योग-क्षेम के लिए ईश्वर का सांनिध्य प्राप्त करना चाहिए। मनुष्य को अपने आप अपनी माला नहीं उतारनी चाहिए और गदहे आदि की धूल से बचे। अपने से हीनों का उपहास नहीं करना चाहिए और न उनके साथ विदेश में ही रहना चाहिए। ऐसे स्थान में भी निवास नहीं करना चाहिए जहाँ कोई वैद्य या नदी न हो अथवा जहाँ के स्वामी म्लेच्छ, स्त्री तथा बहुत से मनुष्य हों। रजस्वला तथा पतितों के साथ कुछ भी सम्भाषण नहीं करना चाहिए। सदा भगवान् का

---

१ ततः....मीश्वरम् नास्ति ग. पुस्तके।

स्मरण करना चाहिए । बिना मुँह ढके हुए न तो हँसना चाहिए, न जम्हाई लेना चाहिए ।२१-२५।

प्रभोरप्यवमानं[1] स्वं गोपयेद्वचनं बुधः ।
इन्द्रियाणां नानुकूली वेगरोधं न कारयेत् ।।२६
नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्याद्रिपुरल्पोऽपि भार्गव ।
रथ्यातिगः सदाऽऽचामेद्विभृयान्नाग्निवारिणी ।।२७
न हुं कुर्याच्छिवं पूज्यं पादं पादेन नाऽऽक्रमेत् ।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा कस्यचिन्नाप्रियं वदेत् ।।२८
वेदशास्त्रनरेन्द्रर्षिदेवनिन्दां विवर्जयेत् ।
स्त्रीणामीर्षा[3] (र्ष्या) न कर्तव्या विश्वासं तासु वर्जयेत् ।।२९

अपने स्वामी के द्वारा किये गये अपने अपमान को भी नहीं प्रकट करना चाहिए । मनुष्य को न तो अपनी इन्द्रियों के वश में ही होना चाहिए । न उनके वेग का अवरोध ही करना चाहिए । अये भार्गव ! व्याधि और शत्रु चाहे जितने छोटे हों उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । गली में लाँघने पर सदैव आचमन करना चाहिए और अग्नि तथा जल को साथ-साथ नहीं ले जाना चाहिए । पूज्य शिव के सम्मुख हुंकार नहीं करना चाहिए । पैर से पैर को न दबावे । प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी को अप्रिय वचन नही बोलने चाहिये । वेद, शास्त्र, राजा, ऋषि और देवता की निन्दा करना सर्वथा वर्ज्य है । स्त्रियों से न तो ईर्ष्या ही करनी चाहिये और न तो उनका विश्वास ही करना चाहिए ।२६-२९।

धर्मश्रुतिं देवरतिं कुर्याद्धर्मादि नित्यशः ।
सोमस्य पूजां जन्मर्क्षे विप्रदेवादिपूजनम् ।।३०
षष्ठीचतुर्दश्यष्टम्यामभ्यङ्गं वर्जयेत्तथा ।
दूराद्गृहान्मूत्रविष्ठे नोत्तमैर्वैरमाचरेत् ।।३१

नित्य धर्मश्रवण, देवभक्ति और धर्मादि करते रहना चाहिए । जन्म के नक्षत्र में सोम, ब्राह्मण और देवता इत्यादि की पूजा करनी चाहिये । षष्ठी, अष्टमी और चतुर्दशी को तेल की मालिश नहीं करनी चाहिए । मलमूत्र घर

---

१ ख. ग. 'मानेषु गो' । २ ख. ग. 'मेद्बिलूयान्ना' । ३ ख. ग. 'णामिच्छा न ।

से दूर करना चाहिये और कभी भी उत्तम जनों के साथ वैर नहीं करना चाहिये ।३०-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये आचारकथनं नाम
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५५

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रव्यशुद्धिः

पुष्कर उवाच—

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि पुनः पाकेन मृण्मयम् ।
शुध्येन्मूत्रपुरीषाद्यैः स्पृष्टं ताम्रं सुवर्णकम् ॥१

पुष्कर बोले—अब मैं द्रव्यशुद्धि के सम्बन्ध में बतलाऊँगा । मल-मूत्र से अशुद्ध हो जाने वाली मिट्टी ताँबा, और सुवर्ण को पात्रों के पुनः आग में पका-कर शुद्ध कर लेना चाहिये।१

आवर्तितं चान्यथा तु वारिणाम्लेन[1] ताम्रकम् ।
क्षारेण कांस्यलोहानां मुक्तादेः क्षालनेन तु ॥२

अन्य किसी प्रकार से पवित्र हो जाने वाले ताम्रपत्र को अम्लमिश्रित जल से शुद्ध कर लेना चाहिये । काँसे और लोहे के पात्रों को क्षार से तथा मोती आदि को पानी से धोकर शुद्ध कर लेना चाहिये ।२

अब्जानां चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ।
शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव च ॥३
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
उष्णाम्बुना सस्नेहानां शुद्धिः सम्मार्जनाद्गृहे ॥४
शोधनान्म्रक्षणाद्वस्त्रे[2] मृत्तिकाद्भिर्विशोधनम् ।
[3]बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणां च तत्क्षणात् ॥५

सीप के बने वर्तनों, पत्थर के बने वर्तनों तथा शाक, रज्जु, मूल, फल और दालों की शुद्धि केवल धोने से हो जाती है । यज्ञकर्म में यज्ञपात्रों की शुद्धि केवल हाथों से रगड़कर हो जाती है । चिकनाहट वाले पदार्थों के ऊपर गर्मजल

---

१ च. °णा स्नानता° । २ क. ङ. °नात्प्रोक्षणा° । ३ क. ङ. चतुरस्रे ।

डालने से ही उनकी शुद्धि हो जाती है और घर की शुद्धि झाड़ू से झाड़ देने पर हो जाती है। धोकर शुद्ध किये गये वस्त्र के ऊपर मिट्टी मिले जल को छिड़क कर उससे और भी पवित्र कर लेना चाहिये। यदि बहुत से वस्त्रों की ढेरी ही किसी अस्पृश्य वस्तु से छू जाय तो उस पर जल छिड़क देने मात्र से उसकी शुद्धि मानी गई है। काष्ठ के बने हुए पात्रों की शुद्धि काट कर छील देने से होती है।३-५।

प्रोक्षणात्संहतानां तु द्रवाणां च तथोत्प्लवात्।
शयनासनयानानां शूर्पस्य शकटस्य च ॥६
[1]शुद्धिः संप्रोक्षणाज्ज्ञेया पलालेन्धनयोस्तथा।
सिद्धान्नकानां कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च ॥७
[2]गोबालैः पलपात्राणामस्थ्नां स्याच्छृङ्गवत्तथा।
निर्यासानां गुडानां च लवणानां च शोषणात् ॥८
[3]कुसुम्भकुसुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा।
शुद्धं नदीगतं तोयं [4]पण्यं तद्वत्प्रसारितम् ॥९

शय्या आदि संहत वस्तुओं के उच्छिष्ट आदि से दूषित होने पर प्रोक्षण (सींचने)मात्र से उनकी शुद्धि हो जाती है। घी, तेल आदि की शुद्धि दो कुश-पत्रों से उत्प्लवन (उछालने) मात्र से हो जाती है। शय्या, आसन, सवारी, सूप, छकड़ा, पुआल और लकड़ी की शुद्धि भी सींचने से ही जाननी चाहिये। सींग और दाँत की बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि पीली सरसों को पीस कर लगाने से होती है। नारियल और तूंबी आदि फल निर्मित पात्रों की शुद्धि गोपुच्छ के बालों द्वारा रगड़ने से होती है। शंख आदि पात्रों की शुद्धि सींग के समान ही पीली सरसों के लेप से होती है। गोंद, गुड़, नमक, कुसुम्भ के फूल, ऊन और कपास की शुद्धि धूप में सुखाने से होती है। नदी का जल सदा शुद्ध रहता है। बाजार में बेंचने के लिए फैलायी हुयी वस्तु भी शुद्ध मानी गयी है।६-९।

मुखवर्जं च गौः शुद्धा शुद्धमश्वाजयोर्मुखम्।
नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनो मुखम् ॥१०
मुखैः प्रस्रवणे वृत्ते मृगयायां सदा शुचि।
भुक्त्वा क्षुत्त्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भो विगाह्य च ॥११

---

१ शुद्धि......पलालेन्धनयोस्तथा छ. पुस्तके नास्ति। २ क. ङ. °लैः फल-मात्रा°। ३ ख घ. कुशुम्भ°। ४ ख. ग. घ. पुण्यं।

रथ्यामाक्रम्य चाऽऽचामेद्वासो विपरिधाय च ।
मार्जारश्चङ्क्रमाच्छुद्धश्चतुर्थेऽह्नि रजस्वला ॥१२
स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ॥१३
एकां लिङ्गे मृदं दद्यात्करयोस्त्रिद्विमृत्तिकाः ।
ब्रह्मचारिवनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥१४

गौ के मुँह को छोड़कर अन्य सभी अङ्ग शुद्ध हैं। घोड़े और बकरे के मुँह शुद्ध माने गये हैं। स्त्रियों का मुँह (रतिकाल में) शुद्ध है। दूध दुहने के समय बछड़ों का, पेड़ से फल गिराते समय पक्षियों का, शिकार खेलते समय कुत्तों का मुख भी शुद्ध माना गया है। भोजन करने, थूकने, सोने, पानी पीने, नहाने, सड़क पर घूमने और वस्त्र पहनने के बाद अवश्य आचमन करना चाहिये। बिलाव घूमने-फिरने से ही शुद्ध होता है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध होती है। ऋतुस्नाता स्त्री पांचवें दिन देवता और पितरों के पूजन-कार्य में सम्मिलित होने योग्य होती है। शौच के बाद पांच बार गुदा में, दस बार बायें हाथ में, फिर सात बार दोनों हाथों में, एक बार लिङ्ग में तथा दो-तीन बार हाथों में मिट्टी लगाकर धोना चाहिए। यह गृहस्थों के लिये शौच का विधान है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासियों के लिये गृहस्थ की अपेक्षा चौगुने शौच का विधान है।१०-१४।

श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ।
शुद्धिः [1]पर्युक्ष्य तोयेन मृगलोम्नां प्रकीर्तिता ॥१५
पुष्पाणां च फलानां च प्रोक्षणाज्जलतोऽखिलम् ॥१६

तसर के कपड़ों की शुद्धि बेल के फल के गूदे से होती है—अर्थात् उसे पानी में घोलकर उसमें वस्त्र को डुबो दे और फिर साफ पानी से धो दे। क्षौम आदि के वस्त्र को पीली सरसों के चूर्ण से साफ करना चाहिये। मृगचर्म या मृग के रोमों से बने हुए आसन आदि की शुद्धि उस पर जल का छींटा देने मात्र से बतायी गयी है। फूलों और फलों की भी पूर्णतः शुद्धि उन पर जल छिड़कने मात्र से हो जाती है।१५-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्रव्यशुद्धिकथनं नाम
षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५६

---

१ क. ख. ग. च. पद्माक्षतो°।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शावाशौचादि

पुष्कर उवाच—

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि[1] सूतिकाशुद्धिमेव च ।
दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥१

पुष्कर बोले—अब मैं प्रेतशुद्धि और सूतिका शुद्धि के सम्बन्ध में बतलाऊँगा । मृत्यु से उत्पन्न होने वाला अशौच सपिण्डों में दश दिनों तक रहता है ।१

जनने च तथा शुद्धिर्ब्राह्मणानां भृगूत्तम ।
द्वादशाहेन राजन्यः पक्षाद्वैश्योऽथ मासतः ॥२
([2]शूद्रोऽनुलोमतो दासे स्वामितुल्यं त्वशौचकम् ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु) ॥३

जननाशौच भी ब्राह्मणों के लिए दश दिन का ही होता है । क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य पन्द्रह दिनों में तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होते हैं । यहाँ उस शूद्र के लिए कहा गया है जो अनुलोमज हों अर्थात् जिसका जन्म उच्चजातीय अथवा सजातीय पिता से हुआ हो । स्वामी को अपने घर में जितने दिन का अशौच लगता है, सेवक को भी उतने ही दिनों का लगता है । क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों का भी जननाशौच दश दिन का ही होता है ।२-३।

ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नोति क्षत्रियस्तु तथैव च ।
विट्शूद्रयोनिः शुद्धिः [द्धः] स्यात्क्रमात्परशुरामकः ॥४
षड्रात्रेण त्रिरात्रेण षड्भिः शूद्रे तथा विशः ।
आदन्तजननात्सद्य आचूडान्नैशिकी श्रुतिः ॥५
त्रिरात्रमा व्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ।
[3]ऊनत्रैवार्षिके शूद्रे पञ्चाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥६

---

१ क. ख. ग. ङ. च. °मि मृत्तिकाशु° । २ शूद्रोऽनुलोमतो............ शूद्रयोनिषु क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ३ क. ङ. °नत्रिपाक्षिके शू° ।

द्वादशाहेन शुद्धिः स्यादतीते वत्सरत्रये ।
[1]गतैः संवत्सरैः षड्भिः शुद्धिर्मासेन कीर्तिता ।।७
स्त्रीणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
तथा च कृतचूडानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ।।८

परशुराम जी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इसी क्रम से शुद्ध होते हैं। (किसी-किसी के मत में) वैश्य तथा शूद्र के जननाशौच की निवृत्ति पन्द्रह दिनों में होती है। यदि बालक दाँत निकलने के पहले मर जाय तो उसके जननाशौच की सद्यः शुद्धि मानी गयी है। दाँत निकलने के बाद चूड़ाकरण से पहले तक की मृत्यु में एक रात का अशौच होता है। यज्ञोपवीत से पहले तक तीन रात का तथा उसके बाद दश रात का अशौच बताया गया है। तीन वर्ष से कम का शूद्र बालक यदि मृत्यु को प्राप्त हो तो पाँच दिनों के बाद उसके अशौच की निवृत्ति होती है। तीन वर्ष के बाद मृत्यु होने पर बारह दिन बाद शुद्धि होती है तथा छह वर्ष व्यतीत होने पर उसके मरण का अशौच एक मास के बाद निवृत्त होता है। कन्याओं में जिनका मुण्डन नहीं हुआ है, उनके मरणाशौच की शुद्धि एक रात्रि में मानी गयी है और जिनका मुण्डन हो चुका है, उनकी मृत्यु होने पर उनके बन्धु-बान्धव तीन दिन बाद शुद्ध होते हैं ।४-८।

विवाहितासु नाऽऽशौचं पितृपक्षे विधीयते ।
पितृगृहे प्रसूतानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।।९
सूतिका दशरात्रेण शुद्धिमाप्नोति नान्यथा ।
विवाहिता हि चेत्कन्या म्रियते पितृवेश्मनि ।।१०
तस्यास्त्रिरात्राच्छुध्यन्ति बान्धवा नात्र संशयः ।
समानं लघ्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ।।११
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ।
देशान्तरस्थः श्रुत्वा तु कुल्यानां मरणोद्भवौ ।।१२
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ।
अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।।१३

---

१ क. ङ. मृतैः ।

[1]तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुध्यति ।
म (मा) तामहे तथाऽतीत आचार्ये च तथामृते ॥१४

जिन कन्याओं का विवाह हो चुका है, उनकी मृत्यु का अशौच पितृकुल को नहीं प्राप्त होता है। जो स्त्रियाँ पिता के घर में सन्तान को जन्म देती हैं, उनके उस जननाशौच की शुद्धि एक रात में होती है। किन्तु स्वयं सूतिका दश रात में ही शुद्ध होती है, इसके पहले नहीं। यदि विवाहिता कन्या पिता के घर में मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसके बन्धु-बान्धव निश्चय ही तीन रात में शुद्ध हो जाते हैं। समान अशौच को पहले निवृत्त करना चाहिए और असमान अशौच को बाद में, ऐसा ही धर्मराज का वचन है। परदेश में रहने वाला पुरुष यदि अपने कुल में किसी के जन्म या मरण होने का समाचार सुने तो दश रात में जितना समय शेष हो, उतने ही समय तक उसे अशौच लगता है। यदि दश दिन व्यतीत होने पर उसे उक्त समाचार का ज्ञान हो, तो वह तीन रात तक अशौच युक्त रहता है तथा यदि एक वर्ष व्यतीत होने के बाद उपर्युक्त बातों की जानकारी हो तो केवल स्नानमात्र से शुद्धि हो जाती है। नानाऔर आचार्य के मरने पर भी तीन रात तक अशौच रहता है।९-१४।

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशोधनम् ।
सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ॥१५
दशरात्रेण शुध्यन्ति द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्याः पञ्चदशाहेन शूद्रा मासेन भार्गव ॥१६
[2]उच्छिष्टसंनिधावेकं तथा पिण्डं निवेदयेत् ।
कीर्तयेच्च तथा तस्य नामगोत्रे समाहितः ॥१७

परिवार में गर्भपात हो जाने पर अशौच उतने ही दिनों तक रहता है, जितने मास का गर्भ होता है। अये भार्गव ! सपिण्ड की मृत्यु होने पर ब्राह्मण का अशौच दस दिनों तक, क्षत्रिय का बारह दिनों तक, वैश्य का पन्द्रह दिनों तक तथा शूद्र का एक मास तक रहता है। उच्छिष्ट के निकट ही पिण्डदान करते हुए जिसके निमित्त पिण्डदान किया जा रहा हो, उसके नाम और गोत्र का संकीर्तन ध्यानावस्थित होकर करना चाहिए।१५-१७।

---

१ तथा संवत्सरेऽतीते..........तथा मृते क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ क. च. °च्छिन्नसं°।

भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु पूजितेषु [1]धनेन च ।
विसृष्टाक्षततोयेषु गोत्रनामानुकीर्तनैः ॥१८
[2]चतुरङ्गुलविस्तारं तत्खातं तावदन्तरम् ।
वितस्तिदीर्घं कर्तव्यं विकर्षूणां तथा त्रयम् ॥१९
विकर्षूणां समीपे च ज्वालयेज्ज्वलनत्रयम् ।
[3]सोमाय वह्नये राम यमाय च समासतः ॥२०
जुहुयादाहुतीः सम्यक्सर्वत्रैव चतुस्त्रयः । (?)
पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्प्राग्वदेव पृथक्पृथक् ॥२१

ब्राह्मणों को भोजन कराकर तथा धन से उनका आदर करके मृतक के गोत्र और नाम का उच्चारण करते हुए अक्षत और जल फेंकना चाहिए । तदनन्तर चार-चार अंगुल की दूरी पर तीन विकर्षुओं का खनन करना चाहिए, जिनकी लम्बाई एक बालिस्त और चौड़ाई चार अंगुल हो । हे परशुराम ! विकर्षुओं के समीप सोम, अग्नि और यम के लिए तीन ज्वालाओं को प्रज्वलित करना चाहिए । सर्वत्र बारह आहुतियाँ देनी चाहिए और पहले के समान अलग-अलग पिण्डदान भी करना चाहिए ।१८-२१।

अन्नेन दध्ना मधुना तथा मांसेन पूरयेत् ।
मध्ये चेदधिमासः स्यात्कुर्यादभ्यधिकं तु तत् ॥२२
अथवा द्वादशाहेन सर्वमेतत्समापयेत् ।
संवत्सरस्य मध्ये च यदि स्यादधिमासकः ॥२३
तथा द्वादशके श्राद्धे कार्यं तदधिकं भवेत् ।
[4]संवत्सरे समाप्ते तु श्राद्धं श्राद्धवदाचरेत् ॥२४

इन पात्रों को अन्न, दही, मधु तथा मांस से भर देना चाहिए, किन्तु यदि बीच में अधिकमास पड़ जाय तो एक आहुति अधिक देनी चाहिए अथवा इन सभी कृत्यों को बारहवें दिन भी किया जा सकता है । वर्ष के बीच में अधिक मास आ जाने से बारहवें मास में एक श्राद्ध अधिक करना चाहिए, अन्यथा बारह दिनों में ही इस समस्त कार्य को समाप्त कर देना चाहिए । बारहवें श्राद्ध में ही अधिक श्राद्ध कर दिया जाता है । वर्ष की समाप्ति पर पहले के समान ही श्राद्ध करना चाहिए ।२२-२४।

---

१ क. ङ. वनेषु । ग. घनेषु । २ क. ङ. °रम्यानविस्तारं तत्स्यातं वदतां वरम् । वि° । ३ सोमाय..........समासतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।
४ सम्वत्सरे..............श्राद्धवदाचरेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

प्रेताय तत ऊर्ध्वं च तस्यैव पुरुषत्रये ।
पिण्डान्विनिर्वपेत्तद्वच्चतुरस्तु समाहितः ।।२५
सम्पूज्य दत्त्वा पृथिवी समाना[1] इति चाप्यथ ।
योजयेत्प्रेतपिण्डं तु पिण्डेष्वन्येषु भार्गव ।।२६
प्रेतपात्रं च पात्रेषु तथैव विनियोजयेत् ।
पृथक्पृथक्प्रकर्तव्यं कर्मैतत्कर्मपात्रके ।।२७

जिसके निमित्त श्राद्ध किया जाता है, उसकी तीन पीढ़ियों के लिये तीन पिण्डों का निर्वाप करके चौथे पिण्ड का निर्वाप उसके लिए किया जाता है। उसका पूजन करके "पृथिवी समाना" इत्यादि मन्त्र से प्रेतपिण्ड को अन्य पिण्डों में मिलाना चाहिए। इसी प्रकार प्रेतपात्र को भी अन्य पात्रों में मिला देना चाहिए। अलग-अलग पात्रों में अलग-अलग कर्मों को करना चाहिये।२५-२७।

मन्त्रवर्जमिदं कर्म शूद्रस्य तु विधीयते ।
सपिण्डीकरणं स्त्रीणां कार्यमेवं तदा भवेत् ।।२८
श्राद्धं कुर्याच्च प्रत्यब्दं प्रेते कुम्भान्नमब्दकम् ।
गङ्गायाः सिकता धारा यथा वर्षति वासवे ।।२९
शक्या गणयितुं लोके न त्वतीताः पितामहाः ।
काले सततगस्थैर्यं[2] नास्ति तस्मात्क्रियां चरेत् ।।३०
देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं [3]लभेत् ।
नोपकुर्यान्नरः शोचन्प्रेतस्याऽऽत्मन एव वा ।।३१

शूद्र को यह कर्म बिना मन्त्र के ही करना चाहिए। स्त्रियों का भी सपिण्डीकरण करना चाहिए। प्रत्येक वर्ष यह श्राद्ध करना चाहिए और प्रतिवर्ष अन्न से परिपूर्ण घड़ा भी पितरों को अर्पित करना चाहिए। जिस प्रकार गङ्गा की रेती अथवा वर्षा से बढ़ी हुयी धारा के बिन्दुओं की गणना नहीं की जा सकती है उसी प्रकार इस लोक में मरे हुए पितरों की भी गणना नहीं की जा सकती है। इसलिए जितनी जल्दी जल्दी सम्भव हो, श्राद्ध करना चाहिए जिससे पितरों को प्रेतलोक में किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये। मनुष्य को श्राद्ध करते समय शोक नहीं करना चाहिए।२८-३१।

---

१ क. ङ. हुति। २ क. ङ. °तगाम्भीर्ये ना°। २ क. ङ. चरेत्। ३ ख. भवेत्। ग. जपेत्।

भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ।
पतितानां च नाऽऽशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये ॥३२
यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ।
([1]राजाज्ञाकारिणो ये च स्नायाद्वै प्रेतगाम्यपि[2] ॥३३
मैथुने कूटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते ।)
द्विजं न निर्हरेत्प्रेतं शूद्रेण तु कथञ्चन ॥३४
न च शूद्रं द्विजेनापि तयोर्दोषो हि जायते ।
अनाथविप्रप्रेतस्य वहनात्स्वर्गलोकभाक् ॥३५

पर्वत से कूदकर, अग्नि, पाश, जल से आत्महत्या करने वालों तथा विद्युत् और शस्त्रों से मृत्यु होने पर कुटुम्बियों को अशौच नहीं होता है। शव के साथ जाने वाले यती, व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, शिल्पी, दीक्षित तथा राजकर्मचारियों को (शवदाह के पूर्व ही) स्नान कर लेना चाहिए। मैथुन के वाद तथा चिता का धुआँ लगने के बाद तुरन्त ही स्नान करना चाहिए। ब्राह्मण के शव को शूद्रों को नहीं ले जाना चाहिए तथा शूद्र के शव को ब्राह्मणों के द्वारा नहीं ले जाना चाहिए क्योंकि इससे दोनों को दोष होता है किन्तु अनाथ ब्राह्मण के शव को ले जाने से शूद्र स्वर्ग का भागी हो जाता है। ३२-३५।

संङ्ग्रामे जयमाप्नोति प्रेतेऽनाथे च काष्ठदः ।
संकल्प्य बान्धवं प्रेतमपसव्येन तां चितिम् ॥३६
परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्युः सर्वे सवाससः ।
प्रेताय च तथा दद्युस्त्रींस्त्रींश्चैवोदकाञ्जलीन् ॥३७
द्वार्यश्मनि पदं दत्त्वा प्रविशेयुस्तथा गृहम् ।
अक्षतान्निक्षिपेद्वह्नौ निम्बपत्रं विदश्य च ॥३८
[3]पृथक् शयीरन्भूमौ च क्रीतलब्ध्वा (ब्ध्व) शनो भवेत् ।
एकः पिण्डः दशाहे तु श्मश्रुकर्मकरः शुचिः ॥३९
सिद्धार्थकैस्तिलैर्विद्वान्मज्जेद्वासोऽपरं दधत् ।
अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भश्रुते तथा ॥४०
कार्यो नैवाग्निसंस्कारो नैव चास्योदकक्रिया ।

---

१ राजाज्ञाकारिणो....विधीयते । क. । पुस्तके नास्ति ।२ क. ङ. °तश।म्यति । मै° । ख. ग.° तमास्पति । मै°। ३ पृथक्....शुचिः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

चतुर्थे च दिने कार्यस्तथाऽस्थ्नां चैव संचयः ॥४१
अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४२

अनाथ व्यक्ति के मर जाने पर उसकी चिता में लकड़ी लगाने वाले को संग्राम में विजय प्राप्त होती है। चिता में आग लगाकर मृतक के बान्धवों को अपनी बाईं ओर से चिता की परिक्रमा करके वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए। शव-दाह के समय उपस्थित लोगों में से प्रत्येक को मृतक के लिए तीन-तीन जलाञ्जलियाँ देनी चाहिए। श्मशान-स्थल से घर पहुँच कर पहले द्वार पर पत्थर से अपने चरण-तल को रगड़कर घर में प्रवेश करना चाहिए। पहले नीम की पत्तियों को चबाकर अक्षतों को जल में फेंक देना चाहिए। रात में (स्त्री से) अलग सोकर नित्य खरीदा हुआ तथा सूक्ष्म आहार करना चाहिए। दसवें दिन पिण्डदान तथा क्षौरकर्म करने से शुद्धि होती है। विद्वान् व्यक्ति को सफेद सरसों और तिलों के साथ दूसरा वस्त्र धारण करके मज्जन करना चाहिए। जिस बालक की मृत्यु दाँत निकलने के पहले होती है अथवा जिसका गर्भपात हुआ हो ऐसे शिशु का न तो दाह-संस्कार ही होता है और न तो उसे जलाञ्जलि ही दी जाती है। चौथे दिन मृतक की अस्थियों का सञ्चय करना चाहिए। अस्थिसञ्चय के बाद अङ्गस्पर्श का विधान बताया गया है।३६-४२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शावाशौचकथनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५७

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

स्रावाद्यशौचम्

पुष्कर उवाच[1]—

स्रावाशौचं प्रवक्ष्यामि मन्वादिमुनिसंमतम् ।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे त्र्यहेण वा ॥१
चातुर्मासिकपातान्ते दशाहं पञ्चमासतः ।
राजन्ये च चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च ॥२

---

१ क. ख. ग. च. °च। शावा°।

अष्टाहेन तु शूद्रस्य द्वादशाहादतः परम् ।
स्त्रीणां विशुद्धिरुदिता स्नानमात्रेण वै पितुः ॥३

पुष्कर बोले—अब मैं गर्भपात से उत्पन्न अशौच के सम्बन्ध में बतलाऊँगा, जो कि मनु इत्यादि मुनियों के द्वारा कहा गया है। यदि गर्भपात चौथे महीने में हो तो अशौच-काल केवल तीन दिनों तक रहता है, किन्तु यदि इसके बाद यह दुर्घटना घटित हो तो अशौच दस दिन तक रहता है। उपर्युक्त स्थिति में क्षत्रिय के लिए चार और वैश्य के लिए पाँच दिनों तक अशौच रहता है। ऐसी स्थिति में शूद्रों का अशौच आठ दिनों तक रहता है। गर्भपात से स्त्रीं का अशौच तो बारह दिन तक चलता है, किन्तु पिता स्नानमात्र से ही शुद्ध हो जाता है।१-३।

न स्नानं हि सपिण्डे स्यात्त्रिरात्रं सप्तमाष्टयोः। (?)
सद्यः शौचं सपिण्डानामा दन्तजननात्तथा ॥४
आचूडादेकरात्रं स्यादा व्रताच्च त्रिरात्रकम्।
दशरात्रं भवेदस्मान्मातापित्रोस्त्रिरात्रकम्[1] ॥५
अजातदन्ते तु मृते कृतचूडेऽर्भके तथा।
प्रेते न्यूने त्रिभिर्वर्षैर्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ॥६

पिता के सपिण्डों को स्नान की आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु उसकी सात या आठ पीढ़ियों के व्यक्तियों को तीन रातों तक अशौच रहता है। जिस बच्चे के दाँत नहीं निकलते हैं, उसकी मृत्यु पर सपिण्डों का अशौच तुरन्त ही समाप्त हो जाता है, चूड़ाकरण संस्कार के पहिले मृत्यु होने से एक रात्रि तक और ब्रह्मचर्य आश्रम में जाने से पूर्व मृत्यु होने पर अशौच तीन रात्रियों तक रहता है। सामान्य रूप से बालक की मृत्यु पर माता-पिता का अशौच दस रात तक रहता है, किन्तु चूड़ाकरण संस्कार के बाद भी यदि बालक की मृत्यु दाँत निकलने के पहिले हो जाती है तो यह अशौच तीन रातों में ही समाप्त हो जाता है। तीन वर्ष से कम अवस्था वाले बालक की मृत्यु पर एक रात में ही शुद्धि हो जाती है।४-६।

---

१ ग. °म्। सजा°।

[1]द्व्यहेन क्षत्रिये शुद्धिस्त्रिभिर्वैश्ये मृते तथा ।
शुद्धिः शूद्रे पञ्चभिः स्यात्प्राग्विवाहाद्द्विषट् त्वहः ॥७
(यत्र त्रिरात्रं विप्राणामशौचं संप्रदृश्यते ।
तत्र शूद्रे द्वादशाहः षण्नवक्षत्रवैश्ययोः ॥८
द्व्यब्दे नैवाग्निसंस्कारो मृते तं निखनेद्भुवि ।
न चोदकक्रिया तस्य नाम्नि चापि कृते सति ॥९
जातदन्तस्य वा कार्या स्यादुपनयनाद्दश ।
एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥१०
हीने हीनतरे चैव त्र्यहश्चतुरहस्तथा ।
पञ्चाहे नाग्निहीनस्तु दशाहाद्ब्राह्मणब्रुवः ॥११

क्षत्रिय बालक के मरने पर उसके सपिण्डों की शुद्धि दो दिन पर, वैश्य-बालक के मरने पर उसके सपिण्डों की तीन दिन पर, तथा शूद्र बालक की मृत्यु हो तो उसके सपिण्डों की पाँच दिनों पर शुद्धि होती है। शूद्र बालक यदि विवाह के पहले मर जाय तो उसे बारह दिनों का अशौच लगता है। जिस अवस्था में ब्राह्मण को तीन रात का अशौच लगता है, उसी में शूद्र के लिये बारह दिन का अशौच लगता है। क्षत्रिय के लिए छह दिन, वैश्य के लिए नौ दिनों का अशौच लगता है। दो वर्ष के बालक का अग्नि द्वारा दाहसंस्कार नहीं होता, उसकी मृत्यु होने पर उसे धरती में गाड़ देना चाहिए। उसके लिये बान्धवों को उदक-क्रिया (जलाञ्जलि-दान) नहीं करनी चाहिए। अथवा जिसका नामकरण हो गया हो या जिसके दाँत निकल आये हों, उसका दाह-संस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दान करना चाहिए। उपनयन के पश्चात् बालक की मृत्यु हो तो दश दिन का अशौच लगता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा तीनों वेदों का स्वाध्याय करता है, ऐसा ब्राह्मण एक दिन में ही शुद्ध हो जाता है। जो उससे हीन और हीनतर है, अर्थात् जो दो अथवा एक वेद का स्वाध्याय करने वाला है, उसके लिए तीन एवं चार दिन में शुद्ध होने का विधान है। जो अग्निहोत्र कर्म से रहित है, वह पाँच दिन में शुद्ध होता है। जो केवल 'ब्राह्मण' नामधारी है (वेदाध्ययन या अग्निहोत्र नहीं करता) वह दश दिन में शुद्ध होता है।७-११।

---

१ क. ग. च. त्र्यहेन (ण)।

क्षत्रियो नवसप्ताहाच्छुध्येद्विप्रो गुणैर्युतः ।
दशाहात्सगुणो वैश्यो विंशाहाच्छूद्र एव च ॥१२
दशाहाच्छुध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥१३
गुणोत्कर्षे दशाहाप्तौ त्र्यहमेकाहकं त्र्यहे ।
एकाहाप्तौ सद्यः[1] शौचं सर्वत्रैवं समूहयेत् ॥१४
दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः ।
स्वामितुल्यमशौचं स्यान्मृते[2] पृथक्पृथग्भवेत् ॥१५
मरणादेव कर्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निभिः ।
दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधिः ॥१६

गुणवान् ब्राह्मण सात दिन में शुद्ध होता है। गुणवान् क्षत्रिय नौ दिन में, वैश्य दश दिन में तथा शूद्र बीस दिन में शुद्ध होता है। साधारण ब्राह्मण दश दिन में, साधारण क्षत्रिय बारह दिन में, साधारण वैश्य पन्द्रह दिन में और साधारण शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। गुणों की अधिकता होने पर, यदि दश दिन का अशौच प्राप्त हो तो वह तीन ही दिन तक रहता है, तीन दिनों तक का अशौच प्राप्त हो तो वह एक ही दिन रहता है तथा एक ही दिन का अशौच प्राप्त हो तो उसमें तत्काल की शुद्धि का विधान है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहा कर लेनी चाहिए। दास, छात्र, भृत्य और शिष्य— ये यदि अपने स्वामी अथवा गुरु के साथ रहते हों तो गुरु अथवा स्वामी की मृत्यु होने पर इन सब को स्वामी एवं गुरु के कुटुम्बीजनों के समान ही पृथक्पृथक् अशौच लगता है। जिसका अग्नि से संयोग न हो अर्थात् जो अग्निहोत्र न करता हो, उसे सपिण्ड पुरुषों की मृत्यु होने के बाद ही तुरन्त अशौच लगता है, परन्तु जिसके द्वारा नित्य अग्निहोत्र का अनुष्ठान होता हो, उस पुरुष को किसी कुटुम्बी या जाति-बन्धु की मृत्यु होने पर जब उसका दाह-संस्कार सम्पन्न हो जाता है, उनके बाद अशौच प्राप्त होता है।१२-१६।

सर्वेषामेव वर्णानां त्रिभागात्स्पर्शनं भवेत् ।
त्रिचतुष्पञ्चदशभिः स्पृश्यवर्णाः क्रमेण तु ॥१७

---

१ ङ. सदा। २ क. ङ. °ते वाऽपि पृथक्-पृथक्। म°। ३ ख.° थक्स्वकं भवे°।

चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा ।
अस्थिसंचयनं कार्यं वर्णानामनुपूर्वशः ॥१८

सभी वर्ण के लोगों का अशौच एक तिहाई समय बीत जाने पर शारीरिक स्पर्श का अधिकार प्राप्त हो जाता है । इस नियम के अनुसार ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः तीन-चार, पाँच तथा दश दिन के अनन्तर स्पर्श करने योग्य हो जाते हैं । ब्राह्मण आदि वर्णों का अस्थिसंचय क्रमशः चार, पाँच, सात तथा नौ दिनों पर करना चाहिए ।१७-१८।

अहस्त्वदत्तकन्यासु प्रदत्तासु त्र्यहं भवेत् ।
पक्षिणी संस्कृतास्वेव स्वस्रादिषु विधीयते ॥१९
पितृगोत्रं कुमारीणां व्यूढानां भर्तृगोत्रता[1] ।
जलप्रदानं पित्रे च उद्वाहे चोभयत्र तु ॥२०
दशाहोपरि पित्रोश्च दुहितुर्मरणे त्र्यहम् ॥
सद्यः शौचं सपिण्डानां पूर्वं चूडाकृतेर्द्विज ॥२१
एकाहतो ह्या विवाहादूर्ध्वं हस्तोदकात्त्र्यहम् ।
पक्षिणी भ्रातृपुत्रस्य सपिण्डानां च सद्यतः (?) ॥२२
दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ।
षड्भिस्त्रिभिरहै (ह्वै) केन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥२३

जिस कन्या का वाग्दान नहीं किया गया है, यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो बन्धु-बान्धवों को एक दिन का अशौच लगता है । जिसका वाग्दान हो गया है, किन्तु विवाह नहीं हुआ है, उस कन्या के मरने पर तीन दिन का अशौच लगता है । यदि ब्याही हुई बहिन या पुत्री आदि की मृत्यु हो तो दो दिन एक रात का अशौच लगता है । कुमारी कन्याओं का वही गोत्र है, जो पिता का है । जिनका विवाह हो गया है, उन कन्याओं का गोत्र वह है जो उनके पति का है । विवाह हो जाने पर कन्या की मृत्यु हो तो उसके लिए जलाञ्जलि-दान का कर्तव्य पिता पर भी लागू होता है, पति पर तो है ही । तात्पर्य यह कि विवाह होने पर पिता और पति—दोनों कुलों में जल-दान की क्रिया प्राप्त होती है । यदि दश दिनों के बाद और चूडाकरण के पहले कन्या की मृत्यु हो तो माता-पिता को तीन दिन का अशौच लगता है और सपिण्ड पुरुषों की तत्काल ही

१ ख. ग. °त्रकम् । ज° ।

शुद्धि होती है। चूडाकरण के बाद वाग्दान के पहले तक उन्हें तीन दिन का अशौच प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस कन्या के भतीजों को दो दिन एक रात का अशौच रहता है, किन्तु अन्य सपिण्ड पुरुषों की तत्काल शुद्धि होती है। ब्राह्मण सजातीय पुरुषों के यहाँ जन्म-मरण में सम्मिलित हो तो दस दिन में शुद्ध होता है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के यहाँ जन्म-मृत्यु में सम्मिलित होने पर क्रमशः छह, तीन तथा एक दिन में शुद्ध होता है।१९-२३।

एतज्ज्ञेयं सपिण्डानां वक्ष्ये चानौरसादिषु।
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥२४
परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते।
वृथा शंकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥२५
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्त्ततोदकक्रिया।
मात्रैकया द्विपितरौ भ्रातरावन्यगामिनौ ॥२६
एकाहः सूतके तत्र [1]मृतके तु द्व्यहो [हं] भवेत्।
सपिण्डानामशौचं हि समानोदकतां[2] वदे ॥२७

यह जो सपिण्ड-सम्बन्धी नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्ड पुरुषों से ही सम्बन्ध रखता है, ऐसा जानना चाहिए। अब जो औरस नहीं हैं, ऐसे पुत्र आदि के विषय में बताऊँगा। औरस-भिन्न क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्रों के मरने पर तथा जिसने अपने को छोड़कर दूसरे पुरुष से सम्बन्ध जोड़ लिया हो अथवा जो दूसरे पति को छोड़कर आयी हो और अपनी भार्या बनकर रहती हो, ऐसी स्त्री के मरने पर तीन रात में अशौच की निवृत्ति होती है। स्वधर्म का त्याग करने के कारण जिनका जन्म व्यर्थ हो गया है, जो वर्णसंकर सन्तान हो अर्थात् नीचवर्ण के पुरुष और उच्चवर्ण की स्त्री से जिसका जन्म हुआ हो, जो संन्यासी बनकर इधर-उधर घूमते फिरते रहे हों और जो अशास्त्रीय विधि से विधि-बन्धन आदि के द्वारा प्राण-त्याग कर चुके हों, ऐसे लोगों के निमित्त बान्धवों को जलाञ्जलि-दान नहीं करना चाहिए, उनके लिए उदक-क्रिय निवृत्त हो जाती है। एक ही माता द्वारा दो पिताओं से उत्पन्न जो दो भाई हो, उनके जन्म में सपिण्ड पुरुषों को एक दिन का अशौच लगता है और मरने पर दो दिन का। यहां तक सपिण्डों का अशौच बताया गया है। अब 'समानोदक' का बता रहा हूँ।२४-२७।

---

१ ङ॰ °के न तथा भ° । २ ख. ग.. °कजं व° ।

बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ।
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति ॥२८
दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके ।
त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नानाच्छुध्यन्ति गोत्रिणः ॥२९
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
समानोदकभावस्तु निवर्तेताऽऽचतुर्दशात् ॥३०
जन्मनामस्मृते वै तत्तत्परं गोत्रमुच्यते ।
विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्[1] ॥३१
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥
अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥३२

दाँत निकलने से पहले बालक की मृत्यु हो जाय, कोई सपिण्ड पुरुष देशान्तर में रहकर मरा हो और उसका समाचार सुना जाय तथा किसी असपिण्ड पुरुष की मृत्यु हो जाय तो इन सब अवस्थाओं में (नियत अशौच का काल बिताकर) वस्त्र सहित जल में डुबकी लगाने पर तत्काल ही शुद्धि हो जाती है। मृत्यु तथा जन्म के अवसर पर सपिण्ड पुरुष दश दिनों में शुद्ध होते हैं। एक कुल के असपिण्ड पुरुष तीन रात में शुद्ध होते हैं और एक गोत्र वाले पुरुष स्नान करने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं। सातवीं पीढ़ी में सपिण्ड भाव की निवृत्ति हो जाती है और चौदहवीं पीढ़ी तक समानोदक सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। किसी के मत में जन्म और नाम का स्मरण न रहने पर अर्थात् हमारे कुल में अमुक पुरुष हुये थे, इस प्रकार जन्म और नाम दोनों का ज्ञान न रहने पर— समानोदक भाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद केवल गोत्र का सम्बन्ध रह जाता है। जो दशाह बीतने के पूर्व परदेश में रहने वाले किसी जाति-बन्धु की मृत्यु का समाचर सुन लेता है, उसे दशाह में जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिन का अशौच लगता है। दशाह बीत जाने पर उक्त समाचार सुने तो तीन रात का अशौच प्राप्त होता है। २८-३२।

संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति ।
मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥३३
मृते[2] जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ।
श्यालके तत्सुते चैव स्नानमात्रं विधीयते ॥३४

---

१ ङ ह्यहर्निशः। २ ङ. मित्रे।

मातामह्यां तथाऽऽचार्ये मृते मातामहे त्र्यहम् ।
दुर्भिक्षे राष्ट्रसम्पाते आगतायां तथाऽऽपदि ॥३५
उपसर्गमृतानां च दाहे ब्रह्मविदां तथा ।
सत्रिव्रति ब्रह्मचारिसङ्ग्रामे देशविप्लवे ॥३६
दाने यज्ञे विवाहे च सद्यः शौचं विधीयते ।
विप्रगोनृपहन्तृणामनुक्तं चाऽऽत्मघातिनाम् ॥३७

मृत्यु का समाचार एक वर्ष बाद प्राप्त होने पर जल का स्पर्श करके ही शुद्धि हो जाती है । मामा, बहिन, शिष्य, ऋत्विग् और बान्धवों की मृत्यु पर अशौच-काल एक रात तक ही रहता है । जामाता, नाती, भाञ्जे, साले और साले के पुत्र की मृत्यु पर शुद्धि के लिए केवल स्नान का ही विधान किया गया है । नाना और नानी की मृत्यु पर अशौच तीन दिनों तक चलता है । दुर्भिक्ष के समय राष्ट्र के नष्ट हो जाने पर, विपत्ति आने से, बीमारी से, जलकर मरने से ब्रह्मविद् की मृत्यु पर सत्र करने वाले, व्रती और ब्रह्मचारी की मृत्यु पर, युद्ध में देश में विप्लव होने पर तथा दान, यज्ञ या विवाह में मृत्यु होने पर तुरन्त ही शुद्धि हो जाती है । गोहत्या करने वाले, राजहत्या करने वाले, ब्रह्म हत्या करने वाले और आत्महत्या करने वाले की मृत्यु होने पर किसी प्रकार अशौच नहीं लगता है। ३३-३७।

असाध्यव्याधियुक्तस्य स्वाध्याये चाक्षमस्य च ।
प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्नितोयप्रवेशनम् ॥३८
अपमानात्तथा क्रोधात्स्नेहात्परिभवाद्भयात् ।
उद्बध्य म्रियते नारी पुरुषो वाककथंचन ॥३९
आत्मघाती चैकलक्षं वसेत्स नरकेऽशुचौ ।
वृद्धः[1] श्रौतस्मृतेर्लुप्तः परित्यजति यस्त्वसून् (:) ॥४०
त्रिरात्रं तत्र चाशौचं द्वितीयेचास्थिसंचयम् (:) ।
तृतीये तूदकं कार्यं चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥४१

असाध्य व्याधि से युक्त और स्वाध्याय में असमर्थ व्यक्ति के लिए प्राश्चित्त है—अग्नि अथवा जल में प्रवेश । अपमान के कारण, क्रोध के कारण, स्नेह के कारण और पराजय के कारण जो स्त्री अथवा पुरुष फाँसी लगाकर आत्म हत्या करता है, वह एक लाख वर्ष तक अपवित्र नरक में रहता है । वृद्ध तथा

---

१ ग. °द्धः शोचस्मृ° ।

श्रौत और स्मार्त कर्मों से रहित व्यक्ति की मृत्यु पर तीन रातों तक अशौच रहता है। इनके लिए दूसरे दिन अस्थि-संचय, तीसरे दिन जलक्रिया और चौथे दिन श्राद्धकर्म करना चाहिए। ३८-४१।

विद्युदग्निहतानां च त्र्यहं शुद्धिः सपिण्डके।
पाषण्डाश्रिता भर्तृघ्न्यो नाशौचोदकगाः स्त्रियः ॥४२
पितृमात्रादिपाते तु आर्द्रवासा ह्युपोषितः॥
अतीतेऽब्दे प्रकुर्वीत प्रेतकार्यं यथाविधि ॥४३
यः कश्चित्तु हरेत्प्रेतमसपिण्डं कथंचन।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥४४

विद्युत् और अग्नि से किसी की मृत्यु होने पर सपिण्ड तीन दिनों में शुद्ध हो जाता है। पाखण्डिनी, अपने पतियों का हनन करने वाली स्त्रियों की मृत्यु पर किसी प्रकार का अशौच नहीं लगता है। पिता और माता के द्वारा परित्यक्त पुत्र उनकी मृत्यु का समाचार सुनने पर स्नान करने से ही पवित्र हो जाता है और ऐसे पुत्र के द्वारा अपने माता-पिता का श्राद्ध एक वर्ष बाद करना चाहिए। जो व्यक्ति किसी असपिण्ड व्यक्ति के शव का वहन करता है वह वस्त्रों के सहित स्नान करने से और घृत चखने से ही शुद्ध हो जाता है। ४२-४४।

यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुध्यति।
अनदन्नन्नमह्नैव न वै तस्मिन्गृहे वसेत् ॥४५
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।
पदे पदे यज्ञफलं शुद्धिः स्यात्स्नानमात्रतः ॥४६
प्रेतीभूतं द्विजः शूद्रमनुगच्छंस्त्र्यहाच्छुचिः।
मृतस्य बान्धवैः सार्धं कृत्वा च परिदेवनम् ॥ ४७
वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकामतः।
शूद्रायाः प्रसवो गेहे शूद्रस्य मरणं तथा ॥४८
भाण्डानि तु परित्यज्य त्र्यहाद्भूलेपतः शुचिः।
न विप्रं श्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्[1] ॥४९

मृतक के घर में अन्नग्रहण करने वाले दस दिनों में शुद्ध होते हैं और जो लोग उसके यहाँ अन्न नहीं खाते वे एक ही दिन में शुद्ध हो जाते हैं। किन्तु

१. ग नार्चयेत्।

उन लोगों को मृतक के घर नहीं रहना चाहिए। अनाथ ब्राह्मण के शव को वहन करने वाले ब्राह्मण पद-पद पर यज्ञ फल प्राप्त करते हैं और उनकी शुद्धि स्नान मात्र से ही हो जाती है। शूद्र के शव के पीछे चलने वाला ब्राह्मण तीन दिनों में शुद्ध होता है और मृतक के बान्धवों के साथ विलाप करने वाला भी तीन दिनों में शुद्ध होता है। अगर किसी ब्राह्मण के घर में शूद्रा को प्रसव होता है अथवा उसके घर में किसी शूद्र की मृत्यु होती है तो उसे उस रात और दिन में दान और श्राद्धादि का वर्जन करना चाहिए। इन परिस्थितियों में बरतनों को फेंककर भूमि को लीप देने से ही तीन दिनों में शुद्धि होती है। ब्राह्मण के सजातीय लोगों के रहने पर उसके शव का वहन शूद्रों द्वारा नहीं करना चाहिए। ४५-४६।

([1]नयेत्प्रेतं स्नापितं च पूजितं कुसुमैर्दहेत्।
नग्नदेहं दहेन्नैव किञ्चिद्देहं परित्यजेत् ॥५०
गोत्रजस्तु गृहीत्वा तु चितां चाऽऽरोपयेत्तदा।
आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः) ॥५१
अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरस्तथा।
अस्मात्त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥५२
असौ स्वर्गाय लोकाय मुखाग्निं प्रददेत्सुतः।
सकृत्प्रसिञ्चत्यु (न्त्यु) दकं नामगोत्रेण बान्धवाः ॥५३

शव का स्नान कराकर और पुष्प इत्यादि से उसकी पूजा करके उसका दाह करना चाहिए। शव को बिल्कुल नङ्गा करके दाह करना चाहिए और दाह के समय कुछ शरीर को छोड़ देना चाहिए। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर सगोत्र उसे ले जाकर चिता पर रख देता है और वह चिता आहिताग्नि, अनाहिताग्नि और लौकिकाग्नि नामक तीन अग्नियों से जला दी जाती है। मृतक के पुत्र को मुख में सबसे पहले यह कहते हुए आग लगानी चाहिए कि "तुम इसी से उत्पन्न हुए हो, तुम इसी में पुनः मिल आओ। यह अग्नि तुम्हें स्वर्ग लोक ले जाये"। तदनन्तर मृतक के बान्धवों को मृतक का नाम तथा उसके गोत्र का नाम लेकर उसके ऊपर जल छिड़क देना चाहिए। ५०–५३।

एवं मातामहाचार्यप्रेतानां चोदकक्रिया।
काम्योदकं सखीप्रेतस्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥५४

---

१ नयेत्प्रेतं.........व्यस्त्रिभिरग्निभिः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

अपानः शोशुचदयं दशाहं च सुतोऽर्पयेत् ।
ब्राह्मणे दश पिण्डाःस्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ॥५५
वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ता शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ।
पुत्रो वा पुत्रिकाऽन्यो वा पिण्डं दद्याच्च पुत्रवत् ॥५६
विदश्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः ।
आचम्य चाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान् ॥५७
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनैः ।
अक्षारलवणान्ना[1]: स्युर्निर्मांसा भूमिशायिनः ॥५८

इस प्रकार नाना और आचार्य की मृत्यु पर जलाञ्जलि दी जाती है। इसके अतिरिक्त मित्र, बहिन के श्वशुर और ऋत्विजों की मृत्यु पर भी तर्पण किया जाता है। तर्पण करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए कि—'जल इसे पवित्र, करे' 'मैं अमुक का पुत्र हूँ।' ब्राह्मण के लिए दस और शूद्र के लिए तीस पिण्डों का विधान है। पिण्डदान पुत्र, या पुत्रिका आदि पुत्र की तरह कर सकते हैं। दाहकर्म करने के बाद मृतक के पुत्रों तथा बान्धवों को घर लौट कर द्वार-पर नीम के पत्तों को चबाकर अग्नि, जल, गोबर और सफेद सरसों का स्पर्श करके तथा धीरे से किसी पत्थर के ऊपर अपने पैर रगड़कर घर में प्रवेश करना चाहिए। मृतक के सम्बन्धियों को क्षार और लवण से रहित तथा निरामिष भोजन करना चाहिए तथा भूमि पर शयन करना चाहिए।४५-५८।

[2]क्रीतलब्धाशनाः स्नाता आदिकर्ता दशाहकृत् ।
अभावे ब्रह्मचारी तु कुर्यात्पिण्डोदकादिकम् ॥५९
यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥६०
([3]सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोश्च सूतकम् ।
मातुकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥६१
पुत्रजन्मदिनेश्राद्धं कर्तव्यमिति निश्चितम् ।
तदहस्तत्प्रदानार्थं गोहिरण्यादिवाससाम् ॥६२
मरणं मरणेनैव सूतकं सूतकेन तु ।
उभयोरपि यत्पूर्वं तेनाऽऽशौचेन शुध्यति ॥६३

१ ग. ०पार्थाः स्युः° । २ क्रीतलब्धाशनः.........दशाहकृत् च. पुस्तके नास्ति । ३ सर्वेषां.........महोऽन्य (हरन्य) था क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

नित्य खरीदकर भोजन करना चाहिए और स्नान करना चाहिए। यह कर्म दस दिनों तक चलता है। जिस व्यक्ति ने चिता में आग लगाई हो, उसी को दशवें दिन श्राद्ध कर्म करना चाहिए। यदि श्राद्ध के उपयुक्त सामग्री का अभाव हो तो ब्रह्मचर्य रखकर पिण्डदान तथा तर्पण क्रिया कर देनी चाहिए। सपिण्डों में जो अशौच मृत्यु से होता है, वही जन्म से भी होता है। कम से कम विशेष शुद्धि की इच्छा करने वालों को तो इस प्रकार के अशौच को मानना ही चाहिए। मृत्यु से उत्पन्न होने वाला अशौच सभी कुटुम्बियों को होता है, किन्तु जन्म से उत्पन्न अशौच माता-पिता को ही लगता है। पिता की शुद्धि आचमन करने से ही हो जाती है। पुत्र-जन्म के दिन निश्चित रूप से श्राद्ध करना चाहिए और उस दिन ब्राह्मणों आदि के लिए गो, स्वर्ण और वस्त्रादि का दान करना चाहिए। मरण का अशौच मरण के साथ और और सूतक का सूतक के साथ निवृत्त होता है। दोनों में जो पहला अशौच है, उसी के साथ दूसरे की भी शुद्धि होती है।५९-६३।

सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम्।
तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम्।।६४
समानं लध्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत्।
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा।।६५
शावान्तः शाव आयाते पूर्वाशौचेन शध्यति।
गुरुणा लघु बाध्येत लघुना नैव तद्गुरु।।६६
मृतके सूतके वाऽपि रात्रि मध्येऽन्यदापतेत्।
तच्छेषेणैव शुध्येरन् रात्रिशेषे द्व्यहाधिकात्।।६७
प्रभाते यद्यशौचं स्याच्छुध्येरंश्च त्रिभिर्दिनैः।
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।।६८
दानादि विनिवर्तेत भोजने कृत्यमाचरेत्।
अज्ञाते पातकं नाऽऽद्ये भोक्तुरेकमहोऽन्य (हरन्य) था।।६९

जननाशौच में मरणाशौच हो अथवा मरणाशौच में जननाशौच हो जाय तो मरणाशौच के अधिकार में जननाशौच को भी निवृत्त मानकर अपनी शुद्धि का कार्य करना चाहिए। जननाशौच के साथ मरणाशौच की निवृत्ति नहीं होती। यदि एक समान दो अशौच हों (अर्थात् जन्मसूतक में जन्म-सूतक और मरणाशौच में मरणाशौच पड़ जाय) तो प्रथम अशौच के साथ दूसरे को भी समाप्त कर देना चाहिए और यदि असमान अशौच हो (अर्थात्

जननाशौच में मरणाशौच और मरणाशौच में जननाशौच हो) तो द्वितीय अशौच के साथ प्रथम को निवृत्त करना चाहिए, ऐसा धर्मराज का वचन है। मरणाशौच के भीतर दूसरा मरणाशौच आने पर वह पहले अशौच के साथ निवृत्त हो जाता है। गुरु अशौच से लघु अशौच बाधित होता है, लघु से गुरु अशौच का बाध नहीं होता है। मृतक अथवा सूतक में यदि अंतिम रात्रि के मध्यभाग में दूसरा अशौच आ पड़े तो उस शेष समय में ही उसकी भी निवृत्ति हो जाने के कारण सभी सपिण्ड पुरुष शुद्ध हो जाते हैं। यदि रात्रि के अन्तिम भाग में दूसरा अशौच आवे तो दो दिन अधिक बीतने पर अशौच की निवृत्ति होती है तथा यदि अन्तिम रात्रि बिताकर अन्तिम दिन के प्रातः काल अशौचान्तर प्राप्त हो तो तीन दिन और अधिक बीतने पर सपिण्डों की शुद्धि होती है। दोनों ही प्रकार के अशौचों में दश दिनों तक उस कुल का अन्न नहीं खाया जाता है। अशौच में दान आदि का भी अधिकार नहीं रहता। अशौच में किसी के यहाँ भोजन करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। अनजान में भोजन करने पर पातक नहीं लगता, जानबूझकर खानेवालों को एक दिन का अशौच प्राप्त होता है। ६४-६९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शावाशौचकथनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।१५८

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

असंस्कृतादिशौचम्

पुष्कर उवाच—

संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः।
अस्थ्नां गङ्गाम्भसि क्षेपात्प्रेतस्याभ्युदयो भवेत् ॥१
गङ्गातोये नरस्यास्थि [1]यावत्तावद्दिवस्थितिः।
आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ॥२
तेषामपि तथा [2]गाङ्गे तोयेऽस्थ्नां पतनं हितम्।
तेषां दत्तं जलं चान्नं गगने तत्प्रलीयते ॥३

---

१ क. ङ. यावानार्वङ्गिरःस्थि॰। २ क. ङ. ॰था गङ्गातोये ह्यापतनं हि॰।

पुष्कर बोले—संस्कृत अथवा असंस्कृत दोनों को हरिस्मरण से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। गङ्गाजल में मृतक की अस्थियों को फेंकने से उसकी अभ्युन्नति होती है। मनुष्य की अस्थियाँ जब तक गङ्गाजल में रहती हैं तब तक उसकी स्थिति स्वर्ग-लोक में बनी रहती है। आत्महत्या करने वालों तथा पतितों के लिए इन क्रियाओं को नहीं करना चाहिए, तथापि गङ्गाजल में उनकी अस्थियों के रहने से उनका हित तो होता ही है, उनके लिए दिया गया अन्न और जल आकाश में विलीन हो जाता है। १-३।

अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च।
नारायणबलिः [1]कार्यस्तेनानुग्रहमश्नुते ॥४
अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तत्र दत्तं न नश्यति।
पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रं जनार्दनः[2] ॥५
पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम्।
दृष्ट्वा लोकान्म्रियमाणान्सहायं धर्ममाचरेत् ॥६

पतित मृतक के लिए नारायण–बलि करनी चाहिए, क्योंकि नारायण के महान् अनुग्रह से उसे उसका कुछ अंश प्राप्त हो जाता है। भगवान् पुण्डरीकाक्ष अक्षय हैं, अतः उन्हें जो भी दिया जाता है उसका (भी) नाश नहीं होता है। जनार्दन को पात्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह (पापों में) गिरने से रक्षा किया करते हैं। निश्चय ही केवल भगवान् विष्णु ही पतितों को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। लोक को नष्ट होता हुआ देखकर सहायता रूप धर्म का आचरण करना चाहिए। ४-६।

मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतम्।
जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ॥७
धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचनगामिनम्।
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम् ॥८
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम्।
[3]क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥९
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।
न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥१०

---

१ क. ङ. कार्यः स्नेहानु०। २ क.० नः। प्रेततं भुक्तिमुक्ती हि पदमेको।
३ क. ङ. क्षेत्रपरगृ०।

मरे हुए व्यक्ति का अनुगमन उसके बान्धव मरकर भी नहीं कर सकते हैं। जाया को छोड़कर सभी के लिए यम के मार्ग भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। केवल धर्म ही मनुष्य का अनुगमन करता है, फिर वह चाहे कहीं भी (नरक या स्वर्ग) जाने वाला हो। अतः जो (धर्म) कल होने वाला है उसे आज ही कर लेना चाहिए और जिसे अपराह्ण में करना हो उसे पूर्वाह्ण में ही कर डालना श्रेयस्कर है। मृत्यु किसी के लिए यह प्रतीक्षा नहीं करती है कि उसने यह कर्म किया है अथवा नहीं। चाहे कोई व्यक्ति खेत, दुकान या घर में आसक्त हो अथवा अन्यत्र मन लगाया हुआ हो, मृत्यु आकर उसे उसी प्रकार उठा ले जाती है, जैसे भेड़िया भेड़ को उठा ले जाता है। मृत्यु के लिए न कोई शत्रु है न कोई मित्र। ७-१०।

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम्।
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ॥११
कुशाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति।
औषधानि न मन्त्रान्द्यास्त्रायन्ते मृत्युनाऽन्वितम् ॥१२
वत्सवत्प्राक्तनं कर्म कर्तारं विन्दति ध्रुवम्।
अव्यक्तादि व्यक्तमध्यमव्यक्तनिधनं जगत् ॥१३
कौमारादि यथा देहे तथा देहान्तरागमः।
नवमन्यद्यथा वस्त्रं गृह्णात्येवं शरीरकम् ॥
[1]देही नित्यमवध्योऽयं यतः शोकं ततस्त्यजेत् ॥१४

अतः वह आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर हठात् मनुष्य का अपहरण कर ले जाती है। जिसकी मृत्यु नहीं है वह सैकड़ों बाणों से बींधे जाने पर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता है, किन्तु जिसका काल आ गया है वह कुशाग्र के स्पर्श से भी जीवित नहीं रहता है। मृत्यु से ग्रसित मनुष्य को न तो ओषधि ही रक्षा कर सकती है और न मन्त्र इत्यादि। किया हुआ कर्म (गाय के पीछे दौड़ने वाले) बछड़े के समान कर्ता के पीछे लगा रहता है। संसार केवल मध्य में ही व्यक्त है, उसका आदि और अन्त तो अव्यक्त ही रहता है। शरीर में जिस प्रकार कौमार्य आदि अवस्थायें हैं वैसे ही दूसरा शरीर प्राप्त करना (मृत्यु) है। आत्मा नवीन वस्त्र की भांति दूसरा शरीर ग्रहण करने वाली हुआ करती है, क्योंकि वह स्वयं तो नित्य और अवध्य है। अतएव मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए। ११-१४।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेयेऽसंस्कृतादिशौचकथनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१५९

---

१ देही.........ततस्त्यजेत् ङ. पुस्तके नास्ति।

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमः

पुष्कर उवाच—

वानप्रस्थयतीनां च धर्मं वक्ष्ये यथा शृणु ।
जटित्वमग्निहोत्रित्वं[1] भूशय्याऽजिनधारणम् ॥१
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ।
प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिः स्नानं ब्रह्मचारिता ॥२
देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ।
गृही ह्यपत्यापत्यं च दृष्ट्वाऽरण्य समाश्रयेत् ॥३
तृतीयमायुषो भागमेकाकी वा सभार्यकः ।
ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥४
आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपश्चोग्रं चरेद्‌वली ।
अपरावृत्तिमास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ॥५

पुष्कर बोले—अब मैं वानप्रस्थियों के धर्म को कह रहा हूँ, उसे सुनो ! उसे जटाधारी, अग्निहोत्र करने वाला, भूशायी और मृगचर्म धारण करने वाला होना चाहिये । उसे वन में रहकर जल, मूल, नीवार और फलों के ऊपर जीवन-यापन करना चाहिए। उसे प्रतिग्रह का अधिकार नहीं होता है । वह तीन बार स्नान करने वाला और ब्रह्मचारी होता है । वानप्रस्थी का धर्म है देवता और अतिथि की पूजा । गृहस्थ को पुत्र के पुत्र (पौत्र) का मुख देखकर आयु के तीसरे भाग में वानप्रस्थ लेना चाहिये । वह अकेले अथवा सपत्नीक वानप्रस्थ ले सकता है । उसे ग्रीष्म में निरन्तर पञ्चाग्नि का सेवन करना चाहिये । वर्षा में खु आकाश के नीचे रहना चाहिये और हेमन्त में गीले वस्त्र धारण करना चाहिये । इस प्रकार उसे उग्र तपस्या करनी चाहिये । उसे अपरावृत्ति में रहकर सरल भाव से दिशाओं में चला जाना चाहिये ।१-५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वानप्रस्थाश्रमकथनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६०

---

१. क. ङ. °होतृत्व° ।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

यतिधर्माः

पुष्कर उवाच—

यतिधर्मं प्रवक्ष्यामि ज्ञानमोक्षादिदर्शकम् ।
चतुर्थमायुषो [1]भागं प्राप्य सङ्गात्परिव्रजेत् ॥१
यदह्नि विरजेद्धीरस्तदह्नि च परिव्रजेत् ।
प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥२
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य प्रव्रजेद् ब्राह्मणो गृहात् ।
एक एव चरेन्नित्यं ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥३

पुष्कर बोले—अब मै यतियों के धर्म के विषय में वतला रहा हूँ जो ज्ञान और मोक्ष का दर्शन कराने वाला है। आयु के चतुर्थ भाग में पहुँच कर आसक्ति से संन्यास ले लेना चाहिए। ब्राह्मण को सभी वेदों से युक्त प्राजापत्य इष्टि का निरूपण करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अपने आपमें अग्नि को आरोपित करके घर से निकल जाना चाहिये । नित्य अकेले भ्रमण करते हुए संन्यासी को भोजनार्थं गाँव में जाना चाहिए ।१-३।

[2]उपेक्षकोऽसंचयि (य) को मुनिर्ज्ञानसमन्वितः ।
[3]कपालं वृक्षमूलं च कुचेलमसहायता ॥४
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ।
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवनम् ॥५
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ।
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥६

उसे संसार की उपेक्षा करने वाला, असंग्रही, और ज्ञानवान् होना चाहिए। संन्यासी के लक्षण हैं—कपाल (धारण करना), वृक्षमूल, मोटे वस्त्र, एकाकीपन और सब में समान दृष्टि। उसे न तो जीवन से मोह होता है और न मृत्यु से। जिस प्रकार सेवक अपने स्वामी की प्रतीक्षा किया करता है उसी

---

१ क. ङ. °गं त्यक्त्वा सं° । २ क. ङ. उत्पक्षको मुनिर्ज्ञानं तथा चैवस °। ३ क. ङ. कथान° वृक्षमूलानि कुवेर म° ।

प्रकार संन्यासी को काल की प्रतीक्षा करनी चाहिये। उसे देख-देखकर भूमि पर पैर रखना चाहिये तथा छानकर जल पीना चाहिये।४-६।

सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्।
अलाबुदारुपत्राणि मृण्मयं वैष्णवं यतेः ॥७
[1]विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥८
माधूकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम्।
तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतम् ॥९
पाणिपात्री भवेद्वाऽपी पात्रे पात्रात्समाचरेत्।
अवेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्भवाम् ॥१०
शुद्धभावश्चरेद्धर्मं यत्र तत्राऽऽश्रमे रतः ॥१०½

सत्य से युक्त वाणी बोलना चाहिये तथा इस प्रकार का आचरण करना चाहिये जिसके लिये मन समर्थन करे। यति का पात्र लौकी, लकड़ी, मिट्टी और बाँस का होना चाहिये। यति को भिक्षा माँगने के लिये उस समय निकलना चाहिये जब रसोईं का धुवाँ समाप्त हो चुका हो, मुसल को उपयोग के बाद छोड़ दिया गया हो, आग ठण्डी पड़ गई हो, सारे बर्तनों को उलटकर रख दिया गया हो। भिक्षा पाँच प्रकार की बतलाई गई है--मधुकरी, असंक्लृप्त, प्राक्प्रणीत, अयाचित और तात्कालिक। यति को या तो करपात्री होना चाहिये अथवा दिये गये बरतन से अपने बरतन में भिक्षा को ग्रहण करना चाहिये। उसे कर्म से उत्पन्न होने वाली मनुष्यों की गति का निर्विघ्न निरीक्षण करते हुए शुद्ध भाव से अपने आश्रम के अनुसार आचरण करना चाहिये।७-१०½।

समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥११
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बु प्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥१२
[2]अजिह्मः पण्डकः पङ्गुरन्धो बधिर एव च[3]।
सद्भिश्च मुच्यतेऽसद्भिरज्ञानात्संसृतो द्विजः ॥१३
अह्नि रात्र्यां च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥१४

---

१ ख. ग. 'मे सन्नमु'। २ ख. °ह्म; खञ्जकः। ३ ख. च। षड्भिश्च।

उसे सभी प्राणियों में समदृष्टि होना चाहिए क्योंकि केवल चिह्न ही धर्म का कारण नहीं हो सकता है। यद्यपि कतक बृक्ष का फल जल को स्वच्छ करने वाला हुआ करता है, किन्तु उसके नाम के ग्रहण मात्र करने से ही जल की शुद्धि नहीं होती है। संन्यासी को सरल, नपुंसक, पङ्गु, अन्धे और बहरे की सेवा में निरत रहना चाहिये। उसे सज्जनों की संगति में रहकर दुर्जनों का साथ छोड़ देना चाहिये। रात्रि अथवा दिन में अज्ञानवश यति जिन जन्तुओं की हिंसा कर डालता है, उसकी शुद्धि के लिये उसे स्नान करके छह प्राणायामों का आचरण करना चाहिये।११-१४।

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥१५
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥१६

संन्यासी को अपने शरीर के सम्बन्ध में यह समझना चाहिये कि वह एक अस्थि-पञ्जर है जो स्नायुओं से युक्त, मांस और रक्त से सना हुआ, चमड़े से ढका हुआ, दुर्गन्धयुक्त, मल-मूत्र, से भरा हुआ, वृद्धावस्था और शोक से समन्वित रोगों का आगार, दुःखी और मलिन तथा अनित्य है। इसलिए उसका परित्याग कर देना चाहिये।१५-१६।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
ह्रीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥१७
चतुर्विधं भैक्षवस्तु कुटीचकबहूदकौ।
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः ॥१८

धर्म के दस लक्षण हैं—धैर्य, क्षमा, इन्द्रियदमन, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, लज्जा, विद्या, सत्य और अक्रोध। भिक्षु चार प्रकार के कहे गये हैं—कुटीचक, वहूदक, हंस और परमहंस। इनमें पूर्व की अपेक्षा उत्तरवर्ती कोटि के संन्यासी श्रेष्ठ कहे गये हैं।१७-१८।

एकदण्डी त्रिदण्डी वा योगी मुच्येत बन्धनात्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥१९
यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं सन्तोषणं तपः।
स्वाध्यायेश्वरपूजा च पद्मकाद्यासनं यतेः ॥२०

प्राणायामस्तु द्विविधः सगर्भोऽगर्भ एव च ।
जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वगर्भकः ॥२१
प्रत्येकं त्रिविधः सोऽपि पूरकुम्भकरेचकैः ।
पूरणात्पूरको वायोर्निश्चलत्वाच्च कुम्भकः ॥२२

एकदण्डी अथवा त्रिदण्डी योगी बन्धन से छुटकारा पा जाते हैं। पाँच यम हैं -- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह और पाँच नियम हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरपूजा। पद्मासन आदि यतियों के आसन कहे गये हैं। प्राणायाम दो प्रकार का है--सगर्भ और अगर्भ। जप और ध्यान से युक्त गर्भ तथा उससे विपरीत अगर्भ कहा गया है। पूरक, कुम्भक, रेचक से उसमें से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हो जाते हैं। वायु को अपने अन्दर भरना पूरक कहलाता है, उसको रोकना कुम्भक है और उसे छोड़ना रेचक कहलाता है ।१९-२२।

रेचनाद्रेचकः प्रोक्तो मात्राभेदेन च त्रिधा ।
द्वादशस्तु चतुर्विशः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽपरः ॥२३
तालो लघ्वक्षरो मात्रा प्रणवादि चरेच्छनैः ।
प्रत्याहारो जापकानां ध्यानमीश्वरचिन्तनम् ॥२४
मनोधृतिर्धारणा स्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः ।
अयमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥२५

मात्रा भेद से इनके भी तीन-तीन भेद हो जाते हैं। पहला द्वादशमात्रा, दूसरा चतुर्विश मात्रा और तीसरा छत्तीस मात्रा वाला कहा गया है। एक मात्रा काल वह है जो एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण में लगता है। प्रणव आदि मन्त्रों के उच्चारण के साथ जापक को प्रत्याहार का उच्चारण करना चाहिये। ध्यान कहते हैं मन को धारण करने को। ब्रह्म में स्थिति समाधि कहलाती है। यह आत्मा ही परब्रह्म है। वह सत्य, ज्ञान और अनन्त भी है ।२३-२५।

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमस्यहमस्मि तत् ।
परं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ॥२६
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम् ॥२७
नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तसत्यमानन्दमद्वयम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरक्षरं सर्वगं हरिः २८॥

योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओम् ।
सर्वारम्भपरित्यागी समदुःखसुखः क्षमी ॥२९
भावशुद्धश्च ब्रह्माण्डं भित्त्वा ब्रह्म भवेन्नरः ।
आषाढ्यां पौर्णमास्यां च चातुर्मास्यं व्रतं चरेत् ॥३०
ततो व्रजेन्नवम्यादौ ह्यृतुसंधिषु वापयेत् ।
प्रायश्चित्तं यतीनां च ध्यानं वायुग्रमस्तथा ॥३१

बिशेष ज्ञान को ही ब्रह्मानन्द कहते हैं। जो इस प्रकार है—'तत्त्वमसि' 'अहमस्मि तत्' यह आत्मा परब्रह्म है, ज्योतिरूप है, वासुदेव-स्वरूप है और यह मुक्त भी है। ब्रह्म वह है जो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहङ्कार से रहित तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्थाओं से मुक्त रहा करता है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द और अद्वैत है। संन्यासी को इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि—'ॐ मैं परब्रह्म ' जो कि ज्योतिरूप, अक्षर, सर्वव्यापक और विष्णुरूप है। यह जो आदित्य पुरुष है, वही मैं हूँ।' मनुष्य सभी कुछ छोड़कर सुख-दुःख में समान रहकर क्षमाशील और भावशुद्ध होकर, ब्रह्माण्ड का भेदन करके ईश्वर (मय) हो जाता है। आषाढ़ की पूर्णमासी में चातुर्मास्य व्रत का आचरण करना चाहिए। तदनन्तर ऋतुओं के सन्धिकाल में नवमी आदि तिथियों में पुनः भ्रमण के लिए निकल पड़ना चाहिए। यतियों का प्रायश्चित्त है—ध्यान और प्राणायाम। २९-३१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये यतिधर्मकथनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६१

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धर्मशास्त्रकथनम्

पुष्कर उवाच—

मनुर्विष्णुर्याज्ञवल्क्यो[1] हारीतोऽत्रिर्यमोऽङ्गिराः ।
वशिष्ठदक्षसंवर्तशातातपपराशराः ॥१

१ ष. °ल्क्यो मरीचोऽत्रि° ।

आपस्तम्वोशनोव्यासाः कात्यायनबृहस्पती ।
गौतमः शङ्खलिखितौ धर्ममेते यथाऽब्रुवन् ।।२
तथा वक्ष्ये समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।।३

पुष्कर बोले—अब मैं संक्षेप में उस धर्म के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जिसे पहले मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरस, वशिष्ठ, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम और शङ्खलिखित ने बताया था, उसे सुनिये । वैदिक कर्म दो प्रकार के होते हैं—प्रवृत्त कर्म और निवृत्त कर्म ।१-३।

काम्यं कर्म प्रवृत्तं स्यान्निवृत्तं ज्ञानपूर्वकम् ।
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।।४
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ।
सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।।५

प्रवृत्त कर्म को 'काम्य' भी कहते हैं और निवृत्त वह है जिसे ज्ञानपूर्वक किया जाता है । वेदाभ्यास, तपस्या, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा और गुरुसेवा परम निःश्रेयस्कर कर्म हैं । इन सबमें आत्मज्ञान श्रेष्ठ माना गया है । ४-५।

[1]तच्चाग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ।
सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।।६
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ।
आत्मज्ञाने स (श) मे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ।।७
एतद्द्विजन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राऽऽश्रमे वसन् ।।८
इहैव लोके तिष्ठन्हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।८१/२

वह सभी विद्याओं में श्रेष्ठ है क्योंकि उससे अमरत्व की प्राप्ति होती है । सभी प्राणियों में अपने आप को और अपने में सभी प्राणियों को समान रूप से देखने वाला, आत्मयाजी, स्वराज्य को प्राप्त कर लेता है । आत्मज्ञान की इच्छा के शान्त हो जाने पर वेदाभ्यास में यत्न करना चाहिए । यह सामान्य-रूप से द्विजातियों का तथा विशेष रूप से ब्राह्मणों का सामर्थ्य है । जो व्यक्ति

१ क. ङ. तत्त्वाश्रीस° ।

वेद और शास्त्रों के अर्थों के तत्त्वज्ञानियों के आश्रम में रहता है, वह इस लोक में रहते हुए ही ब्रह्म के समान हो जाता है।६-८½।

स्वाध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन तु ॥९
[1]हस्ते चौषधिवारे च पञ्चम्यां श्रावणस्य च।
[2]पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ॥१०
जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः[3]।
त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ११॥

स्वाध्याय का उपाकर्म श्रावणी के दिन श्रवण नक्षत्र में, हस्त नक्षत्र में, चन्द्रवार के दिन अथवा श्रावण की पञ्चमी के दिन होना चाहिए। यह कर्म पौष मास में रोहिणी नक्षत्र में और अष्टमी के दिन भी किया जा सकता है। जलाञ्जलि के बाद विधिवत् छन्दों का उत्सर्ग करना चाहिए। शिष्य, ऋत्विग्, गुरु और बन्धु की मृत्यु पर तीन दिन तक अनध्याय रहता है।९-११।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा।
सन्ध्यागर्जितनिर्घाते भूकम्पोल्कानिपातने ॥१२
समाप्तवेदं ह्यनिशमारण्यकमधीत्य च।
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ॥१३
ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च।
पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः ॥१४
कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये।
श्वक्रोष्टुगर्दभोलूक[4] मासवाणर्तुनिस्वने ॥१५
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तके।
अशुभासु च तारासु विद्युत्स्तनितसम्प्लवे ॥१६
भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते।
पांशुवर्षे दिशां दाहे सन्ध्यानोहारभीतिषु ॥१७
धावतः प्राणिबाधे च विशिष्टे गृहमागते।
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौकावृक्षादिरोहणे।
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥१८

---

१ ख. ग. °स्ते वौषधिभावे वा प°। २ ग. °माघस्य। ३ क. ङ. °हिः। अहं ज्योतिरनाध्यायशिष्यत्वं क्रतबु°। ४ ख. ग. °कसामवाणार्तंनि°।

उपाकर्म में अपनी शाखा के श्रोत्रिय के निधन होने पर, सन्ध्या-काल में मेघों की गर्जना, भूकम्प तथा उल्कापात के समय, वेद की समाप्ति, आरण्यकों के अध्ययन के पश्चात्, अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी, राहु-सूतक के समय, ऋतुओं की सन्धियों में भोजन करके, श्राद्ध ग्रहण करके, पशुओं, मेढ़क, नेवले, कुत्ते, सर्प, बिल्ली और शूकरों के द्वारा रास्ता काट जाने पर, इन्द्रध्वज की पताका उतारने तथा फहराने के दिन, कुत्ते, गीदड़, गर्दभ, उल्लू के शब्द करने पर, अमेध्य, शव, शूद्र, श्मशान और पतित के संसर्ग में, अशुभ नक्षत्रों में, विद्युत्गर्जन होने पर, भोजन करके गीले हाथ जल में, अर्ध रात्रि में, आँधी चलने पर, बवण्डर उठने पर, दिशाओं के जलने पर, सन्ध्या-काल, में नीहारिकाओं के भय उत्पन्न होने पर, दौड़ते हुए, प्राणियों की बाधा उत्पन्न होने पर, विशिष्ट व्यक्ति के घर आने पर और गधे, ऊँट, सवारी, हाथी, घोड़े, नाव तथा वृक्षादि पर चढ़ने के बाद इन सैंतीस प्रकार की स्थितियों में अनध्याय करना चाहिए, ऐसा विद्वानों का विचार है ।१२-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये धर्मशास्त्रवर्णनं नाम द्विषष्ट्य-धिकशततमोऽध्यायः ।१६२

अथ त्रिषट्यधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पकथनम्

पुष्कर उवाच–

श्राद्धकल्पं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
निमन्त्र्य विप्रान्पूर्वेद्युः स्वागतेनापराह्णतः ।।१
प्राच्योपवेशयेत्पीठे युग्मान्दैवेऽथ पित्र्यके ।
अयुग्मान्प्राङ्मुखान्दैवे त्रीन्पित्र्ये चैकमेव वा ।।२

पुष्कर बोले—अब मैं श्राद्ध कल्प के विषय में बतलाऊँगा, उसे सुनो । यह कल्प भोग और मोक्ष देने वाला है । (श्राद्ध के) एक दिन पूर्व ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए और दूसरे दिन उनका स्वागत करके पूजन करके उन्हें एक आसन पर बिठलाना चाहिए । दैव श्राद्ध-कल्प में युग्म संख्या में तथा पितृ-श्राद्ध में अयुग्म संख्या में ब्राह्मणों को बैठाना चाहिए । देव पित्र्य

कर्मों में ब्राह्मणों को प्राङ्मुख बैठाना चाहिए। पितृ-कर्म में ब्राह्मणों की संख्या एक अथवा तीन हो सकती है।१-२।

मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्।
पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ।।३
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा।
यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ।।४
शं नो देव्याः पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा।
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते ह्यर्घं विनिक्षिपेत् ।।५
दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं प्रदीपकम्।
अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामप्रदक्षिणम् ।।६
द्विगुणांस्तु कुशान्कृत्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितृन्।
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः ।।७

यही कर्म मातामह के श्राद्ध में और वैश्वदेविक कर्म में भी है। ब्राह्मणों के हाथों को धुलाकर आसन के लिए कुशों को बिछाकर 'विश्वेदेवास' इत्यादि ऋचा से पितरों का आवाहन करना चाहिए। जौ को उन पात्रों के ऊपर बिखेर देना चाहिए जिनमें पवित्रक रखे हों। 'शं नो देवी' इत्यादि मन्त्र से जल छिड़ककर 'यवोऽसीति' मन्त्र से जौ विखेरना चाहिए तथा 'या देव्या' इत्यादि मन्त्र से अर्घ को हाथ में ग्रहण करना चाहिए। जल, गन्ध, माल्य, धूप और दीप का दान करके श्राद्ध-कर्म करने वाले को बायीं से दायीं ओर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए। पितरों के लिए दूनी संख्या में कुशों को बिछाकर 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि ऋचा से पितरों का आवाहन करना चाहिए और 'आयान्तु नः, इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए।३-७।

[1]यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत्।
दत्त्वाऽर्घ्यं संस्रवाञ्शेषान्पात्रे कृत्वा विधानतः ।।८
([2]पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः।
अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।।९
कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो हुत्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत्।
हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ।।१०

१ ख. ग. वार्थं स्तु। २ पितृभ्यः..........विशेषतः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः ।)
दत्त्वाऽन्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ॥११

यहाँ पर जौ के स्थान पर तिल का प्रयोग करना चाहिए तथा अन्य अर्घ्य इत्यादि कर्म को पूर्ववत् करना चाहिए। तदनन्तर अर्घ्य देकर पात्र को उलट देना चाहिए तथा इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए कि 'आप मेरे पितरों के स्थान हैं। तदनन्तर घृत में भीगे हुए अन्न को लेकर 'क्या मैं यह करूँ' ऐसा पूँछता है और 'ऐसा कीजिए' इस अनुज्ञा के प्राप्त होने पर पितृ-यज्ञ के समान अग्नि में आहुतियाँ देकर, ध्यानावस्थित होकर बचे हुए हविष् को बरतनों में डाल देना चाहिए। बरतन जैसे भी प्राप्त हो सके, वैसे हो सकते हैं, किन्तु चाँदी के पात्रों की विशेषता हुआ करती है। अन्न देकर 'पृथ्वी-पात्रम्' इत्यादि मन्त्र से पात्रों का अभिमन्त्रण करना चाहिए।८-११।

कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ।
सव्याहृतिकां गायत्रीं मधु वाता इति त्र्यृ (तृ) चम् ॥१२
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः ।
अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्याज्जप्त्वा पवित्रकम् ॥१३
अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवान्नमस्य[1] च ।
तदन्नंविकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् ॥१४
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ।
उच्छिष्टसंनिधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ॥१५

यह कहने के बाद 'इदं विष्णुं' इत्यादि मन्त्र से अन्न में अंगूठे को गड़ाना चाहिए और व्याहृतियों के साथ 'मधुवाता' इत्यादि तीन गायत्री मन्त्रों को पढ़ना चाहिए। इस मन्त्र का जप करके तथा बिना कुछ बोले हुए स्वयं भी उसके शेष का भक्षण करना चाहिये और मन्त्र का जप करते हुए अभीष्ट अन्न और पवित्रक का दान करना चाहिए। 'उस अन्न को लेकर तथा बचे हुए अन्न को भी लेकर तृप्त हो जाइये।' इत्यादि कहकर अन्न को पृथ्वी पर बिखेर देना चाहिये और बार-बार जल भी डालते रहना चाहिये। तिल के साथ सभी अन्न को लेकर, दक्षिणाभिमुख होकर, पितृ-यज्ञ के समान पहले के स्थान में पिण्डदान करना चाहिये।१२-१५।

---

१ क. ख. ङ. °वानुमान्य च ।

मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ।
स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥१६
दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातः स्वपितृभ्यः स्वधोच्यताम्[1] ॥१७
कुर्युरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ।
प्रीयन्तामिति वा दैवं विश्वेदेवा जलं ददेत्[2] ॥१८
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥१९
इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
वाजे वाज इति[3] प्रीतपितृपूर्वं विसर्जनम् ॥२०

इसी प्रकार मातामहों को भी पिण्डदान करना चाहिये । तत्पश्चात् आचमन, स्वस्तिवाचन, तथा अक्षय्योदक आदि क्रियाएँ करनी चाहिए और यथाशक्ति दक्षिणा देकर 'स्वधा' का उच्चारण करना चाहिए । 'उच्चारण कीजिए'—इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करके अपने पितरों के लिये स्वधा का उच्चारण करना चाहिये तथा 'अस्तु स्वधा' का उच्चारण करके पृथ्वी पर जल छिड़क देना चाहिये अथवा 'प्रीयन्ताम्' इत्यादि कहकर विश्वेदेवताओं के लिये जल देना चाहिये । तदनन्तर ब्राह्मणों के द्वारा इस प्रकार आशीर्वचन बोलने पर कि 'हम लोगों के दानदाताओं की वृद्धि हो, उनके वेदों और सन्तानों की भी वृद्धि हो, हम लोगों में उनकी श्रद्धा का नाश न हो तथा वे हमें बहुत कुछ दे सकें' ब्राह्मणों को प्रणाम करके विसर्जन करना चाहिये । 'वाजे वाज' इत्यादि मन्त्र का पाठ करते हुए प्रीतिपूर्वक ब्राह्मणों का विसर्जन करना चाहिये ।१६-२०।

यस्मिंस्तु संस्रवाः पूवमर्घपात्रे निपातिताः ।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥२१
प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुक्त्वा तु पितृसेवितम् ।
ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ॥२२
एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान्पितृन् ।
यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान्पिण्डान्यवैः क्रियाः ॥२३
एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥२४

---

१ क. °म् । ब्रूयुर° । २ ग. ङ. ददत् । ३ ख. प्रीत्या पि° ।

पहले जिस अर्घपात्र में अन्न को डाला गया था, उस पित्र्य-पात्र को सीधा करके ब्राह्मणों को विसर्जित करना चाहिये। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके तथा पितरों के भोजन से बचे हुये अंश का भोजन करके ब्राह्मणों के साथ उस रात ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। वृद्ध श्राद्ध में इस प्रकार से परिक्रमा करके नान्दीमुख आदि पितरों को दही और बेर से मिले हुए पिण्डों का दान करके शेष क्रियायें जौ से करनी चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध बिना वैश्य देव के तथा एक अर्घ्य और एक पवित्रक से युक्त होता है। यह श्राद्ध आवाहन तथा अग्निकरण क्रियाओं से रहित हुआ करता है और इसमें जनेऊ को अपसव्य रखना पड़ता है।२१-२४।

उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने पितृविसर्जने।
अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥२५
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम्।
अर्घार्थिपितृपात्रेषु[1] प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥२६
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत्।
एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया सह ॥२७
अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥२८

पितरों को विसर्जित करते समय अक्षय्य स्थान के ऊपर 'उपतिष्ठताम्' इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिये। यजमान को ब्राह्मणों को सम्बोधित करके कहना चाहिए कि 'आप सन्तुष्ट हों' और ब्राह्मणों को उसका उत्तर देते हुए यह कहना चाहिये कि 'हम सन्तुष्ट हैं'। चार बरतनों को सुगन्धित जल तथा तिलों से भर-भरकर रखना चाहिये। अर्घ्य देने के लिए प्रेतपात्र को पितृपात्रों के ऊपर धोना चाहिये और उस समय 'ये समाना' इत्यादि दो मन्त्रों का पाठ करना चाहिये। यही एकोद्दिष्ट है और इसमें बताये गये पिण्डदान के नियमों का पालन मृत स्त्रियों के सम्बन्ध में भी करना चाहिये। इसके बाद एक वर्ष के अन्दर सपिण्डीकरण संस्कार करना चाहिये। इसमें भी ब्राह्मण जाति के लिये जल से भरा हुआ घड़ा और पिण्डों का दान किया जाता है।२५-२८।

मृताहनि च कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रति संवत्सरं कार्यं श्राद्धं वै मासिकान्नवत् ॥२९

---

१ ग. °र्थमभिपा°।

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥३०
ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्याऽभितृप्यन्ति दत्तैरेव पितामहाः ॥३१

यह श्राद्ध प्रत्येक वर्ष उसी महीने और दिन में करना चाहिये जिस दिन मृत्यु होती है। मासिक श्राद्ध के समान इसे भी प्रत्येक वर्ष करना चाहिए, किन्तु मासिक श्राद्ध हविष्यान्न से किया जाता है और वार्षिक-श्राद्ध खीर से। यह श्राद्ध क्रमशः मछली, हिरन का मांस, कौरभपक्षी का मांस, बकरे का मांस, हिरन विशेष का मांस, सुअर का मांस तथा खरहे के मांस से किया जाता है। इस प्रकार मांस की बलि देने से पितामह सन्तुष्ट होते हैं। २९-३१।

खड्गामिषं महाशल्कं मधुयुक्तान्नमेव च ।
लोहामिषं कालशाकं मांसं वार्ध्रीनसस्य च ॥३२
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते ।
तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ॥३३
कन्यां प्रजां वन्दिनश्च पशून्मुख्यान्सुतानपि ।
घृतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफं तथा ।३४
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥३५

गया में अपने पितरों को गेंडे का मांस, मछली, का मांस, शहदयुक्त अन्न, बुड्ढे बकरे का मांस और कालशाक आदि की बलि देने वाले अपने पितरों को अनन्तकाल के लिये सुखी और निश्चिन्त कर देते हैं। इसी प्रकार वर्षा ऋतु की त्रयोदशी और मघा नक्षत्र में किया गया श्राद्ध भी पितरों को सुख देने वाला होता है। श्राद्ध करने वाले सदा कन्या, प्रजा, बन्दी, पशु, पुत्र, घृत, कृषि, वाणिज्य, दो खुर वाले (बकरे आदि) पशु, एक खुर वाले (घोड़े आदि) ब्रह्मवर्चस् से युक्त पुत्रों, सोने, चाँदी, जातियों में श्रेष्ठता और सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। ३२-३५।

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान्वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते ॥३६
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ।
पुत्रश्रैष्ठ्यं ससौभाग्यमपत्यं मुख्यतां सुतान् ॥३७

प्रवृत्तचक्रतां पुत्रान्वाणिज्यं प्रभुतां तथा ।
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥३८
धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं रूप्यं गाश्चाप्यजाविकम् ।
अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति ॥३९
कृत्तिकादिभरण्यन्ते स कामानाप्नुयादिमान् ।
वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ॥४०
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄञ्श्राद्धेन तर्पिताः ।
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥४१
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥४२

जो लोग आयुधों के द्वारा मारे जाते हैं, उनको छोड़कर अन्य लोगों का श्राद्ध प्रतिपदा और चतुर्दशी के दिन नहीं करना चाहिए । जो व्यक्ति विधिवत् श्राद्ध करता है वह स्वर्ग, सन्तान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्रों में श्रेष्ठता, सौभाग्य, वाणिज्य, प्रभुता, आरोग्य, यश, वीतशोकता, परमगति, धन, विद्या, आयुर्वेद में सिद्धि, चाँदी, गाय, बकरे, भेंड़, अश्व और आयु को प्राप्त कर लेता है । कृत्तिका से प्रारम्भ करके भरणी तक श्राद्ध करने वालों की सभी इच्छायें पूरी हो जाती हैं । श्राद्ध देवता हैं—वसु, रुद्र, आदित्य और पितर—ये मनुष्यों के द्वारा किये हुए पितृश्राद्ध से प्रसन्न हो जाते हैं तथा पितर गण श्राद्ध करने वालों को आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं । ३६-४२।

**इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्राद्धकल्पवर्णनं नाम त्रिषष्ट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ।१६३**

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहहोमः

पुष्कर उवाच—

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् ।
दृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः ॥१
सूर्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चाथ बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥२

ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादुभौ ।
रजताद्यशः सीसाद्ग्रहाः कार्याः क्रमादिमे ॥३
सुवर्णैर्वा यजेल्लिख्य गन्धमण्डलकेषु वा ।
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥४

पुष्कर बोले—ऐश्वर्य, शान्ति, दृष्टि, आयु और पुष्टि की इच्छा करने वाले तथा अभिचार कर्म करने वाले को ग्रहों का यजन करना चाहिये। ग्रह ये हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु। इन ग्रहों का निर्माण क्रमशः ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, चाँदी, लोहा और सीसा से करना चाहिये अथवा सभी ग्रहों का निर्माण सोने से किया जा सकता है। गन्धमण्डलों में ग्रहों का चित्रण करके उनका यजन करना चाहिये। ग्रहों के लिये उनके वर्णों के अनुसार वस्तुओं तथा पुष्पों को समर्पित करना चाहिये।१-४।

गन्धाश्च बलयश्चैव धूपो देयस्तु गु (गौ) ग्गुलः ।
कर्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम् ॥५
आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्तिताः ॥६
बृहस्पते अति यदर्यस्तथैवाल्पात्परिश्रुतः ।
शं नो देवीस्तथा काण्डात्केतुं कृण्वन्निमास्तथा ॥७

ग्रहों के लिये गन्ध, कङ्कण और गुग्गुल का धूपदान करना चाहिये। प्रत्येक देवता के लिये मन्त्रों से युक्त चरु का सम्पादन करना चाहिये। उस समय क्रमशः जिन मन्त्रों को पढ़ा जाता है वे हैं—'आकृष्णेन', 'इमं देवा', 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्', 'उद्बुध्यस्व', 'बृहस्पते अति यदर्य', 'शं नो देवी', 'काण्डात्' तथा 'केतुं कृण्वन्न' इत्यादि।५-७।

([1]अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥८
एकैकस्याम (स्य अ) ष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा) ।
होतव्या मधुसर्पिभ्याँ दध्ना चैव समन्विताः ॥९
गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरयष्टिकम्[2] ।
दध्योदनं हविः पूपान्मांसं चित्रान्नमेव च ॥१०

---

१ अर्कः.........विंशतिरेव वा पुस्तके नास्ति। २ ख. °रषष्टि° ।

दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं बुधः ।
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥११
धेनुः शङ्खस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयस्तथा ।
कृष्णा गौरायसश्छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥१२

इन ग्रहों के लिये क्रमशः अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशाओं की समिधायें होती हैं। प्रत्येक देवता के लिये एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ मधु, घृत और दही से देनी चाहिये। ग्रहों के क्रम से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये, जिसमें गुड़-भात, खीर, हविष्य, मलाई, दही-चावल, हवि, पुआ, मास (उड़द) तथा खिचड़ी प्रयोग होना चाहिये। यथाशक्ति और यथालाभ ब्राह्मणों का विधिपूर्वक सत्कार करके (ग्रहों के क्रम से) ब्राह्मणों को गाय, शङ्ख, बैल, सोना, वस्त्र, अश्व, काली गाय, लोहा और बकरा दक्षिणा में देना चाहिए।८-१२।

यश्च यस्य यदा दूष्यः[1] स तं यत्नेन पूजयेत् ।
ब्रह्मणैषां वरो दत्तः[2] पूजिताः पूजितस्य च ॥१३
ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्रयाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥१४

जो ग्रह जिसके लिये दूषित हो, उसे उसी ग्रह का पूजन करना चाहिये ब्रह्मा के द्वारा ग्रहों को यह वर दिया गया है। राजाओं के उत्थान-पतन तथा संसार का अस्तित्व और अनस्तित्व ग्रहों के अधीन है, इसलिये ये ग्रह सबसे अधिक पूज्य हैं।१३-१४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवग्रहहोमवर्णनं नाम
चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६४

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाधर्माः

अग्निरुवाच—

ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ।
अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिः (द्धि) स्मृतीन्द्रियम् ॥१

---

१ ख. दुष्टः । २ ख. ग. ङ. च. दत्तो यत्नेन पूजयिष्यथ । ग्रं ।

अग्निदेव बोले—मनुष्य को निरन्तर अपनी आत्मा का ध्यान करते रहना चाहिये। वह हृदय में दीपवत् तथा प्रभविष्णु रूप से विद्यमान रहा करती है। मन को बुद्धि, स्मृति और इन्द्रियों को अनन्य भाव से स्थिर कर लेना चाहिये।१

श्राद्धं तु ध्यायिने देयं गव्यं दधि घृतं पयः।
प्रियंगवो मसूराश्च वार्ताकुः कोद्रवो नहि ॥२
सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसंधिषु।
हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ॥३

इस प्रकार ध्यान करने वाले व्यक्ति को श्राद्ध के रूप में द्रव्य, दही, घृत, और दूध देना चाहिये। किन्तु प्रियंगु, मसूर, वार्ताकु और कोदो देना चाहिये। यदि पर्व की सन्धियों में राहु के द्वारा सूर्य को ग्रस लिया जाता है तो उसे 'हस्तिच्छाया' योग कहते हैं और उस समय दिया गया श्राद्ध और दान इत्यादि अक्षय होता है।२-३।

पित्रे (त्र्ये) चैव यदा सोमो हंसे चैव करे स्थिते।
तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥४
अग्नौकरणशेषं तु न दद्याद् वैश्वदेविके।
अग्न्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ॥५

जब चन्द्रमा पित्र्य, हंस और कर की स्थिति में रहता है उस समय हस्तिच्छाया 'वैवस्वती' कहलाती है। अग्निकरण वैश्वदेव अग्नि में नहीं करना चाहिये। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के दाहिने हाथ में दक्षिणा देनी चाहिये।४-५।

न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा।
बलात्कारोपभुक्ता[1] चेद्वैरिहस्तगताऽपि वा ॥६
संत्यजेद्दूषितां नारीमृतुकालेन शुध्यति।
य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नात्र पश्यति ॥७
ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चाऽऽत्मरतोऽमलः।
विषयेन्द्रियसंयोगात्केचिद्योगं वदन्ति वै ॥८
अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपण्डितैः।
आत्मनो मनसश्चैव संयोगं च तथाऽपरे ॥९

---

१ क. च. चेन्चौरह°।

ब्राह्मण वेदोक्त कर्म से तथा पर पुरुष के द्वारा बलात् सम्भोग किये जाने पर अथवा शत्रुओं के हाथ में पड़ी हुयी स्त्री दूषित नहीं होती है। इस प्रकार की दूषित स्त्री की परिशुद्धि ऋतु-काल से हो जाती है। इस संसार में अपने से भिन्न किसी को न देखने वाला योगी आत्मा में लीन अमल तथा ब्रह्ममय कहलाता है। कुछ लोग विषम और इन्द्रिय के संयोग को योग कहते हैं, किन्तु अब्राह्मणों के द्वारा धर्मबुद्धि से वह अधर्म समझा जाता है। अन्य आचार्य आत्मा और मन के संयोग को 'योग' कहते हैं ।६-९।

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः[1] ।।१०
कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र महत्तरः ।
देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते ।।११
बहिर्मुखानि (णि) सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ।
मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चाऽऽत्मनि योजयेत् ।।१२

क्षेत्रज्ञ मन को वृत्तिहीन तथा एकाग्र करके परमात्मा में लगा देना चाहिये क्योंकि यही उत्तम योग है। मन आदि पाँच इन्द्रिय-समूहों से छठा आत्मा महान् हुआ करता है क्योंकि देवता, दैत्य अथवा मनुष्यों से उसे जीता नहीं जा सकता है। सभी बहिर्मुखी इन्द्रियों को आत्मा के अभिमुख करके उन्हें मन में तथा मन को आत्मा में लीन करना चाहिये ।१०-१२।

सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च [2]शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ।।१३
यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते ।
कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ।।१४
स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि घटं यथा ।।१५
संन्यसन्तं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
एष मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ।।१६

सभी भावनाओं से विनिर्मुक्त क्षेत्रज्ञ मन को आत्मा में लीन करना चाहिये। यही ज्ञान है और यही ध्यान है, शेष सब कुछ ग्रन्थ-विस्तार ही

---

१ च. °मः । कूटस्थैः पञ्चभिर्ग्रामैः सद्योगश्चतथाऽपरे । दे° । २ ग. शेषान्ये ग्रन्थविस्तराः । य° ।

है। यह आत्मा अदृश्य है, अतः इसके अस्तित्व के सम्बन्ध में कहने में विरोध प्रतीत होता है तथा वह किसी के मन को प्रभावित भी नहीं करता है। ब्रह्म स्त्री-सुख के समान स्वसंवेद्य है, किन्तु जिस प्रकार उस स्त्री-सुख का ज्ञान कुमारी को नहीं प्राप्त हो सकता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान भी सबको नहीं प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार जन्म से अन्धा व्यक्ति घड़े को नहीं जानता है, उसी प्रकार अयोगी ब्रह्म को नहीं जानता है। सन्यस्त द्विज को देखकर सूर्य भी अपने स्थान से विचलित हो जाता है और वह मेरे मण्डल का भेदन करके ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।१३-१६।

उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थं फलं तपः ।
द्विजसम्पादनं चैव सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥१७
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ॥१८
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः ।
भुञ्जते मानुषाः पश्चान्नैता दुष्यन्ति केनचित् ॥१९
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते ।
अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ॥२०

उपवास व्रत, स्नान, तीर्थ, तपस्या तथा उपनयन संस्कार सम्पन्न किये जाने पर अपना फल प्रदान करते हैं। एकाक्षर (ॐ) परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है और सावित्री मन्त्र से बढ़कर पवित्र करने वाला भी कुछ नहीं है। स्त्रियों का भोग पहले देवताओं के द्वारा किया जाता है, तदनन्तर सोम, गन्धर्व और अग्नि के द्वारा और उसके बाद उनका भोग मनुष्यों के द्वारा किया जाता है किन्तु यह किसी से भी दूषित नहीं होती है। स्त्री की योनि में असवर्ण पति द्वारा गर्भाधान हो जाने पर स्त्री तब तक अशुद्ध रहती है जब तक गर्भ का प्रसव नहीं हो जाता है।१७-२०।

निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुध्यते ततः ।
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥२१
श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुध्यति ।
आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुः फलं हरिः ॥२२
अक्षयाय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः ।
आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ॥२३
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत्स आत्महा ॥२३½

तदनन्तर गर्भ का प्रसव होने के बाद पुनः रजोदर्शन होने पर शुद्धि हो जाती है। ध्यान से बढ़कर पापकर्मों को शुद्ध करने वाला कुछ भी नहीं होता है। चाण्डालों के साथ भोजन करने पर भी मनुष्य ध्यान के द्वारा शुद्ध हो जाता है। आत्मा, ध्यान करने वाला, मनध्यान, विष्णुध्येय और फल हरि हैं। अक्षय विष्णु के लिये शब्द से ही यदि पङ्क्ति-पावनों में पवित्र हो जाता है। जो ब्राह्मण अपने नैष्ठिक धर्म से च्युत हो जाता है, उससे उसे मुक्ति दिलाने वाला कोई प्रायश्चित्त मुझे ज्ञात नहीं है, जिससे वह आत्मघाती शुद्ध हो सके।२१-२३½।

ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चैषां बीजसंततिः ॥२४
विदुरा नाम चाण्डाला जायन्ते नात्र संशयः ।
शतिको म्रियते गृध्रः श्वासी द्वादशिकस्तथा ॥२५
चापो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा ।
अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥२६

जो संन्यासी स्त्री-सम्भोग के द्वारा गर्भाधान करता है, उनसे विदुर नामक चाण्डालों की उत्पत्ति होती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ये संन्यासी मरने पर सौ वर्षों तक गृध्र, बारह वर्षों तक कुत्ता, बीस वर्षों कौआ तथा दस वर्षों तक शूकर के रूप में रहा करते हैं। तत्पश्चात् वे पुष्प और फल-रहित तथा काँटों से घिरे हुये वृक्षों के रूप में उत्पन्न होते हैं।२४-२६।

ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः ।
ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ॥२७
पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः ।
प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ॥
योगमेव निषेवेत[1] नान्यं मन्त्रमघापहम् ॥२८

तत्पश्चात् दावाग्नि से भस्म होकर वे पर्वत की चोटी पर स्थान बनकर रह जाते हैं। उसके बाद एक सौ दस वर्षों तक उन्हें निर्जीव होकर रहना पड़ता है और एक हजार वर्ष पूर्ण हो जाने पर वे ब्रह्मराक्षस हो जाते हैं। तदनन्तर बन्दर के रूप में उत्पन्न होने पर अथवा मूल कुल के नाश होने पर वे पुनः मनुष्य-जन्म को प्राप्त करते हैं। सदैव योग का ही अभ्यास करते

---

१ ङ. नान्योपायम्[°]।

रहना चाहिये। क्योंकि पापों को नाश करने वाला उसके अतिरिक्त और कोई साधन है ही नहीं।२४-२८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाधर्मवर्णनं नाम
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।१६५

———

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वर्णधर्मादिकथनम्

पुष्कर उवाच—

वेदस्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पञ्चधा स्मृतम्।
वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते ॥१
वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनं त्रिषु।
यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः संविधीयते ॥२

पुष्कर बोले—अब मैं वेदों और स्मृतियों में कहे हुये धर्म के विषय में बतला रहा हूँ जो कि पाँच प्रकार का हुआ करता है और जिसे क्रमशः प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन जातियों में होने वाला उपनयन संस्कार उनका वर्णधर्म है।१-२।

उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा।
उभयेन निमित्तेन यो विधिः संप्रवर्तते ॥३
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा।
ब्रह्मचारी गृही वाऽपि वानप्रस्थो यतिर्नृप ॥४
उक्त आश्रमधर्मस्तु धर्मः स्यात्पञ्चधाऽपरः।
षाड्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः स उदाहृतः ॥५

आश्रमों के अनुसार किया जाने वाला धर्म 'आश्रम-धर्म' कहलाता है; जैसे भिन्न-पिण्डादि क्रियाएँ। (लौकिक तथा पारलौकिक) दोनों निमित्तों से जो विधि की जाती है उसे 'नैमित्तिक-विधि कहते हैं, जैसे प्रायश्चित्त विधि। आश्रम-धर्म पाँच प्रकार का होता है, जो कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा राजा के लिये हुआ करता है। षाड्गुण्य के अभिधान में जिसकी प्रवृत्ति होती है उसे 'दृष्टार्थ' कहते हैं।३-५।

स त्रेधा मन्त्रयागाद्य दृष्टार्थ इति मानवाः ।
उभयार्थो व्यवहारस्तु दण्डधारणमेव च ॥६
तुल्यार्थानां विकल्पः स्याद्यागमूलः प्रकीर्तितः ।
वेदे तु विहितो धर्मः स्मृतौ तादृश एव च ॥७
अनुवादं स्मृतिः सूते कार्यार्थमिति मानवाः ।
गुणार्थः परिसंख्यार्थो वाऽनुवादो विशेषतः ॥८
विशेषदृष्ट एवासौ फलार्थ इति मानवाः ॥८½

उसके तीन भेद होते हैं । मन्त्र यज्ञ-प्रभृति 'अदृष्टार्थ' हैं, ऐसा मनु आदि कहते हैं । इसके सिवा 'उभयार्थक-व्यवहार' दण्डधारण' और तुल्यार्थ-विकल्प' ये भी यज्ञमूलक धर्म के अंग कहे गये हैं । वेद में धर्म का जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृति में भी उसी प्रकार है । कार्य के लिये स्मृति वेदोक्त धर्म का अनुवाद करती है—ऐसा मनु आदि का मत है । इसलिये स्मृतियों में उक्त धर्म वेदोक्त धर्म का गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुवाद, विशेष दृष्टार्थ अथवा फलार्थ है, यह राजर्षि मनु का सिद्धान्त है ।६-८½।

स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ॥९
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः ।
जातकर्म नामकृतिरन्नप्राशनचूडकम् ॥१०
संस्कारश्चोपनयनं वेदव्रतचतुष्टयम् ।
स्नानं स्वधर्मचारिण्या योगः स्याद्यज्ञपञ्चकम् ॥११
देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्यभूतयज्ञकौ ।
ब्रह्मयज्ञः सप्त पाकयज्ञसंस्थाः पुरोष्टकाः ॥१२
पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि ।
आश्वयुजी सप्तहविर्यज्ञसंस्थास्ततः स्मृताः ॥१३
अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शः स्यात्पौर्णमासकः ।
चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढः पशुबन्धकः ॥१४
सौत्रामणिः सप्तसोमसंस्थाऽग्निष्टोम आदितः ।
अत्यग्निष्टोम[२] उक्थ्यश्च षोडशी वाजपेयकः ॥१५
अतिरात्रोऽथाप्तोर्यामो ह्यष्टौ चाऽऽत्मगुणास्ततः ।
दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलम् ॥१६
अकार्पण्यास्पृहाशौचं यस्यैते स परं व्रजेत् ॥१६½

१ घ. ०हारस्तु द० । २ घ. उक्थश्च ।

निम्नलिखित अड़तालीस संस्कारों से सम्पन्न मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन (४) जातकर्म (५) नामकरण (६) अन्नप्राशन (७) चूडाकर्म (८) उपनयन-संस्कार, (९-१२) चार वेद-व्रत (वेदाध्ययन) (१३) स्नान (समावर्तन) (१४) सहधर्मिणी संयोग (विवाह), (१५-१९) पञ्चयज्ञ-देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ, (२०-२६) सातपाक-यज्ञ-संस्था, (२७-३४) अष्टका-अष्टका सहित तीन पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी, (३५-४१) सात हविर्यज्ञ संस्था—अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरूढपशुबन्ध एवं सौत्रामणि, (४२-४८) सात सोम-संस्था अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम। आठ आत्मगुण हैं—दया, क्षमा, अनसूया, अनायास, मांगल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा तथा शौच। जो इन गुणों से युक्त होता है, वह परमधाम (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ।९-१६½।

प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ।।१७
स्नानभोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत् ।
पुनर्दानं[1] पृथक्पाकं सामिषं पयसाऽन्वितम् ।।१८
दन्तच्छेदनमुष्णं[2] च सप्त शत्रुषु वर्जयेत् ।
स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयाद्देवायोग्यं तदीरितम् ।।१९
अन्यगोत्रोऽप्यसम्बद्धः प्रेतस्याग्निं ददाति यः ।
पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समापयेत् ।।२०
उदकं च तृणं भस्म द्वारं पन्थास्तथैव च ।
एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ।।२१
पञ्चप्राणाहुतीर्दद्यादनामाङ्गुष्ठयोगतः ।।२२

मार्गगमन, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्ग, दन्तधावन, स्नान और भोजन—इन छह कार्यों को करते समय मौन धारण करना चाहिये। दान की हुई वस्तु का पुनः दान, पृथक्पाक, घृत के साथ जल पीना, दूध के साथ जल पीना, रात्रि में जल पीना, दाँत से नख आदि काटना एवं बहुत गरम जल पीना—इन बातों का परित्याग कर देना चाहिये। स्नान के पश्चात् पुष्पचयन न करें, क्योंकि

---

१ ख. ग. घ. °क्यानमाज्येन पयसा निशि। द° । २ क. ङ. °मुष्ट° च।

वे पुष्प देवता के चढ़ाने योग्य नहीं माने गये हैं । यदि कोई अन्यगोत्रीय असम्बन्धी पुरुष किसी मृतक का अग्नि-संस्कार करता है तो उसे दश दिन तक पिण्ड तथा उदक-दान का कार्य भी पूर्ण करना चाहिये । जल, तृण, भस्म, द्वार एवं मार्ग-इनको बीच में रखकर जाने से पङ्क्तिदोष नहीं माना जाता । भोजन के पूर्व अनामिका और अङ्गुष्ठ के संयोग से पञ्चप्राणों को आहुतियाँ देनी चाहिये ।१८-२२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वर्णधर्मादिवर्णनं नाम
षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६६

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अयुतलक्षकोटिहोमः

अग्निरुवाच—
श्रीशान्तिविजयाद्यर्थं ग्रहयज्ञं पुनर्वदे ।
ग्रहयज्ञोऽयुतहोमलक्षकोट्यात्मकस्त्रिधा ।।१

अग्निदेव बोले—अब मैं ऐश्वर्य, शान्ति और विजय इत्यादि के लिये ग्रह-यज्ञ का वर्णन कर रहा हूँ । यहग्रह यज्ञ तीन प्रकार का होता है जिसमें दस हजार, एक लाख और एक करोड़ आहुतियाँ दी जाती हैं ।१

वेदेरैशे ह्यग्निकुण्डाद्ग्रहानावाह्य मण्डले ।
सौम्ये गुरुर्बुधश्चैशे शुक्रः पूर्वदले शशी ।।२
आग्नेये दक्षिणे भौमो मध्ये स्याद्भास्करस्तथा ।
शनिराप्येऽथ नैर्ऋत्ये राहुः केतुश्च वायवे ।।३
ईशश्चोमा गुहो विष्णुर्ब्रह्मेन्द्रौ यमकालकौ ।
चित्रगुप्तश्चाधिदेवा अग्निरापः क्षितिर्हरिः ।।४
इन्द्र ऐन्द्री देवता च प्रजेशोऽहिर्विधिः क्रमात् ।
एते प्रत्यधिदेवाश्च गणेशो दुर्गयाऽनिलः ।।५
स्वमश्विनौ च सम्पूज्य यजेद्बीजैश्च वेदजैः ।।५३

वेदी के मध्य में अग्निकुण्ड से ग्रहों को मण्डल में आहूत करके पश्चिम, दिशा में बृहस्पति, ईशान कोण में बुध, पूर्वदल के ऊपर शुक्र, आग्नेय कोण में चन्द्रमा, दक्षिण की ओर मंगल, मध्य में सूर्य, पश्चिम में शनि, नैर्ऋत्य में राहु और वायव्य कोण में केतु की स्थापना करनी चाहिये। ईश, उमा, गुह, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल, चित्रगुप्त, अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, प्रजेश, सर्प और ब्रह्मा—ये देवता तथा गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारों का पूजन करके वेदों के बीज मन्त्रों से उनका यजन करना चाहिये ।२-५½।

अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गश्च पिप्पलः ॥६
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ।
मध्वाज्यदधिसंमिश्रा होतव्याश्चाष्टधा शतम् ॥७
एकाष्टचतुरः कुम्भान्पूर्य[1] पूर्णाहुतिं तथा ।
वसोर्धारां ततो दद्याद्दक्षिणां च ततो ददेत् ॥८

अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा, कुश और समिधाओं को क्रमशः, शहद, घी, तथा दही में डुबोकर एक सौ आठ आहुतियाँ देना चाहिये। तेरह घड़ों को भरकर वसुधारा के रूप में पूर्णाहुति और उसके पश्चात् दक्षिणा देनी चाहिये ।६-८।

यजमानं चतुर्भिस्तैरभिषिञ्चेत्समन्त्रकैः ।
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥९
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणः प्रभुः ।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥१०
आखण्डलोऽग्निर्भगवान्यमो वै नैर्ऋतस्तथा ।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥११
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु वः सदा ।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ॥१२
बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः ॥१३

---

१ क. ङ. न्पूज्य पृष्टास्ततो ददेत् । वं ।

यजमान का चार घड़ों के जल से मन्त्रों के साथ अभिषेक करना चाहिये। मन्त्र यह है कि —ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वासुदेव, जगन्नाथ, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध—ये देवता आपका अभिषेक करके आपकी विजय करते रहें। इन्द्र, अग्नि, भगवान्, यम, नैर्ऋत, वरुण, पवन, कुबेर, शिव, ब्रह्मा, शेष, दिक्पाल आपकी सदा रक्षा करते रहें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, लज्जा, शान्ति, तुष्टि और कान्ति—ये मातायें हैं। ये धर्म-पत्नियाँ आकर आपका अभिषेक करें।९-१३।

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥१४
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।१५
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः।
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥१६
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥१७
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये।
अलङ्कृतस्ततो दद्याद्धेमगोऽन्नभुवादिकम् ॥१८

आदित्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, तथा शनि, राहु और केतु सन्तुष्ट होकर आप लोगों का अभिषेक करते रहें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनु, गौयें, देवमातायें, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सरायें, अस्त्र, शस्त्र, राजा, वाहन, ओषिधयाँ, रत्न, कालाविभाग, नदियाँ, सागर, पर्वत तीर्थ, मेघ, और नद ये सब लोग सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए आप का अभिषेक करें। इस प्रकार अलङ्कृत होकर स्वर्ण गो, अन्न और भूमि आदि का दान करना चाहिये।१४-१८।

कपिले सर्वदेवानां पूजनीयाऽसि रोहिणि।
तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥१९
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥२०
धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥२१

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।२२
पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम् ।
पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम् ।।
प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्ति प्रच्यछ मे ।।२३

अयि कपिले ! अयि रोहिणि, आप सभी देवताओं के पूज्य हैं। आप तीर्थों और देवताओं से युक्त हैं, इसलिये आप हमें शान्ति प्रदान करें। हे घर्म ! आप वृष रूप से संसार को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। आप अष्ट-मूर्ति के स्थान हैं, इसलिये आप हमें शान्ति प्रदान कीजिये । हे शङ्ख, आप पुण्यों के पुण्य और मङ्गलों के मङ्गल हैं, आपको विष्णु निरन्तर धारण किये रहते हैं, इसलिये आप मेरी रक्षा करें। हे हेम, आप हिरण्यगर्भ के गर्भ में स्थित रहने वाले, सूर्य के बीज और अनन्त पुण्य फलों को देने वाले हैं, इस लिये आप हमें शान्ति प्रदान कीजिये। पीताम्बर का जोड़ा भगवान् वासुदेव को प्रिय है और उसके दान से विष्णु प्रसन्न होते हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये ।१६-२३।

विष्णुस्त्वं मत्स्यरूपेण यस्मादमृतसंभवः ।
चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।२४
यस्मात्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा ।
सर्वपापहरा नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।२५
यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा ।
लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।२६
[1]यस्मात्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः ।
योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।।२७

हे विष्णू, आप मत्स्य रूप में अमृत से उत्पन्न होने वाले तथा चन्द्रमा और सूर्य को नित्य वहन करने वाले हैं, अतः आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। हे पृथिवी, आप भगवान् विष्णु के समान कामनाओं को पूर्ण करने वाली और नित्य सभी पापों को नष्ट करने वाली हैं अतः आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। लोहे के जितने भी कर्म हैं, वे सब आप के अधीन रहते हैं और हल इत्यादि आपके आयुध हैं, इसलिये आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।

---

१ यस्मात्त्वं......व्यवस्थितः ग. पुस्तके नास्ति ।

आप सभी यज्ञों के अङ्ग रूप में व्यवस्थित रहने वाले तथा सूर्य के उत्पत्ति-स्थान हैं, इसलिये आप मुझे नित्य शान्ति प्रदान कीजिये ।२४-२७।

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे यादिहलोके परत्र च ॥२८
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ।
शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥२९
तथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः ।
तथा शान्ति प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥३०
यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह ॥३१

गायों के अंगों में चौदह भुवन रहा करते हैं, इसलिये इस लोक और पर लोक में मेरा कल्याण हो । विष्णु और शिव की शय्या सदैव अशून्य रहा करती है, इसलिये प्रत्येक जन्म में दान की हुयी शय्या मेरे लिये अशून्य रहे । सभी रत्नों में सभी देवता प्रतिष्ठित रहा करते हैं, इसलिये वे देवता रत्नदान से मुझे शान्ति प्रदान करें । अन्नदान भूदान की सोलहवें अंश को भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं, इसलिये इस लोक में भूदान से मेरी शान्ति हो ।२८-३१।

ग्रहयज्ञोऽयुतहोमो दक्षिणाभी रणे जितिः ।
विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥३२
सर्वकामाप्तये लक्षकोटिहोमद्वयं मतम् ।
गृहदेशे मण्डपेऽथ अयुते हस्तमात्रकम् ॥३३
मेलखायोनिसंयुक्तं कुण्डं चत्वार ऋत्विजः ।
स्वयमेकोऽपि वा लक्षे सर्वं दशगुणं हि तत् ॥३४
चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा तार्क्ष्यं चात्राधिकं यजेत् ।
सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ॥३५
विषयापहरो नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ।
पूर्ववत्कुण्डमामन्त्र्य लक्षहोमं समाचरेत् ॥३६

ग्रह-यज्ञ, अयुत होम और दक्षिणाओं से रण में विजय तथा विवाहोत्सव आदि यज्ञों में और (देव) प्रतिष्ठादि कर्मों में सफलता प्राप्त होती है । सभी कर्मों की प्राप्ति के लिये लक्ष और कोटि होम माने गये हैं । अयुत होम में गृहदेश स्थित मण्डल में एक हाथ लम्बा तथा मेखला और योनि से युक्त कुण्ड

का निर्माण करना चाहिये। चार ऋत्विज होते हैं, किन्तु लक्ष होम में स्वयं एक ऋत्विग् भी रह सकता है जो दश गुणों से युक्त रहा करता है। इसमें चार अथवा दो हाथ लम्बे गरुड़ की आकृति का निर्माण करके उसका यजन करना चाहिये और पूर्ववत् कुण्ड को आमन्त्रित करके लक्ष होम का अनुष्ठान करना चाहिये। आमन्त्रण मन्त्र यह है—'आप का शरीर सामध्वनि का है, आप विष्णु के वाहन हैं, 'आप सांसारिक विषयों का अपहरण करने वाले हैं, इस लिये आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।३२-३६।

वसोर्धारां ततो दद्याच्छय्याभूषादिकं ददेत्।
तत्रापि दश चाष्टौ च लक्षहोमे तथर्त्विजः ॥३७
([1]पुत्रान्नराज्यविजयभुक्तिमुक्त्यादि[2] चाऽऽप्नुयात्।
दक्षिणाभिः फलेनास्माच्छत्रुघ्नः कोटिहोमकः ॥३८
चतुर्हस्तं चाष्टहस्तं कुण्डं द्वादश च द्विजाः।
पञ्चविंशं षोडशं वा पटे द्वारे चतुष्टयम् ॥३९
कोटिहोमी सर्वकामी विष्णुलोकं स गच्छति ॥३९½

तदनन्तर वसुधारा तथा शय्या और भूषण आदि का दान करना चाहिये। लक्ष होम में अट्ठारह ऋत्विज होते हैं। इससे पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। दक्षिणा के द्वारा कोटिहोमी शत्रुओं का नाशक होता है। कोटि होम में कुण्ड चार अथवा आठ हाथ का होता है जिसमें बारह, पचीस या सोलह ब्राह्मण रहा करते हैं। कोटिहोम करने वाला सभी कामनाओं को प्राप्त करके विष्णु लोक को चला जाता है।३७-३९½।

होमस्तु ग्रहमन्त्रैर्वा गायत्र्या वैष्णवैरपि ॥४०
जातवेदोमुखैः शैवैर्वैदिकैः प्रथितैरपि।
तिलैर्यवैर्घृतैर्धान्यैरश्वमेधफलादिभाक् ॥४१
विद्वेषणाभिचारेषु[3] त्रिकोणं कुण्डमिष्यते।
समिधो वामहस्तेन श्येना[4] स्थ्यनलसंयुताः ॥४२
[5]रक्तभूषैर्मुक्तकेशैर्ध्यायद्भिरशिवं रिपोः।
दुर्भित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुंफडिति च ॥४३

---

१ पुत्रान्नराज्य......गच्छति च पुस्तके नास्ति। २ ख. °त्रान्स्वरा°। ३ ग. °णातिचा°। ४ ख. ङ. °नास्थिलक्षसं°। ५ ग. भूमौ मुक्त°।

छिन्द्यात्क्षुरेण प्रतिमां पिष्टरूपं रिपुं[1]हनेत् ।
यजेदेकं पीडकं वा यः स कृत्वा दिवं व्रजेत् ।।४४

इस होम में ग्रह मन्त्रों अथवा गायत्री छन्द में निबद्ध विष्णु, अग्नि, शिव आदि वैदिक मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये । तिल, यव, घृत, और धान्य से हवन करने पर अश्वमेध इत्यादि फलों की प्राप्ति होती है। विद्वेष अथवा अभिचार कर्मों में कुण्ड का आकार त्रिकोण के समान होता है, जिसमें बाँयें हाथ से श्येन की अस्थियों तथा अग्नि से युक्त समिधाओं को देकर रक्त आभूषणों और छिटके हुए केशों को धारण करके शत्रु के अमङ्गल का ध्यान इस मन्त्र से करना चाहिये—जो मुझसे द्वेष करता है, उसका नाश हो, 'हुंफट्' । तदनन्तर छुरे से अपने शत्रु की प्रतिमा को काट कर, पीठे से बनी शत्रु की आकृति को दो भागों में काट देना चाहिये अथवा एक ही पीडक कर्म को किया जा सकता है, जिसके करने से मनुष्य स्वर्गलोक में पहुँच जाता है ।४०-४४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽयुतलक्षकोटिहोमवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६७

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महापातकादिकथनम्

पुष्कर उवाच—
दण्डं कुर्यान्नृपो नृणां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।
कामतोऽकामतो वाऽपि प्रायश्चित्तं कृतं चरेत् ।।१

पुष्कर बोले—राजा को प्रायश्चित्त न करने वाले मनुष्यों को दण्ड देना चाहिए । कोई भी दुष्कर्म चाहे इच्छा से किया गया हो अथवा अनिच्छा से, उसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए ।१

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन ।
महापातकिना स्पृष्टं यच्च स्पृष्टमुदक्यया ।।२
गणान्नं गणिकान्नं च वार्धुषेर्गायकस्य च ।
अभिशप्तस्य [2]षण्डस्य [3]यस्याश्चोपपतिर्गृहे ।।३

---

१ क. ङ. हरेत् । २ क. ङ. खण्डस्य । ३ क. ख. ग. ङ. च. यस्य चोप° ।

मत्त, क्रुद्ध और रोगियों के अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिए तथा महापातकियों और ऋतुमती स्त्रियों के द्वारा जिस अन्न का स्पर्श किया गया हो, उसे भी नहीं खाना चाहिये। सामूहिक अन्न, गणिकान्न, गायक, अभिशप्त, नपुंसक तथा उपपति के साथ रहने वाली स्त्री के द्वारा पकाये गये भोजन को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। २-३।

रजकस्य नृशंसस्य बन्दिनः कितवस्य च।
([1]मिथ्यातपस्विनश्चैव चौरदण्डिकयोस्तथा ।।४
कुण्डगोलस्त्रीजितानां वेदविक्रयिणस्तथा।
शैलूषतन्तुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ।।५
कर्मारस्य निषादस्य चेलनिर्णेजकस्य च)।
मिथ्याप्रव्रजितस्यान्नं पुंश्चल्यास्तैलिकस्य च ।।६
आरूढपतितस्यान्नं विद्विष्टान्नं न वर्जयेत् ।।६१/२

इसी प्रकार धोबी, क्रूर, बन्दी, छली, मिथ्यातपस्वी, चोर, दण्ड देने वाले, झगड़ालू, स्त्रियों को जीतने वाले, वेदविक्रयी, नट, जुलाहा, कृतघ्न, कुम्हार, निषाद, मिथ्यासंन्यासी, पुंश्चली स्त्री, तेली, पतित और शत्रु के अन्न को वर्जित करना चाहिए।४-६१/२।

तथैव ब्राह्मणस्यान्नं ब्राह्मणेनानिमन्त्रितः ।।७
ब्राह्मणान्नं च शूद्रेण नाद्याच्चैव निमन्त्रितः।
एषामन्यतमस्यान्नममत्या[1] वा त्र्यहं क्षिपेत् ।।८

ब्राह्मण के द्वारा निमन्त्रित न किये जाने पर उसका (ब्राह्मण को) अन्न नहीं खाना चाहिये। निमन्त्रित किए जाने पर भी शूद्र को ब्राह्मण का अन्न नहीं खाना चाहिए। इनमें से किसी का भी अन्न खाने पर ब्राह्मण को तीन दिनों तक व्रत रखना चाहिये। ७-८।

मत्या भुक्त्वाऽऽचरेत्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च।
चण्डालश्वपचान्नं तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।९
अनिर्दशं च प्रेतान्नं गवाऽऽघ्रातं तथैव च।
शूद्रोच्छिष्टं शुनोच्छिष्टं पतितान्नं तथैव च ।।१०
तप्तकृच्छ्रं प्रकुर्वीत अशौचे कृच्छ्रमाचरेत्।
अशौचे यस्य यो भुङ्क्ते सोऽप्यशुद्धस्तथा भवेत् ।।११

---

१ मिथ्यातपस्विनश्चैव.......चेलनिर्णेजकस्य च, क. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।

अन्य लोगों को कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। चाण्डाल का अन्न रेतस्, मल और मूत्र के समान हैं, जिसे खाकर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। प्रेत-अन्न, गाय के द्वारा सूँघा हुआ, शूद्र का जूठा, कुत्ते का जूठा तथा पतितों का अन्न खाने से तप्तकृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिए। यही कर्म यदि अशौच की स्थिति में हो तो कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। जिसके अशौच में कोई भोजन करता है, वह भी उसके जैसा अशुद्ध हो जाता है। ९-११।

मृतपञ्चनखात्कूपादमेध्येन सकृद्युतात्।
अपः पीत्वा त्र्यहं तिष्ठेत्सोपवासो द्विजोत्तमः ॥१२
सर्वत्र शूद्रे पादः स्याद्द्वित्रयं वैश्यभूपयोः।
विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥१३
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१३½

जिस कुएँ में पञ्चनखपशु मरे हों अथवा अमेध्यपदार्थों से युक्त हो, उसका जल पीकर श्रेष्ठ ब्राह्मण को तीन दिनों तक उपवास करना चाहिए। शूद्र को (ब्राह्मण की अपेक्षा) चतुर्थांश और वैश्य तथा राजा को क्रमशः आधे और तीन चौथाई अंशों का पाप लगता है। मूषक, शूकर, गधा, ऊँट, गीदड़, बन्दर और कौए का खाने से मल-मूत्र भक्षण करने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण-व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। १२-१३½।

शुष्काणि जग्ध्वा मांसानि प्रेतान्नं करकाणि च ॥१४
क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः।
गोनराश्वखरोष्ट्राणां छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ॥१५
मांसं जग्ध्वा कुञ्जरस्य तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा ब्रह्मचारी मधु त्वदन् ॥१६
लशुनं गृञ्जनं चाद्यात्प्राजापत्यादिना शुचिः।
भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्यान्मां (न्मा)सं[1] चाऽऽत्मकृतं तथा[2] ॥१७

शुष्क मांस, प्रेतान्न, करक नामक पक्षी, मांस खाने वाले पक्षियों, शूकर, उष्ट्र, गोमय, बन्दर, कौए, गाय, मनुष्य, गदहा, घोड़ा, ग्रामीण, कुक्कुट, और हाथी का मांस खाने पर तप्तकृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है। आमश्राद्ध

१ ख. ग. ङ. ॰सं क्रव्यभुजस्तथा। २ ख. ङ. ॰था। शेलुं ग॰।

के बाद ब्रह्मचारी यदि मदिरा पान कर ले, लहसुन खा ले या चुकन्दर खा ले, तो वह प्राजापत्यादि कर्मों से शुद्ध होता है, किन्तु यदि उपर्युक्त पशुओं का मांस जानबूझकर खा ले तो उसे चान्द्राणय-व्रत करना चाहिए। १४-१७।

पेलुगव्यं च पेयूषं तथा श्लेष्मातकं मृदम्।
वृथा कृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥१८
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च।
गवां च महिषीणां च वर्जयित्वा तथाऽप्यजाम् ॥१९
सर्वक्षीराणि वर्ज्यानि तासां चैवाप्यनिर्दशम्।
शशकः शल्यकी गोधा खड्गः कूर्मस्तथैव च ॥२०
भक्ष्याः पञ्चनखाः प्रोक्ताः परिशेषाश्च वर्जिताः।
पाठीनरोहितान्मत्स्यान्सिंहतुण्डांश्च भक्षयेत् ॥२१

पेलुगव्य, (अण्डकोष का मांस), पेयूष, (प्रसूता गौ आदि का सात दिन के अन्दर का दूध), श्लेष्मातक मिट्टी, दूषित खिचड़ी, लप्सी, खीर, पूआ, पूरी, संस्कार-रहित मांस, देवान्न और हवि खाने पर चान्द्रायण व्रत करे। गाय भैंस और बकरी का दूध छोड़कर अन्य पशु का दूध नहीं पीना चाहिए। खरगोश स्याही, घड़ियाल, गेंडा और कछुआ—ये पाँच नाखूनों वाले भक्ष्य कहे गये हैं। शेष पशुओं का भक्षण वर्जित है। पढिना, रोहू और सिंही मछलियों को खाना चाहिए। १८-२१।

([1]यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रियाः[2]।
वागषाड्गवचक्रादीन्सस्नेहमुषितं तथा ॥२२
अग्निहोत्रपरीद्धाग्निर्ब्राह्मणः कामचारतः।
चान्द्रायणं चरेन्मासं [3]वीरहत्यासमं हि तत्) ॥२३
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः [4]संयोगश्चैव तैः सह ॥२४
अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानं ब्रह्महत्यया[5] ॥२५

---

१ यवगोधूमजं.........हि तत् च. पुस्तके नास्ति। २ क. ख. ग. ङ. °याः। रागखाण्डवचूकादी। ३ ख. ग. घ. °खध्यास°। ४ ख. ग. °योगाश्चै°। ५ ख. °या। ब्रह्मोज्ञ वे°।

अग्निहोत्री को कोई ऐसा पदार्थ नहीं खाना चाहिए, जो गेहूँ, जौ, जमे हुए दूध अथवा वच से बना हो, इसी प्रकार ऐसे पदार्थों का, जिनका कि चिकनापन नष्ट हो गया हो, भक्षण नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त मछलियों को जानबूझकर खाने वाले अग्निहोत्री ब्राह्मण को एक मास तक बद्धवीरासन लगाकर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुपत्नी-समागम करना तथा ऐसे व्यक्तियों के साथ संयोग—ये पांच महापातक कहे गये हैं। असत्य का समुत्कर्ष, राजा के पास चुगली और गुरु पर मिथ्या दोषारोषण—ब्रह्महत्या के समान है।२२-२५।

ब्रह्मोज्झ्यवेदनिन्दा च कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥२६
निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्[1] ॥२७
रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥२८

ब्रह्म का परित्याग, वेदनिन्दा, कूटसाक्ष्य, मित्रवध, किसी निन्दनीय व्यक्ति के अन्न और मक्खन को खाना सुरापान के समान है। धरोहर का अपहरण तथा मनुष्य, अश्व, चांदी, पृथ्वी, वज्र और मणियों का अपहरण सोने की चोरी के सामान माना जाता है। अपने से सम्बद्ध स्त्रियों, कुमारियों, अन्त्यज जाति की स्त्रियों, मित्र-स्त्री और पुत्र की स्त्री के साथ किया गया सहवास, गुरुपत्नी के साथ किये हुए सहवास के समान है। २६-२८।

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यं पारदार्यात्मविक्रयः।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥२९
[2]परिवित्ता चानुजेन परिवेदनमेव च।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥३०
कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥३१
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृताध्यापनमेव च।
भृताच्चाध्ययनादानमविक्रेयस्य विक्रयः ॥३२

---

१ क. ङ. °मृ। रजकाश्मकयो°। २ क. ङ. रिवृत्ता अनु°।

सर्वाकारेष्वधीकारो[1] महायन्त्रप्रवर्तनम्[2] ।
[3]हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवः क्रियालङ्घनमेव च[4] ॥३३

गोहत्या, अयोग्य को यजन करना, परस्त्रीगमन, आत्मविक्रय, गुरु, माता, पिता, स्वाध्याय, अग्नि और पुत्र का परित्याग, बड़े भाई के रहते हुए छोटे भाई का विवाह, ऐसे व्यक्ति के साथ कन्या का विवाह, ऐसे व्यक्ति को यजन करना, कन्यादूषण, व्रतलोप, तालाब, आराम, स्त्रियों-पुत्रों का विक्रय, व्रात्यता, बान्धवत्याग, मृताध्यापन, मृत से अध्ययन अथवा दान लेना, अविक्रेय वस्तु को बेंचना, सुवर्ण आदि की खान का काम करना, विशाल यन्त्र चलाना, ओषधियों का विनाश, स्त्रियों के ऊपर जीवन-निर्वाह, अपने कार्य का उल्लंघन (ये सभी जाति से, च्युत कराने वाली क्रियायें हैं) ।२९-३३।

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणां चैव पातनम् ।
योषितां ग्रहणं चैव स्त्रीनिन्दकसमागमः ॥३४
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ।
[5]अनाहिताग्नितास्तेयमृतानां चाऽऽतपक्रिया ॥३५
[6]असच्छास्त्राधिगमनं दौःशील्यं व्यसनक्रिया ।
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥३६
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ।
ब्राह्मणस्य रुजः कृत्यं घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः[7] ॥३७
भैक्ष्यं पुंसि च मैथुन्यं जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥३७½

ईंधन के लिये हरे वृक्षों का काटना, स्त्रियों का ग्रहण, स्त्रीनिन्दकों के साथ समागम, केवल अपने स्वार्थ के लिये किसी कार्य को करना, निन्द्य अन्न का ग्रहण करना, अनाहिताग्नि होना, चोरी, सन्तप्त करना, असत् शास्त्र का अध्ययन, दुश्शीलता, व्यसनक्रिया, धान्य, धातु और पशु की चोरी, मद्यपान करने वाली स्त्रियों के साथ समागम, स्त्री, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय का बध, नास्तिक्य, उपपातक, ब्राह्मण को सताना, मद्यादि का बेचना, भिक्षाटन और पुरुषों के साथ मैथुन (ये सभी जाति से च्युत करने वाली क्रियायें हैं) । ३४-३७½ ।

---

१ च. °कारायुधाका° । २ ख. ग. च. °हामन्त्र° । ३ क. ङ. हिंस्रौषधीनां स्त्रीजी° । ४ क. च. °यालम्बन° ! ५ अनाहिताग्नितः......चाऽऽतपक्रिया इत्यत्र "अनाहिताग्नितास्तेयमृणानां चानयक्रिया" इत्यर्थं वर्तते । ६ क. ङ. °नं कौशाढ्यं वामन° । ७ क. ङ. °योः । ब्राह्म्यं पुं° ।

श्वखरोष्ट्रमृगेन्द्राणामजाव्योश्चैव मारणम् ॥३८
संकीर्णकरणं ज्ञेयं मीनाहिनकुलस्य च ।
निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ॥३९
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ।
कृमिकीटकयोर्हत्या मद्यानुगतभोजनम् ॥
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥४०

इसी प्रकार कुत्ते, गधे, ऊँट, सिंह, बकरे और भेड़ का मारना, संकीर्ण कृत्य, मछली, सर्प और नेवले को मारना, निन्दितों से धान्य का ग्रहण करना, वाणिज्य, शूद्रों की सेवा, मिथ्याभाषण, कृमि और कीटों की हत्या, मद्यपान के साथ भोजन करना, फल, ईंधन-पुष्पों का चुराना, अधीरता और मलिनता भी अपात्रीकरण के कारण हैं। ३८-४० ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये महापातकादिवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६८

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच—

एतत्प्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं वदामि ते ।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥१

पुष्कर बोले—अब मैं इन पापों का प्रायश्चित्त बतला रहा हूँ । ब्रह्म हत्या करने वालों को वन में कुटी बनाकर बारह वर्षों तक रहना चाहिए ।१

भिक्षेताऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ।
[1]प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धेत्रिरवाक्शिराः ॥२
यजेत वाऽश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।
जपन्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ॥३

---

१ च. प्राणेदातारम° ।

उस व्यक्ति की आत्मशुद्धि के लिए कपाल को लेकर भिक्षा माँगनी चाहिए अथवा अग्नि में कूद पड़ना चाहिए अथवा उसे अश्वमेध या गोमेध यज्ञ करना चाहिए और किसी एक वेद का जप करते हुए सौ योजन (अपने घर से दूर) निकल जाना चाहिए। २-३।

सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत्[1]।
व्रतैरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलम् ॥४
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥५

अथवा उसे वेदविद् ब्राह्मण के लिए सर्वस्व दान करना चाहिए। इन व्रतों से महापातकियों के मल का नाश हो जाता है। गोहत्या के उपपातक से युक्त व्यक्ति को एक मास तक यव के जल का पान करना चाहिए और उसे गोचर्म को धारण करके गोशाला में निवास करना चाहिए।४-५।

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्।
गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥६
दिवाऽनुगच्छेद्गाश्चैव तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत्।
वृषभैकादशा गास्तु दद्याद्विचरितव्रतः ॥७

चतुर्थकाल में उसे थोड़ा-सा भोजन करना चाहिये, जिसमें न तो क्षार हो और न लवण। उसे दो मास तक इन्द्रियों को वश में करके गोमूत्र से स्नान करना चाहिये। उसे दिन में गायों के पीछे चलकर उनके द्वारा उड़ाई गई धूलि का सेवन करना चाहिए। तदनन्तर व्रत समाप्त होने पर उसे ग्यारह बैल और इतनी ही गायों का दान करना चाहिए। ६-७।

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्।
पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥८
योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने।
कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु भयेषु च ॥९
यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते।
घण्टाभरणदोषेण तथैवार्धं विनिर्दिशेत् ॥१०

1 ख. ग. यामो।

यदि इतना न कर सके तो उसके पास जो कुछ भी हो, उसे ही वेदविद् ब्राह्मणों को दान करना चाहिए। यदि, जिस गाय की हत्या की गयी है, वह गोशाले में बंधी हो तो उपर्युक्त व्रत के चतुर्थांश का आचरण करना चाहिए। जब अपने खूंटे में बँधी हुई गाय की हत्या हो जाए तो उपर्युक्त व्रत के अर्धांश का आचरण करना चाहिए। जहां जुते हुए बैल की हत्या हो, वहाँ तीन चौथाई व्रत करना चाहिए और साधारण रूप से उसकी हत्या करने में सम्पूर्ण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। वनों, दुर्गों, विषमस्थानों तथा विपत्ति में पड़े हुए पशुओं की हत्या होने पर व्रत के चतुर्थांश का ही अनुष्ठान करना चाहिए। यदि गाय अथवा बैल की हत्या घण्टा तथा अन्य आभूषणों के कारण हो जाये तो आधे व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। ८-१०।

दमने [1]दामने रोधे शकटस्य नियोजने।
स्तम्भशृङ्खलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ॥११
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलच्छेदने तथा।
यावकं[2] तु पिबेत्तावद्यावत्सुस्था तु गौर्भवेत् ॥१२
गोमतीं च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत्।
एका चेद्बहुभिर्दैवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ॥१३
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक्।
उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकम् ॥१४

यदि गाय या बैल की हत्या उस समय हो जाए, जब उसे जोता जा रहा हो, या वह अपने निश्चित स्थान की ओर ले जाया जा रहा हो तो तीन-चौथाई व्रत करना चाहिए। गाय की सींग, हड्डियों अथवा दुम के टूट जाने पर तब तक जौ का जल पीते रहना चाहिए, जब तक कि गाय स्वस्थ न हो जाय। ऐसे व्यक्ति को गोमती का जप और स्मरण तथा गाय की स्तुति करनी चाहिए। यदि गायों का एक झुण्ड ही दैवयोग से नष्ट हो जाए तो प्रत्येक गाय के लिए उपर्युक्त व्रत के चतुर्थांश का अनुष्ठान करना चाहिए। किन्तु यदि गाय की हत्या उस समय हो जाए जब कोई ऐसा कार्य किया जा रहा हो जिससे उसका उपकार ही होना चाहिए तो कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है। ११-१४।

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनस्तथा।
अवकीर्णी च शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥१५

---

१ क. ङ. च. वामने। २ क. ङ. पावकं।

अवकीर्णी तु कालेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥१६

यही प्रायश्चित्त उन्हें भी करना चाहिए, जो उपपातकी हों अथवा जिन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को भंग किया हो। इन लोगों को अपनी शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत भी करना चाहिए। अपनी प्रतिज्ञा का भंग करने वाले व्यक्ति को चौराहे पर गर्दभ के द्वारा तथा पाक-यज्ञविधान से रात्रि में निर्ऋति का यजन करना चाहिए। १५-१६।

कृत्वाऽग्निं विधिवद्धोमानन्ततस्तु समित्यृचा।
चन्द्रेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतिम् ॥१७
अथ वा गार्दभं चर्म वसित्वाऽब्दं चरेन्महीम्।
हत्वा गर्भमविज्ञातं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१८

बुद्धिमान् व्यक्ति को विधिवत् अग्नि-समिन्धन करके चन्द्रमा, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि के लिए आज्याहुतियां देनी चाहिए अथवा उसे गदहे के चर्म को पहनकर एक वर्ष तक पृथ्वी पर विचरण करना चाहिए। अज्ञान में गर्भ का हनन करने वाले को ब्रह्महत्या के व्रत का पालन करना चाहिए। १७-१८।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णांसुरां पिबेत्।
गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥१९
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
[1]स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥२०
गृहीत्वा मुशलं राजा सकृद्धन्यात्स्वयं गतम्।
[2]वधेन शुध्यते[3] स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा ॥२१

यदि कोई ब्राह्मण मोहवश मदिरा का पान कर ले तो उसे अग्निवर्ण सुरा का, अग्नि के समान वर्णवाले गोमूत्र अथवा केवल जल का पान करना चाहिए। सोने की चोरी करने वाले ब्राह्मण को राजा के समीप जाकर अपने कर्म की सूचना देते हुए यह कहना चाहिए कि—'आप मुझे आज्ञा दें'। राजा को दूसरे के हाथ से एक मूसल लेकर उसे एक ही प्रहार में मार डालना चाहिए, क्योंकि चोर वध से शुद्ध होता है और ब्राह्मण तपस्या से शुद्ध होता है।१९-२१।

१ स्वकर्म..............भवाननुशास्त्विति क. ग. ङ. पुस्तकेषु नास्ति। २ क. ङ. बन्धेन। ३ ग. घ. ङ. च. स्तेयो।

गुरुतल्पो निकृत्यैव शिश्नं च वृषणं स्वयम् ।
निधाय चाञ्जलौ गच्छेदा निपाताच्च नैर्ऋतिम् ॥२२
[१]चान्द्रायणान्वा त्रीन्मासानभ्यसेन्नियतेन्द्रियः ।
जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वाऽन्यतमनिच्छया ॥२३
चरेच्छां (त्सां) तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमिच्छया ।२३½

गुरुपत्नी से समागम करने वाले को स्वयं अपने लिङ्ग और अण्डकोश को काटकर अपनी अञ्जलि में रखकर नैर्ऋत्य दिशा की ओर तब तक जाना चाहिए जब तक वह गिर न जाय अथवा उसे अपनी इन्द्रियों को वश में करके तीन मास तक चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। ऐसा कर्म करके जिससे मनुष्य जाति से भ्रष्ट हो जाए, 'सान्तपन' नामक व्रत करना चाहिए। अनिच्छा से यह कर्म करने पर 'प्राजापत्य' व्रत करना चाहिए ।२२-२३½।

संकरीपात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ॥२४
मलिनीकरणीयेषु तप्तं स्याद्यावकं त्र्यहम् ।
तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ॥२५
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ।
मार्जारनकुलौ [२]हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ॥२६
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥२६½

'इन्दु' व्रत नामक तपस्या उस पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप करना चाहिए जो विजातीय स्त्री-पुरुष के विवाह के समय उपस्थित रहने से होता है। ऐसे कर्मों में जिनसे मनुष्य मलिन हो जाते हैं, तीन दिन तक 'यावक' नामक व्रत करना चाहिए। ब्रह्महत्या के पाप का चतुर्थांश पाप क्षत्रिय के वध करने से, उसका आठवाँ भाग वैश्य की हत्या करने से, सोलहवाँ भाग शूद्र की हत्या करने से होता है। बिल्ली, नेवले, गौरैया, मेढक, कुत्ते, गो, उलूक और कौए की हत्या करने पर शूद्र की हत्या के समान व्रत करना चाहिए ।२४-२६½।

चतुर्णामपि वर्णानां नारीं [३]हत्वाऽनवस्थिताम् ॥२७
अमत्यैव प्रमाथ्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।
[४]सर्पादीनां वधे नक्तमनस्थ्नां वायुसंयमः ॥२८

---

१ ख. °यणं वा त्री° । २ क. ङ. °त्वा वार्षम° । च. °त्वा वर्षमन्त्रक° ।
३ ग. °त्वा व्रतस्थि° । ४ ग. च. सर्वादीनां ।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ।
चरेच्छां (त्सां) तपनं कृच्छ्रं व्रतं निर्वाप्य शुध्यति ॥२६

चारों में से किसी वर्ण की हत्या होने पर शूद्र-हत्या का प्रायश्चित्त करे। स्त्री की अज्ञान-वश हत्या करके भी शूद्रहत्या का प्रायश्चित करे। सर्पादि का वध होने पर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवों की हत्या होने पर 'प्राणायाम' करे। दूसरे के घर से थोड़े मूल्य की वस्तुओं के चुराने वाले को 'कृच्छ्रसान्तपन' व्रत करना चाहिए ।२७-२६।

भक्षभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥३०
तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च[1] ।
चेलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥३१

भोज्य पदार्थों, शय्या, यान, आसन, पुष्प, कन्द और फलों को चुराने वाले की शुद्धि पञ्चगव्य का भक्षण (करके) करना चाहिए। तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्कान्न, गुड़, वस्त्र, चर्म और मांस चुराने वाले के लिए तीन रात्रियों तक भोजन न करना ही प्रायश्चित्त है ।३०-३१।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं[2] कणान्नभुक् ॥३२
कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।
पक्षिगन्धौषधीनां तु[3] रज्ज्वा चैव त्र्यहं पयः ॥३३
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वास्वयोनिषु ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥३४
पितृष्वस्रेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च ।
मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३५

मणि, मोती, मूंगा, तांबा, चाँदी, लोहा, काँसा अथवा पत्थर की चोरी करने वाला बारह दिन तक अन्न का कणमात्र खाकर रहे। कपास, रेशम, ऊन तथा दो खुर वाले बैल आदि, एक खुर वाले घोड़े आदि पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, औषध, अथवा रस्सी चुराने वाला तीन दिन तक दूध पीकर रहे। मित्र-

---

१ क. ङ. च। बेणु च°। २ क. ङ. °हं गणव°। ३ गै. तु लाजाश्चैव।

पत्नी, पुत्रवधू, कुमारी और चाण्डाली में वीर्यपात करके गुरुपत्नीगमन का प्रायश्चित्त करे। फुफेरी बहन, मौसेरी बहिन और सगी ममेरी बहन से गमन करने वाला चान्द्रायण-व्रत करे।३२-३५।

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥३६
मैथुनं वा समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥३७

मनुष्येतर योनि में, रजस्वला स्त्री में, योनि के सिवा अन्य स्थान में अथवा जल में वीर्यपात करने वाला मनुष्य 'कृच्छ्रसान्तपन-व्रत' करे। पुरुष अथवा स्त्री के साथ बैलगाड़ी पर, जल में या दिन में मैथुन करके ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करे।३६-३७।

चण्डालान्त्यस्त्रियोर्गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥३८
विप्रदुष्यं स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि।
यत्पुंसः परदारेषु तदेनां चारयेद्व्रतम् ॥३९
सा चेत्पुनः प्रदुष्येत सदृशेनोपमन्त्रिता।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥४०
यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः।
तद्भैक्ष्यभुग्जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥४१

चाण्डाल और अन्त्यज जाति की स्त्री के साथ सहवास करने वाला, उसके साथ भोजन करने वाला अथवा उससे किसी वस्तु को ग्रहण करने वाला ब्राह्मण यदि अज्ञान में ऐसा करता है तो पतित हो जाता है। यदि जानबूझकर ऐसा करता है तो वह उसके समान हो जाता है। दुष्ट स्त्री को उसका पति एकान्त घर में रखता है और परस्त्रीगामी पुरुष से उसे शिक्षा दिलवाता है। यदि वह स्त्री इस प्रकार व्रत की शिक्षा दिये जाने के बाद भी वैसा ही कार्य करे तो वह 'कृच्छ्रचान्द्रायण' व्रत करके ही पवित्र हो सकती है। जो ब्राह्मण एक रात में रजस्वला कुमारी के साथ सहवास करता है वह तीन बर्षों तक भिक्षान्न खाकर और उपयुक्त मन्त्र का जप करके शुद्ध होता है।३८-४१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।१६९

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच—

[1]महापापानुयुक्तानां प्रायश्चित्तानि वच्मि ते।
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन्॥1

पुष्कर बोले—अब मैं तुमसे महापापियों के प्रायश्चित्तों को कह रहा हूँ। एक वर्ष तक किसी पतित व्यक्ति के संसर्ग में रहने वाला स्वयं पतित हो जाता है।१

[2]याजनाध्यापनाद्यौनान्न[3] तु यानाशनासनात्।
यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः॥२
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गस्य शुद्धये।
पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह॥३

यहाँ पर संसर्ग का अभिप्राय है यज्ञ कराना, पढ़ाना और यौन-सम्बन्ध रखना। जो मनुष्य जिस पतित का संसर्ग करता है, वह उसके संसर्ग जनित दोष की शुद्धि के लिए उस पतित के लिए विहित प्रायश्चित्त करे। पतित व्यक्ति के सपिण्ड और बन्धुओं को उसकी शुद्धि के लिये उदकक्रिया को करनी चाहिये।२-३।

निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ।
दासीघटमपां[4] पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्सदा॥४
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह।
निवर्तयेरंस्तस्मात्तु[5] ज्येष्ठांशं भाषणादिके॥५
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः।
प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम्॥६
तेनैव सार्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्यजलाशये।
एवमेव विधिं कुर्युर्योषित्सु पतितास्वपि॥७
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके॥७½

१ ख. ग. °पापोपपापानां। २ ख. ग. °नाध्ययनादौ वा न तु। ३ क. ङ. °नादीनामनुया°। ४ क. ङ. ° र्णं प्रयस्ये°। ५ क. ङ. °त्तु श्रेष्ठसंभाषणादिकम्। ज्ये°।

पतित के सपिण्ड और बान्धवों को एक साथ निन्दित दिन में, सन्ध्या के समय, जाति भाई, ऋत्विक् और गुरुजनों के निकट, पतित पुरुष की जीविता-वस्था में ही उसकी उदकक्रिया करनी चाहिए। तत्पश्चात् जल से भरे हुए घड़े को दासीद्वारा लात से फेंकवा दे। पतित के सपिण्ड एवं बान्धव एक दिन रात अशौच मानें। उसके बाद वे पतित के साथ सम्भाषण न करें और धन में उसे ज्येष्ठांश भी न दें। पतित का छोटा भाई गुणों में श्रेष्ठ होने के कारण ज्येष्ठांश का अधिकारी होता है। यदि पतित बाद में प्रायश्चित्त कर ले, तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशय में स्नान करके जल से भरे हुये नवीन कुम्भ को जल में फेंक दें। पतित स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यही कार्य करें; परन्तु उसको अन्न, वस्त्र और घर के समीप रहने का स्थान देना चाहिए।४-७½।

तेषां द्विजानां सावित्री नानूद्येत यथाविधि ॥८
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत्।
विकर्मस्थाः परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥९
जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्परिग्रहात् ॥१०
व्रात्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च।
अभिचारमहीनानां त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥११
शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः।
संवत्सरं यताहारस्तत्पापमपसेधति ॥१२

जिन ब्राह्मणों को समय पर विधि के अनुसार गायत्री उपदेश प्राप्त नहीं हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उनका विधिवत् उपनयन-संस्कार करावे। निषिद्ध कर्मों का आचरण करने से जिन ब्राह्मणों का परित्याग कर दिया गया हो, उनके लिए भी इसी प्रकार का उपदेश करे। ब्राह्मण संयत-चित्त होकर तीन सहस्र गायत्री का जप करके गोशाला में एक मास तक दूध पीकर निन्दित प्रतिग्रह के पापग्रह से छूट जाता है। संस्कारहीन मनुष्यों का यज्ञ कराकर गुरुजनों के सिवा दूसरों का अन्त्येष्टि कर्म, अभिचारकर्म अथवा अहीन-यज्ञ कराके ब्राह्मण तीन प्राजापत्य-व्रत करने पर शुद्ध होता है। जो द्विज शरणागत का परित्याग करता है और अनधिकारी को वेद का उपदेश करता है, वह एक वर्ष तक नियमित आहार करके उस पाप से मुक्त हो जाता है।८-१२।

श्वशृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्यादिभरेव च[1]।
नरोष्ट्राश्वैर्वराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति ॥१३

कुत्ते, गीदड़, गधे, ग्राम्य, मांसभक्षी पशुओं, मनुष्य, ऊँट और घोड़े के द्वारा जिस व्यक्ति को काट लिया गया हो, वह प्राणायाम से शुद्ध हो जाता है।१३

स्नातकव्रतलोपे च कर्मत्यागो ह्यभोजनम्।
हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥१४
स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत्।
[2]अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ॥१५

व्रत-भङ्ग होने पर और कर्म का परित्याग करने पर उपवास करना चाहिए। ओंकार का उच्चारण करने वाले ब्राह्मण का उपहास करने वाले ब्राह्मण को स्नान और उपवास करके और तथा के शेष भाग में उपहसित ब्राह्मण का अभिवादन करके उसे प्रसन्न करना चाहिए।१४-१५।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्।
चाण्डालादिरविज्ञातो यस्य तिष्ठेत वेश्मनि ॥१६
सम्यग्ज्ञातस्तु कालेन तस्य कुर्वीत शोधनम्।
चान्द्रायणं पराकं वा द्विजानां तु विशोधनम् ॥१७

ब्राह्मण का रक्त निकालने पर 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र' नामक व्रत करना चाहिए। जिस व्यक्ति के घर में अज्ञान से चाण्डाल रहता है उसे 'पराक' नामक व्रत करना पड़ता है किन्तु यदि वह चाण्डाल जानबूझकर ब्राह्मण के घर रह जाय तो उस ब्राह्मण को चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए।१६-१७।

प्राजापत्यं तु शूद्राणां शेषं तदनुसारतः।
गुडं कुसुम्भं लवणं तथा धान्यानि यानि च ॥१८
कृत्वा गृहे ततो द्वारि तेषां दद्याद्धुताशनम्।
मृन्मयानां तु भाण्डानां त्याग एव विधीयते ॥१९
द्रव्याणां परिशेषाणां द्रव्यशुद्धिर्विधीयते।
कूपैकपानसक्ता ये [3]स्पर्शात्संकल्पदूषिताः ॥२०
शुध्येयुरुपवासेन पञ्चगव्येन वाऽप्यथ।

---

१ क. ख. च। नानाश्वोष्ट्रैर्वा। २ क. ङ. 'वगूह्य च'। ३ ख. च. स्पर्शसंक°।

यस्तु संस्पृश्य चण्डालमश्नीयाच्च स्वकामतः ॥२१
द्विजश्चान्द्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥२१½

इन्हीं परिस्थितियों में शूद्र को प्राजापत्य व्रत करना चाहिये। उस समय घर में नमक, गुड़, कुसुम्भ का पुष्प अथवा अन्य जो भी धान्य हों उन्हें पहले द्वार पर रखकर फिर अग्नि में डाल देना चाहिये किन्तु मिट्टी के बर्तनों का त्याग ही करना चाहिए। अन्य द्रव्यों की शुद्धि द्रव्य शुद्धि के नियमों के अनुसार करनी चाहिए। चाण्डाल के साथ एक ही कुएँ का जल पीने से अशुद्धि से दूषित मनुष्य एक दिन के उपवास अथवा पञ्चगव्य पान से शुद्ध होता है। जो व्यक्ति चाण्डाल का स्पर्श करके जानबूझकर कुछ खा लेता है उसे चान्द्रायण अथवा तप्तकृच्छ् नामक व्रत करना पड़ता है।१८-२१½।

भाण्डसंकुलसंगीर्णाश्चाण्डालादिजुगुप्सितैः ॥२२
भुक्त्वा पीत्वा तथा तेषां षड्रात्रेण विशुध्यति।
अन्त्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥२३
व्रतं चान्द्रायणं कुर्युस्त्रिरात्रं शूद्र एव तु।
चण्डालकूपभाण्डेषु अज्ञानात्पिबते जलम् ॥२४
द्विजः शान्त (सांत) पनं कुर्याच्छूद्रश्चोपवसेद्दिनम् ॥२४½

जो व्यक्ति चाण्डाल इत्यादि के स्पर्श से दूषित पात्रों में खाता है वह छह रात्रों तक अपवित्र रहता है। अन्त्यजों के खाने से बचे हुये भोजन को खाने वाले द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। किन्तु इन्हीं परिस्थितियों में शूद्र त्रिरात्र व्रत से ही शुद्ध हो जाता है। चाण्डाल के कुएँ अथवा बर्तनों का अज्ञानवश जल पीने वाले द्विज को सान्तपन व्रत करना चाहिये।२२-२४½।

चण्डालेन तु संस्पृष्टो यस्त्वपः पिबते द्विजः ॥२५
त्रिरात्रं तेन कर्तव्यं शूद्रश्चोपवसेद्दिनम्।
उच्छिष्टेन यदि स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥२६
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२६½

जो द्विज चाण्डाल का स्पर्श करके जल पीता है, उसे 'त्रिरात्र व्रत' करना चाहिए और ऐसा करने वाले शूद्र को एक दिन का उपवास करना चाहिए। ब्राह्मण यदि उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्र का स्पर्श कर दे तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है।२५-२६½।

वैश्येन क्षत्रियेणैव स्नानं नक्तं समाचरेत् ॥२७
अध्वानं प्रस्थितो विप्रः कान्तारे यद्यदूनके।
पक्वान्नेन गृहीतेन मूत्रोच्चारं करोति वै ॥२८
अनिधायैव तद्द्रव्यमङ्के कृत्वा तु संस्थितम्।
शौचं कृत्वाऽन्नमभ्युक्ष्य अर्कस्याग्नेश्च दर्शयेत् ॥२९

वैश्य अथवा क्षत्रिय का स्पर्श होने पर स्नान और 'नक्तव्रत' करे। मार्ग में चलता हुआ ब्राह्मण यदि वन अथवा जल रहित प्रदेश में पक्वान्न हाथ में लिये मलमूत्र का त्याग कर देता है, तो उस द्रव्य को अलग न रखकर अपने अङ्क में रखे हुए ही आचमन आदि से पवित्र होकर अन्न का प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्नि को प्रदर्शित करे।२७-२९।

[1]म्लेच्छै[2]र्गतानां चारैर्वा कान्तारे वा प्रवासिनाम्।
भक्ष्याभक्ष्यविशुद्ध्यर्थं तेषां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥३०
पुनः प्राप्य स्वदेशं च वर्णानामनुपूर्वशः।
कृच्छ्रस्यान्ते ब्राह्मणस्तु पुनः संस्कारमर्हति ॥३१
पादोनान्ते क्षत्रियश्च अर्धान्ते वैश्य एव च।
पादं कृत्वा तथा शूद्रो दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥३२

जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरों के निवास भूत देश अथवा वन में भोजन कर लेते हैं, उनकी भक्ष्याभक्ष्य विषयक शुद्धि का उपाय वर्ण-क्रम से बतलाता हूँ। ऐसा करने वाले ब्राह्मण को अपने गाँव में आकर पूर्ण कृच्छ्र क्षत्रिय को तीन चरण और वैश्य को आधा व्रत करके पुनः अपना संस्कार कराना चाहिये। एक चौथाई व्रत करके दान देने से शूद्र की भी शुद्धि होती है ।३०-३२।

उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया।
तस्मिन्नेवाहनि स्नाता शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥३३
रजस्वला तु नाश्नीयात्संस्पृष्टा हीनवर्णया।
[2]यावन्न शुद्धिमाप्नोति शुद्धिस्नानेन शुध्यति ॥३४
मूत्रं कृत्वा व्रजन्वर्त्म स्मृतिभ्रंशाज्जलं पिबेत्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥३५

---

१ क. ग. ङ. म्लेच्छैः कृता°। २ °यावन्न.........शुध्यति° इत्यत्र क. ङ, पुस्तकयोः °यावच्छुद्धिमवाप्नोति तावत्स्नानेन शुध्यति° इति दृश्यते।

([1]मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुध्यति ।।३६

यदि किसी स्त्री का समान वर्णवाली रजस्वला स्त्री से स्पर्श हो जाता है तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। अपने से निकृष्ट जाति वाली रजस्वला का स्पर्श करके रजस्वला स्त्री को तब तक भोजन नहीं करना चाहिए जब तक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। उसकी शुद्धि चौथे दिन के शुद्धि-स्नान से हो जाती है। यदि कोई द्विज मूत्र-त्याग करके मार्ग में चलता हुआ जल पी ले तो वह एक रात और दिन उपवास रखकर पञ्चगव्य के पान से शुद्ध होता है। जो मूत्र-त्याग करने के पश्चात् आचमनादि शौच न करके मोह-वश भोजन कर लेता है, वह तीन दिन तक यवपान करने से शुद्ध होता है ।३३-३६।

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्यादिबलात्तथा ।
अनाशकनिवृत्ताश्च तेषां शुद्धिः प्रचक्ष्यते ।।३७
चारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापि वा ।
जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कुर्यात्तं तथा पुनः ।।३८

जो ब्राह्मण संन्यास आदि की दीक्षा लेकर गृहस्थाश्रम का परित्याग कर चुके हों और पुनः संन्यासाश्रम से गृहस्थाश्रम में लौटना चाहते हों; उनकी शुद्धि के विषय में कहता हूँ। उनसे तीन 'प्राजापत्य' अथवा 'चन्द्रायण-व्रत' कराने चाहिए। फिर उनके जातकर्म आदि संस्कार पुनः कराने चाहिए। ।३७-३८।

उपानहममेध्यं च यस्य संस्पृशते मुखम् ।
मृत्तिकागोमये तत्र पञ्चगव्यं च शोधनम् ।।३९
वापनं विक्रयं चैव नीलवस्त्रादिधारणम् ।
[2]तपनीयं हि विप्रस्य त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ।।४०
अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा स्त्री रजस्वला ।
चतुर्थेऽहनि शुद्धा सा त्रिरात्रं तत्र आचरेत् ।।४१

---

१ मूत्रोच्चारं.........पापिनोऽखिलाः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ ख. ग. च. पतनीयं ।

जिसके मुख से जूते या किसी अपवित्र वस्तु का स्पर्श हो जाय, उसकी मिट्टी और गोबर के लेपन तथा पञ्चगव्य के पान से शुद्धि होती है। नील की खेती विक्रय और नीले वस्त्र आदि का धारण—ये ब्राह्मण का पतन करने वाले हैं। इन दोषों से युक्त ब्राह्मण की तीन 'प्राजापत्य'-व्रत करने से शुद्धि होती है। यदि रजस्वला स्त्री को अन्त्यज या चाण्डाल छू जाय तो 'त्रिरात्र-व्रत' करने से चौथे दिन उसकी शुद्धि होती है।३९-४१।

चाण्डालश्वपचौ स्पृष्ट्वा तथा[1] पूयं च सूतिकाम्।
शवं तत्पार्श्विनं स्पृष्टवा सद्यः स्नानेन शुध्यति ॥४२
[2]नारं स्पृष्ट्वा तु सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति।
रथ्याकर्दमतोयेन अधो नाभेर्मृदोदकैः ॥४३
वान्तो विविक्तः[3] स्नात्वा तु घृतं[4] प्राश्य विशुध्यति ॥४३½

चाण्डाल, श्वपाक, मज्जा, सूतिकास्त्री, शव और शव का स्पर्श करने वाले मनुष्य को छूने पर तत्काल स्नान करने से शुद्धि होती है। मनुष्य की अस्थि का स्पर्श होने पर तैल लगाकर स्नान करने से ब्राह्मण विशुद्ध हो जाता है। गली के कीचड़ के छींटे लग जाने से नाभि के नीचे का भाग मिट्टी और जल से धोकर स्नान करने से शुद्धि होती है। वमन अथवा विरेचन के बाद स्नान करके घृत का प्राशन करने से शुद्धि होती है।४२-४३½।

स्नानात्क्षुरकर्मकर्ता कृच्छ्रकृद्ग्रहणेऽन्नभुक् ॥४४
अपाङ्क्तेयाशी गव्याशी शुना दष्टस्तथा शुचिः।
कृमिदष्टश्चाऽऽत्मघाती [5]कृच्छ्राज्जप्याच्च होमतः ॥४५
होमाद्यैश्चानुपातेन पूयन्ते पापिनोऽखिलाः) ॥४६

स्नान के बाद क्षौरकर्म करने वाला और ग्रहण के समय भोजन करने वाला 'प्राजापत्य-व्रत' करने से शुद्ध होता है। पंक्तिदूषक मनुष्यों के साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाला, कुत्ते अथवा कीट से दंशित मनुष्य पञ्चगव्य के पान से शुद्धि प्राप्त करता है। आत्महत्या की चेष्टा करने वाले मनुष्य की 'प्राजापत्यव्रत' जप एवं होम से शुद्धि होती है। होमादि के अनुष्ठान एवं पश्चात्ताप से सभी प्रकार के पापियों की शुद्धि होती है।४४-४६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः। १७०

---

१ ख ग. °थाऽष्टपं च। च. °थाऽऽस्पृश्य च.। २ च. नावं स्पृष्ट्वाऽस्थि स°। ३ घ. च. विविक्तः। ४ च. घृतस्नानेन शु°। ५ ख. °च्छ्राज्जाप्याच्च काम°।

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच—

प्रायश्चित्तं रहस्यादि वक्ष्ये शुद्धिकरं परम् ।
पौरुषेण तु सूक्तेन मासं जप्यादिनाऽघहा ॥१
मुच्यते पातकैः सर्वैर्जप्त्वा त्रिरघमर्षणम् ।
[1]वेदजप्याद्वायुयमाद्गायत्र्या व्रततोऽघहा ॥२

पुष्कर बोले—अब मैं रहस्यभूत प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में बतलाऊँगा जो अत्यन्त शुद्धिकारक है। एक मास तक पुरुष सूक्त का जप करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है, किन्तु अघमर्षण मन्त्र का तीन बार जप करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। वेदमन्त्रों का जप करने से, वायुमन्त्रों का जप करने से, यममन्त्रों का जप करने से और गायत्री के जप से भी यही फल प्राप्त होता है।१-२।

[2]मुण्डनं सर्वकृच्छ्रेषु स्नानं होमो हरेर्यजिः ।
उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपविष्टस्तथा निशि ॥३

सभी कृच्छ्रव्रतों में मुण्डन, स्नान, और हवन के बाद भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। इस व्रत के अनुष्ठाता को दिन खड़े खड़े और रात्रियाँ बैठे बैठे व्यतीत करना चाहिए।३।

एतद्वीरासनं प्रोक्तं कृच्छ्रकृत्तेन पापहा ।
अष्टभिः प्रत्यहं ग्रासैर्यतिचान्द्रायणं स्मृतम् ॥४
प्रातश्चतुर्भिः सायं च शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ।
यथाकथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।५
मासेन भक्षयेदेतत्सुरचान्द्रायणं चरेत् ॥५३

यही वीरासन कहलाता है। इस प्रकार से कृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। यति चान्द्रायण-व्रत में प्रतिदिन आठ

१ वेदजप्या ....व्रततोऽघहा क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ ग. मण्डलं।

ग्रासों को ग्रहण करना कहा गया है और शिशु चान्द्रायण-व्रत में प्रातः सायं चार चार ग्रासों का ग्रहण करना बतलाया गया है। सुरचान्द्रायण-व्रत के अनुष्ठाता को एक मास में दो सौ चालीस पिण्डों को ग्रहण करना चाहिए। ४-५३।

त्र्यहमुष्णं पिबेदा (द) पस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ॥६
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षी भवेत्त्र्यहम् ।
तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं शीतैः शीतं प्रकीर्तितम् ॥७

तप्तकृच्छ्रव्रत उसे कहते हैं जिसमें व्रती पहले तीन दिन उष्णजल का पान करता है, उसके बाद तीन दिन दूध पीता है, फिर तीन दिन घृत पीता है और अन्तिम तीन दिन वायु का भक्षण करके रहता है। जब यह व्रत शीतकाल में किया जाय तब इन सब वस्तुओं को शीतल रूप में ही ग्रहण करना चाहिये।६-७।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥८
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ।
[1]एतच्च प्रत्यहाभ्यस्तं महासांतपनं स्मृतम् ॥९

कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत में इक्कीस दिनों तक जल, गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक का पान किया जाता है। जिस व्रत में एक रात्रि उपवास रखा जाता है उसे कृच्छ्रसान्तपन कहा जाता है। जिसमें एक दिन तक अभ्यास रूप में उपवास किया जाता है उसे महासान्तपन कहते हैं।८-९।

[2]त्र्यहाभ्यस्तमथैकैकमतिसान्तपनं स्मृतम् ।
कृच्छ्रं पराकसंज्ञं स्याद्द्वादशाहमभोजनम् ॥१०
एकभक्तं त्र्यहाभ्यस्तं क्रमान्नक्तमयाचितम् ।
प्राजापत्यमुपोष्यान्ते पादः स्यात्कृच्छ्रपादकः ॥११

यदि यही उपवास लगातार तीन दिनों तक चलता रहे तो उसे अतिसांतपनव्रत कहा जाता है। पराक नामक कृच्छ्र में बारह दिनों तक उपवास करना पड़ता है। प्राजापत्यव्रत में व्रती को तीन दिनों तक लगातार एक समय भोजन करना चाहिए और रात में भी उसे ग्रहण करना चाहिए जो बिना माँगे प्राप्त

१ गः एकभक्तं त्र्यहा। २ त्र्यहाभ्यस्त......स्मृतम् ग. च. पुस्तकयोर्नास्ति।

हो जाय। इसीं के एक चरण का अनुष्ठान कृच्छपाद कहलाता है।१०-११।

फलैर्मासं फलं कृच्छ्रं बिल्वैः श्रीकृच्छ्र ईरितः।
पद्माक्षैः स्यादामलकैः पुष्पकृच्छ्रं तु पुष्पकैः ॥१२
पत्रकृच्छ्रं तथा पत्रैस्तोयकृच्छ्रं जलेन तु।
मूलकृच्छ्रं तथा मूलैर्दध्ना क्षीरेण तक्रतः ॥१३
मासं वायव्यकृच्छ्रं स्यात्पाणिपूरान्नभोजनात्।
तिलैर्द्वादशरात्रेण कृच्छ्रमाग्नेयमार्तिनुत् ॥१४

एक मास तक फलाहार करने को फलकृच्छव्रत कहते हैं, एक मास तक बेल को खाकर रहने से श्रीकृच्छ्र कहा गया है, आमले खाकर किया जाने वाला व्रत पद्माक्ष कहलाता है और पुष्पाहार से किये जाने वाले व्रत को पुष्पकृच्छ्र कहते हैं। इतने समय तक पत्तों को खाकर किया जाने वाला व्रत पत्रकृच्छ्र और जल पीकर किया जाने वाला व्रत 'तोयकृच्छ्र' कहा जाता है। मूलों को खाकर किया जाने वाला व्रत 'मूलकृच्छ्र' कहलाता है। इस व्रत में दही, दूध, मट्ठा भी लिया जाता है। एक मास तक अञ्जलिभर अन्न का भोजन करने से वायव्यकृच्छ्र व्रत किया जाता है। आग्नेय व्रत उसे कहते हैं जिसमें बारह रातों तक तिल का भक्षण किया जाता है। यह व्रत सभी दुःखों का नाशक है।१२-१४।

[1]पक्षं प्रसृत्या लाजानां [2]ब्रह्मकूर्चं तथा भवेत्।
उपोषितश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यामनन्तरम् ॥१५
पञ्चगव्यं समश्नीयाद्धविष्याशीत्यनन्तरम्।
मासेन द्विर्नरः कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१६
श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामोऽघनष्टये।
देवताराधनपरः कृच्छ्रकारी स सर्वभाक् ॥१७

ब्रह्मकूर्च व्रत में एक पक्ष तक खीरों का भोजन करना चाहिए। चौदह दिनों तक उपवास रखने के बाद पन्द्रहवें दिन पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए। तत्पश्चात् सामिष भोजन नहीं करना चाहिए। एक मास में दो बार व्रत का अनुष्ठान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ऐश्वर्य

१ 'पक्षं.........भवेत' इत्यत्र "गव्यं प्रमृज्य लाजानां ब्रह्मकृच्छ्रं तदा चरेत्" इति दृश्यते। ग. घ. पाक्षं। २ ब्रह्मकृच्छ्रं।

की इच्छा करने वाला, पुष्टि की इच्छा करने वाला और स्वर्ग की इच्छा करने वाला, पापों का नाश करने के लिए, देवताओं की आराधना करते हुए कृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करने से सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।१५-१७।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये रहस्यादिप्रायश्चित्तवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७१

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सर्वपापप्रायश्चित्तानि

पुष्कर उवाच—

परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा ।
प्रवर्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा ॥१

पुष्कर बोले—जब जब मनुष्यों का चित्त परस्त्री, परधन या जीवहिंसा आदि में प्रवृत्त हो तब तब प्रायश्चित्त स्तुति करना चाहिए ।१।

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः ।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं[1] हरिम् ॥२

'विष्णु को नमस्कार है, विष्णु को नमस्कार है तथा नित्य विष्णु की वन्दना करता हूँ । मैं विष्णु को नमस्कार करता हूँ, चित्तस्थ तथा अहंकारगत विष्णु को नमस्कार है ।२।

चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् ।
विष्णुमीड्यमशेषेण ह्यनादिनिधनं विभुम् ॥३
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे [2]विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् ।
[3]यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥४
करोति[4] कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
तत्पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥५

---

१ घ. °गति° ह० । २ छ. विष्णुः शुद्धमनः (नाः) स्वयम् । य° । ३ यच्चाहंकारगो..............संस्थितः क. ङ. पुस्तकयोर्न दृश्यते । ४ ख. ग. च. कर्तृभू° ।

मैं उन विष्णु की वन्दना करता हूँ जो चित्त में रहने वाले, ईश्वर, अव्यक्त, अनन्त, अपराजित, स्तुत्य, अनादि अनन्त, और विभु हैं। जो विष्णु मेरे चित्त में विद्यमान हैं, जो विष्णु मेरी बुद्धि में स्थित हैं, जो विष्णु अहंकार में स्थित हैं और जो विष्णु मुझमें स्थित हैं और जो चराचर के कर्मों को करता है उसके चिन्तन से मेरे पापों का नाश हो।३-५।

ध्यातो हरति यत्पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात्।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम्॥६

उन विष्णु के ध्यान से पापों का नाश होता है और स्वप्न में उनका दर्शन भी पापों का नाश करता है। मैं उपेन्द्र, प्रणतार्तिहर भगवान् विष्णु की वन्दना करता हूँ।६।

[1]जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः।
हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम्॥७
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज।
हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते॥८

इस निराधार संसार में अन्धकार में निमज्जित होने वाले के लिए भगवान् विष्णु ही एक मात्र अवलम्ब हैं, अतः मैं परात्पर भगवान् विष्णु की वन्दना करता हूँ। अये सर्वेश्वरेश्वर, विभो, परात्मन्, अधोक्षज, हृषीकेश, हृषीकेश हृषीकेश! आपको नमस्कार है।७-८।

नृसिंहानत गोविन्द भूतभावन केशव।
दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघं नमोऽस्तुते॥९

अये नृसिंह, अनन्त, गोविन्द, भूतभावन, केशव, मेरे जो भी दुरुक्त, दुष्कृत और चिन्तित पाप हैं, उन्हें शान्त कर दीजिए। आपको नमस्कार है।९।

यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना।
[2]अकार्य (र्यं) महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव॥१०

केशव! अपने मन के वश में होकर मैंने जो न करने योग्य अत्यन्त उग्र पापपूर्ण चिन्तन किया है, उसे शान्त कीजिए।१०।

---

१ च. °त्यस्मिंस्त्रिधाकारे म°। २ क. ङ. °कार्षम°।

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ।
जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥११

अये ब्रह्मण्यदेव, गोविन्द, परमार्थपरायण, जगन्नाथ, जगद्धर, अच्युत, आप मेरे पाप को नष्ट कर दें ।११।

यथाऽपराह्णे सायाह्ने मध्याह्ने च यथा निशि ।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥१२
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।
नामत्रयोच्चारणतः[1] पापं यातु मम क्षयम् ॥१३

अपराह्ण, सायं, मध्याह्न और रात्रि में शरीर, मन और वचन से मैंने जाने अनजाने जो कुछ पाप किया है वह हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, माधव—इन तीनों नामों के उच्चारण से शान्त हो जाय ।१२-१३।

शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव[2] ।
पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं[3] मम माधव ॥१४

अये हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, माधव ! आप मेरे शारीरिक पापों को नष्ट कर दीजिए । माधव ! आप मेरे वाचिक पापों को शान्त कर दीजिए ।१४।

यद्भुञ्जन्यत्स्वपंस्तिष्ठन्गच्छञ्जाग्रद्यदा स्थितः ।
[4]कृतवान्पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥१५
यत्स्वल्पमपि यत्स्थूलं कुयोनिनरकावहम् ।
तद्यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥१६

भोजन करते हुए, सोते हुए, खड़े हुए, जाते हुए, जगते हुए जब भी मैंने मन-वचन-कर्म से जो भी पाप किया है, मैंने थोड़ा बहुत जो भी पाप किया हो जिससे मैं निम्न कोटि की योनि में अथवा नरक में गिर सकूँ, अये वासुदेव ! अपने सङ्कीर्तन से आप सम्पूर्ण पाप को नष्ट कर दीजिए ।१५-१६।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् ।
तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पापं तत्प्रणश्यतु ॥१७

---

१ क. ग. घ. ॰तः स्वप्ने या॰ । २ च मानसम् । ३ क. ङ. संचित । ४ क. ङ. कृतं वा पापमर्थार्थं का॰ । च. कृतं वा पापमन्नार्थं का॰ ।

यत्प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितम् ।
सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं शमयत्वघम् ॥१८

परब्रह्म, परमधाम, परमपवित्र भगवान् विष्णु के संकीर्तन से सभी पापों का नाश हो जाय। विष्णु का वह स्थान जो गन्ध-स्पर्शादि से वर्जित है और जहाँ जाकर लौटना नहीं होता है वह मेरे पापों को नष्ट कर दे।१७-१८।

पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि ।
शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥१९
सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् ।
[1]तस्मात्पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥२०
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम् ।
प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ।
ततः कार्याणि संसिद्ध्यै तानि वै भुक्तिमुक्तये ॥२१

जो व्यक्ति इस पापनाशक स्तोत्र को पढ़ता अथवा सुनता है वह सभी कायिक, वाचिक, मानसिक पापों से मुक्त हो जाता है। इस सर्वाघमर्दन स्तोत्र का जप करने से मनुष्य सभी ग्रहों से मुक्त होकर विष्णु के परमधाम को प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्र और व्रत के करने से पाप समूहों का नाश हो जाता है। प्रायश्चित्तों, स्तोत्रों, जपों और व्रतों से पापों का नाश हो जाता है। इसीलिए सिद्धि, भोग और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए इन स्तोत्रों और व्रतों को करना चाहिए।१९-२१।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सर्वपापप्रायश्चित्ते पापनाशनस्तोत्रवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।१७२

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तम्

अग्निरुवाच—
प्रायश्चित्तं ब्रह्मणोक्तं वक्ष्ये पापोपशान्तिदम् ।
स्यात्प्राणवियोगफलो व्यापारो हननं स्मृतम् ॥१

---

१ तस्मात्पापे.........भुक्तिमुक्तये च. पुस्तके न दृश्यते ।

अग्निदेव बोले—अब मैं उस प्रायश्चित्त को बतलाऊँगा जो ब्रह्मा के द्वारा कहा गया है और जो सभी पापों को शान्त करने वाला है। हवन उस व्यापार को कहते हैं जिसका फल है प्राणों का वियोग।१।

रागाद्द्वेषात्प्रमादाच्च स्वतः परत एव वा।
ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः ॥२

ब्रह्मघातक उसे कहते हैं, जो राग, द्वेष, अथवा प्रमाद से स्वयं ब्राह्मण की हत्या करता है या किसी अन्य से करवाता है।२।

बहूनामेककार्याणां सर्वेषां शस्त्रधारिणाम्।
यद्येको घातकस्तत्र सर्वे ते घातकाः स्मृताः ॥३

यदि बहुत से शस्त्रधारी व्यक्तियों का एक ही उद्देश्य हो और उनमें से कोई एक ब्रह्महत्या कर दे तो सभी ब्रह्मघातक माने गये हैं।३।

आक्रोशितस्ताडितो वा[1] धनैर्वा[2] परिपीडितः।
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥४

आक्रोशित, ताडित, अथवा धन से भलीभाँति परिपीड़ित होकर ब्राह्मण जिसके माध्यम से प्राणों का परित्याग करता है, उसे ब्रह्मघाती कहा गया है।४।

औषधाद्युपकारे तु न पापं स्यात्कृते मृते।
पुत्रं शिष्यं तथा भार्यां शासतो न मृते ह्यघम् ॥५

औषध इत्यादि के द्वारा ब्राह्मण का उपकार किए जाने पर यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो भी पाप नहीं लगता है। इसी प्रकार पुत्र, शिष्य तथा स्त्री को दण्ड देने पर यदि उसकी मृत्यु हो जाय, तो भी पाप नहीं लगता है।५।

देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र चोक्ता न निष्कृतिः ॥६

देश, काल, अवस्था शक्ति और किये हुए पाप को ध्यान में रखकर यत्नपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिए, क्योंकि उसके बिना (पाप से) छुटकारा नहीं मिलता है।६।

---

१ क. ङ. वा बन्धैर्वा। २ च. °र्वाऽपि वियोजितः।

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥७

गोहत्या अथवा ब्रह्महत्या करने वाले को तुरन्त ही अपने प्राणों का परित्याग कर देना चाहिए अथवा अपने पाप को अग्नि में झोंक देना चाहिए। इससे ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल जाती है।७।

शिरः कपाली ध्वजवान्भैक्षाशी कर्म वेदयन् ।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात् ॥८

ब्रह्महत्या करने वाले को बारह वर्षों तक अपने कर्म को जानते हुए, कपाल और दण्ड धारण करके, भिक्षान्न का भक्षण करते हुए मितभोगी होना चाहिए, इससे वह शुद्ध हो जाता है।८।

षड्भिर्वर्षैः[1] शुद्धचारी ब्रह्महा पूयते नरः ।
विहितं यदकामानां कामात्तु द्विगुणं स्मृतम् ॥६

यदि अनिच्छा से ब्राह्मणहत्या हो जाय तो छह वर्षों तक इसी प्रकार शुद्ध आचरण करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है, किन्तु यदि वह यही कर्म इच्छा से करता है, तो उसे दुगुना प्रायश्चित्त करना पड़ता है।६।

प्रायश्चित्तं प्रवृत्तस्य वधे स्यात्तु त्रिवार्षिकम्[2] ।
[3]ब्रह्मघ्नि क्षत्रे द्विगुणं विट्शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥१०

जो व्यक्ति प्रायश्चित्त में प्रवृत्त होता है (किन्तु वास्तव में ब्रह्महत्या नहीं करता है) उसे ब्राह्मण होने पर तीन वर्ष तक, क्षत्रिय होने पर छह वर्ष तक, वैश्य होने पर बारह वर्ष तक और शूद्र होने पर अठारह वर्ष तक प्रायश्चित्त करना पड़ता है।१०।

अन्यत्र विप्रे सकलं पादोनं क्षत्रिये मतम् ।
वैश्येऽर्धपादं [4]क्षत्रे स्याद्वृद्धस्त्रीबालरोगिषु ॥११
तृरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतम् (:) ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥१२

---

१ क. ख. 'र्षैः कृच्छ्रचा॰'। २ क. ङ. 'र्षिके। ब्र॰'। ३'ब्रह्मघ्नि...... ...... त्रिधा' इत्यत्र "ब्रह्मघ्नक्षत्रद्विगुणविट्छूद्रे त्रिगुणं द्विधा" क. ङ. पुस्तकयोर्दृश्यते। ४ क. ङ. च. शूद्रे।

अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ।
पञ्चगव्यं पिवेद्गोघ्नो मासमासीत संयतः[1] ॥१३

ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रिय का वध करने से प्रायश्चित्त की अवधि एक चौथाई भाग कम हो जाती है। वैश्य के वध में अष्टमांश प्रायश्चित्त कम होता है और शूद्र के वध में यह षोडशांश कम हो जाता है। अनपराधिनी स्त्री का बध करने से शूद्र-हत्या के समान प्रायश्चित्त करना चाहिए। गोहत्या करने वाले को पञ्चगव्य पीकर एक मास तक संयमपूर्वक रहना चाहिए।११-१३।

गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति ।
कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं वा पादह्रासो नृपादिषु ॥१४

उसे गोशाला में शयन करना चाहिये, गायों का अनुगमन करना चाहिये और गायों का दान करना चाहिये। इससे वह शुद्ध हो जाता है। उसे कृच्छ्र अथवा अतिकृच्छ्र नामक व्रत भी करना चाहिये। यही पाप राजा के द्वारा किये जाने पर प्रायश्चित्त चतुर्थांश कम हो जाता है।१४।

अतिवृद्धामतिकृशामतिबालां च रोगिणीम् ।
हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्धं[2] व्रतं द्विजः ॥१५

अतिवृद्धा, अतिकृश, अत्यन्त छोटी और रोगिणी गाय की हत्या करके ब्राह्मण को पूर्वोक्त विधि से आधा व्रत कराना चाहिये।१५।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्धेमतिलादिकम् ।
मुष्टिचपेटकीलेन तथा शृङ्गादिमोटने ॥१६
लगुडादिप्रहारेण गोवधं[3] तं विनिर्दिशेत् ।
दमने दामने चैव शकटादौ च योजने[4] ॥१७
स्तम्भशृङ्खलापाशैर्वा मृते पादोनमाचरेत् ॥१७½

तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति सोना तथा तिल आदि दान में देना चाहिये। गोवध उसे कहते हैं जिसमें घूंसे, चाँटे, कील और लाठी आदि के प्रहार से गाय की हत्या हो जाती है अथवा उसके सींग आदि को मोड़ दिया जाता है। यदि गाय की हत्या उस समय हो

---

१ ग. संयुतः । २ च. °रेदेकं ब्रत° च यत्। ब्रा°। ३ घ. °वं तन्न नि°। ४ क.ङ.च. योजिते ।

जब उसे सम्भाला जा रहा हो अथवा उसे गाड़ी आदि में जोता जा रहा हो अथवा उसकी हत्या स्तम्भ शृंखला और जाल आदि के द्वारा हो जाये तो प्रायश्चित्त की मात्रा कम हो जाती है ।१६-१७½।

काष्ठे सान्तपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥१८
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥१८½

लकड़ी के द्वारा गोहत्या होने पर सान्तपन और लोष्ठ से हत्या होने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिये । इसी प्रकार पत्थर और शस्त्र से गोहत्या होने पर क्रमशः तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक व्रतों का अनुष्ठान करना चाहिये ।१८-१८½।

मार्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतत्रिणः ॥१९
हत्वा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ।
व्रतं रहस्ये रहसि प्रकाशेऽपि प्रकाशकम् ॥२०
प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापानुपत्तये ॥२०½

बिल्ली, गोह, नेवले, मेढक, कुत्ते और पक्षी की हत्या हो जाने पर तीन दिनों तक दुग्ध पीकर कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । उपर्युक्त पाप यदि एकान्त में हो तो उसके प्रायश्चित के लिये किये गये व्रत का अनुष्ठान भी एकान्त में होना चाहिए । किन्तु यदि ये कार्य (पाप) सबके सामने हों तो व्रत का अनुष्ठान भी सबके सामने होना चाहिए । सभी पापों की शान्ति के लिए सौ बार प्राणायाम करना चाहिए ।१९-२०½।

पानकं द्राक्षमधुकं खार्जूरं तालमैक्षवम् ॥२१
माध्वीकं टङ्कमाधी (ध्वी) कं मैरेयं नारिकेलजम् ।
न[1] मद्यान्यपि मद्यानि पैष्टी मुख्या सुरा स्मृता ॥२२
त्रैवर्णस्य[2] निषिद्धानि पीत्वा तप्तं ह्ययः शुचिः ।
कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥२३

अंगूर, मधु, खजूर, ताल और गन्ने से बनी हुई मदिरा, माध्वीक, टङ्क-माध्वीक, मैरेय और नारियल से बनी हुई मदिरायें मदिरायें नहीं हैं । मुख्य मदिरा पैष्टी मानी गयी है । तीन उच्चवर्णों के लिए मदिरापान निषिद्ध है किन्तु

---

१ ख. ग. न सेव्यान्य । २ क. ख. बालवासा ।

यदि वे उसका पान कर ही लें तो वे व्रत और स्नान से इस इस पाप से निवृत्त हो जाते हैं। उसे या तो एक वर्ष तक किनकी खाना चाहिए या रात्रि में एक बार पिन्नी खाकर रहना चाहिये।२१-२३।

सुरापानापनुत्त्यर्थं [1]वनवासी जटी ध्वजी।
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥२४
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः।
मद्यभाण्डस्थिताश्चापः पीत्वा स्यात्षड्दिनं व्रती ॥२५
चाण्डालस्य तु पानीयं पीत्वा सप्तदिनं व्रती।
चण्डालकूपभाण्डेषु पीत्वा सान्तपनं चरेत् ॥२६

सुरापान में उत्पन्न पाप को नष्ट करने के लिए ध्वजा और जटाओं को धारण करके वनवास ग्रहण करना चाहिए। अज्ञान वश मदिरा अथवा मल-मूत्र के सम्पर्क में आये हुए पदार्थ का भक्षण करने पर तीनों वर्णों के द्विजा-जातियों को पुनः वही संस्कार करने से सात दिनों तक व्रत करना चाहिए। चण्डाल के द्वारा पीने योग्य जल का पान करने से छह दिनों तक व्रत करना चाहिए किन्तु चण्डाल के कुँए और पात्रों का जल पीने से सान्तपन व्रत का आचरण करना चाहिए।२४-२६।

पञ्चगव्यं त्रिरात्रान्ते पीत्वाऽन्त्यजजलं द्विजः।
[2]मत्स्यकण्टकशम्बूकशङ्खशुक्तिकपर्दिकान् ॥२७
[3]पीत्वा नवोदकं चैव पञ्चगव्येन शुध्यति।
शवकूपोदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥२८

अन्त्यज के जल को पीने वाले ब्राह्मण को तीन रातों के बाद पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। मछली, काँटे, घोंघे, शङ्ख, शुक्ति और कीचड़ से मिले हुए तुरन्त एकत्रित जल का पान करने से पञ्चगव्य पीने से शुद्धि होती है। शव से युक्त कुएँ के जल को पीकर त्रिरात्र-व्रत से शुद्धि होती है।२७-२८।

अन्त्यावसायिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
आपात्काले शूद्रगृहे मनस्तापेन शुध्यति ॥२९

---

१ क. ख. बालवासा। २ च° ककीटास्थिशङ्ख°। ३ च. शवोदकं गृहीत्वा तुत्रि°।

अन्त्यावसायि (निषादस्त्री और चण्डाल पुरुष से उत्पन्न सन्तान) के अन्न का भक्षण करके चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। आपत्तिकाल में शूद्र के घर में भोजन करके मनस्ताप से ही शुद्धि हो जाती है।२९

शूद्रभाजनभुग्विप्रः पञ्चगव्यादुपोषितः।
[1]कटुपक्वं स्नेहपक्वं स्नेहं च दधिसक्तवः॥३०
शूद्रादनिन्द्यान्येतानि गुडक्षीररसादिकम्।
अस्नातभुक्चोपवासी दिनान्ते तु जपाच्छुचिः॥३१

शूद्र के पात्रों में भोजन करने वाला ब्राह्मण पंचगव्य से ही शुद्ध हो जाता है। किन्तु तेल और मक्खन में पके हुए पदार्थ दही, सत्तू, गुड़, दुग्ध और रस इत्यादि यदि शूद्र के भी हों तो प्रशस्त होते हैं।३०-३१।

मूत्रोच्चार्यशुचिर्भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति।
केशकीटावपन्नं च पादस्पृष्टं च कामतः॥३२
भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं वाऽप्युदक्यया।
काकाद्यैरवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च॥३३
गवाद्यैरन्नमाघ्रातं भुक्त्वा त्र्यहमुपावसेत्।
रेतो विण्मूत्रभक्षी तु प्राजापत्यं समाचरेत्॥३४

मलमूत्र-त्याग करने के बाद अशौचावस्था में बिना पवित्र हुए भोजन करने से 'त्रिरात्र-व्रत' से शुद्धि होती है। ऐसे अन्न को खाने से जो केश और कीड़ों से युक्त हो, जिसे पैरों के द्वारा छुआ गया हो, जो भ्रूण हत्या करने वाले के द्वारा देखा गया हो, जिसे वाराङ्गना ने स्पर्श किया हो, जिसे कौवे आदि के द्वारा चाटा गया हो, जिसे कुत्ते ने छू लिया हो और गो आदि जिसे सूंघ लिया हो उस अन्न को खाकर तीन दिन तक उपवास करना चाहिए। रेतस्, मल और मूत्र भक्षण करने वाले को 'प्राजापत्य' व्रत का आचरण करना चाहिए। ३२-३४।

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके मतः।
पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च॥३५
आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके।
पूर्वेद्युर्वार्षिकं श्राद्धं परेद्युः पुनराब्दिकम्॥३६

१ कटुपक्वं......दधिसक्तवः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।

नव दिन के श्राद्ध में 'चान्द्रायण' और मासिक श्राद्ध में 'पारक' नामक व्रत माना गया है। तीन पक्ष के श्राद्ध में 'अतिकृच्छ्र' और छमाही के श्राद्ध में 'कृच्छ्र' नामक व्रत का आचरण करना चाहिए। वार्षिक श्राद्ध में 'पादकृच्छ्र' और पुनराब्दिक श्राद्ध में 'एकाह-व्रत' करना चाहिये। पहले दिन का श्राद्ध वार्षिक और दूसरे दिन का श्राद्ध पुनराब्दिक कहलाता है।३५-३६।

निषिद्धभक्षणे भुक्ते प्रायश्चित्तमुपोषणम्।
भूस्तृणं लशुनं भुक्त्वा शिग्रुकं[1] कृच्छ्रमाचरेत् ॥३७
अभोज्यानां तु भुक्त्वाऽन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च।
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं पयः पिबेत् ॥३८
मधु मांसं च योऽश्नीयाच्छावं सूतकमेव वा।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मचारी यतिर्व्रती ॥३९

निषिद्ध भक्षण करने का प्रायश्चित्त उपवास है। भूस्तृण और लहसुन खाकर 'शिशुक' नामक कृच्छ्र-व्रत का आचरण करना चाहिए। अभोज्यों के अन्न को खाकर स्त्री और शूद्रों के उच्छिष्ट तथा मांस और अभक्ष्य का भक्षण करके सात रात दुग्धपान करके रहना चाहिये। मृत्यु से उत्पन्न सूतक के समय जो मधु और मांस का सेवन करता है उसे प्राजापत्य नामक 'कृच्छ्र-व्रत' का आचरण करना चाहिए तथा उसे ब्रह्मचारी, यति और व्रती के रूप में रहना चाहिए।३७-३९।

अन्यायेन परस्वापहरणं स्तेयमुच्यते।
मुसलेन हतो राज्ञा स्वर्णस्तेयी विशुध्यति ॥४०

अन्याय से दूसरों के धन का अपहरण करना चोरी कहलाता है। सोने को चुराने वाला व्यक्ति राजा के द्वारा मूसल से ताड़ित होने पर शुद्ध हो जाता है।४०

अधः शायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः।
एककालं समश्नानो द्वादशाब्दे विशुध्यति ॥४१

उसे भूमि पर सोना चाहिए जटाओं को धारण करना चाहिए, जड़ों और फलों का भोजन करना चाहिए अथवा उसे एक समय ही

---

१ ग. शिशुकं।

भोजन करना चाहिये । ऐसा करने से वह बारह वर्ष में शुद्ध हो जाता है ।४१

रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा कृच्छ्रं चाब्दं चरेन्नरः ॥४२
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक् ॥४३
मनुष्याणां तु हरणे[१] स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
वापीकूपतडागानां शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥४४

सोना चुराने वाला, मदिरा पान करने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, गुरुपत्नी के साथ समागन करने वाला, चोरी करने वाले, और मदिरा पीने वाले को एक वर्ष तक कृच्छ्र-व्रत का आचरण करना चाहिये । मणि, मोती, मूंगा, तांबाँ, चाँदी, लोहा, काँसा, और पत्थर चुराने वाले को बारह दिन तक किनकी खाकर रहना चाहिए । मनुष्यों, स्त्रियों, खेतों, घरों, बावलियों और तालाबों का अपहरण करने वाले की शुद्धि चान्द्रायण-व्रत से मानी गयी है ।४२-४४।

भक्ष्यभोज्यापहरणे[२] यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥४५

भक्ष्य, भोजन, सवारी, शय्या, आसन, पुष्पकन्द और फलों को चुराने वाले की शुद्धि पञ्चगव्य से हो जाती है ।४५

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥४६
पितुः पत्नीं च भगिनीमाचार्यतनयां तथा ।
[३](आचार्याणीं[४] (नीं) सुतां स्वां च गच्छंश्च गुरुतल्पगः ॥४७
गुरुतल्पेऽभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्याद्योमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं चाऽऽश्लिष्य मृत्युना स विशुध्यति ॥४८
चान्द्रायणान्वा त्रीन्मासानभ्यस्य गुरुतल्पगः ।) ४८½।

---

१ च. ०णे यानशय्यासनस्य । २ क. ख. णे परिश° । ३ आचार्याणीं ...... गुरुतल्पगः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ४ च. °चार्यस्य स्नुषां चैव ग° ।

तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्कान्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा और मांस को चुराने वाले को तीन रातों तक बिना भोजन किये रहना चाहिये। माता, बुआ, आचार्य-पुत्री, आचार्य-पत्नी और अपनी पुत्री से सहवास करने वाला गुरुतल्पग कहलाता है। इस प्रकार के व्यक्ति को जलते हुए लाल लाल लोहे की बनी हुई स्त्री-मूर्ति का आलिङ्गन करके आत्मदाह करना चाहिए अथवा उसे तीन महीने तक चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए।४६-४८½।

एवमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥४९
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां कारयेद्व्रतम्।
रेतः सिक्त्वा कुमारीषु चाण्डालीषु सुतासु च ॥५०
सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते।
यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं[1] द्विजः ॥५१
तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥५१½

यही नियम पतित स्त्रियों के साथ सहवास करने वाले के लिये भी है। जो व्यक्ति परपत्नी के साथ सहवास करता है उसे उस स्त्री से उपर्युक्त व्रत को करवाना चाहिये। कुमारी, चाण्डाल-कन्या, सगोत्र स्त्री और अपनी पुत्री के साथ सहवास करने वाले के लिए आत्महत्या का विधान है। एक रात्रि शूद्रा के साथ सहवास करने वाला ब्राह्मण भिक्षान्न खाकर अथवा तीन वर्षों तक अपने मन्त्र का जप करने से शुद्ध होता है।४९-५१½।

पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्यागमे तथा ॥५२
चाण्डालीं पुक्कसीं[2] वाऽपि स्नुषां च भगिनीं सखीम्।
मातुः पितुः स्वसारं च निक्षिप्तां शरणागताम् ॥५३
मातुलानीं स्वसारं च सगोत्रामन्यमिच्छतीम्।
शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥५४

चाची, भाई की स्त्री, चाण्डाली, बुआ, बहन की सखी, मौसी, शरण आई हुई स्त्री, मामी, सगोत्र स्त्री, शिष्य-पत्नी, गुरुपत्नी और जिसकी इच्छा न हो ऐसी स्त्री के साथ सहवास करने वाले को चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये।५२-५४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।१७३

---

१ क. ख. ग. ङ. °वनाद्द्विजः। २ क. ख. ग. ङ. °सीं व्याधीं °स्नु°।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि

अग्निरुवाच—

[1]देवाश्रमार्चनादीनां प्रायश्चित्तं[2] तु लोपतः ।
पूजालोपे चाष्टशतं जपेद्द्विगुणपूजनम् ॥१

अग्निदेव बोले—किसी देवता आदि के पूजन के छूट जाने पर प्रायश्चित्त स्वरूप उसी देवता के मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए और देवता का पूजन दो बार करना चाहिए ।१

पञ्चोपनिषदै[3] र्मन्त्रैर्हुत्वा ब्राह्मणभोजनम् ।
सूतिकान्त्यजकोदक्यास्पृष्टे देवे शतं जपेत् ॥२

पञ्चोपनिषद् मन्त्रों से हवन करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । यदि मूर्ति का स्पर्श गणिका, प्रसूता स्त्री अथवा अन्त्यज जाति के व्यक्ति के द्वारा हो जाये तो उस देवता से सम्बन्द्ध मन्त्रों का सौ बार जप करना चाहिए ।२

पञ्चोपनिषदैः पूजां द्विगुणं[4] स्नानमेव च ।
विप्रभोज्यं होमलोपे होमस्नानं तथाऽर्चनम् ॥३
होमद्रव्ये मूषिकाद्यैर्भक्षिते कीटसंयुते ।
तावन्मात्रं परित्यज्य प्रोक्ष्य[5] देवादि पूजयेत् ॥४

यदि असावधानी से कोई होम कार्य करने से रह जाये तो पञ्चोपनिपद् मन्त्रों से दुगुनी पूजा करके होम-स्नान, देवार्चन और ब्राह्मण भोजन करना चाहिये । यदि होम की सामग्री को चूहे आदि खा लें या उसमें कीड़े लग जायें तो उतने अंश को निकालकर और सामग्री को धोकर देवता का पूजन करना चाहिए ।३-४।

अंकुरार्पणमात्रं तु च्छिन्नं भिन्नं परित्यजेत्[6] ।
अस्पृश्यैश्चैव संस्पृष्टे अन्यपात्रे तदर्पणम् ॥५

---

१ ख. ग. °श्रयार्च° । २ ख. ग. °श्चित्तमशेषतः । ३ °च. °न्त्रैर्दत्त्वा ब्रा° । ४ ग. द्विगुणां । ५ ग. प्रेक्ष्य । ६ क. ङ. °त् । स्पृशेच्चैव तु सं° ।

देवमानुषविघ्नघ्नं[1] पूजाकाले तथैव च ।
मन्त्रद्रव्यादिव्यत्यासे[2] मूलं जप्त्वा पुनर्जपेत्[3] ॥६

जहाँ देवता को अंकुरमात्र अर्पण करना हो वहाँ उसके छिन्न-भिन्न भाग को छोड़ देना चाहिए। यदि अछूतों के द्वारा उसका स्पर्श हो जाये तो उसे अन्य पात्र में रखकर देवता को अर्पित करना चाहिए । पूजा के समय देवताओं तथा मनुष्यों से उत्पन्न होने वाले विघ्नों का नाश करने के लिए और मन्त्र तथा द्रव्यादि के उलट जाने पर मूल मन्त्र का पुनः-पुनः जप करना चाहिए ।५-६।

कुम्भे नष्टे शतजपो देवे तु पतिते करात् ।
भिन्ने नष्टे चोपवासः शतहोमाच्छुभं[4] भवेत् ॥७

कलश के नष्ट हो जाने पर मन्त्र का सौ बार जप करना चाहिए। देवता की मूर्ति हाथ से गिर जाने पर, उसके टूट जाने पर और उसके नष्ट हो जाने पर उपवास और सौ बार होम करने पर शुभ होता है ।७

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥८

किसी पाप के हो जाने पर जिस मनुष्य को उसका पश्चात्ताप होता है उसके लिये एक मात्र हरि-स्मरण ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ।८

चान्द्रायणं पराको वा प्राजापत्यमघौघनुत् ।
सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्रजप्यमघौघनुत् ॥९
गायत्री प्रणवस्तोत्रमन्त्रजप्यमघान्तकम् ।
काद्यैराबीजसंयुक्तैराद्यैराद्यै[5] स्तदन्तकैः ॥१०
सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्राः कोट्यधिकाः पृथक् ।
ओं ह्रीमाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः सर्वकामदाः ॥११
[6]नृसिंहद्वादशाष्टार्णमालामन्त्राद्यघौघनुत्[7] ।
आग्नेयस्य पुराणस्य पठनं श्रवणादिकम् ॥१२

---

१ क. ङ. °विघ्नघ्नं । २ ख. ग. °दि चाभ्यासे । ३ च. °नर्यजेत् । ४ क. ङ. शत° होमो विभावसौ । कृ° । ५ क. ङ. काष्ठै रात्राञ्जसं° । ६ च. °दशस्तोत्रमा° । ७ क. ग. ङ. °शार्णं तु मा° ।

चान्द्रायण, पराक और प्राजापत्य व्रत पापसमूह को नष्ट करने वाले हैं। सूर्य, ईश्वर, शक्ति और विष्णु आदि के मन्त्रों का जाप भी पापपुञ्ज को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार गायत्री और प्रणवस्तोत्र मन्त्रों का जप भी पापों का नाशक होता है। सूर्य, ईश्वर, और नारायण आदि के मन्त्र तथा वे मन्त्र जो 'क' से प्रारम्भ होकर 'र' से अन्त होते हैं सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं किन्तु इन मन्त्रों के आदि में 'ॐ ह्रीं' आना चाहिये। तदनन्तर चतुर्थी एक वचन में देवता के नाम का प्रयोग करके अन्त में 'नमः' पद का प्रयोग करना चाहिए। नृसिंह के लिए पढ़े गये द्वादशाक्षर और अष्टाक्षर मन्त्रादि पापसमूह को नष्ट करने वाले होते हैं। उसी प्रकार अग्निपुराण का पाठ और श्रवण भी पापों का नाशक होता है।९-१२।

[1]द्विविद्यारूपको विष्णुरग्निरूपस्तु गीयते।
परमात्मा[2] देवमुखं सर्ववेदेषु गीयते ॥१३
[3]प्रवृत्तौ तु निवृत्तौ तु इज्यते भुक्तिमुक्तिदः।
अग्निरूपस्य विष्णोर्हि हवनं ध्यानमर्चनम् ॥१४
जप्यं स्तुतिश्च प्रणतिः शरीरस्थाद्यघौघनुत्[4] ॥१४½

द्विविद्यारूप विष्णु अग्निरूप होता है। जिसका गान सभी वेदों में परमात्मा और देवमुख के रूप में भी किया जाता है। अग्निरूप विष्णु का हवन, ध्यान और अर्चन प्रवृत्ति कर्म और निवृत्ति कर्म में भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाला होता है। अग्नि के मन्त्रों का जप करना, उसकी स्तुति करना अथवा उसको प्रणाम करना सभी शरीरस्थ पापों का नाश कर देता है।१३-१४½।

[5]दश स्वर्णानि दानानि धान्यद्वादशमेव च ॥१५
तुलापुरुषमुख्यानि (णि) महादानानि षोडश।
अन्नदानानि मुख्यानि सर्वाण्यघहराणि हि ॥१६

---

१ 'द्विविद्यारूपको...... ....गीयते' इत्यत्र च. पुस्तके "मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्यग्निरप्यत्र गीयते" इतीदं दृश्यते। २ क. ङ. °त्मा सर्वमु°। ३ क. ङ. °वृत्तैस्तु निवृत्तैस्तु भुज्य°। ४ च. °त्। शतस्वर्णादिपानानि धान्यानि द्वा°। ५ 'दशस्वर्णानि......धान्यद्वादशमेव च' इत्यत्र "यदा स्वर्णादि-दानादिष्यानाद्या दश मेखलाः।" इति क. ङ. पुस्तकयोर्वर्तते।

सोने का दश प्रकार का दान, बारह प्रकार का धान्यों का दान, तुलादान, सोलह प्रकार के महादान और मुख्य अन्नदान सभी प्रकार के पापों का नाश करने वाले हैं।१५-१६।

तिथिवारर्क्षसंक्रान्तियोगमन्वादिकालके[1] ।
व्रतादि सूर्येशशक्तिश्रीशादेरघघातनम् ।।१७

सूर्य, ईश, शक्ति और नारायण आदि के वे व्रतादि जो शुभ तिथि, वार, नक्षत्र, सङ्क्रान्ति और मन्वादि काल में किये जाते हैं, सभी पापों के नाशक होते हैं।१७

गङ्गा गया प्रयागश्च काश्ययोध्या ह्यवन्तिका ।
कुरुक्षेत्रं पुष्करं च नैमिषं पुरुषोत्तमः ।।१८
शालग्रामप्रभासाद्यं तीर्थं चाघौघघातकम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरिति ध्यानमघौघनुत् ।।१९

गङ्गा, गया, प्रयाग, काशी, अयोध्या, अवन्तिका, कुरुक्षेत्र, पुष्करक्षेत्र, नैमिषक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र, शालग्राम और प्रभासादि तीर्थ पाप-पुञ्ज के नाशक हैं। "अहंब्रह्म" परं ज्योतिः " इस मन्त्र का जप सभी पापों का नाशक है।१८-१९।

पुराणं ब्रह्म चाऽऽग्नेयं ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।
अवताराः सर्वपूजाः प्रतिष्ठाप्रतिमादिकम् ।।२०
ज्योतिःशास्त्रपुराणानि स्मृतयस्तु तपो व्रतम् ।
अर्थशात्रं च सर्गाद्या आयुर्वेदो धनुर्मतिः ।।२१
शिक्षा छन्दो व्याकरणं निरुक्तं चाभिधानकम् ।
कल्पो न्यायश्च मीमांसा ह्यन्यत्सर्वं हरिः प्रभुः ।।२२

अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, विष्णु के सभी अवतार, उनकी प्रतिमाएँ, ज्योतिः शास्त्र, पुराण, स्मृतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सर्ग इत्यादि, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दस्, व्याकरण, निरुक्त, कोश, कल्प, न्याय, मीमांसा इत्यादि भगवान् हरि के विभिन्न रूप हैं।२०-२२।

---

१ ख. ग. °दिलग्नके । व्र°।

एको द्वयोर्यतो यस्मिन्यः सर्वमिति वेद यः ।
तं दृष्ट्वाऽन्यस्य पापानि विनश्यन्ति हरिश्च सः ॥२३
विद्याष्टादशरूपश्च[1] सूक्ष्मःस्थूलोऽपरो हरिः ।
ज्योतिः सदक्षरं ब्रह्म परं त्रिष्णुश्च निर्मलः ॥२४

जो व्यक्ति परमात्मा को जानता है, यह जानता है कि यह प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं और किसमें लीन होंगे । उसके दर्शन से ही सारे पापों का नाश होता है क्योंकि वह हरिरूप ही होता है । हरि अष्टादश विद्याओं का रूप है, वह सूक्ष्म, स्थूल और अपर है । वही ज्योति है, वही सत् है, वही अक्षर है । वही परब्रह्म है और वही निर्मल विष्णु है ।२३-२४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये प्रायश्चित्तकथनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७४

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपरिभाषा

अग्निरुवाच—
तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्वब्दार्क संक्रमे[2] ।
([3] नृस्त्रीव्रतादि वक्ष्यामि वशिष्ठ शृणु तत्क्रमात् ॥१

अग्निदेव बोले—वशिष्ठ ! अब मैं तिथि, दिन, नक्षत्र, मास, ऋतु, वर्ष तथा अयनों में किये जाने वाले स्त्री-पुरुषों के व्रत आदि का क्रमशः वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ।१

शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम् ।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ॥) २
व्रतं हि कर्तृसंतापात्तप इत्यभिधीयते ।
इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ॥३

शास्त्रोक्त नियम ही व्रत है । उसी को तप भी कहते हैं । दम आदि तो इसी व्रत के विशेष नियम हैं । व्रत करने में कष्ट होने के कारण इन्हें तप कहा जाता है और इनके द्वारा इन्द्रिय-समूहों का नियमन करने से यह नियम भी कहलाते हैं ।२-३।

---

१ ग. चः श्च मूर्तस्थू॰ । २ च. मे॰ । राज्य व्र॰ । ३ नृस्त्रीव्रतादि.......दमादयः पुस्तकयोर्नास्ति ।

अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ।
व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा द्विज: (जाः) ॥४
ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः ।
उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥५

अये ब्राह्मणो ! जो ब्राह्मण अग्न्याधान इत्यादि नहीं करते हैं, उनका कल्याण व्रत, उपवास, नियम तथा विविध (प्रकार के) दानों से हुआ करता है। देवता लोग ऐसे ब्राह्मणों से प्रसन्न होकर भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। पापों से विमुख होकर गुणों (धर्मों) के संसर्ग में रहने को ही उपवास कहा जाता है ।४-५।

उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।
[1]कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोरदूषकम् ॥६
शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन्स्त्रियम् ।
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ॥७
उपवासे न शस्यन्ति[2] दन्तधावनमञ्जनम् ।
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतं चरेत् ॥८

इसमें सभी भोगों का परित्याग कर देना पड़ता है। उपवास के दिन कांस्यपात्र, मांस, मसूर की दाल, चना, कोदो, शाक, मधु, परान्न, स्त्री, पुष्प, अलङ्कार, वस्त्र, धूप, गन्ध, लेप, दन्तधावन, तथा अञ्जन का व्यवहार नहीं करना चाहिए। अपितु प्रातःकाल दातून के बदले पञ्चगव्य से मुँह धोकर व्रत का आचरण करना चाहिए ।६-८।

असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ।
उपवासः प्रदुष्येत दिवा स्वप्नाच्च[3] मैथुनात् ॥९

बार-बार जलपान करने, ताम्बूल भक्षण करने से दिन में सोने से तथा मैथुन करने से उपवास नष्ट हो जाता है ।९

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाऽग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च ॥१०
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥१०३

---

१ ख. ग. °स्यं माषं म°। २ ग. दुष्यन्ति । ३ ख. ग. °प्नाक्षमै°।

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्न्याधान, सन्तोष और अस्तेय-इन दस धर्मों का सभी व्रतों में समान रूप से निर्वाह करना चाहिए ।१०-१०½।

पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ।।११
नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः ।
क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ।।१२

उस दिन पवित्र मन्त्रों का जप और यथाशक्ति हवन करना चाहिए। नित्यस्नान, अल्पाहार और गुरु, देवता तथा द्विजों का पूजन तो करना ही चाहिए । खारी वस्तुयें, शहद, लवण, मदिरा, तथा मांस का परित्याग कर देना चाहिए।११-१२।

तिलमुद्गादृते[1] शस्यं शस्ये गोधूमकोद्रवौ ।
चीनकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम्[2] ।।१३
शितधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ।
व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ।।१४
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः ।।१४½

तिल, मूँग के अतिरिक्त सभी धान्य, गेहूँ, कोदो, चेना, देवधान्य, शमीधान्य, (उड़द) गुड़, साँवा, बाजार की वस्तुयें तथा मूल इनकी गणना क्षार समूह में होती है । व्रीहि, षष्टिक, मूंग, मटर, तिल, जौ, साँवा, नीवार, (फसही के धान) तथा गेहूँ आदि अन्न व्रत में ग्राह्य हैं ।१३-१४½ ।

कूष्माण्डालाबुवार्ताकान्पालङ्की पूतिकां त्यजेत् ।।१५
चरुभैक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधिघृतं पयः ।
श्यामाकशालिनीवारा य (या) वकं मूलतण्डुलम् ।।१६
हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् ।।१६½

कद्दू, बैंगन, लौकी, पालक, और पोय ये वस्तुयें अग्राह्य हैं। चरु, भिक्षान्न, सत्तू, शाक, दही, घी, दूध, साँवा, चावल, पसही के चावल, जौ का सत्तू, मूल तण्डुल (धान्य-विशेष) तथा हविष्य-ये वस्तुयें रात्रिव्रत और अग्नि-कार्य आदि में ग्राह्य हुआ करती हैं ।१५-१६½।

---

१ क. ङ. 'ते शाम्बं मत्स्यगो° । २ ख. ग.° म् । स्विन्नं धा° ।

मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम् ॥१७
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
[1]त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥१८

मधु और मांस को छोड़कर प्रायः अन्य वस्तुयें व्रत में हितकारक ही मानी जाती हैं। प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान करने वाले द्विज को तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना माँगे ही मिले हुए अन्न का भोजन करना चाहिए ।१७-१८।

([2]एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥१९
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं[3] स्मृतम् ॥२०

तदनन्तर तीन-तीन दिन तक बिना भोजन किये ही रहना चाहिए। 'अतिकृच्छ्र' नामक व्रत का अनुष्ठान करने वाला द्विज तीन दिन तक एक-एक ग्रास भोजन करे, तीन दिन पूर्ववत् भोजन करे और अन्त में तीन दिन उपवास करे। 'कृच्छ्रसान्तपन' नामक व्रत गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी तथा कुशों को धोने वाला जल पीकर के एक रात उपवास करना चाहिए ।१९-२०।

पृथक्सांतपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनोऽघहा ॥२१
द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा ।
महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्तितः ॥) २२

पृथक् सान्तपन-व्रतमें उक्त वस्तुओं का उपयोग करते हुए छः दिनों तक उपवास करना होता है। पापनाशक महासान्तपन व्रत में सात दिन तक उपवास करना पड़ता है। बारह दिनों तक उपवास करने से सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला 'पराक' नामक व्रत सम्पन्न होता है और छत्तीस दिन तक उपवास करने से 'महापराक' व्रत निष्पन्न होता है ।२१-२२।

पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः[4] ।
एकापाये ततो वृद्धौ चान्द्रायणमतोऽन्यथा ॥२३

---

१ ख. ग. त्र्यहमन्नं च । २ एकैकं.........प्रकीर्तितः नास्ति च. पुस्तके ।
३ ख. ग. चान्द्रायणं । ४ क. °वास्यामभो° ।

चान्द्रायण-व्रत का अनुष्ठान एक मास तक किया जाता है। इसमें पूर्णिमा के दिन पन्द्रह कवल खाकर उसके बाद प्रतिदिन एक-एक कवल घटाते-घटाते अमावस्या के दिन बिल्कुल भोजन नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए अगली पूर्णिमा को व्रत समाप्त कर देना चाहिए।२३

कपिलागोः पलं मूत्रमर्धाङ्गुष्ठं च गोमयम्।
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलद्वयम्॥२४
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम्।
गायत्र्याऽऽगृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्॥२५
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि।
तेजोऽसीति तथा चाऽऽज्यं देवस्येति कुशोदकम्॥२६
ब्रह्मकूर्चो भवत्येवमापो हि ष्ठेत्यृचं जपेत्।
अघमर्षणसूक्तेन संयोज्य प्रणवेन वा॥२७
पीत्वा[1] सर्वाघनिर्मुक्तो[2] विष्णुलोकी ह्युपोषितः॥२७½

कपिला गाय का मूत्र एक पल, गोबर आधे अंगूठे के बराबर, दूध सात पल, दही दो पल, घी एक पल और कुशों को धोने वाला जल एक पल लेना चाहिए। गायत्री मन्त्र से कपिला गौ का मूत्र 'गन्धद्वारा' मन्त्र से गोबर, 'आप्यायस्व' मन्त्र से दूध 'दधिक्राव्णो' मन्त्र से दही, 'तेजोऽसि' मन्त्र से घी और 'देवस्य' मन्त्र से कुशोदक इकट्ठा करना चाहिए। इस प्रकार से ब्रह्मकूर्च (व्रत) का अनुष्ठान करना चाहिए। तदनन्तर 'अघमर्षण' सूक्त और प्रणव से युक्त 'आपो हि ष्ठा' ऋचा का जप करना चाहिए। इस प्रकार से बनाये हुए पञ्चगव्य का पान करके और उक्त प्रकार से उपवास करके मनुष्य विष्णुलोक में पहुँच जाता है।२४-२७½।

उपवासी सायंभोजी[3] यतिः षष्ठात्मकालवान्॥२८
मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिवं व्रजेत्।
अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च॥२९
देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः।
माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत्॥३०

---

१ च. नीत्वा। २ °क्तो ब्रह्मलो°। ३ ख. ग. °जी यश्च षष्ठान्नका°।

उपवास करने वाला और सायंकाल भोजन करने वाला यति, मांस का भक्षण न करने वाला, अश्वमेधयाग करने वाला और सत्यवादी मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करता है। मलमास में अग्न्याधान, देवादिप्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूणाकरण, मेखला (मौञ्जीबन्धन), मांगलिकोत्सव तथा राज्याभिषेक नहीं करना चाहिए।२८-३०।

दर्शाद्दर्शस्तु चान्द्रः स्यात्त्रिंशाहश्चैव सावनः।
मासः सौरस्तु संक्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्तनात् ॥३१
सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥३२

अमावस्या से अमावस्या तक चान्द्रमास कहलाता है। तीन दिनों का सावन मास होता है; सङ्क्रान्ति के अनुसार जिसकी गणना की जाती है वह सौर मास कहलाता है और नक्षत्र के अनुसार जो मास चलता है, उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। विवाह आदि में सौर मास, यज्ञ आदि में सावन मास और वार्षिक श्राद्ध में चान्द्रमास प्रशस्त माने गये हैं।३१-३२।

आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः।
कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रविः कन्यां[1] गच्छतु वा न वा ॥३३
मासि संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं[2] यदा भवेत्।
तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा ॥३४

आषाढ़ी पूर्णिमा को अवधि मानकर उससे आगे आने वाले पाँचवें पक्ष (अर्थात् आश्विन कृष्ण पक्ष) में पार्वण श्राद्ध करना चाहिये; चाहे सूर्य कन्या राशि में जाय या न जाय। मास तथा वर्ष की तिथियों में द्विविधा पड़ने पर बाद की तिथि ही उत्तम समझनी चाहिये, पूर्व तिथि तो अधम मानी गयी है।३३-३४।

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः।
दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभः ॥३५

जिस नक्षत्र में सूर्य अस्त हो, उसी नक्षत्र में उपवास करना चाहिए। दिन में किये जाने वाले व्रतों के लिए तिथियाँ दिन में ही पुण्य मानी जाती हैं; किन्तु रात्रि के व्रतों में रात्रि की तिथियाँ ही पुण्य हुआ करती हैं।३५

---

१ ख. ग. कन्यागर्भे तु। २ ख. ग. °द्वैत° य°।

युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः।
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्याऽथ पूर्णिमा ॥३६
प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्।
एतद्व्यस्तं[1] महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥३७

साथ-साथ पड़ने वाली द्वितीया और तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी, अष्टमी और नवमी, एकादशी और द्वादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा तथा अमावस्या और प्रतिपदा तिथियाँ तो महान् फल देने वाली हुआ करती हैं, किन्तु अलग-अलग आने पर ये तिथियाँ महाभयङ्कर तथा पूर्व पुण्यों का नाश करने वाली हुआ करती हैं।३६-३७।

नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां विवाहोपद्रवादिषु।
सद्यः शौचं समाख्यातं कान्तारापदि संसदि[2] ॥ ३८
आरब्धदीर्घतपसां न[3] राजा व्रतहा स्त्रियाः।
गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ॥३९
यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत क्रियाः सदा ॥ ३९½

राजाओं, मन्त्रियों और व्रतों का आचरण करने वालों के लिए विवाह, उपद्रव, वन और आपत्तिकाल में सद्यः (एक ही दिन के लिए) शौच लगता है। अशौच के कारण ही यदि कोई राजा गर्भिणी, नव प्रसूता, रजस्वला स्त्री तथा (रजस्वला) कुमारी—किसी ऐसे व्रत को न कर सकें जो देर में फलदायक हुआ करता है, तो उसे व्रतभङ्ग का दोष नहीं लगता है। इस प्रकार की स्त्री अथवा ऐसे पुरुष को किसी अन्य से व्रत करा लेना चाहिये।३८-३९½।

क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ॥४०
दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा।
असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयेत्सुतम् ॥४१

क्रोध, प्रमाद या लोभ से व्रतभङ्ग हो जाने पर तीन दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए, अथवा अपना शिर मुंड़ा देना चाहिए। व्रत करने वाले व्यक्ति को अपनी असमर्थता में अपनी पत्नी या पुत्र से व्रत करा लेना चाहिए।४०-४१।

---

१ क. ग. °हादोषं ह°। २ क. ङ. संयति। ग. घ. संपदि। ३ क. ख. न राजो व्रतहं स्त्रि°।

सूतके मृतके कार्यं प्रारब्धं[1] पूजनोज्झितम् ।
व्रतस्थं मूर्च्छितं दुग्धपानाद्यैरुद्धरेद्गुरुः ।।४२
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ।।४३

जननाशौच तथा मरणाशौच के कारण बीच में छूटे हुए पूर्व प्रारम्भ कर्म का उद्धार (व्रती का) गुरु दुग्धपान से कर देता है। मूर्च्छा (इत्यादि अनिच्छा) से छूटे हुए व्रत के लिए ये आठ वस्तुयें व्रतभङ्ग करने वाली नहीं मानी गयी हैं—जल, मूल, फल, दूध, हवि, ब्राह्मण की इच्छा, गुरु की आज्ञा और औषधि ।४२-४३।

कीर्तिसन्ततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये ।
नैर्मल्यभुक्तिमुक्त्यर्थं कुर्वे व्रतपते व्रतम् ।।४४

(व्रत करने वाले को भगवान् विष्णु की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए) "अये व्रतपते ! मैं कीर्ति, सन्तति, विद्या, सौभाग्य, आरोग्य, नैर्मल्य तथा भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्रत कर रहा हूँ ।४४।

इदं व्रतं मया श्रेष्ठं गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ।।४५

अये जगत्पते ! आपके सामने मैं यह उत्तम व्रत करने का संकल्प कर रहा हूँ। आपकी कृपा से यह निर्विघ्न से समाप्त हो जाय ।४५।

गृहीतेऽस्मिन्व्रतवरे यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम् ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पतौ ।।४६

अये सत्पते ! यदि मैं इस संकल्पित-व्रत को पूर्ण किये बिना ही मर जाऊँ तो भी यह आपकी प्रसन्नता से सम्पन्न ही समझा जाय ।४६।

व्रतमूर्तिं जगद्भूतिं मण्डले सर्वसिद्धये ।
[2]आवाहये नमस्तुभ्यं संनिधौ भव केशव[3] ।।४७

---

१ ख. °ब्धं च न चोज्झति । व्रं । २ आवाहये...... केशव क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ३ च. सिद्धये ।

अये केशव ! सभी सिद्धियों के लिए मैं इस मण्डल में व्रतमूर्ति और जगद्विभूति रूप आपका आवाहन कर रहा हूँ। आपको नमस्कार है।४७

मनसा कल्पितैर्भक्त्या पञ्चगव्यजलैः शुभैः।
पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वमेव भव पापहा ॥४८
गन्धपुष्पोदकैर्युक्तमर्घ्यमर्घ्यपते शुभम्।
गृहाण पाद्यमाचाम अर्घ्यार्हं कुरु मां सदा ॥४९

आप यहाँ पधारिये। मैं मन से कल्पित पञ्चगव्य, शुद्धजल तथा पञ्चामृत से भक्तिपूर्वक आपको स्नान करा रहा हूँ। आप मेरे पापों का सर्वनाश कर डालिये। अये अर्घ्यपते ! इस गन्ध, पुष्प और जल से बने हुए अर्घ्य को स्वीकार कीजिये और सदा मुझे अर्घ्य देने योग्य बनाइये।४८-४९।

वस्त्रं वस्त्रपते पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा।
भूषणाद्यैः सुवस्त्राद्यैश्छादितं व्रतसत्पते ॥५०

अये वस्त्रपते ! अये व्रतसत्पते ! इस पवित्र वस्त्र को ग्रहण कीजिये और मुझे सदा वस्त्र और आभूषण आदि से सज्जित करते रहिये।५०

सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्ते गृहाण वै।
पापगन्धविहीनं मां कुरु त्वं हि सुगन्धिकम् ॥५१
पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा।
पुष्पगन्धं सुविमलमायुरारोग्यवृद्धये ॥५२

अये गन्धपते ! आप मेरे इन सुगन्धित निर्मल पदार्थों को लीजिए और मुझे इस तरह पवित्र कर दीजिये कि पाप की गन्ध भी न रह जाये। मेरे दिये हुए पुष्पों को स्वीकार कीजिए और मुझे सदा पुष्पादि से परिपूर्ण रखिये, क्योंकि निर्मल पुष्प गन्ध आयु और आरोग्यवर्धक हुआ करती है।५१-५२।

दशाङ्गं[1] गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै।
स (सु) धूपधूपितं मां त्वं कुरु धूपित सत्पते ॥५३
दीपमूर्ध्वशिखं दीप्तं गृहाणाखिलभासकम्।
दीपमूर्ते प्रकाशाढ्यं सर्वदोर्ध्वगतिं कुरु ॥५४

---

१ "मधु मुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम्।
सरलं सिद्धसिद्धार्थं दशाङ्गो धूप उच्यते ॥"

अये सपत्ते ! गुग्गुल तथा घृत युक्त दशाङ्ग धूप स्वीकार कीजिये और मुझे भी अच्छी-अच्छी धूपों से धूपित (सुगन्धित) कर दीजिए। अये दीपमूर्ते ! आप मेरे इस दीपक को स्वीकार कीजिए जो सबको प्रकाशित करने वाला और ऊर्ध्व शिखा वाला है। इसे लेकर मुझे भी तेजोमय तथा ऊर्ध्वगति वाला बना दीजिए ।५३-५४।

अन्नादिकं च नैवेद्यं गृहाणान्नादिसत्पते ।
अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदायकम् ।।५५
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं मया प्रभो ।
यत्पूजितं व्रतपते परिपूर्णं तदस्तु मे ।।५६

अये अन्नादिस्वामिन् ! नैवेद्य से चढ़ाये हुए अन्न आदि को स्वीकार करके मुझे ऐसा बना दीजिये कि मैं अन्नादि से भरपूर रहूँ और सदा अन्नदान करता रहूँ। अये प्रभो ! मैंने बिना मन्त्रों के बिना विधिविधान के और बिना भक्ति के आपकी जो कुछ भी पूजा की है, वह सब आपकी कृपा से परिपूर्ण हो ।५५-५६।

धर्मं देहि धनं देहि सौभाग्यं गुणसन्ततिम् ।
कीर्तिं विद्यां देहि चाऽऽयुः स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।।५७
इमां पूजां व्रतपते गृहीत्वा व्रज साम्प्रतम् ।
पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो ।।५८

अये व्रतपते ! मुझे धर्म दीजिये, धन दीजिए, कीर्ति दीजिए, सौभाग्य दीजिए, गुणी सन्तान दीजिए, विद्या दीजिए तथा स्वर्ग और मोक्ष भी दीजिए। अये विभो ! मेरी इस पूजा को स्वीकार करके आप इस समय तो जाइये किन्तु पुनः आकर मुझे दीजियेगा ।५७-५८ ।

स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः ।
पूज्याः सुवर्णजास्ता वै शक्त्या वै भूमिशायिना ।।५९
जपो होमश्च सामान्य व्रतान्ते दानमेव च ।
चतुर्विंशा द्वादश वा (शतिर्द्वादश) पञ्च वा त्रय एककः[1] ।।६०

---

[1] क. ग. ङ. एव वा। वि०।

विप्राः प्रपूज्या गुरवो भोज्याः शक्त्या तु दक्षिणा ।
देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहौ पृथक् ॥६१
जलपात्रं[1] चान्नपात्रमृत्तिकाछत्रमासनम् ।
शय्यावस्त्रयुगं कुम्भाः परिभाषेयमीरिता ॥६२

समस्त व्रतों में व्रती को चाहिये कि वह स्नान करके स्वर्णनिर्मित व्रतमूर्ति (आराध्य देव की प्रतिमा) का पूजन करे, भूमि पर शयन करे और व्रत के अन्त में जप और होम करे। शक्ति के अनुसार चौबीस, बारह, पाँच, तीन या एक ही ब्राह्मण तथा गुरु की पूजा करे और उन्हें भोजन कराके दक्षिणा में गाय, सोना, खड़ाऊँ, जूते, जल-पात्र, अन्नपात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, दो वस्त्र तथा घड़ा प्रदान करे। यही व्रतों की परिभाषा बतायी गयी है।५६-६२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्रतपरिभाषावर्णनं नाम
पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः। १७५

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिपद्व्रतानि

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतान्यखिलदानि ते ।
कार्तिकाश्वयुजे चैत्रे प्रतिपद्ब्रह्मणस्तिथिः ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं तुम्हें प्रतिपदा (तिथियों) के व्रत बतलाऊँगा, जो सभी कुछ देने वाले हैं। आश्विन, कार्तिक तथा चैत की प्रतिपदा ब्रह्मा की तिथि मानी गयी है।१

पञ्चदश्यां निराहारः प्रतिपद्यर्चयेदजम् ।
ओंतत्सद्ब्रह्मणे नमो गायत्र्या वाऽब्दमेककम् ॥२
अक्षमालां स्रुवं दक्षे[2] वामे स्रुच (चं) कमण्डलुम् ।
लम्बकूर्चं च जटिलं हैमं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥३

---

१ क. ङ. °त्रं च मुद्रां च मुद्रिकाद्रवमां। २ क. ङ. °मे दण्डक°।

शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतामिति ।
निर्मलो भोगभुक्स्वर्गे भूमौ विप्रो धनी भवेत् ।।४

उसमें व्रत करने के लिए पंचदशी (पूर्णिमा तथा अमावस्या) को उपवास करके प्रतिपदा के दिन ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये । ब्रह्मा की ऐसी स्वर्णमयी प्रतिमा बनानी चाहिये जिसके दाहिने हाथ में रुद्राक्ष की माला तथा स्रुव और बायें हाथ में स्रुक् तथा कमण्डलु हो, जिसकी दाढ़ी लम्बी हो और जो जटाओं से युक्त हो । 'ओं तत्सत् ब्रह्मणे नमः' अथवा गायत्री मन्त्र से उस मूर्ति की पूजा करनी चाहिए । फिर 'अये ब्रह्मन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये' यह कहकर उस मूर्ति के ऊपर यथाशक्ति दूध चढ़ाना चाहिये । इस प्रकार से व्रत तथा पूजन करने वाला स्वर्ग में उत्तम भोगों का भोग करके तदनन्तर पृथ्वी पर धनी ब्राह्मण होकर जन्म लेता है ।२-४।

धन्यं व्रतं प्रवक्ष्यामि अधन्यो धन्यतां व्रजेत् ।
मार्गशीर्षे प्रतिपदि नक्तं[1] हुत्वाऽप्युपोषितः ।।५
अग्नये नम इत्यग्निं प्राच्याब्दं सर्वभाग्भवेत् ।
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ।।६
वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् ।।७

अब मैं एक धन्य (उत्तम) व्रत बताता हूँ, जिसे करने से अभागा भी भाग्यवान् बन जाता है । मार्गशीर्ष की प्रतिपदा को दिन में उपवास करके रात्रि में 'अग्नये नमः' कहकर अग्नि की पूजा तथा उसी के लिये हवन करना चाहिये । उस दिन केवल एक अन्न का भोजन करना चाहिए और व्रत की समाप्ति पर कपिला गाय का दान करना चाहिये । ऐसा करने से वैश्वानर (सूर्य) लोक की प्राप्ति होती है । इस व्रत को शिखिव्रत (अग्नि का व्रत) कहा गया है ।५-७ ।

इत्यादिमहापुराण आग्नये प्रतिपद्व्रतवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७६

---

१ क. ङ. ग क्तं °. कृत्वाऽ° ।

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय:

द्वितीयाव्रतानि

अग्निरुवाच—

द्वितीयाव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिदायकम् ।
पुष्पाहारो द्वितीयायामश्विनौ पूजयेत्सुरौ ॥१

अग्निदेव बोले—मैं भोग और मोक्ष को देने वाले, द्वितीया व्रत के विषय में बताऊँगा । द्वितीया[1] में व्रत करने वाले को केवल पुष्पाहार करना चाहिए तथा अश्विनीकुमार नामक दो देवताओं का पूजन करना चाहिये ।१

अब्दं स्वरूपसौभाग्यं स्वर्गभाग्जायते व्रती ।
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां यमं यजेत् ॥२
अब्दमुपोषित: स्वर्गं गच्छेन्न नरकं व्रती ।
अशून्यशयनं वक्ष्ये अवैधव्यादिदायकम् ॥३

एक वर्ष ऐसा करने से व्रती को सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है । कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया में यम की पूजा करनी चाहिये । एक वर्ष उपवास रहकर ऐसा करने से व्रती स्वर्ग को जाता है, नरक को नहीं। अब मैं अवैधव्य आदि (फलों को) देने वाले अशून्यशयन नामक व्रत के सम्बन्ध में बताऊँगा । २-३ ।

कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणस्य चरेदिदम् ।
श्रीवत्सधारिञ्श्रीकान्त श्रीधामञ्श्रीपतेऽव्यय ॥४
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ।
अग्नयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवता: ॥५
पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदत: ।
लक्ष्म्या विमुच्यते देवो न कदाचिद्यथा भवान् ॥६
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे विभिद्यताम् ॥६३

---

१ इससे अव्यवहित उत्तर कार्तिक का नाम आया है । तत्साहचर्यात् यहाँ द्वितीया से आश्विन की द्वितीया का अर्थ लेना चाहिये ।

यह व्रत श्रावण कृष्ण द्वितीया में किया जाता है। उस दिन पहले भगवान् की इस प्रकार से प्रार्थना करे—'श्रीवत्सधारिन्! श्रीकान्त। श्रीधामन्! श्रीपते! अव्यय! धर्म, अर्थ और काम को देने वाला मेरा यह गार्हस्थ्य (जीवन) कभी नष्ट न हो। तीनों अग्नि (दक्षिणाग्नि, आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि) कभी बुझने न पायें। हमारे दाम्पत्य के नष्ट होने से देवताओं (के कर्मों) का नाश न होने पाये और न पितरों (के कर्म) का ही नाश हो। अये देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते हैं वैसे मेरे स्त्री-सम्बन्ध को कभी नष्ट न होने दीजिये। ४-६½।

लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं विभो ॥७
शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु तथैव मधुसूदन।
लक्ष्मीं विष्णुं यजेदब्दं दद्याच्छय्यां फलानि च ॥८

अये वरद! अये विभो मधुसूदन! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मी से शून्य नहीं होती है वैसे मेरी भी शय्या कभी सूनी न होने पाये। तदनन्तर एक वर्ष तक लक्ष्मी और विष्णु का पूजन करते हुए शय्या और फल का दान करना चाहिये। ७-८।

प्रतिमासं च सोमाय दद्यादर्घ्यं समन्त्रकम्।
गगनाङ्गणसंदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ॥९
[1]भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते।
ॐ[2]श्रं श्रीधराय नमः सोमात्मानं हरिं यजेत् ॥१०

प्रत्येक मास में चन्द्रमा को यह कहते हुए अर्घ्य देना चाहिये—'अये गगन रूपी प्राङ्गण के दीपक! क्षीरसागर से उत्पन्न होने वाले! अपनी आभा से दिग्दिगन्त को आलोकित करने वाले! लक्ष्मी के अनुज! आपको नमस्कार है। 'ॐ श्रं श्रीधराय नमः' कहते हुए चन्द्रात्मा भगवान् विष्णु का यजन करना चाहिये।९-१०।

घं टं हं सं श्रियै नमो दशरूपमहात्मने।
घृतेन होमो नक्तं च शय्यां दद्याद्द्विजातये ॥११

---

१ ग. भासा सि°। २ ख. ग. श्री°। ३ ख. ग. °द् द्वितीयके। दी°।

दीपान्नभाजनैर्युक्तं छत्रोपानहमासनम् ।
सोदकुम्भं च प्रतिमां विप्रायाथ च पात्रकम् ॥१२
यत एवं च कुरुते भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्[१] ।
कान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि कार्तिकस्य सिते चरेत् ॥१३
नक्तभोजी द्वितीयायां पूजयेत्द्बलकेशवौ ।१३½

'घं टं हं श्रियै नमो दशरूपमहात्मने' इस मन्त्र से रात्रि में घी से हवन करना चाहिये । तदनन्तर ब्राह्मण को शय्या, दीप, अन्न से भरा हुआ पात्र, छाता, जूता, जलपूर्ण घट, पात्र तथा प्रतिमा प्रदान करना चाहिये । जो व्यक्ति ऐसा करता है उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है । अब मैं कान्तिव्रत बतला रहा हूँ । कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया में इसका अनुष्ठान करना चाहिये । उस दिन (केवल) रात्रि में भोजन करके बलभद्र तथा कृष्ण की पूजा करनी चाहिये । ११-१३½ ।

वर्षं प्राप्नोति वै कान्तिमायुरारोग्यकादिकम् ॥१४
अथ विष्णुव्रतं वक्ष्ये मनोवाञ्छितदायकम् ।
पौषशुक्लद्वितीयादि कृत्वा दिनचतुष्टयम् ॥१५
([२]पूर्वं सिद्धार्थकैः स्नानं ततः कृष्णतिलैः स्मृतम् ।
वचया च तृतीयेऽह्नि सर्वौषध्या चतुर्थके ॥१६
मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।)
सटी चम्पकमुस्तं च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥१७

एक वर्ष ऐसा करने से कान्ति, आयु तथा आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार मनोवांछित फल देने वाले विष्णु-व्रत को भी बतलाऊँगा । पौष शुक्ल द्वितीया से लेकर चार दिनों तक विशेष स्नान करे । पहले दिन सफेद सरसों से, दूसरे दिन काले तिल से, तीसरे दिन बच से और चौथे दिन सर्वौषध से स्नान करना चाहिये । मुरा, जटामासी, बच, कुष्ठ (कूट), शैलेय, दोनों प्रकार की रजनी, सटी, चम्पक तथा मुस्ता (मोथा) इनकी गणना सर्वौषधि में की जाती है । १४-१७ ।

नाम्ना कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति पूजयेत् ।
पादे नाभ्यां चक्षुषि च क्रमाच्छिरसि पुष्पकैः ॥१८

---

१ ख. °त् । ऊर्जत्रं २ पूर्वं......रजनीद्वयम् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

शशिचन्द्रशशाङ्केन्दुसंज्ञाभिश्चार्घ्यं इन्दवे ।
नक्तं भुञ्जीत च नरो यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ॥१९
[1]षण्मासं पारणं[2] चाब्दं प्राप्नुयात्सकलं व्रती ।
एतद्व्रतं नृपैः स्त्रीभिः कृतं पूर्वं सुरादिभिः ॥२०

तदनन्तर 'कृष्ण, अच्युत, अनन्त, हृषीकेश'—इन नामों से भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए और क्रमशः उनके चरण, नाभि, नेत्र तथा शिर के ऊपर पुष्पों को चढ़ाना चाहिए। फिर शशि, चन्द्र, शशाङ्क तथा इन्दु नामों से चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करे। विष्णु व्रत के व्रती को रात्रि में चन्द्रमा के रहते ही भोजन कर लेना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष और छह महीने व्रत करने से व्रती की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। प्राचीन काल में राजा, स्त्रियाँ तथा देवता इस व्रत का अनुष्ठान किया करते थे।१८-२०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये द्वितीया व्रतकथनं नाम
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७७

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयाव्रतानि

अग्निरुवाच—

तृतीयाव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते ।
ललितायां तृतीयायां मूलगौरीव्रतं[3] शृण ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं तृतीया के व्रतों का वर्णन करूँगा। ये व्रत भोग और मोक्ष दिलाने वाला हुआ करते हैं। ललिता नामक तृतीया में मूलगौरी व्रत किया जाता है।१

तृतीयायां चैत्रशुक्ले ऊढा गौरी हरेण हि ।
तिलस्नातोऽर्चयेच्छंभुं गौर्या[4] हैमफलादिभिः ॥२

चैत्र शुक्लपक्ष की तृतीया में भगवान् शिव ने गौरी से विवाह किया था। अतः उस दिन तिल से स्नान कर सुवर्ण तथा फल आदि से गौरी और शंकर की अर्चना करनी चाहिए।२

---

१ क. ख. ङ. °ण्मासात्पार° । २ च. °णं कृत्वा प्रा° । ३ ग. मूलागौ° । क. ङ. मूलंगौ° । ४ क. ङ. °र्या हेमफलार्थिभिः ।

नमोऽस्तु पाटलायै च पादौ देव्याः[1] शिवस्य च ।
शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोर्यजेत् ॥३
त्रिपुरघ्नाय रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्द्वयोः ।
[2]शिवं रुद्रेश्वराय विजयायै च जानुनी ॥४

'पाटलायै नमः' कहकर देवी के तथा 'शिवाय नमः' कहकर महादेव के चरणों की पूजा करे । 'जयायै नमः' से देवी के तथा 'त्रिपुरघ्नाय नमः' से शिव के गुल्फों (टखनों) की पूजा करे । 'भवान्यै नमः' से गौरी की तथा 'रुद्राय नमः' से शिव की जङ्घाओं का पूजन करे। 'विजयायै नमः' से पार्वती के और 'रुद्रायेश्वराय नमः' से शिव के घुटनों की पूजा करनी चाहिये ।३-४।

ईशायेति कटिं देव्याः शंकरायेति शंकरम् ।
कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये ॥५
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत् ।
सर्वात्मने नमो रुद्रमैशान्यै च कुचद्वयम् ॥६
[3]शिवं देवात्मने तद्वत् ह्लादिन्यै कण्ठमर्चयेत् ॥६½

'ईशाय नमः' से देवी की तथा 'शंकराय नमः' से शंकर के कटिप्रदेश का पूजन करे । 'कौटव्यै नमः' से देवी की और 'शूलपाणये नमः' से देव की कुक्षियों का पूजन करे । 'मंगलायै नमः' से गौरी के और 'सर्वात्मने नमः' से शिव के उदर की पूजा करे । 'ऐशान्यै नमः' से देवी के कुचों का और 'ईशानाय नमः' से शम्भु का पूजन करे 'ह्लादिन्यै नमः' से देवी की तथा 'देवात्मने नमः' से शम्भु की पूजा करे ।५-६½।

महादेवाय च शिवमनन्तायै करद्वयम् ॥७
त्रिलोचनायेति हरं[4] बाहुं कालानलप्रिये ।
सौभाग्यायै महेशाय भूषणानि प्रपूजयेत् ॥८

'अनन्तायै नमः' से गौरी की और 'महादेवाय नमः' से शिव के हाथों का पूजन करे । 'कालानलप्रियायै नमः' से देवी की तथा 'त्रिलोचनाय नमः' से

१ क. ङ. देव्यै । २ च. °वं भद्रायै° । ३ क. ख. ग. ङ. च. वं वेदार्थतत्त्वज्ञरूपिण्यै क° । ४ क. ङ. °रं चान्तका° ।

भगवान् शंकर की भुजाओं की अर्चना करे। 'सौभाग्यायै नमः' से पार्वती के और 'महेशाय नमः' से शङ्कर के आभूषणों का पूजन करना चाहिये।७-८।

अशोकमधुवासिन्यै ईश्वरायेति चोष्ठकौ।
चतुर्मुखप्रिया चाऽऽस्यं हराय स्थाणवे नमः ॥९

'अशोकमधुवासिन्यै नमः' से देवी के और 'ईश्वराय नमः' से शम्भु के ओष्ठों की पूजा करे। 'चतुर्मुखप्रियायै नमः' से देवी के और 'हराय स्थाणवे नमः' से महादेव जी के मुखों की अर्चना करनी चाहिये।९

नमोऽर्धनारीशहरममिताङ्ग्यै च नासिकाम्।
नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥१०

'अमिताङ्ग्यै नमः' से गौरी की और 'अर्धनारीश्वराय नमः' से शिव की नासिका की पूजा करे। 'ललितायै नमः' से पार्वती की और 'उग्राय नमः' से शिव की भौंहों का पूजन करे।१०

शर्वाय पुरहन्तारं वासन्त्यै[1] चैव तालुकम्।
नमः श्रीकण्ठनाथायै[2] शितिकण्ठाय केशकम् ॥११
भीमोग्राय सुरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः ।११½

'वासन्त्यै नमः' से देवी के तथा 'शर्वाय नमः' से महादेव के तालु का पूजन करे। 'श्रीकण्ठनाथायै नमः' से उमा के और 'शितिकण्ठाय नमः' से शिव के केशों की पूजा करे। 'सुरूपिण्यै नमः' से देवी के और 'भीमोग्राय सर्वात्मने नमः' से महादेव जी के शिर की अर्चना करे।११-११½।

मल्लिकाशोककमलकुन्दं तगरमालती ॥१२
कदम्बं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कमम्।
सिन्धुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम् ॥१३
उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः।
स्थापयेद्घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीर[3]जीरकम्[4] ॥१४
तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बरुमथाष्टकम्।
चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत् ॥१५

---

१ ख. ग. च. °न्त्यैच तथाऽलक°। २ ख. ग. च. °थाय सितकेशाय दोहयेत्। भी°। ३ ग. घ. °जीवक°। ४ क. ङ. °म्। पञ्चरा°।

पुनः मालती, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, कदम्ब, करवीर, बाण, आमला, कुंकुम तथा सिन्धुवार से उमा-महेश्वर की पूजा करके उसके आगे घी, निष्पाव (राजमाष), कुसुम्भ (कुसुम) क्षीर, जीर, ताल, इक्षुलवण और कुस्तुम्बुरु (धनियाँ)—इन आठ शुभ पदार्थों को रखना चाहिये । तदनन्तर शृङ्गोदक पीकर उमा-महेश्वर के समीप सोवे ।१२-१५।

प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य[1] विप्रदाम्पत्यमर्चयेत् ।
तदष्टकं द्विजे दद्याल्ललिता प्रीयतां मम[2] ॥१६

प्रातःकाल स्नान कर गौरीशंकर की पूजा करके विप्र-दम्पती की पूजा करे । 'ललिता' देवी मेरे ऊपर प्रसन्न होवें, यह कहकर उन्हें उक्त आठ वस्तुयें प्रदान करे ।१६

शृङ्गोदकं गोमयं च मन्दारं बिल्वपत्रकम् ।
कुशोदकं दधिक्षीरं कार्तिके पृषदाज्यकम् ॥१७
गोमूत्राज्यं कृष्णतिलं पञ्चगव्यं[3] क्रमाशनम् ।
ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥१८
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती ।
चैत्रादौ दानकाले च प्रीयतामिति वाचयेत् ॥१९

कार्तिक मास में क्रमशः शृङ्गोदक, दधि, क्षीर, दही, घी, गोमूत्र-घी, कृष्णतिल तथा पञ्चगव्य का पान करना चाहिये । चैत्र आदि मासों में उक्त वस्तुओं को देते समय यह पढ़ना चाहिए कि—'ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला और सती मुझसे प्रसन्न हों ।१७-१९।

पलमेकं परित्याज्यं व्रतान्ते[4] शयनं ददेत् ।
उमामहेश्वरं[5] हैमं वृषभं च गवा सह ॥२०
गुरुं च मिथुनान्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक् ।
सौभाग्यारोग्यरूपायुः सौभाग्यशयनव्रतात् ॥२१

---

१ क. ङ. °र्च्य पूजयेच्चापि कुम्भकम् । त° । २ क. ङ. कूपोद° । ३ क. च. °व्यं कुशासन° । ४ ख. ग. °न्ते तर्पणं चरेत् । ५ ख. ग. °श्वरौ हैमौ वृ° ।

उस व्रत में किसी एक फल का त्याग करना पड़ता है। व्रत की समाप्ति पर गुरु तथा गुरु-पत्नी की पूजा करके उन्हें शय्या, वस्त्र, उमा-महेश्वर की स्वर्ण प्रतिमा और गाय-बैल देना चाहिये। इस प्रकार उक्त व्रत के अनुष्ठान से मनुष्य को सौभाग्य, आरोग्य, रूप, आयु, भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।२०-२१।

नभस्ये वाऽथ वैशाखे कुर्यान्मार्गशिरस्यथ।
शुक्लपक्षे तृतीयायां ललितायै नमो यजेत् ।।२२
प्रतिपक्षं ततः प्राच्यं व्रतान्ते मिथुनानि च।
चतुर्विंशतिमभ्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक् ।।२३

भाद्रपद, वैशाख तथा मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष की तृतीया में, 'ललितायै-नमः' कहते हुए ललिता देवी की अर्चना करनी चाहिये और उस दिन व्रत रखकर चौबीस ब्राह्मण-पतियों को वस्त्रादि से सम्मानित करना चाहिये। ऐसा व्रत करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।२२-२३।

उक्तो मार्गो द्वितीयोऽयं सौभाग्यव्रतमावदे।
फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् ।।२४
समाप्ते शयनं दद्याद्गृहं चोपस्करान्वितम्[1]।
सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति ।।२५

अब मैं इस सौभाग्य-व्रत का दूसरा ढंग बतलाऊँगा। फाल्गुन कृष्ण-पक्ष की तृतीया में नमक छोड़कर व्रत करना चाहिये और व्रत समाप्ति पर विप्रदम्पती का पूजन करके 'गौरी मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—इस प्रकार कहते हुए उन्हें शय्या तथा अन्य घरेलू और साज-सज्जा की सामग्री देनी चाहिये।२४-२५।

[2]सौभाग्यार्थं तृतीयोक्ता गौरीलोकादिदायिनी।
माघे भाद्रे च वैशाखे तृतीयाव्रतकृत्तथा ।।२६
[3]दमनकतृतीयाकृच्चैत्रे दमनकैर्युजेत्।
आत्मतृतीया[4] मार्गस्य प्राच्येच्छाभोजनादिना ।।२७

---

१ क. ङ. °म्। अलङ्काराणि सर्वाणि भ°। २. सौभाग्यार्थं...स्वर्गमवाप्नुयात् च. पुस्तके नास्ति। ३ क.ङ °नस्य तृतीया च चैत्रे। ४ क.ङ. °या मद्राक्षे प्रा°।

गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती ।
वैष्णवी लक्ष्मीः प्रकृतिः शिवा नारायणी क्रमात् ।।
मार्गतृतीयामारभ्य सौभाग्यं स्वर्गमाप्नुयात् ।।२८

यह तृतीया सौभाग्य तथा गौरीलोक को दिलाने वाली है। माघ, भाद्रपद, वैशाख तथा चैत्र की तृतीया का नाम दमनक है। अतः उस दिन दमनकों (कुन्द-पुष्पों) से पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष की तृतीया का नाम आत्मतृतीया है। उस दिन ब्राह्मण-दम्पती को यथेष्ट भोजन आदि से प्रसन्न करके क्रमशः गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी, प्रकृति, शिवा तथा नारायणी की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से सौभाग्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है।२६-२८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तृतीयाव्रतकथनं नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७८

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्थीव्रतानि

अग्निरुवाच—

चतुर्थीव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते ।
माघे शुक्लचतुर्थ्यां तु उपवासी [1]यजेद्गणम् ।।१

अग्निदेव बोले—अब मैं तुमको भुक्ति-मुक्तिदायक चतुर्थी-व्रत बताऊँगा। माघ शुक्लपक्ष की चतुर्थी में गणेश जी की आराधना करनी चाहिये।१

पञ्चम्यां च तिलान्नादी [2]वर्षान्निर्विघ्नतः सुखी ।
गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गामाद्यं हृदयादिकम् ।।२

पञ्चमी में तिल भोजन से मनुष्य सुखी हो जाता है तथा विघ्नबाधा से रहित हो जाता है। 'गं स्वाहा' यह गणेश जी का मूलमन्त्र है। 'गां' का उच्चारण करके हृदयादिन्यास करना चाहिये।२

---

१ क. ङ. ॰जेद्गुरुम्। प॰। २ क. ङ. वर्षं निर्वि॰।

आगच्छोल्काय चाऽऽवाह्य गच्छोल्काय विसर्जनम् ।
ऊल्कान्तैर्गादिगन्धाद्यैः पूजयेन्मोदकादिभिः ।।३
ओं महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।३½

'आगच्छोल्काय' कहकर आवाहन तथा 'गच्छोल्काय' कहकर (गणेश का) विसर्जन करना चाहिये । गन्ध, पुष्प, मोदक आदि से गणेश का पूजन करके 'ॐ महोल्काय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।' इस मंत्र (गायत्री) से जप करना चाहिये ।३-३½।

मासि भाद्रपदे चापि चतुर्थीकृच्छिवं व्रजेत् ।।४
चतुर्थ्यङ्गारकेऽभ्यर्च्य गणं सर्वमवाप्नुयात् ।
चतुर्थ्यां फाल्गुने नक्तमविघ्नाख्या चतुर्थ्य पि ।।५
चतुर्थ्यां दमनैः पूज्य चैत्रे प्राच्र्य गणं सुखी ।।६

भादों की चतुर्थी में गणपति की पूजा और व्रत करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है । फाल्गुन की चतुर्थी का नाम अविघ्ना है । उस दिन रात्रि में गणेशपूजन करना चाहिये । चैत्र की चतुर्थी में कुन्दपुष्पों से गणेश की पूजा करने से मनुष्य सुखी होता है ।४-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये चतुर्थीव्रतकथनं नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७६

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चमीव्रतानि

अग्निरुवाच—

[1]पञ्चमीव्रतकं वक्ष्ये आरोग्यस्वर्गमोक्षदम् ।
नभोनभस्याश्विने च कार्तिके शुक्लपक्षके ।।१
वासुकिस्तक्षकः [2]पूज्यः कालीयो मणिभद्रकः ।
[3]ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ ।।२
एते प्रयच्छन्त्यभयमायुर्विद्यायशः[4] श्रियम् ।।३

१ च.° तमाख्यास्ये आ° । २ क. ङ. °ज्यः सर्वसौख्यप्रदायकः । ३ ऐरावतो......धनञ्जयौ नास्ति क. ङ. पुस्तकयो : ४ च.° मात्मविद्या° ।

अग्निदेव बोले—अब मैं पञ्चमी-व्रत का वर्णन करूँगा जो आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष देने वाला है। श्रावण भाद्र, आश्विन तथा कार्तिक के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में वासुकि, तक्षक, कालीय तथा धनञ्जय (नामक सर्पों) की पूजा करनी चाहिये। इससे ये (सर्प) अभय, आयु, विद्या, यश तथा ऐश्वर्य प्रदान किया करते हैं।१-३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पञ्चमीव्रतकथनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८०

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

षष्ठी व्रतानि

अग्निरुवाच—
षष्ठीव्रतानि वक्ष्यामि कार्तिकादौ समाचरेत्।
षष्ठ्यां फलाशनोऽर्घ्याद्यैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।।१
स्कन्दषष्ठीव्रतं प्रोक्तं भाद्रे षष्ठ्यामथाक्षयम्।
कृष्णषष्ठीव्रतं वक्ष्ये मार्गशीर्षे चरेच्च तत्।।
अनाहारो वर्षमेकं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।।२

अग्निदेव बोले—अब मैं षष्ठी-व्रत बतलाऊँगा। कार्तिक आदि मास की षष्ठी में फलाहार करके सूर्य को अर्घ्य आदि समर्पण करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। भादों की षष्ठी में अक्षयस्कन्दषष्ठीव्रत का वर्णन किया गया है। मार्गशीर्ष में कृष्णपक्ष की षष्ठी का व्रत करना चाहिये। एक वर्ष निराहार रहकर यह व्रत करने से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।१-२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये षष्ठीव्रतकथनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८१

अथद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतानि

अग्निरुवाच--

सप्तमीव्रतकं बक्ष्ये सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम् ।
माघमासेऽब्जके शुक्ले सूर्यं प्राच्र्य विशोकभाक् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं सप्तमी व्रत बतलाऊँगा जो भोग और मोक्ष देने वाला है। माघ शुक्ल की सप्तमी में कमल से सूर्य की अर्चना करने से मनुष्य शोक रहित हो जाता है।१

सर्वाविाप्तिस्तु सप्तम्यां मासि भाद्रेऽर्कपूजनात् ।
पौषे मासि सितेऽनशनन्प्राच्र्यार्कं पापनाशनम् ॥२

भादों की सप्तमी में सूर्य-पूजन करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति हो है जाती। पौष-शुक्ल सप्तमी में उपवास करके सूर्य की पूजा करने से पाप नष्ट हो जाते हैं।२

कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी ।
फाल्गुने तु सिते नन्दा सप्तमी चार्कपूजनात् ॥३
[2]मार्गशीर्षे सिते प्राच्र्य सप्तगी चापराजिता ।
मार्गशीर्षे सिते चाब्दं पुत्रीया सप्तमी स्त्रियाः ॥४

माघकृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करने से सभी अभिलाषायें पूरी हो जाती हैं। फाल्गुन शुक्लपक्ष की सप्तमी का नाम नन्दा है। उसमें सूर्य की पूजा करने से आनन्द की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की सप्तमी का नाम अपराजिता है। उसमें सूर्य-पूजन करने से पराजय नहीं होती है। उक्त सप्तमी में सूर्य का पूजन करने से स्त्रियाँ पुत्रवती हुआ करती हैं।३-४।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये सप्तमीव्रतकथनं
नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८२

---

१ च. °से कुजे शु° । ख. ग.° से शुक्लपक्षे सू° । २ मार्गशीर्षे……चापरा॰

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः
अष्टमीव्रतानि

अग्निरुवाच—

वक्ष्ये व्रतानि चाष्टम्यां रोहिण्यां प्रथमं व्रतम् ।
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां[1] रोहिण्यामर्धरात्रके ॥१
[2]कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते चोपवासतः ॥२

अग्निदेव बोले—अब मैं रोहिणी नक्षत्र में अष्टमी के व्रत का वर्णन करूँगा । भाद्रपद की अष्टमी में जब रोहिणी नक्षत्र था, अर्धरात्रि के समय (भगवान्) कृष्ण अवतरित हुए थे । अतः उस (अष्टमी) में (कृष्ण) जयन्ती मनायी जाती है । उसमें उपवास करने से सात जन्मों के पापों का नाश हो जाता है ।१-२।

कृष्णपक्षे भाद्रपदे अष्टम्यां रोहिणीयुते ।
उपोषितोऽर्चयेत्कृष्णं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३
[2]आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रं च देवकीम् ।
वसुदेवं यशोदां गाः पूजयामि नमोऽस्तु ते ॥४

रोहिणी नक्षत्र की भाद्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी में उपवास करके भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले (भगवान्) कृष्ण, बलभद्र, देवकी, वसुदेव, यशोदा तथा गायों का आवाहन कर रहा हूँ । मैं उनकी पूजा कर रहा हूँ । आप सबको नमस्कार है ।३-४।

योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः ।
योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥५
([3]स्नानं कृष्णाय दद्यात्तु अर्घ्यं चानेन दापयेत् ।
यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञानां पतये नमः ॥६

---

१ च. °दे कृष्णे रो° । २ कृष्णो जातो······चोपवासतः नास्ति च. पुस्तके ।
२ 'आवाहयाम्यहं··········देवकीम्' ग. पुस्तके नास्ति । ३ 'स्नानं ... .नमो नमः' क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति ।

यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।।)
गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते ।।७

'योग, शोगपति, तथा योगेश को बार-बार नमस्कार है। योग आदि के कारण गोविन्द (कृष्ण) को बार-बार नमस्कार है।' यह कहते हुए भगवान् कृष्ण को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। यज्ञ, यज्ञेश्वर, यज्ञाधिपति तथा यज्ञ के कारणभूत गोविन्द को नमस्कार है। हे देव! इन पुष्पों को स्वीकार करें जो सुगन्धित और आपको अत्यन्त प्रिय हैं।५-७।

सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित ।
धूपधूपित धूपत्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे ।।८
सुगन्ध (न्धि) धूपगन्धाढ्यं कुरु मां सर्वदा हरे ।
दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा ।।९
मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्ध्वगतिं च माम् ।।९१/२

हे देवताओं के द्वारा वन्दित देव! मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर दीजिये। धूपों से सुवासित मेरा धूप स्वीकार कीजिये और हे हरे! मुझे भी सदा सुगन्धित धूपों से सुवासित करते रहिये। दीपों से प्रकाशित! दीपों की ज्योति प्रदान करने वाले! मेरे द्वारा अर्पित इस महादीप को स्वीकार कीजिये और मुझे ऊर्ध्व गति प्रदान कर दीजिये।८-९१/२।

विश्बाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः ।।१०
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम् ।
धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ।।११
धर्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु ।
सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः ।।१२

विश्वरूप, विश्वपति तथा विश्वेश को बार-बार नमस्कार है। विश्व के आदि कारण गोविन्द (कृष्ण) को मेरा सब कुछ समर्पित है। धर्म रूप, धर्मपति, धर्मेश तथा धर्म के आदि कारण को बार-बार नमस्कार है। गोविन्द! (अब) आप शयन कीजिये। सर्वस्वरूप, सर्वपति, सर्वेश, सर्वसम्भव गोविन्द को नमस्कार है।१०-१२।

सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय च पावनम् ।
क्षीरोदार्णवसम्भूत अग्निनेत्रसमुद्भव[1] ॥१३
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम ।
स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं यजेत् ॥१४
देवकीं वसुदेवं च यशोदां बन्दकं नलम् ।
अर्धरात्रे पयोधारा: पातयेद्गुडसर्पिषा ॥१५
वस्त्रहेमादिकं दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्व्रती ॥१५½

क्षीर-समुद्र में उत्पन्न होने वाले ! शशाङ्क ! रोहिणी के साथ आप मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार कीजिये । तदनन्तर एक चबूतरे के ऊपर रोहिणी के साथ चन्द्रमा, कृष्ण, देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द तथा बलराम की स्थापना करके उनकी पूजा करनी चाहिये । आधी रात के समय गुड़ तथा घी मिलाये हुए दूध की धारा छोड़ते हुए उन्हें वस्त्र और सुवर्ण आदि समर्पण करे । तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये ।१४-१५½।

जन्माष्टमीव्रतकर: पुत्रवान्विष्णुलोकभाक् ॥१६
वर्षे वर्षे तुय: कुर्यात्पुत्रार्थी वेत्ति नो भयम् ।
पुत्रान्देहि धनं देहि [2]आयुरारोग्य [3]संततिम् ॥ १७
धर्मं कामं च सौभाग्यं स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ॥१८

जन्माष्टमी का व्रत करने वाला पुत्रवान् और वैकुण्ठगामी हुआ करता है । 'हे भगवन् ! मुझे पुत्र दीजिये, सन्तान दीजिये, धर्म दीजिये, काम (पुरुषार्थ) दीजिये, सौभाग्य दीजिये, स्वर्ग दीजिये और मोक्ष दीजिए' इस प्रकार कहते हुए जो पुत्रकामी प्रतिवर्ष अष्टमी-व्रत करता है, उसे (किसी प्रकार का) भय नहीं रह जाता है ।१६-१८।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जयन्त्यष्टमीव्रतकथनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय:।१८३

---

१ ख. च. °येद्घृतस° । २ ख. ग. °ग्यसन्मति° । ३ च. °म् । आयुर्धर्मं च । क. ङ. °म् । कामं भोगं च ।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि

[1]अग्निरुवाच—

ब्रह्मादिमातृयजनाज्जपेन्मातृगणाष्टमीम् ।
कृष्णाष्टम्यां चैत्रमासे पूज्याब्दं कृष्णमर्थभाक् ।।१

अग्निदेव बोले—चैत्र मास की कृष्णाष्टमी में आठ मातृकाओं का जप करना चाहिये, क्योंकि ब्रह्मा आदि ने भी मातृकाओं की पूजा की थी। कृष्ण की पूजा करने से धन की प्राप्ति होती है।१

कृष्णाष्टमीव्रतं वक्ष्ये मासे मार्गशिरे (शीर्षे) चरेत् ।
नक्तं कृत्वा शुचिर्भूत्वा गोमूत्रं प्राशयेन्निशि ।।२
भूमिशायी निशायां च शंकरं पूजयेद्व्रती ।
पौषे शम्भुं घृतं प्राश्य माघे क्षीरं महेश्वरम् ।।३

अब मैं कृष्णाष्टमी व्रत का वर्णन करूँगा। (इसका विधान यह है कि) मार्गशीर्ष की अष्टमी को दिन भर उपवास रखकर रात्रि में गोमूत्र पान करे भूमि पर सोये और शंकर का पूजन करे। पौष मास की अष्टमी में घी पीना चाहिये और भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिए। माघ में दुग्धपान तथा महेश्वर का पूजन करना चाहिए।२-३।

महादेवं फाल्गुने च तिलाशी समुपोषितः ।
चैत्रे स्थाणुं यवाशी च वैशाखेऽथ [2]शिवं यजेत् ।।४

फाल्गुन में तिलभोजन, शिवपूजन करना चाहिये। चैत्र में यवभक्षण तथा शंकर जी की पूजा करे। वैशाख में कुशोदक पान करके महेश्वर का पूजन करे।४

[3]कुशोदाशी पशुपतिं ज्येष्ठे शृङ्गोदकाशनः ।
आषाढे गोमयाश्युग्रं[4] श्रावणे[5] सर्वकर्मभुक् ।।५
त्र्यम्बकं च भाद्रपदे बिल्वपत्राशनो निशि ।
तण्डुलाशी चाऽऽश्वयुजे ईशं रुद्रं तु कार्तिके ।।६

---

१ ख. °च-ब्राह्म्यादि° । २ क. ङ. विघुं । ३ कुशोदाशी····· शृङ्गोदकाशनः क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ४ ख. ग. °ग्रयं क्षौद्रं श्रा° । ५ च. °णे शर्कराज्य मु° ।

दध्याशी होमकारी स्याद्वर्षान्ते मण्डले यजेत् ।
गोवस्त्रहेम गुरवे दद्याद्विप्रेभ्य ईदृशम् ।।७

ज्येष्ठ में शृङ्गोदक पान कर पशुपति की अर्चना करे। आषाढ़ में गोबर खाकर त्रिशूली (शंकर) का यजन करे। श्रावण में सभी कर्मों का भोग करते हुए त्र्यम्बक (शिवजी) की पूजा करे। भाद्रपद में बिल्वपत्र खाकर रात्रि में शंकर की पूजा करे। आश्विन में चावल खाकर शंकर जी की अर्चना करे। कार्तिक में दही खाकर रुद्र का पूजन करना चाहिये। वर्षान्त (कार्तिक) में मण्डल वनाकर हवन तथा गुरु और ब्राह्मणों को गाय, वस्त्र तथा सुवर्ण का दान करना चाहिये।५-७।

प्रार्थयित्वा द्विजान्भोज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
([1]नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरान्ते च धेनुदः ।।८
पौरन्दरं पदं याति[2] स्वर्गतिव्रतमुच्यते ।)
अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा ।।९
तदा व्रतं प्रकुर्वीत अथ वा सगुडाशिता ।
तस्यां नियमकर्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ।।१०

तदनन्तर ब्राह्मणों की प्रार्थना करके उन्हें भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। वर्ष की सभी अष्टमियों में रात्रि को भोजन करने वाला और ब्राह्मणों को गायों का दान देने वाला इन्द्रलोक को प्राप्त कर लेता है। इस व्रत को स्वर्णदायक व्रत भी कहते हैं। दोनों पक्षों की अष्टमी में से कोई भी यदि बुधवार के दिन पड़े तो उस दिन या तो व्रत करना चाहिये या गुड़ खाना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य की सम्पत्ति का नाश नहीं होता है।८-१०।

तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाऽङ्गुलीद्वयम् ।
भक्तं[3] कृत्वा चाऽऽम्रपुटे सकुशे सकुलाम्बिकाम् ।।११
सात्त्विकं पूजयित्वाङ्गं भुञ्जीत च कथाश्रवात् ।
शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्कटीतण्डुलान्विताम् ।।१२

---

१ नक्ताशी......'व्रतमुच्यते' नास्ति च. पुस्तके। २ क. ङ.°ति सुशान्ति व्र°।
३ ख. च. भुक्त°।

आठ मुठ्ठी चावल में से दो अंगुल प्रमाण छोड़कर भात पकाना चाहिये। उस भात को कुश-युक्त आम्रपात्र के दोने में रखकर सात्त्विक अंग देवता का पूजन करके कथाश्रवण के बाद खाना चाहिये। तदनन्तर कर्कटी (छोटे आँवले) तथा तण्डुल के साथ यथा-शक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।११-१२।

धीरो द्विजोऽस्य भार्याऽस्ति रम्भा पुत्रस्तु कौशिकः।
दुहिता विजया तस्य धीरस्य धनदो वृषः ॥१३

प्राचीन काल में धीर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम रम्भा, पुत्र का नाम कौशिक, पुत्री का नाम विजया और बैल का नाम धनद था।१३

कौशिकस्तं गृहीत्वा तु गोपालैश्चारयन्वृषम्।
गङ्गायां स्नानकृत्येऽथ नीतश्चौरैर्वृषस्तदा ॥१४
स्नात्वा वृषमपश्यन्स वृषं मार्गितुमागतः।
विजयाभगिनी युक्तो ददर्श स सरोवरे ॥१५
दिव्यस्त्रीयोषितां वृन्दमब्रवीद्देहि भोजनम्।१५½

एक बार कौशिक ग्वालबालों के साथ अपने बैल को गंगातट पर चराने ले गया। जब वह गंगा में स्नान कर रहा था उसी समय चोर उसके बैल को चुरा ले गये। स्नान करने के बाद जब उसने बैल को वहाँ नहीं देखा तब अपनी बहिन विजया को साथ लेकर उसे ढूंढने निकल पड़ा। मार्ग में उसने एक सरोवर में अनेक दिव्य रमणियों को देखा। उसने उनसे भोजन के लिये प्रार्थना की।१४-१५½।

स्त्रीवृन्दमूचे व्रतकृद्भुङ्क्ष्व त्वमतिथिर्यतः ॥१६
व्रतं कृत्वा स बुभुजे प्राप्तवान्वनपालकम्।
गतो धीरः स वृषभो विजया सहितस्तदा ॥१७

स्त्रियों ने उत्तर दिया—'तुम हमारे अतिथि हो, इसलिए (आज अष्टमी) व्रत करके भोजन करो।' कौशिक ने व्रत करके भोजन किया। उस व्रत के प्रभाव से उसे बैल मिल गया। तब वह बैल को लेकर विजया के साथ अपने पिता धीर के पास पहुंचा।१६-१७।

धीरेण विजया दत्ता यमायान्तरितः पिता।
व्रतप्रभावात्कौशिकोऽपि ह्ययोध्यायां नृपोऽभवत् ॥१८

धीर ने विजया का विवाह यम के साथ कर दिया और वह मर गया। व्रत के प्रभाव से कौशिक भी अयोध्या का राजा हुआ।१८

पित्रोऽस्तु नरके दृष्ट्वा विजयाऽऽर्तिं यमे गता।
मृगयामागतं प्रोचे मुच्यते नरकात्कथम् ॥१६
व्रतद्वयाद्यमः प्रोचे प्राप्य तत्कौशिको ददौ।
बुधाष्टमीद्वयफलं स्वर्गतौ पितरौ ततः ॥२०

(एक समय) विजया अपने माता-पिता को नरक में देखकर बड़ी दुःखी हुई। उस समय यम शिकार खेलने गये थे। लौटने पर उनसे विजया ने पूछा कि नरक से मुक्ति कैसे प्राप्त होती है ? यम ने कहा—नरक से मुक्ति दो व्रतों से होती है तथा कौशिक ने अपने बुध और अष्टमी दोनों व्रतों का फल अपने माता-पिता को दे दिया। इससे उसके माता-पिता स्वर्ग में पहुँच गये।१६-२०।

विजया हर्षिता चक्रे व्रतं भुक्त्यादिसिद्धये।
अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥२१
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः।
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ॥२२
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु।
चैत्रादौ मातृपूजाकृदष्टम्यां जयते रिपून् ॥२३

(उसी समय से) प्रसन्न होकर विजया भी भोगादि की प्राप्ति के लिए व्रत करने लगी। जो व्यक्ति पुनर्वसु नक्षत्र में चैत्र-शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन आठ अशोक-कलियों के रस का पान करते हैं, वे कभी शोक को प्राप्त नहीं होते हैं। अशोककलिकाओं के रसपान के समय यह कहना चाहिए कि—'अये मधुमास में उत्पन्न होने वाले तथा शंकर के प्रिय अशोक ! मैं शोक-सन्तप्त होकर तुम्हारा पान कर रहा हूँ। तुम मुझे सदा शोकरहित बनाये रखो।' चैत्रमास की अष्टमी के दिन मातृकाओं की पूजा करने वाला व्यक्ति शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है।२१-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽष्टमीव्रतकथावर्णनं नाम चतुरशीत्यधिक-शततमोऽध्यायः ।१८४

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नवमीव्रतानि

अग्निरुवाच—

नवमीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिसिद्धिदम् ।
देवीं पूज्याऽऽश्विने शुक्ले गौर्याख्यानवमीव्रतम् (ते) ॥१

अब मैं उस नवमी व्रत का वर्णन करूँगा जो भोग और मोक्ष दोनों को दिलाने वाला है। आश्विन शुक्लपक्ष की नवमी का नाम गौरी है, उस दिन देवी का पूजन करना चाहिये।१

पिष्टकाख्या तु नवमी पिष्टाशी देविपूजनात्।
अष्टम्यामाश्विने शुक्ले कन्यार्के मूलभे यदा ॥२

आश्विन शुक्लपक्ष की अष्टमी को जब सूर्य कन्याराशि तथा मूल नक्षत्र में रहे तब पिष्टका नवमी-व्रत करना चाहिए। इसे पिष्टका इसलिये कहते हैं कि उस दिन पिष्टी (पिन्नी) खाकर ही देवी का पूजन किया जाता है।२

अघार्दना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता।
दुर्गा तु नवगेहस्था एकागारस्थिताऽथवा ॥३

सभी नवमी-व्रतों में श्रेष्ठतम नवमी व्रत है जिसे अघार्दना कहते हैं। उस दिन नवगृहों में स्थित या एक गृह में स्थित देवी की पूजा करनी चाहिए।३

पूजिताऽष्टदशभुजा शेषाः षोडशसत्कराः।
शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुं तथा ॥४
रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती पूज्या चण्डरूपाऽतिचण्डिका ॥५
क्रमान्मध्ये चोग्रचण्डा दुर्गा महिषमर्दिनी ।
([1] ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा, दशाक्षरो मन्त्रः ॥६

---

[1] ओंदुर्गे……मन्त्रः ग. पुस्तके नास्ति।

मध्य में अष्टादशभुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्वों में शेष दुर्गाओं का पूजन करना चाहिए। अञ्जन एवं डमरू के साथ निम्नलिखित क्रम से नवदुर्गाओं की स्थापना करनी चाहिए—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, पूज्या, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। इन सबके मध्य भाग में अष्टादशभुजा, उग्रचण्डा, महिषमर्दिनी दुर्गा का पूजन करना चाहिये। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षसि स्वाहा, यह दशाक्षर मन्त्र है।४-६।

[1]दीर्घाकारादिमन्त्रादिर्नवनेत्रो नमोऽन्तकः।
षड्भिः पदैर्नमःस्वधावषट्कारहृदादिकम् ॥७
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यस्याङ्गानि जपेच्छिवाम्।
एवं जपति यो गुह्यं नासौ केनापि बाध्यते ॥८
कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः।
ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ॥९
शक्तिमुद्गरशूलानि वज्रं खड्गं च कुन्तकम्।
शंखं चक्रं शलाकां च आयुधानि च पूजयेत् ॥१०

जो मनुष्य इस विधि से पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्र का जप करता है, वह किसी से बाधा नहीं प्राप्त करता है। भगवती दुर्गा अपने वाम करों में कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी मुद्रा, धनुष, ध्वजा, डमरू और पाश एवं दक्षिण करों में शक्ति, मुद्गर त्रिशूल, वज्र, खड्ग, भाला, अंकुश, चक्र तथा शलाका लिये हुए हैं। उनके इन आयुधों की भी अर्चना करे। ७-१०।

पशुं च काली कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत्।
कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः ॥११
तदुत्थं रुधिरं मांसं पूतनायै च नैर्ऋते।
वायव्यां पापराक्षस्यै चरक्यै नम ईश्वरे ॥१२
विदारिकायै चाऽऽग्नेय्यां महाकौशिकमग्नये[2]।
तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं पिष्टमयं हरेत् ॥१३
दद्यात्स्कन्दविशाखाभ्यां ब्राह्म्याद्या निशि ता यजेत् ॥१३½

१ दीर्घकारादि..........जपेच्छिवाम्' क. ग. ङ. च. पुस्तकेषु नास्ति।
२ ख. ग. 'कमाश्रये।

तत्पश्चात् 'कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः' कहकर और 'कालि कालि' का जप करते हुए खड्ग से पशु को काटना चाहिए। पशु के रक्त और मांस को पश्चिम-दक्षिण दिशा में पूतना को, पश्चिमोत्तर दिशा में पापराक्षसी को, पूर्वोत्तर दिशा में चरकी को, दक्षिण-पूर्व दिशा में विदारिका को अर्पित करना चाहिये। महाकौशिक (या महामांस) नामक मांस अग्निदेवता को अर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर राजा को (देवी की प्रतिमा के) आगे स्नान करना चाहिये और शत्रु की पिष्टमयी प्रतिमा को लेकर उसे काटकर स्कन्द और विशाखा को समर्पित कर देना चाहिये। रात्रि में ब्राह्मी आदि का पूजन करना चाहिये।११-१३½।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ॥१४
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते।
देवीं पञ्चामृतैः स्नाप्य पूजयेच्चार्हणादिना।
ध्वजादिरथयात्रादिबलिदानं वरादिकृत्[1] ॥१५

"जयन्ती मङ्गला काली"......"स्वधा नमोऽस्तु ते" इस मन्त्र से पूजा करने के बाद पञ्चामृत से देवी का स्नान कराकर योग्य सामग्रियों से उनका पूजन करना चाहिये। ध्वजारोपण, बलिदान तथा रथयात्रोत्सव आदि करना भी श्रेयस्कर हुआ करता है। १४-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवमीव्रतकथनं नाम पञ्चाशी-
त्यधिकशततमोऽध्यायः।१८५

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दशमीव्रतम्

अग्निरुवाच—
दशमीव्रतकं वक्ष्ये धर्मकामादिदायकम्।
दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः॥
दिशश्च काञ्चनीर्दद्याद्ब्राह्मणाधिपतिर्भवेत्[2] ॥१

---

१ एवं कृत्वा विधानेन नवमीव्रतमाचरेत्। इत्यर्धमधिकं क. पुस्तके दृश्यते।
२ एवं कृत्वा तु विधिना दशमीव्रतमाचरेत्। इत्यर्धमधिकं क. पुस्तके वर्तते।

अग्निदेव बोले—मैं धर्म और काम आदि (फलों) को प्रदान करने वाले दशमी व्रत को बतलाऊँगा। दशमी के दिन व्रती को एक बार भोजन करके व्रत समाप्ति पर दस गायों का दान करना चाहिए। ब्राह्मणों को दक्षिणा में सुवर्ण देना चाहिये। ऐसा करने से (व्रत करने वाला) ब्राह्मणाधिपति हो जाता है।१

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दशमीव्रतकथनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः। १८६

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकादशीव्रतम्

अग्निरुवाच—

एकादशी व्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
दशम्यां नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः॥१

अग्निदेव बोले—(अब) मैं एकादशी व्रत का वर्णन करूँगा जो भोग और मोक्ष को देने वाला है। दशमी के दिन व्रती को नियमित आहार-विहार करना चाहिये। इस दिन मांस और मैथुन का परित्याग कर देना चाहिये।१

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।
द्वादश्येकादशी यत्र तत्र संनिहितो हरिः॥२

दोनों पक्ष की एकादशी में भोजन नहीं करना चाहिये। एकादशी में द्वादशी का योग पड़ जाने से भगवान् विष्णु का सामीप्य प्राप्त हो जाता है।२

तत्र क्रतुशतं [1]पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे।
[2]एकादशीकला यत्र परतो द्वादशी गता॥३

---

१ क. ग. ङ. °ण्यं द्वादश्यां पारणे कृते। ए°। २ एकादशी……गता ख. पुस्तके नास्ति।

उसमें व्रत करके त्रयोदशी में पारण करने से सौ यज्ञों का फल (पुण्य) होता है। जिस दिन एक कला तक एकादशी रहने के बाद द्वादशी लग जाती है।३

तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे ।
दशम्येकादशीमिश्रा नोपोष्या नरकप्रदा ।।४

उस दिन व्रत करके त्रयोदशी में पारण करने से भी सौ यज्ञों का ही फल प्राप्त होता है। एकादशी यदि दशमी से मिश्रित हो तो उसमें उपवास नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह नरक को देने वाली होती है।४

एकादश्यां निराहारो भुक्त्वा चैवापरेऽहनि ।
भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।।५

एकादशी में निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करते समय भगवान् से यह कहना चाहिये—"हे पुण्डरीकाक्ष! अच्युत! मैं आपके शरणागत हूँ, अनुमति दीजिये कि मैं भोजन करूँ"।५

एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षं तु यदा भवेत् ।
सोपोष्याऽक्षय्यफलदा प्रोक्ता सा पापनाशिनी ।।६

शुक्लपक्ष की एकादशी में यदि पुष्यनक्षत्र हो तो उसमें अवश्य उपवास करना चाहिये, क्योंकि वह पापनाशिनी तथा अक्षयफलदायिनी हुआ करती है। ६

एकादशी द्वादशी या श्रवणेन च संयुता ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ।।७

जो एकादशी या द्वादशी श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है, उसका नाम 'विजया है। वह भक्तों को विजय देने वाली हुआ करती है।७

एषैव फाल्गुने मासि पुष्यर्क्षेण च संयुता ।
विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा[1] ।।८
एकादश्यां विष्णुपूजा कार्या सर्वोपकारिणी ।
धनवान्पुत्रवांल्लोके विष्णुलोके महीयते ।।९

[1] क. ङ. °टिफलप्रदा। ए°।

वही तिथि यदि फाल्गुन मास में पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो भी विजया कहलाती है। विद्वान् लोग उसे पूर्वोक्त तिथि की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक फल देने वाली बतलाते हैं। एकादशी में विष्णु की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वह सबके लिए उपकारक है। इससे मनुष्य को (इस लोक में) धन, पुत्र तथा वैकुण्ठ में महानता की प्राप्ति होती है। ८-९।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये एकादशीव्रतकथनं नाम सप्ताशीत्यधिक शततमोऽध्यायः ।१८७

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशीव्रतानि

अग्निरुवाच —

द्वादशीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।।१

अग्निदेव बोले—अब मैं भुक्तिमुक्तिदायक द्वादशीव्रत के सम्बन्ध में बता रहा हूँ। द्वादशी का व्रत इस प्रकार से करना चाहिये कि उस दिन या तो केवल रात में ही विना माँगा हुआ भोजन करना चाहिए या उपवास करना चाहिए या भिक्षान्न ग्रहण करना चाहिए।१

[1]उपवासेन भैक्ष्येण[2] चैवं द्वादशिकव्रती ।
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिम् ।।२
[3]पूजयेद्भुक्तिमुक्त्यर्थी मदनद्वादशीव्रती ।।२१/२

चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन मदन द्वादशी व्रत किया जाता है। उस दिन (इस संसार में) भोग और बाद में मोक्ष के इच्छुक को मदन गोपाल की पूजा करनी चाहिए।२-२१/२।

---

१ उपवासेन...... ..द्वादशिकव्रती च पुस्तके नास्ति । २ क. ख. ग, ण नैव द्वादशिको भवेत् । चैं° । ३ 'पूजयेद्भुक्ति..............हरिम्' पुस्तके नास्ति ।

माघशुक्ले तु द्वादश्यां भीमद्वादशिकव्रती ॥३
नमो नारायणायेति यजेद्विष्णुं ससर्वभाक् ।
फाल्गुने च सिते पक्षे गोविन्दद्वादशीव्रती ॥४

माघशुक्ल द्वादशी में भीम द्वादशी व्रत करने वाला व्यक्ति 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र से विष्णु का यजन करे। इससे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। फाल्गुन शुक्ल पक्ष में गोविन्दद्वादशी व्रत करना चाहिए।३-४।

विशोकद्वादशीकारी यजेदाश्वयुजे हरिम् ।)
लवणं मार्गशीर्षे तु कृष्णमभ्यर्च्य यो नरः ॥५
ददाति शुक्लद्वादश्यां स सर्वरसदायकः ।५१/२

आश्विन में विशोक द्वादशी व्रत करके भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। मार्गशीर्ष-कृष्णपक्ष की द्वादशी में कृष्ण की पूजा करके और उसी मास की शुक्ल द्वादशी में लवण दान करने से व्रत करने वाले को सभी रसों के दान का फल मिलता है।५-५१/२।

गोवत्सं पूजयेद्भाद्रे गोवत्सद्वादशीव्रती ॥६
माघ्यां तु समतीतायां श्रवणेन तु संयुता ।
द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी ॥७

भाद्रपद में गोवत्सद्वादशी-व्रत करने वाले व्यक्ति को गाय के बछड़े का पूजन करना चाहिए। माघकृष्णपक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह तिल द्वादशी कहलाती है।६-७।

तिलैः स्नानं तिलैर्होमो नैवेद्यं तिलमोदकम् ।
दीपश्च तिलतैलेन तथा देयं तिलोदकम् ॥८
तिलाश्च देया विप्रेभ्यः[1] फलं होमोपवासतः ।
ओं नमो भगवतेऽथो वासुदेवाय वैयजेत् ॥९

उस दिन तिल से स्नान तथा होम करना चाहिये और तिल के बने हुए लड्डुओं का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए, तिल के तेल से दीपक जलाना चाहिए, तिलोदक दान करना चाहिये और ब्राह्मणों को तिल तथा फल दान में देना चाहिए। (उस दिन) होम तथा उपवास भी करना चाहिए। तदनन्तर

१ ग. °भ्यस्तिलहो° ।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र से भगवान् वासुदेव की पूजा करनी चाहिए ।८-९।

सकुलः स्वर्गमाप्नोति षट्तिलद्वादशी[1] व्रती ।
मनोरथद्वादशीकृत्फाल्गुने तु सितेऽर्चयेत् ॥१०
नामद्वादशीव्रतकृत्केशवाद्यैश्च नामभिः ।
वर्षं यजेद्धरिं स्वर्गी न भवेन्नारकी नरः ॥११

इस प्रकार छह 'तिल-द्वादशी' व्रत करने वाला व्यक्ति अपने वंशजों के साथ स्वर्ग प्राप्त कर लेता है । फाल्गुन शुक्लपक्ष की द्वादशी का नाम मनोरथ-द्वादशी, सुमतिद्वादशी तथा नामद्वादशी है । उस दिन केशव आदि नामों से भगवान् की पूजा करने वाला व्यक्ति स्वर्ग चला जाता है, नरक में कभी भी नहीं जाता है ।१०-११।

फाल्गुनस्य सितेऽभ्यर्च्य सुमतिद्वादशी व्रती ।
मासि भाद्रपदे शुक्ले अनन्तद्वादशीव्रती ॥१२
[2]आश्लेषर्क्षे तु मूले वा माघे कृष्णाय वै नमः ।
यजेत्तिलांश्च जुहुयात्तिलद्वादशीकृन्नरः ॥१३

फाल्गुन के शुक्लपक्ष में 'सुमतिद्वादशी' का व्रत करके विष्णु का पूजन करे । भाद्रशुक्ल पक्ष में 'अनन्तद्वादशी व्रत' करना चाहिए । अश्लेषा तथा मूल नक्षत्र से युक्त माघ में तिलद्वादशी व्रत करने वाला व्यक्ति 'कृष्णाय नमः' कहकर तिल से हवन करे ।१२-१३।

सुमतिद्वादशीकारी फाल्गुने तु सिते यजेत् ।
जय कृष्ण नमस्तुभ्यं वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिगः ॥
पौषशुक्ले तु द्वादश्यां संप्राप्तिद्वादशीव्रती ॥१४

फाल्गुन शुक्लपक्ष में 'सुमतिद्वादशी' व्रत' करने वाले व्यक्ति को 'जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्' कहकर पूजा करनी चाहिए । इससे (इस संसार में) भोग और (बाद में) मोक्ष की प्राप्ति होती है। पौष मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को सम्प्राप्ति द्वादशी व्रत करना चाहिए ।१४

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाद्वादशीव्रतकथनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८८

---

१ क. ङ. ट्कुलं द्वादशी व्रतम् । म° । २ क. ङ. आषाढर्क्षेषु मू° ।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रवणद्वादशीव्रतम्

अग्निरुवाच—

श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये मासि भाद्रपदे सिते।
श्रवणेन[1] युता श्रेष्ठा महती सा ह्युपोषिता ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं श्रवणद्वादशी व्रत बतलाऊँगा। भाद्र-शुक्ल पक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह अत्यन्त पुण्यदायिनी हुआ करती है। उसमें उपवास करना चाहिए।१

संगमे सरितां स्नानाच्छ्रवणद्वादशीफलम्[2]।
बुधश्रवणसंयुक्ता दानादौ सुमहाफला ॥२

नदियों के संगम में स्नान करने से श्रवण द्वादशी व्रत करने का फल प्राप्त होता है। बुध दिन तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त उक्त द्वादशी में दान आदि करने से महान् फल प्राप्त होता है।२

निषिद्धमपि कर्तव्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्।
द्वादश्यां च निराहारो वामनं पूजयाम्यहम् ॥३
उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम्।
आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम् ॥४

त्रयोदशी में पारण निषिद्ध होने पर भी इस व्रत के लिए वही विहित है। द्वादशी में निराहार रहकर जल से भरे हुए घड़े के ऊपर यह कहते हुए स्वर्णमय भगवान् वामन की पूजा करनी चाहिये कि मैं भगवान् वामन की पूजा कर रहा हूँ, (इसके लिए) मैं शङ्ख चक्र धारण करने वाले वामन रूपधारी भगवान् विष्णु का आवाहन कर रहा हूँ। फिर त्रयोदशी में पारण करना चाहिये।३-४।

सितवस्त्रयुगच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके।
स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं पञ्चामृतादिभिः ॥५

१ क. ङ. च. 'न समायुक्ता म'। २ ख. ग. 'नाद्द्वादशद्वा'।

यह भी कहना चाहिये कि 'मैं एक जोड़े शुक्ल वस्त्र से आच्छादित और छत्र तथा पादुका से युक्त (इस) घड़े के ऊपर शंख चक्रधारी (भगवान्) वामन का आवाहन कर पञ्चामृत आदि पवित्र जल से उनका स्नान करा रहा हूँ ।५

छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः ।
अर्घ्यं ददानि देवेश अर्घ्यार्हाद्यैः सदाऽर्चितः ।।६

छत्र तथा दण्ड धारण करने वाले वामन (भगवान्) विष्णु को बार-बार नमस्कार है। देवाधिदेव ! अर्घ्य आदि उपयुक्त सामग्री से आपकी पूजा की जा चुकी है ।६

भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्तिसर्वैश्वर्ययुतं कुरु ।
वामनाय नमो गन्धं होमोऽनेनाष्टकं शतम् ।।७
ॐ नमो वासुदेवाय शिरः सम्पूजयेद्धरेः ।
श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठे कृष्णाय वै नमः ।।८

अब मुझे ,भुक्ति, मुक्ति, प्रजा, कीर्ति तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भरपूर कर दीजिए ।' फिर 'वामनाय नमः' कहकर एक सौ आठ बार सुगन्धित द्रव्य से हवन करे। 'ॐ नमो वासुदेवाय' मन्त्र से विष्णु के शिर की, 'कृष्णाय नमः' से कण्ठ की पूजा करनी चाहिये ।७-८।

नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।
व्यापकाय नमो नाभिं वामनाय नमः कटिम् ।।९
त्रैलोक्य [1]जननायेति मेढ्रं जङ्घे यजेद्धरेः ।
सर्वाधिपतये पादौ विष्णोः सर्वात्मने नमः ।।१०

'श्रीपतये नमः' से वक्षःस्थल की, 'सर्वास्त्रधारिणे नमः' से भुजाओं की, 'व्यापकाय नमः' से नाभि की, 'वामनाय नमः' से कटि की, 'त्रैलोक्य-जननाय नमः' से लिङ्ग की,'सर्वाधिपतये नमः' से जङ्घा की और 'सर्वात्मने नमः' से चरणों की पूजा करनी चाहिये ।९-१०।

घृतपक्वं च नैवेद्यं दद्याद्दध्योदनैर्घटान् ।
रात्रौ च जागरं कृत्वा प्रातः स्नात्वा च संगमे ।।११

---

१ क. ङ. °नकाये° ।

गन्धपुष्पादिभिः पूज्य वदेत्पुष्पाञ्जलिस्त्विदम् ।
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञितः ॥१२

घी के पकवान तथा दही और भात के नैवेद्य चढ़ाने चाहिये तथा रात्रि में जागरण करके प्रातःकाल संगम में स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् गन्ध, पुष्प आदि से भगवान् की पूजा करके यह कहते हुए पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए कि हे गोविन्द ! बुध और श्रवण कहलाने वाले आपको नमस्कार है।११-१२।

अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।
प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन ॥१३
वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम् ।
वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च ॥१४
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः ।
प्रदत्तदक्षिणो विप्रान्संभोज्यान्नं स्वयं चरेत् ॥१५

आप मेरे पाप-पुञ्ज को भस्म करके मुझे सम्पूर्ण सुख प्रदान कीजिए। हे देवेश ! हे जनार्दन ! आप सदा मुझ पर प्रसन्न रहें। वामन बुद्धि देने वाले हैं। वे स्वयं द्रव्यों में रहते हैं। वे (पूजा इत्यादि) ग्रहण करते हैं तथा (सुख सम्पत्ति) देते हैं। ऐसे द्रव्य स्थित वामन को मेरा बार-बार नमस्कार है। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराके उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये और स्वयं भी भोजन करना चाहिये।१३-१५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये श्रवणद्वादशीव्रतकथनं नामैकोन-नवत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८९

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतम्

[1]अग्निरुवाच—

अखण्डद्वादशीं वक्ष्ये व्रतसम्पूर्णताकृतम् ।
मार्गशीर्षे सिते विष्णुं द्वादश्यां समुपोषितः ॥१

---

१ अयमध्यायो नास्ति क. ङ. च. पुस्तकेषु ।

अग्निदेव बोले—अब मैं अखण्डद्वादशी व्रत बतलाऊँगा जो सभी व्रतों को पूर्ण करने वाला हुआ करता है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की द्वादशी में उपवास कर विष्णु का पूजन करना चाहिये।१

पञ्चगव्यजले स्नातो यजेत्तत्प्राशनो व्रती ।
यवव्रीहियुतं पात्रं द्वादश्यां हि द्विजेऽर्पयेत् ॥२
सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डं व्रतं कृतम् ।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥३

व्रत करने वाले को पञ्चगव्यमिश्रित जल में स्नान करके उस (पञ्चगव्य) का पान भी करना चाहिये और द्वादशी को ही यव तथा धान से भरा हुआ पात्र ब्राह्मण को देना चाहिये। तदनन्तर भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये—'हे भगवन् ! सात जन्मों में मैंने जिन खण्डित व्रतों का अनुष्ठान किया है, वे व्रत आपकी कृपा से परिपूर्ण हो जाय' ।२-३।

यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम ।
तथाऽखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै ॥४
एवमेवानुमासं च चातुर्मास्यो विधिः स्मृतः ।
अन्यच्चैत्रादिमासेषु सक्तुपात्राणि चार्पयेत् ॥५

अये पुरुषोत्तम ! अखण्ड जगत् आप ही हैं। इसलिये मेरे सब व्रत भी अखण्ड हो जायें। इसी प्रकार प्रतिमासव्रत करके चातुर्मास्य व्रत सम्पन्न करना चाहिये। चैत्र आदि मासों में सत्तू से भरे पात्र का दान करना चाहिये।४-५।

श्रावणादिषु चाऽऽरभ्य कार्तिकान्तेषु पारणम् ।
सप्तजन्मसु वैकल्यं व्रतानां सफलं कृते ॥
आयुरारोग्यसौभाग्यराज्यभोगादिमाप्नुयात् ॥६

श्रावण से प्रारम्भ कर कार्तिक के अन्त में व्रत समाप्त करना चाहिये। इस व्रत के करने से सात जन्मों में किये हुए व्रतों की अपूर्णता सफल हो जाती है और इससे आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य तथा भोग आदि की प्राप्ति होती है।६

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽखण्डद्वादशीव्रतकथनं
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९०

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रयोदशीव्रतानि

अग्निरुवाच—

त्रयोदशीव्रतानीह सर्वदानि वदामि ते ।
अनङ्गेन कृतामादौ वक्ष्येऽनङ्गत्रयोदशीम् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं तुमसे त्रयोदशी व्रत बतलाऊँगा जो सब कुछ देने वाला है ! सर्वप्रथम इसका अनुष्ठान अनङ्ग (कामदेव) ने किया था, इसीलिये इसका नाम अनङ्ग त्रयोदशी पड़ा ।१

त्रयोदश्यां मार्गशीर्षे शुक्लेऽनङ्गहरं[1] यजेत् ।
मधु संप्राशयेद्रात्रौ घृतहोमस्तिलाक्षतैः ॥२

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिये । उस दिन रात्रि में शहद खाकर घी, तिल और अक्षत से हवन करना चाहिये ।२

पौषे योगेश्वरं प्राच्यं चन्दनाशी[2] कृताहुतिः ।
[3]महेश्वरं[4] मौक्तिकाशी माघेऽभ्यर्च्य दिवं व्रजेत् ॥३

पौष मास की त्रयोदशी में योगेश्वर (कृष्ण) की पूजा तथा हवन करके चन्दन का भक्षण करना चाहिये । माघ मास (की त्रयोदशी) में महेश्वर की अर्चना करके मोती खाने से (व्रत करने वाला) स्वर्गगामी होता है ।३

काकोलं प्राश्य नीरं[5] तु फाल्गुने पूजयेद्व्रती ।
कर्पूराशी स्वरूपं च चैत्रे सौभाग्यवान्भवेत् ॥४
महारूपं तु वैशाखे यजेज्जातीफलाश्यपि ।
लवङ्गाशी [6]ज्येष्ठमासे प्रद्युम्नं पूज्येद्व्रती ॥५

फाल्गुन (मास की त्रयोदशी) में केवल जल पीकर काकोल (शेष भगवान् का पूजन करना चाहिये । चैत्र (मास की त्रयोदशी) में कपूर खाकर महेश्वर

---

१ क. ङ. च. हरि° । २ क. ख. ग. ङ. °शी हुता° । ३ 'महेश्वरं…… व्रजेत्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । ४ च. नाद्येश्वरं । ५ क. ङ. च. चीनं । ६ ख. ग. घ. °ष्ठदिने प्र° ।

की पूजा करने से व्रत करने वाला सौभाग्यवान् होता है। वैशाख (मास की त्रयोदशी) में महारूप शंकर की अर्चना करके जातीफल का भक्षण करना चाहिये। ज्येष्ठमास (की त्रयोदशी) में तिल और जल खाकर प्रद्युम्न का पूजन करना चाहिये।४-५।

तिलोदाशी तथाऽऽषाढे उमाभर्तारमर्चयेत्।
श्रावणे गन्धतोयाशी पूजयेच्छूलपाणिनम्॥६
सद्योजातं भाद्रपदे प्राशिता गुरुमर्चयेत्।
सुवर्णवारि सम्प्राश्य आश्विने त्रिदशाधिपम्॥७

आषाढ़ (की त्रयोदशी) में गन्धजल पीकर शूलपाणि (शंकर) की पूजा करनी चाहिये। भादों मास (की त्रयोदशी) में केवल जल पीकर सद्योजात (शिव) की आराधना करनी चाहिये। आश्विन (मास की त्रयोदशी) में सुवर्ण जल पीकर देवेश्वर (शिव) की पूजा करनी चाहिये।६-७।

विश्वेश्वरं कार्तिके तु मदनाशी यजेद्व्रती।
शिवं हैमं तु वर्षान्ते संछाद्याऽम्रदलेन तु॥८
वस्त्रेण पूजयित्वा तु दद्याद्विप्राय गां तथा।
शयनं छत्रकलशान्पादुकारसभाजनम्॥९

कार्तिक (की त्रयोदशी) में मदन (सोमरस) पीकर विश्वेश्वर का पूजन करे। इस प्रकार वर्ष भर व्रत करके अन्त में भगवान् शिव की स्वर्णप्रतिमा को आम्रपत्र तथा वस्त्र से ढँककर उसका पूजन करना चाहिये तथा ब्राह्मण को गाय, शय्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपात्र दान करना चाहिये।८-९।

त्रयोदश्यां सिते चैत्रे रतिप्रीतियुतं स्मरन्।
अशोकाख्यं नगं लिख्य सिन्दूररजनीमुखैः॥१०
अब्दं यजेत्तु कामार्थी कामत्रयोदशीव्रतम्॥११

अपनी कामनाओं को पूर्ण करने वाले व्यक्ति को चैत्र शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में कामदेव का स्मरण करते हुए सिन्दूर से अशोक वृक्ष का चित्र बनाकर एक वर्ष तक 'कामत्रयोदशीव्रत' करना चाहिये।१०-११।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये त्रयोदशीव्रतकथनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः। १९१

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्दशीव्रतानि

अग्निरुवाच—

व्रतं वक्ष्ये चतुर्दश्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
कार्तिके तु चतुर्दश्यां निराहारो यजेच्छिवम् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं भुक्ति-मुक्ति को देने वाला चतुर्दशीव्रत बतलाऊँगा। कार्तिक की चतुर्दशी में निराहार रहकर शिव की पूजा करनी चाहिये।१

([1]वर्षं भोगधनायुष्मान्कुर्वञ्शिवचतुर्दशीम् ।
[2]मार्गशीर्षे सितेऽष्टम्यां तृतीयायां मुनिव्रतः ॥२
द्वादश्यां वा चतुर्दश्यां फलाहारो यजेत्सुरम् ।
त्यक्त्वा फलानि दद्यात्तु कुर्वन्फलचतुर्दशीम् ॥३

एक वर्ष तक शिवचतुर्दशीव्रत करने से भोग, धन और आयु की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की अष्टमी, द्वादशी तथा चतुर्दशी में फलाहार करके व्रती को देवयजन करना चाहिये। फल-चतुर्दशी करने वाले व्यक्ति को फलों का दान करना चाहिये।२-३।

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
अनश्नन्पूजयेच्छंभुं स्वर्ग्युभयचतुर्दशीम् ॥४
कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन तथा कृष्णचतुर्दशीम् ।
इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम् ॥५

शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षों की चतुर्दशी तथा अष्टमी में बिना कुछ खाये शम्भु की अर्चना करनी चाहिये। दोनों पक्षों की चतुर्दशी स्वर्ग को देने वाली हुआ करती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी में रात्रि में व्रत रखने से इस लोक में भोग तथा परलोक में शुभ गति की प्राप्ति होती है।४-५।

---

१ वर्ष......यष्टिसु क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति। २ मार्गशीर्ष इत्यारभ्य फलचतुर्दशीमित्यन्तः ख. पुस्तके नास्ति।

कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां स्नानकृत्सुखी ।
आराधिते महेन्द्रे तु ध्वजाकारासु यष्टिषु ॥६
ततः शुक्लचतुर्दश्यामनन्तं पूजयेद्धरिम् ।
कृत्वा दर्भमयं चैव वारिधानी समन्वितम् ॥७

कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में स्नान कर ध्वजाकार यष्टियों (स्तम्भों) में महेन्द्र की आराधना करने से सुख प्राप्त होता है। भाद्र शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में अनन्त भगवान् की पूजा करनी चाहिये। (उस दिन) कुश की अनन्त प्रतिमा बनाकर उसे कलश पर स्थापित करके पूजा करनी चाहिये ।६-७।

शालिप्रस्थस्य पिष्टस्य पूपनाम्नः कृतस्य च ।
अर्धं विप्राय दातव्यमर्धमात्मनि योजयेत्[1] ॥८

पिसे हुए चावलों का पुआ बनाकर नैवेद्य चढ़ाना चाहिये । तत्पश्चात् नैवेद्य का आधा भाग ब्राह्मणों को देकर आधा भाग स्वयं ग्रहण करना चाहिये ।८

कर्तव्यं सरितां चान्ते कथां कृत्वा हरेरिति ।
अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव ॥६
अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय[2] नमो नमस्ते ।
अनेन पूजयित्वाऽथ सूत्रं बद्ध्वा तु मन्त्रितम् ।
स्वके करे वा कण्ठे वा त्वनन्तव्रतकृत्सुखी ॥१०

अनन्त की पूजा तथा उनकी कथा नदी-तट पर करनी चाहिये। तदनन्तर—'अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव । अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥' इस मन्त्र से अनन्तदेव की पूजा करके अभिमन्त्रित किया हुआ अनन्त का डोरा भुजा या कण्ठ में बाँधना चाहिये। इस प्रकार अनन्तव्रत करने वाला व्यक्ति सुखी होता है ।६-१०।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाचतुर्दशीव्रतकथनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६२

---

१ ख. ग. भोजयेत् । क. ङ. च. भोजनम् । २ क. ङ. °न्तसूत्राय ।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

शिवरात्रिव्रतम

अग्निरुवाच—

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥१
कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वञ्जागरणं व्रती ।
शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ॥२
रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती ।
आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३

अग्निदेव बोले—अब मैं भोग और मोक्ष देने वाला शिवरात्रि व्रत बतलाऊँगा, उसे सुनो। माघ और फाल्गुन के बीच में पड़ने वाली कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में (किसी बात की) कामना करने वाले व्यक्ति को (इस दिन) उपवास तथा रात्रि में जागरण करना चाहिए। उसे यह कहना चाहिये कि "मैं चतुर्दशी में बिना भोजन किये शिवरात्रि व्रत करूँगा, मैं व्रत कर रहा हूँ अतः रात्रि में जागरण करते हुए भगवान् शंकर का आवाहन कर रहा हूँ जो भोग और मोक्ष देने वाले हैं।१-३।

नरकार्णवकोत्तारनावं शिव नमोऽस्तु ते ।
नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने ॥४
[1]सौभाग्यारोग्य[2]विद्यार्थं स्वर्गमार्गप्रदायिने ।
धर्मं देहि धनं देहि कामभोगादि देहि मे ॥५
गुणकीर्तिसुखं देहि स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।
लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापीसुन्दरसेनकः ॥६

हे शिव ! आप नरक के सागर से उद्धार कराने के लिए नौका रूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रजा तथा राज्य को दिलाने वाले भगवान् शंकर को नमस्कार है। सौभाग्य, आरोग्य, विद्या और स्वर्ग को प्रदान करने वाले

---

१ सौभाग्यारोग्य.........प्रदायिने क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति । २ ख. ग. °द्यान्नस्व° ।

आपको नमस्कार है। आप मुझे धर्म, धन, काम, भोग, गुण, कीर्ति, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान कीजिये। पूर्व-काल में सुन्दरसेन नामक पापी व्याध ने (भी) इस व्रत के प्रभाव से सद्गति को प्राप्त कर लिया था।४-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये शिवरात्रिव्रतकथनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।१९३

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अशोकपूर्णिमादिव्रतम्

अग्निरुवाच—

अशोकपूर्णिमां वक्ष्ये भूधरं च भुवं यजेत्।
फाल्गुन्यां सितपक्षायां वर्षं स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१

अग्निदेव बोले—(अब) मैं अशोकपूर्णिमा व्रत बतलाऊँगा। इसमें पर्वत तथा पृथ्वी की पूजा करनी चाहिये। फाल्गुन की पूर्णिमा में एक वर्ष तक यह व्रत करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है।१

कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्।
शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं परम् ॥२
पित्र्या याऽमावसी (स्या) तस्यां पितृणां दत्तमक्षयम्।
उपोष्याब्दं पितॄनिष्ट्वा निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥३
पञ्चदश्यां च माघस्य पूज्याजं स्वर्गमाप्नुयात्।
वक्ष्ये सावित्र्यमावास्यां भुक्तिमुक्तिकरीं शुभाम् ॥४

कार्तिक की पूर्णिमा में वृषभ (बैल) का दान करके रात्रिव्रत करना चाहिये। इस व्रत का नाम वृषव्रत है। इसके करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। (आश्विन कृष्ण की) पितृविसर्जनी अमावस्या में पितरों का यजन करने से मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग को चला जाता है। माघ की अमावस्या (पंचदशी) या पूर्णिमा में ब्रह्मा की पूजा करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।२-४।

पञ्चदश्यां व्रती ज्येष्ठे वटमूले महासतीम् ।
त्रिरात्रोपोषिता नारी सप्तधान्यैः प्रपूजयेत् ॥५
प्ररूढैः कण्ठसूत्रैश्च रजन्यां कुङ्कुमादिभिः ।
वटावलम्बनं कृत्वा नृत्यगीतैः प्रभातके ॥६
नमः सावित्र्यै सत्यवते नैवेद्यं चार्पयेद्द्विजे ।
वेश्म गत्वा द्विजान्भोज्य स्वयं भुक्त्वा विसर्जयेत् ॥७
सावित्री प्रीयतां देवी सौभाग्यादिकमाप्नुयात् ॥८

अब मैं भोग और मोक्ष को दिलाने वाली सावित्री अमावस्या के विषय में बतलाऊँगा । तीन रात उपवास करके ज्येष्ठ मास की अमावस्या के दिन प्रातःकाल स्त्री को वट वृक्ष के मूल में सप्तधान्य, लम्बे कण्ठसूत्र तथा कुंकुम आदि से महासती गौरी का पूजन करके वटस्पर्श तथा नृत्य गीत करना चाहिये और 'नमः सावित्र्यै सत्यवते' कह कर ब्राह्मणों को नैवेद्य देना चाहिए । बाद में घर जाकर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए और 'सावित्री देवी प्रसन्न हों' ऐसा कहते हुए स्वयं भी भोजन करके व्रत समाप्त करना चाहिए । इस व्रत को करने से सौभाग्य आदि की प्राप्ति होती है ।५-८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये तिथिव्रतवर्णनं नाम
चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६४

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वारव्रतानि

अग्निरुवाच—

वारव्रतानि वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ।
[1]करः पुनर्वसुः सूर्ये स्नाने सर्वौषधी शुभा ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं भुक्तिमुक्ति प्रदान करने वाले दिन-व्रतों के सम्बन्ध में कहूँगा । हस्त तथा पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रविवार के दिन 'सर्वोषधि' से स्नान करना चाहिए ।१

---

१ ग. घ. करं ।

श्राद्धी चाऽऽदित्यवारे तु सप्तजन्मस्वरोगभाक् ।
सङ्क्रान्तौ सूर्यवारो यः सोऽर्कस्य हृदयः शुभः ॥२
कृत्वा हस्ते सूर्यवारं नक्तेनाब्दं स सर्वभाक् ।
चित्राभसोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत् ॥३

रविवार को श्राद्ध करने वाला व्यक्ति सात जन्म तक नीरोग रहता है। संक्रान्ति में पड़ने वाला रविवार सूर्य का शुभ हृदय माना गया है। हस्त नक्षत्र के रविवार को रात्रिव्रत करने से मनुष्य की सब अभिलाषायें पूर्ण हो जाती हैं। चित्रा नक्षत्र के सात सोमवारों को व्रत करने से सुख की प्राप्ति होती है।२-३।

स्वात्यां गृहीत्वा चाङ्गारं सप्तनक्त्यार्तिवर्जितः ।
विशाखायां बुधं गृह्य[1] सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥४
अनुराधे देवगुरुं सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ।
शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥
मूले शनैश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्तिनुत् ॥५

स्वाती नक्षत्र के सात मंगलवारों को व्रत करने से पीड़ाशान्ति होती है। विशाखा नक्षत्र के सात बुधवारों को व्रत करने से ग्रहशान्ति होती है। अनुराधा नक्षत्र के सात बृहस्पतिवारों को, ज्येष्ठा नक्षत्र के साथ शुक्रवारों को और सात मूल नक्षत्र के सात शनिवारों को व्रत करने से ग्रहों की पीड़ा शान्त हो जाती है।४-५।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये वारव्रतवर्णनं पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९५

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रव्रतानि

अग्निरुवाच—
नक्षत्रव्रतकं वक्ष्ये भे हरिः पूजितोऽर्थदः ।
नक्षत्रपुरुषं चाऽऽदौ चैत्रमासे हरिं यजेत् ॥१

---

१ ग. ङ. पूज्य ।

अग्निदेव बोले—अब मैं नक्षत्र-व्रत बतलाऊँगा। (किसी भी) नक्षत्र में विष्णु की पूजा करने (सभी) से कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। चैत्रमास में पहले नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए।१

मूले पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीष्वर्चयेद्धरिम् ।
जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढासूरसंज्ञके ॥२
मेढ्ं पूर्वोत्तराष्वेव कटिं वै कृत्तिकासु च ।
पार्श्वे भाद्रपदाभ्यां तु कुक्षि वै रेवतीषु च ॥३
स्तनौ चैवानुराधासु धनिष्ठासु च पृष्ठकम् ।
भुजौ पूज्यौ विशाखासु पुनर्वस्वङ्गुलीर्यजेत् ॥४
आश्लेषासु नखान्पूज्य कण्ठं ज्येष्ठासु पूजयेत् ॥४½

मूल नक्षत्र में उनके चरणों की, रोहिणी में जङ्घाओं की, आश्विनी में जानुओं की, आषाढ़ (भरणी) में ऊरुओं की, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ में लिङ्ग की, कृत्तिका में कटि की, भाद्रपद में पार्श्व की, रेवती में कुक्षि की, अनुराधा में स्तनों की, धनिष्ठा में पीठ की, विशाखा में भुजाओं की, पुनर्वसु में अंगुलियों की, आश्लेषा में नाखूनों की, ज्येष्ठा में कण्ठ की पूजा करनी चाहिए।२-४½।

श्रोत्रे विष्णोश्च श्रवणे मुखं पुण्ये हरेर्यजेत् ।५
यजेत्स्वातिषु दन्ताग्रमास्यं वारुणभेऽर्चयेत् ।
मघासु नासां नयने मृगशीर्षे ललाटकम् ॥६
चित्रासु चाऽऽर्द्रासु 'कचानब्दान्ते स्वर्णकं हरिम् ।
गुडपूर्णे घटेऽभ्यर्च्य शय्यागोर्थादि दक्षिणा ॥७

श्रवण में कानों की, पुष्य में मुख की, स्वाती में दाँतों की, शतभिषा में मुख की, मघा में नासिका की, मृगशिरा में ललाट की, चित्रा और आर्द्रा में केशों की पूजा करनी चाहिए। वर्ष के अन्त में गुड़ से भरे हुए घड़े पर विष्णु की स्वर्णप्रतिमा की अर्चना करके शय्या, गाय, द्रव्य तथा दक्षिणा दान करना चाहिए।५-७।

नक्षत्रपुरुषो विष्णुः पूजनीयः शिवात्मकः ।
शांभवनीयव्रतकृन्मासभे पूजयेद्धरिम् ॥८

नक्षत्र पुरुष विष्णु का पूजन शिवरूप समझ कर करना चाहिए। शांभवनीय व्रत करने वाले व्यक्ति को मास नक्षत्र में हरि का पूजन करना चाहिए।८

कार्तिके कृत्तिकायां च मृगशीर्षे मृगास्यके ।
नामभिः केशवाद्यैस्तु अच्युताय नमोऽपि वा ।।९

कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र में और मार्गशीर्ष में मृगशिर नक्षत्र में केशव आदि नामों से अच्युत (भगवान् विष्णु) को नमस्कार करना चाहिए ।९

कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम् ।
शांभवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम् ।।१०

कार्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र में मासों और नक्षत्रों में व्याप्त रहने वाले भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिये । पहले "मैं भुक्तिमुक्तिदायक शांभवनीय व्रत करूँगा" यह संकल्प करे ।१०

केशवादि महामूर्तिमच्युतं सर्वदायकम् ।
आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम् ।।११
कार्तिकादौ सदा देयमन्नं मासचतुष्टयम् ।
फाल्गुनादौ च कृशरमाषाढादौ च पायसम् ।।१२
देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च नक्तं नैवेद्यमाशयेत् ।।१२½

तदनन्तर 'आयु, आरोग्य और सौभाग्य-वर्द्धक तथा सब कुछ देने वाले केशव आदि महामूर्तिरूप विष्णु भगवान् का आवाहन करता हूँ' कहकर आवाहन करना चाहिये । कार्तिक आदि चार मासों में सदा अन्नदान करना चाहिये । फाल्गुन आदि में कृशर (खिचड़ी) तथा आषाढ़ आदि में खीर से देवता तथा ब्राह्मणों का भोग लगाना चाहिये ।११-१२½ ।

पञ्चगव्यजले स्नातस्तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ।।१३
अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ।।१४

व्रत के दिन पञ्चगव्य मिश्रित जल से स्नान करने तथा उसी जल का पान करने वाला (व्यक्ति) पवित्र होता है । पूजा समाप्त होने से पूर्व चढ़ाई हुयी वस्तु नैवेद्य कहलाती है तथा जगन्नाथ (विष्णु) का विसर्जन कर देने के पश्चात् दिया हुआ नैवेद्य निर्माल्य हो जाता है । १३-१४ ।

नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु,
पापस्य वृद्धिं समुपैति पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्तादिसदाऽक्षयं मे,
क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ।।१५

---

१ ख. ग. कराब्दा°।

यथाऽच्युतस्त्वं परतः परस्तात्,
स ब्रह्मभूतः परतः परात्मन् ।
तथाऽच्युतं त्वं कुरु वांछितं मे,
मया कृतं पापहराप्रमेय ॥१६

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद[1] यदभीप्सितम् ।
अक्षयं माममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१७
सप्तवर्षाणि सम्पूज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७½

नैवेद्य का भोग लगाने के बाद भगवान् की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—'हे अच्युत ! आपको नमस्कार है। आपकी कृपा से मेरे पाप क नाश तथा धर्म की वृद्धि होती रहे। मुझे ऐश्वर्य तथा धन आदि अक्षय रूपा से प्राप्त होते रहें। मेरी सन्तान कभी नष्ट न हों। जैसे आप कभी नष्ट न होने वाले, श्रेष्ठतम, ब्रह्मभूत तथा परमात्मा हैं, उसी प्रकार मुझे अधःपतन से रहित और सफल मनोरथ कर दीजिये। हे अप्रमेयात्मन् ! मेरे पापों का हरण कीजिये। अच्युत ! अनन्त ! गोविन्द ! कृपा कीजिये। मेरी कामनाओं को सफल कीजिये। पुरुषोत्तम ! मुझे अविनश्वर बना दीजिये।" इस प्रकार सात वर्ष भगवान् की आराधना करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। १५-१७½।

अनन्तव्रतमाख्यास्ये नक्षत्रव्रतकेऽर्थदम् ॥१८
मार्गशीर्षे मृगशिरे (शीर्षे) गोमूत्राशी यजेद्धरिम् ।
अनन्तं सर्वकामानामनन्तो भगवान्फलम् ॥१९
[2]ददात्यनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि ।
अनन्तपुण्योपचयं करोत्येतन्महाव्रतम् ॥२०
यथाभिलषितप्राप्तिं करोत्यक्षयमेव च ॥२०½

अब मैं नक्षत्र-व्रत से सम्बन्ध रखने वाला और मनोरथों को पूर्ण करने वाला मार्गशीर्ष के मृगशिरा नक्षत्र में गोमूत्र पान कर अनन्त भगवान् की आराधना करे। ऐसा करने से अनन्त भगवान् अनेक जन्मों में महान् और अनन्तफल देने वाले होते हैं। यह महाव्रत अनन्त पुण्य की वृद्धि तथा अभीष्ट प्राप्ति को अक्षय कर देता है। १८-२०½।

---

१ ग. °द पदमीप्सि° । क. ङ. °द सरमेश्वर । अ° । २ 'ददात्यनन्तं.........जन्मनि' इत्यत्र क. ङ. पुस्तकयोः 'वेदे द्वे लक्षजन्मानिपुनरात्मानमात्मनि' इति दृश्यते ।

([1]पादादि पूज्य नक्ते तु भुञ्जीयात्तैल वर्जितम् ।।
घृतेनानन्तमुद्दिश्य होमो मासचतुष्टयम् ।
चैत्रादौ शालिना होमः पयसा श्रावणादिषु) ।।२२
मान्धाताऽभूद्युवनाश्वादनन्तव्रतकात्सुतः ।।२३

इस व्रत में एकाहार, भगवान् के चरण आदि का पूजन तथा तेल रहित भोजन किया जाता है। अनन्त देव के उद्देश्य से चार मास तक घृत से हवन करना चाहिये। चैत्र आदि मासों में चावल से और श्रावण आदि मासों में खीर से हवन करना चाहिये। पूर्वकाल में इसी अनन्त व्रत के प्रभाव से युवनाश्व को मान्धाता नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। २१-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नक्षत्रव्रतवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः।१९६

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दिवसव्रतानि

अग्निरुवाच—

दिवसव्रतकं वक्ष्ये ह्यादौ धेनुव्रतं वदे।
यश्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् ।१
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ।
त्र्यहं पयोव्रतं कृत्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ।।२
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतम् ।।२½

अग्निदेव बोले—अब मैं दिवसव्रत बतलाऊँगा, इसलिये सर्वप्रथम धेनुव्रत (ही) बता देता हूँ। जो व्यक्ति एक दिन केवल दूध पीकर रहता है तथा (मुख और पूँछ) दोनों ओर बहुत से सोने से युक्त गाय का दान करता है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है। तीन दिन केवल दुग्धपान कर स्वर्ण-निर्मित कल्पवृक्ष दान करने वाला व्यक्ति ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। इसे कल्पवृक्ष व्रत कहते हैं। १-२½।

दद्याद्विंशत्पलादूर्ध्वं[2] महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् ।।३
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रगः स्याद्दिवाव्रती।
पक्षे पक्षे त्रिरात्रं तु भक्तेनैकेन यः क्षपेत् ।।४

---

१ 'पादादि······तैलवर्जितम्' क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।२ च. °द्याद्विसर्जनादू°

विपुलं धनमाप्नोति त्रिरात्रव्रतकृद्दिनम् ।
मासे मासे त्रिरात्राशी [1]एकभक्ती गणेशताम् ॥५

एक दिन दुग्धाहार करते हुये बीस पल (८० तोले) सोने की बनी हुई पृथ्वी (की प्रतिमा) दान करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। प्रत्येक पक्ष में तीन रातें एकाहार करके बिता देने से विपुल धन की प्राप्ति होती है। प्रत्येक मास में तीन रात तक एकाहार करने से गणेशत्व की प्राप्ति हो जाती है। ३-५।

यस्त्रिरात्रव्रतं कुर्यात्समुद्दिश्य जनार्दनम् ।
कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥६
[2]नवम्यां च सिते पक्षे नरो मार्गशिरस्यथ ।
प्रारभेत त्रिरात्राणां [3]व्रतं तु [4]विधिवद्व्रती ॥७

जो मनुष्य जनार्दन (भगवान् विष्णु) के उद्देश्य से त्रिरात्र-व्रत करता है, वह सौ पीढ़ियों का उद्धार करके वैकुण्ठ को चला जाता है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की नवमी में विधिपूर्वक त्रिरात्र-व्रत करना चाहिये। ६-७।

[5] ओं नमो[6] वासुदेवाय सहस्रं वा शतं जपेत् ।
अष्टम्यामेकभक्ताशी दिनत्रयमुपावसेत् ॥८
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं [7]कार्तिके कारयेद्व्रतम् ।
विप्रान्संभोज्य वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥९
छत्रोपवीतपात्राणि [8]ददत्संप्रार्थयेद्द्विजान् ।
व्रतेऽस्मिन्दुष्करे चापि विकलं यदभून्मम ॥१०
भवद्भिस्तदनुज्ञातं परिपूर्णं भवत्विति ॥१०½

व्रत के दिन 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र का सौ बार या सहस्र बार जप करना चाहिये। अष्टमी में एकाहार रहकर तीन दिन तक उपवास करना चाहिये। द्वादशी के दिन विष्णु का पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। उन्हें वस्त्र, शय्या, आसन, छत्र, यज्ञोपवीत तथा पात्र दान

१ ख. ग. °कभुक्तिगणेश्वरम् । य° । २ क. ख. ग. °म्यां चाऽऽदिमे प° । ३ ख. ग. च. शतं । ४ ग. विधिरब्रवीत् । ५ 'ओ नमो……शतं जपेत्' नास्ति च. पुस्तके । ६ ख. ग. 'भो. भगवते वा०। ७ क. ङ. °तिक्यां पार° । ८ क. ङ. दश संप्रा° ।

करके यह प्रार्थना करनी चाहिये—'इस कठिन व्रत में जो कुछ भी न्यूनता रह गयी हो वह आपकी अनुज्ञा से परिपूर्ण हो जाये ।८-१०½।

भुक्तभोगो व्रजेद्विष्णुं त्रिरात्रव्रतकव्रती[१] ॥११
कार्तिकव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपोषितः ॥१२

अनन्तर मैं भुक्ति-मुक्तिदायक कार्तिक व्रत का वर्णन करूँगा । कार्तिक शुक्लपक्ष की दशमी में पञ्चगव्य का पान करना चाहिये और एकादशी में-उपवास करके भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये । ११-१२ ।

([२] कार्तिकस्य सितेऽभ्यर्च्य विष्णुं देवो विमानगः ।
चैत्रे त्रिरात्रं नक्ताशी[३] अजापञ्चप्रदः सुखी ॥१३
त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्त्र्यहम् ।)
षष्ठ्यादि कार्तिके शुक्ले कृच्छ्रो माहेन्द्र उच्यते ॥१४

ऐसा करने से मनुष्य विमान में बैठकर वैकुण्ठ को चला जाता है । चैत्र में त्रिरात्र व्रत तथा पाँच बकरियों का दान करने से मनुष्य सुखी हो जाता है । तीन रात तक दुग्धपान और बाद में तीन दिन तक उपवास करके कार्तिक शुक्ल पक्ष की षष्ठी आदि में कृच्छ् माहेन्द्र नामक व्रत किया जाता है । १३-१४ ।

पञ्चरात्रं पयःपीत्वा दध्याहारो ह्युपोषितः ।
एकादश्यां कार्तिके तु कृच्छ्रोऽयं भास्करोऽ[४]र्थदः ॥१५
यवागू यावकं शाकं दधि क्षीरं घृतं जलम् ।
पञ्चम्यादि सिते पक्षे कृच्छ्ः सान्तपनः स्मृतः ॥१६

पाँच रात दुग्धपान तथा दही का भोजन करके कार्तिक की एकादशी में उपवास करके कृच्छ्र भास्कर नामक व्रत किया जाता है, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला हुआ करता है । उसी मास में शुक्ल पक्ष की पञ्चमी आदि तिथियों में कृच्छ्रसान्तपन नामक व्रत किया जाता है । इसमें यवागू (माँड़) यावक (जौ का सत्तू) शाक, दही, दूध, दही, घी तथा जल ग्रहण करना चाहिये । १५.१६ ।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दिवसव्रतकथनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९७

---

१ क ख. °त्रशत° । २ कार्तिकस्य......अहम्' पुस्तके नास्ति । ३ ख-ग. °शी स्रजा° प° । ४ च. °रोऽन्नद ।

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मासव्रतानि

अग्निरुवाच—

मासव्रतकमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेत्सुधीः[1] ।।१

अब मैं भोग और मोक्ष को देने वाला मास-व्रत बतलाऊँगा । (मासव्रत करने वाले) बुद्धिमान् मनुष्य को आषाढ़ आदि चार मासों में शरीर में उबटन नहीं लगाना चाहिए ।१

वैशाखे पुष्पलवणं त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् ।
गोदो मासोपवासी च भीमव्रतकरो हरिः ।।२

वैशाख में पुष्प तथा लवण का त्याग करके गोदान करने वाला व्यक्ति राजा होता है । एक मास तक उपवास तथा गोदान करने वाला भीमव्रती विष्णु (सायुज्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता) है ।२

आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी च विष्णुगः ।
माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ।।३

आषाढ़ से लेकर चार मास तक प्रातःस्नान करने वाला व्यक्ति विष्णुलोक में पहुँच जाता है । माघ तथा चैत्र मास गुड़, धेनु का दान करने वाला भी उसी लोक में पहुँच जाता है ।३

गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीशः स्यान्महाव्रती ।
मार्गशीर्षादिमासेषु नक्तकृद्विष्णुलोकभाक् ।।४

तृतीया में गुड़ का व्रत करते वाला महाव्रती साक्षात् शिव हो जाता है । मार्गशीर्ष आदि मासों में रात्रिव्रत करने वाला विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है ।४

एकभक्तव्रती तद्वद्द्वादशीव्रतकं पृथक् ।
फलव्रती चतुर्मासं फलं त्यक्त्वा प्रदापयेत् ।।५

---

१ ख. ग. °त्सुखी । वै° ।

इसी प्रकार एकाहार रहकर द्वादशी व्रत करने वाला भी वैकुण्ठगामी होता है। फलव्रती अर्थात् फल का व्रत करने वाले को चार मास तक फल त्याग कर अन्त में ब्राह्मणों को फलों का ही दान करना चाहिए।५

श्रावणादिचतुर्मासं व्रतैः सर्वं लभेद्व्रती।
आषाढस्य सिते पक्ष एकादश्यामुपोषितः॥६
चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम्।
[1]आषाढ्यां चाथ संक्रान्तौ कर्कटस्य हरिं यजेत्॥७

श्रावण आदि चार मासों में व्रत करने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी में उपवास करने से चातुर्मास्य व्रत करने का फल होता है। आषाढ़ की पूर्णिमा तथा कर्क राशि की सङ्क्रान्ति में विष्णु का पूजन करना चाहिए।६-७।

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।
निर्विघ्नां सिद्धिमायातु प्रसन्ने त्वयि केशव॥८

अनन्तर यह प्रार्थना करनी चाहिए—'हे देव! मैंने आपके सामने यह व्रत करने का संकल्प किया है। केशव! आपकी कृपा से यह निर्विघ्न समाप्त हो जाये।८

गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम्।
तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥९
[2]मांसादि त्यक्त्वा विप्रः स्यात्तैलत्यागी हरिं यजेत्।
एकान्तरोपवासी च [3] त्रिरात्री विष्णुलोकभाक्॥१०

हे जनार्दन! यदि मैं इस संकल्पित व्रत को समाप्त करने के पहले ही मर जाऊँ तो भी आपकी कृपा से यह परिपूर्ण हो जाये।' ब्राह्मण को मांस तेल आदि का परित्याग करके ही भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए। तीन रात लगातार उपवास करके व्रती विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है।९-१०।

चान्द्रायणी विष्णुलोकी मौनी स्यान्मुक्तिभाजनम्।
प्राजापत्यव्रती स्वर्गी सक्तुयावकभक्षकः॥११

---

१ क. ङ. °ढ्यां वृषसं°। २ ख. °मांसत्यागी तु वि°। ३ घ. °रात्रं वि°।

दुग्धाद्याहारवान्स्वर्गी पञ्चगव्याम्बुभुक्तथा ।
शाकमूलफलाहारी नरो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।।१२

चान्द्रायणी अर्थात् चान्द्रायण व्रत करने वाले वैकुण्ठगामी होते हैं और मौनी मुक्ति प्राप्त करना है । प्राजापत्यव्रती स्वर्ग प्राप्त करता है। केवल सत्तू, हलुवा, दूध, पंचगव्य, शाक, मूल तथा फल का आहार करने वाला व्यक्ति विष्णुपुरी चला जाता है ।११-१२।

([1]मांसवर्जी यवाहारो रसवर्जी हरिं व्रजेत् ।
कौमुदव्रतमाख्यास्ये आश्विने समुपोषितः ।।१३
दादश्यां पूजयेद्विष्णु प्रलिप्याब्जोत्पलादिभिः ।
घृतेन तिलतैलेन दीपनैवेद्यमर्पयेत् ।।१४
ओं नमो वासुदेवाय मालत्या मालया यजेत् ।
धर्मकामार्थमोक्षांश्च प्राप्नुयात्कौमुदव्रती ।।१५
सर्वलभेद्धरिं प्राच्र्य मासोपवासकव्रती ।।)१६

मांस तथा रस का त्याग करके (केवल) जौ का आहार करने वाला व्रती विष्णु को प्राप्त कर लेता है। अब मैं कौमुदव्रत का वर्णन करूँगा । यह व्रन आश्विन में किया जाता है। (आश्विन) मास की द्वादशी में उपवास करके कमल पुष्प आदि से विष्णु का पूजन करना चाहिये । घृत तथा तिल के तेल से दीपक जलाकर नैवेद्य देना चाहिए। तदनन्तर मालती की माला पर 'ॐ नमो वासुदेवाय' मन्त्र का जप करना चाहिए। इस प्रकार कौमुद-व्रत करने वाले को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। एक मास तक उपवास रखकर विष्णु का पूजन करने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ।१३-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नये मासव्रतकथनं नामाष्ट-
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६८

———

१ 'मांसवर्जी... ...मासोपवासकव्रती' पुस्तके नास्ति ।

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाव्रतानि

अग्निरुवाच—

ऋतुव्रतान्यहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते ।
इन्धनानि तु यो दद्याद्वर्षादि चतुरो ह्यृतून् ॥१
धृतधेनुप्रदश्चान्ते ब्राह्मणोऽग्निव्रती भवेत् ।
कृत्वा मौनं तु सन्ध्यायां मासान्ते घृतकुम्भदः ॥२
तिलघण्टा वस्त्रदाता[1] सुखी सारस्वतव्रती ॥२½

अग्निदेव बोले—अब मैं भुक्ति मुक्ति देने वाले ऋतुओं के व्रतों का वर्णन करूँगा । अग्निव्रत करने वाले ब्राह्मण को चाहिये कि वह वर्षा आदि चार मासों में इन्धन तथा व्रतान्त में घृतधेनु का दान करे । सारस्वतव्रती को सन्ध्या काल में मौन धारण करना चाहिये और मासान्त में सुख प्राप्त करने हेतु घृतपूर्ण कुम्भ, तिल वस्त्र और घण्टा का दान करना चाहिये ।१-२½।

पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वाऽब्दं धेनुदो नृपः ॥३
एकादश्यां तु नक्ताशी चैत्रे भक्तं निवेदयेत् ।
हैमं विष्णोः पदं याति मासान्ते विष्णुसद्व्रती ॥४
[2]पायसाशी गोयुगदः श्रीभाग्देवीव्रती भवेत्
निवेद्य पितृदेवेभ्यो यो भुङ्क्ते स भवेन्नृपः ॥५

राजा को एक वर्ष तक पञ्चामृत से स्नान करके अन्त में गोदान करना चाहिये । चैत्र में रात्रिव्रत करने वाला व्यक्ति एकादशी के दिन भगवान् विष्णु को भात का नैवेद्य समर्पित करे तथा मासान्त में ब्राह्मण को विष्णु की स्वर्ण प्रतिमा का दान दे । ऐसा करने से उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । जो व्यक्ति पितृदेवों को भोग लगाकर भोजन करता है, वह राजा होता है ।३-५।

वर्षव्रतानि चोक्तानि संक्रान्तिव्रतकं वदे ।
संक्रान्तौ स्वर्गलोकी स्याद्रात्रिजागरणान्न ॥६

---

१ क. ख. ङ. सुधीः । २ पायसाशी""""भवेत् क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति ।

अमावस्यां तु संक्रान्तौ शिवार्कयजनात्तथा ।
उत्तरे त्वयने चेज्यः प्रातःस्नानेन केशवः ॥७
द्वात्रिंशत्पलमानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७½

वर्षव्रत तो बताये जा चुके हैं। अब मैं संक्रान्ति व्रत बतला रहा हूँ। संक्रान्ति में रात्रि भर जागरण करने से मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है। अमावस्या तथा संक्रान्ति में शिव और सूर्य पूजन करने से भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उत्तरायण में प्रातःकाल स्नान करके बत्तीस पल (तिल पुष्पादि से) केशव की पूजा करने से सभी पापों का नाश होता है।६-७½।

घृतक्षीरादिनाऽऽस्नाप्य प्राप्नोति विषुवादिषु ॥८
स्त्रीणामुमाव्रतं श्रीदं तृतीयास्वष्टमीषु च ॥
गौरी महेश्वरं चापि यजेत्सौभाग्यमाप्नुयात् ॥९

अयनादि में घी, दूध आदि से शिव को स्नान कराने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। तृतीया और अष्टमी में उमा का पूजन करने से स्त्रियों को श्री की प्राप्ति होती है। गौरी और शंकर की अर्चना करने से भी सौभाग्य की प्राप्ति होती है।८-९।

उमामहेश्वरौ प्राच्यं अवियोगादि चाऽऽप्नुयात् ।
मूलव्रतकरी स्त्री च उमेशव्रतकारिणी ॥१०
सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् ॥११

उमा-महेश्वर की आराधना करने से विरहजन्य दुःख नहीं हुआ करता है। जो स्त्री सूर्य की भक्ति करती है, वह निःसन्देह अग्रिम जन्म में पुरुष होती है।१०-११।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नानाव्रतवर्णनं नाम
नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९९

अथ द्विशततमोऽध्यायः

दीपदानव्रतम्

अग्निरुवाच—

दीपदानव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ॥१

अग्निदेव बोले—अब मैं भोग और मोक्ष देने वाला दीपदानव्रत बतलाऊँगा। देवता तथा द्विजाति के घर में एक वर्ष तक दीपदान करने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ।१

चा (च) तुर्मासे (सं) विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि ।
दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२

चातुर्मास्य और विशेष करके कार्तिक में दीपदान करने से विष्णुलोक और स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। दीपदान से बढ़कर न तो कोई दान हुआ करता है और न होगा ही ।२

दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम् ।
सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३

दीपदान से मनुष्य आयु, नेत्र, लक्ष्मी, पुत्र तथा सौभाग्य आदि ।६ करके स्वर्गलोक में भी पूज्य हो जाता है ।३

विदर्भराजदुहिता ललिता [1]दीपदानभाक् ।
चारुधर्मक्ष्मापपत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ॥४
ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती ।
पृष्टा सा दीपमाहात्म्यं सपत्नीभ्य उवाच ह ॥५

विदर्भराज की एक कन्या थी—ललिता। वह महाराज चारुधर्म की पत्नी थी। वह इसी दीपदान के प्रभाव से महाराज चारुधर्म की सौ पत्नियों में से सर्वप्रथम (अर्थात् राजमहिषी) बन गयी थी। उसने विष्णु-मन्दिर में

---

१ क. ङ.° दार्थभा° ।

एक हजार दीपों का दान किया था और सपत्नियों द्वारा (अपनी महनीयता का रहस्य) पूछने पर दीपदान का माहात्म्य इस प्रकार बतलाया था ।४-५।

ललितोवाच—
सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत्पुरोहितः ।
तेन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ।।६
कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः संप्रेरितो मया ।।६½

ललिता ने कहा—प्राचीनकाल में सौवीरराज के एक पुरोहित थे मैत्रेय । उसकी प्रेरणा से राजा ने देविका नदी के तट पर विष्णु का एक मन्दिर बनवाया था । मेरे कहने पर राजा ने कार्तिक मास में उस मन्दिर में दीपदान किया था ।६-६½

वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ।।७
निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्वर्त्या मूषिकया तदा ।
मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ।।८

परन्तु बिलाव के डर से एक चुहिया ने उस दीप की बत्ती को काट दिया जिससे वह दीप बुझ गया । तो भी उस दीप के लिए जो मैंने प्रेरणा की थी, उसका यह फल हुआ कि इस जन्म में मैं राजकुमारी होकर राजा की सौ पत्नियों में सबसे श्रेष्ठ बन गयी हूँ ।७-८।

असंकल्पितमप्यस्य प्रेरणं यत्कृतं मया ।
विष्णवायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ।।९
जातिस्मरा ह्यतो दीपान्प्रयच्छामि त्वहर्निशम् ।
एकदश्यां दीपदो वै विमाने दिवि मोदते ।।१०
जायते दीपहर्ता तु मूको वा जड एव च ।
अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतते किल ।।११

इस प्रकार मेरे द्वारा विना सोचे-समझे जो विष्णु-मन्दिर के दीपक की वर्तिका बढ़ा दी गयी, उसी पुण्य का फल मैं भोग रही हूँ । इसी से मुझे अपने पूर्व जन्म का स्मरण भी है । इसलिये मैं सदा दीपदान करती हूँ । एकादशी को दीपदान करने वाला स्वर्गलोक में विमान पर आरूढ़ होकर प्रमुदित होता है । दीपक को चुराने वाला मनुष्य गूँगा और जड़ हो जाता है । वह दुस्तर और अन्धकार से परिपूर्ण नरक में गिर जाता है ।९-११।

विक्रोशमानांश्च नरान्यमकिंकर आह तान् ।
विलापैरलमत्रापि किं वो विलपिते फलम् ॥१२
यदा प्रमादिभिः पूर्वमत्यन्तसमुपेक्षितः ।
जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्यो ह्येकस्मिन्मानुषो यदि ॥१३
तत्राप्यतिमूढात्मा किं भोगानभिधावति ॥१३½

वहाँ चिल्लाते हुये जीवों से यमदूत पूछता है—'तुम लोग क्यों विलाप कर रहे हो ? अब विलाप करने से क्या होगा ? जबकि पहले ही तुमने प्रमादवश धर्म की उपेक्षा कर दी थी । जीव को हजारों जन्मों के बाद मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ करता है, फिर भी वह अत्यन्त मूढ़ जीव भोग के पीछे ही दौड़ता रहता है ।१२-१३½।

[1]स्वहितं विषयास्वादैः क्रन्दनं तदिहाऽऽगतम् ॥१४
भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत्किं वो न चिन्तितम् ।
परस्त्रीषु [2]कुचाभ्यङ्गं प्रीतये दुःखदं हि वः ॥१५

तुमने तो विषयों का रसास्वादान करने में ही अपना कल्याण समझा था । अब यहाँ क्यों रो रहे हो ? क्या तुमने यह नहीं सोचा था कि पहले ही किया हुआ कर्म इस जन्म में प्रतिफलित हो जाता है । परस्त्रियों का कुच-मर्दन पहले जितना सुखकर होता है बाद में उतना ही दुःखद होता है ।१४-१५।

मुहूर्तविषयास्वादोऽनेककोट्यब्ददुःखदः ।
परस्त्रीहारि यद्गीतं हा मातः किं विलप्यते ॥१६
कोऽतिभारो हरेर्नाम्नि जिह्वया परिकीर्तने ।
[2]वर्तितैलेऽल्पमूल्येऽपि यदग्निर्लभ्यते सदा ॥१७

एक क्षण तक किया जाने वाला विषयास्वाद करोड़ों वर्षों तक दुःख दिया करता है । परस्त्रीहरण के समय तुमने जो गीत गाया था, वही इस समय हाय ! माँ ! के विलाप में परिणत हो रहा है । जिह्वा से विष्णु के नाम का संकीर्तन करने में कौन सा बड़ा भार पड़ता था ? थोड़े से मूल्य के दिया-बत्ती से सदा अग्नि प्राप्त हुआ करती है ।१६-१७।

---

१ क. झ. हसितं । २ वर्तितैले ····· सदा च. पुस्तके नास्ति ।

दानाशक्तैर्हरेर्दीपो हृतस्तद्वोऽतिदुःखदम् ।
इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम् ॥१८

तुम लोगों ने दीपदान करना तो दूर रहा, (उलटे) दूसरों को दिये हुये दीपों को चुराया था। उसी का प्रतिफल इस समय मिल रहा है। इसलिये विलाप करने से क्या लाभ ? जो आ पड़ा है, उसे सहन करो।१८

अग्निरुवाच—

ललितोक्तं च ताः श्रुत्वा दीपदानाद्दिवं ययुः ।
तस्माद्दीपप्रदानेन व्रतानामधिकं फलम् ।१९

अग्निदेव बोले—ललिता के मुँह से दीपदान का माहात्म्य सुनकर सभी स्त्रियाँ स्वर्गलोक पहुँच गयीं। इसलिये दीपदान करने से व्रतों का और अधिक फल प्राप्त होता है।१९

इत्यादिमहापुराण आग्नेये दीपदानवर्णनं नाम
द्विशततमोऽध्यायः।२००

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नवव्यूहार्चनम्

अग्निरुवाच—

नवव्यूहार्चनं वक्ष्ये नारदाय हरीरितम् ।
मण्डलेऽब्जेऽर्चयेन्मध्ये अबीजं वासुदेवकम् ॥१
आबीजं च संकर्षणमं प्रद्युम्नं च दक्षिणे ।
अः अनिरुद्धं नैर्ऋते ओं नारायणमप्सु च ॥२

अग्निदेव बोले—अब मैं नवव्यूह-पूजन की विधि बतलाऊँगा जिसे भगवान् विष्णु ने नारद से कहा था। कमलाकार चक्र के बीच में वासुदेव (कृष्ण) और संकर्षण (बलराम) का पूजन (क्रमशः) 'अ' और 'आ' बीजमन्त्रों से करना चाहिये। दक्षिण में प्रद्युम्न, दक्षिण पश्चिम में 'अः' बीजमन्त्र से अनिरुद्ध, पश्चिम में 'ॐ' मन्त्र से नारायण का पूजन करना चाहिये।१-२।

तत्सद्ब्रह्माणमनिले [1]ह्रूं विष्णुं क्षौं नृसिंहकम् ।
उत्तरे [2]भूर्वराहं च ईशे द्वारि च पश्चिमे ॥३
[3]कं टं सं शं गरुत्मन्तं पूर्ववक्त्रं च [4]दक्षिणे ।
खं छं वं हुं फडिति च खं ठं फं शं गदां विधौ[5] ॥४
बं णं मं क्षं कोणे शं च धं दं भं हं श्रियं यजेत् ।
दक्षिणे चोत्तरे पुष्टिं गं डं बं शं स्वबीजकम् ॥५

पश्चिमोत्तर में 'तत् सत्' मन्त्र से ब्रह्मा, उत्तर में 'ह्रूं' मन्त्र से विष्णु और 'क्षौं' मन्त्र से नृसिंह तथा पूर्वोत्तर में भूः मन्त्र से वाराह भगवान् का पूजन करना चाहिये। (चक्र के) पश्चिम द्वार देश में 'कं टं सं शं' मन्त्र से पूर्वाभिमुख गरुड़, दक्षिण में 'खं छं वं हुं फट्'.'खं ठं फं शं' मन्त्र से गदा, पूर्व में 'बं णं मं क्षं शं घं दं भं हं' मन्त्र से लक्ष्मी और दक्षिणोत्तर में 'गं डं बं शं' मन्त्र से पुष्टि का पूजन करना चाहिए।३-५।

पीठस्य पश्चिमे धं वं वनमालां च पश्चिमे ।
श्रीवत्सं चैव सं हं लं छं तं यं कौस्तुभं जले ॥६
[6]दशमाङ्गक्रमाद्विष्णोर्नमोऽनन्तमधोऽर्चयेत् ।
दशाङ्गादिमहेन्द्रादीन्पूर्वादौ चतुरो घटान् ॥७
तोरणानि वितानं च अग्न्यनिलेन्दुबीजकैः ।
मण्डलानि क्रमाद्ध्यात्वा [7]तनुं वन्द्य ततः प्लवेत् ॥८

पीठ के पश्चिम भाग में 'धं वं' मन्त्र से वनमाला तथा श्रीवत्स और 'सं हं लं छं तं यं' मन्त्र से जल में कौस्तुभ की पूजा करनी चाहिये। क्रमशः भगवान् विष्णु का दशविध अङ्गपूजन करना चाहिए। 'नमोऽनन्तम्' मन्त्र से मण्डल के नीचे की ओर भगवान् अनन्त देव का पूजन करना चाहिए। फिर क्रमशः महेन्द्र आदि देवताओं तथा उनका दशविध अंगपूजन करना चाहिये। (मण्डल के) पूर्व आदि चारों द्वारों पर चार घड़ों को रखकर देवार्चन करना

---

१ क. ङ. हूं। २ क. ङ. °राहश्च हस्ते वामे च प°। ३ क. ङ. कं ठं च सं गुरुं सत्त्वं पूर्वचक्रं च। ४ क. ङ. °णे। जं लं सं हं फ°। ५ क. ङ. °धौ। चन्द्रपक्षं क्षौणसुखं त्वं ढं भं। ६ क. ख. ङ. °मार्ग° क्र°। ७ क. ख. ग. तरुं दग्ध्वा त°।

चाहिए। मण्डल के चारों द्वारों तथा उसके ऊपर वितान (रूप में फैले हुए आकाश) को अग्नि, वायु, और चन्द्र बीजों से व्याप्त समझना चाहिए।६-८।

[1]अम्बरस्थं ततो ध्यात्वा सूक्ष्मरूपमथाऽऽत्मनः।
सितामृते निमग्नं च चन्द्रबिम्बात्स्रुतेन च ॥९
तदैव चाऽऽत्मनो बीजममृतं प्लवसंस्कृतम्।
उत्पद्यमानं पुरुषमात्मानमुपकल्पयेत् ॥१०
उत्पन्नोऽस्मि स्वयं विष्णुर्बीजं द्वादशकं न्यसेत्।
हृच्छिरस्तु शिखा चैव कवचं चास्त्रमेव च ॥११
वक्षोमूर्धशिखापृष्ठलोचनेषु न्यसेत्पुनः।
अस्त्रं करद्वये न्यस्य ततो दिव्यतनुर्भवेत् ॥१२

तदनन्तर आचार्य को सम्पूर्ण विश्व में अपनी आत्मा को व्याप्त समझना चाहिए। उसे आत्म-बीज का भी ध्यान करना चाहिए। जो चन्द्रकिरण से निकलने वाला, अमृत के स्वच्छ बिन्दुओं से युक्त और ऊपर से उसके शरीर में व्याप्त हो रहा है। तत्पश्चात् उसे अपने आपको बीज से उत्पन्न पूर्ण पुरुष और विष्णु का रूप समझना चाहिए। बीजमन्त्र से हृदय, शिर, शिखा, कवच और अस्त्र का न्यास करके पुनः वक्षःस्थल, मूर्धा, शिखा, पृष्ठ और नेत्रों का न्यास करना चाहिये। अस्त्र और दोनों हाथों का न्यास करके (आचार्य) सुन्दर शरीर वाले हो जाते हैं।९-१२।

यथाऽऽत्मनि तथा देवे शिष्यदेहे न्यसेत्तथा।
अनिर्माल्या स्मृता पूजा यद्धरेः पूजनं हृदि ॥ १३
सनिर्माल्या मण्डलादौ बद्धनेत्राश्च शिष्यकाः।
पुष्पं क्षिपेयुर्यन्मूर्तौ तस्य तन्नाम कारयेत् ॥१४

अपने समान ही देवता तथा शिष्य के शरीर का न्यास करना चाहिए। हृदय में हरि की पूजा की जाती है, वह अनिर्माल्य (अनुच्छिष्ट) होती है और मण्डलादि में (की हुयी पूजा) सनिर्माल्य (सोच्छिष्ट) हुआ करती है। शिष्य आँखें मूँदकर जिस मूर्ति के ऊपर फूल चढ़ायें उनसे उसके नाम का उच्चारण करवाना चाहिए।१३-१४।

---

१ च. अनवस्थं।

निवेश्य वामतः शिष्यांस्तिलव्रीहिघृतं हुनेत् ।
शतमष्टोत्तरं हुत्वा सहस्रं कण्यशुद्धये[1] ॥१५
नवव्यूहस्य मूर्तीनामङ्गानां च शताधिकम् ।
पूर्णान्दत्त्वा दीक्षयेत्तान्गुरुः पूज्यश्च तैर्धनैः ॥१६

तदनन्तर आचार्य अपने शिष्यों को अपने वाम भाग में बिठाकर तिल, व्रीहि तथा घी से एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये। शरीर-शुद्धि के लिए एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिए। नवव्यूह की मूर्तियों को प्रसन्न करने के लिए एक सौ आहुतियाँ और देनी चाहिए। तदनन्तर आचार्य (सम्यक् प्रकार से पूर्ण उन) शिष्यों को दीक्षा दे और शिष्यों को चाहिए कि वे धन से अपने गुरु का सम्मान करें ।१५-१६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नवव्यूहार्चनं नामैकाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।२०१

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पवर्गकथनम्

अग्निरुवाच—

पुष्पगन्धधूपदीपनैवेद्यैस्तुष्यते हरिः ।
पुष्पाणि देवयोग्यानि ह्ययोग्यानि वदामि ते ॥१

अग्निदेव बोले—पुष्प, गन्ध, धूप, दीप तथा नैवेद्य से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। इसलिये मैं तुम्हें यह बता रहा हूँ कि कौन से पुष्प देवताओं के अनुकूल होते हैं ।१

पुष्पं श्रेष्ठं मालती च तमालो भुक्तिमुक्तिमान् ।
मल्लिका सर्वपापघ्नी यूथिका विष्णुलोकदा ।२

---

१ क. ङ. कार्यमुद्वहेत् । नं।

मालती पुष्प सर्वश्रेष्ठ हुआ करता है। तमाल भुक्ति-मुक्ति देने वाला है। मल्लिका सम्पूर्ण पापों का संहार करने वाली है। जूही विष्णुलोक को पहुँचाने वाली है।२

अतिमुक्तमयं तद्वत्पाटला विष्णुलोकदा।
करवीरैर्विष्णुलोकी जपापुष्पैश्च पुण्यवान् ॥३
[1]पावन्तीकुब्जकाद्यैश्च त्रगरैर्विष्णुलोकभाक्।
कर्णिकारैर्विष्णुलोकः [2]कुरुण्टैः पापनाशनम् ॥४
पद्मैश्च केतकीभिश्च कुन्दपुष्पैः परा गतिः।
बाणपुष्पैर्बर्बराभिः कृष्णाभिर्हरिलोकभाक् ॥५

अतिमुक्त (वासन्ती लता) तथा पाटल भी वैकुण्ठलोक देने वाले हैं। करवीर (पुष्प) से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है और जपापुष्प (गुड़हल) से पुण्य मिलता है। पावन्ती, कुब्जक, तगर तथा कनेर आदि से वैकुण्ठ मिलता है। कुरुण्ठ से पापों का सर्वनाश होता है। कमल, केतकी तथा कुन्द-पुष्पों से सद्गति मिलती है। बाणपुष्प तथा काले बर्बरों से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।३-५।

अशोकैस्तिलकस्तद्वदाटरूषभवैस्तथा।
मुक्तिभागी बिल्वपत्रैः शमीपत्रैःपरा गतिः ॥६

अशोक, तिलक, तथा आटरूष से मुक्ति मिलती है। बिल्वपत्र तथा शमीपत्र से उत्तम गति की प्राप्ति होती है।६

विष्णुलोकी भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा।
तुलसी कृष्णगौराख्या कह्लारोत्पलकानि च ॥७
पद्मं कोकनदं पुण्यं शताब्जमालया हरिः।
नीपार्जुनकदम्बैश्च बकुलैश्च सुगन्धिभिः ॥८
किंशुकैर्मुनिपुष्पैस्तु गोकर्णैर्नागकर्णकैः।
सन्ध्यापुष्पैर्बिल्वतकैरञ्जनीकेतकीभवैः ॥९
कूष्माण्डतिमिरोत्थैश्च कुशकाश[3]शरोद्भवैः[4]।
द्यूतादिभिर्मरुवकैः पत्रैरन्यैः सुगन्धकैः ॥१०
भुक्तिर्मुक्तिः पापहानिर्भक्त्या सर्वैस्तु तुष्यति ॥१०½

---

१ च. पाटलाकुब्जका°। २ ख. कुरवैः। ३ क. ङ. °शतोद्भ°। ४ ख. ग° वैः। कृतारामैश्च मरुकैः।

भृङ्गराज, तमालपत्र, तुलसीपत्र कृष्णगौर, रक्तकमल, नीलकमल, श्वेत-कमल, कोकनद तथा शताब्ज की माला से भगवान् विष्णु की प्राप्ति होती है। नीप, अर्जुन, कदम्ब, बकुल, किंशुक, अगस्त्य, गोकर्ण, नागकर्ण, सन्ध्या पुष्प बिल्वतक, रञ्जिनी आदि पुष्पों तथा कूष्माण्ड, तिमिर कुश, काश, सरपत, चूत और मरुबक आदि के सुगन्धित पत्रों से भोग और मोक्ष मिलता है। तथा पापों का नाश होता है। भक्तिपूर्वक (दी हुयी) सभी वस्तुओं से भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं।७-१०३।

स्वर्णलक्षाधिकं पुष्पं माला कोटिगुणाधिका ।११
स्ववनेऽन्यवने पुष्पैस्त्रिगुणं[1] वनजैः फलम् ।
विशीर्णैर्नार्चयेद्विष्णुं नाधिकाङ्गैर्न मोटितैः ।१२
काञ्चनारैस्तथोन्मत्तैर्गिरिकर्णिकया तथा ।
कुटजैः शाल्मलीयैश्च शिरीषैर्नरकादिकम् ।।१३
सुगन्धैर्ब्रह्मपद्मैश्च पुष्पैर्नीलोत्पलैर्हरिः ।
अर्कमन्दारधत्तूरकुसुमैरर्च्यते हरः ।।१४

एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करने की अपेक्षा भगवान् के ऊपर चढ़ाये गये एक पुष्प का फल अधिक हुआ करता है और पुष्पमाला चढ़ाने का फल तो करोड़ गुना अधिक होता है। अपनी वाटिका या दूसरे की वाटिका के पुष्पों की अपेक्षा वन्य पुष्पों (को अर्पित करने) का तिगुना फल होता है। गिरे हुये, न्यूनाधिक या कटे-फटे पुष्पों से विष्णु की पूजा नहीं करनी चाहिये। कचनार, धतूरे, गिरिकर्णिका, कुटज, शाल्मली तथा शिरीष के पुष्पों से भूत-प्रेत आदि की पूजा करनी चाहिये। सुगन्धित ब्रह्मपद्म, नीलकमल, अर्क, मन्दार तथा धतूरे के पुष्पों, से शिव की पूजा होती है।११-१४।

कुटजैः कर्कटीपुष्पैः केतकीं न शिवे ददेत् ।
कूष्माण्डनिम्बसम्भूतं पैशाचं गन्धवर्जितम् ।।१५
अहिंसा इन्द्रियजयः क्षान्तिर्ज्ञानं दया श्रुतम् ।
भावाष्टपुष्पैः सम्पूज्य देवान्स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक्।।१६

---

१ क. ङ. °णं च निजैः।

कुटज, कर्कटीपुष्प तथा केतकी शिव जी के ऊपर नहीं चढ़ाना चाहिये। कूष्माण्ड, निम्ब तथा और भी गन्धहीन पुष्प पिशाचों के लिए हुआ करते हैं। अहिंसा, इन्द्रियजय, क्षमा, ज्ञान, दया, वेदाध्ययन तथा भाव—इन आठों पुष्पों से देवताओं की पूजा करके मनुष्य भुक्ति-मुक्ति प्राप्त कर लेता है।१५-१६।

([1]अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वपुष्पं दयाभूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते ॥१७
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम्।
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ॥१८
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः ॥१८½

प्रथम पुष्प अहिंसा, दूसरा पुष्प इन्द्रियनिग्रह, तीसरा प्राणियों पर दया, चौथा शान्ति, पाँचवां शम, छठा तप, सातवाँ, ध्यान और आठवाँ पुष्प सत्य है। इन्हीं आठ पुष्पों से पूजा करने से भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं।१७-१८½।

पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम।१९
भक्त्यादयान्वितैर्विष्णुः पूजितः परितुष्यति ॥१९½

अये पुरुषश्रेष्ठ ! इनसे अतिरिक्त पुष्प तो केवल दिखावटी हैं। (भूतों पर) दया करने वाले व्यक्तियों के द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करने से भगवान् विष्णु परितुष्ट हो जाते हैं।१९-१९½।

[2]वारुणं सलिलं पुष्पं सौम्यं घृतपयोदधि ॥२०
प्राजापत्यं तथाऽन्नादि आग्नेयं धूपदीपकम्।
फलपुष्पादिकं चैव वानस्पत्यं तु पञ्चमम् ॥२१
पार्थिवं कुशमूलाद्यं वायव्यं गन्धचन्दनम्।
श्रद्धाख्यं विष्णुपुष्पं च सर्वदा चाष्टपुष्पिका ॥२२
आसनं मूर्तिपञ्चाङ्गं विष्णुर्वा चाष्टपुष्पिकाः (का)।
विष्णोस्तु वासुदेवाद्यैरीशानाद्यैः शिवस्य वा ॥२३

वरुण के लिए पुष्प और जल, चन्द्रमा के लिये घी, दूध, दही, प्रजापति के लिए अन्नादि अग्नि के लिए धूपदीप, वनस्पति के लिए फल-पुष्प आदि, पृथ्वी के लिए कुश और मूल आदि, वायु के लिए गन्ध और चन्दन तथा

१ अहिंसा...परितुष्यति ख. ग. च. पुस्तकेषु नास्ति। २ ख. °णं वाऽनिलं।

विष्णु के लिए श्रद्धा-पुष्प (अभीष्ट हुआ करते हैं)। सदैव इन आठ पुष्पों से विष्णु की पूजा करनी चाहिये। उनकी मूर्ति को आसन पर सुप्रतिष्ठित करके वासुदेव आदि नामों से उनका पूजन करना चाहिये, किन्तु शिव की पूजा ईशान आदि नामों से करनी चाहिये।२०-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये पुष्पवर्गवर्णनं नाम
द्वयधिकद्विशततमोऽध्यायः।२०२

———

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकस्वरूपम्

अग्निरुवाच—

पुष्पाद्यैः पूजनाद्विष्णोर्न याति नरकान्वदे।
[1]आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते॥१

अग्निदेव बोले—पुष्प आदि से भगवान् विष्णु की पूजा करने से नरकों में नहीं जाना पड़ता है। आयु समाप्त होने पर मनुष्य न चाहते हुए भी प्राणों से मुक्त हो जाता है।१

जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः।
निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते॥२

जल, अग्नि, विष, शस्त्र, क्षुधा, व्याधि तथा पर्वतों से गिरना—इनमें से किसी को निमित्त बनाकर मनुष्य प्राणों का त्याग कर देता है।२

अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मभिः।
भुङ्क्तेऽथ पापकृद्दुःखं सुखं धर्माय संगतः॥३
नीयते यमदूतैस्तु यमं प्राणिभयंकरैः।
कुपथे दक्षिणद्वारि धार्मिकः पश्चिमादिभिः॥४
यमाज्ञप्तैः किंकरैस्तु पात्यते नरकेषु च।
स्वर्गे तु नीयते धर्माद्वशिष्ठाद्युक्तिसंश्रयात्॥५

———

१ आयुषोऽन्ते... ....मुच्यते च. पुस्तके नास्ति।

अनन्तर दूसरे शरीर को प्राप्त करता है और कर्मानुसार यातनाओं का भोग प्राप्त करता है। उसमें पापी दुःख भोगता है किन्तु धर्मवान् व्यक्ति सुख भोगता है। प्राणियों के लिये भयावह यमदूत दक्षिण दिशा वाले कुमार्ग से पापी को यमराज के पास ले जाता है किन्तु धर्मात्मा को पश्चिम आदि सन्मार्गों से। यमराज की आज्ञा से यमदूत पापियों को नरकों में डाल देते हैं किन्तु सत्कर्मी को वशिष्ठ आदि के कथनानुसार स्वर्ग में पहुँचा देते हैं।३-५।

गोघाती तु [1]महावीच्यां वर्षलक्षं तु पीड्यते।
ताम्रकुम्भे महादीप्ते ब्रह्महा[2] भूमिहारकः ॥६
महाप्रलयकं यावद्रौरवे पीड्यते शनैः।
स्त्रीबालवृद्धहन्ता तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७
महारौरवके रौद्रे गृहक्षेत्रादिदीपकः।
दह्यते कल्पमेकं स चौरस्तामिस्रके पतेत् ॥८

गोहत्या करने वाला जीव एक लाख वर्ष तक महावीची (नामक) नरक में घोरदुःख भोगता रहता है। ब्रह्मघाती तथा भूमि का अपहरण करने वाला जीव अत्यन्त दहकते हुये ताम्रकुम्भ नामक नरक में जाता है। स्त्री, बालक और वृद्धों का हनन करने वाला महाप्रलय तक अथवा चौदह इन्द्रों की राज्य-समाप्ति तक रौरव नामक नरक में धीरे-धीरे पीडा पाता है। घर तथा खेत आदि को जलाने वाला घोर महारौरव नामक नरक में एक कल्प तक गलाया जाता है। चोर तामिस्र नामक नरक में गिरता है।६-८।

नैककल्पं तु शूलाद्यैर्भिद्यते यमकिंकरैः।
महातामिस्रके [3]सर्पजलौकाद्यैश्च पीड्यते ॥९

उस महातामिस्र नामक नरक में वह अनेक कल्पों तक यमदूतों के द्वारा भालों इत्यादि से छेदे जाते हैं तथा सर्प और अन्य जल-जन्तुओं से पीडित होते हैं।९

यावद्भूमिर्मातृहाद्या असिपत्रवनेऽसिभिः।
नैककल्पं तु नरके करम्भवालुकासु च ॥१०

---

१ क. ङ. °हावाप्यां व°। २ क. ङ.° ह्रस्वकमिहा°। ३ क. ङ. °सद्योज°।

येन दग्धो जनस्तत्र दह्यते वालुकादिभिः ।
काकोले कृमिविष्ठाशी एकाकी मिष्टभोजनः ॥११

माता की हत्या करने वाला असिपत्रवन (नामक) नरक में तलवार से पीडित किया जाता है और अनेक कल्पों तक कीचड़ और बालू में पड़ा रहता जिसने प्राणी को जलाया है वह वहाँ पर बालू इत्यादि में जलाया जाता है (सबके सामने) अकेले मिष्ठान्न भोजन करने वाला व्यक्ति 'काकोल' नामक नरक में कीड़े और विष्ठा खाता है ।१०-११।

कुट्टले मूत्ररक्ताशी पञ्चयज्ञक्रियोज्झितः ।
[1]सुदुर्गन्धे रक्तभोजी भवेच्चाभक्ष्यभक्षकः ॥१२
तैलपाके तु तिलवत्पीड्यते परपीडकः ।
[2]तैलपाके तु पच्येत शरणागतघातकः ॥१३

जो मनुष्य पञ्चमहाभूत यज्ञ नहीं करता है, उसे कुट्टल नामक नरक में मूत्र तथा रक्तपान करना पड़ता है। अभक्ष्य भक्षण करने वाला अतिदुर्गन्ध नरक में रक्तपान करता है । दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला तैलपाक नरक में तिल की तरह पेरा जाता है और शरणागत की हिंसा करने वाला तैलपाक नरक में पकाया जाता है ।१२-१३।

निरुच्छ्वासे-दाननाशी रसविक्रयकोऽध्वरे ।
नाम्ना वज्रकटाहे[3] च महापाते तदाऽनृती ॥१४
महाज्वाले पापबुद्धिः क्रकचेऽगम्यगामिनः ।
संकरीगुडपाके च प्रतुदेत्परमर्मकृत् ॥१५
[4]क्षारह्रदे [5]प्राणिहन्ता क्षुरधारे च भूमिहृत् ।
अम्बरीषे गोस्वर्णहृद्द्रुमच्छिद्वज्रशस्त्रके ॥१६

दाननाशक व्यक्ति निरुच्छ्वास नामक नरक में गिरता है और रस-विक्रेता अध्वर नामक नरक में गिरता है । मिथ्यावक्ता बज्रकटाह नामक नरक में; पापबुद्धि वाला महाज्वाल नामक नरक में, कुपथगामी क्रकच नामक नरक में,

१. सुदुर्गन्धे......भक्ष्यभक्षकः इत्यत्र "चर्मकुम्भे रक्तभोजी भवेद्वा रक्तभोजनः" इति च. पुस्तके वर्तते । २ तैलपाके......शरणागतघातकः नास्ति क. ङ. पुस्तकयोः । ३ घ. च. °कवाटेन म° । ४ च.° रकूपे प्रा° । ५ क. ङ. प्राणहर्ता ।

दूसरे का मर्मवेध करने वाला गुडपाक में, प्राणियों की हत्या करने वाला क्षार-ह्रद में, भूमि का हरण करने वाले क्षुरधार में, गाय तथा सोना चुराने वाला अम्बरीष में तथा वृक्ष काटने वाला वज्रशस्त्रक नामक नरक में पड़ता है।१४-१६।

मधुहर्ता परीतापे कालसूत्रे [1]परार्थहृत्।
कश्मलेऽत्यन्तमांसाशी उग्रगन्धे[2] ह्यपिण्डदः ॥१७
दुर्धरे ह्युत्कोचभक्षी बन्दिग्राहरताश्च[3] ये।
[4]मञ्जूषे नरके लोहेऽप्रतिष्ठे श्रुतिनिन्दकः[5] ॥१८
पूतवक्त्रे कूटसाक्षी परिलुण्ठे धनापहा।
बालस्त्रीवृद्धघाती च कराले ब्राह्मणार्तिकृत् ॥१९

मधु चुराने वाला परीताप में, दूसरे का धन चुराने वाला कालसूत्र में, अत्यन्त मांस खाने वाला कश्मल में, पितरों को पिण्ड न देने वाला उग्रगन्ध में, उत्कोच लेने वाला दुर्धर में, निरपराध को बन्दी बनाने वाला मञ्जूष में, वेद-निन्दक अप्रतिष्ठ में, झूठी गवाही देने वाला पूतिवक्त्र में, धनापहरण करने वाला परिलुण्ठ में, बालक, स्त्री तथा वृद्ध की हत्या करने वाला और ब्राह्मण को सताने वाला कराल में पड़ता है।१७-१९।

([6]विलेपे मद्यपो विप्रो महाप्रेते तु भेदिनः।
तथाऽऽक्रम्य पारदाराञ्ज्वलन्तीमायसीं शिलाम् ॥२०
शाल्मलाख्ये तमालिङ्गेन्नारी बहुनरंगमा।
आस्फोटजिह्वोद्धरणं स्त्रीक्षणान्नेत्रभेदनम् ॥२१
अङ्गारराशौ क्षिप्यन्ते मातृपुत्र्यादिगामिनः।
चौराः क्षुरैश्च भिद्यन्ते स्वमांसाशी च मांसभुक् ॥२२
मासोपवासकर्ता वै न याति नरकं नरः।
एकादशीव्रतकरो भीष्मपञ्चकसद्व्रती ॥२३

मद्यपान करने वाला ब्राह्मण विलेप में और दूसरों में भेद डालने वाला महाप्रेत नामक नरक में पड़ता है। परस्त्रीगामी को जलती

१ च. °रान्नहृ°। २ च. °गर्ते ह्य°। ३ क. ङ. °हवनाश्च। ४ क. ङ. मञ्जिष्ठे। ५ क. ङ. °कः। यतिवृक्षे कू°। ६ विलेपे.........शिलाम् च पुस्तके नास्ति।

हुई लौहमयी नारी के साथ सम्भोग करना पड़ता है। वैसे ही बहुपुरुषगामिनी स्त्री को भी 'शाल्मल' नामक नरक में जलते हुए लौहमय पुरुष का आलिंगन करना पड़ता है। जो (परस्त्री के विषय में) बुरी बातें करते हैं, उनकी जिह्वा काट ली जाती है और जो उसकी ओर कुदृष्टि से देखता है, उसकी आँखें फोड़ दी जाती हैं। माता तथा पुत्री आदि के साथ गमन करने वाला अंगार के ढेर में फेंक दिया जाता है। चोरों का छुरों से भेदन किया जाता है। मांस-भक्षी को अपना ही मांस खाना पड़ता है। जो व्यक्ति मासोपवास, एकादशीव्रत तथा भीष्मपञ्चक व्रत करता है, उसे नरक नहीं जाना पड़ता है ।२०-२३।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये नरकस्वरूपवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०३

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

मासोपवासव्रतम्

अग्निरुवाच

व्रतं मासोपवासं[1] च सर्वोत्कृष्टं वदामि ते ।
कृत्वा तु वैष्णवं यज्ञं गुरोराज्ञामवाप्य च ॥१
कृच्छ्राद्यैः स्वबलं बुद्ध्वा कुर्यात्मासोपवासकम् ॥१½

अग्निदेव बोले—अब मैं तुम्हें सर्वोत्कृष्ट मासोपवास व्रत बतला रहा हूँ। विष्णुयज्ञ करके और गुरु से आज्ञा प्राप्त कर कृच्छ्र आदि व्रतों से अपने बल की परीक्षा करके मासोपवास व्रत करना चाहिए। १-१½।

वानप्रस्थो यतिर्वाऽथ नारी वा विधवा मुने ॥२
आश्विनस्यामले पक्ष एकादश्यामुपोषितः ।
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥३
अद्य प्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव ।
अर्चये त्वामनश्नन्हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥४
कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो यावदुत्थानकं तव ।
म्रियेयद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥५

---

१ क.ङ. 'वासाख्यं स' ।

हे मुने ! विधवा स्त्री या वानप्रस्थी या संन्यासी को आश्विन शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास करके तीस दिनों तक यह व्रत करने का संकल्प इस प्रकार करना चाहिए—"हे विष्णो ! आज से लेकर आपके उत्थान के दिन (देवोत्थानी एकादशी) तक मैं बिना कुछ खाये तीस दिनों तक आपकी पूजा करता रहूँगा । भगवन् ! आश्विन और कार्तिक के बीच आज से लेकर आपके जागरण-दिवस के पूर्व तक यदि मैं मर भी जाऊँ तो भी मेरा व्रत-भंग न हो" ।२-५।

त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं त्रिःस्नातो गन्धपुष्पकैः ।
विष्णोर्गीतादिकं जप्यं ध्यानं कुर्याद्व्रती नरः ।।६
वृथावादं परिहरेदर्थाकाङ्क्षां[1] विवर्जयेत् ।
नाव्रतस्थं स्पृशेत्कंचिद्विकर्मस्थान्न चालयेत् ।।७

व्रती को त्रिकाल-स्नान करके गन्ध-पुष्पादि से तीनों कालों में विष्णु का पूजन करना चाहिए । विष्णु का ध्यान, मन्त्र, जप तथा (इनसे सम्बद्ध) गीत आदि भी गाना चाहिये । व्रत करने वाले को व्यर्थ विवाद तथा धन-लिप्सा का परित्याग कर देना चाहिये । जो उस व्रत का अनुष्ठान नहीं कर रहा है, उसका स्पर्श नहीं करना चाहिये तथा उसके साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये ।६-७।

देवतायतने तिष्ठेद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।
द्वादश्यां पूजयित्वा तु भोजयित्वा द्विजान्व्रती ।।८
समाप्य दक्षिणां दत्त्वा पारणं तु समाचरेत् ।।८½

(व्रतकाल में) तीस दिन तक उसे देवालय में ही रहना चाहिए । द्वादशी में व्रत समाप्त करके ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक भोजन कराना चाहिये और उन्हें दक्षिणा देकर (स्वयं भी) पारण करना चाहिए ।८-८½।

भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति[2] कल्पांश्चैव त्रयोदश ।।९
कारयेद्वैष्णवं यज्ञं यजेद्विप्रांस्त्रयोदश ।
तावन्ति वस्त्रयुग्मानि (णि) भाजनान्यासनानि च ।।१०
छत्राणि सपवित्राणि तथोपानद्युगानि च ।
योगपट्टोपवीतानि दद्याद्विप्राय तैर्मतः ।।११

---

१ ग. °रेदन्नाका° । २ क. ग. ङ. °ति कुर्यात्तां तु त्रयोदशीम् । का° ।

ऐसा करने वाला व्रती तेरह कल्पों तक भोग और मोक्ष प्राप्त करता है। उसे विष्णु यज्ञ कराना चाहिये और तेरह ब्राह्मणों को उनकी अनुमति से उतने ही जोड़े वस्त्र, वर्तन, आसन, छत्र, पवित्र (अंगूठी), जूते, योगपट्ट तथा यज्ञोपवीत देना चाहिये ।९-११।

अन्यविप्राय शय्यायां हैमं विष्णुं प्रपूज्य च ।
आत्मनश्च तथा मूर्तिं वस्त्राद्यैश्च प्रपूजयेत् ।।१२
सर्वपापविनिर्मुक्तो[1] विप्रविष्णुप्रसादतः ।
विष्णुलोकं गमिष्यामि विष्णुरेव भवाम्यहम् ।।१३

शय्या के ऊपर विष्णु की स्वर्ण- प्रतिमा तथा अपनी प्रतिमा का वस्त्र आदि से पूजन करके उसे दूसरे ब्राह्मण को दे देना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणों से यह निवेदन करना चाहिए कि "मैं ब्राह्मणों तथा विष्णु की कृपा से सब प्रकार के पापों से रहित होकर विष्णुलोक जाऊँगा और विष्णु ही हो जाऊँगा" ।१२-१३।

व्रज व्रज देवबुद्धे विष्णोः स्थानमनामयम् ।
विमानेनामलस्तत्र तिष्ठ विष्णुस्वरूपधृक् ।।१४
[2]द्विजानुक्त्वाऽथ तां शय्यां गुरवेऽथ निवेदयेत् ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद्व्रती ।।१५

ब्राह्मणों को यह कहना चाहिए कि "शुद्धबुद्धे ! तुम निर्मल होकर विमान द्वारा विष्णु के निरापद स्थान को चले जाओ और वहाँ विष्णु के समान रूप धारण करके रहते रहो ।" ब्राह्मणों से इस प्रकार कहकर वह शय्या गुरु को देनी चाहिये। ऐसा करने वाला व्रती अपनी सौ पीढ़ियों का उद्धार कर उन्हें वैकुण्ठ में पहुँचा जाता है ।१४-१५।

मासोपवासी यद्देशे स देशो निर्मलो भवेत् ।
किं पुनस्तत्कुलं सर्वं यत्र मासोपवासकृत् ।।१६
व्रतस्थं मूर्च्छितं दृष्ट्वा क्षीराज्यं चैव पाययेत् ।
नैते व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्बिप्रानुमोदितम् ।।१७
क्षीरं गुरोर्हितो (तौ) षध्य आपोमूलफलानि च ।
विष्णुर्महौषधं कर्ता व्रतमस्मात्समुद्धरेत् ।।१८

---

१ क. ड त्रिष्णुव्रतप्र° । २ ख. °जान्नत्वाऽथ ।

मासोपवासी जिस देश में रहता है, वह देश पवित्र हो जाता है, फिर उस कुल का क्या कहना है, जिसमें ऐसा व्रती हो ? व्रती यदि उपवास करते-करते मूर्च्छित हो जाये तो उसे दूध-घी पिला देना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण तथा गुरु की आज्ञा से दिये हुए हविष्, क्षीर, औषध तथा फल-मूल से व्रतभंग नहीं होता है। व्रत के विघ्नों को दूर करने के लिए विष्णु ही महौषध हैं। इस लिए व्रती को उन्हीं की शरण में जाना चाहिए।१६-१८।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये मासोपवासव्रतकथनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः।२०४

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतम्

अग्निरुवाच—

भीष्मपञ्चकमाख्यास्ये व्रतराजं तु सर्वदम् ।
कार्तिकस्यामले पक्ष एकादश्यां समाचरेत् ।१

अग्निदेव बोले—अब मैं भीष्मपञ्चक नामक व्रतराज का वर्णन करूँगा जो सब कुछ देने वाला है। यह व्रत कार्तिक शुक्लपक्ष की एकादशी को करना चाहिए।१

दिनानि पञ्च त्रिःस्नायी[1] पञ्चव्रीहितिलैस्तथा ।
तर्पयेद्देवपित्रादीन्मौनी सम्पूजयेद्धरिम् ।।२

पाँच दिनों तक त्रिकाल स्नान करके पंचव्रीहि तथा तिल से देवता और पितरों आदि का तर्पण करना चाहिए। अनन्तर मौन रहकर भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए।२

पंचगव्येन संस्नाप्य देवं पञ्चामृतेन च ।
चन्दनाद्यैः समालिप्य गुग्गुलं सघृतं दहेत् ।।३

पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत से भगवान् को स्नान करवा कर उन्हें चन्दन-आदि का लेप लगाकर घी और गुग्गुल की धूप देनी चाहिए।३

१ ख. ङ. 'यी यवव्री'।

दीपं दद्याद्दिवारात्रौ नैवेद्यं परमान्नकम् ।
ॐ नमो वासुदेवाय जपेदष्टोत्तरं शतम् ।।४

दिन-रात दीपदान करना चाहिए और खीर का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। एक सौ आठ बार 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करना चाहिए ।४

जुहुयाच्च घृताभ्यक्तांस्तिलव्रीहींस्ततो व्रती ।
षडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ।।५
कमलैः पूजयेत्पादौ द्वितीये बिल्वपत्रकैः ।
जानुसक्थि तृतीयेऽथ नाभिं भृङ्गरजेन तु ।।६

तत्पश्चात् घृतमिश्रित तिल और व्रीहि से हवन करना चाहिए । षडक्षर मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' जोड़कर आहुति देनी चाहिए। पहले दिन कमलों से भगवान् के चरणों की, दूसरे दिन बिल्व पत्रों से उनके घुटनों तथा जङ्घाओं की तीसरे, दिन भृङ्गराज से नाभि की पूजा करनी चाहिए।५-६।

बाणबिल्वजपाभिस्तु चतुर्थे पञ्चमेऽहनि ।
मालत्या भूमिशायी स्यादेकस्यां तु गोमयम् ।।७
गोमूत्रं दधि दुग्धं च पञ्चमे पञ्चगव्यकम् ।
पौर्णमास्यां चरेन्नक्तं भुक्तिं मुक्तिं लभेद्व्रती ।।८

चौथे दिन बाणपुष्प, बिल्वपत्र तथा जपाकुसुम से तथा पाँचवें दिन मालती से (सर्वाङ्ग शरीर की) अर्चना करनी चाहिए। व्रती को भूमि पर सोना चाहिए। उसे पहले दिन गोबर, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दही, चौथे दिन दूध और पाचवें दिन पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। व्रती को पौर्णमासी में रात को व्रत तोड़ना चाहिए। ऐसा करने से उसे भुक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है ।७-८।

भीष्मः कृत्वा हरिं प्राप्तस्तेनैव भीष्मपञ्चकम् ।
ब्रह्मणः पूजंनात्पञ्चउ (को) पवासादि (त्म) कं व्रतम् ।।९

भीष्म ने यह व्रत करके वैकुण्ठ प्राप्त कर लिया था। इसलिए इसको भीष्मपञ्चक व्रत कहते हैं। ब्रह्मा (विष्णु) का पूजन और पांच दिनों का उपवास यही इस व्रत का सार है।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये भीष्मपञ्चकव्रतकथनं
नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः।२०५

———

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

अगस्त्यार्घ्यदानकथनम्

अग्निरुवाच —

अगस्त्यो भगवान्विष्णुस्तमभ्यर्च्याऽऽप्नुयाद्धरिम्[1] ।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सत्रिभागैस्त्रिभिर्दिनैः ॥१
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय पूजयित्वा ह्युपोषितः ।
काशपुष्पमयीं मूर्ति प्रदोषे विन्यसेद्घटे[2] ॥२

अग्निदेव बोले—अगस्त्य जी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं, अतः उनकी अर्चना करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। सूर्य के कन्या राशि में जाने के पूर्व तीन दिनों तक उपवास रखकर तीन कालों में अगस्त्य का पूजन करके उन्हें अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। प्रदोषकाल में घट के ऊपर अगस्त्य की काशपुष्पमयी मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए।१-२।

मुनेर्यजेत्तां कुम्भस्थां रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ।
अगस्त्यमुनिशार्दूल तेजोराशे महामते[3] ॥३
इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह ।
आवाह्यार्घ्यं च सांमुख्यं प्रार्चयेच्चन्दनादिना ॥४

उस कुम्भ पर स्थित मुनि की पूजा करनी चाहिए। अनन्तर रात्रि में जागरण करना चाहिए। "मुनिवर ! अगस्त्य ! तेजोराशे ! महामते ! आप अपनी पत्नी (लोपमुद्रा) के साथ मेरी पूजा स्वीकार कीजिए।" इस प्रकार आवाहन करके अर्घ्य देकर तथा चन्दनादि से उनकी पूजा करनी चाहिए।३-४।

जलाशयसमीपे तु प्रातर्नीत्वाऽर्घ्यमर्पयेत् ।
काशपुष्पप्रतीकाश[4] अग्निमारुतसंभव ॥५
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ।५½

प्रातःकाल जलाशय के समीप जाकर यह कहते हुए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। 'काशपुष्प के समान वर्णवाले ! अग्निमारुत से उत्पन्न ! मित्रावरुण के पुत्र ! कुम्भयोने ! आपको नमस्कार है'।५-५½।

---

१ ग. °भ्यर्च्य स्तुया°। २ ख. ग. °टे। निमज्जयेत्तां। घ. ङ. °टे। मूले यजे°। ३ क. ङ. °हाद्युते। ४ क. ङ. °शवह्निमा°।

[1]आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः ॥६
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः संमुखोऽस्तु मे ।
अगस्तिं प्रार्थयिष्यामि कर्मणा मनसा गिरा ॥७

आतापि तथा वातापि नामक महासुरों का भक्षण करने वाले और समुद्र का शोषण करने वाले अगस्त्य मेरे सम्मुख हों । मैं मनसा-वाचा-कर्मणा अगस्त्य की प्रार्थना करता हूँ ।६-७।

अर्चयिष्याम्यहं मैत्रं[2] परलोकाभिकाङ्क्षया ।
द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियम् ॥८
राजानं सर्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी ॥९
सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यताम् ॥९½

स्वर्ग की अभिलाषा से द्वीपान्तर में उत्पन्न होने वाले, देवों के परमप्रिय तथा सम्पूर्ण वृक्षों के राजा मैत्र (अगस्त्य) की पूजा करता हूँ । हे देव ! चन्दन स्वीकार कीजिए । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को देने वाली, पापों का नाश करने वाली और सौभाग्य, आरोग्य, तथा ऐश्वर्य को प्रदान करने वाली यह पुष्पमाला भी स्वीकार कीजिये ।८-९½

धूपोऽयं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥१०
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च शुभां गतिम्[3] ।
सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद ॥११
वस्त्रव्रीहिफलैर्हेम्ना दत्तस्त्वर्घ्यो ह्ययं मया ।
अगस्त्यं वोधयिष्यामि[4] यन्मया मनसोद्धृतम्[5] ॥१२

हे देव ! यह धूप ग्रहण कीजिए और मेरी भक्ति को अचल कर दीजिए । मुझे वांछित वर तथा मृत्यु के पश्चात् सद्गति प्रदान कीजिए । हे मुनिश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करने वाले ! सुर और असुरों ने वस्त्र, व्रीहि, फल तथा सुवर्ण के साथ आपको अर्घ्य प्रदान किया है । मैं भी उसी अर्घ्य को

---

१ 'आतापि""""संमुखोऽस्तु मे इत्यत्र 'वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा । विंध्यवृद्धिक्षयकरः सोऽगस्त्यः प्रमुखोऽस्तु मे" । क. ङ. पुस्तकयोः वर्तते । २ क. ङ. मन्त्रैः । ३ क. ङ. ०म् । प्रशस्त वै मुनि० । ४ क. ख. ङ. वाचयिष्यामि । ५ क. ङ. ०नसेप्सित० ।

दे रहा हूँ। हे महामुने ! इसे स्वीकार कीजिए। मैंने अपने मन में जो कुछ विचार किया है, उसे महामुनि अगस्त्य को निवेदित करूँगा।१०-१२।

फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने।
अगस्त्य एवं खननाद्धरित्रीं पूजामपत्यं बलमीहमानः।
[1]उभौ कर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो वै जगाम ॥१३

हे मुनिराज ! मैं फलों के साथ यह अर्घ्य आपको समर्पित करूँगा, इसे स्वीकार कीजिए। (इस समय "अगस्त्य.........वै जगाम") यह श्लोक पाठ करते हुए विचार करना चाहिए।१३

राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते।
अर्घ्यं गृह्णीष्व देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि ॥१४

अनन्तर मुनिपत्नी (लोपामुद्रा) को यह कहते हुए अर्घ्य देना चाहिए—"अयि राजपुत्रि ! महाव्रते ! मुनिपत्नि ! देवेशि ! यशस्विनि ! लोपामुद्रे ! आपको नमस्कार है। आप मेरा अर्घ्य स्वीकार कीजिए।"१४

पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरूप्यसमन्वितम्।
[2]सप्तधान्यवृतं[3] पात्रं दधिचन्दनसंयुतम् ॥१५
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय स्त्रीशूद्राणामवैदिकम्।
अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वद ॥१६
इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये[4] ॥१६½

अगस्त्य को पञ्चरत्न, सुवर्ण, चाँदी, सप्तधान्य, दही तथा चन्दन से युक्त अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। स्त्री और शूद्रों को अवैदिक रीति से अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्य देने के पश्चात् यह कहते हुए अगस्त्य का विसर्जन करना चाहिए—"हे अगस्त्य ! हे मुनिवर ! हे तेजोराशे ! अखिलदायक ! मेरी यह पूजा स्वीकार करके आप (मेरी) शान्ति के लिए चले जाइये"।१५-१६½।

त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् ॥१७
ततोऽन्नं भोजयेद्विप्रान्घृतपायसमोदकान्[5]।
गां वासांसि सुवर्णं च तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥१८

---

१ क. ख. ङ. °भौ वर्णा०। २ क. ङ. °धान्यं घृतं। ३ ख. ग. °न्यमृतं। ४ ग. व्रतशा°। ५ ग. °न्। प्रतिमां च सु°।

घृतपायसयुक्तेन पात्रेणाऽऽच्छादिताननम् ।
सहिरण्यं च तं कुम्भं ब्राह्मणायोपकल्पयेत्[1] ॥१९

उस दिन से अगस्त्य के उद्देश्य से कोई एक धान्य, फल तथा रस छोड़ देना चाहिए। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को घी, खीर तथा लड्डू खिलाकर उन्हें, गाय वस्त्र और सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए। घी तथा खीर से पूर्ण पात्र से उस घड़े को ढँककर किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिए।१७-१९।

सप्तवर्षाणि दत्त्वाऽर्घ्यं सर्वे सर्वमवाप्नुयुः ।
नारी पुत्रांश्च सौभाग्यं पतिं कन्या नृपो भुवम् ॥२०

सात वर्ष इस तरह अगस्त्य को अर्घ्य देने से सबको सब कुछ प्राप्त हो जाता है। स्त्री, पुत्र और सौभाग्य को प्राप्त कर लेती है, कन्या को पति मिल जाता है और राजा को पृथ्वी का लाभ होता है।२०

इत्यादिमहापुराण आग्नेयेऽगस्त्यार्घ्यदानकथनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः।२०६

————

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

कौमुदव्रतम्

अग्निरुवाच—

कौमुदाख्यं मयोक्तं च चरेदाश्वयुजे सिते ।
हरिं यजेन्मासमेकमेकादश्यामुपोषितः ॥१
आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन् ।
मासमेकं भुक्तिमुक्त्यै करिष्ये कौमुदं व्रतम् ॥२

अग्निदेव बोले—मनुष्य को मेरा बताया हुआ कौमुद व्रत आश्विन शुक्ल-पक्ष की एकादशी में करना चाहिए। उस दिन उपवास करके भगवान् विष्णु की अर्चना करनी चाहिए। यह संकल्प करे कि मैं आश्विन शुक्लपक्ष में एकाहारी रहकर विष्णु-मन्त्र का जप करता हुआ भोग और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए एक मास तक कौमुद-व्रत करूँगा"।१-२।

---

१ क. ङ. 'पपादये'।

उपोष्य विष्णुं द्वादश्यां यजेद्देवं[1] विलिप्य च ।
चन्दनागुरुकाश्मीरैः कमलोत्पलपुष्पकैः ॥३
कह्लारैर्वाऽथ मालत्या दीपं तैलेन वाग्यतः ।
अहोरात्रं च नैवेद्यं पायसापूपमोदकैः ॥४

तदनन्तर दूसरे दिन द्वादशी में भगवान् के ऊपर चन्दन, अगर, कुंकुम आदि का लेप लगाकर (श्वेत) कमल, नील कमल, रक्तकमल, तथा मालती के पुष्पों से उनकी पूजा करनी चाहिये। वाणी का संयम करना चाहिए। तेल का दीपक जलाना चाहिए। रात दिन खीर, पूआ, लड्डू आदि का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। ३-४।

ओं नमो वासुदेवाय विज्ञाप्याथ क्षमापयेत् ।
भोजनादि द्विजे दद्याद्यावद्देवः प्रबुध्यते ॥५
तावन्मासोपवासः स्यादधिकं [2]फलमप्यतः[3] ॥६

'ओं नमो वासुदेवाय' मन्त्र का जप करके क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए तथा भगवान् के उठने तक (अर्थात् देवोत्थानी एकादशी तक) ब्राह्मण को भोजन देते रहना चाहिए। ऐसा करने से मासोपवास से भी अधिक फल प्राप्त होता है। ५-६।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये कौमुदव्रतकथनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०७

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्रतदानादिसमुच्चयः

अग्निरुवाच—

व्रतदानानि सामान्यं प्रवदामि समासतः ।
तिथौ प्रतिपदादौ च सूर्यादौ कृत्तिकासु च ॥१

---

१ ग. °जेदेवं । २ क. ङ. °लमाप्यते । इ° । ३ एतदग्रे—"सर्वान्कामानवाप्नोति कौमुदव्रतमाचरन्" इत्यधिकं क. पुस्तके ।

विष्कु (ष्क) म्भादौ च मेषादौ काले च ग्रहणादिके ।
यत्काले यद्व्रतं दानं यद्द्रव्यं नियमादि यत् ॥२
तद्द्रव्याख्यं च कालाख्यं सर्वं वै विष्णदैवतम् ॥२½

अग्निदेव बोले—अब मैं संक्षेप में सामान्य व्रत और दानों का वर्णन करूँगा। प्रतिपदा आदि तिथियों में, रविवार आदि दिनों में, कृत्तिका आदि नक्षत्रों में, विष्कुम्भ आदि योगों में, मेषादि राशि में और ग्रहण काल में जो व्रत, दान आदि तथा नियमादि किये जाते हैं वे सब विष्णु देवता से ही सम्बद्ध हुआ करते हैं। १-२½ ।

रवीशब्रह्म[1] लक्ष्म्याद्याः सर्वे विष्णोर्विभूतयः ॥३
तमुद्दिश्य व्रतं दानं पूजादि स्यात्तु सर्वदम् ।
जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकम् ॥४
मधुपर्कं तथाऽऽचामं स्नानं वस्त्रं च गन्धकम् ।
पुष्पं धूपश्च दीपश्च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते ॥५

सूर्य, शिव, ब्रह्मा तथा लक्ष्मी आदि सभी देव-देवियाँ विष्णु की ही विभूतियाँ हैं। इसलिए उनके (विष्णु के) उद्देश्य से किया हुआ व्रत दान तथा पूजन आदि सब कुछ देने वाला हुआ करता है। पूजा आदि में भगवान् विष्णु से यह कहना चाहिए—"हे जगत्पते ! आइये और आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप दीप तथा नैवेद्य आदि ग्रहण कीजिए। आपको नमस्कार है। ३-५ ।

इति पूजाव्रते दाने दानवाक्यं समं शृणु ।
अद्यामुकसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ॥६
एतद्द्रव्यं विष्णुदैवं सर्वपापोपशान्तये ।
अयुरारोयवृद्ध्यर्थं सौभाग्यादिविवृद्धये ॥७
गोत्रसंततिवृद्ध्यर्थं विजयाय धनाय च ।
धर्मायैश्वर्यकामाय तत्पापशमनाय च ॥८
संसारमुक्तये दानं तुभ्यं संप्रददे ह्यहम् ॥८½

---

१ ख. ग. ह्यलोकाद्याः ।

पूजा, व्रत तथा दान आदि में दानवाक्य समान ही हैं। उसे इस तरह कहना चाहिए—"आज अमुकगोत्र वाले अमुक शर्मा विप्र को विष्णुदेव को प्रसन्न करने के लिये, समस्त पापों की शान्ति के लिए, आयु, आरोग्य, सौभाग्य, गोत्र तथा संतान की वृद्धि के लिए, विजय, धर्म, ऐश्वर्य तथा काम प्राप्ति के लिए, पापों के शमन के लिये और संसार से मुक्ति के लिए यह द्रव्य समर्पित कर रहा हूँ"। ६-८½।

[1]एतद्दानप्रतिष्ठार्थं तुभ्यमेतद्ददाम्यहम् ॥९
एतेन प्रीयतां नित्यं सर्वलोकपतिः प्रभुः।
यज्ञदानव्रतपते विद्याकीर्त्यादि देहि मे ॥१०

अये ब्राह्मण! इस दान की प्रतिष्ठा के लिए (ही) मैं आपको यह दे रहा हूँ। इससे अखिलभुवननायक भगवान् विष्णु प्रसन्न हों। हे यज्ञ, दान तथा व्रतों के स्वामी! आप मुझे विद्या, कीर्ति आदि प्रदान कीजिये। ९-१०

धर्मकामार्थमोक्षांश्च देहि मे मनसेप्सितम्।
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं व्रतदानसमुच्चयम् ॥११
स प्राप्तकामो विमलो भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
तिथिवारर्क्षसंक्रान्तियोगमन्वादिकं व्रतम् ॥
नैकधा वासुदेवादेर्नियमात्पूजनाद्भवेत् ॥१२

धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष तथा (अन्य) अभीष्ट फल प्रदान कीजिये। जो व्यक्ति इस व्रतदान समुच्चय का नित्यपाठ या श्रवण करता है, वह सफल-मनोरथ और निर्मल होकर भोग और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग तथा मन्वन्तर आदि के व्रत वासुदेव के एक वार के पूजन की समता नहीं कर सकते हैं। ११-१२।

इत्यादिमहापुराण आग्नेये व्रतदानसमुच्चयकथनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः।२०८

———

१ एतद्दान·········ददाम्यहम्। क. ङ. पुस्तकयोर्नास्ति।